भारतीय मिथक कोश

डॉ० उषा पुरी विद्यावाचस्पति

नेशनल पब्लिशिंग हाउस

२३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२

शाखाएं

चौड़ा रास्ता, जयपुर

३४, नेताजी सुभाष मार्ग, इलाहाबाद-३

[शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार के
वित्तीय सहयोग से प्रकाशित]

मूल्य : १००.००

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२ द्वारा प्रकाशित / प्रथम संस्करण : १९८५ / सर्वाधिकार : लेखिकाधीन / सरस्वती प्रिंटिंग प्रेस, ए-९५, सेक्टर-५, नोएडा-२०१३०१ में मुद्रित।

[143.1-11-1185/N]

BHARTIYA MITHAK KOSH by Usha Puri Vidya Vachaspati

Price : Rs. 100.00

पूज्य पिताजी (श्री इन्द्र विद्यावाचस्पति)

की

पुण्य-स्मृति को

सादर

—उषा

भमिका

साहित्य-सृजन में सत्य और कल्पना के अतिरिक्त जो तत्त्व सक्रिय रहते हैं उनमें पुराकथा, आद्यबिंब एवं फ़ैंटेसी का प्रमुख स्थान है। पुराकथा, पुराणकथा या देवकथा कोरी कल्पना पर आधारित न होकर लोकानुभूति से संश्लिष्ट ऐसी कथा होती है जो अलौकिकता का भी संकेत देती है। पुराकथा जिसे अंग्रेजी में माइथालोजी कहा जाता है, अलौकिकता से आपूर्ण होने के कारण तर्काश्रित नहीं होती। ऐसी कथाओं की सृष्टि के पीछे कुछ आदिम विश्वास होते हैं जो कालांतर में अंधविश्वास का रूप धारण कर लेते हैं। उन विश्वासों की व्याख्या दुरूह हो जाती है और वे एक धुंधलके में आच्छन्न हो जाते हैं। ऐसी कथाओं तथा विश्वासों को मिथक शब्द से व्यवहृत किया जाने लगा है। मिथक शब्द के मूल में अंग्रेजी का 'मिथ' शब्द ही था किंतु हिंदी में प्रयुक्त होकर इस शब्द ने नया कलेवर धारण कर लिया है। अब इस शब्द की अर्थछवि में भी नवीनता का समावेश हो गया है। साहित्य-सृजन के क्षेत्र में मिथक अब एक ऐसा तत्त्व है जो भाषा को व्यापक आयाम देकर रहस्यात्मकता, लाक्षणिकता और विलक्षणता प्रदान करने में समर्थ है। यह कोई नवीन तत्त्व नहीं है किंतु संज्ञा-अभिधान के कारण इसे नये ढंग से प्रस्तुत किया जा रहा है। मिथक के विस्तृत परिदृश्य में केवल पुराणकथा ही नहीं, वरन् लोककथा, निजंधरी कथा तथा आख्यानात्मक कथाओं का भी समावेश होता है। प्राचीन साहित्य में उपलब्ध देवता, राक्षस, गंधर्व, यक्ष, किन्नर आदि के संदर्भ मिथक के अंग बन गये हैं। इस प्रकार मिथक का क्षेत्र बहुत विस्तृत हो गया है और उसके अंग-उपादान असीम हो गये हैं।

मिथक के आविर्भाव के संबंध में विद्वानों में मतभेद है किंतु मिथक की उपादेयता के संबंध में प्राय: सभी का मत समान है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की मान्यता है कि वाक्तत्त्व के साथ ही मिथक तत्त्व का आविर्भाव हुआ था। जर्मन विद्वान् मैक्समूलर ने भी इस मत को शब्द भेद से व्यक्त किया—"अपने उच्चतर अर्थ में मिथक तत्त्व वह शक्ति है जो मानव चित्त के हर संभव मानसिक क्रियाकलाप में भाषा द्वारा प्रत्युत्पादित होती है।" मिथक तत्त्व भाषा की भांति ही मनुष्य की निश्चित सर्जना शक्ति का विलास है। यह ऊपर से देखने में असत्य या अंधविश्वास भले ही प्रतीत हो, किंतु गंभीरतापूर्वक विचार करने पर उसमें किसी प्रच्छन्न या परोक्ष सत्य को पा लेना कठिन नहीं है। द्विवेदी जी ने इसी कारण माना है कि "मिथक तत्त्व वस्तुत: भाषा का पूरक है। सारी भाषा इसी के

बल पर खड़ी है। आदि मानव के चित्त में संचित अनेक अनुभूतियां मिथक के रूप में प्रकट होने के लिए व्याकुल रहती हैं, परंतु भाषा के माध्यम से जब वे प्रकट होती हैं तब ऊपर-ऊपर से एकांगी, तर्कहीन और मिथ्या जान पड़ती हैं किंतु गहराई से देखने पर वे मनुष्य के अंतर्जगत् को अभिव्यक्त करने का एकमात्र साधन हैं। मिथक वस्तुतः उस सामूहिक मानव की भाव निर्मात्री शक्ति की अभिव्यक्ति है जिसे कुछ मनोविज्ञानी आर्केटाइपल इमेज (आद्यबिंब) कहकर संतोष कर लेते हैं।"

मिथक की उत्पत्ति या आविर्भाव के कारणों में एक कारण तो बहुत स्पष्ट है। जब आदिम मानव ने अपने अंतर की अभिव्यक्ति के लिए किसी साधन को चुना होगा तब मिथक ही उसमें सबसे अधिक संप्रेषणीय तत्त्व रहा होगा। किंतु जैसे-जैसे भाषा में अभिव्यक्ति की क्षमता बढ़ती गयी और प्रतीक विधान तथा बिंबयोजना पुष्ट होती गयी, मिथकों का प्रयोग उस रूप में नहीं रह पाया। मनोरंजन और कथात्मक आनंद के साथ मिथक अपने प्रारंभिक स्वरूप से कुछ भिन्न हो गया। पौराणिक कथाएं, निजंधरी कथाएं तथा क्षेपक एवं दंतकथाएं इस बात के प्रमाण हैं कि मिथक तत्त्व अपनी समस्त ऊर्जा के साथ किसी-न-किसी रूप में भाषा और साहित्य में जीवित हैं। यह किसी एक भाषा या एक देश के साहित्य में नहीं, वरन् विश्व की सभी भाषाओं और सभी साहित्यों में लक्षित किया जा सकता है। समाज के समष्टि चित्त की आधारभूमि पर अवस्थित मिथकीय प्रयोग भाषा के साथ गहरी पारस्परिकता का बोध कराने में समर्थ हैं, यह मिथकों की प्रयोजनीयता का प्रमाण है।

पाश्चात्य देशों में मिथक के संबंध में हमारे देश की अपेक्षा अधिक छानबीन और चर्चा हुई है। श्रीमती सूजन के० लेंगर ने मिथक को धर्म के साथ जोड़ते हुए उसे एक माध्यम के रूप में स्वीकार किया है। उनकी मान्यता है कि मिथक तत्त्व पर चाहे विश्वास किया जाय या न किया जाय, किंतु एक प्रकार का धार्मिक विश्वास अवश्य इसकी रहस्यमयता एवं ऐतिहासिक तथ्यों के कारण किया जाता है। मिथक कल्पना त्रासदीजन्य होती है, तभी अतिप्राकृत चरित्रों का निर्माण इसके द्वारा संभव होता है।" श्रीमती लेंगर ने प्राकृतिक शक्तियों के उत्पात और अतिमानवीय शक्तियों से दबी हुई मानव इच्छाओं के संघर्ष को मिथक तत्त्व का मूलभूत कारण माना है। मिथक इसीलिए मिथ्या कल्पना या यूटोपिया न होकर, सत्य के मूल तक पहुंचने का एक नैतिक उपक्रम है।

कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने पुराकथाओं के समग्र रूप को, जो मिथक को जन्म देती हैं, रूपक या प्रतीक मानकर ऐतिहासिक घटना भी माना है। आदिम जातियों में पुराकथा या मिथक केवल कथामात्र नहीं है बल्कि वह अपनी विषय-वस्तु की अपरोक्ष अभिव्यक्ति है। आदिम संस्कृति के पुराकथा या पुराण एक अपरिहार्य प्रयोजन को सिद्ध करता है, वह विश्वासों को व्यक्त करता है तथा उन्हें संवर्धित और नियमित करता है।

भाषा भावों और विचारों की संप्रेषिका है, किंतु इसकी क्षमता सीमित है। कारयित्री प्रतिभासंपन्न कवि अपनी कल्पनाशक्ति से कभी-कभी ऐसे विलक्षण दृश्य, चित्र, विश्वास और विचार प्रकट करते हैं जो शब्द की पकड़ में नहीं आते। विलक्षण एवं विचित्र विश्वासों और लोकप्रचलित मान्यताओं के प्रकटीकरण के लिए तब रचनाकार का ध्यान एक ऐसे उपकरण की ओर जाता है जो पुराकथा या मिथक के रूप में उस विलक्षण कल्पना को मूर्तित कर सके। मिथकीय-कल्पना से उद्भूत यह अभिव्यक्ति पाठक को भी रंजक प्रतीत होती है। इस प्रकार कल्पना के कथाश्रित संप्रेषण की विधि में मिथक का योगदान सर्वस्वीकृत

है। भाषा शब्दाश्रित होती है और शब्द अमूर्त होते हैं। जब शब्द को किसी पुराकथा या मिथक से जोड़ दिया जाता है तब वे मूर्त चित्रों का निर्माण करने में समर्थ हो जाते हैं। हिंदी की मध्ययुगीन कविता इन्हीं मिथकों पर आश्रित है। राम और कृष्ण की दैवी शक्तियां और इनका विरोध करने के लिए आसुरी शक्तियों का आविर्भाव, विभिन्न प्रकार की किंवदंतियां, लोककथाएं आदि अनेक रूप मिथकों से भरपूर हैं। काव्य और धर्म के बीच एक ही तत्त्व उभयनिष्ठ है और वह है मिथक। अतः साहित्य के संदर्भ में मिथक तत्त्व की उपयोगिता असंदिग्ध है, मिथक के कालातीत बनने की यह प्रक्रिया है।

मिथक शब्द के अंतर्गत हम किन कथाओं, उपाख्यानों, विश्वासों और लोक-मान्यताओं को ले सकते हैं, यह अभी तक निश्चयात्मक रूप से निर्णीत नहीं है, किंतु माइथालोजी और निजंधरी कथाओं में व्याप्त कथा-संदर्भों तथा उनसे संबद्ध पात्रों का समावेश तो मिथक में सामान्यतः सर्वस्वीकृत है। यदि ऋग्वेद से लेकर आधुनिक युग तक व्याप्त समस्त पुराकथात्मक मिथकीय संदर्भों को समेटा जाय तो भारतीय कथा कोश का बृहद् भंडार एकत्र हो जायेगा। हमारे पुराण साहित्य में तो मिथकों की विशाल शृंखला है। एक ही कथानक में अनुस्यूत दर्जनों पात्र हैं और उनके साथ क्षेपकों की भी भरमार है। यदि सबको मिथक-वर्ग में समाविष्ट किया जाय तो यह कदली-दल जैसा काम होगा। किसी एक कथा के आश्रित मिथकों का रूप सर्वत्र समान नहीं है। कथा एक ही है किंतु उसके रूप अनेक हैं इसलिए तद्विषयक पात्र-सृष्टि में भी अंतर है। पात्रों के चरित्र भी भिन्न प्रकार के हैं।

भारतीय साहित्य में सृष्टि-उत्पत्ति की कथा अनेक ग्रंथों में वर्णित है। ब्रह्मवैवर्त पुराण, पद्म पुराण और अग्नि पुराण में सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन विभिन्न रूपों में उपलब्ध होता है। सृष्टि-उत्पत्ति का यह पौराणिक आख्यान, तर्क और बुद्धि की कसौटी पर स्वीकृत न होने पर भी हमारे परंपरागत विश्वास का भाजन है। यही इसकी मिथकीय उपादेयता है। इसी प्रकार जंबूद्वीप का वर्णन और उसका मांगलिक संकल्पों और कर्मकांडों में विनियोग कोरा मिथक नहीं रहा वरन् वह एक वस्तु सत्य बन गया है। सृष्टि-उत्पत्ति विषयक कथाएं हमें बाइबल और कुरान में भी मिलती हैं। इन कथाओं को रेशनेलाइज नहीं किया जा सकता। परंपरागत विश्वास की जिस सुदृढ़ भूमि पर ये कथाएं अवस्थित हैं, वह मिथक की ही देन हैं। वैवस्वत मनु की कथा, देवासुर संग्राम की कथा, समुद्रमंथन की कथा, और इसी प्रकार की शताधिक कथाएं न तो किसी इतिहास का साक्ष्य प्रस्तुत करती हैं और न किसी लौकिक सत्य पर आधृत हैं किंतु विश्वास-परंपरा की जो सुदृढ़ भूमि इनके पास है वह इतिहास के किसी साक्ष्य की अपेक्षा नहीं रखती।

टूबियंड द्वीपवासियों में एक मिथकीय कथा प्रचलित है जो तर्क या बुद्धि के निकष पर खरी न उतरने पर भी वहां के निवासियों की विश्वासभूमि पर स्थित है और वहां के सामाजिक स्तर का निर्धारण करती है। कथा में वंश-उद्भव को प्रधानता दी गयी है और उसी के आधार पर आज भी वहां के निवासी वंशोद्भव को उसी रूप में स्वीकार करते हैं। कथा संक्षेप में इस प्रकार है : "लवाइ गांव के निकट एक बिल है जिसका नाम ओबुकुला है। इस ओबुकुला नाम के बिल से चार वंशों की उत्पत्ति हुई। पहले एक छिपकला बाहर निकला जोकि लुकुलाबुहअ गोत्र का पूर्वज था। उसके तुरंत बाद एक कुत्ता उत्पन्न हुआ जोकि लकुचा गोत्र का पूर्वज था, और जो पहले सबसे उच्च स्तर पर था। तीसरे क्रम में सूअर निकला जो मलासी गोत्र का पूर्वज था, और अंत में लुक्यासिसिगा (सांप या मगर)

निकला। कुत्ता और सूअर इधर-उधर दौड़ने लगे और कुत्ते ने नीकू पौधे के फल देखकर उन्हें सूंघा और खा लिया। इस पर सूअर ने कुत्ते से कहा—"तुमने नीकू खाया है। तुम निम्न स्तर के हुए—एक साधारण व्यक्ति। मुखिया (गुमायु) मैं बनूंगा।" और उसके बाद मलासी गोत्र के लोग उच्च स्तर के स्वीकृत हुए और मुखिया बने। सामाजिक स्तर का निर्धारण करने वाली यह मिथकीय लोककथा एक प्रकार की पुराण कथा ही है, किंतु टूबियंड निवासियों के लिए न तो यह मिथक है और न पुराकथा। रूपक और प्रतीक भी नहीं है, उनके लिए ऐतिहासिक घटना है, इसे घटना-सत्य मानकर वहां के निवासी सामाजिकता का निर्वाह करते हैं। मिथक के ऐसे जीवंत प्रभाव को अन्यत्र देख पाना कठिन है।

'लोक विश्वास और संस्कृति' ग्रंथ में डा० श्यामाचरण दुबे ने यह स्वीकार किया है कि व्यक्तिगत तथा सामाजिक आधार पर मिथक तथा प्रतीक बनते हैं। पौराणिक मिथकों और प्रतीकों में घनिष्ठ संबंध होता है। डा० दुबे लिखते हैं कि "पौराणिक मिथकों और लोक विश्वासों का संबंध लोक समुदाय की धार्मिक क्रियाओं तथा जादू-टोने आदि से अति निकट का होता है।" इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। छत्तीसगढ़ की कमार जाति के विश्वास का वर्णन करते हुए उन्होंने लिखा है कि "इस जाति के विश्वास में प्रारंभ में जलसागर के वक्ष पर पृथ्वी तैर रही थी, और उसे स्थिर करने के लिए शिव जी ने चारों दिशाओं में चार विशाल स्तंभ गाड़ दिये और उन पर काली सुरही गाय का चमड़ा इस तरह लगाया कि पूरी तरह से पृथ्वी को ढक ले। फिर भी चमड़े की चादर ढीली रह गयी। अत: महादेव ने भिन्न प्रकार की कीलें ठोककर उसे मजबूत कर दिया। अब पृथ्वी स्थिर हो गयी। वह चादर ही (चमड़ा) आकाश है और महादेव जी द्वारा ठोकी गयी कीलें ही आकाश के तारे हैं।" इसी प्रकार मध्य प्रदेश की बंगा जाति का विश्वास है कि जब पृथ्वी बनी और स्थिर न रह सकी तो भगवान् ने भीमसेन को आज्ञा दी कि वह इसे स्थिर करे। भीम ने सोचा, पहले तंबाकू पी लूं तब इस काम में लगूं। उसके तंबाकू के धुएं से आकाश बन गया तथा तंबाकू की आग के प्रज्वलित कणों से आकाश के तारे बन गये। ये कथाएं लीजेंड ही रहतीं यदि इनका विनियोग साहित्य में प्रतीकार्थ के रूप में न किया गया होता।

मृत्यु के संबंध में प्राय: प्रत्येक साहित्य में कोई न कोई मिथकीय कथा उपलब्ध होती है। मृत्यु का देवता यमराज को माना जाता है। यमराज का एक कार्यालय है जिसमें चित्रगुप्त लिपिक के रूप में काम करता है। प्रत्येक प्राणी का लेखा-जोखा उसके पास लिपिबद्ध रहता है, तदनुसार ही वह मृत्यु करता है। उड़िया भाषा में मृत्यु के संबंध में एक मिथकीय कथा प्रचलित है जिसका उड़िया साहित्य में प्रयोग भी होता है। उत्कल के जुआंग समाज का विश्वास है कि एक बार आदमी की जीभ पर एक बाल उग आया। कुछ ही समय में वह बाल बारह हाथ लंबा हो गया। जीभ के बाल से बेचैन होकर उसने प्रभु से प्रार्थना की कि उसे इस बाल से मुक्ति मिले। प्रभु ने उस आदमी के प्राण वापस बुला लिये। उसी दिन से आदमी मरने लगा। यही आदमी की पहली मौत थी और इस प्रकार आदमी मृत्यु से परिचित हो गया।

लिपि के प्रवर्तन के संबंध में भी हमारे यहां अनेक दंत-कथाएं प्रचलित हैं। ब्राह्मी लिपि के विरोध में जरदस्त ने खरोष्ट्री लिपि को किस प्रकार प्रवर्तित किया, यह भी एक मिथकीय कथा पर आश्रित है। उपनिषदों में आख्यानपरक तथा प्रतीकात्मक मिथकों की भर-मार है। मुंडकोपनिषद् का प्रसिद्ध मंत्र प्रतीकार्थ की दृष्टि से अत्यंत समृद्ध है और अनेक

संदर्भों में उसका परवर्ती लेखकों ने उपयोग किया है :

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वादु अत्ति, अनश्ननन्यो अभिचाकशीति ॥

"दो पक्षी जो हमेशा एक साथ रहते और मित्र हैं, एक ही वृक्ष पर बैठे हैं, एक पक्षी उस वृक्ष के मीठे फल(पिप्पल)को स्वादपूर्वक खाता है और दूसरा केवल साक्षी रूप में बैठा है ।" इसमें दो पक्षी जीव और आत्मा के प्रतीक हैं । एक का फल खाने और दूसरे के चुपचाप साक्षी रूप में बैठने से उसके कार्य का संकेत कर दिया गया है । इस प्रतीक का शनैः-शनैः कथात्मक रूप में परिवर्तन हुआ । आधुनिक युग में अरविंद दर्शन में तथा छायावादी कवि पंत ने अपनी रचना लोकायतन में इसका प्रयोग किया है । वैदिक मंत्रों में मूलतः प्रतीक ही गृहीत थे, किंतु जब इनका विकास कथा के रूप में हुआ तो वे मिथक की कोटि में आ गये । यदि वैदिक माइथालोजी को पुराण के साथ मिलाकर देखा जाय तो इंद्र, वरुण, सविता, पूषा, उषा, आदि अनेक देवी-देवताओं की कथाएं हमें वैदिक साहित्य तथा पुराणों में उपलब्ध होंगी जिनका उपयोग आधुनिक साहित्य में प्रचुर मात्रा में हो रहा है । पौराणिक मिथक जब प्रतीक के रूप में प्रयुक्त होते हैं तब उनमें लाक्षणिकता का समावेश हो जाता है । हिंदी के स्वच्छंदतावादी काव्य में पौराणिक प्रतीक एक नयी उदात्त भूमिका लेकर प्रयुक्त हुए हैं । वस्तुतः ऐसे पौराणिक प्रतीक भाषा की पुनः सर्जना करने वाले आवश्यक काव्य उपादान बन गये हैं, छायावादी काव्य में जहां पौराणिक मिथक आये हैं वे अत्यंत व्यंजक और अप्रस्तुत विधान की दृष्टि से सार्थक एवं सटीक हैं ।

साहित्य को व्यापक परिप्रेक्ष्य में ग्रहण करते समय हम उसमें जगत् और जीवन का नाना समस्याओं का आलेख पाते हैं, तब साथ ही साथ हम ऐसा भी देखते हैं जो न तो यथार्थ इतिवृत्त या इतिहास है और न शुद्ध कल्पना ही । इतिहास और कल्पना से पृथक् साहित्य में कतिपय धारणाओं का, विश्वासों का, अंधविश्वासों का, पुराकथाओं का योग रहता है । साहित्य धारणाओं को कथा या मिथक आदि के माध्यम से अभिव्यक्ति प्रदान करता है । साहित्य केवल समसामयिक या अल्पकालीन समस्याओं का ही समाधान नहीं करता, वरन् दीर्घकालिक दृष्टि से और यदि संभव हो तो शाश्वत दृष्टि से भी समस्याओं को प्रस्तुत करता है । इस दीर्घकालिक प्रस्तुतीकरण में उसे पुराकथा (मिथक) का उपयोग करना होता है । धर्म, अध्यात्म, अनुष्ठान, विश्वास और परंपराओं द्वारा संपुष्ट मिथक-कथाएं साहित्य की जीवंत निधि बन जाती हैं । उन्हें समाज में सहज स्वीकृति मिल जाती है और उनके द्वारा लोक व्यवहार भी चलने लगता है ।

भाषा की उत्पत्ति के साथ ही उसकी सीमित शक्ति के कारण मिथक का जन्म हुआ होगा और वह साहित्य-सृजन का अभिन्न अंग बन गया । जब मानव अपने चारों ओर फैले जड़चेतन जगत् को देखता है तब वह सर्वव्यापी होकर सब कुछ नहीं देख पाता । परोक्ष की कल्पना करता है । मिथक के माध्यम से अनदेखे और अनचीन्हे जगत् में प्रवेश करता है । मिथक के प्रयोग का यह क्रम आदिम मनुष्य से लेकर आज तक बुद्धि विकास की प्रक्रिया के साथ चला आ रहा है और अनंत काल तक चलता रहेगा । मिथक की शक्ति-सामर्थ्य का पता इसी बात से चल जाता है कि यह निरक्षर व्यक्ति के पास जितनी आस्था-निष्ठा से रहता है उतनी ही आस्था-निष्ठा से यह बुद्धिमान् और विद्वान् व्यक्ति के साथ रहकर उसकी रचना-धर्मिता और सृजनशीलता को प्रभावित करता है ।

मिथक के बहुआयामी व्यापक स्वरूप को दृष्टि में रखते हुए हम नाना प्रकार की कथाओं में, कथाओं के पात्रों में, कथा के देश-काल में तथा चमत्कारी अलौकिक रूप विधान में इसका वर्चस्व देख सकते हैं। भारतीय साहित्य में मिथक या पुराकथा का इतना व्यापक विस्तार है कि उसे हम संख्यातीत भी कह सकते हैं। एक कथा या एक पात्र के साथ ऐसे अनेकानेक संदर्भ संश्लिष्ट हैं कि उनकी गणना करना और उनका उद्भव एवं विकास निरूपित कर पाना संभव नहीं है। यह एक अत्यंत कठिन कार्य है। वैदिक साहित्य से लेकर आधुनिक भारतीय भाषाओं के साहित्य तक मिथक का प्रपंच फैला हुआ है। उसका संधान और विवेचन असंभव नहीं तो दुरूह अवश्य है। इस संधान से साहित्य के अध्येता को गहनांधकार में प्रकाश की किरण मिल सकती है।

[२]

'भारतीय मिथक कोश' के निर्माण का कृच्छ्रसाध्य कार्य, किसी एक व्यक्ति द्वारा किया जाना निस्संदेह एक स्तुत्य प्रयास है। इस प्रकार के कठिन कार्य प्रायः संस्थाओं द्वारा ही संपन्न होते हैं। संस्था में शक्ति के कई स्रोत होने से कार्य को सुचारू रूप से चलाने में सुविधा रहती है। किंतु जब इस प्रकार का श्रमसाध्य कार्य एक व्यक्ति करता है तो उसे अनेक प्रकार की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। नाना प्रकार के ग्रंथों का चयन, उनका एकाकी रहकर अध्ययन, अपने सीमित साधनों से सामग्री संकलन आदि विविध बाधाएं मार्ग में आती हैं। समय भी अधिक लगता है। हर्ष का विषय है कि इन विषम परिस्थितियों में यह कार्य श्रीमती डॉ० उषा पुरी ने अपने साधनों से बीस वर्षों में पूरा किया है। यदि इस कार्य के मार्ग में आने वाली विघ्न-बाधाओं तथा श्रम-साधना का पूरी तरह आकलन किया जाय तो पाठक विस्मय-विमुग्ध हुए बिना नहीं रह सकता।

इस कथाकोश में डॉ० उषा पुरी ने ऋग्वेद की कथाओं को संकलित कर उनका क्रमिक विकास पूरे विस्तार के साथ लिखा है। एक कथा वेद में ही नहीं उपनिषद्, पुराण, महाभारत, रामायण, आदि में भी कुछ परिवर्तन के साथ यदि उपलब्ध है तो उसके पल्लवन का क्रम निर्देश इस कोश में किया गया है जो अभी तक कहीं सुलभ नहीं था। भारतीय कथाओं के रूपांतरण के बोध के लिए यह क्रमिक विकास शोध-प्रक्रिया पर केंद्रित है। भारतीय साहित्य में देवी-देवताओं का स्थान प्रतीकात्मक भी रहा है। प्रतीक विधा की दृष्टि से इन पर लेखिका ने गंभीरता से विचार किया है। भावात्मक प्रतीक और मिथक के बीच क्या संबंध रहा है और किस प्रकार एक कथा रूपांतरित होकर दूसरे क्षेत्र में पहुंचकर अपना अस्तित्व-घोष करती है, यह भी स्पष्ट किया गया है।

मिथकों का भारतीय दर्शन, मनोविज्ञान, कला, भक्ति, नृत्य, संगीत, मूर्तिकला, चित्रकला, वास्तुकला आदि में क्या स्थान रहा है, इसपर प्रसंगानुकूल विवेचन इस कोश में उपलब्ध होता है। इस विवेचन से कोश को गरिमा मिली है। पाठक को प्रकाश मिला है।

बौद्ध और जैन धर्म के ग्रंथों में जो मिथकीय प्रयोग मिलते हैं, उन्हें इस कोश में स्थान दिया गया है। इसके साथ ही इन धर्मों में स्वीकृत पारिभाषिक शब्दावली को भी विवेचन-विश्लेषण के लिए ग्रहण किया है। पाठक इन पारिभाषिक शब्दों से प्रायः अपरिचित होते हैं अतः गूढ़ार्थ तक पहुंचना उनके लिए कठिन होता है।

लेखिका ने बड़े परिश्रम से भारत के प्राचीन नगरों के मूल नाम तथा आधुनिक युग में प्रयुक्त नामों की तालिका देकर यह बताया है कि किस प्रकार नाम में परिवर्तन आया।

प्राचीन नगरों की तालिका बनाना भी एक श्रमसाध्य अनुसंधानपरक कार्य है, उनका मूल नाम खोजना तो और भी दुष्कर है ।

लेखिका ने एक वंश-वृक्ष तैयार किया है जो सर्वथा नवीन है । इस वंश-वृक्ष को तैयार करने में 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' सामग्री को आधार बनाया गया है । इस प्रकार का वंश-वृक्ष अद्यावधि किसी कोश में उपलब्ध नहीं था । एक स्थान पर संपूर्ण परंपरा का बोध इस वंश-वृक्ष से हो जाता है । यह वंश-वृक्ष अनुसंधान केंद्रित है ।

मिथक साहित्य में क्या-क्या आरक्षित है और उसका अनुसंधान किस पद्धति से किया जाय, यह इस कोश की अनुपम देन है । आधुनिक विज्ञान जिन नये क्षेत्रों में प्रवेश कर रहा है, उनमें से अनेक वैज्ञानिक आविष्कारों का संकेत मिथकों के माध्यम से हमें प्राचीन साहित्य में मिलता है । यंत्रचालित नौका, प्लास्टिक सर्जरी, अणु आयुधों का निर्माण आदि अनेक ऐसे विषय हैं जो मिथक कथाओं में अनुस्यूत हैं, लेखिका ने उनका विवरण देकर इस शोध के द्वारा आंख खोलने वाला काम कर दिया है।

मिथकों की प्रासंगिकता पर भी लेखिका ने विचार किया है । वस्तुतः मिथक अब उपेक्षा का विषय नहीं रह गये हैं । साहित्य-सृजन में उनकी उपयोगिता असंदिग्ध है । यदि आधुनिक युग की बदलती हुई मानसिकता के परिप्रेक्ष्य में हम मिथक-सृष्टि पर विचार करें तो पायेंगे कि इनका उपयोग आधुनिक बोध के साथ करना कुछ कठिन नहीं है । मिथक भले ही पुरातन हो किंतु रचनाकार उसका उपयोग अपनी प्रतिभा द्वारा नवीन संदर्भ में कर सकता है । उदाहरण के लिए हिंदी काव्य के मिथकीय प्रयोगों की भरमार देखी जा सकती है । कुंवर नारायण के 'आत्मजयी', धर्मवीर भारती के 'अंधायुग' और 'कनुप्रिया', दिनकर के 'उर्वशी' आदि काव्यों में मिथकों के नवीनतम प्रयोग देखे जा सकते हैं । अतः मिथकों की प्रासंगिकता को नकारा नहीं जा सकता । लेखिका ने इस विषय पर गंभीरतापूर्वक विचार व्यक्त किये हैं ।

संक्षेप में, 'भारतीय मिथक कोश' में डॉ० उषा पुरी ने कथा, आख्यान, उपाख्यान, देवी-देवता, राक्षस-पिशाच, यक्ष, गंधर्व, किन्नर, प्रागैतिहासिक संदर्भ, कथानकों के भीतर सन्निविष्ट अवांतर संदर्भ, कथानकों के प्रतीकार्थ, कथानकों का विनियोग, कथानकों के अभिप्राय, विशिष्ट व्यक्तियों के वंश-वृक्ष, मिथकों में अंतर्निहित वैज्ञानिक तत्त्व, दर्शन, मनोविज्ञान, विविध ललित कलाएं, भक्ति-तत्त्व, प्राचीन नगर और उनके विस्मृत अभिधान आदि विषयों को समेटा है । भारतीय कथा कोश होने से बौद्ध तथा जैन मिथकों को भी इस कोश में स्थान मिला है । वैदिक वाङ्मय से लेकर आधुनिक भारतीय साहित्य की समग्र परंपरा पर लेखिका का ध्यान रहा है । मेरी जानकारी में ऐसा कोई मिथक कथा कोश अद्यावधि किसी भारतीय भाषा में प्रकाशित नहीं हुआ । पौराणिक कथा कोश तथा व्यक्ति कोश की अपेक्षा इस मिथक कोश में सामग्री का चयन बहुत व्यापक आयाम में किया गया है । इस कोश का परिवेश और विस्तार सर्वथा नवीन है और सामग्री की प्रामाणिकता की दृष्टि से भी यह कोश उपयोगी है ।

मैं इस योजना को एक विराट् सारस्वत अनुष्ठान मानता हूं । इस प्रकार का शुद्ध साहित्यिक कार्य यदि एक व्यक्ति द्वारा संपन्न किया जाता है तो उसका महत्त्व और अधिक हो जाता है। यह एक साधना है जिसका लाभ केवल साधक तक ही सीमित नहीं रहता वरन् असंख्य जिज्ञासु पाठकों, अनुसंधाताओं, साहित्य-प्रेमियों और सांस्कृतिक अवदान में रुचि रखने वालों को प्राप्त होता है । डॉ० (श्रीमती) उषा पुरी को इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए

समस्त हिंदी-जगत् को साधुवाद देना चाहिए। मुझे विश्वास है कि भारतीय धर्म, दर्शन, कला, भक्ति, साहित्य, संस्कृति, इतिहास और विज्ञान में रुचि रखने वाले साहित्यानुरागियों के लिए यह मिथक कथाकोश वरदान सिद्ध होगा। यदि अन्य भारतीय भाषाओं में इसका अनुवाद प्रकाशित किया जाय तो यह भारतीय साहित्यसंपदा सबके लिए सुलभ हो सकेगी।

मैं आशा करता हूं कि डॉ० उषा पुरी इस प्रकार से गंभीर अनुसंधानपरक कार्यों में संलग्न रहकर अपनी साहित्य-साधना को उत्तरोत्तर प्रशस्त करेंगी और हिंदी भाषा और साहित्य को समृद्ध बनाने में योग देंगी।

दिल्ली

—(डॉ०) **विजयेन्द्र स्नातक**
पूर्व-आचार्य एवं अध्यक्ष हिंदी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय

आशीर्वचन

मैंने डॉ० उषा पुरी के भारतीय मिथक कोश की पांडुलिपि पर सरसरी निगाह डाली। मिथक के बारे में एक भ्रांत धारणा फैली हुई है, यह कुछ मिथ्या से संबंध रखता है अर्थात् इसमें वास्तविकता या यथार्थ का अंकन न होकर किसी काल्पनिक या अवास्तविक सत्ता या और ठीक-ठीक कहें, सत्ताभास का मायाजाल खड़ा किया जाता है, जबकि ठीक इसके विपरीत देश और काल के चौखटे से बाहर ले जाकर किसी भी वास्तविकता की सनातन और कालप्रवाही डिजाइन (आकल्पना) प्रस्तुत करना ही मिथक का मुख्य उद्देश्य होता है। जिस जाति की स्मृति जितनी ही पुरानी होती है और जितनी ही वह सीमित दायित्व से मुक्त होने के कारण सनातन होती है ; दूसरे शब्दों में इतिहासबद्ध नहीं होती, उन्हीं के पास सबसे समृद्ध मिथकों का संसार होता है। यह अवश्य है कि आदिम मनुष्य के विकास और परस्पर संप्रेषण के विकास के साथ ही साथ मिथकों का विकास हुआ और आदिम जातियां भी मिथकों का बहुरूपी संसार रचती हैं और उन्हें धरोहर के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी सौंपती जाती हैं, परंतु आदिम मिथकीय संसार से भारतीय जैसी सनातन जीवन जीने वाली महाजाति के मिथकीय संसार में एक महत्त्वपूर्ण गुणात्मक अंतर यह है कि आदिम संसार में इतिहास बोध होता ही नहीं। इसलिए मिथक का इतिहास से कोई संघात ही नहीं होता और उस संघात से उत्पन्न होने वाली गतिशीलता भी नहीं होती जबकि भारतीय सरीखी महाजाति का मिथक संसार निरंतर इतिहास बोध से टकराकर गतिशील प्रक्रिया के भीतर गुजरता रहा है, बार-बार मिथक नये सिरे से सकल होता रहा है। पुराणों की भाषा में कहें तो मिथक सृष्टि प्रतिदिन उदित होने वाली उषा की तरह पुराणी युवती नवजन्म लेती है...'नवं नवं जायमाना' होकर, व्यतीत उषाओं की शृंखला में जुड़ती हुई नूतन होती है।

दुर्भाग्य की बात है कि उन्नीसवीं शताब्दी के तथाकथित पुनर्जागरण का एक निषेधात्मक पक्ष भी रहा, वह यह कि उसने हमारी सनातन दृष्टि को पश्चिम की आरोपित ऐतिहासिकता से रंजित कर दिया और मिथकों के रत्न-कोश से हमें वंचित कर दिया, हम पुराणों को गप्प मानने लगे, उसी के साथ ही हमारी पुराण रचना करने वाली सर्जनात्मक प्रतिभा भी कुंठित होने लगी। धीरे-धीरे हम अपनी पुराण संपत्ति के प्रति पश्चिम से अधिक उदासीन हो गये। पश्चिम के कवि कलाकार ने ईसाई मजहब के भीतर रहते हुए ग्रीक

और लातीनी मिथकों के संसार से अपने-आपको अलग नहीं किया, ठीक इसके विपरीत इन मिथकों के चौखटे में जीवन के शाश्वत सत्यों का पुनः संस्थापन किया और हम हैं कि अपनी सूरत ही बिगाड़ बैठे। हमने अपनी मानसिकता का धरातल ही खो दिया और शून्य में तिनके की तरह यहां से वहां उड़ाये जाने लगे और इस दयनीय स्थिति को प्राप्त हो गये कि शिक्षित व्यक्ति आत्मविस्मृति परायण और अस्मिता से वंचित हो गया, जबकि शुद्ध वाचिक परंपरा में अचेत रूप से जीने वाला अनपढ़ व्यक्ति कहीं न कहीं महाजातीय स्मृति से जुड़ा रहा। उसका व्यक्तित्व अखंडित रहा, उसकी अस्मिता निराकार नहीं साकार रही।

इधर पुरातत्त्व में, नृतत्त्व मनोविज्ञान में फैशन के रूप में ही सही, मिथक की चर्चा चल पड़ी है और उससे प्रेरित होकर साहित्य आलोचना में भी पश्चिम के विचारकों की कृपा से बड़े जोर-शोर से सेमीनार, वाग्विलास का केंद्र बन गया है परंतु अपने मिथकों की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त करने के लिए कोई उत्तम संदर्भ कोश आज भी हमारे पास नहीं है, जो पुस्तकें हैं भी वे अंग्रेजी में हैं और उनमें से बहुत ही कम हैं (एनी बिसेण्ट और कुमार स्वामी की पुस्तक तथा हाइनरिखत्सिवर की पुस्तक अपवाद हैं) जो मिथक की विकास-यात्रा पर प्रकाश डालती हैं और मिथक को सर्जनात्मक प्रक्रिया से ठीक तरह से जोड़ती हैं।

आयुष्मती उषा ने हिंदी में भारतीय मिथक कोश लिखकर एक बहुत बड़ी कमी की पूर्ति की है। उन्होंने मुख्य संदर्भ ग्रंथों से मिथकीय आख्यानों का आनुपूर्वी सारांश तो दिया ही है, संदर्भ भी दे दिया है जिससे मूल तक जांचने में सुविधा हो। प्रयत्न उन्होंने यह किया है कि ऐतिहासिक क्रम से संदर्भ दिये जायें जिससे मिथक में विकास के सोपान भी कुछ-कुछ स्पष्ट हो सकें, उदाहरण के लिए अंगिरा संबद्ध मिथकों का संकलन करते हुए पहले अंगिरा शब्द का निर्वचन दिया गया है, इसके बाद ऋग्वेद से ब्राह्मण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत होते हुए मिथकों का संक्षेप क्रम से दिया गया है। इससे अपने-आप एक अपेक्षाकृत अधिक अमूर्त और प्रतीकात्मक मिथक के मूर्त और व्याख्यात्मक रूपांतर की प्रक्रिया पर प्रकाश पड़ता है।

यह संदर्भ ग्रंथ मिथक अध्ययन का प्रारंभ है। अभी इस क्षेत्र में और अधिक गहन अनुशीलन की अपेक्षा है, वह अनुशीलन अंतर्विधापरक दृष्टि के बिना संभव नहीं है। खुले दिमाग से जब तक साहित्य, कला, लोकवार्ता, मनोविज्ञान, भाषाविज्ञान आदि विभिन्न शास्त्रों की अलग-अलग दृष्टियों से मिथक की परीक्षा करके अंत में एक सकल दृष्टि नहीं सधती तब तक मिथक का संसार हमारे लिए अनुन्मीलित ही रहेगा। मैं उषा को महत्त्वपूर्ण संदर्भ ग्रंथ के लिए बधाई देता हूं।

गंगा दशहरा, २०४२ संवत्

—विद्यानिवास मिश्र

प्राक्कथन

भारतीय साहित्य के प्रमुख उपजीव्य आख्यानात्मक ग्रंथ एवं उनमें प्रयुक्त आख्यान जिन पुराकथाओं, आद्यबिंबों तथा अति-प्राकृतिक तत्त्वों से परिपूर्ण हैं, वे पाठक के मन में गहरी जिज्ञासा उत्पन्न करने वाले हैं। इस प्रकार की विचित्र पुराकथाएं, आद्यबिंबों से पुष्ट होकर, पाश्चात्य देशों के साहित्य में भी प्रचुर मात्रा में पायी जाती हैं किंतु उनके स्वरूप में कुछ अंतर है। अतिप्राकृत तत्त्वों के वर्णन में समानता होने पर भी देशीय वातावरण के अनुसार देवी-देवता और राक्षस अपनी शक्ति-सामर्थ्य में कुछ भिन्न प्रतीत होते हैं। इस प्रकार के विलक्षण वर्णनों को पढ़कर पाठक के मन में जिज्ञासा के साथ इनके स्वरूप विश्लेषण की उत्सुकता जागती है और इनके उद्भव और विकास की परंपरा का रहस्य जानने की बलवती इच्छा पैदा होती है। आज से लगभग बीस वर्ष पहले साहित्यानुशीलन के समय जब मेरा संपर्क इस प्रकार के मिथकीय आख्यानों से हुआ तो उसके मूल उत्स तक पहुंचने की उत्कंठा अत्यंत तीव्र हो गयी। यह जिज्ञासा और उत्कंठा ही इस मिथक कोश के प्रणयन की मूल प्रेरणा है। मैंने साहित्य की विविध विधाओं में प्रयुक्त एक ही मिथक, आख्यान या पुराकथा को परिवर्तित रूप में देखा तो मन सप्रश्न हो उठा कि यह वैविध्य और वैचित्र्य क्यों है?

वैदिक वाङ्मय, बौद्ध-जैन साहित्य, रामायण-महाभारत, पुराण, अभिजात संस्कृत साहित्य, प्राकृत एवं अपभ्रंश साहित्य तथा आधुनिक हिंदी साहित्य तक मिथकों की अजस्र परंपरा है। इन मिथकों में केवल कथा या कल्पित आख्यान ही नहीं वरन् ज्ञान-विज्ञान के विविध विषयों का सांकेतिक निवेश है जिसे पढ़कर मन विस्मय-विमुग्ध होता है। इन मिथकों के अंतर्ग्रथित भारतीय सांस्कृतिक परंपरा का जो रूप सुरक्षित है उसका अनुसंधान अद्यावधि नहीं हुआ है। यदि सभी प्रकार के ग्रंथों का अनुशीलन कर एक मिथक कथाकोश तैयार किया जाय तो हमारी साहित्य-संपदा की बहुत बड़ी प्रच्छन्न निधि हमारे हाथ आ सकती है। निश्चय ही यह एक कठिन कार्य है, किंतु मेरे मन में इस अमूल्य निधि को प्रकाश में लाने की लालसा विगत बीस वर्षों से सक्रिय रही है और उसका परिणाम ही यह मिथक कोश का निर्माण है।

मिथक-संकलन के लिए आधार ग्रंथों के चयन की समस्या का समाधान मैंने अपने साधन, ज्ञान, उपयोगिता और आकार के आधार पर किया है। मैं अपने निर्णय से स्वयं

पूर्ण संतुष्ट नहीं हूं किंतु कोश का कलेवर भी मेरे ध्यान में सतत बना रहा है। वैदिक वाङ्मय (वेद, ब्राह्मण, उपनिषद्), रामायण, महाभारत, आठ पुराण, बौद्ध तथा जैन धर्म से संबद्ध प्रमुख तीन ग्रंथों से इस कोश में मिथकों का चयन किया गया है। अष्टादश पुराण तथा जातक कथा सदृश ग्रंथों से यदि सभी प्रकार के मिथकों को संकलित किया जाता तो कोश का कलेवर तथा पुनरावृत्ति का भय रहता, अतः ग्रहण और त्याग को आकार की सुविधा तथा पुनरावृत्ति-निरसन का आधार बनाया गया है।

मिथकों के चयन में हिंदी-साहित्य का संदर्भ भी मेरे सामने रहा है। ऐसे मिथक जिनका उल्लेख हिंदी साहित्य में हुआ है उनको ग्रहण किया जाय तथा जो अप्रसिद्ध या अप्रयुक्त हैं उन्हें छोड़ दिया जाय। बौद्ध-जैन साहित्य तथा परवर्ती प्राकृत और अपभ्रंश साहित्य में उपलब्ध मिथकों के ग्रहण और त्याग में भी यही नीति बरती गयी है।

'मिथक कोश' निर्माण करते समय मेरे सामने कई प्रकार की कठिनाइयां आयीं जिनका निराकरण जिन श्रद्धेय विद्वानों ने किया, उनमें सर्वप्रथम मैं आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का स्मरण करती हूं। आचार्य जी ने मेरी योजना को देखा-परखा और जिन शब्दों में मुझे कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया उसे मैं शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकती। जब मैंने इस योजना पर कार्य करना शुरू किया तब कुछ विद्वानों ने इसे महत्त्वाकांक्षी योजना बताकर मुझे हतोत्साहित करना चाहा किंतु उनका उपहास मेरे लिए चुनौती बन गया और मैंने संकल्प किया कि शक्ति, साधन और समय की चिंता किये बिना इस कार्य को मैं अवश्य पूरा करूंगी।

मेरे इस दृढ़ संकल्प के पीछे दूसरी प्रेरणा स्वर्गीय श्री इंद्र विद्यावाचस्पति की पुण्य स्मृति रही है। वे मुझे सदा गंभीर, कठिन और उच्चस्तरीय उपयोगी काम करने का प्रोत्साहन देते रहते थे। उनकी पुण्यस्मृति में मैं यह प्रयास उनको श्रद्धासहित समर्पित करके संतोष का अनुभव कर रही हूं। माननीय श्री प्रभाकर नारायण कवठेकर का परामर्श भी मुझे सदैव स्मरणीय रहेगा। दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग के भूतपूर्व आचार्य एवं अध्यक्ष प्रो० विजयेन्द्र स्नातक ने इस कोश की विस्तृत भूमिका लिखकर अपना वात्सल्यपूर्ण आशीर्वाद दिया है। उनके प्रति शाब्दिक धन्यवाद मात्र से कृतज्ञता-ज्ञापन मुझे उचित प्रतीत नहीं होता। पं० विद्यानिवास मिश्र का आशीर्वचन प्राप्त कर पाना मेरे लिये परम संतोष का विषय है---किन शब्दों में धन्यवाद दूं, नहीं जानती।

वैदिक एवं संस्कृत ग्रंथों के मिथकीय संदर्भों को समझने में मुझे पंडित धर्मदेव जी विद्यामार्तण्ड तथा श्री पं० भगवद्दत्त जी वेदालंकार से विशेष सहायता मिली। उपनिषद् तथा दर्शन ग्रंथों की गूढ़ार्थपरक व्याख्या समझ पाने का समस्त श्रेय गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी के भूतपूर्व दर्शन विभागाध्यक्ष स्वर्गीय श्री सुखदेव जी दर्शनवाचस्पति को है। अनेक दुर्लभ एवं प्रामाणिक ग्रंथों की उपलब्धि के लिए मैं श्री जयदयाल डालमिया जी की आभारी हूं। यदि उनसे ये प्रामाणिक ग्रंथ सुलभ न होते तो संभवतः यह कार्य पूरा न हो पाता।

मुझे इस कार्य के निमित्त दिल्ली और दिल्ली से बाहर के दर्जनों पुस्तकालयों में अनेक बार जाना पड़ा है। सभी पुस्तकालयों के पुस्तकालयाध्यक्षों ने मुझे पूरा-पूरा सहयोग दिया है। दिल्ली विश्वविद्यालय संदर्भ लाइब्रेरी, गुरुकुल कांगड़ी पुस्तकालय, राष्ट्रीय अभिलेखागार पुस्तकालय, नागरी प्रचारिणी सभा पुस्तकालय, काशी; दौलतराम कालेज पुस्तकालय, दिल्ली; मारवाड़ी पुस्तकालय, दिल्ली; रघ्घूमल लोहिया पुस्तकालय, वीर सेवा मंदिर जैन पुस्तकालय, दरियागंज, दिल्ली आदि का इस संदर्भ में नामोल्लेख करना मैं अपना

कर्त्तव्य समझती हूं। दिल्ली विश्वविद्यालय संदर्भ लाइब्रेरी के श्री उमेश नारायण माथुर तथा श्री जंगबहादुर खन्ना की सहायता के बिना संदर्भ सूची बना पाना मेरे लिए संभव नहीं था। मैं इन दोनों महानुभावों के प्रति अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती हूं।

इस परिश्रमसाध्य कार्य के संपन्न होने पर मुझे अपने उन अनेक मित्रों तथा सहयोगियों का ध्यान आ रहा है जिन्होंने समय-समय पर अपने सत्परामर्शों एवं कार्यों से मुझे सहयोग प्रदान किया। श्रीमती प्रमिला मलिक और डॉ० मंजु किशोर ने कोश की टंकित प्रति को पढ़कर टंकण की त्रुटियों के परिशोधन में अमित योग दिया है जो मुझे सदैव स्मरण रहेगा। अपने परिजनों, बच्चों तथा श्री पुरी से तो मैं हर समय, हर कठिनाई में साधिकार सहायता लेती रही। मैं उनके प्रति किन शब्दों में धन्यवाद या आभार व्यक्त करूं!

भारतीय मिथक कोश का प्रकाशन भारत सरकार के शिक्षा एवं संस्कृति मंत्रालय द्वारा प्रदत्त आर्थिक अनुदान से संभव हो सका है। यदि मंत्रालय आर्थिक सहायता न करता तो इसके मुद्रण और प्रकाशन की व्यवस्था कर पाना मेरे लिए संभव न हो पाता। मैं मंत्रालय के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करना अपना कर्त्तव्य समझती हूं। नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली के संचालक श्री कन्हैयालाल मलिक ने इसके मुद्रण की सुव्यवस्था कर मुझे चितामुक्त कर दिया। उनकी संस्था द्वारा यह कोश प्रकाशित हो रहा है, यह मेरे लिए संतोष का विषय है।

—उषापुरी विद्यावाचस्पति

मिथक साहित्य : विकास और परंपरा

हिंदी में 'मिथक' शब्द का प्रयोग आधुनिक काल में आरंभ हुआ । यह शब्द स्व० आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी की देन है । संस्कृत के 'मिथ' शब्द के साथ कर्तावाचक 'क' प्रत्यय जुड़ने से इसका निर्माण हुआ है । संस्कृत में 'मिथ' शब्द का अभिप्राय प्रत्यक्ष ज्ञान के लिए भी होता है तथा दो तत्त्वों के परस्पर सम्मिलन के लिए भी । मिथक के संदर्भ में दोनों ही अर्थ जुड़े हुए प्रतीत होते हैं । वह लौकिक तथा अलौकिक तत्त्वों का सम्मिश्रण है । लौकिक तत्त्व प्रत्यक्ष अनुभूति है तो अलौकिक अध्यात्म-तत्त्व । दोनों का मिश्रण मिथक के रूप में द्रष्टव्य है। कुछ मनीषियों ने माना है कि आचार्य द्विवेदी ने इसका निर्माण अंग्रेजी के 'मिथ' के आधार पर किया है । 'क' प्रत्यय जोड़कर उन्होंने इसे हिंदी का शब्द बना दिया है । यह सत्य है कि आचार्य द्विवेदी ने ऐसे अनेक शब्द हिंदी को प्रदान किये जो मूलतः अंग्रेजी के शब्द थे । आचार्य द्विवेदी ने उन्हें हिंदी भाषा की वृत्ति के अनुरूप ढाल दिया था । 'मिथक' भी इसी कोटि का शब्द है, यह कहना उचित नहीं जान पड़ता, क्योंकि अंग्रेजी के 'मिथ' से संस्कृत के 'मिथ' में अर्थगत अंतर है । अंग्रेजी में 'मिथ' कोरी कल्पना पर आधारित माना जाता है जबकि मिथक का अभिप्राय अलौकिकता का पुट लिये हुए लोकानुभूति बताने वाली कथा से है । यह संस्कृत के मिथ (प्रत्यक्ष ज्ञान, दो तत्त्वों के सम्मिश्रण) के अधिक निकट है । अलौकिकता का सम्मिश्रण ही उसे लैला-मजनू, शीरी-फरहाद आदि लोक-कथाओं से भिन्न स्वरूप प्रदान करता है । इसे पुराकथा, पुराणकथा, देवकथा, आदि कहना उसकी अलौकिकता की ओर संकेत करता है । प्रत्येक देश की संस्कृति उसके मिथक साहित्य में सुरक्षित रहती है । मिथक विषयक आचार्य द्विवेदी का मंतव्य भी संस्कृत 'मिथ' का निकटवर्ती है । उन्होंने इसकी व्याख्या करते हुए कहा :

> 'रूपगत सुंदरता को माधुर्य (मिठास) और लावण्य (नमकीन) कहना बिलकुल झूठ है, क्योंकि रूप न तो मीठा होता है न नमकीन, लेकिन फिर भी कहना पड़ता है, क्योंकि अंतर्जगत् के भावों को बहिर्जगत् की भाषा में व्यक्त करने का यही एक-मात्र उपाय है । सच पूछिये तो यही मिथक तत्त्व है ।···मिथक तत्त्व वास्तव में भाषा का पूरक है । सारी भाषा इसके बल पर खड़ी है । आदि मानव के चित्त में संचित अनेक अनुभूतियां मिथक के रूप में प्रकट होने के लिए व्याकुल रहती हैं ।···मिथक वस्तुतः उस सामूहिक मानव की भाव-निर्मात्री शक्ति की अभिव्यक्ति है जिसे कुछ

मनोविज्ञानी 'आर्किटाइपल इमेज' (आद्यबिंब) कहकर संतोष कर लेते हैं।'
—हजारीप्रसाद द्विवेदी ग्रंथमाला, खंड ७, पृ० सं० ८५

अधुनातन खोजों के आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि मिथक साहित्य कपोलकल्पित नहीं है। इतिहास के कणों से रंगता-पुतता, वह रूप बदलता रहा है। सामयिक प्रभाव उसे विभिन्न युगों की सामाजिक, वैज्ञानिक, ऐतिहासिक, आयुर्वेदिक, दार्शनिक आदि अनेक संपदाओं से आपूरित करता रहा है। इस परिवर्तनशीलता के आवरण नित्य बदलते हुए भी भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्त्व उसमें आरक्षित हैं। मिथक का लौकिक अंश इतिहासानुशासित होने पर भी अलौकिक पक्ष यथावत् बना रहा है। इसी कारण से भारतीय संस्कृति की मूलभूत चेतना निरंतर पल्लवित होती रही है।

आश्चर्य की बात तो यह है कि भारतीय मिथक साहित्य पर सर्वप्रथम विदेशी विद्वानों ने ही कार्य किया। अभी तक भी हिंदी साहित्यालोचन में मिथकीय विभूति पर प्रकाश डालने का विशेष कार्य नहीं हुआ है। इसी कारण से तत्संबंधित विवेचन का मूलाधार पाश्चात्य विद्वानों की अवधारणाएं हैं। भारतीय संस्कृति में गहरी पैठ न होते हुए भी उनका कार्य सराहनीय है।

एक दशक की खोज के उपरांत लंदन यूनिवर्सिटी के डॉ० पामेल एल० राबिन तथा कलकत्ता के Indian Statistical Institute के Geological Studies Unit की खोज के अनुसार यूरोप, अमेरिका और अफ्रीका में पाये गये जीवाश्मों की समानता इस तथ्य को सिद्ध करती है कि आज से सात करोड़ वर्ष पूर्व ये सब महाद्वीप जुड़े हुए थे। जिन मिथक घटनाओं को कपोलकल्पित कहा जाता रहा है--वे करोड़ों वर्ष पूर्व कुछ लोगों ने एकसाथ झेली होंगी। उदाहरण के लिए प्रलय, प्रलय के बाद पुनः सृष्टि-रचना आदि, जिनका अंकन प्रायः समस्त देशों के साहित्य में लगभग एक ही प्रकार से किया गया है। धीरे-धीरे महाद्वीपों की भौगोलिक विलगता के साथ-साथ उनकी प्राकृतिक परिस्थितियों से समझौता करते हुए, सभ्यता, संस्कृति, रहन-सहन आदि सभी कुछ अलग होता गया और मिथकों का स्वरूप भी परस्पर बदलता गया।

पार्जिटर के अनुसंधान के अनंतर यह स्वीकार कर लिया गया है कि वेदों और पुराणों में इतिहास के अनेक अंश विद्यमान हैं। जिस प्रकार होमर के इलियट और ओडीसी को तब तक कपोलकल्पित माना जाता रहा था, जब तक ट्राय के उत्खनन ने उसकी प्रामाणिकता सिद्ध नहीं कर दी थी। ठीक उसी प्रकार वेद, उपनिषद, रामायण, महाभारत, पुराण आदि समस्त ग्रंथों के मिथकों को तीन दशक पूर्व तक काल्पनिक माना जाता रहा, जब तक १९५६ में हस्तिनापुर की खुदायी में निकले पांडवों के पांचवें वंशज 'निचक्षु' के युग के खंडहर नहीं मिल गये। खंडहरों ने पुराणों में अंकित, हस्तिनापुर पर टिड्डियों के आक्रमण तथा गंगा की बाढ़ को सिद्ध कर दिखाया, (भारतीय पुरा इतिहास कोश, पृ० सं० १-७-अरुण)। अधुनातन ऐतिहासिक खोजों के आधार पर महाभारत का युद्ध राजा नंद से १०१५ अथवा १०५० वर्ष पूर्व हुआ था। आर्यभट्ट ने भी ज्योतिष परंपरा के अनुसार ३१०२ वर्ष ईसा पूर्व कलियुग का आरंभ माना है। महाभारतकाल के साथ द्वापर युग की समाप्ति सर्वस्वीकृत है। (भा० पु० इ० कोश, पृ० सं० ६-अरुण)। पश्चिम के अनेक विद्वानों का मत रहा है कि भारतीय विद्वान इतिहास लिखना नहीं जानते थे, किंतु ह्वेनसांग के अनुसार भारत के हर राजा के साथ कोई न कोई सूत रहता था जो उसकी वंश-परंपरा आदि सूत्रों को

कंठस्थ किये रहता था। प्रस्तुत तथ्य को नकारा नहीं जा सकता। कंठस्थ करना भारत की चिरंतन परंपरा है। लिपि की खोज से पूर्व भारत में जो कुछ हुआ, वह श्रुति परंपरा से ही जीवित रहा। प्रलय से पूर्व जो मान्यताएं, सांस्कृतिक तथ्य अथवा घटनाएं घटीं, सब श्रुति नाम से अभिहित हुई क्योंकि लिपि के अभाव में समस्त तथ्य कह-सुनकर ही परंपरागत प्रवाहमान रहे। यह सर्वस्वीकृत है कि 'श्रुति' अर्थात् वेद विश्व के सबसे प्राचीन ग्रंथ हैं। उनका प्रादुर्भाव संभवतः तभी हुआ होगा जब संसार के समस्त महाद्वीप जुड़े हुए थे। संभवतः इसी कारण से वेदों में अंकित तथ्य सार्वभौमिक हैं। इन ग्रंथों में प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों का नियमन करने वाले सूर्य, चंद्र, मरुत, इंद्र इत्यादि विभिन्न देवता अथवा ऋषि हैं। उन्हीं के क्रियाकलापों की प्रतीकात्मकता तत्कालीन मिथकों के रूप में द्रष्टव्य है। उत्तरोत्तर कथाओं का स्वरूप बदलता चला गया।

भारतीय मिथक परंपरा का श्रीगणेश ऋग्वेद से हुआ। वेदों की प्राचीनता सार्वभौमिक है। वेदों का रचनाकाल विवादग्रस्त है। मैक्समूलर तथा मैकडानल के अनुसार वेदों की रचना ईसा पूर्व १४०० में हुई थी। जेकोबी के अनुसार ई० पू० ४५०० के लगभग ऋग्वेद की रचना हुई तो लोकमान्य तिलक का मत है कि ईसा से ७००० वर्ष पूर्व उसका रचनाकाल था। डॉ० अविनाश चंद्र दास ने तो ऋग्वेद का आविर्भाव ईसा पूर्व २५,००० से ५०,००० वर्ष के मध्य निर्धारित किया है। अधिकांश विद्वानों ने रचनाकाल ई० पू० ३००० से २००० के मध्य माना है। वेदों से लेकर उपनिषद, रामायण, महाभारत, पुराण, बौद्ध तथा जैन धर्म तक के साहित्य में भारत के मूलभूत मिथक विद्यमान हैं।

इतिहास, भूगोल, राजनीति आदि लौकिक संदर्भों के साथ-साथ मिथक साहित्य में अलौकिक आख्यानों का सतत-समन्वय दर्शनीय है। इन दोनों का मिलनस्थल भूमिस्थ देवालय है। देवालयों के प्रांगण में मानव मात्र कुछ क्षण के लिए भौतिकता को भुलाकर अलौकिक सत्ता की ओर उन्मुख होता है। आदि देवत्रय में से ब्रह्मा अपनी पुत्री सरस्वती के प्रति कुदृष्टि रखने के कारण मंदिरों में स्थापित होने योग्य देवता नहीं रह पाये। अतः अधिकतर मंदिरों में विष्णु, महेश तथा शक्ति के किसी न किसी रूप की स्थापना की गयी है। वाल्मीकि रामायण के प्रभाव से भारत में हनुमान के भी अनेक मंदिर मिलते हैं। पुरा ग्रंथों में वर्णित मंदिर भारत की वर्तमान राजनीतिक सीमा से बाहर बहुत दूर-दूर तक फैले हुए हैं। उन सब देवालयों का सजीव चित्रण मिथक साहित्य की ठोस ऐतिहासिक नींव का तथा पुरा लेखकों की सराहनीय पर्यटनशीलता का परिचय देते हैं। जो मंदिर जितना बड़ा सिद्धपीठ बताया गया है, उस तक पहुंचना, प्राकृतिक दृष्टि से उतना ही कठिन है। संभवतः कठिन मार्ग से मंदिर तक पहुंचने की एकाग्र चित्तवृत्ति ही आत्मा-परमात्मा को निकट लाने में सहायक हो जाती है। मंदिरों के माध्यम से सगुण भक्ति के विभिन्न रूप बिंबित होते हैं। निर्गुण भक्ति उससे भी अधिक सूक्ष्म है। आत्मा-परमात्मा के परस्पर संबंध, अद्वैतवाद, द्वैतवाद आदि पर प्रकाश डालता हुआ मिथक साहित्य मनुष्य को मृत्यु के भय से दूर रहकर कार्य करने का आदेश देता है। नचिकेता के माध्यम से जीवन-मृत्यु विषयक जिज्ञासा को शांत करने में समर्थ यह क्षणिक भौतिकता को तिलांजलि देकर नैतिकता का आवाहन करने की प्रेरणा देता है। कर्मफल और भाग्यवादिता का सिद्धांत मानवमात्र को निर्भीकतापूर्वक सुकर्म में लगे रहने का उपदेश देता है, निष्क्रियता का नहीं। जो कर्मफल भाग्य लिपिबद्ध है, वह तो होगा ही···फिर भय के कारण गलत मार्ग की ओर बढ़ने से क्या लाभ ?

वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था भी मनुष्य मात्र को जीवन के प्रत्येक चरण में कार्यरत रहने का पाठ पढ़ाती है तथा अंतिम चरण में परमात्मा की ओर उन्मुख करने का एक साधन है। अष्टांग मार्ग, वैराग्य, जनसेवा आदि उसी की विभिन्न दिशाएं हैं। आश्चर्य तो तब होता है जब प्रत्येक देवी देवता जिस विशेष भाव से जुड़े हैं, उसी के अनुरूप उनकी वेश-भूषा यहां तक कि वाहन की भी प्रतीकात्मकता दिखायी पड़ती है। सरस्वती का वाहन नीर-क्षीर विवेकी हंस है तो लक्ष्मी का वाहन उल्लू। औपचारिकता से दूर रहने वाले कल्याण-कारी शिव नंदी से ही काम चला लेते हैं, तो मां काली के प्रचंड व्यक्तित्व को संभालने के लिए शेर की आवश्यकता जान पड़ती है। आख्यानों की प्रतीकात्मकता भी ध्यान देने योग्य है। समुद्रमंथन की प्रचलित कथा में समुद्र, मानस अर्थात् हृदय वाचक शब्द का प्रतीक है। उसकी अच्छी-बुरी प्रवृत्तियों का संघर्ष देवासुर संग्राम के रूप में अभिव्यक्त है। इसी प्रकार शिव का तृतीय नेत्र से कामदेव को भस्म कर देना वास्तव में कल्याणकारी भावना के अव-रोधक 'काम' भाव को नष्ट कर देना ही है। नृत्य, संगीत, चित्रकला के मूल भी मिथकों में ही समाहित हैं। आदि देवता शिव ध्वंस करने के लिए तांडव नृत्य करते हैं तो उन्हें शांत करना केवल पार्वती ही जान पायीं। उनकी लास्य नृत्य की मुद्राएं ही शिव के क्रोध का शमन कर पाती हैं। मिथक साहित्य समस्त ललित कलाओं का उद्‌गमस्थल तो है ही किंतु आज तक भी कोई कला उसके प्रभाव से वंचित नहीं है। रामलीला, नौटंकी, रंगमंच से लेकर वर्तमान चित्रपट तक, सभी कुछ मिथकों से प्रभावित दिखलायी पड़ता है।

लिपि से पूर्व 'श्रुति' और 'वाणी' की परंपरा ने ही तो वेदों को सुरक्षित रखा। वाणी में गति या लय थी। ऋग्वेद की ऋचाएं उन्हीं लयात्मक स्वरों में गूंजती रहीं। लय की जरा-सी गलती से वैदिक ऋचा और मंत्रों के अर्थ के अनर्थ संभव हैं। काकुवक्रोक्ति अर्थ का मेरु-दंड है।

वैदिकयुगीन मिथकों में समस्त प्राकृतिक तत्त्व चेतन और दिव्य रूप में प्रकट हुए थे। वे ईश्वरीय शक्ति के प्रतीक थे। परवर्ती ग्रंथों में उनका स्वरूपाख्यान मानवों के रूप में होने लगा। वैदिक साहित्य में भी कुछ प्रक्षिप्त अंश बाद में जोड़े गये। रामायण का उत्तर-कांड भी ऐसे विवाद का विषय है। महाभारत तो मूलत: 'जय' फिर 'भारत' और अंत में महाभारत बना। उसका वर्तमान स्वरूप जय के समय-समय पर किये गये वर्द्धन का परिणाम है। अत: यह निश्चित है कि मिथक साहित्य देशीय इतिहास के साथ-साथ अपना स्वरूप बदलता चलता है।

उत्तरोत्तर भारत में विदेशी सत्ताओं के संघर्ष तथा आगमन के साथ-साथ, मिथक साहित्य परंपरा पर भी विदेशी संस्कृति का प्रभाव समय-समय पर पड़ता गया। इसी कारण से वैदिक एवं औपनिषदिक काल में रची गयी वे मिथक कथाएं जो नैतिकता पर अंकुश लगाए थीं—धीरे-धीरे विदेशी संस्कृतियों की झलक ग्रहण करती गयीं। वैदिककालीन ईश्वरीय शक्ति के प्रतीक देवता परवर्ती ग्रंथों में चारित्रिक विघटन ग्रस्त प्रदर्शित किये गये हैं। चारित्रिक पतन के साथ-साथ उन्हें अनेक शापजनित कष्ट सहते दिखाकर भारतीय संस्कृतिजन्य आध्यात्मिक स्वरूप बनाए रखने का प्रयत्न किया गया है। इस प्रकार सांस्कृतिक अवधारणाओं की धुरी पर टिका हुआ मिथक साहित्य निरंतर परिवर्तनशील बना रहा है।

मिथक और संस्कृति

प्रत्येक देश की सर्वतोन्मुखी विकासधारा को संस्कृति कहते हैं। संस्कृति और सभ्यता में बहुत अंतर है। सभ्यता बाह्य आचार-विचार-व्यवहार तक सीमित रहती है किंतु संस्कृति प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों का सुसंस्कार (परिष्कार) करती है। सांस्कृतिक विकास का प्रथम सोपान दोषमार्जन है, दूसरा अतिशयाधान और तीसरा हीनांग पूर्ति।[1] कृषि का उदाहरण लें तो फसल से प्राप्त गेहूं, धान अथवा चावल की भूसी उतारना दोषमार्जन है, उसको तरह-तरह से पकाना अतिशयाधान तथा शाक-दाल आदि से उसका संबंध जोड़कर कुछ कमियों को पूरा करना हीनांग पूर्ति है। इस प्रकार जड़-चेतन, चल-अचल समस्त प्रकृति संस्कार का विषय है। पांच ज्ञानेंद्रियां, हृदय तथा बुद्धि—ये सात सांस्कृतिक विकास के आयाम हैं। मानव के व्यक्तित्व सामाजिक, मानसिक और आध्यात्मिक क्षेत्र में अर्जित समस्त विभूतियां संस्कृति की सीमा में आ जाती हैं। सांस्कृतिक उपलब्धि केवल मानव करता है—जानवर नहीं। मानवेतर जीव प्रकृति को ज्यों का त्यों भोगते हैं किंतु मानव कला, ज्ञान, विज्ञान, साहित्य आदि विभिन्न रूपों में उसके संस्कार करता है। यहां तक कि मानव से संबद्ध अड़तालीस संस्कारों का उल्लेख भी भारतीय धर्मशास्त्र में उपलब्ध है, जिनमें से गर्भाधान, जातकर्म, कर्णछेदन, विवाह आदि मुख्य हैं। ये समस्त प्रक्रियाएं ही सांस्कृतिक विकास कहलाती हैं।

भारतीय संस्कृति निर्विवाद रूप से संसार की प्राचीनतम निधि है। वैराट्य की दृष्टि से भी इसकी कोई समानता नहीं है। भारत में कितनी ही विदेशी संस्कृतियां आयीं—कुछ समय के लिए वे भारत पर छा भी गयीं किंतु धीरे-धीरे भारतीय संस्कृति के असीम सागर में समाहित हो गयीं। ऐसे उदाहरण किसी अन्य देश के संदर्भ में नहीं मिलते।

टायलर, ग्रेन-फील्ड, मेकाइवर एवं पेज ने इस विषय पर बृहत् विचार किया है। जे० एल० गिलिन तथा जे० पी० गिलिन तो इसे नितांत जटिल विषय मानते हैं। एल० डब्ल्यू० ग्रीन के अनुसार लिपि के अभाव में संस्कृति और सभ्यता-शून्यता की स्थिति होती है—किंतु फ्रांज बोयस, निमकाफ तथा आगबर्ग ने सभ्यता और संस्कृति का अंतर स्पष्ट करते हुए सभ्यता को बाह्य आचार-व्यवहार तक सीमित माना है। वह सांस्कृतिक विकास के उपरांत जन्म लेती है—जबकि संस्कृति का संबंध अंतर्मन से है।

यह सत्य है कि लिपिबद्ध होने पर ही सांस्कृतिक सुरक्षा संभव है किंतु भारतीय संस्कृति-सुरक्षा का श्रीगणेश 'श्रुति' से हुआ था। यह भौतिक जगत् का आश्चर्य है कि मौखिक संक्रमण द्वारा इतनी विशाल ज्ञान निधि संरक्षित रही। लिपि के विकासोपरांत अनेक विदेशी सभ्यताओं एवं संस्कृतियों के भारतागमन के उपरांत मिथक साहित्य ने भारतीय संस्कृति को सुरक्षित रखा। इसी कारण से भारतीय मिथक साहित्य में कला, ज्ञान, विज्ञान, साहित्य, इतिहास, भूगोल आदि के साथ-साथ अध्यात्म, दर्शन और भक्तिपरक सुंदर आख्यान भी उपलब्ध हैं।

दर्शन

अध्यात्म का मूलाधार दर्शन है। भारत में धर्म और दर्शन परस्पर ऐसे रचे-पचे हैं कि उन्हें अलग नहीं किया जा सकता। दोनों की परंपरा समान गति से निरंतर प्रवहमान द्रष्टव्य

१. वैदिक विज्ञान और भारतीय संस्कृति—म० म० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी।

है। भारत चिरकाल से एक दर्शन प्रधान देश रहा है। भौतिक जगत् का मिथ्यात्व तथा निराकार ब्रह्म का सत्य एवं सर्वव्यापकता यहां सदैव विचार का विषय बने रहे हैं। भारतीय दार्शनिक विचारधारा को समय की दृष्टि से चार कालों मे विभाजित कर सकते हैं :

(१) वैदिक काल में वेद से उपनिषद तक रचा साहित्य समाहित है।
(२) महाभारत काल—चार्वाक और गीता का युग।
(३) बौद्ध काल—जैन तथा बौद्ध धर्म का युग।
(४) उत्तर बौद्ध काल—न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, पूर्व तथा उत्तर मीमांसा का युग।

वैदिक काल में आर्यो की चिंताधारा उल्लास तथा ऐश्वर्य भोगने की कामना से युक्त थी। ब्राह्मण ग्रंथों में वैदिक ऋचाओ और मंत्रों के अर्थ के साथ-साथ तत्कालीन पुराण और इतिहास के संदर्भ भी मिलते हैं। उनके माध्यम से कर्म की महत्ता बढ़ने लगी। उनकी सबसे बड़ी विशेषता वेद और वेदोत्तर साहित्य की मध्यवर्ती कड़ी होने में है। धीरे-धीरे आर्यो की विचारधारा अंतर्मुखी होने लगी। अतः उपनिषदों की रचना हुई। औपनिषदिक साहित्य में अनेक कथाएं दार्शनिक तथ्यांकन करती हैं। पिप्पलाद की कथा (दे० प्रश्नोपनिषद्) ब्रह्म जीव, जगत् पर प्रकाश डालती है। नचिकेता भौतिक सुखों की निःसारता (दे० कठ०) पर। सुकेशा (दे० प्रश्न०) के माध्यम से सोलह कलाओं से युक्त पुरुष का अंकन है तो वरुण और भृगु का वार्तालाप (दे० तैत्तिरीय०) ब्रह्म के स्वरूप को स्पष्ट करता है। छांदोग्योपनिषद् में अंकित बृहस्पति की कथा इंद्रियों की नश्वरता को उजागर करती है। ऐसी अनेक कथाएं उपलब्ध हैं। वैदिक ऋषियों ने एकांत अरण्यों (वनों) में रहकर जिन ग्रंथों की रचना की, वे आरण्यक कहलाये। इन ग्रंथों में तप को ज्ञान मार्ग का आधार मानकर तप पर ही बल दिया गया था। सूत्र ग्रंथों की रचना के साथ कर्मकांड की महत्ता बढ़ने लगी। भारतीय यज्ञ पद्धति का सम्यक् विवेचन श्रौत सूत्रों में मिलता है, मानव जीवन के सोलह संस्कारों का विवेचन स्मृति सूत्रों में उपलब्ध है। स्मृतियों का परिगणन भी वैदिक साहित्य में ही होता है। इन ग्रंथों में वैदिक संस्कृति का स्वरूप अंकित किया गया है। यद्यपि मनुस्मृति तथा याज्ञवल्क्य स्मृति ही सर्वाधिक चर्चा का विषय बनीं किंतु स्मृतियों की संख्या पुराणों की भांति बहुत अधिक है। स्मृति ग्रंथ लोक जीवन के आचार-विचार, धर्मशास्त्र, आश्रम, वर्ण, राज्य और समाज आदि परक अनुशासन का अंकन प्रस्तुत करते हैं। कुल मिलाकर इस समस्त वैदिक साहित्य में निर्गुण परम सत्ता की विद्यमानता मान्य थी (दे० प्रश्नोपनिषद्)। उसी परम सत्ता की दैवीय शक्ति प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों में समाहित मानी जाती थी। वरुण, सूर्य, अग्नि भौतिक तत्त्व प्रदान करने वाले देवताओं के रूप में पूज्य थे। इंद्र उन देवताओं के नियंता थे। तब लोग मंदिरों की स्थापना नहीं करते थे क्योंकि प्रकृति के अंश-अंश में उसकी अभिव्यक्ति का अनुभव करते थे। उनके आचार-विचार में कर्म, ज्ञान, उपासना की स्वीकृति थी। तत्कालीन संस्कृति में यज्ञ की प्रधानता थी।

महाभारत युग तक वैचारिक विरोध बढ़ चुका था। उस संघर्षमय समाज में एक ओर ज्ञान पर बल दिया जा रहा था तो दूसरी ओर कर्म पर। ऐसी विषम कड़ियों में एक ओर चार्वाक ने ज्ञान और कर्म की निरर्थकता पर प्रकाश डालकर जीवन के भौतिक सुख को उजागर करने का कार्य किया, तो दूसरी ओर सांख्य दर्शन के अंकुर भी तत्कालीन संस्कृति में उभरते दिखलायी पड़े। भगवद्गीता ने सामाजिक विषमताओं को दूर कर समानता लाने का कार्य किया। गीता ने नैतिक दृष्टिकोण को सर्वसुलभ बनाया। इसके माध्यम से प्रबुद्ध मानव समाज

से इतर जनसाधारण में चार्वाकजन्य प्रवृत्ति तथा उपनिषद्जन्य निवृत्ति का समन्वित रूप अंकित हुआ। गीता के उपदेश ने फलाकांक्षाविहीन कर्म में लगे रहने की ओर प्रवृत्त किया। इसके अनुसार समस्त कर्म ईश्वर के प्रति अर्पित होने चाहिए। अतः उत्तर वैदिक काल में सर्वेश्वरवाद का प्रचार हुआ, आत्मा-परमात्मा के अंश-अंशी संबंध का विवेचन हुआ। यज्ञों की अनेकरूपता का प्रसार हुआ। गृह यज्ञ, पंचमहायज्ञ, सोलह संस्कार संबंधी यज्ञों की संपन्नता भिन्न-भिन्न मंत्रों से होती थी; अतः यज्ञ विषयक ज्ञान पुरोहितों तक सीमित होता गया। उत्तरोत्तर कर्मवाद की महत्ता बढ़ती गयी। ज्ञान तथा उपासना की अपेक्षा कर्मकांड अधिक महत्त्वपूर्ण हो गया। यज्ञों में अनेक प्रकार के जीवों की आहुतियां दी जाने लगीं।[1] इस प्रकार का रक्तपात जनसाधारण की उत्पीड़ा का कारण बन बैठा। उन विषम घड़ियों में नास्तिक दर्शनों ने जन्म लिया। नास्तिक का अभिप्राय वेदों में विश्वास न होने से था। चार्वाक, जैन तथा बौद्ध दर्शनवादी कर्मकांड की अतिशयता को वैदिक परंपरा मानकर उससे दूर हट रहे थे। उन्होंने मानव-समाज को लोक जीवन की व्यावहारिक पक्ष की ओर ले जाने का प्रयास किया। चार्वाक दर्शन में सुखपूर्वक जीवनयापन करने पर बल दिया गया था :

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत् ऋणं कृत्वा घृतंपिवेत् ।
भस्मी भूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः ॥

जनता जनार्दन के लिए इस प्रकार के कथन (वचन-वाक्) इतने सुंदर (चारु) थे कि यह दर्शन चार्वाक (चारु+वाक्=चार्वाक) कहलाया। यह भौतिकवादी, प्रत्यक्षवादी, निरीश्वरवादी, यदृच्छावादी, स्वभाववादी तथा सुखवादी दर्शन है। यह पांच तत्त्वों में से आकाश को स्वीकार नहीं करता—केवल प्रत्यक्ष पर विश्वास करता है। जीवन का लक्ष्य अधिकाधिक भौतिक सुख प्राप्त करना है।

महाभारत युद्ध के उपरांत समाज कुछ ऐसी विचारधारा में फंस गया था कि मानवमात्र स्वयमेतर किसी पर विश्वास नहीं करना चाहता था। जैन तथा बौद्ध मत ने मानव-समाज के आत्मविश्वास को पुष्ट कर उन्हें व्यावहारिक जीवन सुचारु रूप से जीने के लिए प्रेरित किया।

जैन दर्शन में सत्य-अहिंसा पर विशेष बल दिया गया। यह निरीश्वरवादी दर्शन है। इसमें सृष्टि को अनादि तथा छह तत्त्वों से—जीव, पुद्गल (शरीर), धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाश (अनत) तथा काल (मृत्यु) से बना हुआ माना है। साधना के सात सोपान हैं : जीव (आत्मा), अजीव (शरीर), प्रास्राव, बंध, संवर, निर्जरा तथा सप्तम् सोपान कैवल्य (मोक्ष) है।

बौद्ध दर्शन के प्रतिष्ठापक महात्मा बुद्ध (सिद्धार्थ) थे। महात्मा बुद्ध ने राजसी वैभव की निस्सारता का अनुभव किया तथा बोधिसत्त्व प्राप्त करके उन्होंने निरीश्वरवाद की स्थापना की। बौद्ध दर्शन के अनुसार चार आर्यसत्य हैं : सर्वंदुःखम्, दुःख समुदाय, दुःख निरोध, दुःख निरोधगामिनी प्रतिपद। न सांसारिक भोग में लिप्त रहना उचित है और न शरीर को व्यर्थ का कष्ट देना। आष्टांगिक मार्ग से इच्छाओं और तृष्णाओं पर विजय प्राप्त की जा सकती है। यह दर्शन क्षणिकवादी है। इस दर्शन में आत्मा के स्थायित्व की भी अस्वीकृति है—वह निरंतर परिवर्तनशील मानी गयी है। बौद्ध दर्शन में मुख्य रूप से सत्कर्म पर बल दिया गया है—वही निर्वाण तक पहुंचा सकता है।

१. अश्वमेध यज्ञ, सर्पयज्ञ, शुनःशेष (कथा)

प्राचीन परंपराओं का पालन करने वाले, वेद में आस्था रखने वाले लोग चार्वाक, जैन और बौद्ध मत की नास्तिक गतिविधि से विशेष आहत हुए। उन्होंने आस्तिक दार्शनिक विचारधारा को तर्क की कसौटी पर कसकर जीवन के निकट लाने का प्रयास किया। इस प्रकार समाज का एक वर्ग नास्तिक दर्शनों में विश्वास कर रहा था तो दूसरा वर्ग आस्तिक दर्शनों में आस्था रखता था। इस वर्ग के दार्शनिक आत्मा-परमात्मा के गुह्य रहस्यों को विभिन्न आयामों से देखकर अपनी अलग-अलग दर्शन पद्धतियों का परिचय दे रहे थे। आस्तिक दर्शनों की संख्या छह थी, अतः वे षड्दर्शन नाम से अभिहित हैं :

न्याय दर्शन के प्रणेता गौतम मुनि थे। यह मत तर्क तथा ज्ञान पर बल देता है। इसके अनुसार ब्रह्म सर्वशक्तिसंपन्न, सर्वज्ञ तथा सत्य है। आत्मा भी सत्य, अजर तथा अमर है। तर्क चार प्रमाणों (अनुमान, उपमान, प्रत्यक्ष तथा आप्त शब्द) पर आधारित रहता है। इस दर्शन ने तर्क-प्रणाली को विकसित किया।

वैशेषिक दर्शन के उद्‌भावक कणाद मुनि थे। उन्होंने दृश्य जगत्‌ की व्याख्या, उसे विभिन्न श्रेणियों में विभक्त करके की है, अतः इस दर्शन के अनुसार विश्व का सत्य-द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष तथा समवाय है। वैशेषिक ने परमाणुवाद पर फिर से दृष्टि डाली।

सांख्य दर्शन के प्रणेता कपिल मुनि थे। उन्होंने जड़ जंगम जगत्‌ की प्रहेलिका सुलझाते हुए पुरुष के साथ चौबीस प्राकृतिक तत्त्वों का आख्यान किया—इसी से यह सांख्य दर्शन नाम से अभिहित हुआ। कपिल मुनि के अनुसार जब तक प्रकृति की सत्त्व रज तम में साम्यावस्था है, उत्पत्ति नहीं होती। विषमावस्था में उत्पत्ति होती है, पुनः साम्य होने पर प्रलय में सब कुछ समाहित हो जाता है। पुरुष अजन्मा, सर्वशक्तिसंपन्न, अमर और अलिप्त है। वह केवल प्रकृति की साम्यावस्था को भंग करता है। चौबीस तत्त्वों की गणना इस प्रकार की है :

प्रकृति (सत्, रज, तम् से युक्त) १+बुद्धि १+अहंकार १। सत्, रज, तम के उद्वेलन से कुछ आंतरिक परिणाम उत्पन्न होते हैं तथा कुछ बाह्य :

आंतरिक परिणाम=मन (१)+ज्ञानेंद्रियां (५)+कर्मेंद्रियां (५)

बाह्य परिणाम=तन्मात्रा (५)+पंचभूत (५)

फलतः सृष्टि का उद्‌भव होता है।

कपिल मुनि ने सांख्य दर्शन में मात्र सिद्धांतों का विवेचन किया है।

योग दर्शन के उद्‌भावक पतंजलि ने सांख्य दर्शन के सिद्धांतों को कर्म से जोड़कर प्रस्तुत किया। उन्होंने चित्तवृत्ति निरोध पर बल दिया। उसको दो श्रेणियों में बांटा (१) शरीर-परक (हठयोग), (२) मनपरक (राजयोग)।

हठयोग के अंतर्गत अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार का विवेचन है तथा राजयोग के अंतर्गत धारणा, ध्यान, समाधि का अंकन है।

इंद्रियों के लोभ संवरण तथा चित्तवृत्ति निरोध के फलस्वरूप तुरीयावस्था (समाधि की अवस्था) तदुपरांत जीवनमुक्ति (जब तक शरीर नहीं त्यागा) और अंततोगत्वा देह-मुक्ति (शरीर त्याग कर) की उपलब्धि होती है।

पूर्व मीमांसा की स्थापना करते हुए जैमिनी ने निरीश्वरवाद, बहुदेववाद तथा कर्मकांड का योग प्रस्तुत किया। उन्होंने नित्यनैमित्तिक कर्मों के साथ-साथ निषिद्ध कर्मों पर

भी विचार किया। उन्होंने आत्मा को अजर-अमर तथा वेदों को अपौरुषेय माना। बाह्य जगत् का आख्यान तीन घटकों के रूप में किया—(१) शरीर (२) इंद्रियां तथा (३) विषय। उनके अनुसार अभीष्ट तत्त्व मोक्ष है। मोक्ष का अभिप्राय आत्मज्ञान से है।

वेदांत दर्शन को उत्तरमीमांसा भी कहा जाता है। इसके प्रतिष्ठापक बादरायण व्यास थे। उन्होंने वेदत्रयी (ऋक्, यजु तथा साम) को विशेष महत्त्व दिया। उस युग तक अथर्ववेद की रचना नहीं हुई थी। इस दर्शन का मुख्याधार प्रस्थान त्रयी है अर्थात् उपनिषद्, ब्रह्मसूत्र तथा भगवद्गीता नामक ग्रंथों को मुख्य रूप से ग्रहण किया गया है। इसके अनुसार ब्रह्म जगत् की उत्पत्ति का कारण है—वह केवल अनुभूति का विषय है। आत्मा स्वत:सिद्ध है तथा मोक्ष ब्रह्म में लीन होने का अथवा मुक्ति का पर्याय है। वेदांत में उपनिषदों के तत्त्व ज्ञान को विशेष रूप से ग्रहण किया गया है। वेदांत दर्शन का नाम ही वैदिक युग के अंतिम चरण का द्योतक है। उस युग में यह दर्शन सर्वाधिक प्रचलित हुआ क्योंकि बादरायण व्यास ने दार्शनिक व्याख्या के साथ-साथ समाजपरक अनेक तथ्यों को सामने रखा था; जैसे स्त्री-पुरुष समानता, शूद्रों के विषय में उदारता आदि। इसका सबसे बड़ा योगदान समस्त विश्व में एकता का भाव जगाने का प्रयास है। उपनिषदों में द्वैत तथा अद्वैत दर्शन का सुंदर विवेचन उपलब्ध है। बादरायण व्यास ने अब उसके साथ भगवद्गीता तथा ब्रह्मसूत्र के तथ्यों को समाविष्ट करके अत्यंत निखरा हुआ दार्शनिक रूप प्रस्तुत किया। उन्होंने पुन: 'तत्त्वमसि', 'अहं ब्रह्मास्मि' की स्थापना की। इस दर्शन में एक धूमिल तत्त्व दर्शनीय है, वह यह कि बादरायण ने ब्रह्म को परिणाम और नित्य दृष्टि दोनों ही रूपों में अंकित किया है[1] जो कि परस्पर विरोधी विचारधाराएं हैं।[2] विरोधी तत्त्वजन्य उलझन को दूर करते हुए शंकराचार्य ने परिणामवाद को विवर्तवाद में परिणत किया।

शंकराचार्य ने अद्वैतवाद की प्रतिष्ठा की, जो मायावाद भी कहलाया। उन्होंने पारमार्थिक सत्ता को 'एक' न कहकर 'अद्वैत' कहा जिसका अंकन 'नेति, नेति' के माध्यम से ही संभव है।[3] जगत् की संपूर्ण सत्ता को नकार कर ही ब्रह्म की सत्ता का अनुमान लगाया जा सकता है। शंकराचार्य ने ब्रह्म को 'एकता', 'अनेकता' से अलग 'उपाधिशून्य चेतन तत्त्व' माना है। माया भी अनिर्वचनीय है—वह न सत् है, न असत्। सत् असत् से विलक्षण है। उसका परिणामी उपादान कारण जगत् है। जैसे रज्जु में सांप की अथवा सीपी में रजत की प्रतीत होती है—उसका परिणामी उपादान कारण अज्ञान है—वही माया है—जो सत् असत् विलक्षण है। अद्वैत ब्रह्म की अवस्थाएं हैं—पारमार्थिक अवस्था में वह अद्वैत ब्रह्म है, सत्य है। व्यावहारिक अवस्था में वह जीव, तथा प्रतिभासित अवस्था में स्वप्न कहलाता है। अत: जगत् एवं संसार का विवर्तोपादन कारण ब्रह्म है। माया की उपाधि से ब्रह्म ही ईश्वर बन जाता है।[4] जैसे पृथ्वी से अनेक वस्तुओं का जन्म होता है, वैसे ही ईश्वर से जीव और विभिन्नताएं आभासित होती हैं।[5] इस अनेकता से ब्रह्म पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वह

१. 'जन्माद्यस्य यत:' तथा 'आत्मकृते: परिणामात्।'

—वेदांत दर्शन—सूत्र १।१।२ १।४।२६

२. उत्तरोत्पादे च पूर्वनिरोधात्।' असति प्रतिज्ञोपरोधो योगपद्यमान्यथा।

वेदांत दर्शन—सूत्र २।२।२०।२१

३. शांकरभाष्य ३।२।२२

४. छांदोग्योपनिषद् भाष्य—शंकर—३।१४।२

५. शांकरभाष्य २।१।२३

मायावी मायाजन्य तत्त्वों से अप्रभावित रहता है।[1] अविद्या की निवृत्ति से मोक्ष का साक्षात्कार होता है।

शंकराचार्य के अद्वैतवाद ने समस्त भारत को प्रभावित किया। आज भी भारतीय समाज का प्रबुद्ध वर्ग इससे प्रभावित है। शैव मत का आधार भी अद्वैतवाद ही था। लगभग तीन शताब्दी बाद इसके प्रतिरोध में स्वर उठा। अद्वैतवाद का विरोध सहज कार्य नहीं था, किंतु भक्ति के प्रचार के निमत्त विभिन्न ग्रंथों की रचना हुई। उत्तरोत्तर दक्षिण प्रदेशीय आलवार अथवा आडवार भक्तों का महत्त्व बढ़ा—वैष्णव भक्ति का उद्भव हुआ। समसामयिक विद्वानों ने विभिन्न दर्शनों की स्थापना की। उनकी वैचारिकता का मूलाधार श्रीमद्‌भागवत् था। सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक ब्रह्म को स्वीकार करते हुए भी उन्होंने विभिन्न कोणों से जगत्, ब्रह्म और जीव की व्याख्या की। अतः शंकराचार्य की अद्वैतवादी विचारधारा के विरोध में मुख्य रूप से चार दार्शनिक संप्रदायों की स्थापना हुई : (१) विशिष्टाद्वैत, (२) द्वैत, (३) शुद्धाद्वैत तथा (४) द्वैताद्वैत।

विशिष्टाद्वैत दर्शन के प्रतिष्ठापक रामानुजाचार्य थे। उनका जन्म सं० १०८४ के आसपास हुआ था। उनकी विचारधारा शंकराचार्य के अद्वैतवादी निर्गुण ब्रह्म के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया थी। उन्होंने सगुण ब्रह्म के साथ-साथ जगत् और जीव की सत्ता की प्रतिष्ठा की। उन्होंने शरीर को विशेषण तथा आत्मतत्त्व को विशेष्य माना। शरीर विशिष्ट है, जीवात्मा अंश तथा अंतर्यामी परमात्मा अंशी है। संसार प्रारंभ होने से पूर्व 'सूक्ष्म चिद् चिद् विशिष्ट ब्रह्म' की स्थिति होती है संसार एवं जगत् की उत्पत्ति के उपरांत 'स्थूल चिद् चिद् विशिष्ट ब्रह्म' की स्थिति रहती है। 'तयो एकं इति ब्रह्म' अपनी सीमाओं की परिधि से छूट जाना ही मोक्ष है। मुक्तात्माएं ईश्वर की भांति हो जाती हैं—किंतु ईश्वर नहीं होतीं।

द्वैतवाद के प्रणेता मध्वाचार्य थे। 'एक' से अधिक की स्वीकृति होने के कारण यह 'द्वैत' तथा 'त्रैत' दोनों ही नामों से अभिहित है। इस दर्शन के अनुसार प्रकृति, जीव तथा परमात्मा तीनों का अस्तित्व मान्य है। मध्वाचार्य ने 'भाव' और 'अभाव' का अंकन करते हुए भ्रम का मूल कारण अभाव को माना। इस मत में विभिन्न दर्शनों में से अनेक तत्त्व गृहीत हैं। द्वैत में भेद की धारणा का बड़ा महत्त्व है। भेद ही पदार्थ की विशेषता कहलाता है। अतः उसे सविशेषाभेद कहा गया। मुक्ति चार प्रकार की होती है : सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य तथा सायुज्य।

शुद्धाद्वैतवाद के प्रतिष्ठापक वल्लभाचार्य थे। उनके अनुसार ब्रह्म सत्य है। माया ब्रह्म की इच्छा का परिणाम मात्र है। इच्छा आंतरिक तत्त्व है अतः उसे ब्रह्म से अलग नहीं कर सकते। साथ ही उसके अस्तित्व को नकार भी नहीं सकते। माया का अस्तित्व है—अतः अद्वैतवाद अमान्य है।

द्वैताद्वैतवाद की स्थापना करते हुए निम्बार्काचार्य ने कहा कि जिस प्रकार पेड़ भी सत्य है तथा शाखाएं भी सत्य हैं, उनका अलग अस्तित्वांकन दृष्टिभेद के कारण से होता है—ठीक उसी प्रकार की स्थिति जगत्, जीव और ब्रह्म की है। ब्रह्म निजानंद का अविराम भोक्ता होने के कारण अक्षर ब्रह्म कहलाता है। अपने अंश (जीव) और जगत् के रूपों का द्रष्टा होने के कारण ईश्वर कहलाता है। कारण ब्रह्म का मुख्य कर्तृरूप जीव है अतः वह जीव ब्रह्म कहलाता है। चिद् अंश के तिरोभाव के कारण जीव जगत् को जड़ देखता है; इसलिए

१. बृहदारण्यक उपनिषद् भाष्य—शंकर—२।४।१२

जगत् ब्रह्म नाम से भी अभिहित है। मुक्ति का अभिप्राय ब्रह्म में लीन होना नहीं है। जीव ब्रह्म से अलग रहते हुए भी दृश्यमान जगत् के ब्रह्म तत्त्व को देखने में समर्थ हो जाता है—स्वांतरिक आनंद का भोग करता है।

भारतीय दार्शनिक परंपरा ने चिंतनशील मानव समाज को आत्मचिंतन के प्रति जागरूक रहकर आत्मिक विकास के लिए प्रेरित किया। समय-समय पर चिंताधारा के कोण भले ही बदलते हुए दिखायी पड़ते हैं किंतु यह दार्शनिक विचारधारा आस्तिकता, नैतिकता तथा अध्यात्म की आधारशिला के रूप में द्रष्टव्य है। भारतीय मिथक साहित्य में दर्शन के विविध रूपों को आख्यानों के माध्यम से आरक्षित रखा गया। कहीं-कहीं तो मिथक के माध्यम से ही दार्शनिक विचारों का क्लिष्ट रूप सर्वसुलभ हो पाया है। नचिकेता के माध्यम से संसार की निस्सारता—मुंडकोपनिषद् में पक्षी युगल के माध्यम से जीव और आत्मा, देवासुर संग्राम के माध्यम से हृदयजन्य सुवृत्तियों एवं कुवृत्तियों का संघर्ष सहज रूप में अंकित है। राजा अलर्क की कथा जीवन के प्रति अनासक्ति पर प्रकाश डालती है। समुद्रपर्यंत पृथ्वी के स्वामित्व की निस्सारता को पहचानकर उन्होंने ध्यान योग से मोक्ष प्राप्त किया था। दार्शनिक परंपरा ने भारतीय समाज की चिंताधारा पर आध्यात्मिक अंकुश लगाये रखने का कार्य किया है।

भक्ति

दर्शन की नींव पर भक्ति का निर्माण होता है जो जनसाधारण को अध्यात्म की ओर उन्मुख करती है।

भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में मनीषियों का वैचारिक मतभेद है। भक्ति शब्द की व्याख्या दो रूपों में की गयी है। भज् धातु से 'भज् सेवायाम्' में पाणिनी सूत्र 'स्त्रियांक्तिन:' प्रत्यय का प्रयोग किया गया है अर्थात् भजन-पूजन आदि भावों से युक्त। नगेन्द्रनाथ वसु ने हिंदी विश्वकोश में भक्ति के १८ अर्थों का उल्लेख किया है। उनके अनुसार 'भज्+क्तिन से भक्ति शब्द का निर्माण हुआ। कुछ अन्य विद्वानों ने 'भक्ति' की व्युत्पत्ति 'भंज्' धातु से मानी है। 'भंज्' का अभिप्राय टूटने से है। जब तक परमात्मा और आत्मा की विलगता न हो, तब तक भक्ति की स्थिति हो ही नहीं सकती। संस्कृत में 'भज्' धातु से दो शब्दों का निर्माण होता है —(१) भक्ति, (२) भाग। इन दोनों शब्दों में प्रत्यय की भिन्नता है : 'भजनं भक्ति:', 'भज्यते अनया इति भक्ति:', 'भजन्ति अनया इति भक्ति:'। साहित्य में कहीं-कहीं भाग के अर्थ में भी भक्ति शब्द का प्रयोग मिलता है।[१] दोनों अर्थों को आज तक भी विद्वज्जन अपने ढंग से ग्रहण कर रहे हैं। शांडिल्य भक्ति सूत्र में भक्ति का अभिप्राय ईश्वर में अनुरक्ति से माना गया है।[२] नारद भक्तिसूत्र में वह प्रेममय अमृत रूपा है जो मानव को तृप्त अनासक्त तथा मुक्त कर देती है।[३]

१. अथैतानि अग्नि भक्तीनि अयं लोक:
प्रात: सवनम् वसन्त: गायत्री इत्यादि।
(यह भूमि, लोक यज्ञ का प्रात:, वसन्त ऋतु, गायत्री छंद—ये सब अग्नि की भक्ति हैं—अर्थात् अग्नि देवता के भाग (हिस्से) में आये हुए हैं। यहां निरुक्तकार ने 'भक्तीनि' शब्द का अर्थ भाग के लिए किया है।)

२. 'सा परानुरक्तिरीश्वरे'—शांडिल्य भक्तिसूत्र—
—भक्ति चंद्रिका—सं० गोपीनाथ कविराज, पृ० सं० ५

३. नारदभक्ति सूत्र-१-६

भक्ति के उद्भव के विषय में भी विद्वानों का मतभेद है। भारतीय विद्वानों के मतानुसार मध्ययुगीन भक्ति की परंपरा का उद्भव आर्यों की ब्रह्म सत्ता के प्रति आस्था से हुआ किंतु पाश्चात्य विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि भक्ति पश्चिम की देन है। वेबर, कीथ और ग्रियर्सन के अनुसार इसका मूल स्रोत ईसाई धर्म है। प्रो० विलसन ने इसे ऐसी उद्भावना स्वीकार किया कि जिसका मोह, मात्र अपना गुरुत्व स्थापित करने के लिए किया गया है अथवा मठाधीश बनने की आकांक्षा का माध्यम मात्र है।[१] वेबर ने तो कृष्ण जन्माष्टमी को भी ईसाई प्रभाव से उद्भूत माना।[२] ग्रियर्सन ने छठी शताब्दी से पूर्व भारतीय साहित्य में भक्ति की शून्यता सिद्ध करते हुए स्पष्ट करने का प्रयास किया कि दूसरी-तीसरी शताब्दी में ईसाई लोग भारत के दक्षिण में जा बसे थे। उनका ईसा के प्रति रागात्मक मन देखकर भारतीय प्रभावित हुए तथा उनके चिंतन में भक्ति का अंकुर फूटा। 'विष्णुइज्म' में गोंडा ने भी पाश्चात्य मनीषियों की विचारधारा का पोषण किया। श्रीराम चौधरी ने 'अर्ली हिस्ट्री ऑफ वैष्णव सैक्ट' में पाश्चात्य विद्वानों के मत का खंडन किया। भेसनगर[३] के शिलालेख ने ईसा से दो शताब्दी पूर्व भारत में भक्ति का अस्तित्व सिद्ध किया। इस भ्रामक विचारधारा का खंडन श्री बाल गंगाधर तिलक ने भी किया। श्री कृष्ण स्वामी आयंगर ने वैदिक साहित्य में भक्ति के बीज की स्थिति को सप्रमाण सिद्ध किया। डॉ० विजयेन्द्र स्नातक ने इस विषय की सविस्तार व्याख्या की तथा भक्ति का मूल स्रोत—अवतारवाद को माना। उनके अनुसार भक्ति का उद्भव और विकास नितांत भारतीय है। महाभारत का युग ईसा से पूर्व का है। महाभारत में कृष्ण को अवतार मानना इस तथ्य को पुष्ट करता है कि भारत में भक्ति का उदय ईसा के जन्म से पूर्व हो चुका था।

वेदों में 'भक्ति' शब्द का प्रयोग उस अर्थ में नहीं मिलता—जिस अर्थ का बोधक वह हिंदी साहित्य के मध्यकाल में हुआ। मध्यकाल में 'भक्ति' का अर्थ श्रद्धा अनुराग उपासना के मिले-जुले रूप से था। वेदों में कर्म, ज्ञान, उपासना की महत्ता थी—भक्ति की नहीं। इस तथ्य को आधार बनाकर ग्रियर्सन आदि अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला कि वैदिक युग में मानव प्रकृति के विभिन्न तत्त्वों से आतंकित था। अतः अनुराग मूलक भाव का होना संभव ही नहीं था। यद्यपि यह सत्य है कि वेदों में भक्ति का वह रूप द्रष्टव्य नहीं है जो आज विवेचन का विषय है, तथापि भक्ति के अंकुर वहां विद्यमान थे। ऐसी अनेक ऋचाएं हैं जिनमें नवधा भक्ति के उन नौ रूपों की झलक भी दर्शनीय है जो परवर्ती आचार्यों ने स्थापित किये। इनमें श्रवण[४], कीर्तन[५], स्मरण[६], विनय[७], आदि भक्ति के रूपांगों का स्वरूप सहज उपलब्ध है। देवता और मनुष्य के मध्य प्रगाढ़ प्रेम का अंकन भी ऋग्वेद की ऋचाओं में मिलता है[८] तथा पुरुष सूक्त में ईश्वर का अंकन पुरुष

१. Hindu Religions—Prof. H.H. Wilson, p. 232.
२. राधावल्लभ संप्रदाय : सिद्धांत और साहित्य, डा० विजयेन्द्र स्नातक
३. भेलसा
४. ऋग्वेद १। १५६।२
५. ऋग्वेद १।१५४।१
६. ऋग्वेद १।१५४।३
७. ऋग्वेद १।२५।१६
८. हिंदुस्तान की पुरानी सभ्यता—डा० बेनी प्रसाद, पृ० सं० ४२

रूप में किया गया है। अतः अलौकिकता से युक्त देवताओं के प्रति राग और स्नेह भक्ति के अंकुर के रूप में दर्शनीय है। छांदोग्योपनिषद् में अनुरागमूलक भक्ति-भावना को व्यक्त करने वाले अनेक प्रसंग हैं। उपनिषदों में ब्रह्म को अन्नमय, प्राणमय, आनंदमय रूप में देखने का उल्लेख है।[१] इसे ज्ञान और उपासना का योग कह सकते हैं। यह कहना गलत न होगा कि उपनिषदों में तत्त्व ज्ञान के लिए निर्गुण ब्रह्म का अंकन है तथा उपासना के लिए उसके सगुण रूप का आभास मिलता है। महाभारत में कृष्ण का स्वरूपांकन करते हुए अवतारवाद की प्रतिष्ठा हुई। कृष्ण को विष्णु का अवतार माना गया, अतः ईसा से ५००० वर्ष पूर्व भारत में भक्ति का स्वरूप विकसित हो चुका था—जिसके अंकुर वेद और उपनिषद् में विद्यमान थे। वैदिक युग में देवताओं के नियंता इंद्र की महत्ता थी। इंद्र के अपदस्थ होने पर विष्णु को पूज्य स्थान पर प्रतिष्ठित किया गया। धीरे-धीरे वह नारायण, हरि आदि अनेक नामों से अभिहित हुआ। महाभारत में अंकित वासुदेव अथवा कृष्ण के रूप में वैदिक विष्णु का तादात्म्य कर दिया गया। पाश्चात्य विद्वानों ने अनेक कृष्णों के अस्तित्व की स्थापना करने का प्रयास किया—किंतु यह अवधारणा मान्य न हो पायी। महाभारत के 'नारायणी उपाख्यान' को वैष्णव भक्ति का मूल माना जाता है। वासुदेव को अंतर्यामी परमात्मा माना गया। वहां कृष्ण के पूरे परिवार की प्रतीकात्मकता द्रष्टव्य है।

चतुर्व्यूहात्मक विष्णु के अंशों का अंकन वासुदेव (अवतार अथवा देवता), बलराम, संकर्षण, (जीव) प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के रूप में किया गया है। महाभारत युग तक संभवतः कृष्ण की उपासना का प्रसार हो चुका था। गीता का उपदेश देने वाले कृष्ण ही विष्णु के अवतार, वसुदेव के पुत्र, वैष्णवों के इष्टदेव थे।

युग की स्थिति को पहचानकर नास्तिक दर्शनों का आविर्भाव हुआ। चार्वाक, जैन और बौद्ध नामक दार्शनिक मतों ने मानव को सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने का संदेश दिया। जैन और बौद्ध मतानुयायी चार्वाक की भौतिक अतिशयता से जरा हटकर चल रहे थे। उनके मतों में जीवन का मूल मेरुदंड सत्य, अहिंसा तथा उचित व्यवहार आदि थे। वेदों में उनकी आस्था नहीं थी।

शंकराचार्य ने वैदिक परंपरा का पुनर्जागरण किया। निराकार ब्रह्म की परम सत्ता का उद्‌घोष किया—जगत् के मिथ्यात्व पर प्रकाश डाला। जनसाधारण के लिए यह दर्शन दुरूह था। शंकराचार्य के अद्वैतवाद के विरोध में अनेक स्वर उठे। दक्षिण के आलवार भक्तों से लेकर रामानुज, मध्व, वल्लभ तथा निम्बार्क तक सबने सगुण ब्रह्म की स्थापना तथा भक्ति के विविध रूपों का प्रसार किया। हिंदी साहित्य के अवगाहन से प्रतीत होता है कि भक्ति-परंपरा अदम्य रूप से दो शताब्दियों तक भारतीय जीवन का मेरुदंड बनी रही। भक्ति के व्याख्याताओं ने प्रस्थान-त्रयी में श्रीमद्‌भागवत को जोड़कर प्रस्थान चतुष्टय की स्थापना की। श्रीमद्‌भागवत सर्वप्रथम ग्रंथ था जिसमें भक्ति का सम्यक् विवेचन उपलब्ध है। भक्ति के क्षेत्र में उसको आप्त प्रमाण की संज्ञा प्रदान की गयी। महाभारत में श्रीकृष्ण का ऐश्वर्य रूप ही अंकित था किंतु पुराण साहित्य में कृष्ण का रूप माधुर्यवेष्ठित भी हो गया। श्रीकृष्ण के सख्य, वात्सल्य, कांत आदि विविध रूपों का अंकन हुआ। पुराण साहित्य में कृष्ण लीलावतार बन बैठे। उनके स्वरूप में वीर योद्धा, नटखट बालक, श्री संपन्न देदीप्य-मान व्यक्तित्व, रसिक बिहारी तथा प्रिय मित्र की छवियां समाहित हो गयीं। इन स्वरूप-

१. तैत्तिरीयोपनिषद्, भृगुवल्ली।

गत विविधताओं ने साहित्य को भक्ति की पृष्ठभूमि प्रदान की। कृष्ण की स्वरूप-विविधता के साथ-साथ भक्ति के अनेक रूपों का विकास हुआ।

श्रीमद्भागवत में भक्ति के दो रूपों का अंकन मिलता है: गौणी (साधन रूपा) तथा परा (साध्य रूपा)। साधन रूपा परा भक्ति को नवधा, वैधी तथा मर्यादा भक्ति भी कहते हैं। वैधी भक्ति में विधि-विधान पर विशेष ध्यान दिया जाता है, रागानुगा राग (प्रेम) का अनुगमन करती है। श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कंध मे गुण के आधार पर भक्ति चार प्रकार की मानी गयी: सात्त्विक, राजसी, तामसी तथा निर्गुण।[1] सप्तम अध्याय में इसका विवेचन एकदम भिन्न प्रकार से किया गया है। प्रह्लाद के मुख से भक्ति के नौ अंगों का उल्लेख है,[2] जिनको पुनः तीन भागों में बांटा जा सकता है:

श्रवण, कीर्तन, स्मरण—भजन कीर्तन (नाम स्मरण से संबद्ध)

पादसेवन, अर्चन, वंदन—रूप संबंधी भक्ति (वैधी भक्ति)

दास्य, सख्य और आत्म निवेदन—भाव संबंधी भक्ति (रागात्मिका भक्ति)। वैधी भक्ति का पर्यवसान रागात्मिका भक्ति में है और रागात्मिका भक्ति की पूर्णता आत्मसमर्पण में है। "भगवान की चीरहरण लीला और रासलीला इस पूर्ण समर्पण के ही रूप हैं।"[3] शांडिल्य और नारद ने भी भक्ति का अभिप्राय इष्टदेव के प्रति रागात्मिका वृत्ति से माना है।

रूपगोस्वामी ने भक्तिरसामृतसिंधु में भक्ति के दो रूप स्वीकार किये हैं: साधन भक्ति, भाव भक्ति तथा प्रेम भक्ति। साधन भक्ति के पुनः दो रूपों की चर्चा की है: कामानुगा तथा संबंधानुगा। कामानुगा भक्ति में भक्त गोपीमय रूप प्राप्त करने की कामना करता है। संबंधानुगा में वह इष्टदेव (कृष्ण) से कोई संबंध भी स्थापित करने का इच्छुक रहता है। चाहे वह मां (यशोदा), पिता (नंद), गोप (मित्र) आदि कैसा ही संबंध क्यों न हो। संबंध की स्थापना भक्त की आकांक्षा पर आधारित रहती है। रस की स्थिति प्राप्त करने पर वह प्रेमाभक्ति कहलाती है। भक्ति रसामृत सिंधु में मुख्य पांच तथा गौण सात रसों की स्वीकृति है।

नारदभक्ति सूत्र में प्रेमाभक्ति का विशद् विवेचन उपलब्ध है। उसे कर्मयोग और ज्ञानयोग से उच्च स्थान पर प्रतिष्ठित किया गया है। जब मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह से निर्लिप्त रहकर केवल भगवान को समर्पित होता है, तब प्रेमाभक्ति की स्थिति होती है—वही पराभक्ति अथवा भूमानंद कहलाती है। नारद ने भक्ति से संबद्ध ग्यारह आसक्तियों का उल्लेख किया है। परमात्मा का अंकन दो रूपों में किया गया है:

ऐश्वर्यमय रूप: जो सृष्टि का निर्माण, ध्वंस और पालन करता है। यह निर्गुण निर्विशेष भी कहलाया।

माधुर्य रूप: जो केवल लीला करता है। यह रूप सगुण सविशेष कहलाया।

रूपगोस्वामी तथा जीवगोस्वामी ने भक्त के भाव के आधार पर भक्ति के पांच प्रकार माने तथा उनका सविस्तार वर्णन किया—शांत, दास्य, सख्य, मधुर तथा दांपत्य। शांडिल्य

१. श्रीमद्भागवत, तृतीय स्कंध, अध्याय २९।७-१४।

२. श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥२३॥

—श्रीमद्भागवत- -सप्तम स्कंध, पंचम अध्याय

३. सूर और उनका साहित्य—डा० हरवंशलाल शर्मा, पृ० सं० ३४१

ने कांता भक्ति को पुनः दो रूपों में बांटकर देखा—स्वकीया और परकीया। परकीया की उपासना वाममार्ग की ओर ले गयी। हिंदी के क्षेत्र में वैष्णव भक्ति का ही विशेष प्रसार हुआ।

हिंदी साहित्य में दो प्रकार के भक्त समुदायों का उदय हुआ। कुछ भक्त समुदायों को स्मृति की मर्यादाओं में बनाये रखने के लिए प्रयत्नशील थे, वे स्मार्त वैष्णव कहलाये जिनमें तुलसी सर्वाधिक लोकप्रिय हुए। उन्होंने राम (विष्णु के अवतार) का ऐश्वर्यपरक रूप अंकित किया। रामानुज, रामानंद और तुलसी इसी परंपरा से संबद्ध हैं। हिंदी साहित्य के क्षेत्र में सगुण और निर्गुण दोनों ही भक्ति-परंपराओं का विकास हुआ। सगुण में वैष्णव भक्तों का आधिक्य था। विष्णु के दो अवतारों को महत्ता मिली—राम और कृष्ण। निर्गुण भक्ति परंपरा में संत मत तथा सूफी संप्रदाय का प्रसार हुआ। संत मत ने ज्ञान पर बल दिया तो सूफी मत ने प्रेम पर।

भारतीय मिथक साहित्य ने भक्ति के सभी प्रकारों का सुंदर अंकन प्रस्तुत किया है। भावों की गहनता की अभिव्यक्ति के लिए भाषा अशक्त माध्यम है। इस असमर्थता को बिंबों व प्रतीकों के माध्यम से ही दूर किया जा सकता है अतः मिथक कथाएं दर्शन, भक्ति, अध्यात्म आदि के क्षेत्र में प्रतीक व बिंब का कार्य करती रही हैं। ऐश्वर्यमय इष्टदेव का मर्यादित स्वरूप 'राम' के माध्यम से प्रकट हुआ है तो लीलामय प्रेमात्मक रूप 'कृष्ण' के माध्यम से। राम के प्रति दास्य भाव एवं आत्मनिवेदन का अंकन है तो कृष्ण के प्रति वात्सल्य, सख्य तथा कांताभाव का प्रस्फुरण हुआ है।

यशोदा, सुदामा और गोप-गोपियां और राधा, सब इन्हीं भावों को उजागर करने वाले आश्रय हैं। पुष्टि मार्ग में दो प्रकार की भक्ति का उल्लेख है : मार्जारवत् तथा मर्कटवत्। मार्जारवत् भक्ति का अभिप्राय उस भक्ति से है जिसमें भक्त भगवान पर पूर्णाश्रित रहता है—वैसे ही जैसे बिल्ली का बच्चा उठने-खिसकने का तनिक भी प्रयास नहीं करता, बिल्ली उसे जहां चाहे अपने मुंह में दबाकर ले जाय। इस प्रकार की भक्ति का अंकन प्रह्लाद, गोपिकाओं आदि की कथाओं में उपलब्ध है।

मर्कटवत् भक्ति में भक्त इतना कर्मठ अवश्य रहता है जितना बंदरिया का बच्चा—जो मां की छाती से चिपटने का काम जागरूकता से करता है—शेष मां पर छोड़ देता है। ऐसे भक्तों में ध्रुव, सुदामा, विश्वामित्र तथा नारद आदि की परिगणना की जा सकती है। मिथक कथाओं में नारद भक्ति-सूत्र में अंकित ग्यारह आसक्तियों का सुंदर रूपांकन उपलब्ध है।[1]

गुणमाहात्म्यासक्ति का स्वरूप निखारने का कार्य नारद, शौनक, पृथु आदि की कथाओं ने किया है। गोपिकाओं के माध्यम से रूपासक्ति का विवेचन है। पूजासक्ति का अंकन भरत, अंबरीष आदि की कथाओं में सहज ही किया जा सकता है। सनक, ध्रुव, प्रह्लाद की कथाएं स्मरणासक्ति की बोधक हैं। विदुर, अक्रूर आदि से संबद्ध मिथक दास्यासक्ति के पोषक हैं। उद्धव, अर्जुन, सुदामा आदि की कथाएं सख्यासक्ति पर प्रकाश डालती हैं। राधापरक कथानक कांतासक्ति के द्योतक हैं। अदिति, मनु, नंद, यशोदा, वसुदेव, देवकी आदि वात्सल्यासक्ति के आश्रय हैं। बलि, शिव आदि आत्मनिवेदनासक्ति से विभोर हैं। शुक, सनक, कौण्डिन्य आदि की कथाएं तन्मयासक्ति से संबद्ध हैं तथा उद्धव, गोपिकाएं परम विरहासक्ति की प्रतीक हैं। भक्ति के पांचों प्रकार इन्हीं भावों में समाहित हो जाते हैं।

१. सूर और उनका साहित्य—डा० हरवंशलाल शर्मा, पृ० ३४४

हिंदी साहित्य के मध्यकाल में भक्ति को रस के स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया गया। भक्ति को रस की कोटि में रखने से पूर्व रस की व्याख्या करनी अनिवार्य प्रतीत होती है। रस की स्थिति में सत्त्व का उद्रेक होना आवश्यक है। रज और तम का पर्दा जब हट जाता है तभी सत्त्व का ज्ञान और आनंदमय अंश उभर उठते हैं।

रस का अधिवास सदैव सहृदय के मन में रहता है। भर्तृहरि ने स्पष्ट किया है कि कुत्ता 'सूखी हड्डी चबाते-चबाते अपने छिले मुंह के रक्त का ही आनंद लेने लगता है और समझता है कि वह हड्डी का रस है'। वैसे ही साहित्य का वर्णन करते समय मानव हृदय के रज और तम अंश दब जाते हैं—सत्त्व उभर आता है। विभिन्न प्रकार के संपर्क पाठक के हृदय में अनेक प्रकार के आनंद उत्पन्न कर देते हैं। अतः रस-निष्पत्ति के लिए किसी-न-किसी वस्तु का संपर्क में आना अत्यंतावश्यक है। रस के उद्रेक के लिए देश, काल, चेष्टा और उद्दीपन की अनिवार्यता है। इन सबके प्रभाव से दो प्रक्रियाएं होती हैं :

(१) मानसिक—(क) ज्ञानपरक विचारात्मक,
(ख) भावपरक अनुभूति।

(२) काया पर आधारित कायिक चेष्टाएं।

ज्ञानांश वस्तु को प्रस्तुत करता है। हम लोग तुरंत अनुभूति में बांट लेते हैं। पानी में कंकड़ डालने से लहर उठती है। ठीक इसी प्रकार हम लोग अपने मन के क्षोभ का शरीर पर प्रभाव पाते हैं। अतः रस की प्रतीति के साथ-साथ कायिक अनुभावों का उदय भी अनिवार्य है।

भक्ति रस

भक्तिकालीन संप्रदायों ने मात्र भक्ति को रस माना है। शेष भाव उसकी 'शेड्स' हैं। भक्ति का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। उसका स्वरूप भी अन्य रसों से बहुत भिन्न है।

मनुष्य का ज्ञान अत्यंत सीमित है। उसके समग्र ज्ञान की आधार पांच इंद्रियां हैं। इस शारीरिक शक्ति की कल्पना के कारण हमें किसी का सहारा लेना पड़ता है। जब हम अनुभव करते हैं कि शक्ति परिमित है, अनेक क्षेत्रों में हम अशक्त हैं, तभी वास्तव में भक्ति का श्रीगणेश होता है। सर्वशक्तिसंपन्न परमात्मा के तीन रूप माने गये हैं : सर्जक, पालनकर्ता और संहारक। उस नियंता से एक ओर हम वात्सल्य भाव की आशा रखते हैं तो दूसरी ओर उसका संहारक रूप भी हमारे समक्ष है। इस श्रद्धा, भय, प्रियात्मक, विचित्र संबंध के आलंबन के प्रति भक्ति रस के क्षेत्र में किसे स्थायी भाव माना जाय, यह एक प्रश्न है। अधिकांश विद्वानों ने भक्ति रस का स्थायी भाव भगवत्‌विषयक रति को माना है। परमेश्वर से जिन विविध रूपों में भक्तों ने संबंध जोड़े हैं, वे सब 'रति' के अंतर्गत समाहित नहीं हो सकते। यदि ऐसा संभव होता तो साहित्य में भी वात्सल्य, शृंगार, करुण, वीर, आदि सभी रसों का स्थायी भाव 'रति' कहलाता। भौतिक भावों की विभिन्नता 'भक्ति रस' को भी भावनात्मक अनेक कोण प्रदान करती है।

राम के बाण से मरने पर रावण को मोक्ष की प्राप्ति हुई। राम जैसा पुत्र पाकर कौशल्या का मातृत्व सार्थक हो गया—पत्नी होने के नाते सीता भव-बंधनों से मुक्त हो गयी। कबीर अपने इष्टदेव की बहुरिया भी बने और उनसे रूठते भी रहे। सूर ने विनय पत्रिका में ऐसे निष्ठुर परमात्मा का फिर कभी नाम न लेने की कसम भी खायी और इस संसार

के प्रत्येक तत्त्व में उसे प्रतिभासित भी पाया। गणिका और अजामिल उसका नाम लेने मात्र से तर गये, आदि उल्लेख इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि परमात्मा से जीव का चाहे जैसा भी संबंध हो, वह इस पुनर्जन्म के बंधन से विमुक्त हो जाता है, किंतु यह संबंध शुद्ध रति के अंतर्गत ही नहीं रखा जा सकता। आत्मा और परमात्मा का संबंध अलौकिक है—इस अलौकिक संबंध में श्रद्धा और भय की अनिवार्यता है। मात्र श्रद्धा को भी हम भक्ति का स्थायी भाव नहीं मान सकते, यद्यपि प्रबोध चंद्रोदय में इस प्रकार का वर्णन मिलता है।

भक्ति का जन्म भक्त की स्व-असामर्थ्य-अनुभूति से ही होता है। अतः प्रत्येक भक्त-कवि ने कहीं-न-कहीं परमात्मा के विराट् रूप का वर्णन अवश्य किया है।

गीता में जब कृष्ण अर्जुन को युद्ध के लिए प्रेरित करते हैं—उस समय अर्जुन को अचानक चारों ओर सूर्य-चंद्र आदि नक्षत्र उगते और डूबते दिखायी पड़ते हैं और वह कृष्ण से इस विराट् रूप का लोप करने के लिए प्रार्थना करता है। तुलसी ने राम-जन्म के समय कौशल्या के सम्मुख भी राम का विराट् रूप अंकित किया है और वे अपने दोनों कर जोड़कर इस विराट् रूप का संवरण करने की प्रार्थना करती हैं, राम पुनः बालक का रूप धारण करते हैं।

काकभुशुंडी प्रसंग में तुलसी ने दिखाया है कि काक जितनी भी दूर उड़ता ही गया, उसे लगा कि बालक राम की फैली हुई बांहें निरंतर उसके पास हैं और उसे ज्ञान की प्राप्ति हुई। सूर के काव्य में अनेक राक्षस-राक्षसनियों से टक्कर लेने में उन्होंने विभिन्न चमत्कारों का प्रयोग किया—इससे यह स्पष्ट है कि कोई भी भक्त परमात्मा के विराट् रूप को भुला नहीं पाता। जो भक्त नहीं रहे, वे भी परमात्मा के विराट् रूप से भयातुर होते दिखलाए गये हैं, जैसे हिरण्यकशिपु, कंस इत्यादि। प्रत्येक रस के लिए कोई ऐसा स्थायी भाव होना आवश्यक है जो उसे अन्य रसों से भिन्न रूप प्रदान कर सके। भक्ति रस का वैशिष्ट्य इसमें है कि वह साहित्य के सभी रसों में रचा-पचा दिखलायी पड़ता है। भक्ति को साधन मानकर जो लोग मोक्ष की आकांक्षा करते हैं अथवा स्वर्ग-प्राप्ति के इच्छुक हैं उनसे रावण कहां पीछे रहा। वह राम से शत्रुता करते हुए भी स्वर्गगामी हो गया। कंस कृष्ण के हाथों मारे जाने के कारण स्वर्ग प्राप्त कर पाया। यमलार्जुन कृष्ण के संपर्क में आकर शापमुक्त हो गये। इस प्रकार की मिथक कथाएं सिद्ध करती हैं कि परमतत्त्व के किसी भी रूप को अपनी भौतिक इच्छाओं का आलंबन बना लेने से मनुष्य वही गति प्राप्त करता है जो भक्त किसी भी प्रकार की भक्ति से कर सकता है, अर्थात् जब मानव की प्रवृत्तियों का आलंबन ईश्वर अथवा ब्रह्म बन जाता है तब निश्चय ही उनकी मानसिक प्रवृत्तियां भक्ति के किसी-न-किसी रूप में बदल जाती हैं। दूसरे शब्दों में भौतिक प्रवृत्तियां ईश्वरपरक होने के साथ-साथ उदात्त होती चलती हैं। आध्यात्मिक आलंबन के संपर्क में आने के लिए हार्दिक वृत्तियों को भौतिक परिवेश से ऊपर उठाना ही पड़ेगा। प्रवृत्ति कैसी भी हो—उसका आलंबन ईश्वर होने पर आश्रय का ध्यान संमग्रता से परमतत्त्व पर केंद्रित हो जाता है—वैसी स्थिति में प्रवृत्ति का उदात्तीकरण अवश्यंभावी है। यह उदात्तीकरण ही वह तत्त्व है जो सब भावों को भक्ति में समाहित कर देता। हर व्यक्ति के हृदय में भक्ति-भाव का उदय नहीं होता, क्योंकि यह अर्जित भाव है, सहज भाव नहीं है। भक्ति रस की अनुभूति के लिए भौतिक जगत् के स्तर से अलौकिकता की ऊंचाई की ओर बढ़ना परम आवश्यक है। आलंबन रूप में पाकर मानवीय भावना का उदात्तीकरण होना अनिवार्य रूप से आवश्यक है और तभी भक्ति रस का उद्भव संभव होता है अतः भक्ति रस का स्थायी भाव औदात्य को मानना सर्वाधिक युक्तिसंगत जान पड़ता है।

देव-देवता तथा ऋषि-मुनि

भारतीय मिथक साहित्य में 'देवता' की परिकल्पना बहुत प्राचीन है। शक्तिसंपन्न विभूतियों का वर्गीकरण दो रूपों में मिलता है, जो मानव को जीवित रहने में सहायता पहुंचाती हैं, वे देवता कही जाती हैं। इसके विपरीत जो आत्मरत रहते हुए आत्मसुख के लिए सबको त्रस्त करती हैं, दानव कहलाती हैं।

जर्मन विद्वान 'हिल ब्रांट' के अनुसार जो तत्त्व कल्पना को उत्तेजित करता है, अथवा मनुष्य के भय या आनंद का कारण बनता है, उसे देव या दानव कहते हैं। अंधकार, शीत, मृत्यु, रोग, दस्यु आदि दानव हैं—दूसरी ओर इन कष्टों को दूर करने वाले सूर्य, चंद्र, जल, वायु, पृथ्वी, आकाश, अग्नि आदि देवता कहलाते हैं। देवताओं का अधिपति इंद्र कहलाता है। देव तथा दानवों की संख्या अपरिमित है। केवल ऋग्वेद के आधार पर ही विद्वानों ने ४७६ देव खोज निकाले। देवताओं की विविधता भी विचित्र है। प्रकृति के जड़ तत्त्वों में से अनेक देवताओं के रूप में पूज्य हैं— जिनमें से मुख्य पृथ्वी, जल, वायु, नभ, दिशा, अन्न, घृत, पय, पिप्पली, दूर्वा, मधु आदि हैं। ये सभी तत्त्व मानव को स्वास्थ्य एवं जीवन प्रदान करते हैं।

कुछ भावों के प्रतीक रूप में भी देवताओं की परिकल्पना मिलती है, जैसे—काम, तप, मेधा, मृत्यु इत्यादि।

प्रकृति के मानवेतर चेतन जीव भी देवताओं की कोटि में परिगणित हैं। उदाहरण के लिए मंडूक, कूर्म, अश्व, गौ, वृषभ, सर्पराजी, सरीसृप इत्यादि।

सभी देवताओं के मूल में एकेश्वरवाद की स्वीकृति है। उसकी शक्ति इतनी व्यापक है कि उसका कण-कण देवता के रूप में प्रकट होता दिखलायी पड़ता है। दूसरे शब्दों में विभिन्न देवता ईश्वर के विभिन्न आयामों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कितने ही लोग सद्‌जीवन बिताकर देवता कहलाने लगे—वे सबकी पूज्य भावनाओं के केंद्र मसीहा बन गये और शुभ कर्मों से जुड़े कितने ही स्थान तीर्थ कहलाये। इन सभी से जुड़ी घटनाएं मिथक साहित्य की पूंजी हैं। इस तथ्य का पोषण देव और दानवों के जन्मविषयक मिथक भी करते हैं। देव और दानव एक ही पिता—कश्यप की संतान थे। कश्यप की दो पत्नियां थीं दिति तथा अदिति। दिति की कोख से दैत्य तथा अदिति की कोख से ३३ देवताओं का जन्म हुआ। दैत्य और देव परस्पर विरोधी रहे। देवताओं के प्रत्येक कार्य में दैत्य अवरोध उत्पन्न करते थे। उनका परस्पर द्वेष इस तथ्य को सिद्ध करता है कि एक ही परिवेश में रहने वाले लोग भी एक-दूसरे से कितने भिन्न हो सकते हैं। असुरों की परंपरा में हिरण्यकशिपु, शुंभ, निशुंभ, हिरण्याक्ष, मधु, कैटभ, रावण आदि को रखा जाता है।

दैवीय शक्तिसंपन्न देव कहलाते हैं।

ऋग्वेद की एक प्रसिद्ध ऋचा है—यो देवानां नामधा एक एव (ऋ० १०. ७२. २)। तात्त्विक दृष्टि से दैवीय शक्तियों को दो रूपों में देखा जाता है। उनमें से कुछ देव कहलाते हैं तो कुछ देवता। देव वह है जो स्वयं शक्तिसंपन्न हैं। जीवन को क्रीड़ा समझकर विजय की इच्छा से सबसे उचित व्यवहार करता हुआ स्वयं देदीप्यमान रहकर बड़ों का आदर करने वाला, प्रसन्न रहने वाला, जगत् को स्वप्नवत् मानकर इच्छित वस्तु प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील देव कहलाता है :

दिव् क्रीडाविजिगीषा व्यवहार द्युति स्तुति मोद मद स्वप्न कान्ति गतिषु
(सिद्धांत कौमुदी, 'तिङंतदिवादि प्रकरण)

श्री अरविन्द ने स्पष्टीकरण करते हुए माना कि प्रत्येक देव दिव्य रूप में है—सबको अपने अंदर धारण किये रहता है—किंतु साथ ही अपना विलग अस्तित्व बनाए रहता है।

'देव' शब्द में 'तल्' प्रत्यय लगाकर 'देवता' शब्द की व्युत्पत्ति होती है। अत: दोनों में अर्थ-साम्य है। निरुक्तकार ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा, 'जो कुछ देता है वही देवता है अर्थात् देव स्वयं द्युतिमान हैं—शक्तिसंपन्न हैं—किंतु अपने गुण वे स्वयं अपने में समाहित किये रहते हैं जबकि देवता अपनी शक्ति, द्युति आदि संपर्क में आये व्यक्तियों को भी प्रदान करते हैं। देवता देवों से अधिक विराट हैं क्योंकि उनकी प्रवृत्ति अपनी शक्ति, द्युति, गुण आदि का वितरण करने की होती है। जब कोई देव दूसरे को अपना सहभागी बना लेता है, वह देवता कहलाने लगता है। पाणिनि दोनों शब्दों को पर्यायवाची मानते हैं :

देवो दानाद्वा दीपनाद्वा द्योतनाद्वा द्युस्थानो भवतीति वा।
यो देवः सा देवता इति। (निरुक्त ७-१५)

जब देव वेद-मंत्र का विषय बन जाता है, तब वह देवता कहलाने लगता है जिससे किसी शक्ति अथवा पदार्थ को प्राप्त करने की प्रार्थना की जाय और वह जी खोलकर देना आरंभ करे, तब वह देवता कहलाता है (ऋ० ९. १. २३)। वेदमंत्र विशेष में, जिसके प्रति याचना है, उस मंत्र का वही देवता माना जाता है। यजुर्वेद के अनुसार मुख्य देवताओं की संख्या बारह है[1]:

(१) अग्नि (स्वयं अग्रसर होता है—दूसरों को भी करता है)।
(२) सूर्य (उत्पादन करने वाला तथा उत्पादन हेतु सबको प्रेरित करने वाला)।
(३) चंद्र (आह्लादमय—दूसरों में आह्लाद का वितरण करने वाला)।
(४) वात (गतिमय—दूसरों को गति प्रदान करने वाला)।
(५) वसव (स्वयं स्थिरता से रहता है—दूसरी को आवास प्रदान करता है)।
(६) रुद्र (उपदेश, सुख, कर्मानुसार दंड देकर रुला देता है—स्वयं वैसी ही परिस्थिति में विचलित नहीं होता)।
(७) आदित्य (प्राकृतिक अवयवों को ग्रहण तथा वितरण करने में समर्थ)।
(८) मरुत (प्रिय के निमित्त आत्मोत्सर्ग के लिए तत्पर तथा वैसे ही मित्रों से घिरा हुआ)।
(९) विश्वदेव (दानशील तथा प्रकाशित करने वाला)।
(१०) इंद्र (ऐश्वर्यशाली—देवताओं का अधिपति)।
(११) बृहस्पति (विराट् विचारों का अधिपति तथा वितरक)।
(१२) वरुण (शुभ तथा सत्य को ग्रहण कर असत्य अशुभ को त्याग करने वाला तथा दूसरे लोगों से भी वैसा ही व्यवहार करवाने वाला)।

श्रुति, अनुश्रुति, पुराण आदि ग्रंथों के पारायण से स्पष्ट है कि मूलत: देवत्रय की कल्पना सर्वाधिक मान्य रही है। वे ब्रह्मा, विष्णु, महेश नाम से विख्यात हैं। ब्रह्मा सृष्टि

१. अग्निर्देवता वातो देवता सूर्यो देवता चन्द्रमा देवता
वसवो देवता, रुद्रा देवता, आदित्या देवता मरुतो देवता।
विश्वेदेवा देवता बृहस्पतिर्देवतेन्द्रो देवता वारुणो देवता।

—यजु० १४-१२

का निर्माण करते हैं, विष्णु पालन तथा शिव संहार करते हैं। तीनों देवताओं के साथ शक्तिरूपा नारी का अंकन भी मिलता है। पराशक्ति ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश को क्रमशः सरस्वती, लक्ष्मी तथा गौरी प्रदान की। तभी वे सृष्टि-कार्य-निर्वाह में समर्थ हुए। जब हलाहल नामक दैत्यों ने त्रैलोक्य को घेर लिया था, विष्णु और महेश ने युद्ध में अपनी शक्तियों से उनका हनन किया था। विजय के उपरांत आदिदेवत्रय आत्मस्तुति करने लगे तो उनका मिथ्याभिमान नष्ट करने के लिए उनकी शक्तियां अंतर्धान हो गयीं, फलतः वे विक्षिप्त हो, कार्य करने में असमर्थ हो गये। मनु तथा सनकादि के तप से प्रसन्न होकर पराशक्ति ने उन्हें स्वास्थ्य तथा शक्तिरूपा लक्ष्मी तथा गौरी पुनः प्रदान की (दे० सती की कथा)। उनके जीवन फलक पर दृष्टि डालना परम आवश्यक जान पड़ता है :

ब्रह्मा ने अपने चारों मुंह से चार वेदों को प्रकट किया। सावित्री, गायत्री, श्रद्धा, मेधा और सरस्वती ब्रह्मा की कन्याएं थीं (ब्र० पु० १०२)। सरस्वती की ओर कुदृष्टि रखने के कारण देवताओं ने उनका बहिष्कार कर दिया तथा ब्रह्मा को शरीर त्यागकर दूसरा शरीर धारण करना पड़ा। ब्रह्मा को 'क' कहते हैं। उन्हीं से विभक्त होने के कारण शरीर को काम कहते हैं (श्रीमद्भा०, तृतीय स्कंध, ८-१०, १२)। शिव से झूठ बोलने के लिए ब्रह्मा ने गदहे का सिर धारण किया जो कि उनका पांचवां सिर कहलाता है (ब्र० पु० १३५)।

विष्णु ने यह संसार तीन पगों से नापकर जीत लिया। ज्ञानी के हृदय में उनके पांव सदैव विद्यमान रहते हैं (ऋ० वे० १।२२।१६-२०)। वे चिरंतन काल से सृष्टि के पालक हैं; इंद्र, वरुण, मित्र, अर्यमा, बृहस्पति उनके परम मित्र हैं। वे असुरों से बचाने वाले, पृथ्वी को स्थिर रखने वाले देवता हैं (ऋ० वे० १।१५४, १।९०।५, ६।४९, ७।९९)। ऋग्वेद में विष्णु गौण देवता माने गये किंतु ब्राह्मण ग्रंथों में उनका महत्त्व बढ़ गया। उनका अंकन विविध विचित्रताओं से ओतप्रोत है। मूलतः वे एकार्णव के जल में शेषशय्या पर सोते हुए अंकित किये गये हैं। उनकी नाभि से उत्पन्न कमल पर ब्रह्मा का जन्म हुआ। उत्तरोत्तर विष्णु को अदिति से कश्यप की औरस संतान के रूप में अंकित किया गया है। वे सौ नामों से विख्यात हैं। उनकी पत्नी का नाम लक्ष्मी है—गरुड़ उनका वाहन है। उनके शंख का नाम पांचजन्य, शस्त्र का सुदर्शनचक्र, गदा का कौमोदकी, तलवार का नंदक तथा धनुष का नाम शार्ङ्ग है। जब-जब असुरों ने देवताओं में त्रास का संचार किया, तब-तब वे विष्णु के नेतृत्व में ही असुरों को परास्त कर पाये (यजु० वे० १२।५, ऐ० ब्रा० ६।१५, १।१-३०, श० ब्रा० १।९।३९, १२।१।३।४, गो०ब्रा० १।४।८)। महाभारत के अनुसार विष्णु चार रूपों में विद्यमान रहकर संसार का पालन करते हैं: बदरिकाश्रम में नरनारायण रूप में, जगत् के शुभाशुभ के साक्षी परमात्मास्वरूप, विभिन्न अवतारों के रूप में तथा सहस्र युगों तक एकार्णव जल में शयन करते हुए (म० भा० द्रोणापर्व, २८।२२-३०, अ०२९।)। हर युग में कष्ट उत्पन्न होने पर पृथ्वी का पालन करने के लिए भी विष्णु ने बार-बार जन्म लिया। वे नौ अवतार ले चुके हैं और दसवां कल्की अवतार इस कलियुग में ही जन्म लेगा। विष्णु अवतारों में सर्वाधिक प्रसिद्ध राम और कृष्ण माने जाते हैं। महात्मा बुद्ध भी उनके नौ अवतारों में से एक हैं। इन तीनों की भक्ति-परंपरा चिरकाल से भारतीय समाज में व्याप्त है :

(क) राम मर्यादावादी राजकुमार तथा राजा के रूप में अंकित हैं। उनकी शक्ति, वीरता, सहनशीलता तथा पर-दुःख-कातरता का स्वरूप अद्वितीय है। वे समाज के सम्मुख एक आदर्श पुत्र, भाई, इष्टदेव एवं शत्रु के रूप में विख्यात हैं।

(ख) कृष्ण लोकरंजक रूप में अंकित हैं। एक ओर वे चाणूर, कुवलयापीड, कंस, पूतना, शकट, यमलार्जुन आदि को सहजता से नष्ट कर डालते हैं तो दूसरी ओर वे ग्वालों के साथ नित्यक्रीड़ा तथा गोपियों के साथ विहार करते हैं और एक ओर वे अर्जुन के सारथी, राजदूत, योद्धा हैं तो दूसरी ओर सुदामा के परम मित्र भी। गीता का महत् उपदेश भी दे सकते हैं और जरासंध को चीर डालने का आदेश देने की पटुता भी उनमें है। उनका व्यक्तित्व बहुआयामी विशेषताओं से आपूरित है।

(ग) महात्मा बुद्ध भी विष्णु के अवतार के रूप में विख्यात हैं। कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन के पुत्र सिद्धार्थ ने ऐश्वर्य की निस्सार्थता को पहचानकर बोधिसत्त्व ग्रहण किया और बुद्ध कहलाये। तत्कालीन सामाजिक विघटन से दुखी होकर उन्होंने परदुःख-कातरता, अहिंसा, सत्य-निष्ठा का उपदेश दिया। हिंदी साहित्य पर उनका भी पर्याप्त प्रभाव है।

महेश वैदिक काल में रुद्र नाम से विख्यात थे। पौराणिक युग में शिव, शंकर, महादेव नाम से प्रसिद्ध हुए। उनकी पत्नी का नाम पार्वती है तथा निवासस्थान कैलास पर्वत माना जाता है। उनके सिर पर गंगा, मस्तक पर चंद्रिका तथा तृतीय नेत्र, गले में सर्प विद्यमान रहते हैं। ये सभी तत्त्व क्रमशः कुकर्म, बीमारी, काम तथा कुजीव का विनाश करने वाले हैं। उनके कंठ में विष की विद्यमानता ने उन्हें नीलकंठ का नाम प्रदान किया। उनके अस्त्र-शस्त्रों में पिनाक (धनुषाकार त्रिशूल), पाशुपत (अस्त्र), अजगव (धनुष), खट्वांग (दंड) विशेष उल्लेखनीय हैं। पापियों के नाश के लिए वे तांडव नृत्य करते हैं। शिव के क्रोधमय तांडव को शांत करने का सामर्थ्य पार्वती के लास्य में ही है। वे 'क्षणे रुष्टा क्षणे तुष्टा' होने के कारण ही आशुतोष कहलाते हैं। उनका वाहन नंदी नामक बैल है। उन्होंने रोषवश लिंग का परित्याग कर पृथ्वी पर फेंक दिया था। वह लिंग भी पूजनीय है। उनकी संतान-परंपरा में गणेश तथा कार्तिकेय उल्लेखनीय हैं।

गणेश विघ्नेश भी कहलाते हैं। प्रत्येक सुकर्म से पूर्व गणेश का स्मरण करने से कार्य में बाधा उत्पन्न नहीं होती। गणेश का आकार-प्रकार विचित्र है। उनकी तोंद बहुत बड़ी है, हाथी जैसा सिर है। उनके चार हाथ हैं तथा वाहन चूहा है। गणेश जी की पूजा जावा, नेपाल, बर्मा, चीन, जापान, तिब्बत, स्याम आदि अनेक देशों में विभिन्न नामों से होती है। मैक्सिको तथा मध्य अमेरिका की खुदाई में तीन हजार वर्ष पूर्व से भी अधिक पुरानी देव प्रतिमाओं में गणेश की प्रतिमा भी उपलब्ध हुई। हेबिट के अनुसार इस प्रतिमा के मिलने का स्थान 'कोपन' नाम से विख्यात है। मेकेंजी ने भी मैक्सिको में गणेश के समान रूपधारी देव की आराधना के विषय में लिखा है। वहां वह देवता 'विराकोचा' नाम से विख्यात हैं।

कार्तिकेय का जन्म देवसेना का सेनापतित्व करने के निमित्त हुआ था। कार्तिकेय का पालन कृत्तिकाओं ने किया था, इसी से वह कार्तिकेय कहलाया। उसमें अग्नि का तेज था। उसका निर्माण शिव के वीर्य से हुआ था। अतः ओजस्वी होना निश्चित ही था। उसके छह मुख थे (दे० कार्तिकेय)। तारक-वध के उपरांत पार्वती ने उसे आमोद-प्रमोद की आज्ञा दी। वह देव-पत्नियों के साथ रमण करता था तथा वह जब भी किसी देव-पत्नी के संपर्क में आता, उसे मातृत्व का आभास होता। अंततोगत्वा उसने नारी मात्र से मातृत्व का संबंध रखने का प्रण कर 'गौतमीगंगा' में स्नान कर, पाप-मोचन किया। तभी से वह स्थान कार्तिकेय तीर्थ नाम से विख्यात है।

विष्णु और शिव से संबद्ध अनेक पुराणों की रचना हुई। जिन पुराणों के इष्टदेव शिव हैं—वे शिव को सर्वोपरि स्थान प्रदान करती हैं और जिन पुराणों में विष्णु की महिमा का गान है, वे विष्णु को आदिदेव तथा समस्त देवताओं का नियामक मानती हैं। हिंदी साहित्य की दृष्टि से आदिदेवत्रय के साथ-साथ जिन मुनि का उल्लेख भी आवश्यक है।

जिन मुनि ने अनेक बार अवतरित होकर समाज की व्यवस्था की। दक्षिण भारत के कुंडग्राम नामक नगर के राजा सिद्धार्थ की पत्नी त्रिशला की कोख से जन्म लेकर उन्होंने शैशव की अवस्था में ही खेल-खेल में अपने अंगूठे के प्रहार से मेरु पर्वत को हिला दिया। तब बालक का नाम 'महावीर' रखा गया। उन्होंने कर्मों का क्षय कर कैवल्य ज्ञान प्राप्त किया। उनका आविर्भाव देशीय परिवेश की विरूपताओं को तिरोहित करके सत्य, अहिंसा, मर्यादा आदि की प्रतिष्ठा के लिए हुआ था। हिंदी साहित्य पर जैन धर्म तथा तज्जनित साहित्य का पर्याप्त प्रभाव है।

आदिदेवत्रय के साथ जुड़े हुए पराशक्ति के विभिन्न रूप भी उल्लेखनीय हैं। वर्तमान साहित्य में प्रचलित समस्त इष्टदेवियों की मूल परंपरा पराशक्ति से प्रारंभ होती है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश को पराशक्ति ने क्रमशः सरस्वती, लक्ष्मी तथा गौरी नामक शक्तियां प्रदान कीं।

सरस्वती चिरकाल से विद्या और वाणी की देवी है। उनका जन्म ब्रह्मा के मुंह से हुआ था। ज्ञान के बिना मोक्ष असंभव है। अतः सरस्वती को स्वर्ग तथा मोक्ष की एकमात्र हेतु माना गया है। वसंतपंचमी पर सरस्वती की पूजा होती है।

लक्ष्मी धन की अधिष्ठात्री हैं। समुद्र-मंथन से प्राप्त चौदह रत्नों में से एक हैं। उनका वर्ण स्वर्णिम आभा से युक्त है। दीपावली की रात्रि में उनकी विशेष पूजा की जाती है।

गौरी (पार्वती) हिमालय की पुत्री तथा शिव की अर्द्धांगिनी के रूप में अंकित हैं। वे देवी, दुर्गा, गौरी, पार्वती, उमा आदि १०८ नामों से विख्यात हैं। उनसे अत्यधिक आत्मीयता होने के कारण ही शिव अर्धनारीश्वर कहलाये। उमा, अंबा, अंबालिका आदि विभिन्न नाम किसी न किसी मिथक से जुड़े हुए हैं। शिव के क्रोध का शमन करने की शक्ति भी पार्वती में ही है।

आधुनिक काल में प्रचलित अनेक देवियों की मूलाधार पराशक्ति तथा परंपरा का आरंभ पूर्वोक्त तीन शक्तिस्वरूपा देवियां हैं।

भारतीय मिथक साहित्य में देव, देवता, देवी से इतर ऋषि तथा मुनि का उल्लेख भी मिलता है। इनका स्वरूप स्पष्ट करना भी परम आवश्यक है।

'या स्तूयते सा देवता, येन स्तूयते स ऋषिः।'

भारतीय परंपरा में वेद अपौरुषेय माने जाते हैं। अतः ऋषि को मंत्र-रचयिता नहीं माना गया। वह मंत्रद्रष्टा कहलाता है। ऋषियों के भी अनेक वर्ग हैं :

(क) गृत्समद, विश्वामित्र, वामदेव, भारद्वाज, वसिष्ठ आदि मानव शरीर में द्रष्टव्य हैं। वे आयु से परिपक्व हैं।

(ख) ऋषियों का एक वर्ग ऐसा भी है जो आयु की दृष्टि से बालकों की श्रेणी में रखा जा सकता है। इस वर्ग से संबद्ध उल्लेखनीय व्यक्तित्व शिशु, कुमार, प्रजावान्, सप्तगु आदि हैं।

(ग) कुछ ऋषियों का नामकरण शारीरिक अवस्थाओं के आधार पर हुआ जान पड़ता है—कृश, कृष्ण, ध्रुव इत्यादि ।

(घ) श्येन, कपोत, पतंगा आदि पक्षी; वृषाकपि, सरमा, सप्ति आदि पशु; कूर्म, मत्स्य आदि जलचर तथा गोधा, सर्प आदि जीव भी ऋषियों में उल्लिखित हैं।

वास्तव में वाणी अथवा लेखन से ही मार्गदर्शन नहीं कराया जाता—व्यवहार तथा स्वभाव से भी मार्गदर्शन संभव है । इसी कारण से जलचर, आकाशचारी, पृथ्वी तल के मानवेतर जीव भी ऋषियों की कोटि में परिगणित हैं । ऋषि के लिए अनिवार्य रूप से दृढ़ निश्चय, निष्ठा, धैर्य और लगन की आवश्यकता है—उसके लिए न जाति अपेक्षित है, न धर्म । ऋषि मार्गदर्शन करते हैं और मुनि उनका अनुसरण करते हैं—मनन-चिंतन करते हैं । सभी का प्रेरणास्रोत निर्गुण ब्रह्म है।

प्रतीक-योजना

भावों की अभिव्यक्ति के लिए भाषा बहुत अशक्त माध्यम है । ज्यों-ज्यों भावों में गहराई आती-जाती है, भाषा को तरह-तरह के साधन जुटाकर अपना स्वरूप सशक्त करना पड़ता है । बोलते समय तो तरह-तरह की भाव-भंगिमाएं, स्वर का उतार-चढ़ाव उसकी कमी को बहुत सीमा तक पूरा कर देते हैं किंतु लिखित रूप में इन सबकी गुंजाइश नहीं रहती । अत: सूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति के लिए स्थूल प्रतीकों का सहारा लेना पड़ता है । प्रतीक-योजना मनुष्य की इंद्रियों के भोग्य-विषयों में सिमटी रहती हैं ।

मिथक साहित्य में इस प्रकार के अनेक रोचक प्रतीक हैं । प्रतीकों का अध्ययन करते हुए अनेक संदर्भ उभरते हैं । एक ओर देवी-देवताओं के स्वरूप वर्णन में प्रतीक-योजना का प्रयोग है तो दूसरी ओर राक्षसों के स्वरूप में । एक ओर पशु-पक्षी, भाव, विचार या क्रिया-कलाप के प्रतीक हैं तो दूसरी ओर जड़ प्रकृति के तत्त्व । अधिकांश मिथक-कथाएं भावनात्मक प्रतीकों की सुंदर योजना जान पड़ती हैं। वास्तव में मिथक साहित्य बहुविध प्रतीकों की अनुपम निधि है ।

देवताओं के स्वरूपात्मक प्रतीक

सांस्कृतिक दृष्टि से प्राय: हर देश के मान्य देवताओं का स्वरूप प्रतीकात्मक होता है—इस ओर ध्यान दें तो जान पड़ता है कि 'देवता' की स्थिति मनुष्य और परमात्मा के मध्यवर्ती हैं। मनुष्य संघर्षमय जीवन से जूझते हुए निराशा के क्षणों में जब किसी का अनपेक्षित सहारा प्राप्त करता है तब अपने कार्य की सिद्धि के लिए उसे देवता अथवा अवतार मानने लगता है। ऐसे सहयोग उसे जीवन के हर मोड़ पर मिलते हैं और धीरे-धीरे देश की संस्कृति में अनेक देवताओं की प्रतिष्ठा हो जाती है । देवताओं का कार्य-क्षेत्र एक-दूसरे से अलग मानते हुए भक्तगण उनके स्वरूप में अलग-अलग प्रकार की शक्ति तथा गुणों की स्थिति के दर्शन करते हैं जो प्रत्येक देवता के स्वरूप के प्रतीकों को दूसरे देवताओं से अलग रूप प्रदान करते हैं। इस प्रकार उनके स्वरूप भिन्न-भिन्न प्रकार की शक्ति, स्वभाव, कार्य-क्षेत्र के लिए रूढ़ हो जाते है। विचित्र बात तो यह है कि प्रत्येक देवता का वाहन तक दूसरे देवता से भिन्न है तथा वाहन भी किसी-न-किसी भावना का प्रतीक बनकर प्रकट होता है ।

गणेश

गणेश सबकी बाधाओं को हरने वाले देवता माने गये हैं। उनका स्वरूप अद्भुत है। हाथी का मुख, छोटी-छोटी आंखें, सूंड़ और बड़े-बड़े कानों से युक्त होने के कारण ही वे गजानन कहलाते हैं। हाथी शाकाहारी होता है, वह गणेश भी शाकाहारी हैं। वह बुद्धिमान जानवर माना जाता है। इसी से दोनों के स्वरूप में समानता है। चौड़ा मस्तक गणेश की बुद्धिमत्ता का प्रतीक है। हाथी के समान बड़े-बड़े कान इस बात की ओर संकेत करते हैं कि गणेश छोटी से छोटी पुकार को, जरा-सी आहट को सुनने-समझने में समर्थ हैं। हाथी की आंखें बहुत दूर तक देख सकती हैं, सो गणेश भी दूरदर्शी हैं। हाथी की सूंड की यह विशेषता प्रसिद्ध है कि जिस सहजता से वह बड़ी-बड़ी चीजें उखाड़ती है, उतनी ही सरलता से वह सुई उठाने में समर्थ रहती है। साधारणत: एक सशक्त पहलवान छोटी वस्तु को उठाने की सूक्ष्मकर्मी वृत्ति से वंचित हो जाता है किंतु गणेश जिस दक्षता से सूक्ष्म कार्य करते हैं, उसी निपुणता से स्थूल कार्य संपन्न कर सकते हैं। सूंड़—लंबी नाक—बुद्धि का प्रतीक है। साथ ही वह 'नाद ब्रह्म' का प्रतीक भी है। गणेश की चार बांहें उनकी चारों दिशाओं की पहुंच की ओर संकेत करती हैं। देह का दाहिना भाग बुद्धि तथा अहम् से युक्त रहता है जबकि बायी ओर हृदयपक्ष की स्थिति मानी गयी है। गणेश के दाहिने ऊपर के हाथ का अंकुश इस बात का प्रतीक है कि वे सांसारिक विघ्नों का नाश करने वाले देवता हैं। दाहिनी ओर का दूसरा हाथ सबको आशीर्वाद देता दिखायी पड़ता है। बायीं ओर एक हाथ में रस्सी है जो कि प्रेम (राग) का पाश है जिसमें बंधकर गणेश भक्तों को सिद्धि के आनंद तक पहुंचा देते हैं। आनंद का प्रतीक मोदक (लड्डू) है जो कि उनके दूसरे बायें हाथ में रहता है। रस्सी को इच्छा और अंकुश को ज्ञान का प्रतीक भी माना गया है। उनका बड़ा पेट इस बात का प्रतीक है कि वे सबके रहस्य पचा लेते हैं। उनकी इधर-से-उधर बात करने की प्रवृत्ति नहीं है। उनका एक ही दांत है। वही हाथी के दांत जैसा दांत समस्त विघ्न-बाधाओं को नष्ट करने में समर्थ है। मुख में एक ही दांत का रह जाने का कारण इस प्रकार विख्यात है: एक बार शिव-पार्वती कंदरा में सो रहे थे। गणेश द्वार-रक्षा का कार्य कर रहे थे। परशुराम शिव से मिलने वहां पहुंचे। गणेश के मना करने पर उन्होंने प्रहार कर उनका एक दांत तोड़ दिया; किंतु वे गुफा में फिर भी नहीं जा पाये। गणेश प्रहार का उत्तर देना अनुचित समझते थे क्योंकि प्रहार करने वाले वृद्ध ब्राह्मण थे। यह इस तथ्य का प्रतीक है कि वे सिद्धांत और कर्त्तव्य की सिद्धि के लिए हर प्रकार का कष्ट उठाने के लिए तैयार रहते हैं। उनका श्वेत वर्ण सात्त्विक भाव का प्रतीक है।

इसी प्रकार अन्य सभी देवताओं की स्वरूपगत प्रतीकात्मकता मिथक साहित्य की अभूतपूर्व निधि है। उन सबका सविस्तार वर्णन यहां संभव नहीं है, तथापि बहुत संक्षेप में कहा जा सकता है कि ब्रह्मा के चारों सिर चार वेदों के उद्भव स्थल हैं तो पांचवां गधे का सिर उन्होंने मात्र झूठ बोलने के लिए धारण किया था। इस प्रकार मोटे तौर पर उनका स्वरूप 'जगत् जनक' का प्रतीक भी है और अनैतिकता का अंश भी अभिव्यक्त करता है। शेष शय्या (अमित काल) पर आसीन विष्णु की चार बांहें धर्म, अर्थ, काम और मोक्षस्वरूप हैं। उनके स्वरूप की विस्तृत व्याख्या न करें तो भी धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष में समस्त सांसारिकता व्याप्त है। विष्णु इन हाथों से इस सांसारिकता का पालन करते हैं। शिव का कार्य ध्वंस करना है। उनके स्वरूप में सर्प, तृतीय नेत्र, कंठ में स्थित विष, त्रिशूल तथा ध्वंसात्मक नृत्य,

तांडव, की मुद्रा इसी ओर संकेत करते हैं। लक्ष्मी का स्वरूप ऐश्वर्य की ओर इंगित करता है तो वीणा और पुस्तकधारिणी सरस्वती कला और विद्या की देवी हैं। दुर्गा रक्षा करती हैं तो महाकाली नरमुंड की माला पहने काल की प्रतीक हैं। मिथक कथाओं में देवता और देवियों की क्रियाकलापगत प्रतीकात्मकता भी विचारणीय है। ब्रह्मा सृष्टि को जन्म देने वाले देवता हैं—उनके साथ उनकी शक्ति के रूप में पुत्री सरस्वती रहती हैं। सरस्वती कला और विद्या की देवी हैं जो सृष्टि के जन्म के साथ जुड़ी हुई वस्तुएं हैं। विष्णु पालन करने वाले देवता हैं तो उनकी शक्ति लक्ष्मी (धन और ऐश्वर्य) पालन में सहायता प्रदान करती हैं। शिव के ध्वंसात्मक रूप के साथ महाकाली का ध्वंसात्मक रूप बना रहता है। इस प्रकार प्रत्येक देवता का स्वरूप किसी-न-किसी भाव के प्रतीक रूप में दर्शनीय है। देवी-देवताओं की संख्या अनंत है—स्वरूप और गुण भी अनंत हैं।

मिथक साहित्य में हीन प्रवृत्तियों को प्रस्तुत करने के निमित्त राक्षस-चरित्रों की योजना की गयी है। दैवीय शक्ति मनुष्य की रक्षा और पालन करती है तो आसुरी शक्तियां उसके मार्ग की बाधा बनती हैं। वे शक्तियां काम, क्रोध, लोभ और मोह से प्रेरित हीन भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती दिखायी गयी हैं। राक्षसों के स्वरूप भय, क्रूरता, अनैतिकता और दंभ के प्रतीक हैं। अच्छाई और बुराई का समावेश तो सभी में रहता है—चाहे वह देव हो या दानव। अंतर केवल अनुपात का है—देवताओं में अच्छाई अधिक रहती है, राक्षसों में बुराई। राक्षसों में सर्वाधिक प्रसिद्ध चरित रावण का है। दस सिरों से युक्त होने के कारण लंकेश रावण दशानन नाम से विख्यात हुआ। रावण का जीवन सुंदर ढंग से प्रारंभ हुआ। पिता विश्रवा से उसने चार वेद तथा छह वेदांगों की शिक्षा ली। जितनी निपुणता एक व्यक्ति एक मस्तक से एक जीवन में प्राप्त करता है, उससे दसगुनी निपुणता दसों ग्रंथों में रावण को प्राप्त थी; अतः उसके दस सिर उसकी दसगुना बुद्धि और ज्ञान के प्रतीक हैं। केवल बुद्धि का विकास व्यक्तित्व का अधूरा विकास होता है—वह हृदयपक्ष से अछूता ही रहने के कारण आत्मकेंद्रित हो जाता है। अतः रावण के दस सिर दसों दिशाओं में फैले उसके आतंक के प्रतीक भी माने गये हैं। उस आतंक के मूल में आत्मसुख केंद्रित राक्षसी वृत्ति थी जो दस रूपों में विकसित हुई : (१) सुख, (२) संपत्ति, (३) सुत, (४) सैन्य, (५) सहाय (प्रभुत्व के लिए संगठन), (६) जय, (७) प्रताप, (८) शक्ति, (९) बुद्धि, (१०) बड़ाई—इन सबके प्रतीक दशमुखी रावण (दशानन) के दस सिर थे। राम ने उसकी प्रत्येक वृत्ति को एक-एक सिर के रूप में नष्ट किया।

दशानन ने अनेक सफल तप किये थे। वह योग सिद्ध था। रावण के स्वरूप में योग सिद्धियों का प्रतीक उसकी अमृत कुंडी नाभि है। नाभि शरीर का केंद्र मानी जाती है। वाल्मीकि रामायण का प्रत्येक पात्र किसी-न-किसी भाव का प्रतिनिधित्व कर रहा है। राम-कथा संबंधी प्रतीकात्मकता इस प्रकार है :

कथा के पात्र	प्रतीक	कथा के पात्र	प्रतीक
राम	शुद्ध ब्रह्मांश (आत्मा) (माया से असंपृक्त)	रावण	अहंकार
		सुमित्रा	शील
अयोध्या	देह	जनक	वेद
दशरथ	कर्म	जनकपत्नी	उपनिषद्
कौशल्या	प्रारब्ध	वैदेही (सीता)	आत्म विद्या

लक्ष्मण	यतीत्व	अग्नि परीक्षा	ज्ञानाग्नि
भरत	संयम	अहल्या	जड़ वृत्ति
शत्रुघ्न	नियम	गौतम	स्थिरता
विश्वामित्र	तप	सुग्रीव	विवेक
यज्ञ	एकाग्रता	हनुमान	प्रेम
मरीच	कपट	जामवंत	विचार
सुबाहु	क्रोध	अंगद	धैर्य
ताड़का	कलह	नल-नील	सम-दम
मिथिला	सत्संग	बाली	प्रमाद
परशुराम	चित्त	संपाती	निष्काम
कैकेयी	द्वैत भाव	मेघनाद	काम
मंदोदरी	चातुर्य	वसिष्ठ	विज्ञान
राक्षसी सेना	आसुरी वृत्ति	सुतीक्ष्ण	धारणा
वानर सेना	दैवी वृत्ति	अगस्त्य	योग
वन	वैराग्य	शूर्पणखा	ईर्ष्या
खरदूषण	लोभ	कुंभकर्ण	मोह
जटायु	उपकार	अंगद का पांव	दृढ़ता
विभीषण	शुद्धाचार	नारद	भजनानंद

डॉ० मनमोहन सहगल ने हरिसिंहकृत आत्मरामायण में प्रतीकात्मकता की खोज की है, उनमें से कुछ तथ्य समस्त राम-साहित्य में ज्यों-के-त्यों मिलते हैं ।

मिथक साहित्य में स्वभाव की विशेषताओं के आधार पर पशु-पक्षियों को भी विभिन्न वृत्तियों का प्रतीक माना गया है। उदाहरण के लिए कुछ पशु-पक्षियों का उल्लेख निम्नलिखित है :

श्वेत वर्ण का निष्कलंक पक्षी हंस नीर-क्षीर-विवेकी कहलाता है। उसमें दूध और पानी अलग करने की क्षमता है अर्थात् वह सार तत्त्व ग्रहण करके निःसार वस्तु छोड़ने में समर्थ है। इस दृष्टि से उसका नाम 'हंस' भी सार्थक है। आध्यात्मिक दृष्टि मनुष्य के निःश्वास में 'हं' और श्वास में 'स' ध्वनि सुनायी पड़ती है। मनुष्य का जीवन क्रम ही 'हंस' है क्योंकि उसमें ज्ञान का अर्जन संभव है। अतः हंस 'ज्ञान' विवेक, कला की देवी सरस्वती का वाहन है।

बैल—शिव का वाहन नंदी नामक बैल है। बैल की विशेषता शक्ति-संपन्नता के साथ-साथ कर्मठता मानी गयी है। उन दोनों तत्त्वों का प्रतीक नंदी है। ऐसी अनेक कथाएं हैं जो इन गुणों पर प्रकाश डालती हैं। एक बार नंदी पहरेदार का काम कर रहा था। शिव पार्वती के साथ विहार कर रहे थे। भृगु उनके दर्शन करने आये—किंतु नंदी ने उन्हें गुफा के अंदर नहीं जाने दिया। भृगु ने शाप दिये, पर नंदी निर्विकार रूप से मार्ग रोके रहा। ऐसी ही शिव-पार्वती की आज्ञा थी। एक बार रावण ने अपने हाथ पर कैलास पर्वत उठा लिया था। नंदी ने क्रुद्ध होकर अपने पांव से ऐसा दबाव डाला कि रावण का हाथ ही दब गया। जब तक उसने शिव की आराधना नहीं की तथा नंदी से क्षमा नहीं मांगी, नंदी ने उसे छोड़ा ही नहीं। शिव कल्याणकारी भावों के प्रतीक हैं तो नंदी कर्मठता और शक्ति का। इन दोनों के माध्यम से ही कल्याण का फैलाव संभव है।

नाग—मिथक साहित्य में सर्प अनेक तत्त्वों का प्रतिनिधित्व करता है। मणि से सुसज्जित होने के कारण वह धन का प्रतीक है। 'जहां सर्प कुंडली मारकर बैठा हो, वहां पृथ्वी में धन गड़ा है'—ऐसा माना जाता है। सर्प की टेढ़ी-तिरछी चाल उसे राजनीतिक निपुणता का प्रतीक भी बना देती है—किंतु सर्वाधिक मान्य रूप 'काल' के प्रतीक में मिलता है। सर्प की गति जल, स्थल, वायु सभी स्थानों में है। उड़नेवाले सर्प, पृथ्वी में बिल बनाकर रहनेवाले सर्प तथा जल में निवास करनेवाले नाग इस बात के प्रतीक हैं कि 'काल' सर्वव्यापी है। जगत् की उत्पत्ति से पूर्व केवल जल में नाग शेष था—इसी से शेषनाग कहा गया। उसकी कुंडली की शय्या पर विष्णु ने निवास किया तथा उसके एक सहस्र फन विष्णु के मस्तक पर छत्र की भांति विद्यमान थे। इस चित्र के माध्यम से स्पष्ट हुआ कि राजनीतिक निपुणता पर आसीन विष्णु 'काल-रक्षित' थे, अर्थात् उसको घेरकर काल शत्रुओं से उन्हें पूर्ण सुरक्षा प्रदान कर रहा था।

कुत्ता—वफादारी का सर्वस्वीकृत प्रतीक है। 'सरमा' की कथा इस तथ्य की साक्षी है। कबूतर केतु का वाहन होने के नाते अशुभ विनाश का द्योतन करता है तो सिंह शक्ति का। कोकिल संगीत का बिंब है तो मृग संगीतप्रेमियों का।

कौए— अतिथि-आगमन के सूचक हैं और **गाय**—माता स्वरूपिणी हैं—सब इच्छाएं पूर्ण करने वाली। सबका पालन करने वाली 'कामधेनु' है।

मिथक कथाओं के भावनात्मक प्रतीक

साहित्य में अधिकतर पौराणिक गाथाओं का निर्माण मनुष्य को कर्त्तव्य तथा अकर्त्तव्य समझाते हुए उदाहरण देने के निमित्त किया गया है। ऐसी कथाओं को विदेश में मिथ और भारत में मिथक कहकर पुकारा जाता है। मिथक-साहित्य में कुछ कथाएं भावनात्मक प्रतीक का सुंदर उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। उदाहरण के लिए भारत में समुद्र-मंथन की कथा प्रसिद्ध है जो इस प्रकार है :

एक बार देवताओं और असुरों ने शेषनाग को रस्सी और सुमेरु पर्वत को मथानी बनाकर समुद्र-मंथन किया। फलतः उन्हें क्रमशः कामधेनु, वारुणी देवी, पारिजात, अप्सराएं, चंद्रमा, लक्ष्मी, धन्वंतरी तथा अमृत की प्राप्ति हुई।

यह कथा जनसाधारण की प्रतिक्षण की मानसिक गतिविधि का प्रतिनिधित्व करती है। समुद्र-मंथन के लिए दूसरा नाम 'मानस-मंथन' है। 'मानस' का अभिप्राय है हृदय। प्रत्येक मनुष्य के हृदय में अच्छी और बुरी दोनों वृत्तियां विद्यमान होती हैं। जिस प्रकार की भावना अधिक हो, उसी प्रकार का मनुष्य बन जाता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि देवता और दानव एक ही पिता की संतान थे—जिसका नाम कश्यप था। ठीक इसी प्रकार हृदय में अच्छी-बुरी दोनों प्रवृत्तियां किसी भी मनुष्य के हृदय में हो सकती हैं। जब तक वे क्रियाशील नहीं होतीं, हृदय की स्थिति शांत क्षीर सागर की तरह रहती है। जब वे कुछ प्राप्त करना चाहती हैं तो हृदय की शांति भंग हो जाती है और वह अनेकों विचारों की थपेड़ों से मथा जाने लगता है। इस श्रम से जो खीज, उद्वेलन उत्पन्न होता है, वह उस विष के समान है जो शिव ने शांत किया; अर्थात् काम में लगी कल्याणकारी भावनाएं कठिन परिश्रम की खीज को पी जाती हैं। पहली उपलब्धि कामधेनु की होने से अभिप्राय है—अनेक इच्छाओं का जाग्रत् होना तथा उन्हें तृप्त करना। कामधेनु इच्छाओं को तृप्त करने

वाली मानी जाती है। मानसमंथन से दूसरी वस्तु 'वारुणी देवी' नामक सुंदर नारी, तीसरी वस्तु पारिजात पुष्प का वृक्ष, फिर अप्सराएं प्रकट हुईं जो कि नृत्य और संगीत में लीन थीं। ये प्रतीक इस ओर संकेत करते हैं कि मानसमंथन की प्रक्रिया में आंख (सौंदर्य), नाक (सुगंध पुष्प), कान (संगीत), त्वचा (अप्सराएं) आदि समस्त इंद्रियों के विषय बार-बार हृदय में उद्वेलन उत्पन्न करते हैं। उद्वेलन की शांति के लिए कोई-न-कोई चंद्रमा की तरह शीतलता प्रदान करने वाला व्यक्तित्व प्रकट होता है। मानसिक ऊहापोह के उन क्षणों में शांति प्रदान करनेवाले तत्त्व का स्वागत कल्याणकारी प्रवृत्ति ही करती है, जैसे शिव ने चंद्रमा को ग्रहण किया। विष उन बुरे विचारों का प्रतीक है जो सबका नाश कर सकता है। कल्याणकारी प्रवृत्तियां उसका कड़वा घूंट पीकर भी शांत रहती हैं ताकि विवाद और त्रास न बढ़े; किंतु लक्ष्मी (धन) की चमक-दमक भला किसे मोहित नहीं कर लेती, सो विष्णु और देवताओं के प्रतीक रूप में मनुष्य की सुवृत्तियां धन की चकाचौंध में अपना कर्त्तव्य-कर्म भुला बैठती हैं। ऐसे क्षणों में कुवृत्तियां अमृत (सार तत्त्व) का भोग करके पुष्ट होने का प्रयास करती हैं। दूसरे शब्दों में कर्त्तव्य पथ से भटका हुआ मनुष्य जीवन के सार तत्त्व (अमृत) को खोता देख टेढ़ी अंगुली से घी निकालने के लिए तैयार हो जाता है। इस तथ्य का स्पष्टीकरण विष्णु ने सुंदरी मोहिनी का रूप धारण करके किया। अमृत की प्राप्ति ने इतना मस्त कर दिया कि वे देवताओं के वेश में छिपे हुए 'राहू' को भी कुछ बूंदें थमा गये। ज्ञान के प्रकाश से युक्त सूर्य और चंद्रमा ने अज्ञान का अंधकार हटाकर 'मोहिनी' रूपी विष्णु को बताया तो विष्णु ने राहू का सिर सुदर्शन-चक्र से काट डाला। पर अमृत पीकर वह भला कहां मर सकता था, अतः उसका सिर राहू और धड़ केतू नामक राक्षस के रूप में जाग उठे। उनकी सूर्य और चंद्रमा से शत्रुता है।

तात्पर्य यह कि मनुष्य की कोई बुरी वृत्ति कभी-कभी बहुत पनप जाती है। मनुष्य जागरूक हो तो उस वृत्ति को नष्ट करने का प्रयास करता है किंतु—जो बुराई बहुत पनप चुकी हो, वह बार-बार उभरती है, कभी-कभी समझ और ज्ञान के प्रकाश को वैसे ही ढक देती है जैसे राहू-केतू सूर्य और चंद्रमा के प्रकाश को ढक लेते हैं—पर अच्छी वृत्तियों का विकास उन्हें बार-बार दबा देता है, वैसे ही जैसे सूर्य और चंद्रमा का प्रकाश अज्ञान के अंधकार को बहुत देर तक टिकने नहीं देता।

अनेक जड़ पदार्थ भी किसी-न-किसी भावना के प्रतीक रूप में दर्शनीय हैं। 'सुदर्शन-चक्र' विष्णु की शक्ति तथा समय की गति का प्रतीक है। 'शंख' 'नाद ब्रह्म' का। एक कथा है कि विश्वकर्मा ने सूर्य के असीम तेज को काट-छांटकर उसे जगत् के भोग के योग्य रूप प्रदान किया था। सूर्य से निकाले तेज से सुदर्शन चक्र तथा त्रिशूल का निर्माण हुआ। अतः इन दोनों में तीनों शक्तियों की समाहिती है। फलतः ये दोनों तीनों शक्तियों के प्रतीक माने गये हैं। शक्ति के तीन रूपों से अभिप्राय है—भौतिक, दैविक तथा आध्यात्मिक शक्ति।

रंग भी विभिन्न भावों के प्रतीक रूप में दर्शनीय हैं। श्वेत वर्ण ज्ञान का प्रतीक है तो काला रंग अंधकार अथवा अज्ञान का। बीभत्स रस का प्रतीक भी काला रंग माना गया है। नीला रंग गहनता का द्योतक है तो गुलाबी रंग 'राग' का। हरा रंग फलने-फूलने की ओर इंगित करता है तो पीला रंग भय, आतंक तथा सूखने की वृत्ति की ओर। भारतीय संस्कृति में श्वेतवर्ण सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। वह शांति, स्वच्छता तथा सत्त्वगुण के रूप में समस्त भावों के पृष्ठाधार का प्रतीक माना गया है। प्रकृति के आंगन में फैली हुई वनस्पति भी किसी-न-किसी भाव के साथ जुड़ी हुई दिखलायी पड़ती है।

तुलसी लक्ष्मी का प्रतीक मानी जाती है। अतः सायंकाल में तुलसी के सम्मुख दीपक जलाने का रिवाज है। पीपल साक्षात् विष्णु का प्रतीक कहा जाता है, अतः उसको उखाड़ने की व्यवस्था नहीं है। भारत में पीपल की पूजा बहुत प्रचलित है। वट वृक्ष शिवाराधना का प्रतीक है। शिव कल्याणकारी देवता हैं। वट वृक्ष को उनका प्रतीक मानने का कारण यह है कि वट का पेड़ अक्षय है, उसकी कभी समाप्ति नहीं होती—अपितु उसकी टहनी से लटकती जटा फिर से जड़ पकड़ती चलती है।

खगोलशास्त्र भी प्रतीकात्मकता से ओतप्रोत है। सूर्य और चंद्रमा ज्योतिपुंज हैं। सूर्य की किरणें 'जीवनदायिनी' हैं, सो सूर्य 'जीवन' का प्रतीक है—चंद्रमा शीतलता का। 'ध्रुव' दृढ़ता का द्योतक है तो राहू और केतू विनाश के प्रतीक कहे जाते हैं। सप्तर्षियों के साथ चमकता अरुंधती नामक तारक सतीत्व का प्रतीक बन चुका है। दूसरी ओर उल्कापात विपत्ति का।

मिथक साहित्य में प्रतीक-योजना अनंत हैं—कहने की अपेक्षा यह कहना अधिक उपयुक्त लगता है कि वह स्वयं प्रतीक है, अतः गहन भावों को व्यक्त करने के लिए मिथक का सहारा लेना पड़ता है। दूसरी ओर मिथकों के आंचल की ओट पाकर गहनतम भाव चिरकाल तक सुरक्षित रह पाते हैं।

मिथक साहित्य में स्वर्ग-नरक का भौगोलिक स्वरूप

मिथक साहित्य में स्वर्ग-नरक का सविस्तार वर्णन उपलब्ध है। स्वर्ग का अभिप्राय एक ऐसे लोक से है जिसमें मानव अपनी समस्त आकांक्षाओं को पूरा कर सकता है। वैदिक साहित्य में स्वर्ग शब्द का प्रयोग 'स्वः' अथवा 'स्वर' शब्द के लिए किया गया है—जिसका अभिप्राय सुख या ज्योति है।[१] उपनिषदों में वह सुख अथवा प्रकाश से युक्त प्रदेश के लिए किया गया है :

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति।

—कठोपनिषद्

ऐसे लोक में पहुंचने के लिए हर व्यक्ति का लालायित होना अवश्यंभावी है। ऋग्वेद में उक्ति है कि स्वर्ग वह स्थान है जिसमें मनुष्य को जो कुछ आदर्श रूप में प्राप्त करने की इच्छा होती है, वह सब मिलता है। अतः काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से उत्पन्न क्लेश आदि का कण मात्र भी वहां नहीं होता। मनवांछित समस्त आनंद आमोद-प्रमोद स्वर्गस्थित है[२] जिनकी उपलब्धि जगत् में असंभव है।

मानव-जीवन को त्रस्त रखनेवाला स्थान नरक कहलाता है। वह दुःख, सुख, अज्ञान आदि के अंधकार से व्याप्त है। स्वकर्मों के अनुसार ही मानव दोनों में से किसी एक लोक में प्रवेश करने का अधिकारी माना जाता है।

१. दे० अमरकोश

२. यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रह्मस्य विष्टपम्।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृत कृधि॥
यत्रानदाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधि॥

—ऋ० मंडल, ९।११३।१०-११

वाली मानी जाती है। मानसमंथन से दूसरी वस्तु 'वारुणी देवी' नामक सुंदर नारी, तीसरी वस्तु पारिजात पुष्प का वृक्ष, फिर अप्सराएं प्रकट हुईं जो कि नृत्य और संगीत में लीन थीं। ये प्रतीक इस ओर संकेत करते हैं कि मानसमंथन की प्रक्रिया में आंख (सौंदर्य), नाक (सुगंध पुष्प), कान (संगीत), त्वचा (अप्सराएं) आदि समस्त इंद्रियों के विषय बार-बार हृदय में उद्वेलन उत्पन्न करते हैं। उद्वेलन की शांति के लिए कोई-न-कोई चंद्रमा की तरह शीतलता प्रदान करने वाला व्यक्तित्व प्रकट होता है। मानसिक ऊहापोह के उन क्षणों में शांति प्रदान करनेवाले तत्त्व का स्वागत कल्याणकारी प्रवृत्ति ही करती है, जैसे शिव ने चंद्रमा को ग्रहण किया। विष उन बुरे विचारों का प्रतीक है जो सबका नाश कर सकता है। कल्याणकारी प्रवृत्तियां उसका कड़वा घूंट पीकर भी शांत रहती हैं ताकि विवाद और त्रास न बढ़े; किंतु लक्ष्मी (धन) की चमक-दमक भला किसे मोहित नहीं कर लेती, सो विष्णु और देवताओं के प्रतीक रूप में मनुष्य की सुवृत्तियां धन की चकाचौंध में अपना कर्त्तव्य-कर्म भुला बैठती हैं। ऐसे क्षणों में कुवृत्तियां अमृत (सार तत्त्व) का भोग करके पुष्ट होने का प्रयास करती हैं। दूसरे शब्दों में कर्त्तव्य पथ से भटका हुआ मनुष्य जीवन के सार तत्त्व (अमृत) को खोता देख टेढ़ी अंगुली से घी निकालने के लिए तैयार हो जाता है। इस तथ्य का स्पष्टीकरण विष्णु ने सुंदरी मोहिनी का रूप धारण करके किया। अमृत की प्राप्ति ने इतना मस्त कर दिया कि वे देवताओं के वेश में छिपे हुए 'राहू' को भी कुछ बूंदें थमा गये। ज्ञान के प्रकाश से युक्त सूर्य और चंद्रमा ने अज्ञान का अंधकार हटाकर 'मोहिनी' रूपी विष्णु को बताया तो विष्णु ने राहू का सिर सुदर्शन-चक्र से काट डाला। पर अमृत पीकर वह भला कहां मर सकता था, अतः उसका सिर राहू और धड़ केतू नामक राक्षस के रूप में जाग उठे। उनकी सूर्य और चंद्रमा से शत्रुता है।

तात्पर्य यह कि मनुष्य की कोई बुरी वृत्ति कभी-कभी बहुत पनप जाती है। मनुष्य जागरूक हो तो उस वृत्ति को नष्ट करने का प्रयास करता है किंतु—जो बुराई बहुत पनप चुकी हो, वह बार-बार उभरती है, कभी-कभी समझ और ज्ञान के प्रकाश को वैसे ही ढक देती है जैसे राहू-केतू सूर्य और चंद्रमा के प्रकाश को ढक लेते हैं—पर अच्छी वृत्तियों का विकास उन्हें बार-बार दबा देता है, वैसे ही जैसे सूर्य और चंद्रमा का प्रकाश अज्ञान के अंधकार को बहुत देर तक टिकने नहीं देता।

अनेक जड़ पदार्थ भी किसी-न-किसी भावना के प्रतीक रूप में दर्शनीय हैं। 'सुदर्शन-चक्र' विष्णु की शक्ति तथा समय की गति का प्रतीक है। 'शंख' 'नाद ब्रह्म' का। एक कथा है कि विश्वकर्मा ने सूर्य के असीम तेज को काट-छांटकर उसे जगत् के भोग के योग्य रूप प्रदान किया था। सूर्य से निकाले तेज से सुदर्शन चक्र तथा त्रिशूल का निर्माण हुआ। अतः इन दोनों में तीनों शक्तियों की समाहिती है। फलतः ये दोनों तीनों शक्तियों के प्रतीक माने गये हैं। शक्ति के तीन रूपों से अभिप्राय है—भौतिक, दैविक तथा आध्यात्मिक शक्ति।

रंग भी विभिन्न भावों के प्रतीक रूप में दर्शनीय हैं। श्वेत वर्ण ज्ञान का प्रतीक है तो काला रंग अंधकार अथवा अज्ञान का। बीभत्स रस का प्रतीक भी काला रंग माना गया है। नीला रंग गहनता का द्योतक है तो गुलाबी रंग 'राग' का। हरा रंग फलने-फूलने की ओर इंगित करता है तो पीला रंग भय, आतंक तथा सूखने की वृत्ति की ओर। भारतीय संस्कृति में श्वेतवर्ण सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। वह शांति, स्वच्छता तथा सत्त्वगुण के रूप में समस्त भावों के पृष्ठाधार का प्रतीक माना गया है। प्रकृति के आंगन में फैली हुई वनस्पति भी किसी-न-किसी भाव के साथ जुड़ी हुई दिखलायी पड़ती है।

तुलसी लक्ष्मी का प्रतीक मानी जाती है। अतः सायंकाल में तुलसी के सम्मुख दीपक जलाने का रिवाज है। पीपल साक्षात् विष्णु का प्रतीक कहा जाता है, अतः उसको उखाड़ने की व्यवस्था नहीं है। भारत में पीपल की पूजा बहुत प्रचलित है। वट वृक्ष शिवाराधना का प्रतीक है। शिव कल्याणकारी देवता हैं। वट वृक्ष को उनका प्रतीक मानने का कारण यह है कि वट का पेड़ अक्षय है, उसकी कभी समाप्ति नहीं होती—अपितु उसकी टहनी से लटकती जटा फिर से जड़ पकड़ती चलती है।

खगोलशास्त्र भी प्रतीकात्मकता से ओतप्रोत है। सूर्य और चंद्रमा ज्योतिपुंज हैं। सूर्य की किरणें 'जीवनदायिनी' हैं, सो सूर्य 'जीवन' का प्रतीक है—चंद्रमा शीतलता का। 'ध्रुव' दृढ़ता का द्योतक है तो राहू और केतू विनाश के प्रतीक कहे जाते हैं। सप्तर्षियों के साथ चमकता अरुंधती नामक तारक सतीत्व का प्रतीक बन चुका है। दूसरी ओर उल्कापात विपत्ति का।

मिथक साहित्य में प्रतीक-योजना अनंत हैं—कहने की अपेक्षा यह कहना अधिक उपयुक्त लगता है कि वह स्वयं प्रतीक है, अतः गहन भावों को व्यक्त करने के लिए मिथक का सहारा लेना पड़ता है। दूसरी ओर मिथकों के आंचल की ओट पाकर गहनतम भाव चिरकाल तक सुरक्षित रह पाते हैं।

मिथक साहित्य में स्वर्ग-नरक का भौगोलिक स्वरूप

मिथक साहित्य में स्वर्ग-नरक का सविस्तार वर्णन उपलब्ध है। स्वर्ग का अभिप्राय एक ऐसे लोक से है जिसमें मानव अपनी समस्त आकांक्षाओं को पूरा कर सकता है। वैदिक साहित्य में स्वर्ग शब्द का प्रयोग 'स्वः' अथवा 'स्वर' शब्द के लिए किया गया है—जिसका अभिप्राय सुख या ज्योति है।[1] उपनिषदों में वह सुख अथवा प्रकाश से युक्त प्रदेश के लिए किया गया है :

स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति।

—कठोपनिषद्

ऐसे लोक में पहुंचने के लिए हर व्यक्ति का लालायित होना अवश्यंभावी है। ऋग्वेद में उक्ति है कि स्वर्ग वह स्थान है जिसमें मनुष्य को जो कुछ आदर्श रूप में प्राप्त करने की इच्छा होती है, वह सब मिलता है। अतः काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि से उत्पन्न क्लेश आदि का कण मात्र भी वहां नहीं होता। मनवांछित समस्त आनंद आमोद-प्रमोद स्वर्गस्थित है[2] जिनकी उपलब्धि जगत् में असंभव है।

मानव-जीवन को त्रस्त रखनेवाला स्थान नरक कहलाता है। वह दुःख, सुख, अज्ञान आदि के अंधकार से व्याप्त है। स्वकर्मों के अनुसार ही मानव दोनों में से किसी एक लोक में प्रवेश करने का अधिकारी माना जाता है।

१. दे० अमरकोश

२. यत्र कामा निकामाश्च यत्र ब्रध्नस्य विष्टपम्।
स्वधा च यत्र तृप्तिश्च तत्र माममृत कृधि॥
यत्रानन्दाश्च मोदाश्च मुदः प्रमुद आसते
कामस्य यत्राप्ताः कामास्तत्र माममृतं कृधि॥

—ऋ० मंडल, ९।११३।१०-११

वर्तमान युग के संदर्भ में प्रस्तुत मंतव्य विचार का विषय बन बैठा है क्योंकि आज यह अवधारणा है कि स्वर्ग और नरक नामक लोकों की प्राप्ति मृत्यु के उपरांत होती है। पुरा साहित्य में इस प्रकार के संकेत नहीं मिलते।

मिथकों के अनुसार पूर्वलिखित दोनों लोकों के प्रवेश-द्वार पर यमराज का अनुशासन रहता है। उसके चार आंखों वाले चितकबरे कुत्ते, नृचक्षसौ (मानव-कृत्यों को देखने वाले तथा मार्ग के रखवाले कुत्ते) माने गये हैं। कर्मानुसार लोक विशेष की ओर बढ़ने का अवसर वे ही प्रदान करते हैं।

इस प्रकार की उक्तियां सिद्ध करती हैं कि भारत भौगोलिक दृष्टि से स्वर्ग तथा नरक में विभक्त था। उनकी विभाजन-रेखा का नियंत्रण यमराज के हाथ में रहता था।

वैदिक साहित्य, महाभारत, रामायण तथा पुराणों आदि में स्वर्ग, नरक से संबद्ध जिन भौगोलिक तथा ऐतिहासिक तथ्यों का उल्लेख है उनकी उपेक्षा करना असंभव है। स्वर्ग से संबद्ध स्थलों में हिमालय, भागीरथी, कैलास पर्वत, मानसरोवर, अलकनंदा, त्रिविष्टप् आदि की चर्चा प्रचुर मात्रा में मिलती है। रामायण काल में, ईसा से दस हजार वर्ष पूर्व रचित भृगुसूत्रों में, ईसा से दो सौ वर्ष पूर्व रचित मनुस्मृति में, इसी प्रकार अन्य अनेक ग्रंथों में जो भौगोलिक तथ्य स्वीकृत थे, उन्हें आज नकारा नहीं जा सकता।

महाभारत के वनपर्व में कथा है कि महर्षि लोमश स्वर्गलोक में इंद्र से मिलने गये। इंद्र के सिंहासन के आधे भाग में अर्जुन को बैठा देख उन्हें आश्चर्य हुआ तो इंद्र ने कहा—"आपके मन के प्रश्न का समाधान करने के लिए कहता हूं कि अर्जुन केवल मरणधर्मा नहीं है। वह अस्त्र-शस्त्र विद्या सीखने के लिए यहां आया है।"[१] लोमश ऋषि ने युधिष्ठिर को अपनी स्वर्ग-यात्रा विषयक जो संस्मरण सुनाये, उनमें प्रादेशिक भूगोल का स्पष्ट चित्र अंकित हो जाता है।

महाभारत के महाप्रस्थानिक पर्व में स्वर्गारोहण प्रसंग से स्पष्ट हो जाता है कि स्वर्ग हिमालय के राज्य को पुकारा जाता था, जिसमें तिब्बत (त्रिविष्टप्) स्थित 'नंदन कानन' नामक इंद्र का प्रदेश था।[२] संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रंथ 'अमरकोश' में भी स्वर्ग के पर्यायवाची शब्दों में त्रिविष्टप् (तिब्बत) का नाम अंकित है। भारत देश में 'स्वर्ग' नामक प्रदेश का निवास अत्यंत सुखकर था। प्रायः वयोवृद्ध सुकर्मी, संन्यासी स्वर्ग के लिए प्रस्थान करते थे। ऋग्वेद में 'सुकृतामुलोकम्' तथा अथर्ववेद में 'सुकृतस्य लोकम्' कहना इसी तथ्य का द्योतक है कि मनुष्य सुकर्म के बल पर सदेह स्वर्ग प्राप्त कर सकता था।

भृगु, अंगिरा, वसिष्ठ, कश्यप, अगस्त, पुलस्त्य, असित, गौतम आदि महर्षियों से संबद्ध अनेक कथाएं हैं कि वे लोग स्वर्ग गये और वहां से अनेक विद्याओं में पारंगत होकर वापस लौटे। उन्होंने संहिताओं की रचना की, विश्वविद्यालय चलाये तथा शिष्यों की एक लंबी परंपरा स्थापित कर दी। निश्चय ही वे सब वर्तमान अर्थ में स्वर्गवासी नहीं हुए थे। ऐसी अनेक कथाएं हैं जो सिद्ध करती हैं कि स्वर्गगमन मृत्यु का बोधक नहीं था।

१. नायं केवलमर्त्यो वै मानुषत्वमुपागतः ॥ ७ ॥

× × ×

अस्त्रहेतोरिह प्राप्तः कस्माच्चित् करणान्तरात् ॥ ८ ॥

—महाभारत, वनपर्व, अध्याय ४७

२. त्रिविष्टपं शक्र इवामितौजा ।

—वही, ७।२६४

डॉ० रामाश्रय शर्मा ने लिखा है कि पौराणिक साहित्य के अनुसार न केवल युद्ध के अवसर पर अभिहित वीर का वरण करने के लिए अप्सराएं प्रतीक्षा करती थीं, अपितु वे उनके पार्थिव रूप में ही उनकी संगिनी बनना चाहती थीं। इसी प्रकार वन अथवा पर्वत पर विहार करती हुई मानव सुंदरी पर मुग्ध होकर देवता उसका वरण करते थे।[1]

उर्वशी नामक अप्सरा ने मर्त्यलोक में इंद्र के समान तेजस्वी नहुष नामक पुत्र को जन्म दिया तथा वह पुनः इंद्रलोक चली गयी।[2] इसी प्रकार मेनका की कथा है कि उसने विश्वामित्र तथा यम के तप भंग कर दिये। फिर गौतमी नदी से जा मिली। नदी के प्रभाव से वह स्वर्ग चली गयी।[3] नहुष ने तपस्या के बल से इंद्र-पद प्राप्त किया। तपस्वियों पर क्रुद्ध हो वातापी को कोड़ा मारने के कारण वह पुनः पतित होकर मर्त्यलोक में गिरा।[4] स्पष्ट है कि पृथ्वी-स्थित मनुष्य सशरीर स्वर्ग जा सकते थे। देव, गंधर्व इत्यादि भी मर्त्यलोक का पर्यटन करते रहते थे।

स्वर्ग में देव, नाग, यक्ष, गंधर्व तथा किन्नर नामक पांच जातियां निवास करती थीं।[5] पांचों जातियों के निवासानुसार स्वर्ग पांच लोकों में विभक्त था—देवलोक, नागलोक, यक्ष-लोक, गंधर्वलोक तथा किन्नरलोक।

देवों का निवासस्थान देवलोक कहलाता था। वह नंदन कानन में स्थित था जिसपर इंद्र का आधिपत्य था। इंद्र देववंश की प्रमुख उपाधि थी।

नागलोक का शासन-केंद्र कैलास पर्वत था। शिव उसके गण नायक थे। मानसरोवर और धौलागिरि के उत्तर में कैलास पर्वत है। काश्मीर, सिक्यिांग (हरिवर्ष), हाटक (लद्दाख), कार्तस्वर (कराकोरम), सिंधुकोष (हिंदुकुश), गंधार, कंबोज (काबुल घाटी) तथा सुमेरु (थिनशियान पर्वत) नागलोक में सम्मिलित थे। आज भी वहां के अनेक स्थानों के नामों के साथ 'नाग' शब्द का प्रयोग किया जाता है, जैसे : बैरीनाग, अनंतनाग, शेषनाग, आदि वहां की प्रसिद्ध झीलें हैं। सुमेरु पर्वत नागलोक की पश्चिमी सीमा है।

यक्षलोक का शासन-केंद्र अलकापुरी था। कुबेर वहां के गणपति थे। हिमालय में आज भी अलकापुरी बांक नामक प्रदेश है। अलकनंदा की धारा ने इसे तीन ओर से घेरा हुआ था। अलकापुरी के निवासियों की आनंदमय क्रीड़ाओं का साधन होने के कारण ही वह अलकनंदा कहलायी। अलकापुरी से लेकर कुमाऊं और गढ़वाल का प्रदेश कुबेर का गण-राज्य था। कुबेर की संपत्ति स्वर्ग की गरिमा थी। कुबेर के राज्य के एक ओर प्रवेशद्वार हरिद्वार था तथा दूसरी ओर सिंधुकोष (हिंदुकुश) से अमरावती जानेवाला व्यवसायीवर्ग के निमित्त खुला हुआ मार्ग था। दोनों मार्गों पर लगा प्रवेश-शुल्क कुबेर को अपरिमित आय प्रदान करता था। इस साधन से उपलब्ध धनराशि उसके वैभव का अंग थी।

किन्नर लोक यक्षलोक के पश्चिमोत्तर में स्थित था। उसमें कुल्लू, चंबा, कांगड़ा, सप्तसिंधु तथा जम्मू के प्रदेश सम्मिलित थे। विपासा (व्यास), इरावती (रावी), चंद्रभागा

१. मिथक साहित्य : विविध संदर्भ, पृ० १२८
२. वाल्मीकि रामायण, उत्तर कांड, श्लोक १३-५६
३. वही, बालकांड, सर्ग ६३, श्लोक १-२०
ब्रह्म पुराण ८६
४. देवी भागवत ६।७-९
५. स्वर्ग-नरक की भौगोलिक व्याख्या (भाषण)
—श्री रणवीर विद्यावाचस्पति

(चिनाब) नामक नदियों का उद्गम स्थल भी किन्नरलोक ही था—आज भी है। इसके अधिपति भी कुबेर ही थे। 'साम गायन' में किन्नर जाति के लोगों के समकक्ष किसी दूसरे वर्ग को नहीं रखा जा सकता था। राहुल सांकृत्यायन[1] ने अपनी यात्रा के संदर्भ में लिखा है कि किन्नर प्रदेश सत्तर मील लंबा तथा उतना ही चौड़ा है—वह समुद्र के स्तर से ५००० से ११००० फीट ऊंचा प्रदेश है। उन्होंने किन्नर प्रदेश की सीमा देहरादून के निकट कालसी नामक स्थान से मानी है—जहां अशोक का एक शिलालेख भी उपलब्ध है। इसकी राजधानी लाहुल (कुल्लू) रही होगी। इस प्रदेश पर सदियों तक शकदेश (ताशकंद) की ओर से पिशाचों और राक्षसों के आक्रमण होते रहे—किंतु स्वर्ग के निवासियों ने शत्रुओं को सदैव परास्त किया। संभवत: अरबी, फारसी तथा उर्दू में प्रयुक्त होने वाली कहावत 'लाहौल विला कुब्बत' [कुब्बत (शक्ति) के बिना लाहौल कैसे जीता जा सकता है] का श्रीगणेश भी वहीं से हुआ होगा। महाभारत में इस प्रदेश का अंकन किंपुरुष खंड के अंतर्गत हुआ है। गंधमादन पर्वत भी वहीं स्थित था। वहां की प्राकृतिक छटा का अंकन युधिष्ठिर की स्वर्ग-यात्रा के संदर्भ में है, जब वह धनुर्विद्या सीखने गये अर्जुन से मिलने गये थे।

गंधर्वलोक की राजधानी पुष्कलावती थी जो आज चारसद्दा कहलाती है। यह स्थल निरंतर देवासुर संग्राम से जुड़ा रहा—न जाने कितनी बार दोनों समुदायों की युद्धभूमि बना। गंधर्वलोक की सीमा में सुवास्तु (स्वात नदी का कछार), सिंधुकोष (हिंदुकुश), तुरुष्क (तुर्किस्तान) निषध तथा कांबोज शामिल थे। यह सिंध के दोनों ओर का प्रदेश था। इसका गणनायक चित्रसेन था। धृतराष्ट्र की पत्नी गांधारी भी इसी प्रदेश की थी। गंधर्वों की संगीत और नृत्य में विशेष गति थी। समस्त मिथक-साहित्य इस तथ्य को पुष्ट करता है।

डॉ० रामाश्रय शर्मा के अनुसार :

'अथर्ववेद और तैत्तिरीय संहिता में 'नरक' शब्द का प्रयोग हुआ है। उसे 'अधमतस', 'अंधतमस' और 'कृष्णतमस्' कहा गया है। जिसप्रकार पुण्यकर्म करने वाला स्वर्ग का अधिकारी बनता है, उसी प्रकार पापकर्म करने वाला नरक में धकेला जाता है।'[2]

वाजसनेयि संहिता के अनुसार हत्या मनुष्य को नरक में ले जाती है— 'नारकाय वीरहणम्।'

सामाजिक व्यवस्था स्थापित होने से पूर्व नरक में जंगल ही जंगल था। भौगोलिक दृष्टि से विंध्याचल दक्षिणापथ की उत्तरी सीमा तथा दंडकारण्य अंतिम छावनी थी। हिमालय तथा विंध्य का मध्यवर्गी प्रदेश नितांत निर्जन था—वही नरक कहलाता था।

कुकर्म करने वाला व्यक्ति स्वर्गच्युत कर दिया जाता था। वह निर्जन नरक में निवास करता था—कुकर्म का फल भोगता था। स्वर्ग में उपलब्ध अस्त्र-शस्त्र, भोज्य पदार्थ, सोम सुविधा आदि से दूर नरक में वास करने वाले लोग 'मनुष्य' कहलाने लगे क्योंकि वे अपने मन से विचार कर, नरक-स्थित पत्थर, पेड़, पत्तों, पानी आदि से अस्त्र-शस्त्र तथा भोज्य पदार्थ आदि का निर्माण करते थे।[3] तभी तो वे उस नारकीय प्रदेश में एकाकी जी पाते थे। धीरे-धीरे अनेक यक्ष, किन्नर, गंधर्व, नाग और देव नरक में धकेले गये। विभिन्न वर्गों के

१. किन्नर देश में—राहुल सांकृत्यायन।
२. मिथक साहित्य : विविध संदर्भ, पृ० १२६
३. 'मनुष्य: कस्मात् ? मत्वा कर्माणि सीव्यन्ति।'

—निरुक्त

नर-नारियों के परस्पर संबंधों ने संतानोत्पत्ति की। धीरे-धीरे नरकवासियों की जनसंख्या बढ़ती गयी। नरकलोक को मर्त्यलोक की संज्ञा दे दी गयी। मर्त्यलोक वासियों ने तरह-तरह के सांस्कृतिक कार्य किये। अस्त्र-शस्त्र से लेकर पंचेंद्रियों से संबद्ध समस्त तत्त्वों का संस्कार करते हुए वे कहीं-कहीं तो स्वर्ग के निवासियों से भी अधिक उन्नत दिखाये गये हैं। इसका प्रमाण दशरथ विषयक मिथक है। एक बार देवासुर संग्रामों की बहुलता से त्रस्त होकर ब्रह्मा ने कहा—"जिस ओर से दशरथ लड़ेंगे, वही पक्ष विजयी होगा।" अत: देवदूतवायु द्वारा मर्त्यलोक स्थित अवधपुरी के राजा दशरथ को देवताओं की ओर से युद्ध करने के लिए आमंत्रित किया गया। दशरथ के साथ कैकेयी भी युद्धस्थली पर पहुंची—नमुचि ने दशरथ के रथ की धुरी बाणों से नष्ट कर दी। कैकेयी ने अपने हाथ से रथ की धुरी को थामा। दशरथ की सहायता से देवतागण विजयी हो पाये।

मर्त्यलोक में जन्म लेने वाले अनेक मनुष्यों ने स्वर्गार्जन किया। नचिकेता सशरीर स्वर्ग जाकर पुन: मर्त्यलोक लौट आये।[1] इस प्रकार की कथाएं स्वर्ग-नरक की भौगोलिक सीमाओं को स्पष्ट करती हैं। स्वर्ग का पर्यटन कोई भी सदाचारी व्यक्ति कर सकता था। मिथक साहित्य के अनुसार तत्कालीन भारत वर्तमान भारत की अपेक्षा बहुत अधिक विस्तृत था। स्वर्ग-नरक के भौगोलिक प्रदेशों को छोड़कर दक्षिणापथ में भी कुछ जातियों का निवास था। परवर्ती काल में स्वर्ग और नरक की भौगोलिक मान्यताएं नष्ट हो गयीं तथा दोनों का कल्पनात्मक स्वरूप मान्य हो गया। संपूर्ण पृथ्वी को मर्त्यलोक स्वीकार कर लिया गया। वर्तमान समाज के परिवेश में तीन लोकों की कल्पना है। मर्त्यलोक अथवा भूलोक में किये सुकर्म स्वर्ग की ओर ले जाते हैं तथा कुकर्म नरक की ओर। स्वर्ग और नरक का नियंता, यम भी एक कल्पनात्मक रूप में विद्यमान है। स्वर्ग और नरक का सूक्ष्म रूप उभरने के साथ-साथ स्वीकार कर लिया गया कि मृत्यूपरांत स्थूल शरीर का परित्याग कर —कर्म फल भोगने के लिए हमारी सूक्ष्म आत्मा ही अपने कर्मों के अनुसार उन लोकों में पहुंचती है—अत: भौतिक मृत्यु के उपरांत ही उन दोनों लोकों का अधिवास प्राप्त होता है। कर्म के फल मनुष्य के पुनर्जन्म के मूल में स्थित रहते हैं। तत्कालीन पितर संबंधी मान्यताएं भी अद्भुत थीं। अपने पुत्र और पौत्रों को फलता-फूलता छोड़ सुकर्मों के आधार पर वृद्धावस्था में स्वर्ग पधारने वाले लोग 'पितर' कहलाते थे। वे देवताओं के साथ समय व्यतीत करते थे।[2] वे देवताओं के साथ सोमपान के अधिकारी भी माने जाते थे। मर्त्यलोक में रहने वाले उनके पुत्र, बंधु बांधव स्वर्ग-यात्रियों के माध्यम से पितरों के निमित्त उपहार भेजा करते थे।

एक विचित्र परंपरा यह भी थी कि स्वर्ग से च्युत व्यक्ति मर्त्यलोक में पुत्र को जन्म देकर पुन: स्वर्ग जाने का अधिकारी मान लिया जाता था। पुत्र पिता को नरक से मुक्ति दिलाता था।[3] पुत्र जन्म पाते ही पिता के पाप का मोचन आरंभ कर देता था। किशोर अथवा युवक होने पर पुत्र पिता के पापों का वहन कर उसे कष्टमुक्त करने का अधिकारी भी माना गया

१. ये ये कामा दुर्लभाः मर्त्यलोके सर्वान् कामान् छंदसः प्रार्थयस्व।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः॥

—कठोपनिषद्

२. यान् च देवाः ववधुः ये च देवान्।

—प्राचीन भारतीय साहित्य में स्वर्ग-नरक का मिथक—डा० रामाश्रय शर्मा
(मिथक साहित्य : विविध संदर्भ, पृ० १२२)

३. पुम् (नरक)+त्रायते (त्राण दिलाता है)=पुत्रः

था। दशरथ के तीन ब्रह्म हत्याओं (श्रवणकुमार और उसके माता-पिता) को राम, लक्ष्मण और सीता ने परस्पर बांट लिया था तथा दशरथ पापमुक्त हो गये थे।[१] समय के साथ-साथ मान्यताओं में सूक्ष्मता का समावेश होता गया। स्वर्ग और नरक सूक्ष्म भावनामय लोक बन गये। पितर भी वही कहलाने लगे, जो देह त्याग चुके हों। उनके प्रति भेंट आदि के निमित्त सूक्ष्म भावनाओं को ब्राह्मण वर्ग के प्रति अर्पित करने की परंपरा का श्रीगणेश हुआ।

पहले स्वर्गलोक से आकर देवता किसी भी मनुष्य को दर्शन देते थे—अब देवता नहीं आते, उनके अवतरित होने की कल्पना को स्वीकार कर लिया गया है, किंतु अधुनातन अवधारणाओं के मूल में पौराणिक भौगोलिक स्थितियों की उपस्थिति दर्शनीय है। भौगोलिक स्वर्ग में जो कुछ देखा था, स्वर्गच्युत हो मर्त्यलोक में आकर मनुष्य ने उसी की रचना का प्रयास किया। इसी कारण से मंदिरों में प्रतिमाओं की स्थापना का श्रीगणेश हुआ। अधिकांश मंदिरों को उत्तुग हिमश्रृंगों का रूप देने का प्रयास किया गया। प्रत्येक मंदिर का कलश ऊपर से नोकीला और पर्वत-शिखर की भांति काट-छांटकर बनाया जाने लगा। देवताओं का आवास पर्वतीय प्रदेश में था। अत: प्रत्येक मंदिर उर्ध्वगामी कलश से युक्त बनाया जाता है, साथ ही मंदिर में स्थापित प्रतिमा के ऊपर के भाग पर किसी का आवास स्वीकार नहीं किया जाता। अवचेतन मन की परंपरा—मंदिरों की परंपरा को भी अपने संस्कारों के अनुरूप ढालती चल रही है। संस्कारगत परिकल्पना के अनुसार देवी-देवता मृगचर्म, कुशासन, रुद्राक्ष, मोरपंख, धनुष-बाण, चक्र-त्रिशूल आदि से युक्त, हाथी, चूहे, घोड़े, हंस, गरुड़ आदि वाहनों पर प्रतिष्ठित तथा पूजा के निमित्त प्रकृतिजन्य पुष्प, फल तथा कच्चे दूध की मीठी लस्सी आदि ग्रहण करने वाले माने गये हैं। सबसे रोचक बात तो यह है कि जो मंदिर जितना बड़ा सिद्ध पीठ माना जाता है, वह पहाड़ की उतनी ही ऊंची चोटी पर स्थित होता है। उस तक पहुंच पाना उतना ही कठिन कार्य होता है। इन तथ्यों के आधार पर निश्चित रूप से कह सकते हैं कि मिथक साहित्य में विभिन्न लोकों का भौगोलिक आख्यान मिलता है। वर्तमान युग तक पहुंचते-पहुंचते वे स्थूल भौगोलिक प्रदेश भावनात्मक सूक्ष्म रूप ग्रहण करते गये। वर्तमान साहित्य में सूक्ष्म भावबिंदुओं के प्रतीक लोक, मूलत: पृथ्वी पर स्थित भौगोलिक प्रदेश ही थे। अधुनातन पृथ्वी जीवियों के लिए स्वर्ग और नरक नामक लोकों की परिकल्पना उनके क्रिया-कलाप पर अनुशासन करने लगी। एक ओर कुंभीपाक नरक की परिकल्पना डर दिखाकर और दूसरी ओर स्वर्ग की परिकल्पना आलोक से भरपूर सुख-सुविधा से युक्त लोक-प्राप्ति का लालच दिखाकर मनुष्य के क्रियाकलाप पर अनुशासन करने का माध्यम मात्र बनकर रह गयी है। उसका भौगोलिक रूप विस्मृति की गुहा में खो गया है।

ललित कलाएं

संगीत

ललितकलाओं में संगीत का स्थान सर्वोच्च है। संगीत में भी कंठ संगीत सर्वश्रेष्ठ है क्योंकि इसके क्षेत्र में कलाकार आत्मनिर्भर रहता है। उसे किसी प्राकृतिक तत्त्व की सहायता नहीं लेनी पड़ती। प्रत्येक देश में संगीत का आदि रूप धर्म से जुड़ा रहा है तथापि संगीत की उत्पत्ति के विषय में विभिन्न देशों तथा धर्मों से संबद्ध विद्वानों में परस्पर मत-वैभिन्न्य है।

१. ब्रह्म पुराण, १२३

विद्वतापूर्ण शास्त्रों की रचना से इतर मिथक-साहित्य में संगीत-जन्म से संबद्ध अनेक रोचक गाथाएं प्रचलित हैं ।[1]

फारसी में एक कथा है : हजरत मूसा पैगंबर को एक पत्थर दिखायी दिया। जेवरायल नामक एक फरिश्ते ने अचानक प्रकट होकर उस पत्थर की ओर संकेत कर पैगंबर को आदेश दिया कि वे उस पत्थर को सदैव अपने पास रखें । एक दिन पैगंबर बहुत प्यासे थे । उन्हें कहीं पानी नहीं मिला तो उन्होंने खुदा से प्रार्थना की । फलतः पानी की धार उसी पत्थर पर गिरने लगी । पत्थर सात टुकड़ों में बंट गया । धारा भी सात स्रोतों में बंटकर बहने लगी । हर धारा का स्वर दूसरों से भिन्न था । मूसा पैगंबर ने सातों स्वरों को याद कर लिया । सो संगीत का जन्म हुआ । कुछ लोगों के अनुसार 'कोहकाफ' में एक पक्षी है—वह फारसी में 'आतिशजन' कहलाता है । उसकी चोंच में सात छेद होते हैं—जो संगीत के सप्तस्वरों के जनक हैं ।

मलाया की प्रसिद्ध कथा है कि सृष्टि के उद्भव के समय नर-नारी का जन्म हुआ । देवदूत 'जावा' उन्हें परस्पर मिलाना चाहता था जिससे सृष्टि का विस्तार हो । एक दिन उसने स्वप्न में दोनों को मिलाने की विधि देखी । स्वप्न टूटने पर उसने पेड़ की एक टहनी नारी के बालों में उलझा दी । उससे निसृत संगीत के सात स्वरों ने नारी को नृत्य की ओर उन्मुख किया । वह नाचती हुई पुरुष की ओर बढ़ी तो वह पीछे हटता गया । नारी के बालों से टहनी नीचे गिरी तो 'जावा' ने स्वप्नादेशानुसार उसे उठाकर पुरुष के हाथों में पकड़ा दिया । मादक संगीत ने पुरुष को भी आनंदविभोर कर दिया । नर-नारी नृत्य करते-करते मधुर मिलन के बिंदु पर जा पहुंचे । पेड़ की वह टहनी 'किकोल' कहलायी । इस प्रकार 'जावा' को संगीत का जन्मदाता माना गया है ।

यूरोपीय विद्वान वाल्डीवोन ने भी 'द ओरिजिन ऑफ म्यूजिक' नामक पुस्तक में नारी-पुरुष के परस्पर आकर्षण का मूल कारण संगीत को माना है ।

अरब के इतिहासकार 'ओलासीनिज्म' के अनुसार विश्व संगीत की जननी 'बुलबुल' नामक चिड़िया थी । उसके स्वर से चमत्कृत होकर आदिम मानव ने उसकी चहक की प्रति-कृति के रूप में संगीत का विकास किया । पहले नारी ने संगीत सीखा या पुरुष ने, यह स्पष्ट नहीं है । ओलासीनिज्म ने माना कि ईश्वर ने बुलबुल को संगीतवाहक के रूप में भेजा था । इस संगीत ने ही नारी-पुरुष को आकर्षण-सूत्र में आबद्ध किया ।

अफ्रीका के प्रसिद्ध विद्वान इफारी तथा सुप्रसिद्ध संगीतज्ञ 'रिन्सोबोल्स' ने संगीत का उद्गम जलप्रवाह के नाद से माना है ।

मिश्र के कला विशेषज्ञ गवासा के अनुसार संपूर्ण प्रकृति के जड़ चेतन पदार्थों के क्रियाकलाप के उद्भूत निनाद ने संगीत को जन्म दिया ।

जापान के शिकोवा हुयी ने संगीतशास्त्र का इतिहास लिखते हुए उसका जन्मस्थान स्वर्ग माना है, पृथ्वी नहीं ।

'दि स्टेजिस ऑफ म्यूजिक' में जाकोबिल ने संगीत को अनादि अनंत कहा है ।

भारतीय संगीत वेत्ताओं के मंतव्य कुछ भिन्न रूप में अंकित हैं, यद्यपि कतिपय उद्भावनाएं समान धरातल पर टिकी जान पड़ती हैं । श्री दामोदर पंडित ने संगीत-दर्पण में

१. भारतीय संगीत का इतिहास—उमेश जोशी ।

संगीत परंपरा के विकासक्रम का उत्स ब्रह्म को माना है। मूलतः वह संगीत मुक्ति की ओर ले जाने का माध्यम था ।

धार्मिक विचारधारा के अनुसार ब्रह्मा ने संगीत को खोजा तथा शिव को प्रदान किया । शिव ने उसे सरस्वती तक पहुंचाया—वीणा तथा पुस्तकधारिणी सरस्वती चिरकाल से संगीत, साहित्य तथा कलाओं की अधिष्ठात्री का कार्यभार संभाले है । संगीत का प्रसार करने के रूप में नारद की प्रतिष्ठा की गयी ।

भारतीय संगीत शास्त्र के विद्वान जी० एच० रानाडे ने प्रकृति के पांचों तत्त्वों से निर्मित जड़ चेतन में संगीत की समाहिती स्वीकार की है । उनके अनुसार वह मनोभावनाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम है—लोक संगीत इस तथ्य की पुष्टि करता है ।[१]

श्री दामोदर पंडित ने संगीत की उत्पत्ति विभिन्न जीवों के स्वरों से मानी है । सप्त स्वरों का जीव जन्य अंकन करते हुए उन्होंने कहा—'मोर से षड्ज, चातक से ऋषभ, बकरे से गांधार, कौए से मध्यम, कोयल से पंचम, मेंढक से धैवत् तथा हाथी से निषाद स्वर की उत्पत्ति हुई ।'

कुछ विद्वानों ने शंख-नाद को संगीत का उद्‌गम स्थल माना है । उनके अनुसार नाद प्रकृति की संपदा है ।

भारत में प्राकृतिक तत्त्वों से निसृत नाद को संगीत का जनक माना जाता है ।[२] इस विषय में मनुस्मृति में एक उल्लेख है कि सृष्टि-इच्छा के फलस्वरूप मन से आकाश उत्पन्न होता है । आकाश का गुण ही शब्द है—

मन सृष्टि विकुरुते चोद्यमानं सिसृक्षया
आकाशं जायते तस्मात्तस्य शब्दं गुणं विदुः ।

भारतीय संस्कृति की सर्वाधिक प्राचीन निधि ऋग्वेद है । वैदिक ऋचाओं के उद्‌गम से पूर्व संगीत का उद्‌भव माना जाता है । काल क्रम की दृष्टि से ईसा से २५ हजार वर्ष पूर्व सृष्टि का निर्माण हो चुका था । ईसा से दस हजार वर्ष पूर्व संगीत जन्म ले चुका था --- इस तथ्य के साक्षी पुरातत्त्व विभाग की खोज में निकले विभिन्न शिलालेख, इत्यादि हैं । ईसा जन्म तक भारतीय संगीत पर्याप्त विकसित हो चुका था । संभवतः भाषा से पूर्व, इतिहास के अंधकार युग में संगीत जन्म ले चुका था । भारतीय शास्त्र में संगीत के तीन रूप विख्यात हैं—कंठसंगीत, वाद्य तथा नृत्य । प्राग ऐतिहासिक काल के प्रथम चरण में इन तीनों का पूर्ण प्रचार था किंतु स्वरलिपि का विकास नहीं हुआ था । ताम्रकाल में संगीत ने धर्मपरक रूप ग्रहण कर लिया । वाद्ययंत्रों में मुरली, ढफ, डमरू, ढाक और झांझ इत्यादि का प्रयोग होने लगा था । नृत्य के क्षेत्र में लास्य का प्राधान्य था । लौह युग में नृत्य के क्षेत्र में घुंघरू पहनने की परंपरा शुरू हो गयी थी । मोरपंख इत्यादि का प्रयोग रूप-सज्जा के

१. Hindustani Music—Chapter I.
२. नाब्दाधेस्तु परं पारं न जानाति सरस्वती ।
अद्यापि मज्जन भयातुम्बं वहति वक्षसि ।।
नादेन व्यज्यते वर्णः पदं वर्णात् पदाद्वचः
वचसो व्यवहारो यं नादाधीनमतो जगत् ।।

-संगीत दर्पण

क्षेत्र में प्रारंभ हो चुका था। द्रविड़ों में नृत्य की परंपरा विशेष उन्नत थी।

सिंध प्रदेशीय मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा की खुदायी में निकली वस्तुएं प्रमाणित करती हैं कि उस युग में आर्येतर जातियां कलात्मक दृष्टि से बहुत उन्नत थीं। संगीत संबंधी अनेक वस्तुएं उपलब्ध हुई। शिव की तांडव-मुद्रा से युक्त प्रतिमा भी उपलब्ध हुई जो कि तत्कालीन नृत्य की उन्नति पर प्रकाश डालती है। खंडहरों में उपलब्ध भित्ति चित्रों में संगीत-नृत्यरत जनसमुदायों का अंकन दर्शनीय है। तत्कालीन द्रविड़ तथा सिंधु जातियां समान रूप से संगीत-नृत्य प्रेमी जान पड़ती हैं।

वैदिक साहित्य में संगीत विषयक अनेक तथ्य उपलब्ध हैं। संसार का सर्वाधिक प्राचीन ग्रंथ ऋग्वेद है। उसकी समस्त ऋचाएं गेय थीं। ऋग्वेद में 'समन' नाम से किसी त्योहार अथवा उत्सव का अंकन मिलता है जिसमें नृत्य और संगीत का प्रयोग किया जाता था। ऋग्वेद तक विकसित नाद संगीत को सर्वप्रथम सुनियोजित रूप प्रदान करने का कार्य सामवेद ने किया। सामवेद में ऋग्वेद की कुछ ऋचाएं आकलित हैं। वेद के उद्‌गाता (गायन करने वाले) जो कि सामग (साम गान करने वाले) कहलाते थे। उन्होंने वेदगान में केवल तीन स्वरों के प्रयोग का उल्लेख किया है जो उदात्त, अनुदात्त तथा स्वरित कहलाते हैं। सामगान व्यावहारिक संगीत था। उसका विस्तृत विवरण उपलब्ध नहीं है। वैदिक काल में बहुविध वाद्ययंत्रों का उल्लेख मिलता है जिनमें से (१) तंतु वाद्यों में कन्नड़ वीणा, कर्करी और वीणा, (२) घन वाद्य यंत्र के अंतर्गत दुंदुभि, आडंबर, (३) वनस्पति तथा सुषिर यंत्र के अंतर्गत : तुरभ, नादी तथा (४) बंकुरा आदि यंत्र विशेष उल्लेखनीय हैं।

गायन का प्रयोग सर्वशक्तिसंपन्न ब्रह्म की शक्तिस्वरूप देवताओं को प्रसन्न करने के लिए ही किया जाता था। संहिता, उपनिषद् साहित्य में संगीत का इतिहास उपलब्ध है किंतु ब्राह्मण, पुराण, आरण्यक आदि में संगीत विषयक विशेष उल्लेख नहीं मिलता।[1]

वैदिकोत्तर साहित्य में संगीत के क्षेत्र में व्याप्त 'समन' (संगीतोत्सव-धर्मोन्मुख) ने 'समज्जा' का रूप धारण कर लिया। पति-पत्नी के मिलन अथवा नर-नारी रूप-सज्जा के साथ जीवनसाथी चुनते नृत्य और संगीत रत रहते। ये ऐसे अवसर 'समज्जा' नाम से प्रसिद्ध हुए। इसमें भाव की अपेक्षा प्रदर्शन की वृत्ति बढ़ चली थी।

संगीतशास्त्रियों ने रामायण-महाभारत से पूर्व पौराणिक संगीत का समय निश्चित किया है। उनके अनुसार रामायण-महाभारत में प्रक्षिप्तांशों का विलय ईसा की पांचवीं शताब्दी तक होता रहा। इससे पूर्व रची गयी पुराणों में संगीत का जो रूप मिलता है, उसके साथ नाटकीय चेतना जुड़ चुकी थी। संगीत अध्यात्म से भौतिकता की ओर उन्मुख हो गया था तथा उसे आत्मोत्थान का मुख्य साधन मान लिया गया था। सामाजिकता से हटकर उसमें वैयक्तिक चेतना का महत्त्व बढ़ने लगा था। मार्कंडेय पुराण में नागराज अश्वतर की कथा मिलती है। अश्वतर ने कठोर तपस्या से सरस्वती को प्रसन्न किया। वर के रूप में उन्होंने 'स्वर ज्ञान' की निपुणता प्राप्त की। इसी संदर्भ में पांच प्रकार के ग्राम रागों, गीतों, मूर्छनाओं आदि का उल्लेख भी मिलता है। वायु पुराण में स्वर-मंडल की विस्तृत आलोचना उपलब्ध है। पौराणिक मिथक कथाओं में देवता, गंधर्व और किन्नरों की संगीत-निपुणता का आख्यान सविस्तार किया गया है। नारद संगीतज्ञ थे। उनका चित्रांकन खड़ताल तथा

१. संगीत रहस्य—श्रीपद वन्द्योपाध्याय, पृ० १३
२. भारतीय संगीत का इतिहास—उमेश जोशी, पृ० ८०-८४

वीणा के साथ ही किया गया है। विख्यात है कि उन्होंने तुंबुरु ऋषि से संगीत शिक्षा प्राप्त की। अद्भुत रामायण में एक कथा है :

संगीत शिक्षा पाकर नारद अहंकारी हो गये। उन्हें विश्वास हो गया कि वे पूर्ण ज्ञानी हैं—सो परमात्मा को प्रसन्न कर लेंगे। वे विचारमग्न-प्रसन्न चले जा रहे थे कि रास्ते में उन्हें अनेक विकलांग लोग मिले। इतने विकलांग क्यों चले आ रहे हैं?—इस उत्सुकतावश उन्होंने उनका परिचय पूछा। उन्होंने कहा—'हम सब विकृत राग-रागनियां हैं। नारद के अशुद्ध गायन से हमारी यह स्थिति हो गयी है। हम लोग ऋषि तुंबुरु की शरण में जा रहे हैं। वे हमारा त्राण करेंगे।' उनके वचन सुनकर नारद का मिथ्याभिमान नष्ट हो गया तथा वे संगीत की महिमा का गान करने लगे।"

मिथक कथाओं से स्पष्ट है कि नारद ने गंधर्व, किन्नर, अप्सराओं आदि तक संगीत पहुंचाया। उन्होंने रुद्रवीणा से पांच स्वर निसृत किये जिनसे संगीत का प्रसार हुआ।

रामायणकाल में संगीत का विशेष महत्त्व था। राम के जन्मोत्सव पर संगीत और नृत्य का आयोजन हुआ—राजा के स्वागतार्थ भी गायन तथा नृत्य की योजना होती थी। वह समाज चारित्रिक दृष्टि से उन्नत था। समाज में गायकों का विशेष आदर था। वाल्मीकि ने रावण को वेदज्ञ तथा संगीतज्ञ अंकित किया है। आज भी तद्रचित 'रावणीयम्' नामक संगीत ग्रंथ उपलब्ध है। नर्मदा के तट पर शिव प्रतिमा की स्थापना कर रावण ने नृत्य और गान किया था। वाल्मीकि रामायण के अनुसार उसके महल में भेरी, मृदंग, शंख, मुरज (पखावज), तुरही तथा पणव आदि वाद्य यंत्रों को बजाया जाता था। उसके दाह-संस्कार में भी वाद्य-वादन हुआ था। आज भी राजस्थान में एक वाद्य यंत्र रावणहथ्था कहलाता है—वह तंतुवाद्य है।

लव और कुश ने भी संगीत-शिक्षा प्राप्त की थी। रामायणकाल का समाज संगीत-प्रिय था। संगीत में गहनता थी। भेरी, घट, डिमडिम, मुड्डुक, आदंबर आदि वाद्यों का अवसरोचित प्रयोग किया जाता था। विदेशी विद्वानों ने भी तत्कालीन संगीत के विकास की गहनता और व्यापकता पर आश्चर्य प्रकट किया है।

महाभारत में संगीत और नृत्य का विकास अनेकमुखी है। इंद्र ने अर्जुन को संगीत सीखने के लिए उत्साहित किया। अर्जुन ने चित्रसेन गंधर्व से नृत्य-गायन की शिक्षा प्राप्त की। वनवास के आपद्काल में वह बृहन्नला का रूप धरकर राजा विराट् की कन्याओं को नृत्य सिखाता रहा।

महाभारत में शिव, सरस्वती, ब्रह्मर्षि तुंबरु, नारद, हाहा, हूहू, गंधर्व आदि संगीताचार्यों का विशेष उल्लेख मिलता है। महाभारत में एक कथा है। एक बार वृहद्रथ ने वृषभरूपधारी एक राक्षस को मारकर उसकी चमड़ी मढ़वाकर तीन नगाड़े बनवाये। उनको एक बार बजाने से एक माह तक नाद गूंजता था।[1]

भगवत्गीता का संगीत से गहरा संबंध है। भगवद्गीता में कृष्ण ने कर्म, ज्ञान, उपासना का सुंदर सामंजस्य स्थापित किया था। परवर्ती पौराणिक साहित्य में वही कृष्ण संगीतज्ञ तथा संगीत का प्रसार करने वाले रूप में अंकित है। परवर्ती पौराणिक साहित्य में लोक संगीत तथा लोक नृत्य का विकास हुआ। 'सामग' के बाद 'समज्जा' का प्रचलन हुआ

१. महाभारत, सभापर्व २१।१६, १७।-

था। धीरे-धीरे 'यात्रा', 'उद्यान क्रीड़ा', 'जल क्रीड़ा', 'पुष्प चयन उत्सव' इत्यादि में नृत्य और संगीत रचे-पचे से दिखलायी दिये। संगीत विलास का उपकरण बन गया।

ईसा से पांच शताब्दी पूर्व जैन धर्म के प्रसार के साथ-साथ संगीत के क्षेत्र में एक क्रांति उत्पन्न हुई। ब्राह्मणों तक सिमटा संगीत सर्वसाधारण तक फैल गया। वह फिर से ईश्वर की उपासना के लिए प्रयुक्त होने लगा। विभिन्न श्रेणियों में बंटा संगीत मुक्त होकर समाज को एकसूत्रता में बांधने लगा। उच्च वर्ग की कन्याएं आयोजित प्रतियोगिताओं में भाग लेती थीं। नृत्य और संगीत गौरव का विषय था।

बौद्ध-युग में संगीत मानवमात्र के मानसिक एवं सामाजिक विकास का माध्यम बन गया। वह मनोरंजन का साधन नहीं रहा। शास्त्रीय संगीत की महत्ता बढ़ी। संगीत और नृत्य के क्षेत्र में नारियों ने विशेष रुचि ली। 'गिरबंधु संगम' नामक संगीत पर्व धूमधाम से मनाया जाता था—अतः इस आयोजन के माध्यम से संगीत-नृत्य आदि का विशेष प्रसार हुआ। इस दिशा में बौद्ध भिक्षुणियों का विशेष योगदान रहा। उनकी रचना 'थेरीगाथा' में ५२२ गीतों का संकलन है। इसकी रचना ७३ भिक्षुणियों के सहयोग से हुई थी। महात्मा बुद्ध ने संगीत के क्षेत्र से वासना को निकाल फेंका। कुवलया नामक सुंदरी के चरित्रोत्थान की कथा बहुत प्रसिद्ध है। ऐसी अनेक सुंदरियों का भावनात्मक शोधन कर महात्मा बुद्ध ने संगीत को आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख किया। वैदिक युग के उपरांत कदाचित यही एक युग था जब संगीत पुनः अध्यात्मपरक हो उठा था। शास्त्रीय दृष्टि से भी तत्कालीन भारतीय संगीत में अनेक राग-रागनियों का उद्‌भव हुआ।

इसका शास्त्रीय विवेचन सर्वप्रथम भरत मुनि के नाट्यशास्त्र में मिलता है। यह शास्त्र नाटक, संगीत तथा नृत्य की सुनियोजित व्याख्या प्रस्तुत करता है। भरतमुनि ने 'गधर्व वेद' के नाम से संगीत का विवेचन किया है। इसके समकक्ष आज तक भी कोई अन्य ग्रंथ नहीं रखा जा सका। भरतमुनि ने गान और वादन के रूपों की चर्चा की। भाव की दृष्टि से गायन के साथ कहां कैसे वाद्य का प्रयोग होना चाहिए, समूह गान की प्रस्तुति का उचित रूप कब कैसा होता है, आदि पर उन्होंने विचार प्रकट किये। समय एवं संदर्भ के अनुकूल गायन-पद्धति के चयन पर प्रकाश डाला। नृत्य का विवेचन करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया कि नृत्त और नृत्य में अंतर है। नृत्त का अभिप्राय केवल अंग विक्षेप से है। जब भावाभिव्यक्ति, हाव-भाव, हेला की भी सन्निहिति हो, तब वह नृत्य कहलाने लगता है। शंकर के तांडव और पार्वती के लास्य का विवेचन भी नाट्यशास्त्र में उपलब्ध है। कुछ विद्वानों ने तो यहां तक कहा कि नृत्य और संगीत का मूलाधार ताल है। ताल शब्द में 'ता' तांडव से तथा 'ल' लास्य से लिया गया है। पुराणों के अनुसार तांडव शिव का ध्वंसात्मक नृत्य है तो लास्य पार्वती का वह नृत्य है जिससे शिव का आक्रोश शांत करना संभव था।

गुप्तकाल संगीत का स्वर्णयुग था। इस युग में भारतीय संगीत का विस्तार विदेशों तक हुआ। 'सितार' नामक वाद्य का उद्‌भव भी इसी युग में हुआ था।

गुप्तोत्तरकाल में विभिन्न विदेशी संस्कृतियों के संपर्क में संगीत के कुछ रूपों ने अनेक मोड़ लिये, करवटें बदलीं, वे चकित और भ्रमित भी हुए; किंतु शास्त्रीय धुरी पर टिका हुआ संगीत आज भी नितांत भारतीय है। भारतीय संगीत का विस्तार अपरिमित है किंतु गुप्तोत्तरकालीन परिवर्तनों का मिथक-साहित्य से विशेष संबंध नहीं रहा, अतः यहां उसका आख्यान अनुचित होगा।

भारतीय संगीत का सबसे सुंदर तत्त्व यह है कि उसके समस्त राग प्रहरों के अनुसार बंटे हुए हैं। रागों की वंश-परंपरा 'थाट' कहलाती है। एक ही थाट से संबद्ध अनेक राग होते हैं और सबके गायन का समय निश्चित होता है। गायनकाल उषा काल से लेकर रात्रि के अंतिम प्रहर तक विस्तृत है। रात-दिन का प्रत्येक क्षण संगीत से जुड़ा हुआ है। संध्या तथा उषा काल, रात्रि और दिन के संधिकाल हैं, अतः ऐसे समय संधि प्रकाश रागों का गायन होता है।

उषाकालीन रागों में कोमल स्वरों की प्रधानता है। कोमल स्वरों का भी अत्यंत कोमल रूप ग्रहण करने वाले राग मुख्य रूप से भैरव, भैरवी, रामकली हैं।

प्रातःकाल के बाद धूप की गर्मी के बढ़ने के साथ-साथ ऐसे रागों का गायन होता है जिनमें कोमल के साथ शुद्ध स्वरों का मिश्रण रहता है। इस कोटि में मुख्य रूप से आसा-वरी, जौनपुरी आदि राग परिगणित हैं।

दोपहर की गर्मी से रागों की तीव्रता जुड़ी हुई है। इस समय सारंग जैसे रागों का गायन होता है जिनमें शुद्ध अधिक और कोमल राग न्यून होते हैं।

फिर ढलती दोपहर के समय भीमपलासी, पटदीप आदि रागों का प्रयोग होता है।

संध्या की वेला में शुद्ध और तीव्र मध्यम से निर्मित कल्याण जैसे रागों का गायन अथवा वादन होता है। रात्रि का अंधकार आने पर ऐसे रागों का प्रयोग उचित माना गया है जिनमें शुद्ध और कोमल स्वरों का मिश्रण हो। इनमें मुख्य रूप से देस, तिलक कामोद और विहाग उल्लेखनीय हैं।

मध्य रात्रि के गेय रागों में वागेश्वरी, मालकौंस तथा अडाना की मान्यता है। इनकी वृत्ति अत्यंत कोमल है।

रात्रि के अंतिम प्रहर में अंधकार छटने की वेला का आभास मिलने लगता है। रात्रि का उनींदापन थोड़ा हल्का पड़ जाता है अतः ऐसे रागों को गायन अथवा वादन शास्त्रोचित माना गया है जो अत्यंत कोमलता से उभरकर शुद्ध तथा तीव्र मध्य स्वरों से निर्मित हों। उदाहरण के लिए ललित, विभास, भटियार आदि।

रागों के प्रयोग का ऐसा सुनियोजित, कालोचित विभाजन भारत के अलावा किसी भी देश में उपलब्ध नहीं। हर राग तालों पर नपा-तुला, समय से जुड़ा, भावों को प्रबुद्ध करता जान पड़ता है। मिथक साहित्य में आरक्षित रहने के कारण ही भारतीय संगीत विदेशी धकापेल में पड़कर भी अपनी गरिमा को बनाये रखने में समर्थ हो पाया।

वास्तुकला, मूर्तिकला, चित्रकला

किसी भी देश का मिथक साहित्य समय की सीमा में नहीं बांधा जा सकता। वह इतिहास के साथ निरंतर पग बढ़ाता चलता है। प्रस्तुत प्रयास में मिथक साहित्य वेदों से लेकर पुराण-काल तक है, जिसका समय ईसा से पांच हजार वर्ष पूर्व से लेकर हिंदी साहित्य के भक्तिकाल अथवा पूर्व मध्यकाल तक है। मिथक की पृष्ठभूमि में विविध कलाओं का विकास हो रहा था। उनमें से कुछ का अंकन ग्रंथों में यत्र-तत्र बिखरा हुआ मिलता है तथा कुछ कलाओं का लेखन न होने पर भी वे सांस्कृतिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। एक ओर उन्होंने मिथक साहित्य को एक विशेष परिवेश प्रदान किया है तो दूसरी ओर वे अनेक तथ्यों को प्रमाणित करती हैं। ऐसी कलाओं में वास्तुकला तथा मूर्तिकला को रखा जा

सकता है। अनेक मिथकों पर आधारित प्रतिमाएं भी भारत में यत्र-तत्र सर्वत्र दर्शनीय हैं। ईसा से ३००० वर्ष पूर्व हड़प्पा तथा मोहंजोदरो का निर्माण हुआ। लोथल की खुदायी में प्राप्त अधिकतर प्रतिमाएं नर्तकियों की हैं। खुदायी में निकले मोतियों के आभूषण तथा बर्तन अधुनातन वस्तुओं से टक्कर लेते जान पड़ते हैं। यह काल इतिहास की दृष्टि से आर्यों के आगमन से पूर्व का था। यह इस कथन का साक्षी है कि उस युग में मंदिरों का निर्माण नहीं होता था तथा लोग उल्लासपूर्वक वैभव भोगने के इच्छुक थे। लोथल की खुदायी ने स्पष्ट किया कि उस युग में बंदरगाह और नाविक भी हुआ करते थे।

हाल ही में आर्य सभ्यता के आदिम शहर कौशांबी की खुदायी में यह स्पष्ट हुआ कि आर्यों के आदिम युग में अनेक प्रकार के हथियार थे जिनका निर्माण लोहे और चांदी से हुआ था।

बोध गया के मंदिर में जहां बोधी वृक्ष के नीचे महात्मा बुद्ध को बोध हुआ था, बौद्ध युग की वास्तुकला तथा मूर्तिकला के प्रमाण आज भी विद्यमान हैं। बौद्ध धर्म ने अंधविश्वासों का ढूह नष्ट करने का प्रयास किया। कलिंग विजय के उपरांत राजा अशोक की आंखें खुलीं—उसने सारनाथ तथा सांची में स्तूप बनवाये तथा भारत में दूर-दूर तक अनेक स्तंभों का निर्माण करवाया जिन पर बौद्ध धर्म के संदेश एवं नियम लिखे गये थे—वे आज भी हमें उस युग की याद दिलाते हैं।

चंद्रगुप्त द्वितीय के युग में बने नालंदा विश्वविद्यालय के खंडहर आज भी उस सुनियोजित शिक्षा के प्रतीक रूप में विद्यमान हैं। नृपतिचंद्र के युग में बना लोहे का २३ फीट लंबा स्तंभ दिल्ली में शोभित है, उस पर कहीं जंग का दाग भी नहीं दिखलायी पड़ता।

दक्षिण भारत में पल्लवों ने चट्टानों पर मूर्तियां बनवायीं। चट्टानें खोदकर मंदिर बनाये। खुदी हुई चट्टानों पर मूर्तियां घड़कर एक अद्भुत रूप प्रदान किया।

एक ही चट्टान को काटकर, तराशकर सबसे बड़ी कलाकृति एलोरा के शिव मंदिर के रूप में विद्यमान है जिसमें पूजाघर, एकांत भवन इत्यादि विभिन्न कक्षों का अद्वितीय निर्माण किया गया है। पल्लवों के शिल्प में बौद्ध धर्म की झलक पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। बौद्ध धर्म में मूर्ति पूजा का निषेध था अतः मौर्य काल तक बुद्ध की प्रतिमाओं का अभाव रहा। महायान संप्रदाय की प्रतिष्ठा के साथ-साथ बुद्ध की प्रतिमाओं का निर्माण आरंभ हुआ। भारत की मूर्तिकला की तीन प्रणालियों पर बौद्ध मत का प्रभाव पड़ा : गांधार, मथुरा तथा अमरावती।[1]

गांधार शैली के मुख्य केंद्र जलालाबाद, हद्द और बोमियां थे। इस शैली के शिल्पियों ने महात्मा बुद्ध की प्रतिमाएं बिलकुल सादे रूप में घड़ी किंतु प्रत्येक प्रतिमा में प्रभामंडल का निर्माण किया गया था। कहीं-कहीं यूनानी वेशभूषा में भी बुद्ध की प्रतिमा मिलती है। मथुरा शैली नितांत भारतीय है। इसमें महात्मा बुद्ध के अनेक रूपों का अंकन है। अधिकतर मूर्तियां सारनाथ के मंदिर में उपलब्ध है। स्तंभों पर क्रीड़ारत नारियां तथा नर्तकियों की प्रतिमाएं भी बनी हुई हैं। ये प्रतिमाएं लाल पत्थर को तराशकर बनायी गयी हैं।

अमरावती शैली का प्रचार दक्षिण भारत में था। इस कला का युग ई० पू० १५० वर्ष से ४०० ईस्वी तक है। यह कला बोधगया, सांची का स्पर्श करती हुई पल्लव कला से भी

1. भारतीय धर्म एवं संस्कृति—डा० विजेन्द्रपाल सिंह, पृ० ४२

आगे निकल गयी है ।[१] इसकी कृतियों में बुद्ध का अंकन अनेक भाव-भंगिमाओं में किया गया है । वैराग्य; उदासीनता, हास्य आदि विभिन्न भावों का सुंदर अंकन उपलब्ध है । प्रकृति-जन्य वनस्पति, पशु-पक्षी, मानव तथा महात्मा बुद्ध के चरण के चिह्नों का जितना सहज स्वाभाविक अंकन इस कलाजन्य प्रतिमाओं में मिलता है, अन्यत्र मिलना संभव नहीं जान पड़ता ।

जैन धर्म से संबद्ध प्रतिमाएं भी अद्वितीय हैं। मथुरा स्थित संग्रहालय में जिन मुनि की प्रतिमाओं की विपुलता जैन धर्म की व्यापकता की साक्षी है । अधिकतर व्यापारी वर्ग ने जैन धर्म को अपनाया था । समृद्धिजन्य सामर्थ्य का प्रदर्शन गोमतेश्वर की विशाल प्रतिमा करती है। उसकी विशालता के सम्मुख संभवत: कोई भी अन्य प्रतिमा टिक नहीं सकती।

अजंता की गुफा पौराणिक चित्रकला का एकमात्र साक्षी है । इसका निर्माण ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी से छठी ई० तक हुआ । इसकी वास्तुकला, मूर्तिकला तथा चित्रकला सभी अतुलनीय हैं । विविध धर्मों से संबद्ध चित्रांकन के साथ-साथ कहीं-कहीं प्रतिमाओं का निर्माण भी दर्शनीय है ।

भारत के इतिहास में चोल वंश सामुद्रिक शक्तिसंपन्न था । चोल वंशी राजाओं के युग में हाथी दांत, कपड़ा, हीरे जवाहरात का व्यापार होता था । उस युग में कला का विशेष विकास हुआ । राजा की पुत्री नर्तकी थी । यह राजाओं के कलाविद् होने का प्रमाण है । उन्होंने अनेक मंदिरों का निर्माण करवाया । उनका बनवाया तंजौर का मंदिर अपनी तरह का एक ही है । नटराज की प्रतिमा सराहनीय है ।

मिथक साहित्य में वास्तुकला के चरम उत्कर्ष के द्योतक कुछ उदाहरण मिलते हैं । भारत के दक्षिण में बना नलसेतु[१] ही राम की सेना को लंका तक पहुंचा पाया था । लाख का बना लाक्षागृह[२] दुर्योधन की विचित्र सूझबूझ का परिचायक था । परीक्षित का महल[३] एक खंबे के आधार पर बना हुआ था जो वास्तुकला के क्षेत्र में विलक्षण कार्य था ।

जीव और वनस्पति

मिथक-कथाओं में वनस्पति और जीवों की महत्ता भी विशेष ध्यान देने योग्य है । समाज में मानवेतर प्राणियों से मनुष्यमात्र का लगाव है । अवतार, वाहन, देवता और दैत्य सभी रूपों में पशु-पक्षियों की विद्यमानता थी । उनके स्वास्थ्य से लेकर क्रियाकलाप तक अनेक तथ्यों का सम्यक् वर्णन मिथकों में मिलता है । उनकी अभिरुचि, स्वभावगत विशेषताओं के साथ-साथ अपने आश्रयदाता के प्रति उनके स्नेह का अद्भुत स्वरूप भी साहित्य में मिलता है । कुत्ते के मोह के कारण युधिष्ठिर स्वर्गयात्रा के निमित्त विमान में नहीं बैठे । कौशल्या की सारिका बोला करती थी :

"हे शुक ! तुम शत्रु के पैर काट लो ।[४]

१. महाभारत, वनपर्व, २८३।२४-४५
२. महाभारत, आदिपर्व ।
३. महाभारत, आदिपर्व, अध्याय ४०-४४
४. मन्ये प्रतिविशिष्टा सा मत्तो लक्ष्मण सारिका ।
यस्यास्तच्छ्रूयते वाक्यं शुक पादमरेर्दश ॥

—वाल्मीकि रामायण, अयोध्या कांड ।२२।५३

सरमा[1] नामक देवशुनी, विष्णु के अवतार मत्स्य, कूर्म तथा वराह, देवताओं के वाहन गरुड़ (विष्णु का), सिंह (दुर्गा का), मकर (गंगा का), नंदी (शिव का), उलूक (लक्ष्मी का), कबूतर (केतु का), चूहा (गणेश का), हंस (सरस्वती का), घोड़े (सूर्य के), आदि के आख्यान समाज में मानवेतर जीवों के महत्त्व को प्रकट करते हैं। प्रत्येक जीव किसी विशेष भाव का प्रतीक बना हुआ-सा जान पड़ता है। देवताओं के रूपों में भी जीवों की प्रतिष्ठा की गयी है। कामधेनु, शेषनाग, हनुमान आदि इस कोटि से संबद्ध हैं। जटायु नामक गिद्ध ने सीताहरण के अवसर पर रावण से युद्ध किया—सरमा नामक देवशुनी ने देवताओं की गायें खोज निकालीं—हंस ने नल-दमयंती तक प्रेम के संदेश पहुंचाए—कामधेनु ने समस्त इच्छाएं पूर्ण कीं—ये सब कथाएं मानव और मानवेतर प्राणियों के परस्पर स्नेह पर प्रकाश डालती हैं। इस स्नेह के वशीभूत होकर ही मानव समाज ने विघ्नहारी देवता गणेश का हाथी के समान रूपांकन किया है। आठों दिशाओं को संभालने वाले आठ हाथियों के नामों का उल्लेख भी मिथक कथाओं में उपलब्ध है। उनके नाम इस प्रकार हैं: ऐरावत, पुंडरीक, वामन, कुमुद, अंजन, पुष्पदंत, सार्वभौम तथा सुप्रतीक। कोकिल का गीत, मोर का नृत्य, हाथी की बुद्धि, सिंह की शक्ति, वानर की गति, सभी कुछ अनुपम हैं। इन सबके बिना संसार की कल्पना करना असंभव है। इसी कारण से मिथक-कथाओं में देवता, दूत, अवतार, वाहन आदि कोई भी प्रसंग पशु-पक्षियों से अछूता नहीं है।

भारतीय मिथक साहित्य में वनस्पतियों तथा उद्भिजों की जननी इरा थी। वह कश्यप की पत्नी तथा दक्ष की पुत्री थी। उसने लता, अलता तथा वीरुधा नामक तीन कन्याओं को जन्म दिया। इन तीनों ने समस्त वनस्पति को जन्म दिया। इन तीनों ने पुष्पों को, अलता (जो वल्ली नाम से भी विख्यात है) ने फलदायी वृक्षों को और वीरुधा ने झाड़ीदार पेड़ और लताओं को जन्म दिया।[2]

मिथक कथाओं में अंकित वनस्पति विज्ञान का क्षेत्र धर्म, रूप-सज्जा से लेकर आयुर्वेद तक व्यापक है। आदिमानव ने उसे भोज्य-पदार्थ के रूप में ग्रहण कर जीवित रहना सीखा था। संस्कृति ने उसके संस्कार कर डाले। उस पक्ष से सभी परिचित हैं, अतः यहां विवेचन अपेक्षित नहीं है।

धर्म के क्षेत्र में अनेक पेड़-पौधे देवताओं के प्रतीक रूप में विख्यात हैं—आज भी उनकी पूजा होती है। पीपल को विष्णु का तथा वटवृक्ष को शिव का प्रतीक माना जाता है, अतः इन वृक्षों को उखाड़ना वर्जित है। यदि आपद्काल में उन्हें उखाड़ना पड़े तो उससे पूर्व भजन-पूजन के माध्यम से क्षमा-याचना परम आवश्यक है। जीवन के विषम क्षणों में मानव की सर्वाधिक सहायता वनस्पति ही करती है। यदि किसी मंगलीक कन्या का विवाह किसी अमंगलीक युवक से हो रहा हो तो विवाह से पूर्व उस कन्या का एक विवाह पीपल के पेड़ से कर दिया जाता है। मान्यता है कि पीपल (विष्णु) उसके सुहाग की रक्षा करता है।

पूजा के निमित्त देव प्रतिमा बनाने के लिए भी विभिन्न पेड़ों की लकड़ी निर्दिष्ट है। अनेक कथाएं इंगित करती हैं कि देवदार, खदिर, शाल आदि वृक्षों की लकड़ी से ही देव-प्रतिमाओं का निर्माण करना चाहिए।

१. दे० सरमा (कथा)
२. मत्स्यपुराण, ६-२।४६, १४६।१६
वायुपुराण, ६६-३३१।४२
विष्णुपुराण, १।१५।१२५, २१।२४

पुष्प मन को आह्लादित करते हैं तथा शोभा और संपत्ति के आधान हैं अतः उन्हें 'सुमन' कहा गया।[१] देवताओं की पूजा से उनका गहरा संबंध है। अधिकतर देवता श्वेत-वर्ण के पुष्पों से प्रसन्न होते हैं। आकार और गंध की दृष्टि से पुष्पों के दो भाग हैं—सुगंध से युक्त और गंधहीन अथवा बुरी गंध वाले पुष्प। कुछ पुष्प सुगंध युक्त होते हुए भी कांटे-दार होते हैं। ऐसे पुष्प देवताओं को अर्पित नहीं किये जाते। कांटेदार, दुर्गंधयुक्त फूलों का प्रयोग दैत्य, दानव अथवा भूतों के लिए किया जाता है। जल में उत्पन्न होने वाले कमल आदि गंधर्वों, नागों तथा यक्षों को अर्पित करने की प्रथा है। श्मशान में पैदा हुए फूल, चाहे वे किसी भी प्रकार के क्यों न हों, विवाह आदि शुभ अवसरों पर उपयोग के योग्य नहीं होते।

देवपूजा में धूप तथा दीपदान का प्रयोग भी होता है। धूप का निर्माण भी विभिन्न पेड़ों के रस से होता है। अग्नि का संपर्क पाकर धूप सुगंध निसृत करती है। गुग्गुल, राल आदि इसी कोटि के तत्त्व हैं। देवताओं के प्रति दूध, दही से बनी पवित्र वस्तुओं के साथ फूल, दीप, धूप, अर्पित करने की परपरा है तो आसुरी स्वभाव वाले यक्षों, राक्षसों आदि को मांस, मदिरा तथा धान के छिलकों के साथ कांटेदार फूलार्पण की। नागों को पद्म उत्पल-युक्त बलि प्रिय है तो भूतों को तिल और गुड़ की भेंट।[२] प्रत्येक देवता का प्रिय पुष्प दूसरे देवता से भिन्न है। इसी प्रकार ज्योतिष शास्त्र में प्रत्येक ग्रह का प्रिय पुष्प दूसरे से भिन्न माना गया है। किसी भी ग्रह के निमित्त यज्ञ करते समय उसके अनुरूप वनस्पति विशेष से संबद्ध समिधा का प्रयोग आवश्यक है। ग्रहों की शांति के निमित्त प्रस्तुत उल्लेख मिलते हैं :

रवि		समिधा—मदार
सोम		समिधा—पलाश
मंगल		समिधा—खदिर
बुध		समिधा—अपामार्ग
बृहस्पति		समिधा—पीपल
शुक्र		समिधा—गूलर, उदुंबर
शनि		समिधा—शमी
राहू		समिधा—दूर्वा
केतु	—	समिधा—शमी या दूर्वा

सामान्यतः यज्ञों में आम की समिधा का प्रयोग होता है।

रूप-सज्जा के क्षेत्र में भी वनस्पति का विशेष योगदान है। यों तो सारे संसार में फूलों से प्रसाधन करने का रिवाज है किंतु बालों में वेणी लगाना हमारे देश की विशेषता है। इसके मूल में वनस्पति के गुणों से स्वास्थ्य लाभ करना है। फूलों की सुगंध अलग-अलग प्रकार की होती है तथा प्रत्येक महक का शरीर पर भिन्न प्रभाव पड़ता है। गुलाब कई रंग के होते हैं। उनका प्रभाव शीतल तथा खून का दोष दूर करता है। चमेली की तासीर गर्म होती है। वह मस्तक, नेत्र, बादी और मुख के रोग तथा खून के विकारों को दूर करती है।

जूही दो रंगों का फूल है : सफेद और पीला। उसकी तासीर ठंडी होती है। वह पित्त, खून के विकारों, दांत के रोगों को दूर करने वाला पुष्प है किंतु उसके प्रयोग से कफ

१. महाभारत, दानधर्म पर्व, अध्याय ९८
२. वही

और वात बढ़ता है। चंपा की वृत्ति शीतल होती है। यह कीड़े, खून आदि के विकारों को नष्ट करता है। मौसलसरी के फूलों के सूख जाने पर भी सुगंध बनी रहती है। उनकी तासीर न बहुत गर्म है, न बहुत ठंडी। मोतिया तासीर में गर्म होता है। उसकी सुगंध आंख और मुंह के रोगों की तथा कुष्ट की नाशक है। केवड़ा आंखों के लिए सुखद होता है। कमल का प्रभाव शीतल होता है। यह खून के विकार, फोड़े, विष आदि का नाश करता है। वनस्पति से बनाये इत्र भी आयुर्वेदिक औषधि का कार्य करते हैं। शीतलता पाने के लिए खस के इत्र का तथा गर्मी लाने के लिए केसर के इत्र का प्रयोग करना चाहिए। गर्मियों में चंदन का लेप ठंडक पहुंचाता है तो सर्दियों में केसर का लेप गर्मी पहुंचाता है। इनका भोज्य पदार्थों में भी इसी दृष्टि से प्रयोग करते हैं। आयुर्वेद में आंवला, चिरायता, हरड़, काली जीरी इत्यादि अनेक जड़ी बूटियों का प्रयोग होता है। रामायण काल में 'संजीवनी बूटी' ने लक्ष्मण को जीवन प्रदान किया था। भारत में आजकल आयुर्वेद का पुनरोत्थान दर्शनीय है। उसके मूल में प्रकृतिजन्य वनस्पति की संपदा है। पुरा साहित्य में 'क्षीरी' नामक वृक्षों का उल्लेख है। जो सदा षड्विध रसों से युक्त एवं अमृत के समान स्वादिष्ट दुग्ध बहाते हैं। उनके फलों में इच्छानुसार वस्त्र और आभूषण भी प्रकट होते हैं।[1]

मनुष्य चिरंतनकाल से वनस्पति का ऋणी है। ईश्वरोपासना के साधन, भोज्यपदार्थ, सौंदर्य प्रसाधन, आधि और व्याधि से मुक्ति प्रदान करने वाली आयुर्वेदिक औषधियों आदि सभी के मूल में वनस्पति दृष्टिगोचर होती है।

विज्ञान

महाभारतकाल तक विज्ञान उन्नति के चरम शिखर पर पहुंच चुका। जो आज विश्व के अधुनातन आविष्कार कहलाते हैं, उन जैसी अनेक वस्तुएं उस काल में भी थीं। महाभारत के जातुगृह पर्व में मोटर बोट का वर्णन इस प्रकार किया गया है—"कुंती को पांडवों के साथ सुरक्षित भगा देने के लिए विदुर ने एक नौका बनवायी जो कि यंत्रचालित थी। अतः वायु और जल के थपेड़ों को सहज ही यह सह सकती थी।"[2] यम के एयरकंडीशंड कक्ष का वर्णन है जो न अधिक शीतल था, न अधिक गर्म। उसकी रचना भी विश्वकर्मा ने की थी। उसे स्तंभों के आधार से विहीन मणियों से इच्छानुसार प्रकाशित रखा जाता था।[3]

नगर के आकारों के विमानों की चर्चा भी महाभारत में मिलती हैं जिनमें से तार-काक्ष का विमान सोने का, कमलाक्ष का चांदी का तथा विद्युत्माली का नगराकार विमान लोहे का बना था।[4] तीनों के निर्माता विश्वकर्मा थे। ये दैत्यों के विमान थे जो कि त्रिपुर

१. महाभारत, भीष्म पर्व, अध्याय ७।४-५

२. महाभारत, जातुगृह पर्व, अध्याय १४०।५-६

३. सुसुखा सा सदा राजन् न शीता न घर्मदा।
न क्षुत्पिपासे न ग्लानिं प्राप्य तां प्राप्नुवन्त्युत
नानारूपैरिव कृता मणिभिः स सुखास्वरः।
स्तम्भैर्न च धृता सा तु शाश्वती न च सा क्षरा।

—महाभारत, सभापर्व, अध्याय ११, श्लोक १३,१४

अर्थप्रकाशभ्राजिष्णुः सर्वतः कामरूपिणी।
नातिशीता न चात्युष्णा मनसश्च प्रहर्षिणी॥

—वही, अध्याय ८ श्लोक ३

४. दे० त्रिपुर (कथा)

नाम से विख्यात हुए। युद्धक विमानों की चर्चा भी मिथक साहित्य में मिलती है।[१] इनके अतिरिक्त राजा उपचरि का विमान स्फटिक का बना हुआ था। जीवन से विरक्त होकर वे उस विमान में ही रहते थे। वहां से वे तीनों लोकों को देखने में समर्थ थे।[२]

भौतिक विज्ञान विषयक कुतूहल बार-बार जाग उठता है—संजय दृष्टि टेलीविजन का दूसरा नाम तो नहीं था।[३] इंद्र से प्राप्त दिव्य दृष्टि कहीं दूरबीन ही तो नहीं थी क्योंकि अर्जुन अपनी इच्छा से उसका प्रयोग करता था। रामायण में उल्लेख है कि संपाती ने दिव्य दृष्टि से सीता को रावण की नगरी में देखा तथा वानरों का पथ-प्रदर्शन किया।[४] रामायण और महाभारत में अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों का नामोल्लेख है। उनके नाम भले ही भिन्न हों किंतु उनके प्रयोग आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों जैसे थे। आग्नेयास्त्र, कर्ण की शक्ति, घटोत्कच के अधिकांश शस्त्र और इंद्र का वज्र बम के समान जान पड़ते हैं। शतघ्नी तोप के आकार का हथियार था।[५] उसका प्रयोग घटोत्कच ने किया था।

आस्ट्रेलिया के क्रीड़ा क्षेत्र में आजकल 'बूमरैंग' का प्रचलन है। दूर फेंकने पर वह उद्दिष्ट स्थल तक पहुंच कर, उसकी परिक्रमा लेकर पुन: फेंकने वाले खिलाड़ी के पास लौट आता है। विष्णु के सुदर्शन चक्र की गतिविधि भी कुछ ऐसी ही थी। अंतर केवल यह है कि वह युद्ध-क्षेत्र में शत्रु-हनन करता था, 'बूमरैंग' केवल मनोरंजन करता है। रामायण में उल्लेख है कि शव को सुरक्षित रखने के लिए उसे तेल में रखा जाता था।[६] महाभारत में गांधारी के उदर से उत्पन्न मांसपिंड के १०१ टुकड़ों को व्यास ने घी से भरे मटकों में रखवा-कर उन्हें बालकों के रूप में विकसित होने का अवसर प्रदान किया था।[७] क्या आज ट्यूब बेबीज को इसी प्रकार से चिकने पदार्थ में नहीं रखा जाता? बालक जन्म से संबद्ध अनेक वैज्ञानिक तथ्य उस युग में थे—जिन्हें वर्तमान वैज्ञानिक फिर से खोज रहे हैं। उपचरि ने पत्ते में लपेटकर अपना वीर्य अपनी पत्नी के पास भेजना चाहा था किंतु मार्ग में गिर जाने के कारण मछली के उदर से मत्स्यगंधा का जन्म हुआ।[८] 'गुह्यकजल' से आंख धोने पर अदृश्य वस्तुएं भी सहज दर्शनीय हो जाती थीं।[९] ये समस्त तथ्य उस युग में रसायन शास्त्र के विकास का द्योतन करते हैं।

शल्य-चिकित्सा संबंधी प्रसंग उन्नत विज्ञानशास्त्र के प्रमाण हैं। अश्विनीकुमारों ने च्यवन ऋषि को वृद्ध से युवा बना दिया। ब्रह्मा ने दक्ष प्रजापति के कटे सिर के स्थान पर बकरे का सिर लगा दिया और वह जीवित हो उठा। शनीदृष्टि से नष्ट हुए गणेश के सिर के स्थान पर विष्णु ने हाथी का सिर लगा दिया था। अभी तक भी शल्य-चिकित्सा 'हैड ट्रांसप्लान्टेशन'

१. दे० शाल्व (कथा)
२. दे० उपचरि (कथा)
३. दे० संजय (कथा)
४. दे० संपाती, वाल्मीकि रामायण, किष्किंधा कांड, सर्ग ५६-५८
५. तेनोत्सृष्टा चक्रयुक्ता शतघ्नी समं सर्वांश्चतुरोऽश्वाञ्जघान ।
ते जानुभिर्जगतीमन्वपद्यन् गतासवो निर्दशनाक्षिजिव्हाः ॥४६॥

—महाभारत, द्रोणपर्व १७९

६. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या कांड, सर्ग ६६, पृ० ३४८-३४९
७. महाभारत, आदिपर्व, सर्ग १४, श्लोक १८-२५
८. दे० उपचरि (कथा)
९. दे० इंद्रजित (कथा)

तक नहीं पहुंच पायी है। ऋग्वेद में एक सदर्भ है कि अपाला को श्वेत कुष्ट हो गया तो उसके पति कुशाश्व ने उसका परित्याग कर दिया। वह अपने पिता ऋषि अत्रि के पास चली गयी। अपाला की तपस्या से प्रसन्न होकर इंद्र ने उसके शरीर की चमड़ी तीन बार उतारकर उसे रोगमुक्त कर दिया।[1] यह क्या आधुनिक प्लास्टिक सर्जरी का ही रूप नहीं था ? नेत्रदान[2] की परंपरा भी पौराणिक साहित्य में मिलती है। जरासंध[3] के संदर्भ में दो अधूरे शरीरों को जोड़कर एक बालक बनाने का अंकन है। वृद्ध वागभट्ट ने राजा का तालू काटकर मेढकी निकाली थी।[4] पूर्वलिखित समस्त संदर्भ शल्य चिकित्सा के चरमोत्कर्ष के साक्षी हैं।

समाज

सामाजिक दृष्टि से मिथक-साहित्य का अध्ययन बहुत रोचक है। मानव समाज में सुवृत्तियां और दुर्वृत्तियां चिरजीवी हैं। हर युग में उनका अनुपात बदलता चलता है। सुवृत्तियों का जो दैदीप्यमान रूप सत्ययुग में था, वह त्रेता में मंद पड़ गया। द्वापर में और धूमिल हो गया। इस युग को वैश्य युग भी कहा गया। कलियुग के आविर्भाव के साथ-साथ कुर्वृत्तियों का अंधकारमय घेरा तीव्रता से बढ़ने लगा और नैतिकता की सीमाएं सिकुड़नी आरंभ हो गयीं। इस प्रकार के उदाहरण अनेक पुराण साहित्य में उपलब्ध हैं। ऐतिहासिक पृष्ठाधार होते हुए भी सूक्ष्म काल सीमाओं में मिथक साहित्य को बांध पाना असंभव है क्योंकि उसमें जुड़ते प्रक्षिप्तांशों ने कहां-कहां प्रवेश पा लिया, नहीं कहा जा सकता। जो साहित्य उपलब्ध है, उसमें सत्य युग से द्वापर तक की नैतिकता, अनैतिकता, आचार-व्यवहार रचा-पचा-सा दिखायी पड़ता है। अतः यहां समस्त मिथक साहित्य में प्राप्त सामाजिक वृत्तियों के मिले-जुले रूप की प्रस्तुति करना ही संभव है। समय के आधार पर कथाओं का क्रमिक विकासांकन संभव नहीं है। अतः ग्रंथों में अंकित सामाजिक रूप का चित्रण मात्र करने का प्रयास किया गया है।

प्रारंभिक मिथक-साहित्य में प्रकृति की गोचर घटनाओं और तत्त्वों का दैवीकरण मुख्य तत्त्व रहा। धीरे-धीरे समाज में एकेश्वरवाद की प्रतिष्ठा हुई तथापि दैवी शक्ति के प्रति पूज्य भावनाएं बनी रहीं। समाज में प्रकाश अथवा ज्ञान का प्रसार करने वाले लोग देवता कहलाये, अंधकार अथवा अज्ञान का प्रसार करने वाले दानव, दैत्य अथवा राक्षस कहलाये। एक ही पिता की अच्छी और बुरी—दोनों तरह की संतानें होती हैं।[5] सबका मिश्रित रूप समाज कहलाता है। सृष्टि के आरंभ में समस्त जड़ जंगम प्रकृति के जनक ब्रह्मा थे, अतः जन्म से जाति की मान्यता नहीं थी।

ब्रह्मा से जन्म लेने के कारण मनुष्य ब्राह्मण कहलाये। वे वेदपाठी, स्वाध्याय-प्रेमी थे। उत्तरोत्तर ब्राह्मणों में से जो लोग वेदपाठ का परित्याग करके युद्ध-प्रेमी बन गये, वे क्षत्रिय कहलाने लगे। व्यापार बुद्धि से युक्त लोग वैश्य कहलाये तथा सदाचार से भ्रष्ट लोग वेदाभ्यास के अधिकारी नहीं माने जाते थे—वे शूद्र कहलाने लगे। कर्म की प्रधानता थी। अतः प्रत्येक व्यक्ति का कर्म उसकी जाति का निर्धारण करता था।[6] इस तथ्य की पुष्टि राजा

१. ऋग्वेद मंडल ८, सूक्त ६, मंत्र ६१
२. दे० अलर्क (कथा)
३. दे० जरासंध, (कथा)
४. अष्टांग हृदयम्
५. दे० वेन (कथा)
६, महाभारत, शांतिपर्व।१८२-१८६

विश्वामित्र की कथा करती है। ब्राह्मण वसिष्ठ की शक्ति के सम्मुख अपनी ससैन्य शक्ति को हीन देखकर उन्होंने क्षत्रियत्व छोड़कर ब्राह्मणत्व का अर्जन किया।[१] प्रत्येक व्यक्ति अपनी जाति का अर्जन स्वयं कर सकता था। धीरे-धीरे जन्म से जाति का संबंध स्थापित करने की प्रवृत्ति मानव समाज की कर्म में अनास्था को प्रकट करती है। इसी कारण से अथक परिश्रम और साधना के उपरांत भी मतंग ब्राह्मणत्व का अर्जन नहीं कर पाया।[२]

सांसारिकता से त्राण पाने के लिए काम, क्रोध, लोभ, मोह से छुटकारा पाना परम आवश्यक है। पुरा ग्रंथों में अनेक कथाएं इन तथ्यों पर प्रकाश डालती हैं। संसार में मनुष्य-जीवन का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से कुछ अर्जित करना है। जो मोक्ष की ओर उन्मुख हैं, वे अर्थ और काम पर ध्यान नहीं देते; क्योंकि ये दोनों तत्त्व मानव को भौतिकता में फंसाने वाले हैं।

धन की अतिशयता अनेक प्रकार की दुर्भावनाएं संचित करती है। राजा शैव्य का धन के प्रति इतना मोह था कि नारद से उन्होंने ऐसा पुत्र प्राप्त करने का वर मांगा जिसके आंसू, मलमूत्र तथा पसीने के रूप में भी स्वर्ण निसृत हो। ऐसा पुत्र पाकर वह डाकुओं से उसकी सुरक्षा न कर पाया।[३] अग्नि के पुत्र आत्रेय इंद्र की सभा का ऐश्वर्य देख ऐसे विमुग्ध हुए कि वास्तविक ऐश्वर्य न पाने पर उन्होंने त्वष्टा से एक मायावी ऐश्वर्य युक्त सभा का निर्माण करवाया। पृथ्वी पर मायावी इंद्रपुरी में आत्रेय को 'इंद्रासन' पर आसीन देखकर दैत्यों ने आक्रमण कर दिया—त्वष्टा को आत्रेय के अनुरोध पर माया समेटनी पड़ी।[४] धन का मोह भाई-भाई को अलग कर देता है। गौतम के पुत्रों ने धन के लालच में पड़कर अपने भाई जित को कुएं में धकेल दिया था।[५] सोना इधर-उधर पहुंचाने के लिए गूलर में छिपाकर भेजने का चलन भी पुरा साहित्य में मिलता है।[६]

काम के पिपासुओं की भी कमी नहीं थी। इंद्र देवताओं का राजा होने के नाते अच्छे-बुरे की लीक को छोड़कर अपनी इंद्रियों का सुख लूटने का प्रयास करता रहता था। इसी कारण से उसे बार-बार पराजित, छिपा हुआ, अपने पापों का वितरण प्रकृति जन्य विभिन्न पदार्थों में कराता हुआ दिखाया गया है। गौतम का रूप धरकर उसने गौतम-पत्नी अहल्या के साथ विहार किया।[७] दिति के गर्भ में प्रवेश कर उसने उसके पुत्रों को मारने का प्रयास किया—जो 'मारुत' कहलाये।[८] रावण ने तो पग-पग पर कामुकता का परिचय दिया। उसने तक्षक की पत्नी को हर लिया, रंभा से संभोग किया, पुंजिकस्थला से बलपूर्वक संभोग किया। फलतः उसे शाप मिला कि भविष्य में किसी नारी से बलपूर्वक संभोग करने पर उसके सिर के सौ टुकड़े हो जायेंगे। सीताहरण करने पर भी वह व्यभिचार की ओर पग न

१. दे० विश्वामित्र, वसिष्ठ (कथा)
२. दे० मतंग (ख), (कथा)
३. दे० सृंजय (कथा)
४. दे० आत्रेय (कथा)
५. दे० जित (कथा)
६. दे० शुनःसख (कथा)
७. दे० गौतम (क) (कथा)
८. दे० दिति (कथा)

बढ़ा सका । इस प्रकार के अनेक कामाचारी चरित्रों से मिथक-साहित्य आपूरित है किंतु ऐसे सभी लोग शाप के भागी बने—उन्होंने लोगों की निंदा, भर्त्सना तथा अनादरसूचक संबोधन सुने । ऐसे लोग भौतिक जीवन की समाप्ति के बाद आदर नहीं प्राप्त करते । वास्तविक सुजीवन-यापन वही करता है जो अमर है—अर्थात् मृत्यूपरांत भी जिसे सादर स्मरण किया जाता है ।

विषमताओं में जीवन काटकर ही मनुष्य कुछ बन पाता है । भौतिक विषमताएं जीव को दृढ़ और सुकर्मी बनाती हैं । इसी कारण आज जो देवता रूप में प्रतिष्ठित हैं, उन्होंने जीवन में बहुत कष्ट झेले । मिथक-कथाएं इस तथ्य की पुष्टि करती हैं ।

हनुमान केसरी नामक वानर की पत्नी अंजना के जारज पुत्र थे । उनके पिता 'वायुदेव' थे ।[1] उनका बचपन कैसे बीता --विचारणीय प्रश्न है । कुंती के विवाह से पूर्व सूर्य तथा कुंती की संतान का नाम कर्ण था—जिनका लालन-पालन अधिरथ सूत की पत्नी ने किया था ।[2] सोमदा ने भी विवाह से पूर्व चूली से वर प्राप्त करके ब्रह्मदत्त नामक पुत्र को जन्म दिया[3], जो कांपिल्यपुरी का ऐश्वर्यशाली राजा हुआ । ऐसी अनेक नारियां उस युग में थीं जो विवाह से पूर्व स्वेच्छा से अथवा विवशतावश गर्भ धारण कर संतान प्राप्त करती थीं । विवाह में बंधकर वे अपनी उन संतानों को पूरी तरह भुला देती थीं । ऐसी अनैतिकता संभवतः सभी युगों में कामातुर व्यक्तियों से संबद्ध रही है । ब्रह्मदत्त, कर्ण तथा हनुमान की कथाएं यह स्पष्ट करती हैं कि अनैतिक जन्म देने वाला भर्त्सना का पात्र है किंतु शिशु उन सब पापों से मुक्त अपना जीवन अपने कर्मों से बनाता अथवा बिगाड़ता है । कामुक नारियों के प्रति समाज का सद्भाव नहीं होता, इसी कारण से वे इस प्रकार की संतानों से संबंध विच्छेद कर देती हैं । ऐसे उदाहरण सार्वभौमिक साहित्य में उपलब्ध हैं ।

सुंदर नारी को काम का कारण माना जाता है । कभी-कभी एक ही सुंदरी के आकर्षण में बंधकर भाई परस्पर झगड़ने लगते हैं । सुंद तथा उपसुंद नामक दो दैत्य 'भाइयों' से छुटकारा पाने के लिए ब्रह्मा ने विश्वकर्मा से एक अद्वितीय सुंदरी का निर्माण करवाया जिसका नाम 'तिलोत्तमा' था । उसके सौंदर्य पर आसक्त सुंद और उपसुंद ने एक-दूसरे को मार डाला ।[4]

एक ओर समाज में दुराचारी भौतिकवादी ऐश्वर्य तथा धन-लोलुप लोगों का अस्तित्व था तो दूसरी ओर ऐसा वर्ग भी था जो धन को तनिक भी महत्ता नहीं देता था । राम ने मां कैकेयी की प्रसन्नता के लिए राज्य त्याग कर दिया ।[5] प्रह्लाद ने भगवद्भक्ति के निमित्त नाना प्रकार की यातनाएं सहीं—अंत में नृसिंहावतार ने उसकी रक्षा की ।[6] प्रह्लाद ने शील का आश्रय लेकर त्रिलोक पर विजय प्राप्त की । ध्रुव ने पांच वर्ष की अवस्था में ही घोर तप से विष्णु को प्रसन्न कर लिया था—वह भी ऐश्वर्य-प्रेमी नहीं था ।

समाज में नारी अनादि काल से एक रहस्यात्मक प्रहेलिका है । उसकी अनेकायामी गतिविधि के मूल में व्याप्त गहन चेतना को ढूंढ़ निकालना संभव नहीं है । मां के रूप में

१. दे० हनुमान (कथा)
२. दे० कर्ण (कथा)
३. दे० चूली (कथा)
४. दे० सुंद (कथा)
५. दे० राम (कथा)
६. दे० प्रह्लद (कथा)

वह सबकी पूज्य भावनाओं का आलंबन बन जाती है तो प्रेयसी के रूप में वह मोहित करती है। अर्द्धांगिनी बनकर वह या तो पुरुष की स्वामिनी बन बैठती है अथवा उसके क्रूर कर्मों को सहते हुए भूमि के समान सहनशील रूप धारण करती है। वह पुरुष को शक्ति प्रदान करने वाली भी है और वही शक्ति द्रवीभूत होकर कष्टवहन करने की क्षमता से युक्त भी है। नारी-चरित्रगत विविधताओं का विस्तृत उल्लेख मिथक कथाओं में उपलब्ध है।

वैदिक साहित्य में अंकित नारी अबला नहीं थी। वह अगस्त्य-पत्नी लोपामुद्रा की भांति शिष्यों पर आर्द्र थी, अपाला की तरह अपने गृहस्थ-सुख की प्राप्ति के प्रति जागरूक थी। मैत्रेयी की भांति विदुषी थी। याज्ञवल्क्य के दिये धन को अस्वीकार कर मैत्रेयी ने पूछा था—"हे देव! आप तो मोक्ष की खोज में जा रहे हैं और हमें धन दे रहे हैं—क्या यह धन हमें मोक्ष देगा?" याज्ञवल्क्य निरुत्तर हो गये थे। उन्होंने प्रसन्नतापूर्वक अपनी तार्किक पत्नी को मोक्ष का मार्ग दिखलाया था। गार्गी, कात्यायनी आदि सब इसी कोटि की नारियां थीं।

वाल्मीकि रामायण में नारी की सर्वस्तरीय महत्ता थी। वाल्मीकि के आश्रम में गयी सीता की अनुपस्थिति में राम यज्ञ नहीं कर सकते थे। उन्हें सीता की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करनी पड़ी थी।

रामायण में अंकित नारी पात्रों में मंथरा जैसी कुटिल, शूर्पणखा जैसी कामुक तथा कैकसी जैसी आत्मकेंद्रित पात्र भी हैं और सीता, कौशल्या, अहल्या, शबरी, मंदोदरी तथा कैकसी जैसी सद्पात्र भी हैं। ये सब स्थिरमति वाली शांत महिलाएं थीं।

महाभारतकाल तक वैचारिक विषमता इतनी अधिक बढ़ चुकी थी कि समाज में नारी के विविध रूप दिखायी देते हैं। मत्स्यगंधा (सत्यवती), कुंती आदि अनेक नारियों की विवाह से पूर्व हुई संतानों का उल्लेख है। कुंती अपने विवाहपूर्व पुत्र कर्ण का परिचय देने से बचना चाहती थी तो दूसरी ओर सत्यवती ने विवाह से पूर्व जन्मे व्यास को अपना पुत्र घोषित कर अपनी विधवा बहुओं से नियोग के लिए आमंत्रित किया था। अहल्या, सावित्री, सीता जैसी पतिव्रता नारियों का अंकन भी है। नल-दमयंती, तारामती और हरिश्चंद्र के जीवन की सफलता का श्रेय दमयंती और तारामती को ही दिया जा सकता है। पातिव्रत धर्म की दृढ़ता पति को विपत्तियों से सुरक्षित रखती थी अतः विष्णु को तुलसी का सतीत्व नष्ट करना पड़ा ताकि उसके पति शंखचूड़ नामक दैत्य का हनन किया जा सके।[1] रंभा, उर्वशी, मेनका आदि अप्सराओं का प्रयोग ऋषि-मुनियों का तप भंग करने के लिए किया जाता था। अप्सरा वर्ग की महिलाएं अपने बालक के प्रति वात्सल्य को भी स्थायित्व नहीं दे पातीं। उर्वशी आयु को तथा मेनका शकुंतला को जन्म देकर निर्लिप्त भाव से उन्हें पृथ्वी पर छोड़ गयीं। उनके लिए मातृत्व की अपेक्षा इंद्र के राज्य में नृत्य अधिक आकर्षक था। इस कोटि की महिलाएं ही पुरुष को नारी के प्रति तिक्त क्रूर रहने का प्रोत्साहन देती रही हैं। अवसर मिलने पर पुरुष भला कब चूका। एक प्रसिद्ध कथा है, विश्वामित्र ने अपने शिष्य गालव से गुरुदक्षिणास्वरूप चंद्रमा-से श्वेत, किंतु एक ओर से काले कानों वाले आठ सौ घोड़े मांगे। वह निर्धन विद्यार्थी था। उसने राजा ययाति की कन्या माधवी से विवाह कर लिया। ययाति के सुझाव के अनुसार उसने अनेक राजाओं को पुत्र-जन्म के लिए माधवी प्रदान की तथा शुल्क के रूप में गुरुदक्षिणा के लिए घोड़े जुटाये क्योंकि एक राजा के पास वैसे आठ सौ

१. दे० तुलसी (कथा)

घोड़े नहीं मिले। गुरुदक्षिणा जुटाकर गालव ने ययाति की कन्या माधवी उन्हें वापस कर दी।[1] क्या इस प्रकार के विवाह को बणिज व्यापार से इतर कोई संज्ञा देनी उचित है ?

कन्या के विवाह पर प्रायः वर पक्ष की ओर से शुल्क दिया जाता था। दुर्योधन नामक राजा ने अग्नि से अपनी कन्या का विवाह करके शुल्क रूप में मांगा कि वे (अग्नि) महिष्मती नगरी में सदैव निवास करें।[2] सावित्री जैसी राजकुमारियां ऐश्वर्य-मोह से अछूती थीं। सावित्री ने निर्धन सत्यवान से विवाह किया।[3] द्रौपदी के पांच पति थे। महाभारत का यह संदर्भ कुछ विचित्र लगता है, किंतु यह परंपरा भारत में आज भी है। जौनसार बाबर नामक क्षेत्र में आज भी बड़े भाई की पत्नी सब भाइयों की पत्नी मानी जाती है। उसके पुत्र के पिता के रूप में सभी भाइयों का नाम लिखा जाता है। दक्षिण भारत के कुछ भाग में कुल-परंपरा पत्नी के अनुसार चलती है। इसका सूत्र महाभारत में अंकित नाभाग की कथा में मिलता है।[4] स्वयं राजपुत्र होते हुए भी वैश्य की कन्या से विवाह करने के कारण वह भी वैश्य घोषित हो गया।

पुरा साहित्य में नारी का आदिस्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और महेश की शक्तियों के माध्यम से अंकित है। 'पराशक्ति' ने आदिदेवत्रय को सरस्वती, लक्ष्मी तथा गौरी प्रदान की जिनकी सहायता से वे सृष्टि का कार्यभार उठा पाये। हलाहल नामक दैत्यों का संहार करने में भी उन शक्तियों का सहयोग था; किंतु आदिदेवत्रय समस्त श्रेय के भागी अपने अतिरिक्त किसी को मान ही नहीं रहे थे। उनका मिथ्याभिमान तोड़ने के लिए पराशक्ति ने तीनों शक्तिरूपों को समेट लिया। उनके बिना आदि देवत्रय सृष्टिपरक कार्य में न केवल असमर्थ हो गये अपितु शिव और विष्णु तो विक्षिप्तावस्था तक पहुंच गये। मनु तथा सनकादि की तपस्या से प्रसन्न होकर पराशक्ति ने पुनः तीनों शक्तियों को वापस भेजा।[5]

शिव की अर्द्धांगिनी के सती, पार्वती, चंडी, भवानी, काली, आदि नाम उसके विभिन्न क्रियाकलापों से जुड़े हुए हैं। पुराणों में नारी की उच्चस्तरीय महत्ता भी अंकित है और कामुक परिवेश स्थापन करने वाला व्यक्तित्व भी।

रामायण में श्रवणकुमार जैसे माता-पिता की सेवा करने वाले व्यक्ति का अंकन मिलता है तो महाभारत में विद्वान् नेत्रहीन दीर्घतमा की सेवा से उकताकर त्रेतन नामक सेवक ने उन्हें डुबाने का असफल प्रयास किया। उसने दीर्घतमा पर तलवार से जितने वार किये, वे उसका अपना ही घात करते गये।[6] कथा के अंत में दीर्घतमा को सुरक्षित तथा त्रेतन को खंड-खंड हुए मृत शरीर वाला दिखाकर आदर्श की स्थापना का प्रयत्न किया गया है। फिर भी उस युग में बढ़ी विरूपता की झलक सर्वत्र दर्शनीय है।

दूसरे की कीर्ति से जलना तो चिरंतन वृत्ति है। गौतम की कथा इस तथ्य को पुष्ट करती है।[7]

१. दे० गालव (कथा)
२. दे० दुर्योधन (ख) (कथा)
३. दे० सावित्री (कथा)
४. दे० नाभाग (दिष्टपुत्र) (ख), (कथा)
५. दे० सती (कथा)
६. दे० दीर्घतमा (कथा)
७. दे० गौतम (घ) (कथा)

इन सब विरूपताओं का अंकन करते हुए भी मिथकीय अवचेतना निरंतर आदर्शवादी रही है। प्रत्येक व्यक्ति को कर्म के अनुसार फल प्रदान करके कथाएं मानव समाज की नैतिकता के अंकुश का कार्य करती हैं। कायव्य नामक 'दस्यु' व्यापारियों की चोरी कर स्वार्जित धन का व्यय अपने अंधे माता-पिता, निर्धन लोगों तथा संन्यासी ब्राह्मणों पर करता था। जो उसे चोर जानकर उससे कुछ लेना पसंद नहीं करते थे—उनके घर में वह चुपचाप धन रख जाता था। इस प्रकार के सेवा-भाव, निष्काम कर्म और धर्म का पालन करके उसने अनेक डाकुओं का उद्धार किया तथा सद्गति प्राप्त की।[1] जब पूजनी नामक चिड़िया के बेटे को राजकुमार ने मार डाला तो पूजनी ने उसकी दोनों आंखें फोड़ दीं। राजा ब्रह्मदत्त पूजनी के इस कृत्य के मूल में अपने बेटे के अपराध को देखकर पूजनी के प्रति मित्र भाव प्रदर्शित करता है।[2] इस प्रकार की नीतिकथाएं भी अनंत हैं।

कौशिक की कथा स्पष्ट करती है कि माता-पिता की सेवा साधु-धर्म से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है।

मदांध व्यक्ति का नाश अवश्यंभावी है। नहुष, रावण, नलकूबर, मणिग्रीव इत्यादि के चरित्र इस तथ्य की पुष्टि करते हैं।[3] समाज में बहुविवाह की प्रथा प्रचलित थी। आज भी है। दशरथ के परिवार का नाश इसी समस्या से आरंभ हुआ था। चंद्रमा के घटते-बढ़ते रूप के साथ भी बहुविवाहजन्य विरूपता को जोड़कर अत्यंत कुशलता से प्रस्तुत किया गया है। दक्ष प्रजापति की २७ कन्याओं से विवाह होने पर चंद्रमा उनमें से सर्वाधिक प्रेम रोहिणी से करता था। शेष २६ उपेक्षित पत्नियों के कष्ट से विचलित दक्ष ने चंद्रमा को क्षयग्रस्त होने का शाप दिया।[4]

किसी की शारीरिक कुरूपता का परिहास भी अनुचित माना जाता था।[5]

वीरता पुरुषोचित धर्म था। वीरता से च्युत व्यक्ति को नपुंसक की श्रेणी में रखा जाता था। भीमसेन, कर्ण, अर्जुन आदि अनेक वीरों पर भारतीय मिथक-साहित्य गर्व का अनुभव करता है। नारी वर्ग में भी चंद्रिका, भवानी आदि देवियों के साथ-साथ विदुला जैसी वीरांगना का नाम भी चिरस्मरणीय है। अपने पुत्र संजय के युद्ध-क्षेत्र से भाग आने पर वह कहती है—"धुआं छोड़ती निस्तेज आग से क्षणिक प्रज्वलित ज्वाला कहीं अधिक श्रेयस्कर है।"[6]

मानव समाज में दान-वृत्ति के महत्त्व का प्रतिपादन नेवले की कथा करती है। पांडवों के अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर यज्ञ, दान, दक्षिणा, आतिथ्य इत्यादि सुचारु रूप से संपन्न हुए। यज्ञ की समाप्ति पर एक नेवला वहां पहुंचा और बोला—"यह दान क्या है—यह तो कुरुक्षेत्र निवासी उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मण के सेर भर सत्तू के दान की बराबरी भी नहीं कर सकता।" लोगों का ध्यान नेवले की ओर गया। उसकी आंखें नीली थीं तथा आधा शरीर

१. दे० कायव्य (कथा)
२. दे० ब्रह्मदत्त (कथा)
३. दे० नहुष, रावण, यमलार्जुन (कथाएं)
४. दे० प्रभासतीर्थ (कथा)
५. दे० रावण (कथा)
६. अलातं तिन्दुकस्येव मुहूर्तमपि विज्वल।
मा तुषाग्निरिवानर्चिर्धूमायस्व जिजीविषुः ॥१४॥

—महाभारत, उद्योगपर्व, अध्याय १३३

सोने का था। नेवले ने ब्राह्मण की कथा सुनायी—"वह निर्धन ब्राह्मण परिवार तीन दिन में एक बार भोजन कर पाता था। अकाल पड़ने पर लंघन का समय और अधिक बढ़ गया। एक दिन ब्राह्मण को एक सेर जौ का सत्तू मिला। उसने घर आकर परिवार के समस्त सदस्यों में वह बांट दिया। अभी सत्तू परोसा ही था कि अतिथि ने घर में प्रवेश किया। वह बहुत भूखा था। ब्राह्मण ने सबसे पहले अपना हिस्सा उसे समर्पित किया। उसके तृप्त न होने पर धीरे-धीरे सारे परिवार के समस्त सत्तू उसे सहर्ष समर्पित कर दिये। अतिथि-रूप में धर्म ही वहां पहुंचा था। अत्यंत प्रसन्न होकर वह उस पूरे परिवार को अपने विमान पर बैठाकर स्वर्गलोक ले गया। आतिथ्य में गिरे सत्तू और जल का संपर्क मेरे शरीर के जिस किसी भाग से हुआ, वह स्वर्णिम हो गया। तब से मैं प्रत्येक वृहत् यज्ञ में जाता हूं—किंतु कहीं भी दान का वह चमत्कारी रूप नहीं देख पाता।"[1] यह कहकर नेवला अंतर्धान हो गया। अपनी सीमा के अनुसार किया गया दान समान रूप से महत्त्वपूर्ण होता है। इस तथ्य को उजागर करने वाली इससे सुंदर कथा किसी भी संस्कृति में नहीं मिल सकती। आश्चर्य तो तब होता है जब आज के परिवेश में प्रचलित परंपराओं का उल्लेख हमें पुरा साहित्य में भी मिलता है।

लक्ष्मण के यह कहने पर कि हरिण मायावी है, वह 'हा लक्ष्मण, हा सीता !' कहकर केवल भ्रम उत्पन्न करना चाहता है, सीता ने अपनी छाती पीट ली—यह सोचकर कि लक्ष्मण की कुदृष्टि है।[2] बच्चे का माथा सूंघना भी प्राचीन परंपरा है।[3] परस्पर गले मिलने की प्रथा भी बहुत प्राचीन है। शिव ने किरात के रूप में अर्जुन की परीक्षा ली थी।[4] अर्जुन से प्रसन्न होकर शिव ने वास्तविक रूप में प्रकट होकर अर्जुन का आलिंगन किया। फलतः अर्जुन के शरीर में जो कुछ अमंगलकारी था, शिव के स्पर्श से नष्ट हो गया। अपने कुकर्म पर किया प्रायश्चित्त मानव को तज्जन्य पापों से मुक्ति दिला देता है। देवाधिपति इंद्र ने ब्रह्महत्या जैसे पाप से मुक्ति पाने के निमित्त प्रायश्चित्त किया।[5]

पौराणिक मान्यता है कि किसी भी उत्पात का फल १३ वर्ष तक होता है।[6] इसी कारण से १३ साल की परिधि में शिशुपाल-वध के फलस्वरूप क्षत्रिय युद्ध होने की संभावना की भविष्यवाणी वेदव्यास ने कर दी थी। हाथ मिलाने की प्रथा को आज हम पाश्चात्य प्रभाव मानते हैं—किंतु पुरा ग्रंथों में भी इसकी चर्चा मिलती है।

मिथक कथाओं में यातायात विषयक उल्लेख स्पष्ट करते हैं कि दायीं ओर से आगे जाने की परंपरा थी। शिवि और सुहोत्र की कथा में यह संकेत उपलब्ध है।

वाल्मीकि रामायण के कुछ संदर्भों से यह भी स्पष्ट है कि तत्कालीन समाज में ब्राह्मण मांस-भक्षण नहीं करते थे। गौतम ऋषि का आतिथ्य करते समय अनजाने में ही मांस परोसने के कारण राजा गिद्ध बन गया।[7] स्वप्न-संकेतों में विश्वास भी मिथकीय अवचेतना है। वाल्मीकि रामायण में भी स्वप्न में अच्छा-बुरा देखने की मान्यता मिलती है। यदि स्वप्न में

१. दे० अश्वमेध यज्ञ (कथा)
२. दे० मारीच (कथा)
३. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या कांड २१।२०।-
४. दे० किरातार्जुन (कथा)
५. दे० इंद्र, नहुष (कथाएं)
६. दे० युधिष्ठिर (कथा)
७. दे० उलूक (कथा)

किसी को गधे के रथ पर जाता देखें तो उसकी मृत्यु अवश्यंभावी मानी जाती थी।[१]

राजनीतिक तंत्र की विविधता अपूर्व है। एकतंत्र राज्य की महिमा राम-राज्य के रूप में दर्शनीय है। राजनीति की विडंबना राजा को चैन से जीने नहीं देती। जब जनता सुख-निद्रा में लीन होती है, राजा उनके दुःख-दर्द की खोज में भटकता है। राम ने चौदह वर्ष वन में बिताकर राज्य पाया तो सीता के सान्निध्य से हाथ धोना पड़ा। ब्राह्मण जाबालि नीतिनिपुण व्यक्ति थे, राम को माता-पिता का विचार छोड़कर राज्य ग्रहण करने का उपदेश देते रहे। उन्होंने कहा कि माता-पिता का घर तो यात्रा करते हुए विश्रामस्थली होता है उनके लिए राज्य छोड़ना भला कैसे उचित है! उन्होंने राम को वनगमन से विमुख करने का भरसक प्रयत्न किया, किंतु पुरुषोत्तम राम ने अपने शील का परित्याग नहीं किया।[२] धरना अथवा असहयोग आंदोलन का बीजारोपण भी वाल्मीकि रामायण में हो चुका था। भरत राम की कुटिया के सामने धरना देते हैं। राम कहते हैं—'धरना देना ब्राह्मण का अधिकार है, क्षत्रिय का नहीं।'[३]

महाभारत में एकतंत्र की व्यवस्था के विरोध में गणराज्यों की स्थापना हुई। कृष्ण का उद्देश्य गणतंत्र की स्थापना था। उन्होंने यादववंशी शासन का श्रीगणेश किया। महाभारत में कामरूप (आसाम) कौरवों के पक्ष में था। नरकासुर ने उसकी स्थापना की थी। वीरबभ्रूवाहन का राज्य मणिपुर पांडवों की ओर से लड़ा था।

महाभारत में राजा द्युमत्सेन के पुत्र सत्यवान ने प्राणदंड की व्यवस्था के विरोध में स्वर उठाया। उसने कहा—'यदि पहले अपराध पर क्षमा और दूसरे अपराध पर प्राण दंडेतर कोई और दंड दिया जाये तो दंडित व्यक्ति का परिवार जीविकारहित नहीं रहेगा। यदि ब्राह्मणों का अनुशासन स्थापित करें तो धर्म की वृद्धि होगी।'[४] निहत्थे पर वार करना चिरकाल से अनैतिक कहलाया है। दूत का सम्मान और सुरक्षा राजनीति का आवश्यक अंग रहे हैं। हनुमान तथा अंगद के उत्पात करने पर भी रावण ने उन्हें नष्ट नहीं किया।

मिथक कथाओं में जहां कहीं नियमों का उल्लंघन हुआ है, वहां अनैतिकता की स्वीकृति भी है।

मनुस्मृति में राजनीतिक तथा सामाजिक नियमों का सुंदर आलेख है। तब तक जन्मजात जातियों की स्थापना हो चुकी थी। मनुस्मृति में राजा को उच्च जातियों के प्रति अधिक सख्ती करने का आदेश था। साथ ही अपने से ऊंची जाति के प्रति आदरपूर्वक व्यवहार भी वांछित था। ब्राह्मण शूद्र की निंदा करे तो दो मुद्राओं का जुर्माना था, यदि शूद्र ब्राह्मण की निंदा करे तो चार गुना अधिक जुर्माना था। चोरी जैसा अपराध करने पर शूद्र की अपेक्षा ब्राह्मण की सजा आठ गुनी थी। अपराध और उसके निराकरण के लिए एक सानुपातिक व्यवस्था थी।

ग्रह नक्षत्रों से संबद्ध खगोल एवं ज्योतिषशास्त्र की झांकी भी पुरा साहित्य में दिखलायी पड़ती है। यद्यपि उसकी वृहत् व्याख्या आर्यभट्ट ने पांचवीं शती में की। आश्चर्य है कि वर्तमान युग में वैज्ञानिक ग्रह-नक्षत्रों विषयक जिन तथ्यों को स्वीकार करने लगे हैं, उनका

१. वाल्मीकि रामायण, सर्ग ६९, पृ० ३५४
२. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या कांड, सर्ग १०८।
३. वाल्मीकि रामायण, अयोध्या कांड। १११।१३-१६
४. दे० द्युमत्सेन (कथा)

उल्लेख पुरा साहित्य में सहज उपलब्ध है। ज्योतिषशास्त्र में शनी को सात वलयों से युक्त माना जाता रहा है। वर्तमान विद्वान बीसवीं शती में इसकी पुष्टि करने लगे हैं।

वाल्मीकि रामायण में तंत्र-मंत्र के अनेक सूत्र मिलते हैं। लक्ष्मणरेखा, हनुमान का समुद्र-लंघन, तथा इंद्रजित का माया युद्ध इसके प्रमाण हैं। महाभारत में अंकित भीमसेन के पौत्र अंजनपर्वा का मायावी युद्ध,[1] द्रौपदी को सूर्य से मिला अक्षय पात्र[2] जिसमें बना थोड़ा-सा भोजन भी द्रौपदी के भोजन करने से पूर्व समाप्त नहीं होता था, तत्कालीन तंत्र साधना के प्रतीक हैं। राम ने मंत्रपूत कुशा से कौए के वेश में आये जयंत को भगा दिया।[3] ये सभी कथाएं तंत्र-मंत्र की विद्यमानता को सिद्ध करती हैं।

जैन और बौद्ध साहित्य में तांत्रिक चमत्कार का प्रदर्शन निषिद्ध माना गया। बुद्धचर्या की एक प्रसिद्ध कथा है कि एक राज-श्रेष्ठी ने चंदन का बर्तन बनाकर एक बांस से जोड़ दिया, फिर बांस के दूसरे सिरे पर क्रमशः बांस जोड़ता गया। जब वह चंदन का पात्र आकाश छूता दिखलायी पड़ा, तो उसने कहा—"जो अर्हत हो वह पात्र वहीं से ग्रहण कर ले।" उसकी चुनौती पर पिंडोल भारद्वाज ने उड़कर उस पात्र को ग्रहण किया। महात्मा बुद्ध को ज्ञात हुआ तो उन्होंने पिंडोल भारद्वाज को धिक्कारा कि लकड़ी के बर्तन के लिए चमत्कार-प्रदर्शन की क्या आवश्यकता थी? इसी वृत्ति को वर्जित कहकर बुद्ध ने वह पात्र तुड़वा दिया।[4] प्रस्तुत कथा इस ओर संकेत करती है कि मनुष्य को सत्कार्य में लगा रहना ही शोभा देता है—अपनी शक्ति का प्रदर्शन करना ओछापन है।

सांस्कृतिक प्रहरी मिथक-कथाएं जीवन के प्रत्येक पक्ष को समेटे रहती हैं। काल और वातावरण बाह्य स्वरूप को बदल सकते हैं किंतु मानव समाज की अंतर्वृत्ति में परिवर्तन नहीं ला सकते। मिथकों का निर्माण अनायास ही नहीं होता—वे चेतन और अवचेतन मन की क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति का माध्यम हैं। मिथक वीथिका के दूसरे छोर से लेकर वर्तमान प्रवेश द्वार तक आवरण, रंग, स्वरूपगत परिवर्तनशीलता भले ही आभासित हो, किंतु वे (मिथक) मानव की मूल अंतश्चेतना का निरंतर द्योतन करती रही हैं। उन्हें देश-काल और वातावरण में आबद्ध नहीं किया जा सकता। उनकी महत्ता सार्वभौमिक है क्योंकि उनके स्वर की गूंज किसी भी संस्कृति से क्यों न जुड़ी हो—नैतिकता का प्रसार करती है। समय-समय पर जन्म लेने वाले मिथक जीवन के किसी भी अंश को अछूता नहीं छोड़ते। अंत में यह कहना असंगत न होगा :

मिथक अनंत, मिथक कथा अनंता॥

१. दे० अंजन पर्वा (कथा)
२. दे० अक्षय पात्र (कथा)
३. दे० जयंत (कथा)
४. दे० पिंडोल भारद्वाज (कथा)

हिंदी साहित्य और मिथकीय प्रासंगिकता

यदि हम भारतीय संस्कृति एवं चिंतन के अविरल प्रवाह पर ध्यान दें तो अनुभव करेंगे कि प्राक् ऐतिहासिक काल से संस्कृति, चिंतन, अनुभूति तथा धार्मिक मान्यताओं को समेटकर सुरक्षित करने का कार्य मिथक साहित्य ही कर रहा है।

हिंदी साहित्य का प्रादुर्भाव और विकास निरंतर मिथकों से जुड़ा हुआ प्रतीत होता है। समय-समय पर मिथकों की उपज साहित्य को नव आयामों से विभूषित करती रही है। अमूर्त सूक्ष्म भावों को व्यक्त करने के लिए मिथक बिंब का कार्य करते हैं तो उजड़ती नैतिकता को आरक्षित रखने के लिए वे अंकुश बन बैठते हैं। लोक मंगल के उदात्त आदर्शों को पुष्ट करने का लक्ष्य होने के कारण मिथक-कथाएं तदनुकूल मार्ग की ओर निरंतर बढ़ती रही हैं। समाज के बिखराव, उदासीनता, अनाचार पर अनुशासन की डोर थामने वाले मिथक किसी भी युग में साहित्य के लिए अप्रासंगिक नहीं रहे हैं। सामाजिक चेतना की राहों के साथ बढ़ती पौराणिक गाथाएं समाजानुकूल रूप धरती रही हैं। भारतीय संस्कृति में साहित्य का रस 'ब्रह्मानंद' सहोदर कहलाता है—मिथकीय चेतना उसे 'सहोदर' की कोटि तक पहुंचाने के सोपान प्रदान करती है।

यह सत्य है कि मानव अन्य जीवों से ऊंचे स्तर पर है—क्योंकि वह अपनी इच्छा से समस्त जड़ चेतन प्रकृति का सांस्कृतिक परिष्कार करने में समर्थ है—फिर भी उसकी क्षमता सीमित है। मनचाही हर वस्तु को वह अपने ढंग से तोड़-मरोड़ नहीं पाता—अपने जीवन की सीमा को बढ़ाने में भी वह असमर्थ है। जीवन के जिन बिंदुओं पर उसे अपनी अक्षमता का आभास मिलता है, वे बिंदु उसे समस्त विश्व में व्याप्त असीम ब्रह्म की सत्ता का बोध करवाते हैं, जो न सीमित है और न नाशवान। उस सत्ता का बोध मानव को चिंतनशील बनाता है। उसका वरदहस्त पाने की लालसा मनुष्य को साहस बटोरने की प्रेरणा देती है। फलत: वह बड़े से बड़ा कार्य-भार उठाने में जुट जाता है। इस ज्ञान का खजाना मिथक-साहित्य बटोरे रहता है। अपनी सीमाएं पहचानकर ही मनुष्य आत्म-केंद्रित रहने की प्रवृत्ति का त्याग कर सकता है—अन्यथा छोटे से सुख के लिए वह दूसरे लोगों को बड़े से बड़ा कष्ट देने के लिए तत्पर रहता है। पाशविकता का यह आत्मकेंद्रित रूप वह तभी त्याग पाता है जब उसे मिथक साहित्य का सहारा प्राप्त होता है। पुरा कथाओं का प्रभाव उसके दृष्टिकोण को आमूल परिवर्तित करने की क्षमता से युक्त है। पौराणिक गाथाएं कभी शिक्षा देती हैं तो कभी मनोवैज्ञानिकता से प्रभावित करती हैं—कभी कुकर्म के फल पर प्रकाश डालकर और कभी सुकर्म की धुरी पर टिके एकाकी व्यक्ति पर ब्रह्म की असीम कृपा को उजागर कर। मनुष्य की प्रवृत्तियां हर युग में एक सी ही रहती हैं—मात्र भले-बुरे की संख्या बदलती है—इसी कारण से युगों पूर्व रची गयी मिथक कथाएं साहित्य के हर युग में समान रूप से प्रासंगिक जान पड़ती हैं।

हिंदी साहित्य का कोई भी युग मिथकीय अवचेतना से अछूता नहीं है। भावबोध से लेकर कलात्मक अभिव्यक्ति तक सर्वत्र मिथकों की उपादेयता दर्शनीय है।

हिंदी साहित्य के आदिकालीन रासो ग्रंथों में नारी के सौंदर्य पिपासु राजाओं के परस्पर युद्ध का वर्णन हुआ। यह तत्युगीन राजनीतिक परिवेश का प्रभाव था, किंतु दूसरी ओर पुरा कथाओं से प्रभावित साहित्य की धारा भी सहज प्रवाहमान बनी रही। बौद्ध धर्म के वज्रयान तत्त्व का प्रचार सिद्धों के साहित्य में मिलता है। इसका श्रीगणेश सिद्ध सरहपा के साहित्य

से हुआ। इस कोटि के साहित्य में शबरपा, लुइपा, डोम्भिपा, कण्हपा तथा कक्कुरिपा आदि की रचनाएं विशेष उल्लेखनीय हैं।

जैन धर्म-परंपरा में देवसेन का रचा काव्य 'श्रावकाचार', जिनकेश्वर का 'भारतेश्वर बाहुबली रास', आसगु का 'चंदनवाला रास', जिनधर्म सूरि का 'स्थूलिभद्ररास', विजयसेन सूरि का 'रेवंतगिरिरास', सुमतिगणि का 'नेमिनाथरास' विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं। जिन मुनियों के उपदेश और चरित्रांकन में जैन-मिथक साहित्य की अपूर्व छटा दर्शनीय है। 'भारतेश्वर बाहुबली रास' में रामकथा और 'नेमिनाथ रास' में कृष्ण कथा को नये रूप प्रदान किये गये हैं।

हिंदी के आदिकालीन साहित्य में नाथ पंथियों के हठयोग, वाम मार्ग तथा तंत्र-मंत्र का प्रसार भी हुआ। इस धारा में विशेष चर्चा का विषय गोरखनाथ रहे हैं। वे मत्स्येंद्रनाथ के शिष्य थे। वे इतने प्रसिद्ध हुए कि शैव, शाक्त, जैन, बौद्ध आदि विभिन्न मतवादियों ने नाथपंथ से आत्मसात कर लिया। गोरखनाथ की रचनाओं में गुरुमहिमा, इंद्रिय-निग्रह, वैराग्य, समाधि, हठयोग एवं ज्ञानयोग आदि विभिन्न तत्त्वों का अंकन उपलब्ध है।

पूर्वमध्यकाल तक पहुंचते-पहुंचते सिद्ध और नाथों की रचनाओं ने संत काव्यधारा का रूप धारण कर लिया। उन्होंने हर भाव और क्रिया को तर्क की कसौटी पर कसकर ग्रहण किया। अत: वे निर्गुण ब्रह्मपरक ज्ञानाश्रयी शाखा के भक्त कहलाये। इस धारा के विशेष उल्लेखनीय कवि रैदास, नानकदेव, जम्भनाथ, हरिदास निरंजनी, सींगा, लालदास, दादूदयाल, मलूकदास, बाबा लाल आदि हैं। अंधविश्वास, जाति, धर्म विशेष, कर्मकांड, आदि किसी भी बंधन को वे स्वीकार नहीं करते थे। संत मत में अनेक विख्यात भक्त हुए। सबका विवेचन तो संभव नहीं है। उनमें सर्वोपरि स्थान कबीर को प्राप्त था। उनके काव्य को आधार बनाकर मिथकीय प्रासंगिकता पर विचारा जा सकता है।

नि:संग कवि होते हुए भी वे मिथक-कथाओं से अलग नहीं रह पाये। कबीर ने प्रह्लाद तथा नृसिंहावतार[१] की पौराणिक गाथा के माध्यम से मानव मन में सर्वशक्तिसम्पन्न ब्रह्म के प्रति आस्था का बीज बोने का यत्न किया है। उनका अवतारवाद में तनिक भी विश्वास नहीं था तथापि प्रासंगिकतावश वे मिथकों को तिलांजलि नहीं दे पाये। विष्णु की महत्ता स्वीकार करते हुए उनके चरण से उत्पन्न गंगा की कथा भी कबीर ने ग्रहण की है। विष्णु की नाभि से कमल निकला, जिस पर ब्रह्मा का जन्म हुआ, इसका उल्लेख भी उनके ग्रंथ में मिलता है :

जाके नाभि पदम सु उदित ब्रह्मा, चरन गंग तरंग रे।
कहै कबीर हरि भगति बांछूं, जगत गुरु गोब्यंद रे॥

—कबीर ग्रंथावली, पृ० सं० २८१, पद सं० ३९०

कबीर ने इंद्र,[२] नारद,[३] कृष्ण,[४] उद्धव, अक्रूर, शंकर,[५] राजा अंबरीष[६] आदि अनेक

१. तब काढ़ि खड्ग कोप्यौ रिसाइ, वोहि राखनहारौ योहि बताइ॥
खंभा में प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकुस मारयौ नख विदारि॥
महापुरुष देवाधिदेव, नरस्यघ प्रगट कियो भगति भेव।
कहै कबीर कोई लहै न पार, प्रहलाद उबार्‍यौ अनेक बार॥ —कबीर ग्रंथावली, पद सं० ३७९

२. इन्द्रलोक अचिरज भया, ब्रह्मा पड़्या विचार॥
कबीर चाल्या राम पै, कैतिग हार अपार॥ —कबीर ग्रंथावली, पृ० ७९, दोहा ३

३. भजि नारदादि सुकादि बंदित चरण पंकज भांमिनी।
भजि भजिसि भूषन पिया मनोहर देव देव सिरोवंनी॥ —वही, पृ० २८१, पद ३९२

मिथकों का सविस्तार वर्णन किया है। यद्यपि वे निर्गुणपंथी थे। अवतारवाद से लेकर मूर्ति-पूजा तक से उनका वैचारिक विरोध था, तथापि रुक्मणी, तुलसी, मदन आदि विभिन्न मिथकीय पात्रों के विषय में उन्होंने लिखा है :

इहि बनि बाजै मदन भेरि रे, उहि बनि बाजै तूरा रे।
इहि बनि खेलै राही रुक मनि, उहि बनि कान्ह अहीरा रे ।।
आसि पासि तुरसी कौ बिरवा, मांहि द्वारिका गाऊं रे।
तहां मेरो ठाकुर राम राइ है, भगत कबीरा नाऊं रे ।।[1]

कबीर ग्रंथावली के अध्ययन से स्पष्ट है कि वे आदिदेवत्रय में से विष्णु को विशेष महत्ता प्रदान करते थे। उनके अनुसार शिव तमोगुण, ब्रह्मा रजोगुण तथा विष्णु सतोगुण से युक्त हैं :

रजगुन ब्रह्मा, तमगुण संकर, सतगुन हरि है सोई।
कहै कबीर एक राम जपहु रे, हिन्दु तुरक न कोई।[2]

× × ×

कितेक सिव संकर गये उठि, राम समाधि अजहूं नहीं छूटि।
प्रलैकाल कहूं कितैक भाष, गये इन्द्र से अगणित लाष।
ब्रह्मा खोजि पड्यो गहि नाल, कहै कबीर वै राम निराल।[3]

उनके पदों में राम के प्रति विशेष भक्तिभाव का अंकन मिलता है। दाशरथी राम के जीवन से संबद्ध शबरी, विष्णु के परम भक्त अंबरीष आदि अनेक संदर्भों की चर्चा करते हुए उन्होंने कहा :

राजा अंबरीष कै कारणि, चक्र सुदर्शन जारै।
दास कबीर को ठाकुर ऐसो भगत की सरन उबारै।[4]

राम-भजन से तो भीलनी और गणिका भी संसार-सागर तर गयी, पत्थर तैरने लगे।[5] कबीर के राम निर्गुण होते हुए भी कहीं-कहीं सगुण हैं। उनके पास पौराणिक पद्धति के

४. लोग कहैं गोवरधनधारी, ताको मोंहि अचम्भो भारी।
अष्टकुली परबत जाके पग की रैना, सातों सायर अंजन नैना।
ए उपमा हरि किती एक ओपै, अनेक मेर नख ऊपरि रोपै ।।
धरणि अकास अधर जिनि राखी, ताकी मुगधा कहै न साखी।
सिव विरंच नारद जस गावै कहु कबीर वाको पार न पावै ।।

—कबीर ग्रंथावली, पृ० २०१, पद सं० ३३३

५. इन्द्र लोक सिव लोक जैवो, ओछे तप कर बाहुर ऐबो।

—वही, पृ० २७०, पद सं० १९

६. जागे सुक, ऊधव, अकूर, हणवंत जागै लै लंगूर।
संकर जागे चरन सेव, कलि जागे नांमां जैदेव ।।

—वही, पृ० २१६, पद सं० २८७

१. कबीर ग्रंथावली, पृ० ११२, पद सं० ७६
२. वही, पृ० १०६, पद सं० ५७
३. वही, पृ० ९९, पद ३५
४. वही, पृ० १२७, पद सं० १२२
५. भजन को प्रताप ऐसो तिरे जल पारवान।
अधम भील, अजाति गनिका चढ़े जात बिमान।

—वही, पृ० १९०, पद सं० ३०१

अनुकूल शेषनाग है। गरुड़ और लक्ष्मी भी हैं। ये सब उनके पास रहते हैं। कमला तो सदैव उनके चरण-कमलों की सेवा करती रहती हैं, किंतु भगवान की गति को वह भी नहीं जान पातीं।[1] विष्णु को वे नारायण, गोविंद, मुकुंद आदि अनेक नामों से स्मरण करते हैं।[2] उन्होंने विष्णु की अवतारी लीलाओं के साथ-साथ निर्गुण ब्रह्म के सूक्ष्म स्वरूप को दृश्यमान जगत् का निर्माण कर उसकी ओट में छिपे रहने वाला माना है।

पूर्वमध्यकाल की प्रेमाश्रयी निर्गुण काव्यधारा सूफी संप्रदाय के नाम से प्रसिद्ध हुई। सूफी शब्द 'सूफ' से बना, जिसका अर्थ सफेद ऊन था। अतः विलास शून्य सरल लोग सूफी कहलाये।[3] इस संप्रदाय के अधिकांश कवि मुसलमान थे। उन्होंने मसनवी शैली में रचनाएं कीं, किंतु इस्लाम की विचारधारा से वे जरा हटकर थे। इस्लाम में खुदा सबसे अलग है—उससे मनुष्य भयभीत रहता है—उस तक वह पहुंच नहीं सकता, किंतु सूफी कवियों ने भारतीय लौकिक गाथाओं को समासोक्ति के रूप में अंकित किया है। कुरान के प्रभाव से उन्होंने सात स्वर्गों का वर्णन किया है तो भारतीय प्रभाव से उनके साहित्य का मेरुदड आत्मा और परमात्मा का परस्पर प्रेम भाव है। सूफी कवियों में जायसी, मंझन, उसमान, आलम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। आत्मा-परमात्मा के अंश-अंशी संबंध को व्यक्त करते हुए भी वे उनके प्रेमात्मक संबंध को ही स्वीकार करते थे—ज्ञानपरक संबंध को नहीं। इसी कारण से वे संत कवियों से भिन्न कोटि में रखे गये। इस धारा के कवियों में मुल्ला दाऊद, नूरमुहम्मद, कुतुबन, दामोदर, गणपति, जायसी, मंझन, कल्लोल, शेखनवी, कासिम शाह विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें सर्वोपरि स्थान जायसी का है—अतः उनकी रचनाओं के आधार पर ही मिथकीय अवचेतना पर प्रकाश डाला जा सकता है।

सूफी काव्य भी पुराण कथाओं से प्रभावित रहा है। जायसी ग्रंथावली के आधार पर यह कहना असंगत न होगा कि मुख्य कथा में यत्र-तत्र अनेक मिथकों को पिरोया गया है। जायसी ने विरहव्यथित हृदय की ज्वाला प्रकृति के कण-कण में व्याप्त दिखायी है। भारतीय पद्धति के अनुसार परमात्मा के तीन रूप हैं—रचयिता (ब्रह्मा), पालनकर्ता (विष्णु), संहारक (महेश)। इन तीनों को सूफी भक्तों ने स्वीकार किया है। नूर (ज्योति), जिससे संपूर्ण संसार की सृष्टि हुई, उसका वर्णन जायसी ने अखरावट में किया है। उसके अनुसार 'मुहम्मद' रूपी नूर के प्रेम से एक बीज जमा, जिससे श्वेत और श्याम दो वृक्ष उत्पन्न हुए। बीज के बिरवे के रूप में अंकुरित होते ही दो पत्ते उत्पन्न हुए, जिनमें एक पिता है, दूसरा माता है। पिता स्वर्ग है और माता धरित्री। यह युग्म संसार भर में फैला हुआ है। जायसी ने जिन दो वृक्षों को श्वेत और श्याम कहा—उनमें से एक जड़ है, दूसरा चेतन। चेतन जीव को भी जायसी परमात्मा के साथ एक कर देते हैं।[4] बौद्ध धर्म के प्रभाव से शून्य की खोज में लगे वे इंद्र, ब्रह्मांड आदि के कथानकों से घिर जाते हैं :

सुन्नहिं माझ इन्द्र ब्रह्मांडा। सुन्नहि ते टीके नवखंडा।
सुन्नहिं ते उपजे सब कोई। पुनि बिलाइ सब सुन्नहि होई।[5]

१. भक्ति का विकास—डॉ० मुंशीराम शर्मा, पृ० ४३५
२. मेरी जिभ्या विस्न, नैन नाराइन, हिरदै जपै गोविन्दा।
जम दुवार जब लेखा मांग्या, तब का किहिस मुकुन्दा।
—कबीर ग्रंथावली, पृ० १७३, पद सं० २५१
३. हिन्दी साहित्य का सुबोध इतिहास—गुलाबराय एम० ए०, पृ० ५२
४. भक्ति का विकास—मुंशीराम शर्मा, पृ० ५६१-५६२
५. अखरावट—जायसी, दोहा सं० ३०

मिथकीय पृष्ठभूमि से आप्लावित, जायसी ने नारद को शैतान का प्रतीक माना है, जो मानव समाज को मार्ग-भ्रष्ट कर परस्पर लड़वाने का कार्य करता है। यदि 'नारद' किसी से हार मानता है तो वह मात्र कबीरदास है :

ना नारद तब रोइ पुकारा। एक जोलाहे सौं मैं हारा।।
प्रेम तंतु नित ताना तनई। जप तप साधि सैकरा भरई ।।
हरब गरब सब देई बिथारी। गनि साथी सब लेइ संभारी ।।
पांच भूत मांड़ी गनि मलई। ओहि सौं मोर न एकौ चलई ।।[१]

पद्मावत का कथानक कहीं वेद पुराण का स्पर्श करता है तो कहीं इंद्र, सरस्वती, गीता की महत्ता पर प्रकाश डालता है :

चतुर वेद मति सब ओहि पाहाँ। ऋग् यजु साम अथरवन मांहाँ।
एक एक बोल अरथ चौगुना। इन्द्र मोह बरम्हा सिर धुना।।
अमर, भारत पिंगल औ गीता। अरथ जूझ पंडित नहीं जीता ।।
भावसती व्याकरन सरसुती, पिंगल पाठ पुरान।
वेद भेद सैं बात कह, तब जनु लागहिं बान ।।[२]

निर्गुण ब्रह्म में विश्वास रखने वाले जायसी भी विष्णु के अवतार राम की कथा के अनेक संदर्भ स्मरण करते हैं।

राजा रत्नसेन पद्मावती का सौंदर्य-वर्णन सुन मूर्छित हो जाता है। सौंदर्य-वर्णन उसके हृदय में विचित्र वेदना और कसक उत्पन्न कर देता है। कवि कहता है कि उसका ठीक होना तभी संभव है जब उसे पद्मावती का सान्निध्य प्राप्त होगा। राम-काव्य में लक्ष्मण-मूर्छा का उपचार संजीवनी थी। राजा रत्नसेन की मूर्छा भी पद्मावती-रूपी संजीवनी ही दूर कर सकती है। यहां न राम हैं, न हनुमान ? संजीवनी कैसे मिलेगी— यहां मिथक का प्रयोग एक बिंब प्रस्तुत करने के लिए किया गया है :

है राजहिं लष्षन कैं करा। सकति बान माहा है परा।
नहिं सो राम, हनिवंत बड़ि दूरी। को लै आव संजीवनि मूरी ।।

राजा गंधर्वसेन अपनी पुत्री पद्मावती के सौंदर्य-गुण आदि के कारण इतना घमंडी हो उठा है कि अपने को शिवलोकवासी साक्षात इन्द्र मान बैठता है :

राजा कहै गरब कै, हौं रे इंद्र सिवलोक।
को सरि मोसो पावै, कासों करौं बरोक ।।

—पद्मावत, पद सं० ५३

मेहरी बाइसी नामक काव्य लिखते हुए भी जायसी अनेक मिथकों के उल्लेख का मोह नहीं छोड़ पाये हैं। कभी वे 'गोकुलवासी कृष्ण' को स्मरण करते हैं तो कभी 'कुब्जा' का संदर्भ उभर उठता है :

कान्ह चले तजि सब गयेउ भाजी को बजागी करै बासा रे।
गोकुल छांडा छाये मधुवन किये कुब्जा घर बासा रे।

—मेहरी बाइसी

१. अखरावट, दो० सं० ४३
२. पद्मावत, दो० सं० १०८
३. जायसी ग्रंथावली, पद्मावत, पद सं० १२०

पद्मावती जैसे प्रबंध काव्य में 'हीरामन' (तोते) के माध्यम से विष्णु के अवतार राम और कृष्ण के विषय में उक्ति है :

उहै धनुक किरसुन पहं अहा । उहै धनुक राघौ कर गहा ।
उहै धनुक रावन संघारा । उहै धनुक कंसासुर मारा ।।
उहै धनुक बेधा हुत राहू । मारा ओहीं सहस्सरबाहू ।।

—पद्मावत, पद सं० १०२

समुद्रमंथन[1], अर्जुन-द्रौपदी के विवाह की कथा[2], राजा हरिश्चंद्र की सत्यवादिता[3], बैकुंठ धाम[4], हरिलीला[5], कैलास पर्वत[6], शिवलोक[7] आदि के वर्णन के साथ-साथ आदि-देव-त्रय का अंकन भी जायसी के काव्यों में मिलता है :

रुद्र ब्रह्म हरि बाचा तोही । सो निजु अंत बाल कहु मोही ।।

—पद्मावत, पद सं० ३६६

विभिन्न देवताओं का अंकन करते हुए जायसी महेश से विशेष अभिभूत जान पड़ते हैं । शिवलोक, शिव का वाहन, सहज वेशभूषा तथा आर्द्र भाव उनके आकर्षण का केंद्र है । पद्मावती की विरहाग्नि में झुलसते रत्नसेन को सांत्वना प्रदान करने के लिए एक कोढ़ी के वेश में शिव जा पहुंचे तथा उससे अपनी कष्टगाथा कह सुनाने का अनुरोध करने लगे :

ततखन पहुंचा आइ महेसू । बाहन बैल कुस्टि कर भेसू ।
कांथरि कया हड़ावरि बांधे । रुंडमाल औ हत्या कांधे ।।
सेसनाग औ कंठै माला । तन विभूति हस्ती कर छाला ।।
पहुंची रुद्र कंवल के गटा । ससि माथे औ सुरसरि जटा ।।
चंवर घंट और डंवरू हाथा । गौरा पारवती धनि साथा ।।

—पद्मावत, पद सं० २०७

१. को यह समुंद मंथे बर बाढ़ा । को मथि रतन पदारथ काढ़ा ।।
कहां सो ब्रह्मा बिस्नु महेसु । कहां सो मेरु, कहां सो सेसू ।।
को अस साज मेरावै आनी । बासुकि बंध, सुमेरु मथानी ।।

—पद्मावत, पद सं० ४०६

२. हहूं औसि हौं तो सौं, सकसि तौ प्रीति निबाहु ।
राहु बेधि होइ अरजुन, जीति द्रौपदी बयाहु ।

—वही, पद सं० २३४

३. तूं राजा जस विक्रम आदी । तूं हरिचन्द बैन सतबादी ।।
गोपिचन्द तूं जीता जोगी । औ भरथरी न पूज बियोगी ।।

—आखिरी कलाम, पद सं० १६०

४. तौ ले केउ बैकुंठ न जाई । जौ लै तुम्हारा दरस न पाई ।

—वही, पद सं० ४६

५. आदिहि तें जो आदि गोसाईं । जेहि सब खेल रचा दुनियाईं ।।
जस खेलेसि तस जाइ न कहा । चौदह भुवन पूरि सब रहा ।।

—अखरावट, पद सं० १

६. बनि बनि बैठीं अछरीं, बैठि जो है कैलास ।

—आखिरी कलाम

७. जो दुख सहै होइ सुख ओकों । दुख बिनु सुख न जाइ सिवलोकों ।।

—पद्मावत, पद सं० २१४

गौरें हंसि महेस सों कहा। निस्चैं यहु दहा ।।
× × ×
महादेव देवन्ह के पिता। तुम्हरी सरन राम रन जिता ।।
एहू कंह तसि मया करेहू। पुरवहु आस, कि हत्या लेहू ।।
—पद्मावत, पद सं० २११

उसकी पीड़ा से द्रवित पार्वती शिव को उसकी सहायता के लिए प्रेरित करने लगीं। इस प्रकार पद्मावत महाकाव्य की कथा में शिव-पार्वती साक्षात् देवपात्रों के रूप में अंकित किये गये हैं। जायसी मुसलमान कवि होने पर भी हिंदू संस्कृति से पूर्ण अवगत जान पड़ते हैं। उन्होंने होली, दीवाली, वसंत आदि पर्वों[1] का परंपरागत सहज एवं सुंदर वर्णन किया है। निर्गुण ब्रह्म में विश्वास रखनेवाले कवि ने मूर्ति-पूजा का जितना स्वाभाविक चित्र अंकित किया, उतना अन्यत्र मिलना संभव नहीं प्रतीत होता।[2] जायसी ने प्रबंध काव्य की मुख्य कथा में यत्र-तत्र प्रसंगानुकूल मिथकों का ग्रहण किया है। वे मूल कथा के भावों को पुष्ट करने के लिए बिंब रूप में अथवा उदाहरण के रूप में अंकित हैं। कहीं-कहीं निर्गुण भक्त कवि जायसी परंपरागत मान्य परमात्मा के सगुण रूप से प्रभावित भी जान पड़ते हैं। यह समसामयिक समाज का प्रभाव ही कहा जा सकता है।

पूर्वमध्यकालीन सगुण भक्ति साहित्य मिथकीय प्रभाव से पूर्णरूपेण आच्छादित रहा है। वाल्मीकि रामायण राम भक्ति का उत्सग्रंथ बन बैठा। तुलसीदास का रामचरितमानस इस क्षेत्र की सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना है। उन्होंने रामचरितमानस, रामलला नहछू, वैराग्य संदीपिनी, बरवै रामायण, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, रामाज्ञा, दोहावली, कवित्तरामायण, गीतावली, विनय पत्रिका, तुलसी सतसई आदि काव्यों की रचना की। सभी ग्रंथों में मर्यादा पुरुषोत्तम राम के प्रति दास्य भाव के पुष्प अर्पित किये हैं। राम के मर्यादित रूप को मानव जीवन का आदर्श बनाने का प्रयास किया है। तुलसी ने राम को विष्णु, ब्रह्म, पुरुष, रघुपति, जानकीनाथ आदि विभिन्न नामों से याद किया है। इष्टदेव का प्रत्येक नाम किसी न किसी मिथक से जुड़ा हुआ है। वे सगुण भी हैं और सर्वव्यापक निर्गुण भी।[3] तुलसी ने सगुण की प्राप्ति निर्गुण की अपेक्षा अधिक दुर्लभ मानी है।[4] भक्ति के क्षेत्र में भगवान के नाम, रूप, गुण, लीला और धाम विषयक जो भी कथाएं साहित्य अथवा जनश्रुति में विद्यमान थीं, सभी तुलसी की भक्ति के वृहत् साहित्य में मिल जाती हैं। पौराणिक गाथाओं को उन्होंने ज्यों का त्यों ग्रहण किया है।

गज, गणिका, ध्रुव, अजामिल[5], प्रह्लाद आदि की कथाएं भक्ति का प्रसार करने में

१. पद्मावत, पद सं० १८६
२. वही, पद सं० १९१, २०७
३. अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहिं परमारथवादी ।।
नेति नेति जेहि वेद निरूपा। निजानन्द निरुपाधि, अनूपा ।।
—रामचरितमानस, बालकांड,१७२
× × ×
व्यापक ब्रह्म अलख अविनासी। चिदानन्द निरगुन गुनरासी ।।
—वही, ३७४
४. रामचरितमामस, अरण्य कांड, ७४
५. अपर अजामिल गज गणिकाऊ, भये मुक्त हरिनाम प्रभाऊ ।।
—रामचरितमानस, बालकांड, पद सं० ३२

सहयोग प्रदान करती हैं। काकभुशुंडी की कथा राम के विराट् रूप को प्रकट करती है।

बालकांड में एक संदर्भ है कि कौशल्या पूजा कर नैवेद्य चढ़ाकर लौटती हैं तो उन्हें लगता है कि राम भोजन कर रहे हैं। पुन: वे शिशुवत् जान पड़ते हैं। अचानक राम अपना विराट् रूप दिखाते हैं। कौशल्या उन्हें पहचानकर विनती करती हैं कि वे कभी इस भूल-भुलैया में न पड़ें :

दिखरावा माताहि निज, अद्भुत रूप अखंड ॥
रोम रोम प्रति राजहिं, कोटि कोटि ब्रह्मंड ॥ २२७ ॥
अगनित रविससि व चतुरानन, बहुगिरि सरित सिंधु महि कानन ॥

× × ×

देखी माया सब विधि गाढ़ी अति सभीत जोरे कर ठाढ़ी ॥

× × ×

बार बार कौसल्या, विनय करै कर जोरि ॥
अब जनि कबहूं ब्यापई, प्रभु मोहिं माया तोरि ॥ २२८ ॥

—रामचरितमानस, बाल कांड

काकभुशुंडी[1], जटायु, गौतम, अहल्या, नारद, वाल्मीकि, शरभंग, सुतीक्ष्ण, वालि की गाथाएं राम के गुण और लीला की साक्षी हैं। तारक, जलंधर, चंड, मुंड, महिषासुर, शुंभ, निशुंभ के संदर्भ आसुरी शक्तियों के विभव पर प्रकाश डालकर सुकर्म की ओर बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करती हैं।[2] रावण जैसे शक्तिसंपन्न राक्षस का नाश इस तथ्य को सिद्ध करता है कि कुकर्म सदैव नाश का कारण है। मानस में कुकर्म करने पर देवता भी फल भोगते दिखाये गये हैं। जलंधर दैत्य की पत्नी का सतीत्व नष्ट करने के कारण विष्णु को सीताहरण के रूप में पाप का फल भोगना पड़ा। इसी प्रकार राम के विवाह को देखने के लिए ब्रह्मा, महादेव, दिग्पाल तथा सूर्य आदि ने ब्राह्मण वेश धारण किये थे, फलत: छल कर्म की अनैतिकता के वशीभूत उन्हें अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा। ऐसी मिथक कथाएं यह स्पष्ट करती हैं कि कोई कितना विराट् व्यक्ति क्यों न हो, कुकर्म का फल भोगना उसके लिए अवश्यंभावी है।

राम-भक्त तुलसी के मिथक विषयक मोह का सबसे बड़ा प्रमाण तो यह है कि वे रामचरित की गाथाओं तक ही सीमित नहीं रहे हैं। उन्होंने विष्णु के अवतार कृष्ण[3] से संबद्ध पुराकथाओं को भी अंकित किया है। सीता की महत्ता को स्वीकार करते हुए वे कहते हैं :

वाम भाग सोभित अनुकूला। आदि शक्ति छवि निधि जगमूला।
जासु अंस उपजहिं गुन खानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी ॥
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम बाम दिसि सीता सोई ॥

—बालकांड। १७६

परशुराम, विश्वामित्र, हनुमान, बालि, सुग्रीव, कुंभकर्ण, कुबेर आदि से संबद्ध प्रचलित समस्त मिथकों का प्रयोग तुलसी के काव्यों में मिलता है। इनके माध्यम से उन्होंने

१. राम के सगुण रूप से प्रभावित काकभुशुंडी कहता है—
निरगुन मति नहिं मोहिं सुहाई। सगुन ब्रह्म रति उर अधिकाई ॥

—उत्तरकांड। १८२

२. विनयपत्रिका, पद सं० १५, ५७, ६६, २०६

३. कृष्ण गीतावली—तुलसीदास

शील, मर्यादा, लोक-मंगल और सामंजस्य का भाव जगाकर मानव-मन को दृढ़ करने का अपूर्व प्रयास किया है। पूर्व-मध्यकाल में इस धारा के अन्य मुख्य कवि स्वामी रामानंद, अग्रदास, ईश्वरीप्रसाद इत्यादि हुए।

श्रीमद्भागवत ने सगुण वैष्णव कृष्ण भक्ति परंपरा को जन्म दिया। संस्कृत, प्राकृत तथा अपभ्रंश काव्यों में विविधता से अंकित कृष्ण चरित के प्रति भक्ति अनेक रूपात्मक धाराओं में प्रवाहित हुई। कृष्ण-भक्ति से संबद्ध प्रमुख संप्रदायों में वल्लभ, निम्बार्क, राधा-वल्लभ, हरिदासी तथा चैतन्य की गणना की जाती है। सूर, कुंभनदास, नन्ददास, हरिव्यासदेव, दामोदरदास, हितहरिवंश, रामराय, हरिदास, आदि अनेक कवि इन धाराओं से जुड़े हुए कृष्णाराधना में लीन रहे—साथ ही मीराबाई, रसखान आदि कवि भी थे—जो केवल भक्त थे। कृष्ण के परंपरागत मिथक ने उनके हृदय में प्रेम जगाया था--ऐसा प्रेम जो संप्रदाय विशेष की सीमा में बांधा नहीं जा सकता था। महाभारत में अंकित नीति-निपुण, गीता के उपदेशक रूप से लेकर पुराणों में अंकित कृष्ण के माखन-चोर, बाल-रूप, नटखट किशोर गोपी प्रेमी, सुदामा के मित्र तथा शत्रुओं का निर्भीकतापूर्वक मुकाबला करनेवाले एकाकी कृष्ण के विभिन्न रूपों का अंकन सभी कवियों का विषय रहा है। कहीं कृष्ण जीवन की सहज वृत्तियों को उजागर करते हैं तो कहीं निर्भीकतापूर्वक बुराइयों से लड़ते हैं। स्यमंतक मणि की चोरी का मिथ्या आरोप भी उन्हें सहना पड़ता है और भक्तों की अपरिमित श्रद्धा के पुष्प भी उन्हें अर्पित किये जाते हैं। कुल मिलाकर सगुण कृष्ण-भक्ति-परंपरा समाज की विरूपताओं से लड़ते हुए अपने सिद्धांत पर अड़े रहने का मार्ग दिखाती है, भले ही वह मार्ग साम, दाम, दंड, भेद से आपूरित है।

कृष्ण-भक्ति के क्षेत्र में सर्वाधिक मान्य कवि सूरदास हुए हैं। उनकी भक्ति-भावना में भी इष्टदेव के सगुण-निर्गुण रूपों का सामंजस्य है। अतः उन्हें अनेक पौराणिक गाथाओं को बटोरने का अवसर मिला।

कृष्ण विष्णु के अवतार हैं तो राधा लक्ष्मी की। एक निरीह बालक के रूप में वे गोकुल में प्रकट होते हैं। वसुदेव उनके प्राणों की रक्षा के लिए चिंतित हैं और वे एक उदात्त सशक्त रूप धारण कर लेते हैं :

गोकुल प्रकट भए हरि आइ।
अमर-उधारन, असुर संघारन, अंतरजामी त्रिभुवन राई।

—सूरसागरसार। गोकुल लीला। ३

सूरसागर में परंपरागत अजामिल, गणिका, अंबरीष आदि की कथाएं भक्ति-मार्ग की प्रतिष्ठा के निमित्त ग्रहण की गयी हैं।[1] विपत्ति में फंसे भक्त की सहायता के लिए विष्णु सदैव तत्पर रहते हैं। इस तथ्य को पुष्ट करने के लिए सूर ने गज, दुर्वासा आदि की कथा अंकित की है :

जब गज चरन ग्राह ग्रहि राख्यौ, तब ही नाथ पुकार्‌यौ।
तजि के गरुड़ चले अति आतुर नक्र चक्र करि मार्‌यौ॥
निसि निसि ही रिषि लिये सहस दस दुर्वासा पग धार्‌यौ।
ततकालहिं तब प्रकट भये हरि राजा-जीव उबार्‌यौ॥ १०६॥

१. द्विजकुल पतित अजामिल विषयी, गनिका हाथ निकायौ।
सुत हित नाम लियौ नारायण सौ बैकुंठ पठायौ॥

—सूरसागर, पद सं० १०४

शंखचूड़, मुष्टिक, धेनुक, कंस, कपि, विप्र, गीध आदि के मिथक सशक्त शत्रु का नाश करने वाले कृष्ण के रूप को उजागर करते हैं।[1] हिरण्यकश्यप से प्रह्लाद के भयभीत न होने की कथा, दुर्योधन के मद को नष्ट कर द्रौपदी के मान की रक्षा[2], आदि के साथ-साथ सूर ने अर्जुन का रथ हांकने वाले कृष्ण का भी अंकन किया है :

भीर परै भीषम प्रन राख्यौ, अर्जुन को रथ हांकौ ।
रथ तैं उतरि चक्र कर लीन्हौं भक्त बछल प्रन छाकौ ।। ११३ ।।

भक्त के आर्तनाद को सुन वरदहस्त बढ़ाने वाले कृष्ण से जुड़े प्रायः सभी मिथक सूर के काव्य में उपलब्ध हैं। भक्तों में परिगणित न होने पर भी उस युग के कुछ ऐसे कवि थे जो प्रबंधात्मक काव्यों की रचना करते थे—किंतु उनकी कृतियों का विषय मिथक कथाएं ही थीं। सधारु अग्रवाल का प्रद्युम्नचरित जैन तीर्थंकरों की वेदना और प्रद्युम्न की गाथा से युक्त है। शालिभद्र सूरि ने 'पंच पांडवचरितरास' नामक ग्रंथ की रचना की जिसमें पांडवों की गाथा को जैनी रूप प्रदान किया गया है। शुद्ध पौराणिक गाथा का निर्वाह जाखूमणियार कृत 'हरिचन्द पुराण' में किया गया है।

तत्कालीन नीतिकाव्यों में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार के परित्याग तथा उपकार-वृत्ति को ग्रहण करने का आग्रह मिलता है। वेदों से लेकर अपभ्रंश साहित्य तक अंकित नैतिकता को दोहराकर ये ग्रंथ मानव पर नैतिक अंकुश लगाते जान पड़ते हैं। मिथक कथाओं का नैतिक निचोड़ इनमें प्राप्त है। ऐसे अनेक ग्रंथों में से विशेष उल्लेखनीय हैं पद्मनाभ लिखित 'डूंगरबावनी', ठाकुरसी रचित 'कृपणचरित' तथा 'पचेंद्रीवेली' (दोनों ग्रंथ क्रमशः कृपणता तथा पंचेंद्रिय निग्रह पर प्रकाश डालते हैं), बीरबल 'ब्रह्म' के रचे 'कृष्ण लीलापरक पद', तन्नू (तानसेन) रचित 'संगीतसार', 'रागमाला' तथा 'गणेशस्तोत्र'। उस युग में गणेश का विघ्नहारी रूप, सरस्वती का ज्ञानेश्वरी रूप, विष्णु का जगतपालक रूप, शिव का संहारक रूप साहित्य-विख्यात हो गया था। लक्ष्मी धनदेवी थी तो दुर्गा और काली शत्रुनाशिनी, ब्रह्मा सृष्टि को जन्म देने वाले आदिदेव थे तो कृष्ण लीलारत देव के रूप में प्रतिष्ठित हो चुके थे।

पूर्व मध्यकालीन काव्य में आदिदेवत्रय, लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा, गणेश आदि के प्रति अपूर्व भक्तिभाव अंकित हुए। भक्ति के अनेक रूपों की प्रतिष्ठा हुई। अवतारवाद साहित्य का मुख्य अंग बन गया। प्रकृति के विभिन्न अवयव सर्वशक्ति-संपन्न ब्रह्म की विभिन्न शक्तियों के प्रतीक माने गये। बौद्ध मत की जातक कथाओं में अनेक योनियों में भगवान के अवतरित होने के प्रसंग मिलते हैं। ठीक इसी प्रकार जैन साहित्य में भी जिन मुनि के अवतारों का अंकन है। सधारु अग्रवाल का 'प्रद्युम्न चरित', शालिभद्रसूरि का 'पंचपांडव-चरितरास' अज्ञात जैन रचित 'गौतम रास', जाखूमणियार कृत 'हरिचन्द पुराण' आदि प्रबंध काव्य भी पौराणिक कथाओं पर आधारित हैं। कहने का अभिप्राय यह है कि तत्कालीन हिंदी का अधिकांश साहित्य मिथकीय विचारधाराओं से रंगा-पुता दिखायी पड़ता है। भक्ति से हटकर भी कुछ प्रवृत्तियां उभरीं। उनका मूल कारण राजनीति और सामाजिक प्रासंगिकता थी। राज्ञाश्रय प्राप्त कर कुछ कवि आश्रयदाताओं की वीरता का गान करने में व्यस्त हो गये। उनकी रचनाओं में भी पुराकथाओं के स्पर्श विद्यमान हैं।

१. सूरसागर, २७
२. वही, ३६

भक्तिकाल के उत्तरार्ध में केशव, सेनापति, रहीम, आदि अनेक कवियों का प्रादुर्भाव हुआ, जो परवर्ती रीतिकालीन धारा के मूल स्रोत माने गये। उत्तर-मध्यकालीन शृंगार और विलास से आपूरित मनोभावों की अभिव्यक्ति भी राधाकृष्ण, राम और सीता के नामोल्लेख को विस्मृत नहीं कर पायी। रस की दृष्टि से रीतिकाल में शृंगार, भक्ति और वीर रस की त्रिवेणी सतत प्रवहमान रही। उस युग में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रस शृंगार था, काव्य-रचना का उद्देश्य पांडित्य-प्रदर्शन था, तथापि वीर और भक्ति का अंकन उपेक्षणीय नहीं कहा जा सकता। पूर्व-मध्ययुग की सभी भक्ति धाराओं का रूप उत्तरमध्यकालीन काव्य में उपलब्ध है। राम और कृष्ण-परक भक्ति में रसिकता का समावेश तो हुआ, किंतु इष्टदेव के प्रति आस्था ज्यों की त्यों बनी रही।

सामंती विलास से जुड़े कवियों में पांडित्य-प्रदर्शन का मोह था क्योंकि राज्ञाश्रय प्राप्त करने के दो ही उपाय थे—या तो पांडित्य प्रदर्शन अथवा सामंती विलास-भावनानुकूल काव्य की रचना। तथापि उस युग में ऐसे कवियों की न्यूनता नहीं थी जो आस्तिकता-पूर्वक भक्ति में रत थे। भक्तिकाल में उद्भूत रामभक्ति, कृष्णभक्ति, संत और सूफी काव्य की परंपरा रीतिकाल में भी बनी रही। वातावरण के प्रभाव से राम और कृष्ण-काव्य में रसिकता का समावेश अवश्य हुआ। यह कहना असंगत न होगा कि पौराणिक कथाओं ने एक नया मोड़ लिया। सभी कथाओं में प्रेमाख्यान का विस्तार हो गया।

लौकिक प्रेमाख्यानों में भी पौराणिक गाथाओं का अवलंबन लेने की प्रवृत्ति द्रष्टव्य है। सेवाराम ने 'नल-दमयंती चरित', 'उषाचरित', जीवनदास नागर, मुरलीदास तथा रामदास ने अलग-अलग ढंग से 'उषा अनिरुद्ध' नामक काव्यों की रचना की।

रीतिबद्ध कवियों की रचनाओं में मी मिथकीय चित्रों का समावेश है। चिंतामणि त्रिपाठी ने शक्ति के विभिन्न रूपों का अंकन किया है :

जु गौरी गनाधीस माता उमा चंडिका जो बखानी।
तु ही सर्व की बुद्धि तु ब्रह्म विद्या तु ही बेदवानी ॥[1]

बिहारी ने कृष्ण के गिरि धारण करने का मिथक स्मरण किया है :

लोप कोपै इन्द्र लौं रोपै प्रलय अकाल।
गिरिधारी राखैं सबैं गो गोपी गोपाल ॥[2]

राधाकृष्ण की युगल लीला के प्रति कहीं-कहीं मतिराम की बहुत सुंदर उक्तियां हैं। वे शृंगार रस के आश्रय आलंबन बने रहे हैं, भक्ति के नहीं। उन्होंने विघ्न-निवारण करने वाले गणेश[3], सरस्वती, शिव-शक्तिपरक विभिन्न गाथाओं का स्मरण किया है। भूषण की कुलदेवी भवानी थी—उनका प्रत्येक कृत्य भूषण के काव्य का विषय बना। मधु-कैटभ, चंड-मुंड, रक्तबीज आदि का नाश शक्ति के कारण ही हो पाया :

जै मधु कैटभ छलनि देवि जै महिष विमर्दिनी।
जै चमुंड जै चंड-मुंड-मंडासुर खंडिनी ॥

—शिवराज भूषण।२

१. छंद विचार—चिंतामणि त्रिपाठी, पद सं० ५८
२. बिहारी रत्नाकर, पद सं० ५२१
३. सुखद साधुगन को सदा गज मुख दानि उदार।

—ललित ललाम, दो० सं० १

भूषण ने विष्णु के अवतारों की वंदना भी की है ।[1]

कुलपति मिश्र ने 'दुर्गा भक्ति चंद्रिका' नामक ग्रंथ में शक्ति के समस्त क्रियाकलापों को ग्रहण किया है । देव की अतिशय शृंगारिकता भी कृष्ण और राधा के रूप में उभरी है । उनकी क्रीड़ा, वेशभूषा से लेकर कुंजबिहार की अनेक घटनाएं देव की कविता का विषय बनीं । कालिदह-मर्दन, उद्धव आगमन के संदर्भों के साथ-साथ कवि ने अहल्या, सुदामा की कथाओं के माध्यम से कृष्ण की भक्तवत्सलता का भी स्मरण किया है ।[2] भिखारीदास की रामभक्ति तुलसी की दास्यभक्ति के बहुत निकट जान पड़ती है । राम से संबद्ध घटनाओं की बहुत सुंदर झांकियां उनके काव्य में मिलती हैं ।

संत काव्यधारा में शिव नारायण, यारी साहब, दरिया साहब (रचना-ज्ञानदीप, दरियासागर), जगजीवनदास (ग्रंथ—सत्यनामी, प्रथम ग्रंथ, शब्दसागर, आगम पद्धति, महाप्रलय, अछविनाश), पलटू साहब (मुक्तक पद), चरनदास (रचनाएं—अमरलोक, अखंड धाम वर्णन, अष्टांग योग, ब्रह्मचरित्र, ब्रह्मज्ञान आदि १४ ग्रंथ), तुलसी साहब (रचनाएं—तुलसी साहब, साहब पथ, घटनारायण, रत्नसागर आदि), दयाबाई और सहजोबाई (रचना —सहजप्रकाश), बूला साहब (शब्द सागर) आदि अनेक संत कवियों ने नैतिकता के उपदेश दिये । गुरुभक्ति से लेकर योग-साधना, सदाचार, आडंबरों का उन्मूलन, आत्मा-परमात्मा के अंश-अंशी-संबंध तक सभी कुछ उनकी रचनाओं में उपलब्ध है जिसकी पुष्टि के लिए मिथकों का सहारा लिया गया है ।

सूफी परंपरा के अधिकांश कवियों का जन्म उत्तर-मध्यकाल में हुआ । कासिमशाह, नूरमुहम्मद, शेख निसार, दुःखहरणदास आदि कवियों ने लौकिक प्रेम के माध्यम से आध्यात्मिक प्रेम का अंकन किया ।

परंपरागत राम भक्ति में गुरु गोविंदसिंह का नाम उल्लेखनीय है । उन्होंने ब्रजभाषा में 'गोविंद रामायण' की रचना की । जानकी रसिक शरण (रचना-अष्टयाम प्रसंग), भगवंत रायरवीची (रचना—हनुमत्पच्चीसी), जनकराज किशोरीशरण ने बीस ग्रंथों की रचना की जिनमें से 'सीताराम सिद्धांत मुक्तावली', 'सीताराम रस तरंगिणी', 'जानकी करुणाभरण', 'रघुबर करुणाभरण' आदि राम के मिथकों पर आधारित काव्य हैं ।

नवलसिंह ने रामचंद्र विलास, सीतास्वयंवर, नाम रामायण मिथिला खंड आदि अनेक रामकाव्यों की रचना की । विश्वनाथ सिंह के ३२ ग्रंथों में से रामायण, गीतरघुनंदन प्रामाणिक, रामचंद्र की सवारी, आनंदरघुनंदन (हिंदी का प्रथम नाटक), आनंदरामायण तथा संगीतरघुनंदन नामक कृतियां रामभक्ति से संबद्ध हैं । राम प्रियाशरण की सीतायन (सीतारामप्रिया) में सीता और उसकी सखियों का चरित्रांकन उपलब्ध है :

> पितु दरसन अभिलाष जुगुल कुंवरन मन भाई ।
> गुरु सनमुख कर जोरि भांति बहु विनय सुनाई ।।
> पुलके गुरु लखि सील राम कौ अति सुख पाये ।
> ताहि समै सब सखा संग लक्ष्मीनिधि आये ।।

१. दशरथ जू के राम भै बसुदेव के गोपाल ।
—शिवराज भूषण, पद सं० ११

२. (क) अहिल्या का भक्ति कार्पण्य —प्रेमचंद्रिका, पृ० ६४, पद सं० ५२
(ख) सुदामा की सौहार्द भक्ति —वही, पृ० ६५, पद सं० ५४

रसिक अली कृत षट्ऋतु पदावली, होरी, अष्टयाम तथा मिथिला विहार-रामाख्यान पर प्रकाश डालती हैं ।

रीतिकाल में सरजूराम पंडित की रचना 'जैमिनी पुराणभाषा' रामचरितमानस की शैली पर आधारित है । प्रस्तुत काव्य में रामायण के साथ-साथ महाभारत के अनेक संदर्भों को भी ग्रहण किया गया है ।

बालकृष्ण 'बाल अली' रचित 'ध्यान मंजरी', 'नेह प्रकास', 'सिद्धांत तत्त्व दीपिका,' 'दयाल मंजरी' आदि आठ ग्रंथों में सीता-राम की युगलोपासना में रसिकता का समावेश है :

दुलहिया दूलह बने दिलदार (नेह प्रकाश पत्र ३)

रामप्रिया शरण प्रेमकली ने रामायण की पद्धति पर 'सीतायन' नामक ग्रंथ की रचना की । रामसरण, कृपानिवास, रामचरण दास, करुणा सिंधु श्री जीवाराम युगल प्रिया, श्री जनक किशोरी शरण रसिक अली आदि ने अपनी रचनाओं में रामाख्यान को विशेष रूप से ग्रहण किया है ।

रीतिकाल में कृष्ण काव्यधारा के विभिन्न रूपों से संबद्ध अनेक कवियों का प्रादुर्भाव हुआ । कृष्ण की गाथा में प्रेम, शृंगार और विलास का समावेश अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में हुआ । कृष्ण-भक्त कवियों के साथ-साथ रीतिबद्ध, रीतिसिद्ध, रीतिमुक्त कवियों ने भी राधा और कृष्ण की कथा को ग्रहण किया है । कृष्ण काव्यों में निम्नलिखित कवि तथा ग्रंथ विशेष रूप से उल्लिखित हैं :

कवि	**प्रबंध**	**ग्रंथ**
गुमान मिश्र	प्रबंध	कृष्ण चंद्रिका
ब्रजवासीदास	प्रबंध	सूरसागर तथा प्रबोध चंद्रोदय नाटक का अनुवाद
मंचित	प्रबंध	सुरभीदान लीला
नागरीदास	मुक्तक	जुगल रस माधुरी, फाग विलास, रास रसलता, इश्कचमक, कृष्ण जन्मोत्सव, वर्षा के कवित्त
बाबा हित वृंदावनदास	मुक्तक	लाड़ सागर, ब्रज प्रेमानंद सागर, जुगल सनेह पत्रिका
भगवत रसिक	मुक्तक	अनन्य निश्चयात्मक ग्रंथ
सुंदरी कुंवरिबाई	मुक्तक	नेहनिधि, वृंदावन गोपी माहात्म्य संकेतयुगल आदि दस ग्रंथ ।

रीतिकालीन साहित्य में चैतन्य मत से संबद्ध भगवतमुदित, किशोरीदास गोस्वामी, वल्लभ रसिक, गोपाल भट्ट, तुलसीदास मनोहर राय, रामहरि, दक्षसखी; निम्बार्क संप्रदाय से संबद्ध नागरीदास, सुंदरि कुंवरि, ललित मोहिनी देव, कृष्णदास आदि कवि; वल्लभ संप्रदायवादी जगतानंद, ब्रजवासीदास आदि; राधावल्लभ संप्रदाय के सहचरि सुख, हित अनूप, अनन्य अली, आनंदबाई आदि कवि तथा सखी संप्रदाय से संबद्ध बनी ठनी, रूपसखी, सहचरि शरण, शील सखी आदि अनेक कवियों की रचनाएं कृष्णविषयक मिथक पर आधारित हैं । रीतिकालीन परिवेश से प्रभावित होने के कारण भले ही मूल कथाओं में अंतर आ गया है, पर साहित्य के क्षेत्र में ऐसा परिवर्तन तो हर युग में होता ही है ।

हिंदी साहित्य के आधुनिक युग का आरंभ भारतेंदु काल अथवा पुनर्जागरण काल से हुआ। रीतिकालीन विलास और पांडित्य के प्रपंच से निकलकर साहित्यकार भारत के सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक परिवेश का आमूल परिवर्तन कर डालना चाहते थे। राष्ट्रीय प्रेम उनकी सबसे मुखर प्रवृत्ति थी। उस युग में स्वतंत्रता-प्राप्ति, नारी-उत्थान, भारतीय सांस्कृतिक विकास, मानवतावाद, भक्तिविषयक आंदोलन छिड़ चुके थे। साहित्यकार स्व-युग प्रासंगिकता से अभिभूत गद्य और पद्य दोनों ही विधाओं में पर्याप्त जागरूकता से बढ़ रहे थे। मिथक कथाएं साहित्य के एक ऐसे चौराहे पर पहुंच गयी थीं जहां से अनेक मार्गों की ओर बढ़ा जा सकता था और वे सभी दिशाओं में आगे बढ़ीं।

सुधारवादी परिवेश की भूमिका में कोई न कोई पौराणिक गाथा निरंतर विद्यमान रही। पौराणिक कथाओं के कई पात्रों ने ब्रज-अवधी के काव्यों से खड़ी बोली के गद्य की ओर पग बढ़ाये।

नाटक भारतेंदु का प्रिय विषय था। उन्होंने नाटकों का अनुवाद भी किया और मंचन भी। उनके समसामयिक लेखकों ने भी पौराणिक गाथाओं पर आधारित नाटकों की रचना की। कृष्ण कथा से निबद्ध अनेक नाटकों की रचना हुई—भारतेंदु ने 'चन्द्रावली', अंबिकादत्त व्यास ने 'ललिता', खड्ग बहादुर मल्ल ने 'महारास' और 'कल्पवृक्ष', सूर्यनारायण सिंह ने 'श्यामानुराग नाटिका', कार्तिकप्रसाद खत्री ने 'उषा हरण', अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'प्रद्युम्न-विजय' तथा 'रुक्मिणी परिणय' आदि नाटकों की रचना की।

राम-कथा पर आधारित नाटकों में—देवकीनंदन खत्री लिखित 'सीता हरण' और 'रामलीला', शीतलाप्रसाद त्रिपाठी रचित 'रामचरितावली', ज्वालाप्रसाद मिश्र का लिखा 'सीता बनवास' तथा द्विजदास-कृत 'रामचरित नाटक' विशेष महत्त्वपूर्ण कृतियां मानी जाती हैं। भारतेंदुयुगीन लेखकों ने राम-कृष्णेतर पौराणिक गाथाओं को भी ग्रहण किया। इस कोटि की प्रमुख रचनाएं निम्नलिखित हैं :

भारतेंदु हरिश्चंद्र कृत 'सत्य हरिश्चंद्र' तथा 'सती प्रताप', गजराज सिंह की रचना 'द्रौपदी हरण', श्रीनिवासकृत 'प्रह्लाद चरित्र', बालकृष्ण भट्ट का 'नल-दमयंती स्वयंवर' तथा शालिग्राम लाल का लिखा 'अभिमन्यु'।

भारतेंदु युग में गद्य के साथ-साथ पद्य में भी जागरण और सुधार की प्रवृत्ति मुखर हो उठी। भक्ति भाव की गुंजार रामकृष्ण विषयक मिथकों से आपूरित रही। रीतिकालीन वासनात्मक नग्न-शृंगार का तिरोभाव होने पर भी पूर्व-मध्यकालीन भक्ति का रूप उस युग के साहित्य में नहीं मिलता। तत्कालीन साहित्य में अनेकमुखी भावों का सामंजस्य दर्शनीय है। एक ओर माइकेल मधुसूदन तथा हेमचंद्र जैसे बंगदेशीय कवि थे जो राधाकृष्ण की भक्ति में झूमते दिखलायी पड़ते थे तो दूसरी ओर मंदिरों में बैठे टीकाधारी भक्ति के ठेकेदारों का परिहास करने वाले कवि भी थे। स्त्री-शिक्षा और समाज-सुधार आंदोलन का प्रसार अंधविश्वासों को तहस-नहस कर रहा था, अतः परंपरागत धार्मिकता कुछ बदले हुए रूप में प्रकट हुई। भक्ति तीन धाराओं में प्रवाहित हुई : निर्गुण भक्ति, सगुण वैष्णव भक्ति तथा देश भक्ति। सगुण भक्तिपरक रचनाओं में राम-कृष्ण से संबद्ध अनेक संदर्भों का अंकन उपलब्ध है। रामकाव्य के क्षेत्र में हरिनाथ पाठक की 'श्री ललित रामायण' अक्षय कुमार की लिखी 'रसिक विलास रामायण', बाबू तोता राम की 'राम रामायण' विशेष उल्लेखनीय रचनाएं हैं।

१. हिंदी साहित्य का इतिहास—सं० डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४५८

'श्री ललित रामायण' में राम का अंकन श्रृंगारपरक रूप में किया गया है[1] :

'मुरुगवा बोले बिपिन में भोरे
सुखद सेज रघुनंदन, जनक लली संग कोरे
प्रीतम अंक लगी महाराणी शापति सुनि खग सोरे ।
बन में अवरन जागे खग सब, शब्द करत झकझोरे ।
जन हरिनाथ समय सुखदायक, नहिं भावत मन मोरे ।।

राम की अपेक्षा कृष्ण भक्ति से संबद्ध काव्यों की रचना अधिक मात्रा में हुई। प्रेमघन की 'अलौकिक लीला', अंबिकादत्त व्यास की 'कंसवध', गुणमंजरीदास की 'श्री युगलछद्म' तथा 'रहस्यपद', घनारंग दूबे की 'कृष्ण रामायण' (रामचरितमानस का अनुकरण भी मिलता है और रीतिकालीन कृष्ण-काव्य की छाया भी मिलती है) रचनाएं विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इस धारा के सर्वाधिक लोकप्रिय कवि भारतेन्दु स्वयं थे। वे वल्लभ संप्रदाय में दीक्षित थे तथा उनके पदों में राधा-कृष्ण-परक भक्तिभाव का अनन्य रूप द्रष्टव्य है :

मेरे तो साधन एक ही है,
जग नंदलला वृषभानु दुलारी।

× × ×

सखा प्यारे कृष्ण के
गुलाम राधा रानी के ।

× × ×

रहै क्यौं एक म्यान असि दोय ।
जिन नैनन में हरिरस छायो तेहि क्यौं भावे कोय ।।
जा तन-मन में रमि रहे मोहन तहां ग्यान क्यौं आवै ।
चाहो जितनी बार प्रबोधो ह्यां को जो पतिआवै ।।
अमृत खाइ अब देखि इनारुन को मूरख जो भूलै ।
हरीचन्द ब्रज तो कदली वन काटौ तो फिरि फूलै ।

× × ×

श्री राधा माधव युगल चरण रस का अपने को मस्त बना ।
पी प्याला भर-भर कर कुछ इस मै का भी देख मजा ।

—भारतेन्दु हरिश्चंद्र

ठाकुर जगन्मोहन सिंह ने 'प्रेमसंपत्तिलता' नामक ग्रंथ में राधा-कृष्ण के निश्छल प्रेम का सुंदर अंकन किया है :

अब यों उर आवत है सजनी, मिलि जाउं गरे लगि कै छतियां ।
मन की करि भांति अनेकन औ मिलि कीजिए री रस की बतियां ।
हम हारि अरी करि कोटि उपाय, लिखि बहु नेह भरी पतियां ।
जगमोहन मोहनी मूरति के बिन कैसे कटें दुःख की रतियां ।[1]

प्राचीन और वर्तमान युग-संधि पर प्रतिष्ठित होने के कारण भारतेन्दुकालीन साहित्य का विशेष महत्त्व है। इस तथ्य की झलक मिथकीय अवचेतना में भी दर्शनीय है। कहीं पुरा साहित्य का रूप मदमस्त है तो कहीं वह देशभक्ति, समाजसुधार, नारी-जागरण के तथ्यों का प्रसार करता है। धार्मिकता मंदिर के प्रांगण तक सीमित न रह-

१. हिंदी साहित्य का इतिहास, सं० डॉ० नगेन्द्र, पृ० ४६१

कर वैयक्तिक संपत्ति के रूप में अभिव्यक्त हुई है। पुरा कथाएं सामाजिक चेतना को स्वरित करने का प्रयास करती हुई जान पड़ती हैं। इस काल की महत्ता प्रकट करते हुए श्री रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है :

'उस संधिकाल के कवियों में ध्यान देने की बात यह है कि वे प्राचीन और नवीन का योग इस ढंग से करते थे कि कहीं जोड़ नहीं जान पड़ता था। उनके हाथों में पड़कर नवीन भी प्राचीनता का ही एक विकसित रूप जान पड़ता था।'[१]

द्विवेदीकालीन साहित्य की मूल प्रवृत्ति इतिवृत्तात्मक थी। अंग्रेजी शासन तथा वृत्तियों से जूझते साहित्यकारों ने ऐतिहासिक तथा पौराणिक गाथाओं को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। फलतः राम, कृष्ण तथा अन्य पौराणिक संदर्भों ने एक नया मोड़ लिया। वे प्रतीक की गुहा से निकलकर अपने युग की उलझनों का समाधान प्रस्तुत करने लगे। उपदेशात्मकता की प्रचुरता में कहीं-कहीं तो नाटकीय तत्त्व भी दब गये। जिस युग की कथा को ग्रहण किया, उसके अनुरूप देश, काल, वातावरण तथा भाषा का प्रयोग न करते हुए साहित्यकारों ने नाटकों में अपनी समसामयिकता को इतनी प्रचुरता से समाहित किया कि मिथक की प्राचीनता मृतप्राय हो गयी। उदाहरण के लिए 'वेणु संहार' में बालकृष्ण भट्ट जैसे मान्य लेखक ने 'वेणु' के दासों को अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग करते दिखाया है—साथ ही नाटक में अंकित जनता जनार्दन उर्दू गजलों के माध्यम से अपने युग की विषमताओं पर प्रकाश डालते दिखाये गये हैं, जिससे विषय का गांभीर्य नष्ट हो गया। ऐसे नाटकों की बहुलता होने पर भी दूसरी ओर माखनलाल चतुर्वेदी का लिखा 'कृष्णार्जुन-युद्ध' नाटकीय तत्त्व तथा राष्ट्रीय चेतना का इतना सुंदर सामंजस्य प्रस्तुत करता है कि वह आज तक भी अत्यंत सफल तथा लोकप्रिय नाटक माना जाता है।

राम-कथा से संबद्ध नाटकों में रामनारायण मिश्र का 'जनक बाड़ा', गंगाप्रसाद का 'रामाभिषेक', गिरधर लाल का 'रामवन यात्रा', नारायण सहाय का 'रामलीला' तथा रामगुलाम लाल का 'धनुषयज्ञ लीला' विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। कृष्ण-कथा का अंकन शिवनंदन सहाय के 'सुदामा', बनवारी लाल के 'कृष्णकथा' तथा 'कंसवध' ब्रजनंदन सहाय के 'उद्धव' तथा नारायण मिश्र के 'कंसवध', आदि नाटकों में विशेष रूप से किया गया है। राम कृष्णेतर पौराणिक संदर्भों से संबद्ध नाटकों में महावीर सिंह का 'नल-दमयंती', गोचारण स्वामी का 'अभिमन्यु वध', सुदर्शनाचार्य का 'अनर्घ नल चरित्र', बांकेबिहारी लाल का 'सावित्री नाटिका', बालकृष्ण भट्ट का 'वेणु संहार', लक्ष्मीप्रसाद का 'उर्वशी', हनुमंत सिंह का 'सती चरित्र', शिवनंदन मिश्र का 'शकुंतला', जयशंकर प्रसाद का 'करुणालय', श्री बद्रीनाथ भट्ट का 'कुरुवन दहन', माधव शुक्ल का 'महाभारत पूर्वार्द्ध', हरिदास माणिक का 'पांडव प्रताप' विशेष महत्त्वपूर्ण नाटक हैं।

काव्य के क्षेत्र में मिथकीय चेतना का अनेकमुखी विकास हुआ। परंपरागत पूज्य भावनाओं के आलंबन मिथकीय पात्रों का सहज सामाजिक मनुष्य के रूप में अंकन किया गया। इस प्रकार के तथ्यों ने मिथकों का रूप ही बदल डाला। मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में संकट मोचक गणेश विनोद का विषय बन बैठे :

जयति कुमार-अभियोग-गिरा गौरी प्रति,
स-गण गिरीश जिसे सुन मुसकाते हैं—

१. प्रेमघन-सर्वस्व, प्रथम भाग, परिचय, पृ० ६

देखो अम्ब, ये हेरम्ब मानस के तीर पर
तुन्दिल शरीर एक ऊधम मचाते हैं
गोद भरे मोदक धरे हैं, सविनोद उन्हें
सूंड़ से उठाके मुझे देने को दिखाते हैं,
देते नहीं, कंदुक से ऊपर उछालते हैं,
ऊपर ही झेलकर खेल कर खाते हैं।[1]

व्यंग्य-विनोद के रचनाकारों में ईश्वरी प्रसाद शर्मा, नाथूराम शर्मा 'शंकर', जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी तथा बालमुकुंद गुप्त विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इन सभी कवियों ने पुरा कथाओं के गण्यमान्य पात्रों को व्यंग्य विनोदपरक काव्य का विषय बनाया। समसामयिक परिस्थितियों को पुराकथाओं से जोड़ने का उद्देश्य भारतीयता के पुनरुत्थान का प्रयास था। अंग्रेजी सत्ता तथा संस्कृति का परिहास करने के निमित्त उनकी वेशभूषा को परंपरा पूज्य देवी-देवताओं पर आरोपित करते हुए हास्य-व्यंग्य-गीतों की रचना का विचित्र प्रयास भी द्विवेदीयुगीन साहित्य में उपलब्ध है। नाथूराम शर्मा 'शंकर' ने अंग्रेजी संस्कृति में रंगे भारतीयता से विमुख समाज का बिंब प्रस्तुत करने के निमित्त लिखा :

भड़क भुला दो भूतकाल की, सजिये वर्तमान के साज,
फैसन फेर इंडिया भर के, गोरे गाड बनो ब्रजराज।
गौरवर्ण वृषभानु सुता का काढ़ो काले तन पर तोप।
नाथ उतारो मोर मुकुट को सिर पर सजो साहिबी टोप॥

× × ×

तज पीताम्बर कंबल काला, डाटो कोट और पतलून॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय ने कृष्ण चरित को एक नवीन रूप प्रदान किया। परंपरा से कृष्ण-विरह में रोती राधा प्रियप्रवास में समाज-सेविका बन गयी। वह समाज के त्रस्त वर्ग के कष्टविमोचन की प्रक्रिया में अपना दुःख भुलाने का प्रयास करने लगी। हरिऔध ने कृष्ण-कथा में अपने युग की प्रासंगिकता का समाहार बहुत पटुता से किया है -यशोदा पुत्र विरह से तप्त है :

प्रति पल दृग देखा चाहते श्याम को थे।
छन-छन सुधि आती श्यामली मूर्ति की थी॥
प्रतिनिमिष यही थीं चाहती नन्द रानी।
निज वदन दिखावे मेघ सी कान्तिवाला॥

----प्रिय प्रवास, षष्ठ सर्ग

दूसरी ओर कृष्ण की प्रेयसी राधा हर प्राणी के दुःख को आत्मसात् कर समाज-सेवा में जुट जाती है। पवन को अपना दूत बनाकर वह उसे कृष्ण तक विरह-जन्य पीड़ा का संदेश पहुंचाने के लिए भेजती है पर तब भी समाज का दुःख उसे अधिक महत्त्वपूर्ण जान पड़ता है :

"जाते जाते अगर पथ में क्लान्त कोई दिखावे।
तो जा के सन्निकट उसकी क्लान्तियों को मिटाना।
धीरे धीरे परस करके गात उत्ताप खोना।
सद्गंधों से श्रमित जन को हर्षितों सा बनाना॥

-प्रिय प्रवास, षष्ठ सर्ग

१. साकेत—मैथिलीशरण गुप्त—मंगलाचरण

उनके युग का स्वर जितना प्रियप्रवास में मुखरित हुआ है उतना 'वदेही वनवास' में नहीं हुआ यद्यपि दोनों मिथक ग्रंथों का झुकाव समाज-सेवा की ओर है। 'हरिऔध' की दृष्टि में अवतारवाद का अभिप्राय ईश्वर का पृथ्वी पर अवतरित होना नहीं है अपितु वह व्यक्ति जो अपने चरित्र को आदर्श रूप में चरम विकसित करता है—अवतार बन जाता है।[1] अतः अवतरित होना ईश्वरोन्मुख होने का नाम है। उन्होंने राधा-कृष्ण को समाज के सहज जनों के रूप में अंकित किया है—कृष्ण मनुष्य के स्तर से अवतार के स्तर की ओर बढ़ते दिखाये गये हैं :

अपूर्व आदर्श दिखा नरत्व का
प्रदान की है पशु को मनुष्यता
× × ×
जो देखते कलह शुष्क-विवाद होता
तो शांत श्याम उसको करते सदा थे।
कोई बली निबल को यदि था सताता,
तो वे तिरस्कृत किया करते उसे थे।

—प्रिय प्रवास

हरिऔध ने कृष्ण के अतिमानवीय क्रियाकलाप को अत्यंत सहज समाज-सेवा-वृत्ति के रूप में अंकित किया है। उन्होंने बौद्धिक व्याख्या के द्वारा प्राचीनता को वर्तमान के लिए ग्राह्य बनाकर उसकी प्रतिष्ठा की है।[2]

महावीरप्रसाद द्विवेदी के समसामयिक कवियों में मिथकीय प्रवाह को संवारने का सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य मैथिलीशरण गुप्त ने किया। उनके मिथकीय प्रबंध काव्य की एक लंबी तालिका है; जिसमें से मुख्य रूप से 'नहुष', 'जयद्रथ-वध', 'पंचवटी', 'साकेत', 'यशोधरा', 'द्वापर', 'विष्णु-प्रिया', उल्लेखनीय हैं। परंपरागत प्रत्येक मिथक को उन्होंने एक नया मोड़ प्रदान किया। महात्मा बुद्ध की पत्नी यशोधरा का चरित्रांकन उनकी मौलिक कल्पना है—इतिहास उसके क्रमबद्ध चरित्रविकास के विषय में पूर्ण रूप से मौन है। गुप्त जी ने उसका चित्रण एक मेधावी चिंतनशील नारी के रूप में किया है :

'आओ प्रिय भव में भाव विभाव भरें हम,
डूबेंगे नहीं कदापि, तरें न तरें हम।
कैवल्य काम भी काम, स्वधर्म धरें हम,
संसार हेतु शत बार सहर्ष मरें हम !
तुम सुनो क्षेम से प्रेमगीत मैं गाऊं,
कह मुक्ति भला किसलिये तुझे मैं पाऊं।'

—यशोधरा

द्विवेदी-युग में प्रत्यक्ष समाज की विरूपताओं पर ध्यान केंद्रित किया जा रहा था। बौद्ध धर्म के परिप्रेक्ष्य में यशोधरा का यह कथन तत्कालीन सामाजिक विचारधारा से जुड़ा हुआ जान पड़ता है।

साकेत की उर्मिला उनकी नारी समाजपरक उदात्त भावनाओं का प्रतिनिधित्व करती है।

१. हिंदी काव्य मंथन—दुर्गा शंकर मिश्र, पृ० २६४
२. आधुनिक काव्य-धारा का सांस्कृतिक स्रोत—डा० केसरीनारायण शुक्ल, पृ० १४८-४९

पंचवटी में सीता भौतिकता को छोड़कर भावनात्मक जीवन में कितनी प्रसन्न है :

सम्राट् स्वयं प्राणेश, सचिव देवर हैं,
देते आकर आशीष हमें मुनिवर हैं।
धन तुच्छ यहां—यद्यपि असंख्य आकर हैं।
पानी पीते मृग सिंह एक तट पर हैं।
सीता रानी को यहां लाभ ही लाया,
मेरी कुटिया में राज-भवन मन भाया। —साकेत, अष्टम सर्ग

पंचवटी की सीता देवर लक्ष्मण से चुहुल करती सहज नारी के रूप में अंकित है। मैथिलीशरण गुप्त की मिथकीय चेतना चतुर्विध थी। उनके हृदय में एक ओर अपने युग की प्रासंगिकता का मोह था तो दूसरी ओर भारतीय संस्कृति का आग्रह था, तीसरी ओर पशुता की आत्मकेंद्रित प्रवृत्ति के प्रति वितृष्णा तथा सामाजिकता से जुड़ी मानवीय चेतना का आग्रह था तथा चौथी विचारधारा नर-नारायण के मिथक से प्रेरित थी। इन चारों कोणों से उन्होंने विभिन्न मिथक-कथाओं को महाकाव्यों में अंकित किया। डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने इन चारों कोणों का आख्यान करते हुए लिखा है :

"यह देखकर आश्चर्य होता है कि किस प्रकार नये विचारों का उजाला गुप्त जी ने अपने काव्यों के प्राचीन ठाठ में भरा है। उन्होंने न केवल उदात्त अतीत के गीत गाये हैं, वरन् वे आगे आने वाले और भी अधिक उदात्त जीवन का उत्कंठित आलिंगन करते हैं।'[1]

मैथिलीशरण गुप्त ने वैष्णव तथा बौद्ध धर्म के मिथकों को अत्यंत सहजता से अंकित किया है। दोनों दर्शनों का सुंदर सामंजस्य प्रस्तुत करने का श्रेय आधुनिक हिंदी साहित्य में गुप्त जी से इतर किसी अन्य कवि को उपलब्ध नहीं है। युग-प्रासंगिकता बनाये रखने के लिये मूल कथा सार में परिवर्तनों का स्वागत प्रायः हर देश और काल में होता रहा है—किन्तु मिथकों को युग-प्रासंगिकता में ढालना पं० रामचन्द्र शुक्ल को इष्ट नहीं था। उन्होंने इसका विरोध करते हुए साकेत के संदर्भ में लिखा है :

'पौराणिक या ऐतिहासिक पात्र के परंपरा से प्रतिष्ठित स्वरूप को मनमाने ढंग पर विकृत करना हम भारी अनाड़ीपन समझते हैं।'[2]

उनका विरोध मैथिलीशरण गुप्त को मार्गच्युत नहीं कर पाया। गुप्त जी ने जितने मिथकों को अपने काव्यों में ग्रहण किया, सबमें अपने ढंग से मनोवैज्ञानिकता से आपूरित प्रासंगिकता का समावेश किया।

मैथिलीशरण गुप्त ने 'नहुष' के चरित्र में उन सभी दुर्बलताओं का समावेश किया था जो वर्तमान युग में विद्यमान हैं। परंपरागत भारतीय संस्कृति में आख्यात काम, क्रोध, लोभ, मोह से युक्त नहुष का पतन होना अनिवार्य था। शची के प्रति कामांधता, इंद्रासन का लोभ, धन-ऐश्वर्य का मोह, और देवताओं के प्रति क्रोध उसके पतन का कारण बने। आज सत्ताधारी अधिकांश लोग नहुष जैसा व्यक्तित्व अर्जित करते हैं। उर्वशी का अंकन एक कामुक महिला के रूप में किया गया है।

सियारामशरण गुप्त ने सत्ता और धन के मोह में पड़कर साम, दाम, दंड, भेद का प्रयोग किस प्रकार किया जाता है—इसका सुंदर चित्र 'नकुल' में प्रस्तुत किया।

१. 'मैथिलीशरण गुप्त : कवि और भारतीय संस्कृति के आख्याता' की भूमिका से—लेखक-डा० वासुदेव शरण अग्रवाल।

२. हिंदी साहित्य का इतिहास—पं० रामचंद्र शुक्ल, पृ० ६१५

छायावादी कवियों में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' तथा बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' मुख्य रूप से उल्लेखनीय कवि हैं जिन्होंने मिथक कथाओं को काव्य का अवलंबन बनाया।

जयशंकर प्रसाद रचित 'कामायनी' सृष्टि रचना के मिथक पर आधारित होते हुए भी सार्वकालिक तथा सार्वभौमिक परिवेश से जुड़ा हुआ जान पड़ता है। कवि ने प्रलय का मूल कारण देवों के विलास को माना है। इस तथ्य की अभिव्यक्ति 'चिंता' के माध्यम से की है :

वे सब डूबे; डूबा उनका
विभव बन गया परावार
उमड़ रहा था देव सुखों पर
दुःख जलधि का नाद अपार।

—कामायनी, चिंता, पृ० ८

× × ×

देव दंभ के महामेध में
सब कुछ ही बन गया हविष्य—

—कामायनी, चिंता, पृ० ७

× × ×

भरी वासना सरिता की वह
कैसा था मदमत्त प्रवाह।
प्रलय जलधि में संगम जिसका
देव हृदय था उठा कराह।

कामायनी, चिंता, पृ० १०

चिंता में डूबा मनु इड़ा के संपर्क में आकर फिर से वासनारत हो जाता है—इस तथ्य से कवि ने स्पष्ट किया है कि वासना सदैव पराभव का कारण बनती है। सारस्वत प्रदेश की जनक्रांति सामाजिकता का प्रतीक है। प्रस्तुत महाकाव्य में पारिवारिक, राजनैतिक, धार्मिक और नैतिक मूल्यों का ऐसा समावेश है जिसे काल और देश की सीमा में नहीं समेटा जा सकता। वैदिक आख्यान पर आधारित होते हुए भी कामायनी की भावभूमि अत्यंत व्यापक है। यह प्रतीकात्मक काव्य है—जो भारतीय दर्शन को उजागर करता है। इड़ा भेदीकरण करती है—वह स्थूल बुद्धि है—उसके तिरस्कार से श्रद्धा की उपलब्धि होती है—तभी मानवता की प्रतिष्ठा भी हो पाती है जिसे विश्वकल्याण की भावना कहा जा सकता है। आनंदमय कल्याण की भावना के मूल में महात्मा बुद्ध और गांधी की अहिंसा विद्यमान है। प्रतीकात्मकता चिरंतन दर्शन पर आधारित है तथा सारस्वत प्रदेश का सामाजिक विप्लव गणतंत्र का प्रतिनिधित्व कर रहा है। यह कहना असंगत न होगा कि वैदिक मिथक पर आधारित 'कामायनी' युग-युग के परिवेश से आत्मसात् करती दिखायी पड़ती है। समरसता पर आधारित एक स्वप्नमय संसार की कल्पना है :

संसृति के मधुर मिलन के
उच्छ्वास बना कर निज दल,
चल पड़े गगन-आंगन में
कुछ गाते अभिनव मंगल।

—कामायनी, आनंद, पृ० २९२

× × ×

समरस थे जड़ या चेतन
सुन्दर साकार बना था;
चेतनता एक विलसती
आनंद अखंड घना था।

—कामायनी, आनंद, पृ० २९४

डा० रमेश कुंतल मेघ के शब्दों में :

'कामायनी में प्रसाद ने सामाजिक जीवन के तनावों और समस्याओं को आर्केटाइपल बिंबों में गर्भित करके मानवता के सत्य की तलाश की है। इसी अन्वेषण के समानांतर प्रयुक्त मिथक के भी नये-नये आयाम उद्घाटित हो गये हैं। मिथकीय प्रतीकीकरण की यह प्रक्रिया कामायनी में रूपक तत्त्व के उपक्रम से उद्घाटित हुई है।'[1]

निराला की कविताओं पर भारतीय दर्शन का गहरा प्रभाव है। 'राम की शक्ति-पूजा' में राम-रावण को धर्म-अधर्म का प्रतीक माना गया है। निराला ने अमित शक्ति-संपन्न रावण के सम्मुख कुंठितमना राम को 'शक्ति' की पूजा करते अंकित किया है। उसमें परंपरागत भारतीय संस्कृति में निराला युगीन ऊहा-पोह का सुंदर अंकन है। 'शक्ति-पूजा' से राम रावण को परास्त कर पाने की क्षमता का अनुभव करते हैं। रावण के साथ राम का युद्ध बढ़ते अनाचार से धर्म का युद्ध है। यदि धर्म पर टिका मानव साहसपूर्वक अधर्म से लड़े तो ऐसा दृश्य उत्पन्न होता है :

प्रतिपल-परिवर्तित-व्यूह, भेद कौशल-समूह,
राक्षस-विरुद्ध-प्रत्यूह, ऋषि-कपि-विषम-हूह,
विच्छुरित वह्नि-राजीवनयन-हत-लक्ष्य-बाण,
लोहित लोचन-रावण-मदमोचन-महीयान।

'पंचवटी प्रसंग' में भी उन्होंने मिथक कथा को लिया है—किंतु उनका मूल उद्देश्य दार्शनिक अंकन है।

रामधारीसिंह दिनकर ने महाभारत के पात्रों को ही अपने काव्यों का आधार बनाया है। उनके नैपुण्य के सम्मुख अधिकांश कवि फीके पड़ जाते हैं। 'कुरुक्षेत्र' नामक काव्य में कौरव-पांडवों के युद्ध का वैचारिक विन्यास है। दिनकर ने द्वितीय महायुद्ध के परिप्रेक्ष्य में समस्त मिथक को देखा है। यह काव्य विचार-प्रधान है। युद्ध नैतिक है या अनैतिक ? उसके मूल में व्याप्त स्वार्थ, द्रोह आदि पर प्रकाश डाला है :

दलित मनुष्य में मनुष्यता के भाव भरो,
दर्प की दुरग्नि करो दूर बलवान से,
× × ×
छीन लो हलाहल उदग्र अभियान से।

—कुरुक्षेत्र, सप्तम सर्ग, पृ० ११०

दिनकर का स्वर युद्ध क्षेत्र में वीर रस की गरिमा तथा समाज में गांधीवादी अहिंसा में समान रूप से रचा-पचा है।

एक आदर्श वीर योद्धा की स्थापना करने के लिए दिनकर ने 'रश्मिरथी' काव्य की रचना की। प्रस्तुत काव्य का नायक कर्ण है। कर्ण की चारित्रिक गरिमा को प्रकाश में लाने

1. मिथक और स्वप्न—डॉ० रमेश कुंतल मेघ, पृ० २१०

वाला यह प्रथम महाकाव्य है। जीवन के आरंभ से परिस्थितियोंवश सामाजिक विमुखता झेलता कर्ण सूतपुत्र के रूप में भी एक अद्वितीय वीर योद्धा बन बैठा। जीवन की विषमताओं से अकेले जूझने वाला कर्ण कवच कुंडल का दान देने में भी नहीं झिझका। कर्ण के व्यक्तित्व को उजागर कर दिनकर ने सामाजिक विषमता से जूझने की प्रेरणा प्रदान की है साथ ही स्वातंत्र्योत्तर भारत में प्रसारित जाति-पांति-निषेध को भी अंकित किया है। कर्ण के चरित्र के माध्यम, से वर्तमान युग की अनेक संवेदनाओं को पाठकों के सम्मुख उद्घाटित किया है :

मैं उनका आदर्श कहीं जो व्यथा न खोल सकेंगे
पूछेगा जग किन्तु, पिता का नाम न बोल सकेंगे,
जिनका निखिल विश्व में कोई कहीं न अपना होगा
श्रम से नहीं विमुख होंगे जो दुःख से नहीं डरेंगे।

—रश्मिरथी

'उर्वशी' नामक काव्य में दिनकर ने यौनाकर्षण का अंकन प्रस्तुत किया है। मार्क्स-वादी चेतना का यौन एवं धन का समान वितरण मुख्याधार बना—उसका अंकन प्रस्तुत काव्य में इस ढंग से किया गया है कि पाठक शारीरिक कामकेलि से ऊपर उठकर—प्रेम के वास्तविक रूप को पहचान ले।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ने 'उर्मिला' नामक काव्य में राम काव्य में उपेक्षिता उर्मिला का सुंदर चरित्रांकन किया है। इस दिशा में प्रथम काव्य 'साकेत' था, किंतु नवीन जी ने उर्मिला की चित्तवृत्तियों को जिस कौशल से उभारा है वह वास्तव में सराहनीय है। उन्होंने स्वयुगीन राष्ट्रीय चेतना, विश्वबंधुत्व, भारतीय संस्कृति, नारी का उत्थान आदि को बहुत सुंदर ढंग से 'उर्मिला' में समाविष्ट किया है। डा० नूरजहां बेगम ने प्रस्तुत तथ्यों पर प्रकाश डाला है।[१] नवीन जी ने नारी को बुद्धि तथा धैर्य की प्रतिमा माना :

धैर्य ? अहो प्रिय ! नारी का यह जीवन है धृति मति प्रतिमा।

—उर्मिला, सर्ग ६, पृ० ६००

नारी के बिना नर का व्यक्तित्व-निर्माण असंभव है। मातृत्व, स्नेह, उत्सर्ग, पर-दुःख कातरता आदि नारी के गुण माने जाते हैं; किंतु इन गुणों के अभाव में पुरुष भी पौरुष संपन्न मानव नहीं माना जा सकता। समाज के लिए आत्मोत्सर्ग मानवता का लक्षण है, इसी से नवीन जी ने माना है :

'लक्ष्मण का वन गमन मानवता के कल्याण-यज्ञ की प्रथम आहुति है।'

—उर्मिला, सर्ग ३, पृ० ३०१

छायावादोत्तर साहित्य में भी मिथक कथाओं पर आधारित वृहत्-साहित्य उपलब्ध है। एक ही कथा को कवियों ने भिन्न-भिन्न तथ्यों का पोषण करने के लिए तरह-तरह से मोड़ा है।

रामकाव्य परपरा की खल-पात्र कैकेयी को विषय बनाकर अनेक काव्यों की रचना हुई। प्रायः सभी कवियों ने मनोवैज्ञानिक स्तर पर उसे दोषमुक्त स्वरूप प्रदान करने का प्रयास किया है। इसके मूल में आधुनिक काल में नारी-उत्थान की प्रवृत्ति है। केदारनाथ मिश्र 'प्रभात' ने 'कैकेयी' नामक काव्य में रामवनगमन संदर्भ को एक नया रूप प्रदान

१. पुराख्यान का आधुनिक हिंदी प्रबंध काव्यों पर प्रभाव—डॉ० नूरजहां बेगम।

किया। कैकेयी एक वीर महिला के रूप में अंकित है। वह यह सुनकर कि दक्षिण में असुर अनेक प्रकार के उत्पात कर रहे हैं—राम को युद्ध के लिए भेज देती है। भारत के स्वतंत्रता संग्राम से अभिभूत कवि कैकेयी का क्रियाकलाप भी देशभक्ति से जोड़ देता है। कैकेयी कर्त्तव्य निष्ठा का आख्यान करती है :

नारी जिसके लिए हाय अपना सिंदूर लुटा दे
माता जिसके लिए गोद में अपनी आग लगा दे।
तू कैसे उसके महत्त्व को जाने, तू रोता है,
तुमको ज्ञात भरत ! कितना कर्त्तव्य कठिन होता है।

—कैकेयी, केदारनाथ मिश्र, पृ० १८३

मिश्र जी ने कैकेयी को वीरांगना, विदुषी तथा वात्सल्यमयी आदर्श नारी के रूप में प्रतिष्ठित किया।

शेषमणि शर्मा 'मणिरायपुरी' ने भी 'कैकेयी' नामक काव्य की रचना की। स्वतंत्रता सेनानी होने के कारण वे देशभक्ति का मोह काव्य-सृजन में भी नहीं छोड़ पाये। उन्होंने ब्रिटिश सत्ता, गांधी जी का सत्य और अहिंसा आदि समसामयिक प्रसंगों की प्रतिच्छवि को बहुत निपुणता से 'कैकेयी' काव्य में समाहित किया है। हजारों वर्ष पूर्व वाल्मीकि रामायण में लिखे गये कैकेयी-विषयक संदर्भ ने स्वतंत्रता की प्रासंगिकता ओढ़ ली। चांदमल अग्रवाल 'चन्द्र' के 'कैकेयी' नामक काव्य में भारत के चीन और पाकिस्तान से हुए युद्धों की प्रासंगिकता प्रतिबिंबित है :

बिचारी मूक सीमा की प्रजा रहती—
अधम आक्रमणों से भीत शंकित
कहें कैसे हमारे राज्य में बहती
हवा सुख शान्ति की निर्बाध फिर चहुं दिशि ॥

—कैकेयी, सर्ग-४, पृ० ३३

नरेन्द्र शर्मा ने 'द्रौपदी' नामक काव्य में नारी की सतत बलिदानात्मक प्रवृत्ति को व्यक्त किया है तो 'कौंतेय कथा' में श्री उदयशंकर भट्ट ने राष्ट्रीय एकता का स्वर उठाया है। इस क्षेत्र में चतुरसेन शास्त्री की रचना 'वयं रक्षामः' भी एक अनूठी कृति है। नरेन्द्र शर्मा का 'उत्तर जय' नामक काव्य युधिष्ठिर तथा अश्वत्थामा को आज के मानव समाज के अनुरूप पीड़ा-भीरू बनाकर प्रस्तुत करता है। यह कल्पना वर्तमान समाज की संवेदना है।

धर्मवीर भारती ने 'कनुप्रिया' में राधा के प्रेम-संवेदन को आधुनिक रूप दिया है। विरहिणी राधा संयोग के क्षणों को नितांत व्यक्तिगत बीती घड़ियां मानकर स्मृति में संजो लेती है तथा उन्हीं के सहारे अपना स्थान खोजती है। नारी की विरहजन्य पीड़ा में जिस गहनता का अंकन 'कनुप्रिया' में हुआ है, अन्यत्र मिलना सहज नहीं है :

मैं पगडंडी के कठिनतम मोड़ पर
तुम्हारी प्रतीक्षा में
अडिग खड़ी हूं कनु मेरे।[1]

१. कनुप्रिया—धर्मवीर भारती, पृ० ८६

भारती का लिखा 'अंधा युग' नामक काव्य महाभारत के रक्तपात के बाद फैली वैचारिक असहिष्णुताजन्य निराशा, कुंठा, कुरूपता के अंधकार की अभिव्यक्ति है। दुःख का गहन अंधकार—वह तो पग-पग पर पल प्रतिपल आज भी प्रसारित है। यह काव्य विरूपताओं को छोड़ सत्य का प्रकाश खोजने का संदेश देता है :

संजय — किंतु मैं निष्क्रिय अपंगु हूं।
अश्वत्थामा—मैं हूं अमानुषिक
युयुत्सु—और मैं हूं आत्मघाती अंध

—अंधायुग-समापन, पृ० १३०

युग-चेतना आत्मबोध की प्रेरणा प्रदान करती है :

नहीं है पराजय यह दुर्योधन
इसको तुम मानो नये सत्य की उदय वेला।

× × ×

युद्धोपरान्त
यह अंधा युग अवतरित हुआ
जिसमें परिस्थितियां मनोवृत्तियां आत्माएं सब विकृत हैं।
है एक बहुत पतली डोरी मर्यादा की
पर वह भी उलझी है दोनों ही पक्षों में
सिर्फ कृष्ण में साहस है सुलझाने का

× × ×

पर शेष अधिकतर हैं अंधे
पथ भ्रष्ट आत्महारा विगलित।[1]

× × ×

कुंवर नारायण की 'चक्रव्यूह' अधुनातन मानव का प्रतीक है। हर व्यक्ति आज अपने को एक विचित्र चक्रव्यूह में घिरा पा रहा है--वह दुर्भेद्य है वैसे ही जैसे अभिमन्यु—धूर्त, आत्मकेंद्रित, स्वार्थी लोगों के बनाए चक्रव्यूह में फंस गया था। कुंवर नारायण की दूसरी कृति 'आत्मजयी' दार्शनिक ग्रंथ है; उसका मूलाधार कठोपनिषद् की कथा है। उसका आधुनिकीकरण वास्तव में सराहनीय है। प्रस्तुत काव्य आधुनिक जीवन में उभरे प्रश्नों को चिरंतन भावधारा से जोड़ने का प्रयास तथा उत्तर पाने की अकुलाहट व्यक्त करता है।

नरेश मेहता के काव्य 'संशय की एक रात' में मानवीय स्तर पर राम-रावण-युद्ध से पूर्व की स्थिति का मनोवैज्ञानिक अंकन है। अनायास ही प्रश्न उठता है कि आज का समाज वैसी परिस्थिति में क्या करेगा और क्या सोचेगा ?

दुष्यंतकुमार त्यागी का काव्य 'एक कंठ विषपायी' दक्ष यज्ञ तथा सती के मिथक पर आधारित है। इस काव्य में अधुनातन भारत में व्याप्त मद, मोह, सत्ता का अहंकार जिस सहजता से व्यक्त है, अन्यत्र मिलना असंभव है। वैभवशाली दक्ष अपनी पुत्री के प्रणय से दुखी है—कारण शिव का सीधा-सादा व्यक्तित्व है। बाह्य दिखावे से दूर शिव नन्दी की सवारी करता, पर्वत गुहा में रहने वाला व्यक्ति उसका दामाद बन गया—सो दक्ष सती से संबंध विच्छेद कर देना चाहता है। शिवेतर समस्त देवताओं को आमंत्रित कर वह शिव का

१. अंधायुग,—धर्मवीर भारती।

निरादर करता है अतः उसकी पुत्री सती हो जाती है इस परंपरागत कथा में पात्रों का परस्पर वार्तालाप अधुनातन समाज से जुड़ा हुआ है :

दक्ष

शंकर ने
सती को बनाकर गोट
चाल जो चली है
मैं समझता हूं—

—पृ० २७

वारिणी

दुर्दिन जब आते हैं
तो पहले
व्यक्ति का स्वातंत्र्य बोध
चिंतन
औ' प्रज्ञा हर लेते हैं।

× × ×

शिथिल व्यवस्था नहीं
हृदय की सहज-जात दुर्बलता है यह
जैसे हर मनुष्य
अपनी सामर्थ्य और सीमा के भीतर जीवित
किसी सत्य के सहसा कट जाने पर
व्याकुल हो जाता
या क्रोधित हो उठता है।

—पृ० ३३-३४

सती के आत्मदाह पर शिव सब नष्ट-भ्रष्ट कर डालते।

सर्वहत

सारे नगर में ताजा
जमा हुआ रक्त है
और सड़ी हुई लाशें हैं
मुड़ी हुई हड्डियां हैं
क्षत-विक्षत तन है—

-पृ० ४५

शासक की भूलों का उत्तरदायित्व
प्रजा को वहन करना, पड़ता है
उसे गलित मूल्यों का दंड भरना पड़ता है।

—पृ० ४६

विष्णु

नहीं वरुण
यह तो युद्धोपरान्त उग आई
संस्कृति के ह्रासमान मूल्यों का
एक स्तूप है भग्नप्राय

× × ×

कृति यह नहीं है
एक विकृति का फल -पृ० ५२-५३

शंकर

देवत्व और आदर्शो का परिधान ओढ़
मैंने क्या पाया ?
निर्वासन !
प्रेयसि-वियोग ॥ —पृ० ७७

'एक कंठ विषपायी' ने आधुनिकता का इतना सुंदर जामा पहना है कि वह एकदम वर्तमान प्रतिक्रियाओं का प्रतिपादन करता है। सती के आत्मदाह से शिव के भटकाव तथा देवताओं की मंत्रणाओं में से कोई भी वर्तमान प्रासंगिकता का आंचल नहीं छोड़ता। हर युग में कोई न कोई ऐसा व्यक्ति जरूर होता है जो कष्ट का कड़वा घूंट पीकर भी परदुःखकातरता की वृत्ति नहीं छोड़ता :

विष्णु

मुझे पता है,
इस त्रिलोक में,
महादेव का एक कंठ केवल विषपायी,
जिसकी क्षमताएं अपार हैं। —पृ० १२४

मुक्तक कविताएं भी मिथकीय परिवेश से दूर नहीं रह पायीं। पाश्चात्य प्रभाव से ग्रसित भारतीय समाज में धीरे-धीरे हृदय पक्ष की अपेक्षा बौद्धिक पक्ष अधिक प्रबल हो गया। प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद ने क्रमशः काव्य के भावपक्ष और कलापक्ष में बौद्धिक चेतना का वृहत् संचार किया फलतः मिथकों के प्रति श्रद्धा की अपेक्षा तर्क का भाव प्रबल होता गया। मिथक कथाएं प्रतीक और बिंब के साथ-साथ आलोचना, व्यंग्य, बहिष्कार और चुनौती का आलंबन बन गयीं।

कुंती के यह बताने पर कि कर्ण उसका बेटा है—कर्ण व्यंग्य करता है :

अनिष्ट की आशंका से भीत
ममता की हहाती वेदना से विकल
× × ×
तुमने मुझे आज अपना बेटा कहा है
× × ×
तुम मेरी मां नहीं
कोई नहीं
मैं तो सूतपुत्र हूं
जन्म देकर बहाने वाली मां नहीं होती है।[1]
× × ×
मुझे मारने का
यही अच्छा मौका है

१. प्रारंभ—सं० जगदीश चतुर्वेदी, सूत पुत्र के तीन मर्म कथन—केशु, पृ० ९५-९६

किन्तु, यह भूलना नहीं
कि मैंने तुम्हारे लिये
कवच और कुंडल दिये हैं
और तुमने मुझे
पहिया निकालते हुए मारा है।

× × ×

ओ मेरे तथाकथित पिता
मेरे टूक-टूक हृदय की
रही सही श्रद्धा ने
अभी-अभी आत्म हत्या कर ली है

× × ×

मैं तुम्हें प्रणाम नहीं करूंगा।[1]

विष्णु के अवतार राम के व्यवहार की दुर्बलताएं विवेचन का विषय बन गयीं :

बहुत हुआ राम जाप

× × ×

बालि को मारे जो पेड़ की आड़ से
सीता को बेघर कर, जो मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाता हो,
नहीं चाहिए हमें ऐसा राम।[2]

ज़िंदगी की परिभाषा में मिथकीय पात्र उपमा और प्रतीक-योजना का निर्माण करते हैं

जिंदगी एक युद्ध है—
जहां न कोई अर्जुन है
न सारथी कृष्ण
कुछ कर्ण हैं जो
अपनी पैदायश का कर्ज ढो रहे हैं
और अभिमन्यु हैं कुछ—
जो अधर्मी महारथियों से
लड़ लड़ कर—
शहीद हो रहे हैं।[3]

'पर्वत-संध्या' में श्री मलयज ने सूर्य की उपमा ज्योतिर्मय पुरुष गौतम बुद्ध से दी है :

ज्योति-पुरुष चले गये।
निर्निमेष तकती हताश घाटी के वक्ष पर
सिंदूरी चरण धर
निर्मोही गौतम से।

—मलयज—'पर्वत-संध्या'
(निकष, पृ० ३४३, अंक ३-४)

१. सूर्य पुत्र के तीन मर्म कथन—केशु—प्रारंभ पृ० सं० ९८-९९
२. हमें जरूरत है—संजीव पुरी, कविताएं मां और बेटे की, पृ० ८३
३. जिंदगी : कुछ आयाम—संजीवपुरी, कविताएं मां और बेटे की, पृ० ९९

बौद्धिक चेतना से विमोहित आधुनिक कवियों ने पौराणिक चरित्रों को श्रद्धा के स्थान पर तर्क की कसौटी पर कसा है :

मेरी कुंठा
रेशम के कीड़े से ताने बाने बुनती
स्वर से, शब्दों से, भावों से
और वाणी से कहती सुनती
तड़फ-तड़फ कर बाहर आने को सिर धुनती गर्भवती है
मेरी कुंठा क्वारी कुंती ?

—दुष्यंत कुमार त्यागी—'विसर्जित कुंठा'
(सूर्य का स्वागत, पृ० ११)

मैंने कब दावा किया था
अपने सूर्यम्पश्या होने का
× × ×
मैं तो मात्र लाक्षा गृहों के बीच
जलते देखता रहा था एक आत्मीय परिवेश

—सुरेश किसलय—'कुंठित होने का सुख'
(दिविक, पृ० ११७)

निष्क्रियता से उबर कर कर्म की ओर प्रवृत्त करने के लिए कवियों ने परंपरागत पूजनीय देवी-देवताओं को ईश्वर के अवतरित रूप में ग्रहण न करके उन्हें मानव माना है—जो अपने सुकर्मों से देवत्व प्राप्त कर सकते हैं :

पहले धरती को स्वर्ग बनाओ मेहनत से
तुम देखोगे देवता स्वयं बन जाते हैं।

—कुंवर नारायण सिंह
(चक्रव्यूह, पृ० ८२)

आज कटिबद्ध हम सब
फावड़े-लाठी संभाले
कृष्ण-अर्जुन इधर आयें
हम उन्हें आने न देंगे।

—दुष्यंत कुमार त्यागी, 'दिग्विजय का अश्व'
(सूर्य का स्वागत, पृ० २२)

वर्तमान परिवेश में कोई किसी से कुछ मांग नहीं सकता। सहायक होने का निरंतर प्रदर्शन करने वाले लोगों में भी देने की वृत्ति समाप्त हो गयी है—सब आत्मकेंद्रित हैं—इस तथ्य को विजयदेव नारायण साही ने बहुत सुंदर ढंग से अंकित किया है। 'बांझ कामधेनु' इस तथ्य की प्रतीक है कि समाज के वे लोग, जो कुछ भी देने की प्रवृत्ति एवं क्षमता से कोसों दूर हैं, सब ओर से घेरे खड़े हैं—दाता का अभिनय कर रहे हैं। उनसे घिरे एकाकी व्यक्ति की कैसी अनुभूति होती है :

बांझ कामधेनुए
रंभाती हुई आयीं
और मेरे चारों ओर आकर ठहर गयीं

इस उम्मीद में कि मैं उनसे कुछ मांगूंगा
मुझे सिर्फ घिर जाने की तकलीफ हुई
और मैं उनकी आंखों से आंखें मिलाये घूरता रहा।

—विजयदेव नारायण साही 'बांझ कामधेनु'
(मछली घर, पृ० ३४)

टीकाधारी भक्ति के ठेकेदारों से जूझते आधुनिक कवियों ने मंदिरों में कैद अथवा श्रद्धा की सीमाओं से घिरे मिथकीय पात्रों को जनसाधारण में खोजने का दावा किया है :

घर घर हैं दशरथ
घर घर हैं राम लखन
घर घर भरत हैं, घर घर हैं शत्रुघ्न
बैठते हैं ठाठ से निज निज दालान पर

—नागार्जुन 'विजयी के वंशधर'
(तालाब की मछलियां, पृ० ५६)

नागार्जुन की प्रस्तुत पंक्तियां स्पष्ट करती हैं कि प्रत्येक मिथकीय पात्र वृत्ति-विशेष का प्रतीक है; कोई भी वृत्ति ऐसी नहीं जो समाज से तिरोहित हो जाय। यह तथ्य मिथक की साहित्यगत चिरप्रासंगिकता का बोधक है।

आधुनिक समाज की विकृतियों को स्वीकारते हुए भी सत्य की चिरविजय सर्व-स्वीकृत है। मिथकों के उदाहरण से इस तथ्य की पुष्टि विरूपताओं से घिरे ईमानदार मानव को जीने की प्रेरणा प्रदान करती है :

जब जब असत्य ने छल से, बल से, माया से
सब कुछ करने को भस्म लाख के भवन रचे
कोई ज्ञानी, धर्मालु, सत्य का अन्वेषी
निष्कपट विदुर आड़े आया—
दे गया दबे शब्दों में सारा कपट भेद

—विजयदेव नारायण साही, 'लाक्षागृह'
(मछलीघर, पृ० ४१)

जो अब भी अडिग सुरक्षित है
इस वन में बैठे हंसते हैं—हम धवल सत्य
लेकिन राजन्,
कल लाक्षागृह के भीतर जो शव पड़े मिले
वे किसके थे ?

—वही, पृ० ४२

गुरु-शिष्य-परंपरा के ओजस्वी युग में भी द्रोणाचार्य ने एकलव्य से कैसे व्यवहार किया था :

शिष्य एकलव्य पर कैसा वह रोष था
जो सब छोड़ तुमने, मांगा तो केवल
दाहिने हाथ का अंगूठा ही।[1]

1. कृष्णा चतुर्वेदी—'द्रोण स्तुति (छह×दस, पृ० ८२-८३)

आधुनिक युग में पग-पग पर एकलव्य के प्रति द्रोण का सा व्यवहार टकराता है—शिक्षा-प्रणाली का पराभव इसी प्रकार के वांछित व्यक्तियों को दबाने के कारण हो रहा है। आज का युग क्या महाभारत की स्थिति से मिलता-जुलता नहीं लगता :

हर दिन
महाभारत से मिलता जुलता
क्यों दिखता है ?
हर कोने में बैठा शकुनि
दुर्योधन को उकसा कर—
द्रौपदी के वस्त्र छिनवाता है
हर दुर्योधन का पिता—
अंधा धृतराष्ट्र है
मां भी आंख बंद किये
बेटे की गलती पर पर्दा डाल लेती है।

× × ×

द्रौपदी
किसके बल पर—कसम उठाये ?
सो उसने खुले बाल
कटवा दिये हैं अपने,
यों महाभारत का प्रभाव
छा गया है
भारत पर[१]

धर्म-निरपेक्ष देश भारत में ही वर्ग की एकता के स्वर ने भी मिथकीय पात्रों का आह्वान किया—

यह अमरों की पूज्य धरा
राम-कृष्ण की थाती है
गौतम, गांधी को जन कर
इसकी दूधिल छाती है।[२]

आधुनिक हिंदी गद्य साहित्य ने भी मिथकों का आंचल नहीं छोड़ा। मिथक कथाओं पर आधारित अनेक नाटक साहित्य में अद्वितीय स्थान संजोये हैं। जयशंकर प्रसाद कृत 'जनमेजय का नागयज्ञ' देश के गौरवमय अतीत की गाथा है। रामकुमार वर्मा का लिखा 'राजरानी सीता' नामक एकांकी लंका की अशोक वाटिका में बैठी एकाकी सीता की मनोदशा का मनोवैज्ञानिक चित्रण है।

डा० शंकर शेष ने कोमल गांधार में भीष्म का चरित्र ही बदल डाला। वह अवसरवादी विचारधारा से आत्मसात् किये जिंदगी की शतरंज के मोहरे चलता है। गांधारी का मन क्षुब्ध है कि अंधे धृतराष्ट्र से उसका विवाह क्यों किया गया। नारी की रुचि जाने बिना किये गये विवाह से उत्पन्न कटुता का अधुनातन रूप गांधारी के माध्यम से अभिव्यक्त किया गया है।

१. उषा पुरी—कविताएं मां और बेटे की, पृ० ६६
२. हरिश्चन्द्र पाठक अजेय—'राम-कृष्ण की थाती' (अंजुरी भर धूप, पृ० ४६)

वर्तमान अध्यापक की स्थिति का सुंदर चित्र 'एक और द्रोणाचार्य' में शंकरशेष ने बहुत निपुणता से व्यक्त किया। हजारों वर्ष पूर्व मिथकों में जन्मे द्रोणाचार्य के रूपांकन में वर्तमान 'गुरु' की प्रतिच्छवि ही दिखलायी पड़ती है।

गद्य साहित्य में मिथकीय रचनाओं का विपुल भंडार है—सबके विषय में कुछ लिख पाना संभव नहीं तथापि कुछ विशेष ग्रंथों को छोड़ पाना भी असंभव प्रतीत होता है।

इस क्षेत्र के अधुनातन गद्य लेखकों में नरेन्द्र कोहली का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उन्होंने वाल्मीकि रामायण पर आधारित दीक्षा, अवसर, संघर्ष की ओर, युद्ध (दो भागों में) की रचना की। इस ग्रंथ की महत्ता यह है कि रामकथा को यह अधुनातन परिवेश से बहुत सहजता से जोड़ता गया कोई अंश अस्वाभाविक और नकली भी नहीं लगता। परंपरागत दशरथ एक साधारण मानव के रूप में उभरे हैं। तीन पत्नियां भी दशरथ की कामुकता को संतुष्ट करने में असमर्थ थीं अतः उन्होंने इस ग्रंथ में तीन पटरानियों से इतर रानियों का समावेश भी किया। कैकेयी ने एक युद्ध में सहायता क्या की—संपूर्ण जीवन के लिए लाभ बटोरना चाहा। अहल्या का पत्थर हो जाना समाज से बहिष्कृत होना है; अहल्या की मुक्ति समाज में पुनः स्वीकृति का द्योतक है। इस प्रकार समस्त संदर्भों को नरेन्द्र कोहली ने मनोवैज्ञानिक धुरी पर टिकाकर रखा है।

इस दृष्टिकोण के साथ वाल्मीकि रामायण का प्रत्येक संदर्भ अनूठा रूप संजोता जान पड़ता है। कहने का अभिप्राय यह है कि लेखक ने इस ग्रंथ में मनोविज्ञान का इतना सुंदर समन्वय किया है कि रामकथा के प्रत्येक संदर्भ में आधुनिक और प्राचीन युग के मध्यवर्ती काल की दूरी नष्ट हो गयी है।

हिंदी साहित्य में चिरकाल से मिथक कथाओं का प्रयोग हुआ। मिथकीय घटना और पात्र समाज के हर परिवेश के अनुरूप ढलते गये। आधुनिक हिंदी साहित्य तक पहुंचते-पहुंचते वे बहुआयामी प्रयोगों का माध्यम बन गये।

'आधुनिक युग के अनिश्चय, अनास्था, कुंठा और अतिवैयक्तिकता के वातावरण ने जीवन-मूल्यों को विघटित करने में योग दिया···बिखराव की समस्या सामने आयी।'[1] जिसे विभिन्न मिथकों के माध्यम से अभिव्यक्ति मिली।

भारतीय संस्कृति में मिथक साहित्य मूलतः पूज्य भावनाओं का विषय था। आधुनिककाल तक पहुंचते-पहुंचते वह बहुआयामी मनःस्थितियों का आलंबन बन गया। नारी की महत्ता, जाति-पांति—अभेद, नैतिकता की रक्षा, वीरता, भारतीय संस्कृति की सुरक्षा करने के निमित्त वह बिंब और प्रतीक के रूप में उभरा। धीरे-धीरे वही मिथक कष्टाप्लावित समाज को सांत्वना प्रदान करने लगे। कुंठाओं से दबा व्यक्ति अपनी प्रतिभा को कुचला जाता देख त्रस्त मन से ओजस्वी मिथक-पात्रों को उलाहना देने लगा—कहीं-कहीं मिथक दुखी समाज के व्यंग्य के माध्यम भी बने। प्रयोगवादी विचारधारा में रचे-पचे साहित्यकारों ने नये उपमानों की खोज आरंभ की, फलतः मिथकों को चिरप्राचीन परिपाटी से हटाकर एक नया मोड़ दिया। कैकेयी आदर्श विदुषी वीरांगना बन बैठी और कौशल्या केवल अपने पुत्र के प्रेम में लीन नारी। रावण सशक्त, संगीतज्ञ, आदर्श पुरुष बन बैठा और राम मर्यादा पुरुषोत्तम के आसन से च्युत कर दिये गये। राधा समाजसेविका की प्रतीक बन गयी और उर्मिला लक्ष्मण के विरह में अकुलाने लगी। इन सभी वीथिकाओं से भेस बदलकर आगे बढ़ते मिथक—कुछ

१. स्वातंत्र्योत्तर हिंदी और गुजराती नयी कविता—डॉ० मंजु सिन्हा।

साहित्यकारों की भर्त्सना का विषय भी बने। भारत की प्राचीन संस्कृति को उखाड़ फेंकने की वृत्ति ने अनेक पुराकथाओं और पात्रों को नकारा, उनको अवांछनीय माना। ऐसे कवियों ने भी मिथक कथाओं तथा पात्रों का नामोल्लेख अवश्य किया है। हिंदी साहित्य के आदिकाल से अधुनातन साहित्य तक कोई भी अंश मिथकीय साहचर्य से दूर नहीं रह पाया। हृदय और बुद्धि का कोई भी आयाम ऐसा नहीं है जहां मिथक कथाओं की पहुंच न हो। मिथक वह शक्ति है, ओज है, भावबोध है, जिसकी साहित्यगत उपादेयता शब्दबद्ध कर पाना सहज नहीं है।

□□

मूल ग्रंथों के संकेत चिन्ह

वेद	ग्रंथों के नाम	संकेत चिन्ह
	ऋग्वेद	ऋ० वे०
	यजुर्वेद	यजु० वे०
	सामवेद	सा० वे०
	अथर्ववेद	अथर्व० वे०
ब्राह्मण ग्रंथ	ऐतरेय ब्राह्मण	ऐ० ब्रा०
	गोपथ ब्राह्मण	गो० ब्रा०
	जैमिनी ब्राह्मण	जै० ब्रा०
	जैमिनीयोपनिषद् ब्राह्मण	जै० यो० ब्रा०
	ताण्ड्य ब्राह्मण	ता० ब्रा०
	तैत्तिरीय आरण्यक	तै० आ०
	तैत्तिरीय ब्राह्मण	तै० ब्रा०
	तैत्तिरीय संहिता	तै० सं०
	शतपथ ब्राह्मण	श० ब्रा०
उपनिषद्	ईशावास्योपनिषद्	ई० उ०
	कठोपनिषद्	क० उ०
	केनोपनिषद्	के० उ०
	छान्दोग्योपनिषद्	छा० उ०
	तैत्तिरीयोपनिषद्	तै० उ०
	प्रश्नोपनिषद्	प्रश्न० उ०
	मुंडकोपनिषद्	मुंड० उ०
	श्वेताश्वतरोपनिषद	श्वेत० उ०
आदि महाकाव्य	महाभारत	म० भा०
	वाल्मीकि रामायण	वा० रा०

पुराण	अग्नि पुराण	अ० पु०
	देवी भागवत	दे० भा०
	ब्रह्म पुराण	ब्र० पु०
	मत्स्य पुराण	म० पु०
	मार्कंडेय पुराण	मा० पु०
	विष्णु पुराण	वि० पु०
	शिव पुराण	शि० पु०
	श्रीमद् भागवत	श्रीमद्० भा०
	हरिवंश पुराण	हरि० वं० पु०
बौद्ध तथा जैन ग्रंथ	पउम चरितम्	पउ० च०
	बुद्ध चर्या	बु० च०
	वर्धमान चरितम्	व० च०

अ

अंगद (क) अंगद बालि और तारा का पुत्र था। उसकी वंश-परंपरा इस प्रकार है—ब्रह्मा, कश्यप, इंद्र, बालि, अंगद।

राम ने उसे दूत के रूप में रावण के पास यह संदेश देकर भेजा था कि या तो रावण सीता को लौटा दे अन्यथा लंका का ध्वंस हो जायेगा। रावण ने राम-दूत अंगद को पकड़ने की आज्ञा दी किंतु अगद उड़कर राम के पास पहुंच गया।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ४१, श्लोक सं० ७४-१००

(ख) लक्ष्मण के पुत्र का नाम अंगद था।

राम ने कारुपथ राज्य पर विजय प्राप्त कर, वहां अंगदीया नगरी बसाकर लक्ष्मण-पुत्र अंगद को प्रदान की थी। वह नगरी पश्चिम में थी। अंगद के साथ राज्य की व्यवस्था करने के लिए लक्ष्मण भी गये थे।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग १०२

अंगिरा (वंश-परंपरा—मरीची, अंगिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलाह, ऋतु) ब्रह्मा के छः मानस-पुत्रों में से एक थे।

सर्वप्रथम अंगिरा ऋषियों ने कर्मों द्वारा अग्नि प्रज्वलित की। फलस्वरूप उन्होंने गऊ, यव आदि धन प्राप्त किया।

ऋ०, १।६२।४

(अंगिरा इंद्रियों सहित समस्त दिशाओं में घूमने वाला—निरुक्त ११-१६; प्राणों का द्योतक—शतपथ ब्रा० १-२-२८)

सर्वप्रथम अंगिरा ऋषि प्राणवान हुए। जीवन-प्राप्ति के उपरांत उन्होंने गऊ, यव आदि धन का अर्जन किया। आदित्यों और अंगिराओं में स्वर्ग की प्राप्ति के लिए स्पर्द्धा हुई। आदित्यों ने साठ वर्ष पहले स्वर्ग प्राप्त किया। अंगिराओं ने अग्नि से अग्नि का यजन किया तथा स्वर्ग प्राप्त किया।

ऐ० ब्रा०, ४।१७-३२, ६।३४

अंगिराओं ने स्वर्ग-प्राप्ति के लिए जगत-प्रकाशक आदित्यों को श्वेत-अश्वेत-रूपी दक्षिणा प्रदान की, जिससे प्रसन्न होकर आदित्यों ने उन्हें सवर्यः (श्रेष्ठ गुणों से युक्त) माना।

तै० ब्रा०, ३।६।२१

देवताओं में सर्वप्रथम ब्रह्मा उत्पन्न हुए। वे विश्व के रचयिता हैं। उन्होंने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को ब्रह्म-विद्या का उपदेश दिया। अथर्वा से अंगी, अंगी से सत्यवह (भारद्वाज के पुत्र), सत्यवह से अंगिरा को परंपरागत ब्रह्म-विद्या की प्राप्ति हुई। गृहस्थों में सर्वप्रथम शौनक ने अंगिरा के पास जाकर उक्त विद्या को जानने की इच्छा प्रकट की। अंगिरा ने बतलाया, विद्या दो प्रकार की है—परा तथा अपरा। वेद व्याकरण आदि का ज्ञान परा विद्या के अंतर्गत आता है तथा अक्षर-ब्रह्म का ज्ञान अपरा विद्या के अंतर्गत होता है। अक्षर-ब्रह्म का मस्तक अग्नि (द्युलोक) है। सूर्य और चंद्र नेत्र हैं, दिशाएं कर्ण हैं, वेद वाणी है, वायु प्राण है, सारा विश्व हृदय है। उसी के चरणों में पृथ्वी प्रकट हुई। अक्षर-ब्रह्म परम पुरुष है तथा पृथ्वी प्रकृति—दोनों के संयोग से सृष्टि का निर्माण होता है। अंततोगत्वा सबका विलय भी उसी में हो जाता है।

अक्षर-ब्रह्म और जीव दो पक्षियों के समान अश्वत्थ वृक्ष पर निवास करते हैं। इस वृक्ष की मूल ऊपर की ओर है और शाखाएं नीचे की ओर। पक्षी-रूपी जीव कर्मफल का आस्वाद करता है तथा उसमें बार-बार लिप्त रहता है। दूसरा पक्षी, जो ब्रह्म है, निरंतर अपने साथी का आलिंगन किये रहता है तथापि वह दर्शक मात्र है—फल का आस्वादन नहीं करता। जिस प्रकार नदियां समुद्र में विलीन होकर अपना अस्तित्व खो देती हैं, उसी प्रकार ज्ञान की उपलब्धि के उपरांत जीवात्मा ब्रह्म में लीन हो जाती है।

मुण्डकोपनिषद्, १।१।१-३, २।१।४-५, ३।१।१, ३।२।८

अंगिरा की तपस्या से बढ़ते हुए तेज को लक्ष्य कर अग्निदेव अत्यंत मलिन हो गये। उन्हें लगा कि संभवतः ब्रह्मा ने दूसरे अग्निदेव का निर्माण कर लिया है। वे अंगिरा के पास पहुंचे। उन्होंने अंगिरा से अग्नि के पद पर प्रतिष्ठित होने के लिए कहा—किन्तु अंगिरा ने अग्नि से अनुरोध किया कि वे अंगिरा को अपना प्रथम पुत्र मानें, इससे अधिक कामना उनकी नहीं है। ऐसा ही हुआ। कालांतर में अंगिरा ने बृहस्पति नामक पुत्र को जन्म दिया। अंगिरा का विवाह सुभा से हुआ। उसने सात पुत्रों (बृहत्कीर्ति, बृहत्ज्योति, बृहदब्रह्मा, बृहन्मना, बृहन्मन्त्र, बृहद्भास, तथा बृहस्पति) तथा आठ कन्याओं को (भानुमति, रागा, सिनीवाली, अर्चिष्मती, हविष्मती, महीष्मती, महामती, तथा कुहु) जन्म दिया।

सह नामक अग्नि की पत्नी का नाम मुदिता था। उसने अद्भुत नामक अग्नि को उत्पन्न किया। अद्भुत के पुत्र का नाम भरत (नियत) नामक अग्नि था जो शवदाह का कार्य करता था। एक बार देवतागण सह को ढूंढ़ रहे थे। उनके साथ अपने पौत्र नियत (भरत) को देखकर सह अग्नि छूत के भय से समुद्र में घुस गया। अंगिरा अग्नि को ढूंढ़ता हुआ वहां भी जा पहुंचा। अग्नि ने अथर्वा (अंगिरा) को देवताओं का हविष्य पहुंचाने का कार्य सौंपकर दूसरे स्थान के लिए प्रस्थान किया। मत्स्यों ने छुपे हुए अग्नि का स्थान अंगिरा को बता दिया। इससे क्रुद्ध होकर अग्नि ने उन्हें सब प्रकार के जीवों का भक्ष्य बनने का शाप दिया। अग्नि ने अपने शरीर को त्यागकर पृथ्वी पर बहुत-सी धातुओं की सृष्टि की। तदुपरांत वह तपस्या में लग गया। अंगिरा सहित देवता पुनः उसके पास पहुंचे। वह अंगिरा को देखकर भयभीत हो पुनः समुद्र में छुप गया। अंगिरा ने समुद्र-मंथन करके अग्नि को पुनः प्राप्त कर लिया। तब से अग्नि सदा संपूर्ण प्राणियों का हविष्य वहन करते हैं।

देखिए १. चित्र केतु
२. सुदर्शन (क)

म० भा०, वनपर्व, अध्याय २१७, २१८, २२२, श्लोक १ से २० तक

अंगुलिमाल प्रसेनजित के राज्य में अंगुलिमाल नामक एक डाकू था। वह राहगीरों को मारकर उनकी अंगुलियों की माला बनाकर पहनता था। अतः उसका नाम अंगुलिमाल पड़ा। एक बार भगवान बुद्ध उसी वन की ओर गये। अंगुलिमाल के विषय में बताकर अनेक व्यक्तियों ने उन्हें जाने से रोकना चाहा; किन्तु वे नहीं माने। अंगुलिमाल ने उन्हें जंगल की ओर अकेले आते देखा तो चकित रह गया। उनका उपदेश सुनकर उसने भी प्रव्रज्या ग्रहण की।

बु० च०, ४।७

अंजनपर्वा भीमसेन के पौत्र तथा घटोत्कच के पुत्र का नाम अंजनपर्वा था। महाभारत के युद्ध में उसने भी पांडवों को सहयोग प्रदान किया था। अश्वत्थामा से युद्ध करते हुए वह कभी आकाश से पत्थर, पेड़ों की वर्षा करता, कभी माया का प्रसार करता और कभी आमने-सामने रथ पर चढ़कर युद्ध करता था। अश्वत्थामा ने उस वीर का हनन किया था।

म० भा०, द्रोणपर्व, अध्याय २५६, श्लोक ८१-६१

अंजनासुंदरी राजा महेंद्र की कन्या का नाम अंजनासुंदरी था। राजा ने उसका विवाह प्रह्लाद के पुत्र पवनंजय से किया। विवाह से पूर्व ही पवनंजय ने उसकी सखी को अपनी निंदा करते सुना और अंजना सुंदरी को मौन देखकर उसकी सहमति मान ली। इस कारण से विवाह के उपरांत उसने पत्नी से संपर्क नहीं रखा। कुछ वर्ष उपरांत रावण और वरुण के युद्ध में रावण की सहायता के लिए पवनंजय घर से निकला। वन में उसने एक विरहिणी चकवी का विलाप देखा तो वह उद्वेलित हो उठा और उसी रात दूसरे व्यक्ति को सेनापति नियुक्त करके अंजनासुंदरी के पास गया। रात्रि व्यतीत होने पर

अपने आने के प्रमाणस्वरूप अपनी मुद्रिका देकर वह युद्ध में भाग लेने के लिए चला गया। अंजनासुंदरी को गर्भवती जानकर उसकी सास ने उसको कलंकिनी समझा। मुद्रिका दिखाने पर भी वह विश्वास नहीं दिला पायी तथा उसे राज्य से निकाल दिया गया। पिता ने भी उसके साथ वैसा ही व्यवहार किया। वह अपनी सखी के साथ वन में रहने लगी। कालांतर में उसने पुत्र को जन्म दिया। संयोगवश उसका मामा प्रतिसूर्य उधर से जा रहा था। समस्त घटनाओं के विषय में सुनकर वह अजनासुंदरी को अपने साथ विमान में बैठाकर ले चला। बचपन में अंजना का पुत्र फिसलकर पर्वत की शिला पर गिर गया था—जो चूर्ण हो गयी थी। अतः उसका नाम श्रीशैल रखा गया। क्योंकि हनुरुहनगर में उसे विशेष सत्कार मिला था, अतः वह हनुमान कहलाया। वरुण को पराजित करके लौटने पर पवनंजय को अंजनासुंदरी नहीं मिली तो वह महेंद्र के पास गया। अपनी पत्नी को वहां भी न पाकर वह दुखी था कि तभी प्रतिसूर्य से साक्षात्कार हुआ। उसने पवनंजय को समस्त कथा सुनाकर उन दोनों का सम्मिलन करवा दिया।

पउ० च०, १५-१८।-

अंडा जल के भीतर पाताल लोक में चिरकाल से एक अंडा रखा है। वह न हिलता-डुलता है, न फटता है। वह किस जाति से संबद्ध है—कोई नहीं जानता। कहते हैं, प्रलयकाल में इसके अंदर से आग निकलेगी और त्रिलोकी को भस्म कर देगी।

म० भा०, उद्योगपर्व, अध्याय ६६,
श्लोक १७ से २० तक

अंधक दिति ने समस्त दैत्यों के नाश पर कश्यप से प्रार्थना की कि वे ऐसे पुत्र के जन्म का वर दें जो समस्त देवताओं के लिए अवध्य हो। कश्यप ने कहा—"शिव पर मेरा बस नहीं चलता, अन्य कोई देवता उसका हनन नहीं कर पायेगा।" ऐसा कहकर कश्यप ने अपनी अंगुलि से दिति के उदर का स्पर्श किया अतः अंधक का जन्म हुआ। अंधा न होने पर भी वह अंधे की भांति चलता था, अतः अंधक कहलाया। अवध्य होने का वर प्राप्त करने के कारण वह क्रूर कर्मी हुआ। देवताओं ने नारद से ऐसा उपाय जानना चाहा जिससे शिव उसके क्रूर कर्मों का परिचय पाकर उसे नष्ट कर दें। नारद मंदार पुष्प और संतान कुसुमों की माला धारण करके अंधक के पास गये। उनकी दिव्य मालाओं की गंध पर मुग्ध होकर अंधक ने उन पुष्पों को प्राप्त करने का उपाय पूछा। नारद ने बताया—"ये पुष्प शिव के मंदार-वन में उत्पन्न होते हैं—वह स्थान पार्षदों से रक्षित है अतः तुम वहां नहीं जा सकते।" इससे रुष्ट होकर अंधक ने दैत्यों की सेना तैयार की तथा मंदराचल पर चढ़ाई कर दी। नदियों की गति उलट गयी, पृथ्वी कांपने लगी, शिव ने अपने त्रिशूल से अंधकासुर को मार डाला।

हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व, ८६-८७

विष्णु ने नरहरि तथा शूकर के रूप में दैत्यों का संहार किया तो दिति बहुत दुखी हुई। उसने कश्यप को प्रसन्न करके वरदानस्वरूप वीर पुत्र मांगा कि जिसे कोई देवता न मार सके। कश्यप ने दस हजार सिर, दो हजार आंखों, हाथों और पैरों वाला पुत्र प्रदान किया। वह अंधों के समान झूमता हुआ चलता था; अतः अंधक कहलाया। कश्यप ने दिति से कहा कि अंधक को शिक्षा दे कि वह शिव को अप्रसन्न न करे। अंधक से देवता, इंद्र आदि अत्यंत त्रस्त हो गये। शिव को तपस्या से प्रसन्न करके अंधक ने वर प्राप्त किया कि शिवेतर सबके लिए वह अवध्य रहेगा किंतु शर्त यह थी कि न वह अनीति करेगा और न ब्राह्मणों से शत्रुता रखेगा। तदुपरांत एक दिन वह इंद्र की सभा में पहुंच गया। उसने ऐरावत, उर्वशी, उच्चैःश्रवा इत्यादि को देखा। वह अप्सराओं आदि को हस्तगत करना चाहता था। इसी संदर्भ में युद्ध करके उसने देवताओं को भगा दिया तथा मां (दिति) को वहीं बुला लिया। विष्णु की माया से दैत्यों में अनाचार का प्रसार हुआ। उन्होंने देवताओं के यज्ञों में विघ्न डालना प्रारंभ किया। एक दिन नारद मंदार के पुष्पों की माला पहनकर अंधक के पास गये। अंधक ने पुष्पों का मूल स्रोत पूछा तो नारद ने मंदराचल का नाम लिया। अंधक वहां गया। वहां वह शिव के गणों से उलझ पड़ा फिर मंदराचल से रुष्ट होकर उसे भस्म करने का प्रयास करने लगा। वह (पर्वत) टूटता-फूटता शिव के पास पहुंचा। शिव ने क्रुद्ध होकर गणों को आज्ञा दी कि वे दैत्यों को मार डालें। शिव ने स्वयं त्रिशूल से अंधक को विदीर्ण कर डाला। उसके अस्थि और चर्म त्रिशूल पर रह गये। समस्त रक्त निकल गया। उसकी सद्बुद्धि जागृत हुई तथा उसने सारूप्य मुक्ति की कामना की।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध, ५।४०-४८

अंबरीष नाभाग का पुत्र अंबरीष वीर राजा था। उसने अकेले ही दस हजार राजाओं से युद्ध किया था तथा उन्हें परास्त कर दिया था। उसने अनेक अभीष्ट यज्ञों का अनुष्ठान किया तथा धन-वैभव संपन्न अनेक राजाओं को ब्राह्मणों के प्रति दान किया था।

दुर्लभ स्वर्गलोक में पहुंचकर अंबरीष ने देखा कि उसका भूतपूर्व सेनापति 'सुदेव' दिव्य विमान पर बैठकर उससे ऊपर ही ऊपर चलता चला जा रहा है। अंबरीष ने इंद्र से इसका कारण पूछा। अंबरीष की दृष्टि में वह एक अत्यंत तुच्छ व्यक्ति था और राजा स्वयं ब्रह्मचर्य का पालन करने वाला धर्मात्मा माना जाता था। इंद्र ने बताया—"तुम्हारे तीन शत्रु थे : संयम, वियम, सुयम। तीनों ही 'शतशृंग' नामक राक्षस के पुत्र थे। एक युद्ध में उन्होंने तुम्हारी सेना को परास्त कर दिया तो भंगियों के बहकाने से तुमने सुदेव को सेनापति के अधिकार से मुक्त कर दिया। कालांतर में मंत्रियों की कपटपूर्ण नीति का परिचय पाकर तुमने पुनः सुदेव को उन राक्षसों से युद्ध करने के लिए भेजा तथा कहा कि वह अपने कैदियों को मुक्त करवाकर तथा उन्हें पराजित करके लौटे। राक्षसों की सेना को देखकर सुदेव ने जान लिया कि उन्हें सहज पराजित नहीं किया जा सकता। अतः अपनी सेना को वापस करके वह शिव की तपस्या में लग गया। वह अपना मस्तक काटकर शिव को अर्पित करना चाहता था। तभी महादेव ने उसका हाथ पकड़ लिया तथा उससे घोर तपस्या का कारण जानकर उसे सशरीर धनुर्वेद, पिनाक, दिव्य सेना इत्यादि प्रदान की, साथ ही एक दिव्य रथ देकर कहा कि मोहवश यदि वह रथ से धरती पर पांव नहीं रखेगा तो अंबरीश की इच्छा अवश्य पूर्ण कर पायेगा। तदनंतर सुदेव का युद्ध इन तीनों राक्षसों से हुआ। उसने अपने सैनिकों को कैद से छुड़वा लिया तथा वियम का वध करते हुए स्वयं मारा गया। अपरिमित वीरत्व के कारण ही उसे ऊर्ध्वगति की प्राप्ति हुई है।"

म० भा०, द्रोणपर्व, अध्याय ६४, शांतिपर्व, अध्याय ९८

अंबरीष विष्णु का अनन्य भक्त था। विष्णु ने उसकी रक्षा के लिए चक्र को नियुक्त कर रखा था। एक बार दुर्वासा उसके आवास पर पहुंचे। राजा अंबरीष ने एकादशी का व्रत रखा हुआ था। दुर्वासा नित्य कर्मों से निवृत्त होने के लिए पास ही नदी पर गये। उनके आने में इतनी देर हो गयी कि पारण का समय व्यतीत होने लगा। ब्राह्मणों ने राजा से कहा कि आतिथ्य की दुश्चिंता में व्रत का पारण करने के लिए भोजन नहीं कर सकते, अतः जल ही ग्रहण करें। राजा ने वैसा ही किया। स्नान-ध्यान से निवृत्त होकर जब दुर्वासा पहुंचे तो उन्होंने अनुमान से ही यह जाना कि राजा ने पारण कर लिया है। इसे आतिथ्य में व्याघात मानकर मुनि ने राजा को मार डालने के लिए अपने बालों की एक लट तोड़कर एक कृत्या उत्पन्न की। वह तलवार लेकर राजा को मारना ही चाहती थी कि सुदर्शन चक्र ने उसे नष्ट कर दिया तथा मुनि के पीछे लग गया। मुनि भयभीत होकर ब्रह्मा, महेश आदि देवताओं की शरण में गये। महेश ने उन्हें विष्णु की शरण ग्रहण करने को कहा। विष्णु ने कहा कि वे जिस भक्त का अनिष्ट करने वाले थे, उसी की शरण में जायें। अंत में दुर्वासा राजा अंबरीष की शरण में गये। अंबरीष ने सुदर्शन चक्र की स्तुति कर उसे शांत किया।

श्रीमद् भा०, नवम स्कंध, अध्याय ४.५,

राजा अंबरीष विष्णु का परम भक्त था तथा सदैव एकादशी का व्रत रखकर द्वादशी में पारण करता था। एक बार दुर्वासा उसकी परीक्षा लेने पहुंचे। वे अपने शिष्य सहित इतनी देर तक नहाते रहे कि द्वादशी समाप्त होने लगी। वेदज्ञ ब्राह्मणों की आज्ञा से राजा ने पारण कर लिया। दुर्वासा बहुत क्रुद्ध हुए। उनका क्रोध जानकर विष्णु का चक्र उनके पीछे पड़ गया। एक वर्ष तक दुर्वासा उस चक्र से बचने के लिए इधर-उधर भागते रहे। अंत में राजा की शरण में पहुंचे। उन्हीं की कृपा से वे चक्र के प्रकोप से मुक्त हुए।

दे० शुनःशेप
शि० पु०, ७।२१

अंबिकादेवी एक बार सौ वर्षों तक देवासुर संग्राम हुआ। महिषासुर के नेतृत्व में असुर विजयी हो गये। उन्होंने देवताओं को स्वर्ग से निकाल दिया। वे पृथ्वी पर विचरने लगे। परास्त देवता, 'ब्रह्मा, विष्णु, महेश' की शरण में गये। उनकी पराजय के विषय में जानकर विष्णु और महेश कुपित हो उठे। विष्णु के मुख से एक महान तेज प्रकट हुआ। इसी प्रकार ब्रह्मा, शंकर, इंद्र इत्यादि समस्त देवताओं से निकला तेज पुंजीभूत होकर नारी के रूप में प्रकट हुआ। शंकर से उद्भूत तेज से नारी का मुंह, यम के तेज से बाल, विष्णु के तेज से भुजाएं, इसी प्रकार समस्त देवताओं के तेज से विभिन्न देहयष्टियों का निर्माण

हुआ । वह तेजस्विनी नारी थीं जिन्हें अंबा आदि विभिन्न नामों से पुकारा गया। दोनों संध्याओं के तेज से भृकुटि, ब्रह्मा के तेज से चरण, प्रजापति के तेज से दांत प्रकट हुए। तदनंतर समस्त देवताओं तथा उनके मित्रों ने उन्हें विभिन्न वस्तुएं भेंटस्वरूप दी। शंकर ने अपने शूल से एक शूल उत्पन्न किया, इसी प्रकार विष्णु ने चक्र, वरुण ने शंख, अग्नि ने शक्ति, इंद्र ने वज्र, तथा ऐरावत ने घंटा, हिमालय ने सिंह, कुबेर ने मधुपात्र, आदि। उन सब भेंटों को साथ ले दुर्गा ने महिषासुर के नेतृत्व में आयी सेना से युद्ध किया। वह हाथी, घोड़े आदि विभिन्न रूप बदलता रहा किंतु देवी ने पाशबद्ध करके घसीटा। उसने भैंसे का शरीर धारण कर रखा था। उसके पाद-प्रहार से पृथ्वी फटती जा रही थी तथा उसकी पूंछ की चोट से समुद्र पृथ्वी को डुबोने लगा था। देवी ने उसे अपने पैरों से दबा लिया। महिषासुर दूसरा शरीर धारण कर भैंसे के मुंह से आधा बाहर निकला ही था कि देवी ने तलवार से उसका मस्तक काट दिया। इस युद्ध के संदर्भ में चामर; ताम्र, चिक्षुर, वाष्कल, महाहनु आदि अनेक अन्य असुर भी मारे गये। युद्ध में व्यस्त देवी निरंतर मधुपान करती रहीं। उनकी निःश्वासों से तत्काल सैकड़ों गण उत्पन्न हुए जिन्होंने शत्रुओं से युद्ध किया। महिषासुर के मर्दन के उपरांत सब देवताओं ने अंबिका-देवी का स्तवन किया तथा प्रार्थना की कि वे देवताओं को ऐश्वर्य, धन, संपत्ति, ज्ञान आदि प्रदान करें क्योंकि वह सब कुछ देने में समर्थ हैं। काली 'ऐसा ही होगा' कहकर अंतर्धान हो गयीं।

मा० पु०, ७९-८१

अंबुबीच अंबुबीच नामक राजा श्वास-रोग से पीड़ित था तथा उसकी इंद्रियां तनिक भी कार्य नहीं कर रही थीं। महार्काणि नामक मंत्री उसकी उपभोग्य वस्तुओं का भोग करता था। वह राज्य भी ग्रहण कर लेना चाहता था किंतु भाग्य की प्रबलता के कारण अंबुबीच का राज्य वह न ले सका।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय २०२, श्लोक १७-२४

अकंपन **(क)** खरदूषण के मारे जाने पर अकंपन नाम के एक राक्षस ने लंका में जाकर रावण से कहा कि उसका समस्त अजेय जनस्थान राम ने नष्ट कर दिया है तथा खर और दूषण को भी मार डाला है। अकंपन ने कहा कि राम ने अकेले ही चौदह हजार राक्षसों को मार डाला है। अतः युद्ध में उसे परास्त करना संभव नहीं है इसलिए उसकी पत्नी सीता का हरण कर लेना चाहिए जिसके विरह में राम प्राण त्याग देगा। रावण को यह सुझाव प्रिय लगा। उसने सीता-हरण के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में वह ताड़का के पुत्र मारीच के पास पहुंचा। मारीच ने रावण को इस कार्य के लिए निरुत्साहित किया तथा वह वापस लंका चला गया।

बा० रा०, सर्ग ३१ (संपूर्ण),

कुछ समय बाद शूर्पणखा ने लंका में जाकर रावण के सामने सीता के रूप की प्रशंसा करते हुए कहा---"मैं उसे तुम्हारी भार्या बनाने के निमित्त साथ लिवा लाने के लिए गयी थी किंतु लक्ष्मण ने मेरी नाक और कान काट डाले।" इस प्रकार शूर्पणखा ने एक बार लौट आये रावण को पुनः सीता-हरण के लिए उद्यत किया।

बा० रा०, अरण्य कांड, सर्ग ३३ (संपूर्ण)

राम-रावण युद्ध में राक्षस अंकपन का निधन हनुमान के हाथों हुआ था।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ५७, श्लोक २७-३९

(ख) सतयुग में अकंपन नामक राजा विशेष प्रसिद्ध था। उसका अपरिमित तेजस्वी, बलसंपन्न एक पुत्र था जिसका नाम हरि था। एक बार शत्रुसेना से युद्ध करता हुआ वह मारा गया। उसकी मृत्यु के शोक से आक्रांत राजा अकंपन को संसार से वितृष्णा होने लगी। नारद को ज्ञात हुआ तो वे अकंपन के पास पहुंचे और मृत्यु के विषय में विस्तृत आख्यान सुनाकर उसकी मानसिक विषमता का समाधान किया। नारद ने बताया कि मृत्यु की रचना ब्रह्मा ने की है। आयु समाप्त होने पर सब प्राणी देव-लोक में जाते हैं। वहां के भोग पूरे होने पर वे पुनः इस लोक में लौट आते हैं।

म० भा०, द्रोणपर्व, अध्याय ५२।२६-३९,
४५।५४, शांति पर्व, अ० २५६

अक्रूर कृष्ण ने कंस के अनेक अनुचर दैत्यों को मार डाला तो नारद ने जाकर कंस से कहा कि कृष्ण देवकी का पुत्र है तथा बलराम रोहिणी का। इस प्रकार दोनों ही वसुदेव के पुत्र हैं। कंस ने केशी नामक राक्षस को उसे मार डालने के लिए भेजा। कंस ने मुष्टिक, चाणूर, शल, तोशल आदि मल्लों को बुलाकर कहा ---"ब्रजनिवासी राम और श्याम नाम के दो बालकों में से किसी के हाथों मेरी मृत्यु लिखी है। अतः तुम लोग दंगल में घेरे के फाटक पर

ही कुवलयापीड हाथी को रखना। उसी के द्वारा उन्हें मरवा देना।" तदनंतर अक्रूर को बुलाकर उसने कहा—"आप वसुदेव के दोनों बेटों बलराम तथा कृष्ण को घुमाने के बहाने से यहां लिवा लाइए। मेरी मृत्यु उन्हीं के हाथों लिखी है। उन्हें आप जैसे भी हो, यहां ले आइएगा। उन लोगों को मेरी ओर से धनुष-यज्ञ उत्सव के लिए आमंत्रित कीजिएगा।" अक्रूर ने ब्रज में जाकर कंस का संदेश दिया। साथ ही बलराम तथा कृष्ण के सम्मुख कंस का उद्देश्य भी स्पष्ट कर दिया। उन दोनों ने हंसकर वहां सबसे आज्ञा ली और अक्रूर के साथ मथुरा के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में दोनों भाइयों ने अक्रूर को अपने विराट् रूप के दर्शन करवाये। अक्रूर कृतकृत्य हो गये। मथुरा पहुंचकर श्रीकृष्ण ने सबके देखते-देखते धनुष तोड़ डाला, कंस की सेना को मार डाला और अपने डेरे पर लौट गये। तदनंतर श्रीकृष्ण ने अक्रूर को हस्तिनापुर भेजा। अक्रूर ने लौटकर कृष्ण को बताया कि धृतराष्ट्र पांडवों के प्रति अन्याय करते हुए बेटों को रोकने में असमर्थ थे। धृतराष्ट्र को समझाना भी असंभव था। कुंती अपने भाई-बंधुओं में सबसे अधिक कृष्ण को याद करती थी। उसने अपनी परवशता की कथा अक्रूर को सुनायी थी।

श्रीमद् भा०, १०।३६, ४२, ४६।-
ब्र० पु०, १६१-१६२।-

(अधोलिखित अंश से इतर श्रीमद् भा० जैसा ही है।) वृंदावन जाते हुए अक्रूर ने मार्ग में यमुना में कृष्ण तथा बलराम के दिव्य रूप के दर्शन किये अर्थात् भगवान अनंत की गोद में कृष्ण को देखा।

हरि० व० पु०, विष्णु पर्व, २५ २६।-

अक्षकुमार (वंश-परंपरा : विष्णु, ब्रह्मा, पुलस्त्य, विश्रवस, रावण, अक्षकुमार) अक्षकुमार रावण का पुत्र था। उत्पाती हनुमान को मारने में जब रावण के किंकर और सेनापति असफल रह गये तब रावण ने अक्षकुमार को भेजा। वह अत्यंत वीरता से लड़ता हुआ वीर-गति को प्राप्त हुआ।

बा० रा०, सुंदर कांड, सर्ग ४७

अक्षय पात्र वन में विचरते हुए पांडवों तथा द्रौपदी के सम्मुख ब्राह्मणों को अन्न-दान करने की समस्या विकराल हो उठी। श्री धौम्य के आदेशानुसार युधिष्ठिर ने सूर्य देवता का स्तवन किया। सूर्य ने प्रसन्न होकर एक तांबे की बटलोई दी और कहा कि रसोई में तैयार की हुई थोड़ी-सी भी चीज इस पात्र के प्रभाव से बढ़ जायेगी और वह तब तक समाप्त नहीं होगी जब तक स्वयं द्रौपदी भोजन नहीं कर लेगी।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय ३

अगस्त्य एक यज्ञ-सत्र में उर्वशी भी सम्मिलित हुई। मित्र वरुण ने उसकी ओर देखा तो इतने आसक्त हुए कि अपने वीर्य को रोक नहीं पाये। उन्होंने समीपस्थ एक कुंभ में वीर्य का स्खलन कर दिया। उर्वशी ने उपहासात्मक मुस्कराहट बिखेर दी। मित्र वरुण बहुत लज्जित हुए। कुंभ का स्थान, जल तथा कुंभ —सब ही अत्यन्त पवित्र थे। यज्ञ के अंतराल में ही कुंभ में स्खलित वीर्य के कारण कुंभ से अगस्त्य, स्थल से वसिष्ठ तथा जल से मत्स्य का जन्म हुआ। उर्वशी इन तीनों की मानस जननी मानी गयीं।

ऋ०७।३३

लोपामुद्रा से विवाह, दे० इल्वल
विंध्याचल नमन, दे० विंध्याचल
समुद्रपान, दे० वृत्रासुर
अगस्त्य और नहुष, दे० नहुष
अगस्त्य और कुबेर, दे० मणिमान्
अगस्त्य और मारीच, दे० ताटका
अगस्त्य और इंद्रद्युम्न, दे० गज-ग्राह

अग्नि (वंश-परंपरा : विष्णु, ब्रह्मा, अंगिरस, बृहस्पति, अग्नि) अग्निदेव अपने यजमान पर वैसे ही कृपा करते हैं, जैसे राजा सर्वगुणसंपन्न वीर पुरुष का सम्मान करता है। एक बार अग्नि अपने हाथों में अन्न धारण करके गुफा में बैठ गये। अतः सब देवता बहुत भयभीत हुए, (ऋ० १।६७।५-११) अमर देवताओं ने अग्नि का महत्त्व ठीक से नहीं पहचाना था। वे थके पैरों से चलते हुए ध्यान में लगे हुए अग्नि के पास पहुंचे। मरुतों ने तीन वर्ष तक अग्नि की स्तुति की। अंगिरा ने मंत्रों द्वारा अग्नि की स्तुति की तथा पणि नामक असुर को नाद से ही नष्ट कर डाला। देवताओं ने जांघ के बल पर बैठ कर अग्निदेव की पूजा की, अंगिरा ने यज्ञाग्नि धारण करके अग्नि को ही साधना का लक्ष्य बनाया। तदनंतर आकाश में ज्योतिस्वरूप सूर्य और ध्वजस्वरूप किरणों की प्राप्ति हुई। देवताओं ने अग्नि में अवस्थित इक्कीस गूढ़ पद प्राप्त कर अपनी रक्षा की (ऋ० १।६८-७३)। अग्नि और सोम ने युद्ध में बृसय की संतान नष्ट कर डाली तथा पणि की गौएं हर लीं (ऋ० १।९३।४)। अग्नि

के अश्वों का नाम रोहित तथा रथ का नाम धूमकेतु है (ऋ० १।९४।१०)।

पणि (व्यावहारिक लोग अथवा अवसरवादी) गौ को (ज्ञान अथवा सिद्धांत को) गुहा में डाल देते हैं। उनकी कोई परवाह नहीं करते। उसे तो सूर्य के समान तेजस्वी देवगुरु (बृहस्पति) ही पुनः खोजकर लाने में समर्थ हैं। सरमा—देवताओं की कुतिया (निरंतर गतिमय रहने वाली विचारधारा) ही धीरे-धीरे ज्ञान की खोज करने में समर्थ है।

वेद रहस्य—श्री अरविंद

देवताओं को जब पार्वती से शाप मिला था कि वे सब संतानहीन रहेंगे (दे० कार्तिकेय) तब अग्निदेव वहां नहीं थे। कालांतर में देवद्रोहियों को मारने के लिए किसी देवपुत्र की आवश्यकता अनुभव हुई। अतः देवताओं ने अग्निदेव की खोज आरंभ की। अग्निदेव जल में छिपे हुए थे। मेढक ने उनका निवासस्थान देवताओं को बताया। अतः अग्निदेव ने रुष्ट होकर उसे जिह्वा न होने का शाप दे दिया। देवताओं ने कहा कि वह फिर भी बोल पायेगा। अग्निदेव किसी दूसरी जगह जाकर छुप गये। हाथी ने देवताओं से कहा—अश्वत्थ (सूर्य का एक नाम) अग्निरूप है। अग्नि ने उसे भी उलटी जिह्वा वाला कर दिया। इसी प्रकार तोते ने शमी में छिपे अग्नि का पता बताया तो वह भी शापवश उलटी जिह्वा वाला हो गया। शमी में देवताओं ने अग्नि के दर्शन करके तारकासुर के वध के निमित्त पुत्र उत्पन्न करने को कहा। अग्नि-देव शिव के वीर्य का गंगा में आधान करके कार्तिकेय के जन्म के निमित्त बने।

म० भा०, दानधर्मपर्व, अध्याय ८५-८६

असुरों के द्वारा देवताओं की पराजय को देखकर अग्नि ने असुरों को मार डालने का निश्चय किया। वे स्वर्गलोक तक फैली हुई ज्वाला से दानवों को दग्ध करने लगे। मय तथा शंबरासुर ने माया द्वारा वर्षा करके अग्नि को मंद करने का प्रयास किया किंतु बृहस्पति ने उनकी आराधना करके उन्हें तेजस्वी रहने की प्रेरणा दी। फलतः असुरों की माया नष्ट हो गयी।

हरि० वं० पु०, भविष्यपर्व ६२-६३

जातवेदस् नामक अग्नि का एक भाई था। वह हव्यवाहक (यज्ञ-सामग्री लानेवाला) था। दिति-पुत्र (मधु) ने देवताओं के देखते-देखते ही उसे मार डाला। अग्नि गंगाजल में जा छिपा। देवता जड़वत् हो गये। अग्नि के बिना जीना कठिन लगा तो वे सब उसे खोजते हुए गंगाजल में पहुंचे। अग्नि ने कहा—"भाई की रक्षा नहीं हुई; मेरी होगी, यह कैसे संभव है?" देवताओं ने उसे यज्ञ में भाग देना आरंभ किया। अग्नि ने पूर्ववत् स्वर्गलोक तथा भूलोक में निवास आरंभ कर दिया। देवताओं ने जहां अग्निप्रतिष्ठा की, वह स्थान अग्नितीर्थ कहलाया।

ब्र० पु०, ९८-

दक्ष की कन्या (स्वाहा) का विवाह अग्नि (हव्यवाहक) से हुआ। बहुत समय तक वह निःसंतान रही। उन्हीं दिनों तारक से त्रस्त देवताओं ने अग्नि को संदेशवाहक बनाकर शिव के पास भेजा। शिव से देवता ऐसा वीर पुत्र चाहते थे जो तारक का वध कर पाये। पत्नी के पास जाने में संकोच करने वाले अग्नि ने तोते का रूप धारण किया और एकांतविलासी, शिव-पार्वती की खिड़की पर जा बैठा। शिव ने उसे देखते ही पहचान लिया तथा उसके बिना बताये ही देवताओं की इच्छा जानकर शिव ने उसके मुंह में सारा वीर्य उंडेल दिया। शुक (अग्नि) इतने वीर्य को संभाल नहीं पाया। उसने वह गंगा के किनारे कृत्तिकाओं में डाल दिया जिनसे कार्तिकेय का जन्म हुआ। थोड़ा-सा बचा हुआ वीर्य वह पत्नी के पास ले गया। उसे दो भागों में बांटकर स्वाहा को प्रदान किया, अतः उसने (स्वाहा ने) दो शिशुओं को जन्म दिया। पुत्र का नाम सुवर्ण तथा कन्या का नाम सुवर्णा रखा गया। मिश्र वीर्य संतान होने के कारण वे दोनों व्यभिचार-दोष से दूषित हो गये। सुवर्णा असुरों की प्रियाओं का रूप बनाकर असुरों के साथ घूमती थी तथा सुवर्ण देवताओं के रूप धारण करके उनकी पत्नियों को ठगता था। सुर तथा असुरों को ज्ञात हुआ तो उन्होंने दोनों को सर्वगामी होने का शाप दिया। ब्रह्मा के आदेश पर अग्नि ने गोमती के तट पर, शिवाराधना से शिव को प्रसन्न कर दोनों को शाप-मुक्त करवाया। वह स्थान तपोवन कहलाया।

अग्नि ने राम को प्रकृत सीता समर्पित की, दे० त्रिहारिणी
अग्नि की अपच, दे० खांडववन-दाह
अग्नि और सुदर्शना, दे० नीलराज
अग्नि (बाज), दे० उशीनर, शिवि
दे० कार्तिकेय (क) पांचजन्य

अंगिरा, नलदमयंती, रंभा,
नहुष, सृष्टि का उद्भव
ब्र० पु०, १२८

अग्नितीर्थ महर्षि भृगु के शाप के भय से अग्निदेव शमी के भीतर जाकर अदृश्य हो गये। देवतागण भयभीत हो उठे कि अग्नि के अभाव में सब भूतों का विनाश अवश्यंभावी है। उन्होंने ब्रह्मा से जाकर यह सब कहा और प्रार्थना की कि वे अग्निदेव को प्रकट करें। तदनंतर बृहस्पति को आगे करके वे सब लोग अग्नि-तीर्थ पहुंचे जहां शमी के गर्भ में अग्नि के दर्शन कर उन्हें परम संतोष हुआ। भृगु के शाप से अग्नि सर्वभक्षी हो गये।

म० भा०, शल्यपर्व, अध्याय ४७, श्लोक १४-२२

अघासुर अघासुर पूतना तथा बकासुर का छोटा भाई था। उसे कंस ने कृष्ण का वध करने भेजा था। वह अजगर का रूप धारण कर, एक योजन पर्वत-सा विशाल होकर तथा गुफा के समान मुंह फाड़कर लेट गया। उसके दांत पर्वत शिखर तथा जीभ सड़क-सी जान पड़ रही थी। वह व्रजबालकों को निगल जाना चाहता था। उस समय कृष्ण पांच वर्ष के थे। ग्वाल-बाल बछड़ों सहित उस मायावी के मुंह में घुस गये। यह देखकर कृष्ण भी उसके गले तक गये तथा उन्होंने अपने शरीर को इतना बड़ा कर लिया कि अजगर का दम घुट गया। समस्त बाल-मंडली मुंह से बाहर निकल आयी। कृष्ण ने अमृतमयी दृष्टि से सब मित्रों को पुनर्जीवन प्रदान किया। अजगर के मुंह से निकलकर एक दिव्य ज्योति भी आकाश में स्थिर हो गयी। कृष्ण जब मुंह से निकल आये तब वह ज्योति भी उन्हीं में समा गयी। तत्पश्चात् अजगर का मृत शरीर बालकों के लिए गुफा का सा रूप लिए क्रीड़ास्थल बना रहा।

श्रीमद् भा०, १०।१२

अचल गांधारी के भाई अचल तथा वृषक बहुत अच्छे योद्धा थे। वे दोनों ही अर्जुन के सामने टिक नहीं पाये। दोनों को अर्जुन ने एक ही बाण से बींध डाला था, क्योंकि रथ का घोड़ा मारा जाने के कारण वृषक अचल के रथ पर उससे सटकर खड़ा था। उन दोनों के वध से क्रुद्ध होकर शकुनि ने अनेक प्रकार से माया का प्रयोग किया। अर्जुन के रथ के चारों ओर अंधकार घिर गया। सब ओर से तरह-तरह के अस्त्रों ने अर्जुन को बेधना प्रारंभ कर दिया तथा अनेक प्रकार के पशुओं ने अर्जुन पर चारों ओर से धावा बोल दिया। अर्जुन ने ज्योतिर्मय अस्त्र से अंधकार का नाश कर डाला तथा आदित्यास्त्र से वर्षा का निवारण किया। भयभीत होकर शकुनि युद्ध-क्षेत्र से भाग गया। अर्जुन के बाण रथ, रथी, घोड़ों इत्यादि का नाश कर धरती में समाते गये।

म० भा०, द्रोणपर्व, अध्याय ३०

अजपार्श्व परीक्षित कुमार (जनमेजय) की पत्नी ने दो पुत्रों को जन्म दिया। उनके नाम चंद्रापीड तथा सूर्यापीड थे। चंद्रापीड के सौ पुत्र थे, वे सब जानमेजय नाम से विख्यात हुए। सूर्यापीड मोक्षधर्म के ज्ञाता हुए। जानमेजयों में सबसे बड़े का नाम सत्यकर्ण था। उसके पुत्र श्वेतकर्ण तपोवन चले गये थे। वहां उसकी पत्नी ने एक पुत्र को जन्म दिया। वह पुत्र को वन में ही छोड़कर पति का अनुसरण करती हुई महाप्रस्थान की ओर अग्रसर हुई। जंगल में पड़े राजकुमार के छटपटाने से उसके पार्श्वभाग छिलकर बकरे के पार्श्व की भांति काले और सख्त हो गये। अतः उसका नाम अजपार्श्व पड़ा। उस रोते हुए बालक को अविष्ठा के दोनों पुत्रों, पिप्पलाद और कौशिक, ने उठा लिया तथा लालन-पालन किया।

हरि० वं० पु०, भविष्य पर्व, १

जनमेजयवंशीय राजा श्वेतकर्ण (सत्यकर्ण के पुत्र) पुत्र की इच्छा से पत्नीसहित तपोवन गये। पत्नी के गर्भवती होने के उपरांत उन्होंने स्वर्ग की यात्रा प्रारंभ की। पत्नी (मालिनी) ने भी उनका अनुसरण किया। मार्ग में जन्मे बालक को, वहीं वन में छोड़, वह पति की अनुगामिनी हुई। बालक के दोनों पार्श्व पर्वत शिला पर घिसकर लहूलुहान हो गये। उधर से जाते हुए (श्रवण के पुत्रों) पिप्पलाद और कौशिक ने बालक को उठा लिया। उसका पार्श्व शरीर बकरे के समान काला पड़ा हुआ था अतः वह अजपार्श्व नाम से विख्यात हुआ। रेमन मुनि के आश्रम में उसका लालन-पालन हुआ। वह रेमनी-पुत्र (रेमन की पत्नी का पुत्र) बन गया। दोनों ब्राह्मण उसके मंत्री बने। वह पौरववंशी था --पांडव आदि का जन्म भी इसी वंश में हुआ।

ब्र० पु०, १३।१२५-१४०।-

अजामिल अजामिल धार्मिक परिवार का सदस्य था। स्वयं भी वह धर्मपरायण था। एक बार वह अपने पिता की आज्ञा से वन में गया। वहां मदिरापान करके अर्द्धनग्न झूमती हुई वेश्या पर वह आसक्त हो गया। अपने माता-पिता तथा पत्नी का परित्याग कर वह उसी के साथ रहने

लगा। समस्त कुकर्मों में लिप्त रहकर उसने दस पुत्र प्राप्त किये। सबसे छोटे पुत्र का नाम नारायण था। एक दिन अचानक यमदूतों के आ उपस्थित होने पर वह दूर खड़े अपने बेटे 'नारायण' को पुकारने लगा। बेटे के निमित्त 'नारायण' का स्मरण करने मात्र से उसके समस्त पाप नष्ट हो गये तथा विष्णु के पार्षदों ने उसे यम से बचा लिया। इस घटना के उपरांत उसे अपने पापयुक्त कर्मों से बहुत विरक्ति हुई। वैराग्यपूर्वक गंगा तट पर रहकर उसने अपना शरीर त्याग दिया। विष्णु के पार्षद विमान में अजामिल को बैकुंठ धाम ले गये।

श्रीमद् भा०, षष्ठ स्कंध, अध्याय १-२

अजितनाथ साकेत के राजकुमार जितशत्रु का विवाह पोतनपुर की राजकुमारी विजय से हुआ था। जितशत्रु के पिता त्रिदशंजय ने कैलाश पर्वत पर सिद्धि प्राप्त की। अत: तीर्थंकर अजितस्वामी का जन्म जितशत्रु के घर में हुआ। बड़े होने पर राजश्री से विरक्त हो उन्होंने प्रव्रज्या का अंगीकरण किया।

पउ० च०, ५।४६-५७

अतिकाय अतिकाय रावण का पुत्र था। वह धान्यमालिनी नाम की स्त्री से उत्पन्न हुआ था। उसने तपस्या द्वारा ब्रह्मा को प्रसन्न किया। उसने दिव्य कवच और सूर्य के समान प्रकाशित रथ प्राप्त किये तथा अनेक देवताओं और दानवों को परास्त किया। इंद्र का वज्र भी एक बार रोक लिया था तथा वरुणपाश को निष्फल कर दिया था। वही अतिकाय वानर सेना से युद्ध करने के लिए रणक्षेत्र में उतरा तो लक्ष्मण ने उसे ब्रह्मास्त्र से मार डाला।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ७१

अतिथिग्व इंद्र ने अतिथिग्व के लिए करंज तथा पर्णय नामक दैत्य मार डाले। अतिथिग्व एक राजा का नाम था। उसका दूसरा नाम दिवोदास था। उसने इंद्र के साथी के रूप में असुरों से अनेक युद्ध किये। एक बार असुरों के भय से वह पानी के नीचे जा छुपा था।

इंद्र (राजा) अतिथिग्व (अतिथियों का सत्कार करने वाले व्यक्ति) की रक्षा और सहायता करता है। वह करंज (धार्मिक लोगों को तंग करने वालों) तथा पर्णय (दूसरों की चीजें हड़पने वालों) को मार डालता है अथवा दंडित करता है।

ऋ० १।५३।८, १।१०।५३, १।१६।११२

अत्रि मन और वाणी में विवाद उत्पन्न हुआ कि कौन श्रेष्ठ है। प्रजापति ने मन को वाणी से श्रेष्ठ बताया। फलत: वाणी का गर्भपात हो गया। देवताओं ने उससे (पतित गर्भ को) चमड़े में ले लिया और कहा—"यह यहां है। (अत्रवत्यादिति)"

इस प्रकार अत्रि का जन्म हुआ।

श० प० ब्रा०, १।४।५।१२-१३

एक बार आदित्य को तम ने घेर लिया। अत्रि ने तम का निवारण किया। आदित्य ने प्रसन्न होकर वर दिया कि अत्रि प्रजा को सदा दक्षिणा मिलती रहे। इसी से अत्रि ब्राह्मणों को यज्ञ में सर्वप्रथम दक्षिणा दी जाती है।

गो० ब्रा०, १।२।१७, २।३।१६

अत्रि ने स्वकुल में अनेक ऋषियों की कामना से स्तुति की। अत: अत्रि कुल में जन्मी कन्या के विवाह करने पर प्रसिद्धि प्राप्त होती है तथा उसे मारने पर निंदा।

जै० ब्रा०, २।२१

अत्रिमुनि एक बार अत्रिमुनि ने वन जाने का निश्चय किया तो उनकी पत्नी ने सुझाव दिया कि वे राजा पृथु से धन की याचना करें। उसे प्राप्त कर दोनों बेटों में बांटकर दोनों पति-पत्नी वन चले जायें। वेन के पुत्र राजा पृथु उन दिनों महायज्ञ में लगे हुए थे। पृथु के यज्ञ में पहुंचकर अत्रि ने राजा की स्तुति की तथा उसे प्रजापति कहकर पुकारा। वहां महर्षि गौतम भी थे। गौतम से अनायास विवाद छिड़ गया क्योंकि गौतम के अनुसार इंद्र की उपस्थिति में अन्य किसी को प्रजापति नहीं कहा जा सकता। विवाद की समाप्ति सनत्कुमारों ने की। उन्होंने व्यवस्था दी कि यदि ब्राह्मण क्षत्रिय से अथवा क्षत्रिय ब्राह्मण से संयुक्त हो तो दोनों इतने शक्तिशाली हो जाते हैं जितना अग्नि तथा वायु का संयोग। राजा पृथु क्षत्रिय होते हुए भी धर्मपरायण हैं, अत: वे प्रजापति कहला सकते हैं। यह सुनकर राजा ने धर्मज्ञाता अत्रि को अपूर्व धनधान्य प्रदान किया। अत्रि धन का वितरण अपने पुत्रों में कर स्वयं पत्नीसहित वन की ओर चले गये।

एक बार देवता और दानवों में संग्राम छिड़ गया। राहू ने चंद्रमा तथा सूर्य पर प्रहार कर उन्हें घायल कर दिया। संसार में सर्वत्र अंधकार फैल गया। देवताओं ने अत्रि ऋषि की शरण ग्रहण की। अत्रि ने साक्षात् चंद्रमा का रूप धारण कर सब ओर प्रकाश फैला दिया तथा सूर्य

को पुष्टि प्रदान की। फलतः प्रकाशमय वातावरण में देवतागण विजयी हुए।

म० भा०, वनपर्व १८५, दानधर्म पर्व १५६, श्लोक १-१४

ब्रह्मा ने अत्रि को सृष्टि रचने की आज्ञा दी तो उन्होंने ऋक्ष नामक कुलपर्वत पर तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा विष्णु महेश तीनों ही प्रकट हुए। अत्रिदेवता की पत्नी अनुसूया के तीन पुत्र हुए: विष्णु के अंश से दत्तात्रेय, महादेव के अंश से दुर्वासा तथा ब्रह्मा के अंश से चंद्रमा।

अत्रि तथा राजा वृशदर्भी, दे० शुनःसख
अत्रि तथा गंगा, दे० अनसूया
दे० कल्माशपाद, पराशर

श्रीमद् भा०, चतुर्थ स्कंध, अध्याय, १, श्लोक ९-३३

अनंगलवण सीता के जुड़वां बेटों के नाम अनंगलवण तथा मदनांकुश थे। सीता के ये दोनों पुत्र विवाह योग्य हुए तो अनंगलवण का विवाह शशिचूला से कर दिया गया। राजा ब्रजजंघ ने मदनांकुश के लिए राजा पृथु से उसकी कन्या की याचना की। पृथु ने कहा—"जिसका कुलवंश ज्ञात नहीं है, उसे मैं कन्या नहीं दूंगा।" यह सुनकर राजा क्रुद्ध हो गया। दोनों के परस्पर संघर्ष में पृथु पराजित हुआ तथा उसने क्षमा-याचना के साथ अपनी कन्या मदनांकुश को प्रदान की। इसी अवसर पर नारद मुनि से वार्तालाप होने पर दोनों भाइयो को राम ने सीता के प्रति जो अन्याय किया था, उसका पता चला। उन्होंने राम-लक्ष्मण पर आक्रमण कर दिया। राम (बलराम) का हल और मूसल तथा लक्ष्मण (नारायण) का चक्र आदि शिथिल पड़ गये। उसी समय नारद ने प्रकट होकर उनका परस्पर परिचय करवाया। वे प्रेमपूर्वक आलिंगनबद्ध हो गये। लक्ष्मण की मृत्यु के विषय में जानकर उन दोनों ने वैराग्यवश प्रव्रज्या ग्रहण की।

पउ० च०, ९७-१००।-११०।-

अनरण्य एक बार रावण ने अयोध्या के इक्ष्वाकुवंशी राजा अनरण्य को युद्ध के लिए ललकारा। वह तेजस्वी राजा रावण से हार गया। युद्ध में मारा जाने पर वह स्वर्ग जा रहा था तब उसने रावण को शाप दिया कि इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न होकर दशरथ के पुत्र रामचंद्र रावण को मारेंगे।

बा० रा०, उत्तरकांड, सर्ग १९

अनसूया अनसूया ऋषि अत्रि की पत्नी थीं। एक बार अत्रि के आश्रमस्थल में दस वर्ष तक जल नहीं बरसा। सारा प्रदेश सूखे के कारण जलने लगा। तब अनसूया ने अपने तपोबल से ऋषियों के लिए खाद्य मूल फल उत्पन्न किये और मंदाकिनी (गंगा) बहा दी। एक बार देवकार्य सिद्ध करने के लिए दस रातों की एक रात कर दी।

बा० रा०, अयोध्या कांड, सर्ग ११७, श्लोक ९-१२

अनसूया को वर प्राप्त था कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश उसकी कोख से जन्म लेंगे। उसके गर्भ से ब्रह्मा ने चंद्रमा के रूप में तथा विष्णु ने दत्तात्रेय के रूप में जन्म लिया। एक बार कृतवीर्य हैहयराज ने ऋषि अत्रि का अपमान कर दिया। यह देखकर अत्रि के तृतीय पुत्र दुर्वासा (जो सात ही दिन से माता के गर्भ में थे) क्रोध में भरकर माता के उदर से बाहर निकल आये। वे शिव के रूप थे।

मा० पु०, १६।९२-१००

एक बार अत्रि तपस्या में लीन थे और देश में सूखा पड़ गया। पत्नी अनसूया के बार-बार कहने पर भी उनका ध्यान नहीं टूटा। अनसूया ने स्वयं पार्थिव पूजा प्रारंभ की। शिव तथा गंगा वहां प्रकट हुए। चौवन वर्ष की तपस्या के उपरांत अत्रि ने अनसूया से पानी मांगा। वह कमंडलु लेकर चली तो गंगा ने उसे पानी दिया। अनसूया और अत्रि ने गंगा से वहीं रहने का अनुरोध किया। अनसूया ने उसके किनारे पर शिवलिंग की स्थापना की जो अत्रीश्वर के नाम से विख्यात हुआ।

शि० पु०, ८।३

अनाथपिंडक अनाथपिंडक राजगृहक-श्रेष्ठी का बहनोई था। उसने प्रव्रज्या ग्रहण की।

बु० च०, १।१४

अनिरुद्ध रुक्मी का कृष्ण और बलराम से वैरभाव था तथापि उसने अपनी पौत्री रोचना का विवाह रुक्मिणी के पौत्र अनिरुद्ध से कर दिया—क्योंकि दोनों में प्रेम संबंध स्थापित हो चुका था। उन दोनों के विवाह में आये बलराम को उसने (कलिंगनरेश की प्रेरणा से) चौसर खेलने के लिये आमंत्रित किया। बलराम इस विद्या में निपुण नहीं थे। वे पहले हारते रहे, फिर देवयोग से बहुत जीत गये तो भी रुक्मी उनकी विजय को स्वीकार न करके उन्हें पर्यटनशील ग्वाले के रूप में अनिपुण खिलाड़ी की उपाधि देता रहा। तभी आकाशवाणी हुई कि बलराम ही

विजयी है, किंतु कलिंगनरेश तथा रुक्मी परिहास करते रहे और अपने को ही विजयी बताते रहे। रुष्ट होकर बलराम ने उन दोनों को मार डाला तथा रोचना को लेकर द्वारका चले गये।

उन्हीं दिनों की बात है—बलिपुत्र, बाणासुर नाम का एक दैत्य था, जिसे शिव की कृपा से एक सहस्र भुजाएं प्राप्त थीं। उसने शिव की आराधना करके कहा कि उसे ऐसा अवसर प्रदान करें कि शिव के समान वीर व्यक्ति से युद्ध करने का अवसर मिले। शिव ने उसे वैसा ही अवसर मिलने का वर दिया। उसकी कन्या का नाम उषा था। वह स्वप्नदर्शन से ही अनिरुद्ध पर आसक्त हो गयी। उसकी सखी चित्रलेखा योगिनी थी। उसने अनेक चित्र बनाकर उससे पूछा कि उसने किसको स्वप्न में देखा था। उषा ने अनिरुद्ध के चित्र की ओर संकेत किया, अत: चित्र-लेखा आकाश-मार्ग से अनिरुद्ध के पास पहुंची। वह सो रहा था। योग-बल से वह उसे उठाकर उषा के महल में ले गयी। वहां चिरकाल तक उषा-अनिरुद्ध केलिक्रीड़ा में लगे रहे। वह महल अत्यन्त सुरक्षित था। पहरेदारों ने उषा के केलिचिह्नित रूप को देखकर उसके चरित्रपतन का अनुमान लगाया तथा बाणासुर से इस विषय में कहा। बाणासुर ने अचानक ही उसके महल में प्रवेश कर अनिरुद्ध को देख लिया। अनिरुद्ध का उसके सैनिकों से युद्ध हुआ। अंत में बाणासुर ने उसे नागपाश से आबद्ध कर लिया। उधर द्वारका में बरसात भर अनिरुद्ध दिखाई नहीं दिया तो सभी चिंतित हो गये। एक दिन नारद ने प्रकट होकर अनिरुद्ध के शोणितपुर जाने तथा नागपाश में आबद्ध होने आदि के विषय में कृष्ण इत्यादि को सूचित किया। कृष्ण और बलराम ने सेना लेकर बाणासुर पर चढ़ाई कर दी। उसकी सहायता में खड़े होने वालों में सर्वतोन्मुख शिव थे। दीर्घकाल तक लड़ाई होने के उपरांत कृष्ण ने शिव पर जृंभणास्त्र का प्रयोग कर उन्हें मोहित कर दिया। तदनंतर बाणासुर कृष्ण से लड़ने लगा। कृष्ण ने उसकी हजार बांहों से एकसाथ चलने वाले पांच सौ धनुष नष्ट कर डाले तथा उसकी चार के अतिरिक्त समस्त बांहें भी कृष्ण ने काट डालीं। शिव ने कृष्ण से उसे अभयदान देने का अनुरोध किया क्योंकि वह शिव-भक्त था। कृष्ण ने कहा कि वे प्रह्लाद के वंश को अभयदान दे चुके हैं और बाणासुर उसी कुल का है, अत: वे उसे मारेंगे नहीं, किंतु भविष्य में उसकी चार भुजाएं ही रहेंगी। उसका घमंड-मर्दन करना आवश्यक था, अत: उससे लड़ना भी आवश्यक था। बाणासुर ने कृष्ण को प्रणाम किया तथा उषा सहित अनिरुद्ध को विदा किया।

श्रीमद् भा०, १०।६२-६३।-
वि० पु०, ५।३२-३३।-
ब्र० पु०, २०१-२०५।-

शिव अप्सराओं के नृत्य को देखकर काम-विमुग्ध हुए। उन्होंने नंदा से कहा कि वह गिरिजा को लिवा लाये। गिरिजा ने आने में देर की, अत: सब अप्सराओं ने मायावी रूप धारण किये। उषा (बाणासुर की कन्या) ने गिरिजा का रूप धरा। गिरिजा ने उसे शाप दिया कि सोती हुई उषा को जो कोई मनुष्य उठा ले जायेगा, उसीके साथ वह कामक्रीड़ा करेगी। (शेष कथा श्रीमद् भा० जैसी है)।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध ५।४९-५४।-

अनुरुद्ध शाक्य महानाम शाक्य तथा अनुरुद्ध शाक्य दोनों भाई थे। अपनी माता की आज्ञा लेकर उपालि नामक नाई के साथ उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की थी।

बु० च०, ११।३।-

अनूपिया सिद्धार्थ कई योजन चलकर अनूपिया नामक नगर में पहुंचे। वहां भिक्षा मांगते देखकर लोग उन्हें दिव्य पुरुष समझ रहे थे। लोगों ने राजा को सूचना दी। अनूपिया के राजा ने कहा—"यदि वह मनुष्येतर है तो नगर से बाहर निकलकर अंतर्धान हो जायेगा। देवता होगा तो आकाश की ओर, और नाग है तो पृथ्वी तल की ओर बढ़ेगा। मनुष्य हुआ तो कहीं भोजन करेगा।" सिद्धार्थ राज्य की सीमा से बाहर निकलकर मधुकरि देख पहले तो ग्लानि से भर गये। वैसे स्तर का भोजन उन्होंने कभी भी नहीं किया था, फिर अपने उद्देश्य को स्मरण करके वही खाया। राजा ने यह सब जाना तो उनके दर्शन करने गये और वायदा लिया कि बुद्ध होने के उपरांत वे सर्वप्रथम उसी नगर में आयेंगे।

बु० च०, तप १।३

अपान्नपात् अपान्नपात् नामक देवता पवित्र जल से घिरा रहता है। उनके लिए जल ही अन्न है। वह समुद्र में बडवानल की वृद्धि करता है। ईंधन रहित घृतयुक्त यह अग्नि जल को अन्न प्रदान करती है। इला, सरस्वती और भारती नामक तीनों देवियां अपान्नपात् के लिए उत्पन्न अन्न को धारण करती हैं। अपान्नपात् सब प्राणियों में व्याप्त रहते हैं तथा फल-फूल और औषधियों के रचयिता

हैं। अपान्नपात्‌युक्त समुद्र में उच्चैश्रवा नामक अश्व का जन्म हुआ।
(आधिदैविक, आधिभौतिक तथा आध्यात्मिक दृष्टि से क्रमश:—
(१) जल न गिरने देने वाला मेघ
(२) वाणी के अनुरूप कर्म करने वाला व्यक्ति
(३) ऊर्ध्वरेता ब्रह्मचारी)
अपान्नपात् वीर्य की रक्षा करने वाला है। उसके हृदय (समुद्र) में उत्तम ज्ञान (उच्चैश्रवा) की उत्पत्ति होती है। (श्वेताश्वतरोपनिषद् में अश्व का अर्थ मन किया गया है। वेदों में हृदय के लिए समुद्र शब्द का प्रयोग है) हृदय के पवित्र भाव ही उसके लिए भोग्य हैं। (समुद्र का जल ही अन्न है) इला, सरस्वती तथा भारती भी उसी अन्न को ग्रहण करती हैं। ये तीनों शक्तियां हृदय की स्वच्छता पर टिकी हैं। भावनात्मक स्वच्छता आंशिक रूप से सब प्राणियों में विद्यमान रहती है।

ऋ० २।३५
श० प० ब्रा०, ४।४।५।१२-१३
तै० ब्रा०, १।३।५४, ७।१०।६

अपाला महर्षि अत्रि की कन्या का नाम अपाला था। वह अत्यंत मेधाविनी थी। अत्रि अपने शिष्यों को जो कुछ भी पढ़ाते थे, एक बार सुनकर ही अपाला वह सब स्मरण कर लेती थी। अत्यंत कुशाग्रबुद्धि होने पर भी वह अत्रि की चिंता का कारण थी क्योंकि उसे चर्म-रोग था तथा ऋषि अत्रि उसका विवाह नहीं कर पा रहे थे। एक बार ऋषि के आश्रम में ब्रह्मवेत्ता कृशाश्व आये। उन्होंने युवती अपाला से विवाह करना स्वीकार कर लिया। यौवन ढलने पर अपाला के सौंदर्य की कांति नष्ट होने लगी और चर्म का श्वेतकुष्ट अधिकाधिक उभर आया। कृशाश्व ने उसका परित्याग कर दिया। वह पुन: पिता के आश्रम में चली गयी। ऋषि अत्रि के आदेशानुसार अपाला ने तपस्या की तथा इंद्र का आह्वान कर सोम रस समर्पित किया। सोमलता को कूटने के लिए कोई पत्थर नहीं था, अत: अपने दांतों के घर्षण से सोम रस निकालकर इंद्र को समर्पित किया। इंद्र ने प्रसन्न होकर वर मांगने के लिए कहा। अपाला ने सुलोमा बनने की इच्छा प्रकट की। इंद्र ने रथ के छिद्र से अपाला का शरीर तीन बार निकाला। तीन बार त्वचा उतरी। पहली अपहृत त्वचा शल्यक (खपची, कांटा) बन गयी, दूसरी गोधा और तीसरी अपहृत त्वचा कृकल बनी। अपाला का कुष्ट पूर्ण रूप से ठीक हो गया।
कथा में आया है कि अपाला के शरीर से उतरने वाली त्वचा शल्यक (सेही), गोधा (गोह) और कृकलास (गिरगिट) जैसे जंतु बन गये, लेकिन वैद्यक में शल्यक का अर्थ मदन वृक्ष और कृकला का अर्थ पिप्पली है। गोधा सांडे के तेल के नाम से जननेंद्रिय को प्रहृष्ट करने के लिए बाजार मे गोह का तेल बेचा जाता है, अर्थात् ये तीनों चीजें प्रजननशक्ति को बढ़ाने वाली है। इनके प्रयोग से त्वक्-दोष (कोढ़) और वंध्यत्व का निदान किया जा सकता है।

ऋ० ८।६।९१

अब्जक-वृषाकपि दैत्य हिरण्या का पुत्र महाशनि था तथा पुत्र-वधू पराजिता थी। महाशनि ने एक बार इंद्र को ऐरावत सहित पकड़कर पिता को सौंप दिया। महाशनि ने इंद्र को मारा नहीं क्योंकि वह उसकी (महाशनि की) बहन इंद्राणी का पति था। महाशनि वरुण से युद्ध करने गया किंतु उसकी कन्या से विवाह तथा उससे मित्रता करके लौटा। देवताओं के अनुरोध पर वरुण ने महाशनि से कहकर इंद्र तथा ऐरावत को छुड़वा दिया। महाशनि ने इंद्र को बहुत धिक्कारकर छोड़ा कि इतने कुख्यात होने पर भी उसकी जीवनाकांक्षा कितनी प्रबल है। यह भी कहा कि उस दिन से वरुण गुरु और इंद्र शिष्य माने जायेंगे। घर जाकर इंद्र ने इंद्राणी (पौलोमी, शची) से सारी बात कहकर, बदले का उपाय जानना चाहा। इंद्राणी ने कहा कि वह गौतमी के तट पर शिवाराधना करे। ऐसा करने पर शिव प्रकट हुए। इंद्र ने अरि-नाश का साधन मांगा। शिव ने कहा कि केवल उनकी आराधना से कुछ नहीं होगा। उसे तथा इंद्राणी को आराधना करके विष्णु और गंगा को भी प्रसन्न करना चाहिए, शत्रु पर केवल शिव अधिकार नहीं दिलवा सकते। इंद्र तथा इंद्राणी ने गंगा तथा विष्णु को भी प्रसन्न किया। अंत में इंद्र के सामने विष्णु और शिव के मिले-जुले आकार का चक्र और शूल लिए हुए अब्जक-वृषाकपि नामक एक पुरुष प्रकट हुआ, जिसने रसातल में जाकर महाशनि को मार डाला।

ब्र० पु०, १२९।-

अभिमन्यु अर्जुन के पुत्र अभिमन्यु की ध्वजा पर शार्ङगपक्षी का चिह्न था। रोहिणी नंदन बलराम ने रुद्र संबंधी श्रेष्ठ धनुष सुभद्राकुमार अभिमन्यु को दिया था। महाभारत युद्ध में पांडवों की निरंतर विजय से खीजकर दुर्योधन ने द्रोणाचार्य से कहा कि संभवत: प्रेमभाव होने के कारण वे पांडवों का अहित नहीं करना चाहते,अन्यथा उनके लिए पांडवों पर विजय प्राप्त करना कौन-सी कठिन बात है! वाक्-व्यंग्य से द्रोण तिलमिला उठे तथा उन्होंने कहा—"मैं व्यूह की रचना करूंगा। अर्जुन के अतिरिक्त कोई अन्य पांडव-सेना का व्यक्ति उसका खंडन नहीं कर सकता। अत: आप किसी बहाने से अर्जुन को वहां से दूर कर दें।" अगले दिन जब व्यूह का निर्माण किया गया तो व्यूह से दूर दक्षिण दिशा में संशप्तक गणों ने अर्जुन को ललकारकर अपने पास बुला लिया। उनका परस्पर संग्राम होने लगा। इसी मध्य व्यूह की रचना हो गयी—पांडव सेना बड़ी विपत्ति में पड़ गयी। उन लोगों को भयाक्रांत देखकर युधिष्ठिर ने अभिमन्यु को व्यूह-भेदन के निमित्त जाने का आदेश दिया। अर्जुन, प्रद्युम्न, कृष्ण तथा अभिमन्यु के अतिरिक्त कोई पांचवां व्यक्ति व्यूह-भेदन में समर्थ नहीं था। अभिमन्यु ने सहर्ष स्वीकार किया किंतु उसका सारथि भावी आशंकाओं से आक्रांत था। उसने बार-बार अभिमन्यु को युद्ध से विमुख करने का प्रयत्न किया। पूर्व निश्चय के अनुसार जहां कहीं से भी अभिमन्यु व्यूह का भेदन करता, वहीं पांडवों में से कोई समर्थ योद्धा स्थायी रूप से डट जाता। विभिन्न स्थानों से भेदन करते समय अभिमन्यु ने अश्मक के पुत्र को मार डाला। दु:शासन को मारने का प्रयास किया किंतु वह घायल होकर मैदान छोड़ गया। शल्य के भाई तथा कर्ण के भाई को मार डाला, शल्य को घायल कर दिया, कर्ण को परास्त कर दिया। जयद्रथ ने कौरवों की घबराहट को देखा तो मैदान में उतर आया तथा अभिमन्यु के पीछे आने-वाले पांडवों को रोक लिया। अभिमन्यु आगे बढ़ता गया। इस प्रकार वह अकेला ही शत्रु-समूह में घिर गया। उसने अकेले ही दुर्योधन-पुत्र लक्ष्मण को अनेक अन्य वीरों के साथ मार डाला जिनमें मुख्य रूप से उल्लेखनीय क्राथ पुत्र, वृंदारक कौशलनरेश, वृहद्बल, अश्वकेतु, भोज तथा कर्ण के मंत्री, कालिकेय, वसाति तथा कैकय रथीगण थे।

युद्ध में अन्य अनेक योद्धाओं के साथ अभिमन्यु ने कर्ण, अश्वत्थामा, दुर्योधन, दु:शासन पुत्र, शकुनि आदि को भी क्षति पहुंचायी। त्रस्त कर्ण ने द्रोणाचार्य से अभिमन्यु को मार पाने का उपाय पूछा। द्रोण यद्यपि शत्रुपक्ष में थे, तथापि अभिमन्यु की शीघ्रता से युद्ध करने की पटुता देखकर विशेष प्रसन्न हुए। उन्होंने बताया—"अभिमन्यु का कवच अभेद्य है। मनोयोगपूर्वक चलाये वाणों से प्रत्यंचा को काटा जा सकता है। फिर अभिमन्यु को युद्ध से विमुख कर उस पर प्रहार करो तो वह हार जायेगा। द्रोण के बताने पर छह महारथियों ने उसके धनुष, घोड़ों की बागडोर आदि नष्ट करके निहत्थे अभिमन्यु पर चारों ओर से वार किया। अभिमन्यु पैंतरे बदलकर आकाश में ही अधिक विचरण करने लगा। द्रोण ने उसकी तलवार तथा कर्ण ने ढाल को नष्ट कर डाला। अभिमन्यु पृथ्वी पर उतर आया तथा हाथ में चक्र लेकर द्रोण की ओर बढ़ा। वह चक्र और गदा से शत्रुओं पर प्रहार करता रहा। अंततोगत्वा दु:शासन-पुत्र की गदा से वह अचेत हो गया तथा शत्रु-योद्धाओं ने सब ओर से वार कर अचेत अभिमन्यु को मार डाला। जीते-जी वह दस हजार रथियों को मार चुका था।

पूर्वजन्म में वह चंद्रमा का पुत्र था, अत: मृत्यु के उपरांत वह पुन: चंद्रलोक चला गया। दक्षिण दिशा में संशप्तकों के साथ युद्ध करके जब अर्जुन तथा कृष्ण वापस आये तब उन्हें अभिमन्यु के हनन का समाचार मिला। पांडवों पर क्रुद्ध होना अर्जुन के लिए स्वाभाविक ही था। फिर समस्त समाचार प्राप्त कर उसने जयद्रथ को मारने की शपथ ली। यह भी कहा कि यदि वह अपनी प्रतिज्ञा पूरी नहीं कर पायेगा तो अगले दिन आत्मदाह कर लेगा। अर्जुन की शपथ के विषय में जानकर जयद्रथ बहुत घबरा गया। उसने कौरवों से कहा कि वह अपने प्राण बचाने के लिए राजधानी वापस चला जायेगा, किंतु कौरवों ने उसकी सुरक्षा का पूरा प्रबंध करने का आश्वासन देकर उसे रोक लिया। वह रात पांडवों के लिए अत्यंत दु:खदायिनी थी। किसी को घड़ी भर का चैन नहीं मिला। अर्जुन ने शैया पर जाने से पूर्व शिव-पूजन किया। घड़ी भर आंख लगी तो अर्जुन को लगा कि श्रीकृष्ण उसे शिव की शरण में जाने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। स्वप्न में ही वह श्रीकृष्ण के साथ आकाश की ओर बढ़ा। दोनों आकाश-यात्रा करते हुए शिव-पार्वती की शरण में जा पहुंचे। शिव ने उनके मन्तव्य को जान

लिया तथा उससे कहा कि जयद्रथ का वध करने के लिए वे निकटवर्ती अमृतमय सरोवर से दिव्य धनुष तथा वाण लेकर आयें। वे दोनों उस सरोवर के तट पर पहुंचे। सरोवर में विकराल नागयुगल विराजमान थे। उनमें से एक सहस्त्र फणोंवाला तथा दूसरा अत्यंत तेजस्वी था। शिव का स्मरण कर अर्जुन तथा कृष्ण ने नागों को प्रणाम किया। शिव की महिमा से वे दोनों नाग अपना रूप छोड़ धनुष तथा वाण में परिणत हो गये। धनुष-वाण लेकर वे दोनों पुनः शिव के पास पहुंचे। शिव के पार्श्व में एक पीतवस्त्रधारी ब्रह्मचारी प्रकट हुआ। ब्रह्मचारी ने अपने हाथ में वाण लेकर विधिपूर्वक धनुष पर चढ़ाया। अर्जुन का ध्यान उसके खड़े होने, मुट्ठी से धनुष पकड़ने, प्रत्यंचा खींचने पर केंद्रित था। इस प्रकार ब्रह्मचारी के माध्यम से उसके प्रयोग की विधि पुनः समझाकर शिव ने वाण और धनुष पुनः सरोवर में डाल दिए। उसका नाम पाशुपत अस्त्र था। वे दोनों शिव को प्रणाम कर अपने शिविर में लौट आये। गत वर्षों में जब अर्जुन ने इंद्र को अपनी तपस्या से प्रसन्न किया था तब उसे इंद्र से अन्य अस्त्रों के साथ पाशुपत अस्त्र की प्राप्ति भी हुई थी। स्वप्न-दर्शन से उसके प्रयोग की विधि पुनः दोहराकर अर्जुन अत्यंत उत्साहित हो उठा। युद्ध-क्षेत्र में द्रोणाचार्य ने चक्रशटक व्यूह की रचना की थी। उसके पृष्ठभाग में पद्म नामक एक व्यूह और बनाया था तथा पद्मव्यूह के मध्य भाग में सूची नामक एक गूढ़ व्यूह की रचना की गयी थी। जयद्रथ को सूची व्यूह के पार्श्व में अत्यंत सुरक्षित स्थान प्रदान किया गया था। इस व्यूह को भंग करने की प्रक्रिया में अर्जुन ने दुःशासन को पलायन के लिए बाध्य कर दिया, सुदक्षिण (कांबोज राज), श्रुतायु, अच्युतायु, नियतायु, दीर्घायु, म्लेच्छ सैनिक, अंबष्ट, बिंद, अनुबिंद आदि को मार डाला। भयातुर होकर दुर्योधन द्रोण के पास पहुंचे तथा उन्हें उलाहना देने लगे। द्रोण ने दुर्योधन को ही अर्जुन से युद्ध करने के लिए कहा। अनमने मन से दुर्योधन को युद्ध के लिए जाना पड़ा। द्रोण ने उसे एक दिव्य कवच प्रदान किया। मूल रूप में उस कवच का उद्भव शिव के शरीर से हुआ था। शिव ने वृत्र के नाश के लिए युद्ध में जाते हुए इंद्र को वह कवच प्रदान किया था। वृत्र-हननोपरांत इंद्र ने कवच बांधने की मंत्रयुक्त विधि अंगिरा को दे दी। अंगिरा ने अपने पुत्र बृहस्पति को उसका उपदेश दिया। बृहस्पति ने अग्निवेश्य को, अग्निवेश्य ने द्रोण को और द्रोण ने दुर्योधन को वह कवच प्रदान किया। युद्ध-क्षेत्र में अर्जुन ने अनेक योद्धाओं को मार डाला किंतु उसके घोड़े बहुत घायल हो गए थे और प्यासे भी थे। अर्जुन रथ से उतरकर युद्ध करने लगा तथा उसने कृष्ण से कहा कि वह उसके शरीर से वाणों को निकाल दे। उनके पीने के लिए जल की आवश्यकता भी थी। अर्जुन ने पृथ्वी पर अस्त्र से आघात कर, एक सुंदर सरोवर तत्काल प्रकट कर दिया तथा वाणसमूह से एक मनोरम घर का निर्माण भी कर दिया। साथ ही वह कौरवों से युद्ध कर उनकी गति रोके रहा। दुर्योधन यद्यपि दिव्य कवच पहनकर आया था किंतु अर्जुन के सम्मुख अधिक नहीं टिक पाया। अश्वत्थामा, शल्य इत्यादि महारथियों ने अर्जुन को घेरकर रोके रखने का प्रयास किया। सूर्य अस्ताचल की ओर बढ़ रहा था। जयद्रथ को सायं तक न मार पाने पर अर्जुन का आत्मदाह निश्चित था। अतः दोनों पक्षों के वीर बहुत उत्साही थे। अर्जुन के आदेश पर सात्यकि युधिष्ठिर की रक्षा कर रहा था किंतु युधिष्ठिर ने बहुत समझा-बुझाकर उसे अर्जुन की रक्षा के लिए भेज दिया। भीम ने युधिष्ठिर की रक्षा का भार अपने ऊपर ले लिया। कालांतर में युधिष्ठिर को सात्यकि तथा अर्जुन के जीवन की आशंका त्रस्त करने लगी। उन्होंने आग्रहपूर्वक भीमसेन को भी उनकी खोज में भेज दिया तथा कहा कि अर्जुन को सकुशल देखकर घोर गर्जना के माध्यम से ही युधिष्ठिर को सूचित कर दें। भीमसेन ने द्रोण को ललकारकर गदा का आघात किया कि द्रोण का समस्त रथ, घोड़े, सारथी आदि सब चूर-चूर हो गये। वे रथ से कूद गये तथा दूसरे रथ पर आरूढ़ होकर गये। भीम ने धृतराष्ट्र के ग्यारह पुत्रों को मार डाला तथा सेना को भगा दिया। भीम ने आठ बार अतिरथी समेत द्रोण का रथ उठाकर रणक्षेत्र में इधर-उधर फेंका। तदुपरांत जयद्रथ को मारने के उपक्रम में लगे अर्जुन के निकट पहुंचकर भीम ने सिंहनाद के द्वारा कुशल-क्षेम युधिष्ठिर तक पहुंचा दी। मार्ग अवरुद्ध करने वाले कर्ण को भी भीम ने परास्त कर दिया। दुर्मुख तथा दुर्जय आदि धृतराष्ट्र के सातों पुत्रों का वध कर दिया। अर्जुन निरंतर जयद्रथ की ओर बढ़ रहा था। सूर्यास्त होने में थोड़ा ही समय शेष था—

श्रीकृष्ण ने माया से अंधकार फैला दिया—जिसे देखकर कौरवों ने सोचा कि सूर्यास्त हो गया है। वे लोग थोड़े-से निश्चिंत हो गये। सिंधुराज जयद्रथ सूर्य की ओर देखने लगा। तभी कृष्ण ने उस पर वार करने के लिए अर्जुन को प्रेरित किया, साथ ही बताया कि पूर्वकाल में विख्यात वृद्धक्षत्र ने दीर्घकाल में जयद्रथ नामक पुत्र को प्राप्त किया था। जयद्रथ के जन्म पर यह आकाशवाणी भी हुई थी कि अंतकाल में वह युद्ध में वीर क्षत्रिय से मारा जायेगा। वह क्षत्रिय इसका सिर काटेगा। वृद्धक्षत्र ने तभी कहा था कि जो उसका सिर काटेगा और जिससे उसका सिर पृथ्वी पर गिरकर क्षत विक्षत होगा, उसका अपना सिर भी सौ टुकड़ों में विभक्त हो जायेगा। अतः कृष्ण के आदेश पर अर्जुन ने दिव्य मंत्रों से अभिमंत्रित वाण से जयद्रथ का सिर काटकर संध्या में लीन उसके पिता की गोद में पहुंचा दिया। वृद्धक्षत्र को इसका बोध नहीं हुआ। संध्योपासना की समाप्ति पर वे जब उठे तो जयद्रथ का सिर भूमि पर गिर गया और स्वयं उनका सिर सौ खंडों में विभक्त हो गया।

म० भा०, द्रोणपर्व, अध्याय २३, श्लोक ८९-९५,
अध्याय ३५-५१, ५४।५६-५७, ७२

अमरप्रभ श्रीकंठ की वंश-परंपरा में अमरप्रभ नाम का राजा हुआ। उसकी नवेली दुलहन स्वर्णचूर्ण से बने वानरों को देखकर डर गयी। राजा अमरप्रभ उन वानरों को अधम आदि कहने लगा तो उसके वयोवृद्ध मंत्रियों को समझाया कि उसके वंश में वानरों के प्रति पूज्य-भावना रही है। अमरप्रभ ने तर्क किया कि फिर मार्ग में उनको चित्रित क्यों करते हैं, उन चित्रों पर सबके पैर रखे जाते हैं। तब से उस वंश में मणिमाणिक से वानरों के चित्र दीवार, पताका इत्यादि पर बनाने का आदेश हुआ।

पउ० च०, ६।७०-८१

अमोघ विजया रावण ने लक्ष्मण पर अमोघ विजया शक्ति का प्रयोग किया था, जिससे वह मृतवत् मूर्च्छित हो गया था। जांबवान ने राम को आश्वासन देते हुए कहा कि विद्याशास्त्र से लक्ष्मण मूर्च्छित हो गया है—रात भर में यदि प्रयत्न कर लिया गया तो बच जायेगा। चंद्रमंडल नाम के विद्याधर ने राम के पास पहुंचकर कहा—"राजा भरत के पास एक प्रकार का जल है जिसके प्रयोग से लक्ष्मण तुरंत ठीक हो सकता है। वह विशल्या नाम की द्रोणमेघ की कन्या का स्नानोदक है। पूर्व भव में उपसर्ग के साथ तपश्चरण किये होने के कारण विशल्या में रोगमुक्त कर देने की शक्ति है। राम ने भामंडल, हनुमान तथा अंगद (सुग्रीव-पुत्र) को भरत से जल लाने के लिए भेजा। भरत ने समस्त दुर्घटना के विषय में सुनकर जल के स्थान पर विशल्या को बुलाकर ही उन्हें सौंप दिया। विशल्या के स्पर्श मात्र से लक्ष्मण के शरीर से शक्ति ने निकलकर आकाश की ओर प्रयाण किया। वह एक दुष्ट स्त्री के समान दिखलाई पड़ रही थी। हनुमान ने छलांग लगाकर उसे पकड़ लिया। उसने कहा—"मेरा अपराध नहीं है। मैं तो अमोघ विजया शक्ति हूं। मुझे धरणेंद्र देव ने रावण को दिया था।" विशल्या ने लक्ष्मण के समस्त शरीर पर चंदन का लेप किया। वह होश में आकर बोला—"रावण कहां है?" राम के कहने से लक्ष्मण ने विशल्या से विवाह कर लिया।

पउ०च०, ६१-६४/-

अयोमुखी सीता को ढूंढ़ते हुए राम और लक्ष्मण जब वन में घूम रहे थे तब उन्हें एक पाताल लोक तक गहरी कंदरा मिली, जिसके पास ही एक भयानक बदसूरत तथा क्रूर राक्षसी थी। उसने लक्ष्मण का आलिंगन किया तथा कहा—"चलो, हम दोनों विहार करें। मेरा नाम अयोमुखी है। मैं खजाने के समान तुम्हें मिल गयी हूं। हम दोनों चिरकाल तक यहां विहार करेंगे।" लक्ष्मण ने क्रुद्ध होकर उसके कान, नाक और स्तन काट डाले। वह भयंकर विलाप करती हुई वहां से भाग गयी।

बा० रा०, अरण्य कांड, सर्ग ६९, श्लोक ९-१८

अरजा सत्युग में मनु राजा थे। उनके पुत्र का नाम इक्ष्वाकु था। मनु ने इक्ष्वाकु को राज्य सौंपकर संतति की वृद्धि तथा न्याय का दंड ठीक प्रकार से संभालने का आदेश दिया। इक्ष्वाकु के सौ पुत्र हुए। उनमें से सबसे छोटा विद्याहीन और मूर्ख था। उसका नाम दंड पड़ा। दंड ने एक सुंदर नगर बसाया जिसके पुरोहित शुक्राचार्य हुए। राजा दंड एक बार शुक्राचार्य के आश्रम की ओर गया। वहां उनकी सुंदर कन्या पर मुग्ध हो गया तथा उससे बलात्कार किया। जब शुक्राचार्य को मालूम पड़ा तो उन्होंने दंड को शाप दिया कि सात दिन तक उसके राज्य में सौ योजन के घेरे में धूल की वर्षा होगी और

आग लग जायेगी। शुक्राचार्य ने अपने आश्रमवासियों को वहां से चले जाने की आज्ञा दी और अपनी पुत्री को चार कोस के सरोवर के किनारे कर्मभोग के लिए भेज दिया तथा उससे कहा कि इन सात दिनों में जो पशु-पक्षी तेरे पास होंगे, वे नष्ट नहीं होंगे। उनकी पुत्री अरजा ने यह बात मान ली। सात दिन में दंड का राज्य जलकर भस्म हो गया। तभी से वह स्थान दंडकारण्य कहलाता है।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग ७६-८१,

अरिष्टासुर अरिष्टासुर दैत्य विशाल बैल के रूप में ब्रज गया था। कृष्ण ने उसे मार डाला था।

श्रीमद् भा०, १०।३६
हरि० वं० पु०, विष्णु पर्व, २१।
ब्र० पु०, ।१८६।-
वि० पु०, ५।१४

अरुंधती अरुंधती कर्दम की पुत्री थी (दे० कर्दम)। एक बार बारह वर्षों की अनावृष्टि से त्रस्त होकर सप्तर्षि वसिष्ठ की पत्नी अरुंधती को बदरपाचन तीर्थ में छोड़कर हिमालय पर तपस्या करने चले गये। अरुंधती वहीं तपस्या करती रहीं। एक दिन महादेव ब्राह्मण का रूप धारण कर उनके पास पहुंचे और भिक्षा मांगी। अरुंधती के पास अन्न था ही नहीं। ब्राह्मण ने उसे पांच बेर दिये और कहा कि वह आग पर रखकर उन्हें पका दे। अरुंधती ने उन बेरों को आग पर रख कर पकाना प्रारंभ किया तो अनेक दिव्य कथाएं सुनायी देने लगीं। अरुंधती उन्हें पकाती रही और कथाएं सुनती रही। उसे ध्यान भी नहीं आया कि वह निराहार रहकर उन्हें पका रही है और दिव्य कथाओं में रमी हुई है। बारह वर्ष एक दिन के समान समाप्त हो गये। सप्तर्षि लौट आये। शिव ने प्रकट होकर उनसे कहा कि अरुंधती की अपूर्व तपस्या से उनकी तपस्या की कोई तुलना नहीं। उन्होंने प्रसन्न होकर अरुंधती को वर प्रदान किए कि उस स्थान का नाम 'बदरपाचन तीर्थ' होगा। वहां तीन रात तक पवित्र भाव से रहकर मनुष्य बारह वर्ष के उपवास का फल प्राप्त करेगा।

म० भा०, शल्यपर्व, अध्याय ४८,
श्लोक ३३-५८

अर्जुन (क) अर्जुन कुंती के सबसे छोटे पुत्र का नाम था। उसके जन्म के सात दिन बाद यह आकाशवाणी हुई थी कि वह इंद्र के समान पराक्रमी होगा तथा अपने सब शत्रुओं को परास्त कर देगा। वह लक्ष्मी, इंद्र के शौर्य तथा विष्णु के बल से संपन्न होगा। वह द्रोणाचार्य का सबसे प्रिय शिष्य था। कहा जाता है कि एक बार द्रोणाचार्य ने पेड़ पर एक नकली गीध लटकाकर उसके मस्तक पर प्रहार करने के लिए अपने सब शिष्यों से कहा और पूछा कि निशाना लगाते समय वे किसको देख रहे हैं। अर्जुन ने उत्तर दिया कि वे केवल गीध का मस्तक देख रहे थे। अन्य समस्त शिष्यों ने उत्तर दिया कि वे द्रोण को, पेड़ तथा साथियों को, अर्थात् सभी को देख रहे थे। द्रोणाचार्य सबसे रुष्ट होकर अर्जुन से विशेष प्रभावित हुए। एक बार स्नान करते हुए द्रोण को एक ग्राह ने पकड़ लिया। तब भी अर्जुन ने अत्यंत द्रुतगति से वाणों के प्रहार से ग्राह को मार डाला था। उससे प्रसन्न होकर द्रोण ने अर्जुन को ब्रह्मशिर नामक एक अस्त्र दिया था जो मानवेतर शत्रुओं के लिए ही प्रयोग में लाया जा सकता था।

नारद की प्रेरणा से पांडवों ने निश्चय किया कि यदि एकांत में द्रौपदी के साथ बैठे किसी एक पांडव को अन्य पांडव देख लेगा तो वह बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्यपूर्वक वन में निवास करेगा। एक दिन किसी ब्राह्मण की गाय चोर ले गये थे। वह ब्राह्मण रोता-चिल्लाता पांडवों की शरण में पहुंचा। अर्जुन उसकी सहायता के लिए अपना धनुष-वाण लेना चाहता था जो कि उसी कक्ष में थे जहां द्रौपदी तथा युधिष्ठिर एकांतवास कर रहे थे। युधिष्ठिर की आज्ञा से अर्जुन ने अंदर प्रवेश करके अपने अस्त्र-शस्त्र लिए। चोरों से छीनकर ब्राह्मण को उसकी गाय देकर अर्जुन ने युधिष्ठिर से आज्ञा प्राप्त की तथा वह बारह वर्ष के लिए वन में चला गया।

म० भा०, आदिपर्व, १३२-
भीष्मवधपर्व, ६८।६।-,
द्रोणपर्व, २८।३।-३२।६३।-२०२।-
कर्णपर्व, ६८।१०-१३।-

एक बार अर्जुन दुर्योधन को गांधर्व-लोक की कैद से छुड़ाकर लाया था, जबकि कर्ण मैदान से जान छुड़ाकर भाग गया था। विराट्नगर के युद्ध में द्रोण तथा भीष्म को परास्त कर अर्जुन उन लोगों के समस्त वस्त्र लेकर चला गया था। कर्ण के कपड़े छीनकर उसने उत्तरा को समर्पित कर दिए थे।

महाभारत युद्ध में अर्जुन के श्वेत वर्ण के अश्व थे। अत: वह श्वेतवाहन भी कहलाता था। युद्ध में अर्जुन ने अन्य अनेक महारथियों के साथ सूतपुत्र कर्ण के तीन भाइयों को भी मार डाला।

अश्वत्थामा आदि से युद्ध करते हुए बार-बार अर्जुन को ऐसा आभास होता था कि उसके आगे-आगे अग्नि के समान एक तेजस्वी पुरुष हाथ में जलता हुआ शूल लिए चलता रहता है और उसके प्रत्येक शत्रु का हनन करता है किंतु लोग यही कहते हैं कि अर्जुन ने अमुक-अमुक का वध कर दिया। व्यास मुनि ने प्रकट होकर उसकी शंका का समाधान किया। उन्होंने कहा कि वे साक्षात् शिव हैं। उन्होंने स्वप्नदर्शन के माध्यम से युद्ध-क्षेत्र में पाशुपतास्त्र के प्रयोग की प्रेरणा दी थी, वही तुम्हारे कर्म में सहायक है। तदुपरांत अर्जुन ने सत्यकर्मा, सत्येषु, सुशर्मा तथा उनके पैंतालीस पुत्रों को मार डाला। महाभारत के अठारहवें दिन युद्ध में दुर्योधन को परास्त कर पांडव तथा कृष्ण कौरवों के शिविर में गये। वहां पहुंचकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि पहले वह अपना गांडीव धनुष तथा तरकश लेकर स्वयं उतर जाय तब कृष्ण उतरेंगे। अर्जुन के उतरने के बाद ज्योंही कृष्ण उतरे, रथ प्रज्वलित होकर भस्म हो गया। अर्जुन के पूछने पर कृष्ण ने बताया कि रथ पहले ही अस्त्रों से दग्ध हो चुका था किंतु कृष्ण के बैठे रहने के कारण वह तब भस्म नहीं हुआ था। अभीष्ट की समाप्ति के उपरांत जब कृष्ण ने उसे छोड़ दिया तो ब्रह्मास्त्र के तेज से दग्ध, घोड़ों सहित वह रथ बिखरकर गिर पड़ा। कृष्ण ने यह भी कहा कि उस रात उनका शिविर से बाहर रहना ही मंगलकारी होगा। अत: वे सब ओघवती नदी के तट पर रात बिताने चले गये।

बारह वर्ष के बनवास की समाप्ति पर तेरहवें वर्ष में पांचों पांडव द्रौपदी के साथ विराट्नगर में अज्ञातवास के लिए गये। अज्ञातवास की सफलता के निमित्त उन्होंने दुर्गा की स्तुति की, फिर छद्मवेश में राजा विराट् की शरण में पहुंचे। अर्जुन ने अपना परिचय 'वृहन्नला' नामक नपुंसक-नृत्य-शिक्षिका के रूप में दिया। राजा विराट् ने उसे अपनी राजकुमारियों (जिनमें उत्तरा मुख्य थी) को नृत्य सिखाने के लिये नियुक्त किया।

दे० विराट्नगर, गोहरण

म० भा०, विराट्पर्व, अध्याय १-१२ तथा ३०-७२ तक

(ख) कृतवीर्य कुमार अर्जुन ने आराधना से दत्तात्रेय को प्रसन्न किया तथा चार वर प्राप्त किए—

१. वह युद्ध में हजार बांहों वाला तथा घर पर दो भुजाओं वाला रहेगा।
२. संपूर्ण पृथ्वी को जीत पायेगा।
३. आलस्य रहित हो जायेगा, तथा
४. जब धर्म के विपरीत कोई कार्य करने लगे तो कोई श्रेष्ठ पुरुष मार्ग-दर्शन करेगा। तदनंतर राजा कृतवीर्य अर्जुन तेज तथा यश प्राप्त करके मदाक्रांत हो गया। वह ब्राह्मणों को अपने से हीन मानने लगा। वायु ने उसे ब्राह्मणों की श्रेष्ठता का अनेक उदाहरणों सहित उपदेश दिया। अर्जुन ने निरुत्तर होकर अपनी त्रुटि स्वीकार की।

म० भा०, दानधर्मपर्व, अध्याय १५१-१५७

अलंबुष (क) राक्षस ऋष्यशृंग के पुत्र का नाम अलंबुष था। युद्ध में पांडवों की वीरता को लक्ष्य कर दुर्योधन ने उसकी सहायता मांगी थी। अलंबुष ने उलूपी तथा अर्जुन के पुत्र इरावान् को मार डाला था। अभिमन्यु ने क्रुद्ध होकर अलंबुष से युद्ध कर उसकी मायावी शक्तियां का परिहार किया। उसके फैलाए अंधकार को भास्करास्त्र से नष्ट कर डाला। अलंबुष को रणक्षेत्र से भाग जाना पड़ा। अभिमन्यु के निधन के उपरांत अर्जुन ने धोखेबाज जयद्रथ को मार डालने का प्रण किया। युद्ध-क्षेत्र में पांडवों की अनेक कौरव-योद्धाओं से मुठभेड़ हुई। अलंबुष तथा भीम का घमासान युद्ध हुआ। भीम ने राक्षस अलंबुष की माया को नष्ट कर डाला तथा उस पर 'त्वष्ट्रा' नामक अस्त्र का प्रयोग किया। अलंबुष बहुत अधिक घायल होकर द्रोण की सेना में जा छिपा।

म० भा०, भीष्मवधपर्व,
अध्याय, १००, १०१ १-३१।-
द्रोणपर्व, १०८, १०९

(ख) घटोत्कच ने रात्रि-युद्ध में पांडवों की ओर से लड़ना आरंभ किया तो कौरवों के पांव तले से जमीन खिसकने लगी। उसी समय दुर्योधन के पास राक्षस जटासुर का बेटा अलंबुष आया। उसने बताया कि कुंती कुमारों ने राक्षस-विनाशक कर्म के संदर्भ में उसके पिता का हनन किया था; अत: वह उनसे बदला लेना चाहता था। दुर्योधन ने उसे घटोत्कच से युद्ध करने के लिए

प्रेरित किया। घटोत्कच ने द्वंद्व युद्ध में उसे मार डाला। उसका सिर काटकर उसने दुर्योधन को समर्पित किया और कहा कि वह अपने मित्र के पराक्रम को देख चुका, अब इसी अवस्था में वह तथा कर्ण भी पहुंच जायेंगे।

म० भा०, द्रोणपर्व, अध्याय १७४

(ग) राजाओं में श्रेष्ठ अलंबुष भी कौरवों का सहायक था। वह राक्षस अलंबुष से भिन्न था। उसे उसके घोड़ों सहित सात्यकि ने युद्ध में मार डाला था।

म० भा० द्रोणपर्व, अध्याय १४०, श्लोक १४-२५

अलंबुषा इंद्र द्वारा दधीचि का तपोभंग करने के लिए भेजी गयी अप्सरा।

दे० सारस्वत

अलर्क एक वेदपारगामी ब्राह्मण के मांगने पर बिना हिचके महाराज अलर्क ने अपने दोनों नेत्र निकालकर दे दिये थे।

बा० रा०, अयोध्या कांड, सर्ग १४, श्लोक ५-७

अलर्क नामक राजा ने धनुष से समुद्रपर्यंत पृथ्वी पर विजय प्राप्त की थी। तदुपरांत वे सूक्ष्म तत्त्व की खोज में लग गये। वे एक वृक्ष के नीचे बैठकर सोचने लगे कि बाह्य शत्रुओं से मन, नेत्र, त्वचा, कर्ण आदि आंतरिक शत्रु कहीं अधिक भंयकर हैं। इन्हें वाणों से बींध देना चाहिए। उनकी समस्त इंद्रियों ने कहा कि यदि वे वाणों से उन्हें बेंधने का प्रयत्न करेंगे तो आत्मघात कर बैठेंगे। अतः कोई ऐसा वाण खोजें जो कि उन्हें आत्महंता न बना दे। बहुत सोच-विचार के बाद उन्होंने ध्यान योग के द्वारा आत्मा में प्रवेश करके परम सिद्धि (मोक्ष) को प्राप्त किया।

म० भा०, आश्वमेधिकपर्व, अध्याय ३०

मदालसा के पुत्र राजा अलर्क से प्रजा बहुत संतुष्ट थी। वे प्रवृत्ति मार्ग में पूर्ण रूप से मग्न थे। उनके बड़े भाई सुबाहु ने अनुभव किया कि एकमात्र अलर्क ही ऐसा भाई है जो ब्रह्मज्ञान से वंचित रह गया। उनको आसक्ति-शून्य करने के लिए सुबाहु ने अपने मित्र काशिराज के दूत से अलर्क के पास संदेश भिजवाया कि वे अपना राज्य सुबाहु को दे दें क्योंकि बड़ा भाई होने के नाते उनका अधिकार है। याचना स्वीकार न करने पर सुबाहु के मित्र काशिराज ने युद्ध प्रारंभ किया। अलर्क के मंत्रियों आदि को भी सिखाकर अपनी ओर कर लिया। धीरे-धीरे राजा अलर्क ने अनुभव किया कि सैनिक, धन, आदि समस्त वस्तुओं का क्षय होता चला जा रहा है। अत्यंत क्षुब्ध होकर अलर्क ने अपनी एक अंगूठी निकाली। मां ने (मदालसा ने) वह अंगूठी विषम क्षणों में निकालने का आदेश दिया था। उसमें एक संदेश रखा था। मां को याद कर अलर्क ने अंगूठी का संदेश निकाला। उसमें संसार की निस्सारता का वर्णन था तथा अनासक्ति का उपदेश। तदनंतर अलर्क दत्तात्रेय की शरण में गये। दत्तात्रेय ने उन्हें अनासक्ति, योग, ब्रह्मज्ञान आदि का उपदेश दिया और कहा—"ओंकार धनुष है, आत्मा वाण है, और ब्रह्म बेंधने योग्य उत्तम लक्ष्य है।" पूर्ण ज्ञान प्राप्त करके अलर्क ने राज्य भाई सुबाहु को समर्पित करना चाहा। सुबाहु ने बताया कि सब क्रिया-कलाप अलर्क की ज्ञान की ओर प्रवृत्त करने के निमित्त ही रचा गया था। अलर्क अपने पुत्र को राज्य सौंपकर स्वयं आत्मसिद्धि के लिए वन में चले गये।

दे० मदालसा

मा० पु०, ३३-४२।-

अलायुध अलायुध बकासुर का भाई था। उसने कर्ण तथा घटोत्कच के रात्रि-युद्ध के विषय में जाना तो वह दुर्योधन की सहायता की इच्छा से उसके पास पहुंचा। वह पांडवों से रुष्ट था क्योंकि भीम ने बकासुर को मारा था। उसके मित्र हिडिम्ब बक तथा किर्मीर भी उसी के हाथों मारे गये थे। अतः वह बदला लेने के लिए आतुर था। भीम ने राक्षस-कन्या हिडिम्बा के साथ बलात्कार किया था। परिणामस्वरूप घटोत्कच का जन्म हुआ था। दुर्योधन ने उसे घटोत्कच से युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। घटोत्कच ने मायावी युद्ध में उसका सिर काटकर वध कर दिया।

म० भा०, द्रोणपर्व, अध्याय १७६-१७८

अवधूतपति एक बार इंद्र समस्त देवताओं के साथ विपुल सामग्री लेकर सदाशिव के दर्शन के लिए चले। शिव ने इंद्र के गर्व को जानकर भंयकर अवधूत का रूप धारण किया। इंद्र ने अवधूत को जाता देखकर उससे शिव के आवास के विषय में पूछा। उसके उत्तर न देने पर इंद्र ने उस पर वज्र से 'वार किया। वज्र अवधूत के कंठ से लगकर भस्म हो गया। कंठ पर नीला चिह्न अंकित हो गया। एक भयानक ज्वाला देवताओं को जलाने लगी। देवताओं ने शिव को पहचानकर क्षमा-याचना की। शिव ने उन पर दयार्द्र होकर ज्वाला को

गंगा में फेंक दिया जिससे जालंधर का प्रादुर्भाव हुआ तथा शिव अंतर्धान हो गये। अवधूतपति के रूप में शिव का पचहत्तरवां अवतार था।

शि० पु० ७।३२

अवाकीर्ण (तीर्थ) प्राचीन काल में बारह वर्ष तक चलने वाले विश्वजित यज्ञ के समापन के उपरांत महर्षियों ने पांचालों से इक्कीस बछड़े प्राप्त किये। दल्भ पुत्र 'बक' ने अन्य ऋषियों से कहा कि वे बछड़ों को बांट लें। बक अपने लिए और प्राप्त कर लेंगे। 'बक' धृतराष्ट्र के पास गये। धृतराष्ट्र के राज्य में उन दिनों अनेक गायों का निधन हुआ था। अतः उन्होंने क्रोध में आकर बक से कहा—"तुम पशु चाहते हो तो मरे हुए पशुओं को शीघ्र ले जाओ।" बक को बहुत बुरा लगा। वे मरे हुए पशुओं के मांस की आहुति देकर सरस्वती के अवाकीर्ण नामक तीर्थ में राष्ट्र का हवन करने लगे। फलस्वरूप धृतराष्ट्र का राष्ट्र क्षीण होने लगा। प्राश्निक से उसका कारण जानकर धृतराष्ट्र अत्यंत उद्विग्न हुए। उन्होंने बक मुनि से क्षमा-याचना की। मुनि ने प्रसन्न होकर उनके राज्य को बचाने की आहुति देनी आरंभ कर दी। राजा ने संतुष्ट होकर उन्हें पर्याप्त पशु दक्षिणास्वरूप अर्पित किये। वहीं पूर्व काल में नहुष पुत्र ययाति ने यज्ञ किया था, जिसमें सरस्वती ने दूध तथा घी का स्रोत बहाया था। वहां आहूत समस्त ब्राह्मणों के लिए सरस्वती ने मनवांछित वस्तुएं जुटायी थीं—फलस्वरूप सबने राजा ययाति को शुभाशीर्वाद दिये थे।

म० भा०, शल्यपर्व, अध्याय ४१

अवीक्षित वह बालक शुभ लग्न में उत्पन्न हुआ था। उसकी जन्मपत्री में सूर्य, शनैश्चर तथा मंगल अवीक्षित (उसे न देखने वाले) थे। अतः उसका नाम अवीक्षित पड़ा। उसने कण्वपुत्र से संपूर्ण अस्त्र-शस्त्र विद्या ग्रहण की। एक बार राजा विशाल की कन्या वैशालिनी ने स्वयंवर में उसको वरने की इच्छा नहीं की, अतः अवीक्षित ने बलपूर्वक उसका अपहरण कर लिया। एकत्र राजाओं में जो कोई सामने आया, उसने उसे मार भगाया। तदनंतर धर्मविमुख होकर राजाओं ने अवीक्षित को चारों ओर से घेरकर प्रहार किया। वह पृथ्वी पर गिर पड़ा तो राजा विशाल ने उसे वंदी बना लिया। करंधम (अवीक्षित के पिता) को ज्ञात हुआ तो उसने सेना भेजी। राजा विशाल परास्त हो गया। अवीक्षित मुक्त हो गया। विशाल अपनी पुत्री को लेकर करंधम के पास पहुंचा। वह उसका विवाह अवीक्षित से कर देना चाहता था। अवीक्षित ने कहा—"जिसने मुझे (अधर्म से ही सही) पराजित देख लिया है उससे मैं विवाह नही करूंगा। अब मैं ब्रह्मचारी ही रहूंगा।" सबके समझाने-बुझाने का भी उस पर कोई प्रभाव नहीं हुआ। वैशालिनी ने कहा कि वह मन में उसका वरण कर चुकी थी; अतः किसी अन्य से विवाह न करके तपस्या करेगी। वह वन में चली गयी। करंधम बहुत चिंतित रहने लगा। उसका एक ही पुत्र था। उसके विवाह न करने से वह वंश-परंपरा का नाश देख रहा था। उसकी पत्नी वीरा ने किमिच्छक नामक उपवास करने का निश्चय किया। पति-पुत्र सभी उसके अनुकूल थे। करंधम ने अवीक्षित से व्रत के लिए भिक्षास्वरूप पौत्र मांगा। अवीक्षित भिक्षा देने के लिए वचनबद्ध था। अतः उसने अनिच्छापूर्वक वैशालिनी से विवाह करने की अनुमति दे दी। कुछ समय बाद वह जंगल में शिकार खेल रहा था। उसने किसी नारी का आर्तनाद सुना। दनुपुत्र दृढ़केश ने किसी सुंदरी को पकड़ रखा था। वह सुंदरी अपने को अवीक्षित की पत्नी कह रही थी। राक्षस को मारकर अवीक्षित ने उस सुंदरी का परिचय पूछा। वह वैशालिनी ही थी। उसे पूर्व काल में देवदूत ने बताया था कि अवीक्षित से वह चक्रवर्ती राजा को जन्म देगी। दृढ़केश नामक दानव के वध से प्रसन्न होकर देवताओं ने अवीक्षित को उस-सुंदरी के गर्भ से बलीपुत्र प्राप्त करने का वर दिया। वैशालिनी ने बताया, "दो दिन मैं गंगास्नान करने गयी तो एक नाग मुझे खींचकर रसातल में ले गया। वहां अनेक नागों ने मेरा आतिथ्य किया तथा मुझसे वचन लिया कि यदि मेरे भावी पुत्र के सम्मुख नाग दोषी हों और वह उन्हें मारने के लिए उद्यत हो तो मैं उसका निवारण करूं। मेरे आश्वासन देने पर वे मुझे आभूषणों से सुसज्जित करके पृथ्वी पर छोड़ गये।" उसी समय तनय नामक गंधर्व ने प्रकट होकर कहा—"राजा! यह वास्तव में मेरी पुत्री है। बालपन में अगस्त्य मुनि को रुष्ट कर देने के कारण इसका राजा विशाल के यहां शापजनित जन्म हुआ था। अब तुम इसको ग्रहण करो।" तत्काल गंधर्वों के पुरोहित तुम्बुरु ने दोनों का पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न करवाया। कालांतर में उनका एक पुत्र हुआ जिसका नाम मरुत्त रखा गया

मा० पु०, ११९-१२४

अश्वत्थ तीर्थ कैटभ के दो पापी पुत्र थे। उनका नाम पिप्पल तथा अश्वत्थ था। वे दोनों क्रमशः पीपल तथा साम-गायक ब्राह्मण का रूप धारण करके यज्ञों में सम्मिलित होते थे तथा ब्राह्मणों को खा जाते थे। मुनि सूर्य-पुत्र शनी की शरण में गये। शनी ब्राह्मण रूप में अश्वत्थ के पास गया। अश्वत्थ ने उसे निगल लिया। शनी ने उसकी आंतों की ओर देखा। वह भस्म हो गया। उसी प्रकार शनी ने ब्राह्मणवेशी पिप्पल को भी भस्म कर दिया। वह स्थान अश्वत्थ तीर्थ कहलाया।

ब्र० पु०, ११८

अश्वत्थामा अश्वत्थामा द्रोणाचार्य के पुत्र थे। (दे० द्रोण) महाभारत के युद्ध में उन्होंने सक्रिय भाग लिया था। उन्होंने भीम-पुत्र घटोत्कच को परास्त किया तथा घटोत्कच पुत्र अंजनपर्वा का वध किया। उसके अतिरिक्त द्रुपदकुमार, शत्रुंजय, बलानीक, जयानीक, जयाश्व तथा राजा श्रुताहु को भी मार डाला था। उन्होंने कुंतीभोज के दस पुत्रों का वध किया। महाभारत युद्ध में धोखे से किये गये द्रोणाचार्य के वध के विषय में जानकर अश्वत्थामा का खून खौल उठा। पूर्वकाल में द्रोण ने नारायण को प्रसन्न करके नारायणास्त्र की प्राप्ति की थी। फिर अपने बेटे अश्वत्थामा को नारायणास्त्र प्रदान करके उन्होंने किसी पर सहसा उसका आघात करने को मना किया। अश्वत्थामा ने धृष्टद्युम्न को उसी अस्त्र से मारने का निश्चय किया। धृष्टद्युम्न पर जब उन्होंने नारायणास्त्र का प्रयोग किया तब कृष्ण ने अपनी ओर के सब सैनिकों को रथ से उतरकर हथियार डालने के लिए कहा क्योंकि यही एकमात्र उसके निराकरण का उपाय था। भीम ने कृष्ण की बात नहीं मानी तो सबको छोड़कर नारायणास्त्र उसी के मस्तक पर प्रहार करने लगा। कृष्ण ने उसे बलात् रथ से उतारकर नारायणास्त्र के प्रभाव को शांत किया। अश्वत्थामा ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग किया किंतु श्रीकृष्ण तथा अर्जुन पर उसका प्रभाव नहीं हुआ, शेष समस्त सेना व्याकुल और घायल हो गयी। अश्वत्थामा बड़े असमंजस में पड़ गये, तभी व्यास ने प्रकट होकर उन्हें बताया कि श्रीकृष्ण साक्षात् विष्णु हैं, जिन्होंने आराधना से शिव को प्रसन्न कर रखा है। उन्हीं के तप से महामुनि नर (अर्जुन) प्रकट हुए। अतः अर्जुन और कृष्ण साक्षात् नरनारायण हैं। अश्वत्थामा ने मन ही मन शिव, नर और नारायण को नमस्कार किया और सेना सहित शिविर की ओर प्रस्थान किया। कर्ण के सेनापतित्व में युद्ध करते हुए अश्वत्थामा ने प्रतिज्ञा की थी कि जब तक धृष्टद्युम्न को नहीं मार डालेंगे, अपना कवच नहीं उतारेंगे।

अठारह दिन तक युद्ध चलता रहा। अश्वत्थामा को जब दुर्योधन के अधर्मपूर्वक किये गये वध के विषय में पता चला तो वे क्रोध से अंधे हो गये (दे० दुर्योधन)। उन्होंने शिविर में सोते हुए समस्त पांचालों को मार डाला। द्रौपदी को समाचार मिला तो उसने आमरण अनशन कर लिया और कहा कि वह अनशन तभी तोड़ेगी, जब कि अश्वत्थामा के मस्तक पर सदैव बनी रहनेवाली मणि उसे प्राप्त होगी (दे० द्रौपदी)। अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र छोड़ा, प्रत्युत्तर में अर्जुन ने भी छोड़ा। अश्वत्थामा ने पांडवों के नाश के लिए छोड़ा था और अर्जुन ने उसके ब्रह्मास्त्र को नष्ट करने के लिए। नारद तथा व्यास के कहने से अर्जुन ने अपने ब्रह्मास्त्र का उपसंहार कर दिया किंतु अश्वत्थामा ने वापस लेने की सामर्थ्य की न्यूनता बताते हुए पांडव परिवार के गर्भों को नष्ट करने के लिए छोड़ा। कृष्ण ने कहा—"उत्तरा को परिक्षित नामक बालक के जन्म का वर प्राप्त है। उसका पुत्र होगा ही। यदि तेरे शस्त्र-प्रयोग के कारण मृत हुआ तो भी मैं उसे जीवनदान करूंगा। वह भूमि का सम्राट होगा और तू? नीच अश्वत्थामा! तू इतने वधों का पाप ढोता हुआ तीन हजार वर्ष तक निर्जन स्थानों में भटकेगा। तेरे शरीर से सदैव रक्त की दुर्गंध निःसृत होती रहेगी। तू अनेक रोगों से पीड़ित रहेगा।" व्यास ने श्रीकृष्ण के वचनों का अनुमोदन किया। अश्वत्थामा ने कहा कि वह मनुष्यों में केवल व्यास मुनि के साथ रहना चाहता है। जन्म से ही अश्वत्थामा के मस्तक में एक अमूल्य मणि विद्यमान थी जो कि उसे दैत्य, दानव, शस्त्र, व्याधि, देवता, नाग आदि से निर्भय रखती थी। वही मणि द्रौपदी ने मांगी थी। व्यास तथा नारद के कहने से उसने वह मणि द्रौपदी के लिए दे दी।

म० भा०, द्रोणपर्व, १५६, १६० से २०१ तक, कर्णपर्व, अध्याय, ५७, सौप्तिक पर्व १-१६, श्लोक ८-९

अश्वत्थामा ने द्रौपदी के सोते हुए पुत्रों को मार डाला। अतः अर्जुन ने क्रुद्ध होकर रोती हुई द्रौपदी से कहा कि वह अश्वत्थामा का सिर काटकर उसे अर्पित करेगा। तदनंतर अर्जुन कृष्ण को सारथी बनाकर अश्वत्थामा

से युद्ध करने गये। गुरुपुत्र होने पर भी उसे केवल ब्रह्मास्त्र छोड़ना आता था, वापस लेना नहीं आता था, तथापि अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। अर्जुन ने उसे ब्रह्मास्त्र से ही काटा, फिर सृष्टि को बचाने के लिए दोनों को लौटा लिया तथा अश्वत्थामा को रस्सी में बांधकर द्रौपदी के पास ले गया। द्रौपदी ने दयार्द्र होकर उसे छोड़ने को कहा किंतु कृष्ण की प्रेरणा से अर्जुन ने उसके सिर से मणि निकालकर द्रौपदी को दी, इस प्रकार उसकी शपथ किसी सीमा तक निभ गयी और उसे छोड़ दिया। कृष्ण ने कहा—"पतित ब्राह्मण भी मारने योग्य नहीं होता, पर आततायी छोड़ा नहीं जाना चाहिए।" इस प्रकार इस उक्ति का पालन हुआ।

श्रीमद् भा०, प्रथम स्कंध, अध्याय ७

द्रोणाचार्य ने शिव को अपनी तपस्या से प्रसन्न करके उन्हीं के अंश से अश्वत्थामा नामक पुत्र को प्राप्त किया। कौरव-पांडवों के युद्ध में अश्वत्थामा ने अर्जुन पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया था। शिव-प्रदत्त पाशुपत अस्त्र से अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र का निवारण किया। पांडवों को जड़-मूल से नष्ट करने के लिए अश्वत्थामा ने गर्भवती उत्तरा पर भी वार किया था। कृष्ण ने उसे बचाया तथा पांडवों से अश्वत्थामा की मित्रता करवा दी।

शि० पु०, ७।५२

अश्वपति का उपदेश उपमन्यु का पुत्र प्राचीनशाल, पुलुष का पुत्र सत्ययज्ञ, मल्लवि का पुत्र इंद्रद्युम्न, शंकराक्ष का पुत्र जन तथा अश्वतराश्व का पुत्र बुडिल—सभी महा-गृहस्थ थे। एक बार सबके मन में आत्मा तथा ब्रह्म के प्रति जिज्ञासा उत्पन्न हुई। वे लोग अरुण के पुत्र उद्दालक के पास, जिज्ञासा-समाधान के लिए पहुंचे। स्वयं उनके समस्त प्रश्नों का समाधान करने में असमर्थ होने के कारण उद्दालक उन्हें लेकर अश्वपति के पास पहुंचा। अश्वपति ने सबसे प्रश्न किया कि उनके इष्टदेव कौन हैं। वे लोग द्युलोक, सूर्य, जल आदि को वैश्वानर आत्मा मानकर उनकी उपासना करते थे। कैकयकुमार अश्वपति ने उन्हें उपदेश दिया कि इन सभी में वैश्वानर आत्मा का वास है। उसका मस्तक द्युलोक, चक्षु, सूर्य, प्राण वायु, देह का मध्य भाग आकाश, वस्ति जल, पृथ्वी दोनों चरण हैं।

छा० उ०, अध्याय ५, खंड ११-१८ तक संपूर्ण

अश्वमेध यज्ञ विजयोपरांत पांडवों ने व्यास मुनि की प्रेरणा से अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। महा-युद्ध में पांडवगण अपना समस्त धन लुटा बैठे थे, अतः व्यास मुनि ने उन्हें हिमालय पर मरुत का इकट्ठा किया हुआ धन ले आने को कहा (दे० मरुत)। पांडवों ने वहां से अपरिमित धन-राशि लाकर हस्तिनापुर में इकट्ठी की। युधिष्ठिर को अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा दी गयी। अश्व की रक्षा के लिए अर्जुन, नगर की रक्षा के लिए भीम और नकुल तथा कुटुंब की रक्षा के लिए सहदेव की नियुक्ति की गयी। अर्जुन ने घोड़े के पीछे-पीछे प्रस्थान किया। अर्जुन ने यज्ञ के संदर्भ में त्रिगर्तों, राजा वज्रदत्त (प्राग ज्योतिषपुर के राजा) आदि को परास्त कर दिया। दुःशला अपने पौत्र के साथ अर्जुन की शरण में गयी। दुःशला के पुत्र सुरथ ने अर्जुन के आने का समाचार जानकर ही प्राण त्याग दिए थे। यह सब जानकर अर्जुन ने सैंधवों से युद्ध नहीं किया। मगधराज मेघसंधि को परास्त कर, दक्षिण-पश्चिम इत्यादि तटों पर तथा द्वारका इत्यादि होते हुए अर्जुन यज्ञस्थली पर पहुंच गये। सब राजाओं को उन्होंने चैत्र-मास की पूर्णिमा के दिन यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए आमंत्रित किया था। नियत समय पर सभी राज्यों के शासक उपस्थित हुए तथा यज्ञ, दान, दक्षिणा, आतिथ्य इत्यादि सुचारु रूप से संपन्न हुए। यज्ञ की समाप्ति पर एक नेवले ने वहां पहुंचकर कहा कि वह यज्ञ कुरु-क्षेत्र निवासी एक उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मण के सेर भर सत्तू के दान की बराबरी भी नहीं कर सकता। ब्राह्मणों ने देखा, उस नेवले की आंखें नीली थीं तथा आधा शरीर सुनहरे रंग का था। ब्राह्मणों ने चकित होकर उससे अपनी बात को स्पष्ट करने के लिए कहा। वह नेवला बोला—"कुरुक्षेत्र में एक उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मण परिवार रहता था। वे लोग छठे काल में (तीन दिन में एक बार) एक साथ भोजन करते थे। उन दिनों अकाल पड़ने से उस क्रम में भी कभी-कभी उन्हें लंघन करना पड़ता था। एक बार ब्राह्मण को एक सेर जौ की प्राप्ति हुई। उसका सत्तू बनाकर सबने अभी परोसा ही था कि ब्राह्मण अतिथि ने घर में प्रवेश किया। गृहस्थ ब्राह्मण ने अपने हिस्से का सत्तू उसे समर्पित कर दिया किंतु वह तृप्त नहीं हुआ। धीरे-धीरे ब्राह्मणी, पुत्र तथा पुत्रवधू ने भी अपना-अपना हिस्सा सहर्ष उसे समर्पित कर दिया। ब्राह्मण बहुत संतुष्ट हुआ। वास्तव में वह धर्म था, जो कि ब्राह्मण के वेश में अतिथि-रूप में उसके

घर पहुंचा था। उसके प्रसन्न होने पर वह ब्राह्मण अपने परिवारसहित विमान पर बैठकर स्वर्गलोक को चला गया। आतिथ्य-सत्कार में जो अन्न तथा जल धरती पर गिर गया था, उसकी सुगंधि पाकर मैं वहां पहुंचा। मेरे शरीर से जहां-जहां उस अन्न-जल का स्पर्श हुआ, वहां-वहां से मैं सोने का हो गया। अब प्रत्येक बृहत् यज्ञ में जाता हूं किंतु किसी की दान दी हुई वस्तुओं, अथवा अन्न-जल का प्रभाव ऐसा नहीं होता कि मेरा शेष शरीर भी स्वर्णमय हो जाय। इसीसे कहता हूं कि तुम्हारी अपेक्षा उस ब्राह्मण का दान कहीं अधिक फलदायक था।" तदुपरांत वह नेवला अंतर्धान हो गया। नेवले की भी एक कथा है—पूर्व काल में जमदग्नि ऋषि ने श्राद्ध करने का संकल्प किया। होमधेनु स्वयं ही मुनि के पास आयी और उन्होंने उसका दूध दूहा। दूध एक स्वच्छ पात्र में रखा गया। उस पात्र में धर्म ने क्रोध का रूप धारण कर प्रवेश किया था। जमदग्नि उसे पहचानकर भी क्रोध का भाव मन में नहीं लाये, अतः क्रोध पराधीन हो गया। जमदग्नि के पितरों के लिये रखे हुए दूध में उसने प्रवेश किया था; अतः पितरों के शापवश वह नेवला बन गया। शापित नेवला तभी शापमुक्त हो सकता था जब वह धर्मराज की निंदा करे। अतः युधिष्ठिर के यज्ञ की निंदा करके वह नेवले का रूप छोड़कर पुनः धर्मराज युधिष्ठिर में स्थित हो गया।

म० भा०, आश्वमेधिकपर्व,
अध्याय ३, ६५।७१-९०, ९२।४१-५३

अश्वसेन अश्वसेन तक्षक का पुत्र था। खांडववन में आग लगने पर उसकी माता ने उसे अग्नि से बचाने के लिए निगल लिया। वह उसे निगले हुए आकाश की ओर बढ़ी कि अर्जुन ने अपने वाण से उसका मस्तक छेद दिया। इन्द्र ने आंधी-वर्षा से अर्जुन को मोहित कर दिया तथा अश्वसेन संकट से बच गया।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय २२६

अश्विनीकुमार (दे० सुकन्या) राजा शर्याति ने यज्ञ का आयोजन किया। अश्विनीकुमार भी वहां आमंत्रित थे। यह देखकर इंद्र ने उनको सोमपान के अयोग्य बताया। च्यवन ने कारण जानना चाहा तो इंद्र बोला—"वैद्य सोमपान नहीं कर सकते। यदि तुम उन्हें सोमपान करवाओगे तो मैं तुम पर वज्र से प्रहार करूंगा।" च्यवन को अश्विनीकुमारों से रूप और यौवन की प्राप्ति हुई थी, फलतः वे उन्हें सोमपान कराने का निश्चय कर चुके थे। उन्होंने सोमपान करवाया। इंद्र ने वज्र छोड़ा। मुनि ने अपनी शक्ति से उसे स्तंभित कर दिया तथा अपने तपोबल द्वारा अग्नि से एक कृत्या उत्पन्न की। कृत्या से एक विशाल, भयानक असुर उत्पन्न हुआ। वह इंद्र का भक्षण करने के लिए आगे बढ़ा। इंद्र बृहस्पति की शरण में गया। बृहस्पति ने कहा—"च्यवन मुनि पराशक्ति के भक्त होने के कारण अमित तेजस्वी हैं। वही तुम्हें बचाने में समर्थ हैं।" नतमस्तक इंद्र मुनि की शरण में गया। अश्विनीकुमारों को सोमपान के चिर अधिकारी स्वीकार करके उसने क्षमा-याचना की। तभी से अश्विनीकुमार सोमपायी हो गये।

दे० भा०, ७।६।१-४२

सूर्य की पत्नी संध्या थी जिससे पुत्र श्राद्धदेव यम तथा पुत्री यमुना का जन्म हुआ। संध्या ने सूर्य के वीर्य को सहने में असमर्थता का अनुभव करने के कारण अपने ही रूप की एक महिला का निर्माण किया जिसका नाम छाया था। छाया को अपने बच्चे सौंप वह अपने पिता के पास चली गयी। पिता उसकी बात सुनकर रुष्ट हो गये। अतः वह घोड़ी का रूप धारण कर जंगल में रहने लगी। छाया ने कालांतर में दो पुत्र और एक पुत्री को जन्म दिया जिनके नाम क्रमशः सावर्णि (आठवां मनु), शनैश्चर तथा तापती रखे गये। तदनंतर उसका सौतेले बच्चों के प्रति व्यवहार बदल गया। यम ने उसे मारने के लिए लात उठायी। उसने यम का पैर नष्ट हो जाने का शाप दिया। पिता को पता चला तो वह शापमोचन तो नहीं कर पाया, पर उसने यम को तीनों लोकों का न्यायाधीश तथा स्वामी बना दिया। छाया से बहुत पूछने पर उसे संध्या के चले जाने के विषय में ज्ञात हुआ। वे अपने ताप को कम कर घोड़े के रूप में उसे खोजते हुए वन में पहुंचे। संध्या किसी भी प्रकार मैथुन के लिए तैयार नहीं हुई। अंत में उन्होंने अपने मुंह से उसके मुंह में वीर्य का स्राव किया जिससे उसकी नासिका से युगल अश्विनीकुमारों का जन्म हुआ। वे दोनों देवताओं के वैद्य बने। सूर्य अपनी दोनों पत्नियों के साथ सुखपूर्वक रहने लगे।

शि० पु०, ११।१८

अष्टावक्र उद्दालक के पुत्र का नाम श्वेतकेतु, पुत्री का नाम सुजाता तथा जामाता का नाम कहोड मुनि था।

कहोड उद्दालक के प्रिय शिष्य थे। उनसे विवाह होने के उपरांत सुजाता जब गर्भवती हुई, तब स्वाध्याय में लगे हुए कहोड से गर्भस्थ बालक ने कहा—"आप रात भर वेद पाठ करते हैं किंतु आपका उच्चारण शुद्ध नहीं है।" इस बात से क्रुद्ध होकर शिष्यों के मध्य बैठे कहोड ने बालक को शाप देते हुए कहा—"तू पेट में रहकर इतनी टेढ़ी बातें करता है, तू आठों अंगों से टेढ़ा हो जा।" अतः अष्टावक्र ने आठों अंगों से टेढ़े होकर ही जन्म लिया था। अष्टावक्र के जन्म से पूर्व कहोड राजा जनक के दरबार में शास्त्रार्थ के लिए गये। वहां बंदी से परास्त हो गये तथा बंदी ने उन्हें जल में डुबो दिया। अष्टावक्र जब जरा बड़ा हुआ तो उसे इस घटना के विषय में ज्ञात हुआ। वह तथा उसका मामा श्वेतकेतु अपने युग के महान वेदवेत्ता थे। वे दोनों पुनः राजा जनक के दरबार में पहुंचे। अष्टावक्र ने बंदी को शास्त्रार्थ में परास्त कर दिया तथा राजा से अनुरोध किया कि बंदी को वैसे ही जल में डुबा दिया जाय जैसे वह पहले विजित विद्वानों को डुबोता रहा है। बंदी ने कहा—"महाराज, मैं राजा वरुण का पुत्र हूं। आपके यज्ञ की भांति वरुण के यहां भी बारह वर्षों में पूर्ण होनेवाला यज्ञ हो रहा था। अतः यज्ञ के अनुष्ठान के लिए चुने हुए विद्वानों को मैंने जल में डुबोने के बहाने वरुण लोक में भेज दिया था। वे सभी यज्ञ देखने के उपरांत अब लौट रहे हैं—उन्हीं में कहोड मुनि भी हैं।" तभी समस्त ब्राह्मण (जिन्हें बंदी ने डुबोया था) वरुण सहित वहां प्रकट हुए। बंदी राजा की आज्ञा लेकर स्वयं ही समुद्र के जल में समा गये। कहोड ने कहा—"लोग पुत्र की आकांक्षा इसीलिए करते हैं कि जो काम वे स्वयं न कर पायें, उनका पुत्र कर दे, जैसे अष्टावक्र ने किया।" घर पहुंचकर पिता की आज्ञा से अष्टावक्र ने समंगा नदी में स्नान किया तथा उसके समस्त अंग सीधे हो गये।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय १३२, १३३, १३४

तपस्वी अष्टावक्र वदान्य ऋषि की कन्या, सुप्रभा से विवाह करना चाहते थे। कन्या की याचना करने पर ऋषि ने कहा कि वे उससे सुप्रभा का विवाह कर देंगे किंतु पहले अष्टावक्र को कुबेर की अलकापुरी लांघकर कैलास पर्वत के दर्शन करते हुए उत्तर दिशा में स्थित नीले वन में एक दीक्षापरायण वृद्धा के दर्शन करने होंगे। तदुपरांत ही पाणिग्रहण संस्कार संभव है। अष्टावक्र अलकापुरी तथा कैलाश पर्वत से होते हुए उत्तर स्थित एक सुंदर आश्रम में पहुंचे। उस आश्रम के द्वार पर सात सुंदर कन्याओं ने उनका स्वागत किया। कक्ष में पहुंचने पर एक कुरूपा वृद्धा के दर्शन हुए। अष्टावक्र ने कहा कि उन सबमें से जो भी दीक्षापरायणा हो, वह रह जाय, शेष सब चली जायें, अतः मात्र वह बूढ़ी स्त्री कमरे में रह गयी। अष्टावक्र सोना चाहते थे। एक शैया पर वे सो गये। दूसरी पर वह वृद्धा। आधी रात बीतने पर वृद्धा ने उसकी शैया पर पहुंचकर कामातुरता प्रकट की—किंतु अष्टावक्र ने निर्विकार भाव से उसे लौटा दिया। अगली रात को भी वैसा ही हुआ। अष्टावक्र के यह कहने पर कि वह सुप्रभा से विवाह करना चाहता है तथा उस महिला का वैसा व्यवहार अनुचित है। उस नारी ने कहा कि वह आजन्म कुमारी थी तथा उससे विवाह करना चाहती थी। अष्टावक्र ने देखा, उसका असौंदर्य तिरोहित हो गया था—वह कन्या रूप में दिखलाई पड़ रही थी। अष्टावक्र ने उसका कारण जानना चाहा कि वह बार-बार रूप क्यों और कैसे बदलती थी तो उस नारी ने वास्तविक रूप में प्रकट होकर कहा कि वह उत्तर दिशा थी तथा उसकी परीक्षा ले रही थी। वह परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया। वहां से लौटने पर वदान्य ऋषि ने अपनी कन्या सुप्रभा का विवाह अष्टावक्र से कर दिया।

म० भा०, दानधर्म पर्व, अध्याय १९-२१

असमंजस इक्ष्वाकु वंश में एक राजा सगर हुए थे। उन्होंने अपने पुत्र असमंजस को निर्वासन का दंड दिया था। असमंजस राह में खेलते हुए बालकों को उठाकर सरयू में फेंक दिया करता था तथा डूबते बच्चों को देखकर प्रसन्न होता था। राजा सगर को जब मालूम पड़ा तो उन्होंने असमंजस को उसकी पत्नी समेत राज्य से निर्वासित कर दिया। असमंजस हाथ में कुदाल लेकर वन और पर्वतों में घूमने लगा।

बा० रा०, अयोध्या कांड, सर्ग ३६। १६-२५

असितबंधकपुत्र भगवान बुद्ध नालंदा गये। वहां उन दिनों अकाल और दुर्भिक्ष भी था। जैन धर्म प्रवर्तक महावीर भी अपने भिक्षुओं सहित वहीं रह रहे थे। उन्होंने असितबंधक पुत्र ग्रामणी से कहा कि वह गौतम से शास्त्रार्थ करके कीर्ति कमाये। बुद्ध से 'वाद' करने पर वह इतना प्रभावित हुआ कि उसने बौद्ध धर्म में दीक्षा ले ली।

बु० च०, २।३

अहल्या गौतम अपनी पत्नी अहल्या के साथ तप करते थे। एक दिन गौतम की अनुपस्थिति में इंद्र ने मुनिवेश में आकर अहल्या से संभोग की इच्छा प्रकट की। अहल्या यह जानकर कि इंद्र स्वयं आए हैं और उसे चाहते हैं—इस अधम कार्य के लिए उद्यत हो गयी। जब इंद्र लौट रहे थे तब गौतम वहां पहुंचे। गौतम के शाप से इंद्र के अंडकोश नष्ट हो गये और अहल्या अपना शरीर त्याग, केवल हवा पीती हुई सब प्राणियों से अदृश्य होकर कई हजार वर्ष के लिए उसी आश्रम में राख के ढेर पर लेट गयी। गौतम ने कहा कि इस स्थिति से उसे मोक्ष तभी मिलेगा जब दाशरथी राम यहां आकर उसका आतिथ्य ग्रहण करेंगे। गौतम स्वयं हिमवान् के एक शिखर पर चले गये और तपस्या करने लगे।

इंद्र ने स्वर्ग में पहुंचकर समस्त देवताओं को यह बात बतायी, साथ ही यह भी कहा कि ऐसा अधम काम करके गौतम को श्राप देने के लिए बाध्य कर, इंद्र ने गौतम के तप को क्षीण कर दिया है। इंद्र का अंडकोष नष्ट हो गया था। अत: देवताओं ने मेष(भेड़ा) का अंडकोष इंद्र को प्रदान किया। तभी से इंद्र मेषवृषण कहलाए तथा वृषणहीन भेड़ा अर्पित करना पुष्कल-फलदायी माना जाने लगा।

बनवास के दिनों में राम-लक्ष्मण ने, तपोबल से प्रकाशमान, आश्रम में अहल्या को ढूंढ़कर उसके चरण-स्पर्श किए। अहल्या उनका आतिथ्य-सत्कार कर शापमुक्त हो गयी तथा गौतम के साथ सानंद विहार करने लगी।

बा० रा०, बाल कांड, सर्ग ४८-४-३३, ४६।-१-२४

ब्रह्मा ने एक अनुपम सुंदरी कन्या का निर्माण किया जिसे पोषण के लिए गौतम को दे दिया। उसके युवती होने पर गौतम निर्विकार भाव से उसे लेकर ब्रह्मा के पास पहुंचा। अनेक अन्य देवता भी उसे भार्या-रूप में प्राप्त करना चाहते थे। ब्रह्मा ने सबसे कहा कि पृथ्वी की दो बार परिक्रमा करके जो सबसे पहले आयेगा उसी को अहल्या दी जायेगी। सब देवता परिक्रमा के लिए चले गये और गौतम ने अर्धप्रसूता कामधेनु की दो प्रदक्षिणाएं कीं। उसका महत्त्व सात द्वीपों से युक्त पृथ्वी की प्रदक्षिणा के समान ही माना जाता है। ब्रह्मा ने अहल्या से उसका विवाह कर दिया। एक दिन इंद्र गौतम का रूप धारण कर उसके अंत:पुर में पहुंच गया। अहल्या तथा अन्य रक्षक उसे गौतम ही समझते रहे, तभी गौतम और उनके शिष्य वहां पहुंचे। गौतम ने रुष्ट होकर अहल्या को सूखी नदी होने का शाप दिया, साथ ही कहा कि गौतमी से मिल जाने पर वह पूर्ववत् हो जायेगी। इंद्र को भी पाप शमन के निमित्त गौतमी में स्नान करना पड़ा। 'गौतमी-स्नान' के उपरांत वह सहस्राक्ष हो गया।

ब्र० पु०, ८७

अहि इंद्र ने जल रोकने वाले अहि का हनन अपने वज्र से कर दिया —जिससे जलधाराएं समुद्र में मिलने लगीं।

ऋ० २।१९।१-२, तै० ब्रा०, ३।६।६

एक बार त्वष्टा को क्रोध आया कि इंद्र बिना बुलाए ही सोम पी गया। उसने कलश में बचे सोम को अग्नि में उड़ेल दिया, साथ ही कहा—"हे अग्नि! तेरी इंद्र से शत्रुता बढ़े।" अग्नि में पहुंचते-पहुंचते सोम ने मनुष्य-रूप धारण कर लिया। वह बिना पैरों के उत्पन्न हुआ था, अत: 'अहि' कहलाया। उसको दनु तथा दनायु ने अपना पुत्र माना, अत: वह दानव कहलाया। सोम बहने से उसका निर्माण हुआ था, अतः वह 'वृत्र' कहलाया।

श० प० ब्रा०, १।६।३।८-६

एक अंगिरस समिधाएं लेने गया। उसने ऊर्णायुगंधर्व से साम गायन सीखा, किंतु सबके पूछने पर उसे मौलिक उद्भावना बताया। इस कारण से साम गायन से सबने स्वर्ग प्राप्त किया; किंतु मिथ्या भाषण के कारण वह स्वर्ग नहीं प्राप्त कर पाया तथा अहि बन गया।

जै० ब्रा०, ३।७७

आकूति आकूति स्वयंभू मनु की कन्या थी। यद्यपि उसके दो भाई थे तथापि उसकी मां की इच्छा से उसका पुत्रिका धर्म से विवाह किया गया था जिसके अनुसार पहला पुत्र माता-पिता को देना पड़ता है। उसने एक कन्या तथा एक पुत्र को एक साथ ही जन्म दिया था। पुत्र साक्षात् यज्ञरूपधारी विष्णु थे और कन्या लक्ष्मी थी। यज्ञरूप को उसने मनु को दे दिया, दक्षिणा नामक कन्या उसके पास रही। दक्षिणा ने यज्ञरूप को ही पतिरूप में पाने की कामना की। अत: उन दोनों का विवाह हो गया। उसके बारह पुत्र उत्पन्न हुए।

श्रीमद् भा०, चतुर्थ स्कंध, अध्याय १, श्लोक १-६

आत्रेय अत्रि के पुत्र आत्रेय इंद्र की सभा का ऐश्वर्य देखकर उसकी प्राप्ति के लिए लालायित हो उठे। उन्होंने त्वष्टा को बुलाकर अपने लिए माया से वैसी ही इंद्र-

पुरी का निर्माण करवाया तथा इंद्र का आसन ग्रहण किया। पृथ्वी पर इंद्र को देखकर दैत्यों ने आक्रमण कर दिया। आत्रेय अत्यंत त्रस्त हुए। उन्होंने त्वष्टा से माया समेटने को कहा तथा देवताओं से क्षमा-याचना की।

ब्र० पु०, १४०

आदित्य ब्रह्मा के मारीचि नामक पुत्र थे। उनके पुत्र का नाम कश्यप हुआ। कश्यप का विवाह दक्ष की तेरह कन्याओं से हुआ था। प्रत्येक कन्या की संतति विशिष्ट वर्ग की हुई। उदाहरणत: अदिति ने देवताओं को जन्म दिया तथा दिति ने दैत्यों को। इसी प्रकार दनु से दानव, विनता से गरुड़ और अरुण, कद्रू से नाग मुनि तथा गंधर्व, रवसा से यक्ष और राक्षस, क्रोध से कुल्याएं, अरिष्टा से अप्सराएं, इरा से ऐरावत और हाथी, श्येनी से श्येन तथा भास, शुक आदि पक्षी उत्पन्न हुए। दैत्य दानव और राक्षस विमाता-पुत्र देवताओं से ईर्ष्या का अनुभव करते थे; अत: उन लोगों का परस्पर संघर्ष होता रहता था। एक बार वर्षो तक पारस्परिक युद्ध के उपरांत देवता पराजित हो गये। अदिति ने दुखी होकर सूर्य की आराधना की। सूर्य ने सहस्र अंशों सहित अदिति के गर्भ से जन्म लेकर असुरों को परास्त कर देवताओं को त्रिलोक का राज्य पुन: दिलाने का आश्वासन दिया। अदिति गर्भकाल में भी पूजापाठ, व्रत में लगी रहती थी। एक बार कश्यप ने रुष्ट होकर कहा—"यह व्रत रख्कर तुम गर्भस्थ अंडे को मार डालना चाहती हो क्या ?" इस कारण से सूर्य 'मार्तंड' कहलाया। कालांतर में सूर्य ने अदिति की कोख से जन्म लिया, इस कारण से आदित्य कहलाया। सूर्य की क्रूर दृष्टि के तेज से दग्ध होकर असुर भस्म हो गये। देवताओं को उनका खोया हुआ राज्य पुन: प्राप्त हो गया। विश्वकर्मा ने प्रसन्न होकर अपनी पुत्री संज्ञा का विवाह सूर्य (विवस्वान्) से कर दिया।

दे० वैवस्वत मनु
मा० पु०, ९९-१०२

सूर्य की बारह मूर्तियां हैं : इंद्र, धाता, पर्जन्य, त्वष्टा, पूषा, अर्यमा, भग, विवस्वान् विष्णु, अंश, वरुण और मित्र। ये मूर्तियां क्रमश: देवराजत्व, विविध प्रजा सृष्टि, बादलों, औषधि, वनस्पतियों, अन्न, वायु संचालन, देहधारी शरीरों, अग्नि, अवतरण, वायु-आनंद, जल तथा चंद्र सरोवर के तट पर स्थित हैं। एक बार मित्र तथा वरुण को तपस्या करता देख नारद बहुत विस्मित हुए। उन्होंने मित्र से पूछा—"आप दोनों तो स्वयं पूजनीय हैं, फिर किसकी पूजा कर रहे हैं ?" मित्र ने उत्तर दिया—"सर्वोपरि स्थान सत्-असत् रूप देवपितृकर्म में पूजित ब्रह्मा का है, उसी की हम पूजा कर रहे हैं।"

दक्ष की साठ कन्याओं में से अदिति ने तीनों भुवनों के स्वामी देवों को जन्म दिया था। अदिति की बहन दिति की संतान दानव थे। उन्होंने देवों को अत्यंत त्रस्त किया तो अदिति ने सूर्य की उपासना की। सूर्य के प्रकट होने पर उसने सूर्य से यह वर मांगा कि वह उनके त्रस्त बेटों का एक अंश से भाई बनकर जन्म लें तथा दैत्यों-दानवों का नाश करें। गर्भिणी होने पर वह उपवास इत्यादि का ध्यान रखती रही। उसकी कठोर दिनचर्या को लक्ष्य करके कश्यप ने कहा—"क्यों अपना गर्भस्थ अंडा मार रही हो ?"

अदिति ने कहा—"यह नहीं मरा है। यह तो शत्रुघाती होगा। अत: जन्म के उपरांत बालक का नाम मार्तंड पड़ गया।

ब्र० पु०, ३०-३२

आनंद आनंद बोधिसत्व के साथ स्वर्ग में उत्पन्न होकर, वहां से च्युत हुए तथा उन्होंने अमृतोदन शाक्य के घर में जन्म लिया। भगवान के महाभिनिष्क्रमण के उपरांत उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की। तदनंतर एक बार भगवान बुद्धि उपस्थापक की खोज कर रहे थे। अनेक भिक्षुक उक्त पद की प्राप्ति के लिए इच्छुक थे। आनंद निर्विकार थे। बुद्धि ने उन्हें ही उपस्थापक नियुक्त किया। आनंद ने कार्यभार स्वीकार करने से पूर्व आठ वर मांगे जिनके अनुसार भगवान उन्हें अच्छे वस्त्रादि नहीं देंगे, न साथ आमंत्रण पर ले जायेंगे किंतु आनंद के लिए वे सदैव गम्य रहेंगे।

बु० च०, ४।२

आप्त्या अग्नि के चार स्वरूप थे। देवताओं ने यज्ञ के लिए अग्नि को चुना तो उसके प्रथम तीन स्वरूप होता बनने के भय से भागकर इधर-उधर छुप गये। उसका एक स्वरूप जल में छुपा हुआ था जिसे देवताओं ने बलात् बाहर निकाला। अग्नि ने बाहर निकलकर जलों पर थूका कि वे उसे छुपाकर नहीं रख पाये। अग्नि ने अंगार से जलों का अभिपातन किया तो 'एकत' की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार दूसरी बार में द्वित तथा तीसरी बार में त्रित की

उत्पत्ति हुई। जल से उत्पन्न होने के कारण वे आप्त्या कहलाते हैं। देवों ने त्रित पर अपने पापों को लेप दिया।

यजु० वे० १-२३, श० प० ब्रा० १।२।३।१-२, तै० ब्रा० ३।२।८।११, तै० ब्रा० ३।७।१२।५

आर्या आर्या देवी नित्य ब्रह्मचारिणी थी। कुशिकवंश से संबद्ध वह कौशिकी भी कहलाती थी। उसी को नारायणी भी कहते हैं। वह यशोदा की कोख से जन्म लेकर कंस के हाथों शिला पर पटकी गयी थी किंतु शिला तक पहुंचने से पूर्व ही आकाश में चली गयी। नारायण के वर से उसने चार भुजाएं, त्रिशूल, कमल तथा अमृतपात्र प्राप्त किये। वह अनेक रूप धारण करके भक्तों की रक्षा करती है। वही निद्रा, क्षत्रिया तथा षड्कार है।

हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व, २-३।-

आर्ष्टिषेण तीर्थ प्राचीन काल में आर्ष्टिषेण गुरुकुल में रहकर वेदों का अध्ययन करते रहे तथापि उनसे पूरे वेद नहीं पढ़े गये। खिन्न होकर उन्होंने सरस्वती नदी के तट पर बड़ी भारी तपस्या की। वे सिद्ध वेदज्ञ माने जाने लगे। उन्होंने उस तीर्थ को दो वर दिए। पहला यह कि उसमें स्नान करके सबकी मनोकामना पूरी होगी और दूसरा यह कि वहां सर्प का भय नहीं रहेगा तथा वह तीर्थ कुछ समय के लिए मनुष्यों के लिए विशेष लाभप्रद रहेगा। इसी कारण से वह आर्ष्टिषेण तीर्थ कहलाया।

म० भा०, शल्यपर्व, अ० ४०, श्लोक १-१२

आसंदिव विप्र आसंदिव जब विवाह के योग्य हुआ तो उसे रात के समय एक राक्षसी उठाकर ले गयी। वह स्वेच्छा से अपना रूप धर सकती थी। पहले तो वह युवती के रूप में उसके साथ पृथ्वी-भ्रमण करती रही, फिर अचानक वृद्धा-रूप धारण करके मां बन बैठी। एक ब्राह्मण ने अपनी कन्या का विवाह आसंदिव से कर दिया। वह उनकी सुरक्षा के लिए चिंतित रहने लगा। उसने विष्णु को आराधना से प्रसन्न कर लिया। विष्णु ने चक्र से राक्षसी को मारकर ब्राह्मण को उसके घर पहुंचा दिया।

ब्र० पु०, १६७

आस्तीक सर्पों को उनकी मां कद्रू ने जनमेजय यज्ञ में भस्म होने का शाप दिया था (दे० कश्यप)। शापित सर्प ब्रह्मा की शरण में गये। ब्रह्मा ने वासुकी से कहा कि वह अपनी जरत्कारु नामक कन्या का विवाह जरत्कारु नामक मुनि से कर दे तो उनका पुत्र सर्पों की रक्षा करेगा (दे० जरत्कारु)। जरत्कारु मुनि ने सोद्देश्य विवाह करते हुए कहा कि यदि सर्पकन्या जरत्कारु मुनि की इच्छा के विरुद्ध कोई भी काम करेगी तो वे उसका त्याग कर देंगे। कालांतर में एक दिन मुनि उसे न जगाने का आदेश देकर सो गये। सायं होने पर वह सोचने लगी कि संध्या न करने पर कर्मलोप होगा, जगाने पर उसका परित्याग होगा। सोच-विचारकर उसने कर्मलोप को अधिक घातक मानकर उन्हें जगा दिया। फलत: मुनि ने उसे छोड़ दिया। वह भाई के पास चली गयी। भाई को यह बताने पर कि उसे गर्भ है (अस्ति), उसके पुत्र का नाम आस्तीक पड़ा।

दे०भा०, २।११-१२

□

कौशिकवंशी पिप्पलाद का पुत्र वेदों का परम विद्वान था। उसके जप से प्रसन्न होकर देवी सावित्री ने उसे अन्य ब्राह्मणों से ऊपर शुद्ध ब्रह्मपद प्राप्त करने का वर दिया। साथ ही कहा कि यम, मृत्यु तथा काल भी उससे धर्मानुकूल वाद-विवाद करेंगे। धर्म ने प्रकट होकर उससे कहा कि वह शरीर त्याग कर पुण्य लोक प्राप्त करे, किंतु ब्राह्मण ने जिस शरीर के साथ तप किया था, उसका परित्याग कर वह कोई भी लोक ग्रहण करने के लिए तैयार नहीं हुआ। यम, मृत्यु तथा काल ने भी प्रकट होकर ब्राह्मण को बताया कि उसके पुण्यों का फल प्राप्त होने का समय आ गया है। ब्राह्मण उनका आतिथ्य कर रहा था। तभी तीर्थाटन करते हुए राजा इक्ष्वाकु वहां जा पहुंचे। उनका भी समुचित सत्कार कर ब्राह्मण ने सबकी इच्छा जाननी चाही। राजा ब्राह्मण को अमूल्य रत्न देना चाहते थे। ब्राह्मण ने धन-धान्य रत्नादि लेने से इंकार कर दिया और कहा—"मैं दान लेने वाला प्रवृत्त ब्राह्मण नहीं हूं। मैं तो प्रतिग्रह से निवृत्त ब्राह्मण हूं। आप जो चाहें सेवा कर सकता हूं। राजा इक्ष्वाकु ने उससे सौ वर्ष तक लगातार किए गये तप का फल मांगा। ब्राह्मण ने देना स्वीकार कर लिया। राजा ने पूछा—"तप का फल क्या है?"

ब्राह्मण ने उत्तर दिया—"मैं निष्काम तपस्वी हूं, अतः 'फल' क्या है, नहीं जानता।"

राजा बोला—"जिसका स्वरूप नहीं मालूम, ऐसा फल मैं भी नहीं लूंगा—तुम मेरे पुण्य-फलों सहित उसे पुनः ग्रहण करो।"

ब्राह्मण मिथ्याभाषी नहीं था। अतः उसने दी हुई वस्तु वापस लेनी स्वीकार नही की। राजा क्षत्रिय होने के नाते दान नहीं ले सकता था। ब्राह्मण ने कहा—"इस विषय में उसे पहले ही सोचना चाहिए था।" राजा ने सुझाया कि दोनों अपने शुभकर्मों के फल एकत्र करके सहभोगी की तरह रहें। उसी समय विकृत और विरूप नामक दो भयानक व्यक्ति (एक-दूसरे से गुत्थमगुत्था) वहां पहुंचे। वे दोनों राजा इक्ष्वाकु से न्याय करने का आग्रह करने लगे। विरूप ने बताया कि पूर्व काल में विकृत ने एक गाय ब्राह्मण को दान दी थी। उसका फल विरूप ने उससे मांग लिया था। कालांतर में विरूप ने दो गाय बछड़ों सहित दान दी जिनका फल प्राप्त कर वह विकृत से लिया पुण्य-फल लौटा देना चाहता है किंतु विकृत लेने के लिए तैयार नहीं है। वह कहता है कि उसने दान दिया था, ऋण नहीं। राजा असमंजस में पड़ गया। उसने उन्हें थोड़े समय के लिए रुकने को कहा। ब्राह्मण पुनः बोला—"ठीक है, दान दी चीज ऋण नहीं होती। उसे वापस नहीं लिया जाता। यदि तुम स्वयं ही मांगे हुए फल अब ग्रहण नहीं करोगे तो मैं तुम्हें शाप दे दूंगा।" राजा चिंतातुर हो उठा। उसने जीवन में पहली बार अपना हाथ ब्राह्मण के सामने पसार दिया। ब्राह्मण ने समस्त फल प्रदान किए। राजा ने कहा—"मेरे हाथ पर संकल्प जल पड़ा हुआ है। हम दोनों के पुण्यों का फल दोनों के लिए समान रहे।"

विरूप और विकृत ने प्रकट होकर कहा—"हम दोनों काम और क्रोध हैं। हमने धर्म, काल, मृत्यु और यम

के साथ मिलकर नाटक रचा था। आप दोनों को एक समान लोक प्राप्त होंगे।"
मन को जीतकर दृष्टि को एकाग्र करके दोनों समाधि में स्थित हो गये। कालांतर में ब्राह्मण के ब्रह्मरंध्र का भेदन करके एक ज्योतिर्मय विशाल ज्वाला निकली जो स्वर्ग की ओर बढ़ी। ब्रह्मा ने उसका स्वागत किया। तदनंतर वह तेज पुंज ब्रह्मा के मुखारविंद में प्रविष्ट हो गया। उसके पीछे-पीछे उसी प्रकार राजा ने भी ब्रह्मा के मुखारविंद में प्रवेश किया।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय १९९-२००,

इंद्र एक बार अनावृष्टि के कारण अकाल पड़ा। ऋषिगण जीवित थे, तथा तपस्यारत थे। उन्हें निश्चित देखकर इंद्र वहां पर प्रकट हुए और उनसे पूछने लगे कि वे किस प्रकार जीवित हैं? ऋषिगण बोले—"मात्र वृष्टि ही मनुष्य के जीवन का साधन नहीं है। प्रकृति हर स्थिति और ऋतु के अनुकूल मनुष्य के जीवित रहने का प्रबंध कर देती है। उदाहरण के लिए मरुभूमि में भी कुछ न कुछ खाद्य उपलब्ध होता ही है तथापि अनावृष्टि कष्टकर अवश्य रहती है।" ऋषिगण पुन: तपरत हो गये।

ऋ० मंडल ६

प्रजापति की उक्ति थी कि पापरहित, जराशून्य, मृत्यु-शोक आदि विकारों से रहित आत्मा को जो कोई जान लेता है, वह संपूर्ण लोक तथा सभी कामनाओं को प्राप्त कर लेता है। प्रजापति की उक्ति सुनकर देवता तथा असुर दोनों ही उस आत्मा को जानने के लिए उत्सुक हो उठे, अत: देवताओं के राजा इंद्र तथा असुरों के राजा विरोचन परस्पर ईर्ष्याभाव के साथ हाथों में समिधाएं लेकर प्रजापति के पास पहुंचे। दोनों ने बत्तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य पालन किया, तदुपरांत प्रजापति ने उनके आने का प्रयोजन पूछा। उनकी जिज्ञासा जानकर प्रजापति ने उन्हें जल से आपूरित शकोरे में देखने के लिए कहा और कहा कि वही आत्मा है। दोनों सकोरों में अपना-अपना प्रतिबिंब देखकर, संतुष्ट होकर चल पड़े। प्रजापति ने सोचा कि देव हों या असुर, आत्मा का साक्षात्कार किये बिना उसका पराभव होगा। विरोचन संतुष्ट मन से असुरों के पास पहुंचे और उन्हें बताया कि आत्मा (देह) ही पूजनीय है। उसकी परिचर्या करके मनुष्य दोनों लोक प्राप्त कर लेता है।
देवताओं के पास पहुंचने से पूर्व ही इंद्र ने सोचा कि सकोरे में आभूषण पहनकर सज्जित रूप दिखता है, खंडित देह का खंडित रूप, अंधे का अंधा रूप, फिर यह अजर-अमर आत्मा कैसे हुई? वे पुन: प्रजापति के पास पहुंचे। प्रजापति ने इंद्र को पुन: बत्तीस वर्ष अपने पास रखा तदुपरांत बताया—"जो स्वप्न में पूजित होता हुआ विचरता है, वही आत्मा, अमृत, अभय तथा ब्रह्म हैं।" इंद्र पुन: शंका लेकर प्रजापति की सेवा में प्रस्तुत हुए। इस प्रकार तीन बार बत्तीस-बत्तीस वर्ष तक तथा एक बार पांच वर्ष तक (कुल १०१ वर्ष तक) इंद्र को ब्रह्मचर्यपूर्वक रखकर प्रजापति ने उन्हें आत्मा के स्वरूप का पूर्ण ज्ञान इन शब्दों में करवाया—
"यह आत्मा स्वरूप स्थित होने पर अविद्याकृत देह तथा इंद्रिय मन से युक्त है। सर्वात्मभाव की प्राप्ति के उपरांत वह आकाश ने समान विशुद्ध हो जाता है। आत्मा के ज्ञान को प्राप्त कर मनुष्य कर्तव्य-कर्म करता हुआ अपनी आयु की समाप्ति कर ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है और फिर नहीं लौटता।"

छा० उ०, अध्याय ८, खंड ७-१५।-

देवताओं का राजा इंद्र कहलाता था। उसे मेषवृषण भी कहते हैं (दे० अहल्या)। राम-रावण युद्ध देखकर किन्नरों ने कहा कि यह युद्ध समान नहीं है क्योंकि रावण के पास तो रथ है और राम पैदल हैं। अत: इंद्र ने अपना रथ राम के लिए भेजा, जिसमें इंद्र का कवच, बड़ा धनुष, बाण तथा शक्ति भी थे। विनीत भाव से हाथ जोड़कर मातलि ने रामचंद्र से कहा कि वे रथादि वस्तुओं को ग्रहण करें।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग १०३,
श्लोक, २-१३

युद्ध-समाप्ति के बाद राम ने मातलि को आज्ञा दी कि वह इंद्र का रथ आदि लौटाकर ले जाय।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ११५,
श्लोक, ४

एक बार इंद्र मदिरापान कर उन्मत्त हो गये। वे एकांत में रंभा के साथ क्रीड़ा कर रहे थे, तभी दुर्वासा मुनि अपने शिष्यों के साथ उनके यहां पहुंचे। इंद्र ने अतिथि-सत्कार किया। दुर्वासा ने आशीर्वाद के साथ एक पारिजात पुष्प इंद्र को दिया। वह पुष्प विष्णु से उपलब्ध हुआ था। इंद्र को ऐश्वर्य का इतना मद था कि उन्होंने

वह पुष्प अपने हाथी के मस्तक पर रख दिया। पुष्प के प्रभाव से हाथी अलौकिक गरिमायुक्त होकर जंगल में चला गया। इंद्र उसे संभालने में असमर्थ रहे। दुर्वासा ने उन्हें श्रीहीन होने का शाप दिया। अमरावती भी अत्यंत भ्रष्ट हो चली। इंद्र पहले बृहस्पति की और फिर ब्रह्मा की शरण में पहुंचे। समस्त देवता विष्णु के पास गये। उन्होंने लक्ष्मी को सागर-पुत्री होने की आज्ञा दी। अत: लक्ष्मी सागर में चली गयी। विष्णु ने लक्ष्मी के परित्याग की विभिन्न स्थितियों का वर्णन करके उन्हें सागर-मंथन करने का आदेश दिया। मंथन से जो अनेक रत्न निकले, उनमें लक्ष्मी भी थी। लक्ष्मी ने नारायण को वरमाला देकर प्रसन्न किया।

दे० भा०, ९।४०-४१।-

सहस्रार नामक राजा की पत्नी मानससुंदरी जब गर्भवती हुई तो उदास रहने लगी। राजा के पूछने पर उसने बताया कि इंद्र का वैभव देखने की उसकी उत्कट अभिलाषा थी। राजा ने उसे तुरंत इंद्र की ऋद्धि के दर्शन कराये। फलस्वरूप उसकी कोख से जिस बालक ने जन्म लिया उसका नाम इंद्र ही रखा गया। वानरेंद्र इंद्र के वैभव के विषय में सुनकर लंका के अधिपति मालि ने अपने छोटे भाई सुमाली के साथ इंद्र पर आक्रमण किया। अनेक सैनिकों के साथ माली मारा गया। सुमाली ने भागकर पाताल लंकापुर में प्रवेश किया। तदनंतर इंद्र वास्तव में 'इंद्रवत्' हो गया।

पउ०च०, ७।१-४१।-

इंद्रजित इंद्रजित रावण का बेटा था। उसने राम की सेना से मायावी युद्ध किया था। कभी अंतर्धान हो जाता, कभी प्रकट हो जाता। उसने राम-लक्ष्मण के अंग-प्रत्यंगों को छेद डाला था। विभीषण प्रज्ञास्त्र द्वारा उन दोनों को होश में लाया तथा सुग्रीव ने अभिमंत्रित विशल्या नामक औषधि से उन्हें स्वस्थ किया। विभीषण ने कुबेर की आज्ञा से गुह्यक जल श्वेतपर्वत से लाकर दिया, जिससे नेत्र धोकर अदृश्य को भी देखा जा सकता था। सभी प्रमुख योद्धाओं ने जल का प्रयोग किया तथा इंद्रजित को मार डाला।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय २८८-२८९,

इंद्रतीर्थ देवराज इंद्र ने सौ यज्ञों का अनुष्ठान किया था। अत: वे शतक्रतु नाम से विख्यात हुए तथा जहां यज्ञ किये थे, वह स्थान इंद्र-तीर्थ कहलाने लगा। इस तीर्थ को सर्वपापहारी भी कहते हैं।

म० भा०, शल्यपर्व, अध्याय ४९, श्लोक १-६

वृत्रासुर-वध के पश्चात् ब्रह्महत्या साकार रूप में इंद्र के पीछे पड़ गयी। इंद्र महासागर में कमल की नाल में तंतु रूप में जा छिपा। ब्रह्महत्या उसी के तट पर रहने लगी। ब्रह्मा ने देवताओं से कहा कि वे ब्रह्महत्या को कोई निर्दिष्ट स्थान दे दें। इसी मध्य गौतमी में स्नान करके इंद्र अपना पाप नष्ट करके अपना पद पुन: ग्रहण करें। देवताओं ने ऐसा ही किया किंतु इंद्र पहले जहां स्नान करने गये, वहां गौतम ने इंद्र का अभिषेक करने पर समस्त देवताओं को भस्म करने की बात कही। देवता गौतमी को छोड़कर मांडव्य की शरण में गये। मांडव्य ऋषि ने कहा कि इंद्र का अभिषेक जहां भी किया जायेगा वहां भयंकर विघ्न उत्पन्न होंगे। देवताओं की पूजा से प्रसन्न होकर ऋषि ने अपने आशीर्वाद से भावी विघ्नों का शमन किया। ब्रह्मा ने कमंडलु के जल से इंद्र का अभिषेक किया। जल पुण्या नदी के रूप में गौतमी से जा मिला। गौतमी में जिस स्थान पर स्नान कर इंद्र पाप मुक्त हुआ, वह स्थान इंद्रतीर्थ नाम से विख्यात है।

ब्र० पु०, ९६

इंद्रद्युम्न उज्जयिनी का राजा इंद्रद्युम्न सर्वगुणसंपन्न तथा अत्यंत लोकप्रिय था। एक बार उसके मन में प्रश्न उठा कि मुक्ति देनेवाले विष्णु की आराधना किस प्रकार करनी चाहिए। अनेक शास्त्रों का अध्ययन कर वह सेवक, सेना, आदि सहित अपनी नगरी से चलकर दक्षिण समुद्र के तट पर पहुंचा। पुरुषोत्तम क्षेत्र में उसने कृष्ण, बलराम, तथा सुभद्रा की स्थापना की। राजा के वहां जाने का कारण यह था कि एक बार लक्ष्मी ने मनुष्य के मोक्ष प्राप्त करने का साधन पूछा था। जनार्दन ने बताया था कि पुरुषोत्तम नामक तीर्थ साधना और मुक्ति-प्राप्ति का सर्वश्रेष्ठ स्थान है। वहां मुनि गंधर्व, देवता, मनुष्य आदि में सर्वोत्तम कोटि के लोग रहते हैं, अत: वह पुरुषोत्तम कोटि का तीर्थ कहलाता है। पूर्वकाल में वहां इंद्रनीलमणि की प्रतिमा थी जिसके दर्शन मात्र से लोग निष्काम हो जाते थे और यम अपना काम नहीं कर पाता था। अत: यमराज की विनय पर ब्रह्मा ने उसे लुप्त कर दिया था। इंद्रद्युम्न अत्यंत चिंतित था कि उसे किस प्रकार की प्रतिमा का निर्माण करना चाहिए। रात्रि में

हरि ने उसे स्वप्न में दर्शन दिये तथा बताया कि समुद्र तट पर स्थित महावृक्ष है। राजा प्रातः कुठार उठाकर अकेला वहां पहुंचे, पेड़ काटने पर वह सब जान लेगा। वृक्ष काटने पर राजा को ब्राह्मण-वेश में विष्णु तथा विश्वकर्मा के दर्शन हुए। ब्राह्मणवेशी विष्णु की आज्ञा से विश्वकर्मा ने बलराम, कृष्ण तथा सुभद्रा की तीन प्रतिमाओं का निर्माण किया। तदनंतर अन्तर्धान होने से पूर्व विष्णु तथा विश्वकर्मा अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुए। राजा ने उन्हीं प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा पुरुषोत्तम तीर्थ में की।

ब्र० पु०, ४४-५१

पुण्य क्षीण हो जाने के कारण इंद्रद्युम्न स्वर्ग लोक से नीचे गिरा दिया गया क्योंकि जगत में उसकी कीर्ति समाप्त हो चुकी थी। वह मार्कंडेय के पास पहुंचा तथा उनसे पूछा कि क्या वे उससे परिचित हैं ? मार्कंडेय के मना कर देने पर उसने पूछा—"क्या आपसे पहले भी कोई प्राणी पृथ्वी पर था ?" मार्कंडेय ने उसे प्रवारकर्ण नामक हिमालयवासी एक उलूक के विषय में बताया। इंद्रद्युम्न अश्व बनकर मुनि को उलूक के पास ले गये तथा उलूक से फिर वही प्रश्न किया—"क्या तुम इंद्रद्युम्न को जानते हो ?" उसके मना करने पर भी उससे भी पहले से पृथ्वी पर रहने वाले नारीजङ्घ नामक बगुले से तथा अकूपार नामक कछवे से वे सब जाकर मिले। बगुला तथा कछुआ इंद्रद्युम्न नामक सरोवर में रहते थे। कछवा (जो पृथ्वी पर उन सबसे पहले से विद्यमान था) इंद्रद्युम्न के विषय में जानता था, वह गद्‌गद होकर बोला—"इंद्रद्युम्न ने एक हजार बार अग्नि स्थापना के समय यज्ञयूपों की स्थापना की थी। दक्षिणा में दी गयी उनकी गायों के आ जाने से ही इस इंद्रद्युम्न सरोवर का निर्माण हुआ था।" उसके मुख से भूलोक पर पुनः इंद्रद्युम्न की कीर्ति की चर्चा तथा स्थापना के कारण देवदूत रथ लेकर प्रकट हुए तथा इंद्रद्युम्न को पुनः स्वर्गलोक ले गये।

म० भा०, वनपर्व, अ० ११६

इंद्रियां (विवाद) एक बार इंद्रियों में परस्पर विवाद आरंभ हुआ कि कौन श्रेष्ठ है। वे सब एकत्र होकर प्रजापति के पास पहुंचीं। प्रजापति ने कहा कि बारी-बारी से एक-एक इंद्रियगत प्राण के उत्क्रमण से प्रश्न का समाधान मिल सकता है। एक-एक वर्ष के लिए चक्षु, वाक्, मन, श्रोत्र, आदि में से एक-एक ने उत्क्रमण किया किंतु मनुष्य उस विशेष इंद्रिय के अभाव में जी सकता था। अंत में समस्त शरीर व्याप्त प्राण ने उत्क्रमण की इच्छा की। सभी इंद्रियों को लगा कि उनकी शक्ति समाप्त होती जा रही है। अतः सबने मिलकर प्राण से कहा—"आप हम सबसे श्रेष्ठ हैं।"

छा० उ०, अ० ५, खंड १,
श्लोक ६-१५

इरावन् इरावन् अर्जुन तथा नागराज की कन्या उलपी का पुत्र था। उसने महाभारत के युद्ध में अवंती के महाबली राजकुमार विंद और अनुविंद को हरा दिया था। महाभारत के युद्ध में उसने सुबल के पुत्रों अर्थात् शकुनि के भाइयों का हनन कर डाला था—इससे क्रुद्ध होकर दुर्योधन ने राक्षस ऋष्यशृंग के पुत्र अलंबुष की शरण ली। अलंबुष युद्ध-क्षेत्र में पहुंचा तो इरावन् ने उसका धनुष और मस्तक काट डाला। क्रोध से पागल वह पहले तो आकाश में उड़ गया। इरावन् ने भी आकाश में उड़कर उससे युद्ध किया। अलंबुष वाणों इत्यादि से कटने पर पुनः ठीक होने की शक्ति से संपन्न था तथा मायावी भी था। उसने तरह-तरह से इरावन् को कैद करने का प्रयत्न किया। इरावन् ने शेषनाग के समान विशाल रूप धारण कर लिया तथा बहुत-से नागों द्वारा राक्षस अलंबुष को आच्छादित कर दिया। राक्षस ने गरुड़ का रूप धारण कर समस्त नागों का नाश कर दिया तथा इरावन् को भी मार डाला।

म० भा०, भीष्मवध पर्व, अ० ८३, ९०
श्लोक १७।८४

इल एक बार चैत्र मास में राजा इल शिकार खेलने वन में गए। वहां उन्होंने देखा कि पार्वती को प्रसन्न करने के लिए शंकर ने नारी-रूप धारण कर रखा है। वहां के सब पशु-पक्षी भी मादा रूप में दिखाई पड़े। तभी इल और उसके साथी भी सुंदरियों में परिवर्तित हो गये। वे लोग बहुत चिंतित होकर शिव के पास पहुंचे। उन्होंने कहा कि पुरुषत्व के अतिरिक्त वे कुछ भी मांग लें। हताश होकर वे लोग पार्वती के पास पहुंचे क्योंकि वे आधे कर्मों की स्वामिनी थीं। पार्वती ने उन्हें एक मास स्त्री और दूसरे मास पुरुष-रूप में रहने का वर दिया। स्त्री-रूप पाकर वे पुरुष-रूप की सब बातें भूल जाते थे। उन 'सुंदरियों' को मार्ग में तपस्या रत बुध (चंद्र-पुत्र) मिले। बुध इल

(जो स्त्री-रूप में इला कहलाते थे) पर आसक्त हो गये। शेष सुंदरियों के लिए 'किं पुरुषी' जाति के रूप में वहीं रहने की व्यवस्था करके बुध ने इला से विवाह कर लिया। इला के स्त्री पुरुष रूप धारण करने का क्रम चलता रहा किंतु साथ ही उसने कालांतर में बुध के पुत्र 'पुरुरवा' को जन्म दिया। तदनंतर बुध के पुत्र ने ब्राह्मणों को बुलाकर अश्वमेध यज्ञ करवाया जिससे प्रसन्न होकर शंकर ने इला को पुनः पुरुष (इल) बना दिया। अपना भूतपूर्व नगर 'वाह्लिदेश', अपने पुत्र शशबिंदु को सौंपकर राजा इल ने प्रतिष्ठानपुर बसाया। ब्रह्मलोक जाते हुए उसने प्रतिष्ठानपुर पुरुरवा को सौंप दिया।

वा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग ८७-९०

इला ब्रह्म पुराण में 'इला' विषयक दो कथाएं हैं :

(१) वैवस्वत मनु ने पुत्र की कामना से मित्रावरुण यज्ञ किया। उनको पुत्री की प्राप्ति हुई जिसका नाम इला रखा गया। उन्होंने इला को अपने साथ चलने के लिए कहा किंतु 'इला' ने कहा कि क्योंकि उसका जन्म मित्रावरुण के अंश से हुआ था, अतः उन दोनों की आज्ञा लेनी आवश्यक थी। इला की इस क्रिया से प्रसन्न होकर मित्रावरुण ने उसे अपने कुल की कन्या तथा मनु का पुत्र होने का वरदान दिया। कन्या भाव में उसने चंद्रमा के पुत्र बुध से विवाह करके पुरुरवा नामक पुत्र को जन्म दिया। तदुपरांत वह सुद्युम्न बन गयी और उसने अत्यंत धर्मात्मा तीन पुत्रों से मनु के वंश की वृद्धि की जिनके नाम इस प्रकार हैं--उत्कल, गय तथा विनताश्व।

ब्र० पु०, ७।१-१७

(२) हिमालय स्थित एक गुफा में एक यक्ष और यक्षिणी रहते थे। वे इच्छानुसार भेष बदलने में समर्थ थे। एक बार वे मृग-मृगी रूप धारण कर क्रीड़ा कर रहे थे कि वैवस्वतवंशी राजा इल शिकार खेलता हुआ उसी गुफा के पास पहुंचा। उसकी इच्छा हुई कि वह उसी जंगल में रहने लगे। उसने अपने साथियों को पुत्र भार्या आदि की रक्षा के निमित्त भेज दिया और स्वयं वहीं रहने लगा। यक्ष-यक्षिणी के कहने पर भी उसने उनकी गुफा नहीं छोड़ी। दोनों ने एक युक्ति सोची। यक्षिणी मृगी का रूप धारण कर राजा को मृगया में उलझाकर उमावन में ले गयी। शिव के कथनानुसार वहां जो प्रवेश करता था, वह नारी हो जाता था। इल भी इला बन गया। यक्षिणी ने अपने मूल रूप में प्रकट होकर उसे स्त्रियोचित नृत्य-संगीत, हाव-भाव, हेला सिखाये और नारी बनने का कारण भी बताया। कालांतर में इला का बुध से विवाह हो गया तथा उसने पुरुरवा को जन्म दिया। पुरुरवा के बड़े और योग्य होने के उपरांत पुनः पुरुष-रूप में अपने राज्य में जाने की उसकी इच्छा बलवती हो उठी। इला ने समस्त कथा पुरुरवा को और पुरुरवा ने बुध को सुनायी। बुध के कहने से गौतमी के तट पर शिव की आराधना कर उसने पुनः पूर्व रूप प्राप्त किया। यक्षिणी से सीखा हुआ गीत, नृत्य और मिला हुआ सौंदर्य गीता, नृत्या और सौभाग्या नदियों के रूप में प्रवाहित हो चला।

ब्र० पु०, १०८

इल्वल इल्वल तथा वातापि दितिपुत्र थे। एक बार इल्वल ने एक ब्राह्मण से इंद्र के समान पराक्रमी पुत्र पाने की कामना की। ब्राह्मण ने उसे वैसा पुत्र प्रदान नहीं किया। अतः क्रोधवश वह उस ब्राह्मण को मार डालने को उद्यत हो उठा। वातापि में इच्छानुसार रूप धारण करने की शक्ति थी तथा इल्वल को यह शक्ति प्राप्त थी कि जिस यमलोकस्थ व्यक्ति का नाम लेकर पुकारेगा, वही पुनर्जीवित हो उठेगा। अतः वातापि ने बकरे का रूप धारण किया—इल्वल ने उसे पकाकर ब्राह्मण को खिला दिया। तदनंतर उसने वातापि को नाम लेकर पुकारा। वह ब्राह्मण की पसली तोड़कर बाहर निकल आया। इस प्रकार उन दोनों भाइयों ने अनेक ब्राह्मणों का संहार किया।

उन्हीं दिनों विदर्भराज पुत्र-कामना से तपस्या कर रहे थे। अगस्त्य मुनि भी संतानोत्पत्ति के इच्छुक थे क्योंकि उनके पितरगण उलटे लटककर संतान लोप की संभावना के कारण कष्ट झेल रहे थे। अगस्त्य मुनि ने अपना गर्भ धारण करने योग्य सुंदरी का निर्माण किया। उन्होंने एक-एक जंतु के सुंदर अंग का भावना से संग्रह कर कन्या का निर्माण किया तथा विदर्भराज को प्रदान कर दी। युवती होने पर उसी को मुनि ने अपनी पत्नी के रूप में मांग लिया। उसका नाम लोपामुद्रा था। वे दम्पति हरिद्वार में तपस्या करने लगे। संतान के लिए आतुर मुनि से लोपामुद्रा ने धनधान्य की कामना की। मुनि अनेक राजाओं से धन मांगकर निराश हो इल्वल के पास गये। इल्वल ने उनके सत्कार के उपरांत उन्हें

भेड़-रूपी वातापि का मांस खिलाया। तदुपरांत वातापि को आवाज दी। मुनि ने हंसकर अधोवायु (गुदा से) निकाली तथा कहा—"वह तो पच गया, अब कहां से आयेगा?" इल्वल बहुत दुखी हुआ। उसने धनधान्य, स्वर्ण रथ (विराव और सुराव नामक घोड़ों से जुता हुआ) समर्पित कर मुनि को विदा किया। जब वे अपनी नगरी की ओर बढ़े तो पीछे से आक्रमण कर वह मुनि को मार ही डालना चाहता था किंतु मुनि ने अपनी हुंकार से ही उसे भस्म कर डाला। लोपामुद्रा ने मुनि से प्रार्थना की कि उसके गर्भ से एक ही पुत्र की उत्पत्ति हो जो हजारों को जीतनेवाला हो। अतः उसके गर्भ में सात साल पलकर जिस पुत्र का जन्म हुआ, वह विद्वान् दृढ़स्यु नाम से विख्यात है। बाल्य-काल से ही समिधाओं का वहन करने के कारण वह इध्मवाह (समिधाएं वहन करने वाला) भी कहलाया।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय ९६ से ९९

□

उत्तंक (क) **उत्तंक मुनि महर्षि गौतम के प्रिय शिष्य थे।** गौतम उनसे इतने प्रसन्न थे कि उनके बाद आये अनेक शिष्यों को घर जाने की आज्ञा देकर भी उन्होंने उत्तंक को घर जाने की आज्ञा नहीं दी। एक दिन उत्तंक जंगल से लकड़ियां लेकर आये तो न केवल थक गये अपितु लकड़ियों में उनके सफेद बालों की लटाएं फंसकर टूट गयीं। अपने सफेद बाल देखकर उन्होंने रोना आरंभ कर किया। पिता की आज्ञा से गुरु-पुत्री ने उनके आंसू पोंछे तो उसके दोनों हाथ जल गये तथा वह भूमि से जा लगी। पृथ्वी भी उनके आंसू संभालने में असमर्थ थी। गौतम ने उसके दुःख का कारण जाना तो उन्हें घर जाने की आज्ञा दे दी तथा कहा कि यदि वह सोलह वर्ष के हो जायें तो वे अपनी बेटी का विवाह उनसे कर देंगे। उत्तंक योग-बल से सोलह वर्ष के हो गये तथा गुरुपुत्री से विवाह कर उन्होंने गौतम से गुरु-दक्षिणा के विषय में पूछा। गौतम ने परम संतोष जताकर कुछ और लेने से इंकार कर दिया किंतु उसकी पत्नी ने सौदास की पत्नी के कुंडल मांगे। सौदास शापवश राक्षस हो गया था तथापि उत्तंक उससे कुंडल लेने गये। उसने ब्राह्मण को अपनी भोज्य-सामग्री मानकर ग्रहण करना चाहा किंतु उत्तंक ने कहा कि जब वह गुरु-दक्षिणा जुटाकर दे आएं फिर सौदास उसका भक्षण कर ले। सौदास ने उन्हें अपनी पत्नी के पास भेजा। पत्नी के दिव्य कुंडल अनुपम और विचित्र थे। वे पहनने वाले के आकार-प्रकार के अनुसार अपना आकार बदल लेते थे। अतः देवता, नाग आदि सभी उन्हें ग्रहण करने के लिए आतुर थे। सौदास की पत्नी मदयंती ने उत्तंक से पूछा कि इस बात का क्या प्रमाण है कि उसे सौदास ने ही भेजा है? उत्तंक ने पुनः सौदास से रानी को बताने के लिए कोई पहचान मांगी तो राजा ने यह कहने को कहा—"मैं जिस दुर्गति में पड़ा हूं, इसके सिवा अब दूसरी गति नहीं है—कुंडल ब्राह्मण को दे दो।" मदयंती ने अपने मणिमय कुंडल उसको दे दिये तथा उन्हें काले मृगचर्म में बांधकर ले जाने को कहा। मार्ग में उन्हें भूख लगी। वे बिल के पेड़ पर चढ़कर फल तोड़ने लगे तथा काली मृगचर्म पेड़ से बांध दी। मृगचर्म का बंधन पेड़ से खुल गया। वह नीचे गिरी तो तक्षक सर्प ने उसका अपहरण कर लिया तथा वह बिल में ले गया। उत्तंक मुनि काठ के डंडे से धरती खोदकर तक्षक तक पहुंचने का प्रयत्न करते रहे। पृथ्वी भी डंडे के प्रहार से कांपने लगी। अश्वरथ पर बैठे हुए इंद्र ने दर्शन देकर उत्तंक के दंड के सामने वज्रास्त्र का संयोग कर दिया। उसके प्रहार से पीड़ित पृथ्वी ने नागलोक का मार्ग प्रकट किया। नागलोक में पहुंचने पर घोड़े का रूप धारण किये हुए अग्नि ने उत्तंक से अपने अपान मार्ग पर फूंक मारने को कहा। वैसा करने से घोड़े के लोमकूपों से अग्नि तथा धुआं प्रकट होने लगा। नाग तपने लगे। अत्यंत प्रताड़ित होकर उन्होंने उत्तंक को मणिमय कुंडल वापस दे दिये। उत्तंक ने गुरुपत्नी अहल्या को गुरु-दक्षिणा स्वरूप वे कुंडल अर्पित कर दिये।

महाभारत के युद्ध में पांडवों की विजय-प्राप्ति के उपरांत श्रीकृष्ण अपने माता-पिता से मिलने द्वारिका जा रहे थे। मार्ग में उन्हें उत्तंक मुनि मिले। यह जानकर कि युद्ध में इतना विध्वंस हुआ है, वे रुष्ट हो गये। मुनि

को आशा थी कि कृष्ण ने भाइयों में मेल करवा दिया होगा। वे कृष्ण को शाप देने के लिए उद्यत हुए पर कृष्ण ने उन्हें वस्तुस्थिति समझाकर, विप्र रूप के दर्शन करवाकर शांत कर दिया। साथ ही वर दिया कि वे जब कभी कृष्ण को स्मरण करेंगे, उन्हें मरु प्रदेश में भी पानी मिल जायेगा। एक दिन प्यास से व्याकुल उत्तंक ने श्रीकृष्ण को स्मरण किया कि कुत्तों से घिरा हुआ एक चांडाल प्रकट हुआ जिसके पांव के छिद्र से जल की धारा प्रवाहित थी। उसने मुनि से जल लेने का आग्रह किया किंतु मुनि चांडाल से जल लेना नहीं चाहते थे। वह अंतर्धान हो गया तथा कृष्ण प्रकट हुए। कृष्ण ने बताया कि उनके बहुत आग्रह करने पर इंद्र चांडाल के रूप में अमृत पिलाकर उत्तंक को अमर करने आये थे पर मुनि ने अमृत ग्रहण ही नहीं किया। श्रीकृष्ण ने कहा कि भविष्य में कृष्ण को स्मरण करने पर उन्हें मेघों से जल की प्राप्ति होगी।

म० भा०, आश्वमेधिकपर्व, अध्याय ५२-५८

(ख) आचार्य वेद के शिष्यों में से एक का नाम उत्तंक था। वेद स्वयं एक कठोर स्वभाव वाले गुरु के शिष्य रहे थे, अत: अपने शिष्यों के प्रति वे बहुत आर्द्र रहते थे। एक बार उत्तंक पर घर की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति का भार छोड़कर वेद जनमेजय और पौष्य के आयोजित यज्ञ के पुरोहित बने। उत्तंक गुरु परिवार की सेवा में लगे हुए थे। एक दिन आश्रम में रहनेवाली एक स्त्री ने उत्तंक से कहा कि गुरु-पत्नी रजस्वला के बाद ऋतुकाल को निष्फल होता देख बहुत दुखी हैं। उनके कष्ट का निवारण करो। उत्तंक ने कहा कि गुरु ने निंद्यकार्य करने का आदेश नहीं दिया है। उपाध्याय ने परदेस से लौटकर सब सुना तो प्रसन्न होकर उन्होंने उन्हें अपने घर जाने की अनुमति दी। उन्होंने गुरु-दक्षिणा देने की इच्छा प्रकट की। पहले तो उपाध्याय टालते रहे फिर कहा कि अंत:पुर में जाकर वह गुरुपत्नी से पूछे। गुरुपत्नी ने राजा पौष्य की पत्नी के कानों के कुंडल प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की। वह चार दिन बाद होने वाले उत्सव में उन्हें पहनना चाहती थीं। उत्तंक राजा पौष्य के राज्य की ओर बढ़े। रास्ते में एक विशालकाय व्यक्ति विशालकाय बैल पर जाता हुआ मिला। उसने उत्तंक से कहा कि वह बैल के गोबर तथा मूत्र का पान करे। उनके संकोच को देखकर वह बोला कि उनके (उत्तंक के) गुरु ने भी ऐसे ही पान किया था। उत्तंक गोबर और मूत्र का पान करके राजा पौष्य के दरबार में पहुंचे। राजसिंहासन पर वही विशालकाय पुरुष बैठा दिखायी पड़ा। उत्तंक के वहां आने का उद्देश्य जानकर राजा ने उन्हें अंत:पुर जाकर रानी से कुंडल मांगने को कहा। वह अंत:पुर में गये तो उन्हें रानी कहीं भी दिखायी नहीं दी। लौटकर उन्होंने राजा को बताया तो राजा ने उन्हें याद दिलाया कि वह जूठे मुंह से गये थे। उच्छिष्ट (अपवित्र) व्यक्ति को रानी दर्शन नहीं देती। स्नानादि के उपरांत वह पुन: अंत:पुर गये। रानी ने कुंडल उतारकर तुरंत उसे दे दिये तथा उन्हें तक्षक से सावधान रहने का आदेश दिया क्योंकि वह भी कुंडल प्राप्त करने का इच्छुक था। अंत:पुर से लौटने पर राजा ने उन्हें श्राद्ध के निमित्त भोजन करवाया। भोजन ठंडा था तथा उसमें से एक बाल भी निकला। उत्तंक ने दूषित भोजन से रुष्ट होकर राजा को अंधे होने का शाप दिया। राजा ने क्रोधवश उत्तंक को संतानहीन होने का शाप दिया। बाद में राजा ने माना कि भोजन दूषित था। क्षमा-याचना करके उसने उत्तंक से एक वर्ष बाद पुन: आंखों की ज्योति प्राप्त करने का वर प्राप्त किया किंतु अकारण क्रुद्ध होने पर भी अपना शाप वापस लेने में उन्होंने असमर्थता प्रकट की। उत्तंक ने कहा —"निराधार शाप लग ही नहीं सकता जबकि तुमने स्वयं स्वीकार कर लिया है कि भोजन दूषित है।" उत्तंक कुंडल लेकर चल पड़े। मार्ग में उन्होंने एक नग्न क्षपणक को अपना पीछा करते हुए देखा। एक जलाशय के किनारे वह कुंडल रखकर स्नान करने लगे तो वह क्षपणक कुंडल उठाकर भागा। उत्तंक ने उसका पीछा किया, पकड़े जाने पर क्षपणक तुरंत अपने असली रूप में आ गया। वह वास्तव में तक्षक था। वह भूमि के किसी विवर में घुस गया। उसके पीछे-पीछे उत्तंक भी नागलोक पहुंचे। नागों की पर्याप्त स्तुति करने पर भी उन्हें वे कुंडल प्राप्त नहीं हुए। उन्होंने दो स्त्रियों को काले और सफेद रंग के धागों से कपड़ा बुनते देखा। उन्होंने बारह अंकों का एक चक्र भी देखा जिसे छह कुमार घुमा रहे थे। वहीं एक श्रेष्ठ पुरुष भी खड़ा था जिसके पास एक घोड़ा था। उत्तंक ने श्लोकों से उनकी स्तुति की। चक्र को कालचक्र तथा बुने हुए वस्त्र को वासना जल के समान मानकर श्लोक की रचना की।

प्रसन्न होकर पुरुष ने उन्हें वर मांगने के लिए कहा। उन्होंने नागलोक का आधिपत्य मांगा। उस पुरुष ने कहा—"इस अश्व की गुदा में फूंक मारो।" उत्तंक के वैसा करने पर अश्व के लोमकूपों से आग की लपटें निकलने लगीं तथा समस्त नागलोक धुएं से भर गया। तक्षक घबरा गया। उसने तुरंत दोनों कुंडल उत्तंक को दे दिये। उत्तंक बहुत उद्विग्न थे कि यथासमय गुरु-पत्नी तक नहीं पहुंच पायेंगे। पुरुष ने उनकी समस्या का समाधान करते हुए उन्हें उसी अश्व से गुरु पत्नी के पास जाने का आदेश दिया। उत्तंक उस घोड़े से तुरंत गुरु-पत्नी की सेवा में जा पहुंचा। गुरु-पत्नी समारोह में जाने के लिए तैयार थीं तथा कुंडल न मिल पाने के कारण उत्तंक को शाप देने वाली थीं। कुंडल पाकर वह प्रसन्न हो गयीं। उत्तंक ने गुरु से जाकर समस्त विवरण कह सुनाया तथा गुरु से काला और सफेद कपड़ा बुनने, चक्र चलने, बैल और पुरुष के दर्शन तथा अन्य एक पुरुष के साथ अश्व के विषय में पूछा। गुरु ने बताया—"जो दो स्त्रियां कपड़ा बुन रही थीं, वे धाता और विधाता थीं। काले-सफेद धागे रात और दिन हैं। बारह अंकों से बना चक्र जो छह कुमार घुमा रहे थे—वे छः ऋतुएं हैं—वह चक्र ही संवत्सर है। पुरुष इंद्र तथा अश्व अग्नि थे। मार्ग में मिलने वाला पुरुष नागराज और बैल ऐरावत था। तुम्हारा जीवित रहना इस तथ्य का द्योतन करता है कि गोबर अमृत था। इंद्र मेरा मित्र है अतः उसने तुम्हें अमृत प्रदान करके नागलोक से जीवित लौट आने का अवसर दिया। अब तुम अपने घर जाओ—तुम्हारा कल्याण होगा। मैं तुम्हारी गुरुभक्ति से प्रसन्न हूं।" उत्तंक तक्षक से बदला लेने की भावना के साथ जनमेजय के पास पहुंचे। जनमेजय तक्षशिला पर विजय प्राप्त करके लौटा था। उत्तंक ने जनमेजय से कहा कि उनके पिता परीक्षित की हत्या अकारण ही हुई। तक्षक ने परीक्षित की रक्षा करने वाले काश्यप नामक ब्राह्मण को भी उन तक नहीं पहुंचने दिया था। अतः जनमेजय को सर्प-यज्ञ का अनुष्ठान करके तक्षक का नाश कर देना चाहिए। उत्तंक ने आपबीती दुर्घटनाएं भी राजा को सुना दीं। राजा जनमेजय पिता की हत्या का विवरण सुनकर बहुत उदास हो गया।

म० भा०, आदिपर्व,
अध्याय ३, श्लोक ८१-१८८

उतथ्य अंगिरा के वंशज उतथ्य के साथ सोम के पिता अत्रि ने अपनी पौत्री (सोम की कन्या) भद्रा का पाणिग्रहण संस्कार कर दिया। वरुण पहले से ही उस पर आसक्त था, अतः यमुना में स्नान करती हुई भद्रा का उसने अपहरण कर लिया। नारद ने यह समाचार उतथ्य को दिया तो नारद के ही हाथों उतथ्य ने वरुण के पास संदेश भेजा कि वह उसकी पत्नी को लौटा दे। वरुण ने उसे लौटाने से इंकार कर दिया। उतथ्य ने क्रुद्ध होकर समुद्र का जल स्तंभित करके पी लिया तथा सरस्वती नदी से कहा कि वह वहां से विलीन होकर मरुप्रदेश में चली जाय ताकि वह प्रदेश अपवित्र हो जाय। सरस्वती ने वैसा ही किया। अंततोगत्वा वरुण भद्रा को लेकर मुनि की शरण में गये तथा उतथ्य को उन्होंने उनकी पत्नी लौटा दी।

म० भा०, दानधर्मपर्व, अध्याय १५४,
श्लोक ९-३२

उत्तर यह दिशा संसार सागर के पार उतारनेवाली (उत्तारण करनेवाली) है; अतः इसे उत्तर दिशा कहते हैं। उत्तर में हिमालय पर शिव-पार्वती का निवास है। इसी दिशा में उमा ने तपस्या की थी। यहीं मंदराचल, कैलाश, कुबेर, गंगा इत्यादि हैं। विष्णु ने सर्वप्रथम इसी दिशा में चरण रखा था। जीमूत तथा उनके नाम से विख्यात 'जैमूत' धन भी इसी दिशा में विद्यमान है। प्रातः-संध्या इसी दिशा में दिक्पाल एकत्र होकर 'किसको क्या काम है?' ऐसा पूछते हैं। समस्त कर्मों के लिए यह दिशा उत्तम मानी जाती है।

म० भा०, उद्योगपर्व, अ० १११।

उत्पल उत्पल तथा विदल नाम के दो दैत्य अत्यंत बलवान थे। उन्होंने ब्रह्मा से वर प्राप्त किया था कि उन्हें कोई मनुष्य नहीं मार पायेगा। उनके अनाचार से दुखी होकर नारद ने एक युक्ति सोची। उनके सम्मुख गिरिजा के सौंदर्य की प्रशंसा की। वे लोग गिरिजा को प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध हो गये। एक बार गिरिजा सखियों से गेंद खेल रही थी। वे दोनों विमान से उतरकर उसका अपहरण करने के लिए उद्यत हुए कि शिव का संकेत पाकर गिरिजा ने दोनों पर गेंद फेंकी। वे घूमते-घूमते पृथ्वी पर गिर गये। वहां कुंडलेश लिंग की स्थापना की गयी।

शि० पु०। पूर्वार्द्ध।५-५७

उदयन कौशांबी नगर का राजा परंतप था। उसके साथ

उसकी गर्भिणी राजमहिषी बैठी धूप सेंक रही थी उसने लाल रंग का कंबल ओढ़ा हुआ था। एक हाथी की सूरत के पक्षी ने उसे मांस का टुकड़ा समझकर उठा लिया और आकाश में उड़ता हुआ पर्वत की जड़ में लगे वृक्ष पर ले गया। राजमहिषी ने पेड़ का सहारा पाकर ताली बजाकर शोर मचाया। पहले वह इस भय से चुप रही थी कि कहीं पक्षी ने छोड़ दिया तो वह नीचे गिरकर मर जायेगी। उसका शोर सुनकर पक्षी उड़ गया तथा एक तापस जा पहुंचा। उसने गर्भवती महिषी को अपने आवास में स्थान दिया। पुत्र-जन्म के उपरांत भी वह वर्षों तक तापस के साथ रहती रही। तापस का व्रत भंग हो गया। पुत्र का नाम उदयन रखा गया। अपने पिता (राजा) की मृत्यु के उपरांत वह मां के कंबल तथा अंगूठी के साथ कौशांबी पहुंचा तथा उसने राजा-पद प्राप्त किया। वह संगीत के बल से हाथियों को भगा देता था। एक बार राजा चंडप्रद्योत ने लकड़ी का हाथी बनवाकर उसमें सैनिक बैठाकर उदयन के पास भेजा। वह अपनी कला का प्रदर्शन करने लगा तो सैनिक उसे पकड़कर ले गये। चंडप्रद्योत ने उदयन से उसका कौशल सीखा।

बृ० च०, म० नि० अ० क०, २ : ४ : ५

उद्दालक महर्षि आयोदधौम्य के तीन शिष्य थे—उपमन्यु, आरुणी पांचाल तथा वेद। एक बार उन्होंने आरुणी को टूटी हुई क्यारी का पानी रोकने की आज्ञा दी। अनेक यत्न करके असफल रहने पर वह उसकी मेड़ के स्थान पर लेट गया ताकि पानी रुक जाये। थोड़ी देर बाद उपाध्याय ने उसे न पाकर आवाज दी। वह तुरंत उठकर गुरु के पास पहुंचा। उसके उठने से क्यारी की मेड़ विदीर्ण हो गयी थी; अतः गुरु ने उसका नाम उद्दालक रख दिया। आज्ञा के पालन से प्रसन्न होकर गुरु ने उसके कल्याण का आशीर्वाद दिया तथा उसकी बुद्धि को धर्मशास्त्र से प्रकाशित होने का वर दिया।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय ३,
श्लोक २१-३२

उद्धव मथुरा के कार्य में विशेष व्यस्त रहने के कारण कृष्ण स्वयं तो ब्रज नहीं गये किंतु उन्होंने उद्धव को अपने संदेश सहित भेजा। नंद बाबा, यशोदा, गोप-गोपांगना आदि सभी को उन्होंने याद किया था। उद्धव आकार-प्रकार में कृष्ण जैसे ही थे। उन्हीं जैसी वेशभूषा में वे ब्रज पहुंचे। उनसे बात करते हुए गोपिकाओं ने एक भ्रमर देखा। अतः वे भ्रमर को संबोधित करके ही वह सब कहती रहीं जो वे कृष्ण से कहना चाहती थीं। अतिथि उद्धव के प्रति वैसा उपालंभ देना संभवतः अशोभन होता। उद्धव कृष्ण के सर्वव्यापकत्व पर प्रकाश डालते रहे। कई मास तक ब्रज में निवास करने के उपरांत मथुरा लौटकर उद्धव ने गोपियों की प्रेमाभक्ति का वर्णन श्रीकृष्ण से किया।

श्रीमद् भा०, स्कंध, अध्याय ३।१, श्लोक २०-४५

श्रीकृष्ण ने जब यदुकुल के संहार के उपरांत अपने लोक जाने की इच्छा प्रकट की, तब उद्धव बहुत दुखी हुए। उन्होंने श्रीकृष्ण के चरणों में स्थान प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की। किंतु कृष्ण ने उद्धव को योगमार्ग का उपदेश दिया। तदनंतर उद्धव बदरिकाश्रम चले गये।

जंगल में घूमते हुए विदुर की भेंट उद्धव से हुई। उन्होंने श्रीकृष्ण आदि को कुशलक्षेम पूछकर उनकी अपरिमित लीलाओं का वर्णन किया। उद्धव ने यह भी बताया कि जब यादववंश का संहार होनेवाला था, उस समय श्रीकृष्ण ने भवितव्यता से परिचित होने के कारण उद्धव को वहां से बदरिकाश्रम जाने का आदेश दिया था। श्रीकृष्ण ने उद्धव को 'वसोः' कहकर संबोधित किया था। इससे यह स्पष्ट हुआ कि उद्धव पूर्वजन्म में आठ वसुओं में से एक थे।

श्रीमद् भा०, ११।२९।-

उपचरि वसु श्री नारायण के परम भक्त थे। उन्होंने अस्त्र-शस्त्रों का परित्याग कर घोर तपस्या प्रारंभ की तो इंद्र घबरा गये कि कहीं इंद्रपद के लिए उन्होंने तपस्या न की हो। इंद्र ने समझा-बुझाकर उन्हें तपस्या से निवृत्त कर दिया तथा उन्हें स्फटिक से बना एक विमान उपहार-स्वरूप दिया जो आकाश में ही रहता था। उस विमान में रहने के कारण राजा वसु 'उपचरि' कहलाए। इंद्र ने उन्हें त्रिलोकदर्शी होने का वरदान दिया तथा सदैव विजयी रहने के लिए वैजंतीमाला और सुरक्षा के लिए एक बेंत भेंटस्वरूप दिया। एक बार कोलाहल पर्वत ने काम के वशीभूत शुक्तिमती नदी को रोक लिया। राजा उपचरि ने अपने पांव के प्रहार से उसके दो खंड कर दिये और नदी पूर्वगति से बहने लगी। पर्वत के समागम से शुक्तिमति नदी की युगल संतान हुई, जिन्हें

उसने कृतज्ञ भाव से राजा को समर्पित कर दिया। राजा ने उसके पुत्र को सेनापति नियुक्त कर लिया तथा गिरिका नामक कन्या को पत्नी के रूप में ग्रहण किया। एक दिन वे पितरों की आज्ञा का पालन करने के निमित्त शिकार खेलने गये। वहां के मनोरम वातावरण में कामोन्मत्त राजा उपचरि का वीर्यपात हो गया। राजा ने संतान की इच्छा से उस वीर्य को अपनी भार्या के पास, पत्ते में लपेटकर भेजा। जब बाज उसे ले जा रहा था तो मार्ग में दूसरे बाज ने उसे मांस-पिंड समझकर झपट्टा मारा, जिससे वह पत्ते में लिपटा हुआ वीर्य यमुना में गिर गया। यमुना में ब्रह्मा के शाप से एक अप्सरा मछली के रूप में रहती थी। उसने उसका पान किया तथा एक पुत्र और एक पुत्री को जन्म दिया। अप्सरा अद्रिका पूर्व शाप से मुक्त होकर स्वर्गलोक चली गयी। पुत्री को पहले मत्स्यगंधा तथा बाद में सत्यवती कहकर मछवारों ने पाला तथा पुत्र जो मत्स्य नामक पराक्रमी राजा हुआ, उसे उपचरि ने पाला।

एक बार महर्षियों तथा देवताओं में विवाद छिड़ गया। देवताओं का कहना था कि 'अज' का अभिप्राय बकरे से है, अतः यज्ञ में बकरे का प्रयोग करना चाहिए। ऋषियों के अनुसार अज माने 'अनाज'। वे लोग विवाद में व्यस्त थे तभी राजा उपचरि उधर से निकले। उन सबने एकमत हो उनको निर्णायक बनाया। उपचरि ने देवताओं का मत जानकर उनका पक्ष लिया, अतः ऋषियों ने क्रुद्ध होकर कहा—"यदि तुम्हारा मत गलत है और दृष्टि पक्षपातपूर्ण है तब तुम आकाश-मार्ग से हटकर पाताल में चले जाओ। यदि हम मिथ्यावादी हैं तो हम पाप भोगें।" उनके शाप देते ही उपचरि (वसु) पतित होकर पाताल में पहुंच गये।

देवतागण बहुत दुखी थे कि उनका पक्ष लेने के कारण वसु को कष्ट उठाना पड़ा। उन्होंने पाताल में रहते हुए भी वसु को ब्राह्मणों का आदर करने का उपदेश दिया तथा व्यवस्था कर दी कि ब्राह्मणों के यज्ञों में दी गयी 'वसुधारा' की आहुति उन्हें निरंतर मिलेगी। साथ ही वरदान दिया कि श्रीहरि प्रसन्न होकर उनका उद्धार करेंगे। वसु पूर्ववत यज्ञादि में लगे रहे। वे श्रीहरि के अनन्य भक्त थे। विष्णु ने अपने वाहन गरुड़ को पाताल भेजकर वसु को बुलवाकर आकाश में छोड़ दिया। वे पुनः 'उपचरि' नाम को सार्थक करने लगे।

म० भा०, आदिपर्व, अ० ६३।१-६६
शांतिपर्व, अ० ३३६
दे० भा०, २।१।-

उपमन्यु (क) आयोदधौम्य ऋषि ने अपने शिष्य उपमन्यु को गांवों की देखभाल का काम सौंपा। कालांतर में उसे मोटा होता देखकर गुरु ने इसका कारण पूछा तो वह बोला कि वह भिक्षा से जीवन-निर्वाह करता है। गुरु ने कहा—"मुझे अर्पण किये बिना भिक्षा ग्रहण करना तुम्हारे लिए उचित नहीं है।" उसने एक भिक्षा गुरु को अर्पित करनी प्रारंभ कर दी, दूसरी स्वयं लेने लगा। गुरु को पता चला तो उन्होंने उसका अनौचित्य भी बताया क्योंकि उससे भिक्षाजीवी लोगों की जीविका में बाधा पड़ती थी। उपमन्यु ने भिक्षा-कर्म छोड़कर गायों का दूध पीना आरंभ कर दिया। गुरु ने कहा कि इसकी अनुमति उन्होंने नहीं दी थी, अतः उपमन्यु ने दुग्ध-पान की प्रक्रिया में बछड़ों के मुंह से गिरा फेन पीना आरंभ कर दिया। उसकी वर्जना पर वह आक के पत्ते खाने लगा जिससे अंधा होकर वह कुएं में गिर गया। गुरु ने उसे ढूंढ़ा और अश्विनीकुमारों का आह्वान करने का आदेश दिया। उसकी स्तुति पर प्रसन्न होकर अश्विनीकुमारों ने प्रकट होकर उसे पूए दिये तथा खाने के लिए कहा। गुरु के आदेश के बिना उसने कुछ भी खाना स्वीकार नहीं किया। अश्विनीकुमारों ने कहा—"एक बार तुम्हारे गुरु को भी हमने ऐसे ही पूए दिये थे और उसने अपने गुरु की आज्ञा के बिना ही उन्हें खाया था।" उपमन्यु ने फिर भी पूए लेने से इंकार कर दिया। उसकी गुरुभक्ति से प्रसन्न होकर अश्विनीकुमारों ने उसकी आंखें भी ठीक कर दीं तथा उसके दांत स्वर्णमय कर दिये। उसके गुरु के दांत लोहे के समान काले थे। उसने गुरु के चरणों में प्रणाम करके समस्त घटना कह दी। वे बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने उसके कल्याण की कामना की तथा वेद और धर्मशास्त्र के स्वयं स्फुरित होने का आशीर्वाद दिया।

म० भा०, आदिपर्व,
अध्याय ३, श्लोक ३३-७५

(ख) व्याघ्रपाद के पुत्र महात्मा उपमन्यु बाल्यावस्था से ही वन में रहते थे। उनके छोटे भाई का नाम

धौम्य था। एक बार वे अपने भाई के साथ खेलते हुए मुनियों के आश्रम में पहुंचे। वहां दुधारू गाय दूध दे रही थी। वहां उन्होंने दुग्ध-पान किया। वह उन्हें अत्यंत स्वादिष्ट लगा। अतः घर आकर उन्होंने माता से दूध तथा भात मांगा। मां ने आटा घोलकर दे दिया। उन्होंने चखकर कहा कि यह दूध नहीं है। मां ने कहा—"जंगल में तपस्या करनेवाले लोगों को दूध प्राप्त नहीं होता। वे जंगली कंद-मूल पर जीवन निर्वाह करते हैं।" उपमन्यु हठपूर्वक दूध ही प्राप्त करने की धुन में थे। अतः मां ने उन्हें शिव की तपस्या करने की सलाह दी। वे कठिन तप करने लगे। कालांतर में इंद्र का वेश बनाकर शिव ने उनसे वर मांगने के लिए कहा, किंतु उपमन्यु ने कहा कि वे शिवेतर किसी देवता से कुछ भी प्राप्त करना नहीं चाहते। प्रसन्न होकर शिव ने अपना वास्तविक रूप धारण करके दर्शन दिये तथा वर दिया कि उन्हें इच्छित वस्तुएं प्राप्त होती रहेंगी। वे जब भी इच्छा करेंगे, शिव के दर्शन कर पायेंगे तथा अपने भाई-बंधुओं के साथ दूध-भात का भोजन भी प्राप्त करते रहेंगे।

म० भा०, दानधर्मपर्व, अध्याय १४, श्लोक १११-३६३

उमा कठिन तपस्या के फलस्वरूप ब्रह्मा के वरदान से शैलेंद्र ने अपर्णा (पत्ता भी न खाने वाली), एकपर्णा (बरगद का एक पत्ता प्रतिदिन खाने वाली) तथा एक पाटला (पाटल-पत्र खाने वाली) नामक कन्याओं को मेना के माध्यम से जन्म दिया। एकपर्णा तथा एकपाटला ने हजार वर्ष पूर्ण होने पर भोजन किया किंतु अपर्णा ने तब भी नहीं किया। मां ने वात्सल्यवश उसे भूखा रहने के लिए 'उमा' कहकर मनाकर किया; अतः वह उमा कहलायी। उसकी घोर तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने विकृत रूप में दर्शन दिये। उमा ने कहा कि उसका विवाह उसके पिता शैलेंद्र ही करेंगे; अतः उनके सम्मुख वे (शिव) प्रस्ताव रखें। शिव ने वैसा ही किया। उनके विकृत रूप को देखकर शैलेंद्र पुत्री के विवाह के लिए स्वीकृति नहीं देना चाहते थे, किंतु दूसरी ओर शाप की संभावना से भयभीत भी थे। अतः उन्होंने कहा कि पार्वती स्वयंवर करेगी। शिव ने पार्वती को वैसा ही जा सुनाया। पार्वती ने अशोक की मंजरी को शिव के कंधे पर रखकर उनका मन से वरण किया। शिव ने प्रसन्न होकर अशोक की मंजरी को भी चिरंजीवी रहने का वर दिया। शिव के अंतर्धान होते ही पार्वती ने पास ही के एक तालाब में ग्राह के पंजे में पड़े बालक को रोते देखा। पार्वती के बहुत कहने पर उसके समस्त तप का ओज ग्रहण कर ग्राह ने बालक को छोड़ दिया। विस्मिता पार्वती को ध्यानमग्न छोड़ बालक-रूपी शिव तथा ग्राह पार्वती का तेज उसे लौटाकर अंतर्धान हो गये।

स्वयंवर के अवसर पर शिव ने पुनः बालक का रूप धारण किया। किंतु पार्वती ने योगबल से पहचानकर उन्हींका वरण किया। पार्वती ने बालशिव को गले से लगा लिया। सब विस्मित रह गये। शिव प्रकट हुए। ब्रह्मा ने दोनों का पाणिग्रहण-संस्कार करवाया। विवाह के उपरांत एक बार पार्वती मां के पास गयीं तो मां ने शिव की दरिद्रता की ओर संकेत किया। उमा चुपचाप लौट गयीं तथा शिव से सब कह सुनाया। उनकी इच्छानुसार शिव पत्नी तथा गणों सहित वह पर्वत छोड़कर मेरु पर्वत चले गये।

ब्र० पु०, ३४, ३५, ३६-३८, २२-४०

उर्वशी वरुण ने समुद्र में क्रीड़ा करती हुई उर्वशी नामक अप्सरा को देखा। कामपीड़ित होकर उन्होंने उसे मैथुन की इच्छा से बुलाया। उर्वशी के यह बताने पर कि उसे इसी कामना से मित्र (सूर्य) ने पहले से ही चुन रखा है, वरुण ने कहा—"हे देवि, मैं तुम्हारे सामने ही इस घड़े में अपने वीर्य को छोड़ देता हूं। मेरा मनोरथ पूर्ण हो जायेगा।" उर्वशी ने यह स्वीकार कर लिया। तदुपरांत वह मित्र के पास चली गयी। मित्र देवता ने बहुत क्रुद्ध होकर उर्वशी से कहा—"दुराचारिणी! मैंने वरण करके तुझे बुलाया था। तू मुझसे बिना मिले ही दूसरे पति का मानसिक वरण कर चुकी है, अतः मेरे शाप से तू मृत्युलोक में जाकर काशिराज के पुत्र पुरुरवा की पत्नी बनकर रह। जब तक तू मृत्युलोक में रहेगी, वही तेरा पति होगा।"

ऐसा ही हुआ तथा उर्वशी ने मृत्युलोक में एक पुत्र को जन्म दिया जो इंद्र के समान तेजस्वी था। उसका नाम नहुष था। शाप की अवधि पूर्ण होने पर वह पुनः इंद्रलोक चली गयी।

बा० रा०, उत्तर कांड, श्लोक १३-५६

स्वर्ग की एक सभा में अर्जुन ने ध्यान से उर्वशी की ओर देखा। उसकी दृष्टि को कामपूर्ण समझकर इंद्र ने चित्र-

सेन के माध्यम से उर्वशी के पास संदेश भेजा कि वह अर्जुन को संतुष्ट करे। कामविभोर उर्वशी जब अर्जुन के पास पहुंची तो उसने उसे पूज्य भाव से सम्मानित करते हुए कहा—"तुम पुरु-वंश की जननी हो, अतः मां के समान पूज्या हो। पुरु-वंश की जननी को मैं सभा में ध्यान से देख रहा था।" उर्वशी ने रुष्ट होकर अर्जुन को शाप दिया कि वह स्त्रियों के बीच में सम्मानरहित होकर नर्तक बनकर रहेगा तथा उसका आचार-व्यवहार भी नपुंसकों जैसा ही होगा। अर्जुन ने इंद्र से सब कुछ कह सुनाया। इंद्र ने समाधान करते हुए कहा कि एक वर्ष के अज्ञातवास में उसे नर्तक ही बनना होगा। वर्ष समाप्त होने पर वह नपुंसक भाव का परित्याग कर पुरुष-तत्त्व प्राप्त करेगा।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय ४५-४६

उलूक (**क**) उलूक और गिद्ध दो पक्षी सैकड़ों वर्षों से एक वन में रहते थे। एक बार गिद्ध के मन में पाप आया और उसने उलूक के घर जाकर कहा—"यह घर मेरा है।" दोनों का झगड़ा बढ़ा तो वे न्याय के लिए राम के पास पहुंचे। राम ने पूछा—"तुम लोग कब से उस घर में हो, बताओ?" गिद्ध ने बताया कि जब से पृथ्वी पर मनुष्य आये; तब से हैं और उलूक ने कहा, जब से पृथ्वी पर वृक्षों की रचना हुई तब से। राम ने व्यवस्था दी कि घर उलूक का है क्योंकि सृष्टि की रचना में पहले वनस्पति की रचना हुई थी। तभी आकाशवाणी हुई कि रामचंद्र गिद्ध को दंड न दें। वह पहले जन्म में एक राजा था। गौतम ऋषि के आतिथ्य में मांस परोसने के अनजाने अपराध से उसे इस जन्म में गिद्ध बनना पड़ा; क्योंकि अपराध जानबूझकर नहीं किया गया था। अतः गौतम ऋषि ने कहा—"इक्ष्वाकु-वंश में रामचंद्र का जन्म होगा। उनके स्पर्श से तुम पाप के बंधनों से मुक्त हो जाओगे।" रामचंद्र ने गिद्ध का स्पर्श किया तो वह पुनः राजा बन गया।

बा० रा०, उत्तर कांड, क्षेपक-३

(**ख**) उलूक शकुनि-पुत्र था। युद्ध में अनेक बार उसकी पांडवों से मुठभेड़ हुई। जीवन के अंतिम दिन भीम के प्रहारों से वह घायल हो गया तथा सहदेव के भल्ल से मारा गया।

म० भा०, शल्यपर्व, अध्याय २६,
श्लोक २९ से ३४ तक

उलूपी वनवासी अर्जुन हरिद्वार में गंगा-स्नान कर रहा था। ऐरावत नाग के कुल में उत्पन्न कौरव्य नामक नाग की पुत्री उलूपी ने उसे देखा तो आसक्त होकर उसे जल के भीतर खींच लिया तथा नागराज के भवन में ले गयी। उसने अर्जुन के सम्मुख प्रणय-निवेदन किया। साथ ही यह भी कहा कि वनवास की शर्त तो भूतल के उद्धार के लिए ही रखी गयी है। अर्जुन ने वह रात्रि उलूपी के साथ व्यतीत की। उलूपी ने प्रसन्न होकर उसे वर दिया कि प्रत्येक जलचर उसके वश में रहेगा।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय २१३

उलूपी संतानहीना थी। उसके मनोनीत पति को गरुड़ ने मार डाला था। अर्जुन के संपर्क से उसने एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम इरावान् रखा गया। उसका पालन-पोषण उसके मातृकुल में ही हुआ था। बड़े होने पर वह पिता के पास पहुंचा। वहां उसने अर्जुन को अपना परिचय दिया तथा युद्ध के समय उपस्थित होने का वादा करके चला गया। महाभारत युद्ध में उसने पांडवों को भरसक सहयोग प्रदान किया।

म० भा०, भीष्मवधपर्व, अध्याय ९०, श्लोक ७-१८

उशना अग्नि देवों का दूत था तथा उशना असुरों का। एक बार दोनों प्रश्न लेकर प्रजापति के पास पहुंचे। प्रजापति ने अग्नि-संबंधी मंत्र का पर्यावर्तन किया। परिणामतः अग्नि की वृद्धि से देवता विजयी हुए और असुर विनष्ट हो गये।

ऋ० वे० १।१२।१, यजुर्वेद ५।५,
तैत्तिरीय संघिता, २-५-८-५

उशना (शुक्राचार्य) भृगुपुत्र उशना उत्तम व्रत का पालन करते हुए भी देवताओं के विरोधी थे। उसके मूल में एक कथा है। उशना ने इंद्र के कोषाध्यक्ष (कुबेर) के भीतर प्रवेश करके समस्त धन हस्तगत कर लिया। कुबेर ने देवेश्वर शिव से जाकर कहा तो उन्होंने क्रुद्ध होकर हाथ में त्रिशूल उठा लिया। उशना तुरंत उनके त्रिशूल की नोक पर जा पहुंचे। शिव ने हाथ से त्रिशूल को मोड़कर धनुषाकार कर दिया तथा उशना को पकड़, मुंह में डालकर निगल लिया। हाथ में मोड़े जाने के कारण ही वह त्रिशूल पिनाक कहलाया। शिव जल के भीतर रहकर वर्षों तक तपस्या करते रहे। बाहर निकलने पर उन्हें ब्रह्मा मिले। शिव ने अनुभव किया कि उनकी तपस्या के कारण उदरस्थ उशना की

तपस्या की भी वृद्धि हुई है। योगी महादेव ने ध्यान लगाया। उदरस्थ उशना दग्ध होने लगा। उसने महादेव की उपासना करके बार-बार बाहर निकल पाने का मार्ग मांगा, किंतु महादेव ने उसे 'शिश्न' के मार्ग से बाहर निकलने का आदेश देकर शेष समस्त द्वार बंद कर दिये। शिश्न से निकलने के कारण उशना शुक्राचार्य कहलाया। शिव उसपर त्रिशूल से प्रहार करना चाहते थे किंतु पार्वती ने (उनके उदर में चिर काल तक रहे) शुक्राचार्य को पुत्रवत् मानकर महादेव को प्रहार नहीं करने दिया।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय २८९

उशीनर शिवि का राजा उशीनर अत्यंत धर्मपरायण था। एक बार इंद्र तथा अग्नि ने क्रमशः बाज तथा कबूतर का रूप धारण कर उशीनर की परीक्षा लेने का निश्चय किया। कबूतर के रूप में अग्नि बाज-रूपी इंद्र से बचने के लिए उशीनर की शरण में चला गया। बाज के बहुत मांगने पर भी राजा शरणागत का परित्याग करने के लिए तैयार नहीं हुआ। अंत में बाज (इंद्र) ने राजा से कबूतर के बराबर उसके मांस की याचना की। राजा तैयार हो गया। तराजू के एक पलड़े में कबूतर रखा गया। दूसरे में राजा अपना मांस काटकर रखता गया, पर कबूतर फिर भी भारी ही रहा। अंत में राजा उशीनर दूसरे पलड़े में जा बैठा। उसी क्षण अग्नि तथा इंद्र अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुए। इंद्र राजा को कीर्ति-विस्तार का आशीष देकर देवलोक चले गये। उशीनर की कीर्ति का बहुत विस्तार हुआ और उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई।"

म० भा०, वनपर्व, अध्याय १३०,
श्लोक २१ से २४ तक, अ० १३१।-

उषस्ति कुरुक्षेत्र में एक बार दुर्भिक्ष पड़ा। वहां चक्र का पुत्र उषस्ति अपनी अल्पवयस्का पत्नी के साथ रहता था। अत्यत दयनीय स्थिति में एक बार वह भिक्षा मांगते-मांगते एक महावत से उसके जूठे उड़द लेकर घर आया। उसकी पत्नी भी भिक्षा मांग लायी थी। कुछ रात को और कुछ प्रातः खाकर वह राजा के पास पहुंचा। राजा यज्ञ करवाने वाला था। उषस्ति ने आस्तव (जहां प्रस्तोता स्तुति करते हैं) में जाकर कहा कि अर्थ बिना जाने जो यज्ञ-कर्म करेगा, उसका मस्तक गिर जायेगा। सब लोग मौन हो गये। राजा ने उसका परिचय प्राप्त किया तो बताया कि वह बहुत दिन से उनकी खोज में था, पर उनके न मिलने पर ही अन्य लोगों से यज्ञ करवा रहा था। तदनंतर यजमान से यह तय करके कि उपस्थित लोग उनकी आज्ञा प्राप्त कर यज्ञ करेंगे—राजा जितना धन उन सबको देगा उतना ही उषस्ति को भी देगा—उषस्ति ने सबको यज्ञ-कर्म का उपदेश दिया।

तदनंतर उन सब लोगों ने अन्न-प्राप्ति के लिए शौन उद्गीथ का यज्ञ आरंभ किया।

छा० उ०, अध्याय १, खंड १०-११ संपूर्ण
अ० १२, श्लोक १

उषा उषा आकाश तनया है। प्रकाश से युक्त वह सर्वत्र रंगबिरंगे प्रकाश का वितरण करती है। समस्त लोकों का अवलोकन करती हुई वह पश्चिम की ओर मुख करके प्रकाशित होती है। वह अपनी बहन रात्रि को छिपा देती है।

ऋ० १।९२

ब्रह्म पुराण में दे० वैवस्वत (मनु) केवल नामों में अंतर है। 'संज्ञ' के स्थान पर 'उषा' तथा 'मनु' के स्थान पर 'आदित्य' का प्रयोग किया गया है।

ब्र० पु०, ७१।-

□

ऋ

ऋजिश्वन् इंद्र ने राजा ऋजिश्वन् के द्वारा वंगृद नामक दैत्य को पराजित कराया।

ऋ० १।५३।८

ऋभुगण अंगिरस के पुत्र का नाम सुधन्वा था। सुधन्वा के तीन पुत्र हुए—ऋभुगण, बिंबन तथा बाज। वे तीनों त्वष्टा के निपुण शिष्य हुए। वे मूलत: मानव थे किंतु अपनी कठिन साधना से उन्होंने देवत्व की उपलब्धि की। त्वष्टा ने एक चमस पात्र का निर्माण किया था। अग्निदेव ने देवताओं के दूत के रूप में जाकर उन तीनों से कहा कि वे एक चमस पात्र से चार चमस बना दें। उन्होंने स्वीकार कर लिया तथा चार चमस बना दिये। फलस्वरूप तीसरे सवन में स्वधा के अधिकारी हुए। उन्हें सोमपान का अधिकार प्राप्त हुआ तथा देवताओं में उनकी गणना होने लगी। उन्होंने अमरत्व प्राप्त किया।

सुधन्वा पुत्रों में से कनिष्ठ बाज देवताओं से, मध्यम बिंबन वरुण से तथा ज्येष्ठ ऋभुगण इंद्र से संबंधित हुए। उन्होंने अनेक उल्लेखनीय कार्य किये। अपने वृद्ध माता-पिता को पुन: युवा बना दिया। अश्विनीकुमारों के लिए तीन आसनोंवाला रथ बनाया जो बिना अश्व के चलता था। इंद्र के लिए रथ का निर्माण किया। देवताओं के लिए दृढ़ कवच बनाया तथा अनेक आयुधों का निर्माण भी किया।

ऋ० १।२०, १।१६१, ४।३४, ३५, ३६, ३७

अग्नि वसु आदि देवतागण ऋभुओं के साथ सोमपान नहीं करना चाहते थे क्योंकि उन्हें मनुष्य की गंध से डर लगता था। सविता तथा प्रजापति (ऋभुओं के दोनों पार्श्व में विद्यमान रहकर) उनके साथ सोमपान करते थे। ऋभुओं को स्तोत्र देवता नहीं माना गया यद्यपि प्रजापति ने उन्हें अमरत्व प्रदान कर दिया था।

ऐ० ब्रा०, ३।३०, ६।१२, श० ब्रा०, १२।३।४।५

ऋषभदेव नाभि के पुत्र का नाम ऋषभ था। ऋषभ के जन्म के समय से ही उसके शरीर पर विष्णु के वज्र-अंकुश आदि चिह्न विद्यमान थे। ऋषभदेव का विवाह इंद्र की कन्या जयंती से हुआ था। एक बार इंद्र ने ईर्ष्यावश उसके राज्य में वर्षा नहीं की। ऋषभ ने इंद्र की मूर्खता पर हंसते हुए अपने योगबल से वर्षा का आवाहन किया। कालांतर में उसने सौ यशस्वी पुत्र प्राप्त किये। उनमें से सबसे बड़े बेटे का नाम भरत था। राजा ऋषभदेव ने अपने अवतार लेने के रहस्य का उद्घाटन करते हुए सब पुत्रों को आलस्यहीन होकर धर्मपूर्वक कार्य करने का आदेश दिया तथा भरत की सेवा करने को कहा। ऋषभ ने जनता को योग-साधना में विघ्नस्वरूप जानकर अजगरवृत्ति धारणा कर ली तथा लेटे-लेटे ही सब कर्म करने लगे। कालांतर में उन्होंने ऐहिक शरीर का त्याग कर दिया।

श्रीमद् भा०, पंचम स्कंध, २-६

ऋषभ की दो पत्नियां थीं। एक का नाम सुमंगला तथा दूसरी का नाम नंदा था। उनके सौ पुत्र तथा दो कन्याएं थीं। एक दिन सेवा-कार्य में लगी नीलांजना नामक अप्सरा को देखकर उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। लोकांतिक देव ने वहां उपस्थित होकर उनके विचार का अनुमोदन किया। अत: ऋषभ 'वसंततिलक' नामक उद्यान में पहुंचे। परिवारजनों से अनुमति लेकर उन्होंने

आभूषण आदि का त्यागकर महाभिनिष्क्रमण किया। उस अवसर पर इंद्र ने उनके बाल रत्नजटित वस्त्र में लेकर क्षीर सागर में प्रवाहित किये। कुछ कालोपरांत ध्यान का परित्याग करके दान-धर्म के प्रचारार्थ ऋषभदेव ने देश का पर्यटन किया।

पउ० च०, ३।१०८-१३८।४।-

ऋष्यमूक पर्वत ऋष्यमूक पर्वत के शिखर पर रात को सोया हुआ मनुष्य जिस वस्तु को पाने की इच्छा करता है, वह उसे अवश्य प्राप्त होती है। यदि कोई पापी दुराचारी वहां पहुंच जाता है तो उसे सोते-जागते वहां के राक्षस मार डालते हैं।

बा० रा०, अरण्य कांड, सर्ग ७३, श्लोक सं० ३३-३४

ऋष्यशृंग कश्यप के पुत्र विभांडक एक ऋषि थे। उनके पुत्र का नाम ऋष्यशृंग था। वे अत्यंत पितृभक्त थे तथा वन में रहकर अपने पिता की सेवा करते थे। एक बार अंगदेश के राजा रोमपाद को अनावृष्टि का सामना करना पड़ा। ब्राह्मणों ने उन्हें वृष्टि का एकमात्र उपाय यह बतलाया कि वे किसी प्रकार ऋष्यशृंग को राज्य में बुलाकर अपनी पुत्री शांता से उनका विवाह कर दें। रूपवती वेश्याओं तथा प्रलोभनों में फंसाकर रोमपाद ने उन्हें अपने राज्य तक बुलाया और शांता का विवाह उनसे कर दिया।

बा० रा०, सर्ग ९, श्लोक १-१९
सर्ग १०, श्लोक १-३३

कश्यप गोत्रीय विभांडक मुनि का हेमकूट पर्वत पर पुण्य नामक आश्रम था। एक बार जल में स्नान करते हुए उन्होंने उर्वशी को देखा। उसके सौंदर्य पर आसक्त हो उनका वीर्य स्खलित हो गया। एक प्यासी मृगी ने पानी के साथ उस वीर्य का पान कर लिया। अतः उसके गर्भ से ऋषिपुत्र का जन्म हुआ जिसके सिर पर एक सींग था। अतः वह ऋष्यशृंग कहलाया। मृगी एक शापित देवकन्या थी। ऋषिपुत्र को जन्म देकर वह शापमुक्त हो गयी तथा उसने अपने पूर्व रूप को प्राप्त कर लिया। ऋष्यशृंग अपने पिता के साथ तपस्यारत रहने लगा। उसने अपने पिता के अतिरिक्त अन्य किसी को कभी देखा ही नहीं था, अतः वह स्वभावतः ब्रह्मचारी था। उन्हीं दिनों राजा लोमपाद ने जानबूझकर एक ब्राह्मण से मिथ्याचार किया। फलस्वरूप उसके राज्य में वर्षा होनी बंद हो गयी। बहुत पूछने पर यह उपाय बताया गया कि यदि किसी प्रकार ऋष्यशृंग का पदार्पण उसके राज्य में हो जाय तो तुरंत वर्षा आरंभ हो जायेगी। सोच-विचारकर कुछ वेश्याओं ने एक योजना तैयार की। उन्होंने एक नौका पर कृत्रिम फल-फूलों से युक्त एक 'नाव्याश्रम' का निर्माण किया। वेश्याओं ने उसे ऋष्यशृंग के आश्रम से थोड़ी दूर जा लगाया। यह मालूम करके कि विभांडक मुनि घर पर नहीं हैं, उनमें से एक ऋष्यशृंग के पास गयी तथा अनेक प्रकार से उसने उसे कामातुर कर दिया। पिता के आने तक उसने यज्ञादि कुछ भी नहीं किया था। पुत्र को अन्यमनस्क जानकर उन्होंने उसका कारण पूछा। ऋष्यशृंग ने बताया कि एक अत्यंत सुंदर दिव्य ब्रह्मचारी वहां आया था। उसकी वेशभूषा तथा क्रियाकलाप का वर्णन कर उसने पिता से उसके पास जाने की अनुमति मांगी किंतु पिता ने उससे मिलने मात्र के लिए भी मना कर दिया। कालांतर में पिता की अनुपस्थिति में वेश्या उसे अपने साथ अपने आश्रम में ले गयी। नाव पर पहुंचते ही लंगर उठा दिया गया तथा ऋष्यशृंग अत्यंत मुग्ध स्थिति में लोमपाद की नगरी में पहुंचा। वर्षा प्रारंभ हो गयी तथा लोमपाद ने अपनी पुत्री शांता का विवाह मुनि से कर दिया। उधर मुनि विभांडक ने अपने पुत्र को आश्रम में न पाया तो खोज प्रारंभ की। मार्ग में नागरिकों ने तरह-तरह से मुनि की सेवा की। राजा का ऐसा ही आदेश था। मुनि जिस पशु, पक्षी, स्थान के स्वामी का नाम जानना चाहते, जनपदवासी सभी का स्वामी उनके पुत्र को बताते। धीरे-धीरे उनका क्रोध तिरोहित हो गया। राजा लोमपाद के पास पहुंचकर उन्हें अपने पुत्र की प्राप्ति हुई। वहां पर उन्होंने इंद्रिय-संयम का उपदेश देकर पुत्र को आदेश दिया कि वह स्वात्मज के जन्मोपरांत हेमकूट पर्वत पर वापस आ जाय। पुत्र-जन्म के उपरांत ऋष्यशृंग तथा शांता ने शेष जीवन पुण्य आश्रम में व्यतीत किया।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय ११० से ११३ तक

□

एकलव्य एकलव्य निषादराज हिरण्यधनु के पुत्र का नाम था। वह द्रोणाचार्य के पास गया किंतु उन्होंने उसे अपना शिष्य नहीं बनाया। एकलव्य ने घर लौटकर द्रोणाचार्य की एक मिट्टी की प्रतिमा बनायी। उसी में गुरु की पूज्य भावना रखकर उसने धनुर्विद्या का अभ्यास प्रारंभ कर दिया। एक बार कौरव-पांडव शिकार खेलने उसी ओर निकल आये। उनका कुत्ता भौंके जा रहा था। उसे चुप कराने के लिए एकलव्य ने सात वाण इकट्ठे ही उसके खुले मुंह की ओर छोड़े। कुत्ते का मुंह और भौंकना दोनों ही बंद हो गये। यह देखकर कौरव तथा पांडव आश्चर्यित हुए। द्रोणाचार्य को जब विदित हुआ तो उन्होंने एकलव्य से दक्षिणा के रूप में दाहिने हाथ का अंगूठा मांग लिया। एकलव्य ने निर्विकार भाव से वह अंगूठा काटकर अर्पित कर दिया तथा अंगुलियों से वाण चलाने का अभ्यास करने लगा। अर्जुन को यह संतोष प्राप्त हुआ कि उससे अच्छा कोई अन्य धनुर्वेद वेत्ता नहीं है।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय १३१,
श्लोक ३२ से ५९ तक

एक बार श्रीकृष्ण की अनुपस्थिति में एकलव्य का हलधर (बलराम) से युद्ध हुआ। बलराम ने अनेकों निषादों को मार डाला। एकलव्य (निषादराज) बलराम से डरकर भागा। बलराम ने पीछा किया। वह दूसरे द्वीप में भाग गया और वहीं रहने लगा।

हरि० वं० पु०, भविष्यपर्व।९८-१०२

एकवीर एक बार सूर्यपुत्र रेवंत, उच्चैश्रवा नामक घोड़े पर चढ़कर विष्णु तथा लक्ष्मी के बैकुंठधाम में गये। लक्ष्मी मंत्रमुग्ध-सी उसे देख रही थी। विष्णु ने पूछा—"वह कौन सुंदर युवक आ रहा है?" लक्ष्मी मौन रही। लक्ष्मी को उस पुरुष पर मुग्ध जानकर विष्णु ने उसे घोड़ी के रूप में पृथ्वी पर जन्म लेने का शाप दिया। लक्ष्मी के अनुनय-विनय करने पर विष्णु ने कहा—"जब मेरे समान पुत्र को जन्म दोगी तभी तुम पुन: मुझे प्राप्त कर पाओगी।" सूर्य-पुत्र रेवंत ने विष्णु को क्रुद्ध देखा तो प्रणाम करके दूर से ही चला गया तथा समस्त वृत्तांत सूर्य से जा कहा। रमा घोड़ी के रूप में पृथ्वी पर जन्म लेकर शिव की आराधना करने लगी। शिव की प्रेरणा से विष्णु घोड़े का रूप धारण करके घोड़ी रमा के पास गये। उन दोनों का पुत्र नारायण की तरह सुंदर था। विष्णु और लक्ष्मी अपने पूर्व रूप में भासित हुए। लक्ष्मी के मना करने पर भी विष्णु बालक को पृथ्वी पर खेलता छोड़कर लक्ष्मी सहित बैकुंठ चले गये। उधर से जाते हुए चंपक नामक विद्याधर तथा उसकी पत्नी ने वन में खेलते बालक को उठा लिया। उसका संस्कार करने से पूर्व वे दोनों शिव की अनुमति लेने गये। शिव ने उन्हें कहा कि "वे उसे तुरंत वापस छोड़ आयें क्योंकि उसका जन्म ययाति के पुत्र तुर्वसु के निमित्त हुआ है, विष्णु की प्रेरणा से वह उस स्थान पर जाने वाला ही होगा।" विद्याधर ने बालक को पुन: जंगल में छोड़ दिया। इस मध्य कमला सहित विष्णु ने राजा तुर्वसु को दर्शन दिये। राजा ने शत्रु-हनन के निमित्त पुत्र-प्राप्ति के लिए तप किया। विष्णु ने उसकी इच्छा जानकर उससे कहा—"तुम्हारा मनवांछित बालक मैं वन में छोड़ आया हूं, ग्रहण करो।" तदुपरांत राजा को आशीष देकर विष्णु और कमला बैकुंठ चले

गये। राजा जंगल से बालक को ले आया। उसका नाम एकवीर रखा गया। वही हैहयराज नाम से विख्यात हुआ। बालक के बड़े होने पर राजा ने उसका अभिषेक किया तथा स्वयं वानप्रस्थी हो गया।

एक बार एकवीर भ्रमण करता हुआ गंगा के तट पर पहुंचा। वहां उसने अतीव सुंदरी युवती को रोते हुए पाया। सुंदरी से उसके रुदन का कारण पूछने पर उसे ज्ञात हुआ कि वह रम्य नामक राजा के मंत्री की पुत्री थी। उसका नाम यशोवती था। उसने अपने दु:ख के विषय में कहा—"रम्य नामक धार्मिक राजा नि:संतान थे। उन्होंने संतान-प्राप्ति के लिए यज्ञ करके अत्यंत सुंदरी कन्या प्राप्त की। उसका नाम एकावली रखा गया। बड़े होने पर वह माता-पिता के मना करने पर भी हम सब सखियों को लेकर गंगा-तट पर आ जाती थी। एक दिन कालकेतु नामक दानव ने वहां पहुंचकर उसका अपहरण कर लिया। वह मुझे भी अपने रथ में बैठाकर अपनी नगरी ले गया तथा मुझसे कहने लगा कि मैं एकावली को विवाह के लिए तैयार कर दूं। एक सिद्ध ब्राह्मण से मैंने देवी का एक सिद्ध मंत्र प्राप्त किया था। उसका जपन मैं नित्य करती हूं। एक रात देवी ने स्वप्न में दर्शन देकर मुझसे कहा कि मैं गंगा-तट पर पहुंचूं। वहां मुझे एकवीर नामक हैहयराज मिलेंगे जो मेरी सखी को कैद से मुक्त करके उससे विवाह करेंगे। मैंने एकावली को स्वप्न के विषय में सुनाया तो उसने मुझे यहां आने के लिए प्रेरित किया। उस भयानक कैद से निकलने का मार्ग देवी भगवती की कृपा से मुझे मिलता ही गया। अब आप अपना परिचय दीजिए।"

एकवीर ने अपना परिचय देकर उसकी प्रेरणा से देवी का बीजमंत्र सिद्ध कर लिया। तदनंतर वह अपनी सेना तथा यशोवती सहित कालकेतु के राज्य में पहुंचा। उसे मारकर वह एकावली को लेकर उसके पिता के पास पहुंचा। एकावली के पिता ने उसका विवाह एकवीर से कर दिया। एकावली के पुत्र का नाम कृतवीर्य तथा पौत्र का नाम कार्तवीर्य हुआ।

दे० भा०, ६।१७-२३।-

□

औ

औत्तम मन्वंतर (३) राजा उत्तानपाद के, सुरुचि के गर्भ से हुए, पुत्र का नाम उत्तम था, जिसकी पत्नी बहुला बहुत उद्धत थी। एक बार रुष्ट होकर राजा ने उसे निर्जन वन में छुड़वा दिया। कुछ समय के बाद एक ब्राह्मण राजा उत्तम के पास पहुंचा। उसकी सोती हुई पत्नी का किसी ने हरण कर लिया था, अत: वह राजा की सहायता से पत्नी को ढूंढ़वाना चाहता था। उसकी पत्नी कुरूप भी थी और कटुभाषिणी भी, किंतु उसका मत था कि पत्नी के बिना पुरुष धर्म-कर्म नहीं कर सकता। राजा एक भूत-भविष्यज्ञाता ऋषि के पास गये। उन्होंने बताया कि उसका हरण अद्रि के पुत्र बलाक नाम के राक्षस ने किया है। राजा खोजते हुए बलाक के घर पहुंचे। राजा ने बलाक से ब्राह्मणी का हरण करने का कारण पूछा। वह बोला—"हम नरभक्षी नहीं हैं, पर दुष्ट स्वभाव का भक्षण कर सकते हैं। ब्राह्मण वेदमंत्रों का ज्ञाता है। वह रक्षोघ्न मंत्रों के द्वारा हमें दूर भगा देता है। बिना पत्नी के वह धर्म-कर्म नहीं कर पायेगा, इसीसे उसकी पत्नी का हरण किया था।" राजा की आज्ञा पर उसने ब्राह्मणी के दुष्ट स्वभाव का भक्षण कर लिया तथा उसे उसके घर में छोड़ आया। राजा पुन: ऋषि के पास पहुंचे। ऋषि उसे देखते ही जान गये कि क्या कारण है, अत: उन्होंने बताया—"रानी को नागराज कपोत पाताल ले गये थे। उनकी कन्या नंदा ने इस भय से कि वह उसकी विमाता न बना दी जाय, उसे रनिवास में छुपा दिया था, अत: वह वहां सुरक्षित है। नागराज ने रुष्ट होकर अपनी पुत्री को गूंगे होने का शाप दे दिया। वह निरंतर बहुला के साथ रहती है।" राजा ने अपने राज्य में लौटकर उसके दुष्ट स्वभाव को बदलने के लिए मित्रविंदा यज्ञ करवाया। तदनंतर बालक को बुलाकर रानी को ले जाने की आज्ञा दी। रानी बहुत अनुकूल स्वभाव में प्राप्त हुई। उसकी प्रार्थना पर राजा ने ब्राह्मण से नंदा के पुन: बोल पाने के लिए यज्ञ करवाया। नंदा ठीक होने पर कृतज्ञता-ज्ञापन करने राजा-रानी के पास पहुंची। उसने राजा को औत्तम जैसे पराक्रमी पुत्र की उत्पत्ति का आशीर्वाद दिया। औत्तम तीसरा मनु माना जाता है। औत्तम मनु के तीन पुत्र हुए—अज, परशुचि और दिव्य।

मा० पु०, ६६-६९।-

कृतवीर्य नामक राजा भृगुवंशी ब्राह्मणों के यजमान थे। उन्होंने सोमयज्ञ करके धनधान्य देकर अग्रभोजी ब्राह्मणों को संतुष्ट किया। कालांतर में उनके स्वर्ग-वास के उपरांत उनके वंशजों को किसी कारण से धन की आवश्यकता पड़ी। वे राजपुत्र भार्गवों को धनी मानकर याचना के हेतु उनके पास गये। कुछ भार्गवों ने धन दिया, शेष ने धनराशि छिपाकर उसका अभाव प्रदर्शित किया। ऐसे ही किसी भार्गव ब्राह्मण के घर में खोदने पर अकस्मात् धनोपलब्ध होने के कारण राजकुमार अत्यंत क्रुद्ध होकर भार्गवों का नाश करने लगे। यहां तक कि गर्भस्थ बालकों को भी नष्ट करने लगे। एक ब्राह्मणी ने भय के कारण अपनी जांघ चीर-कर उसमें अपने गर्भस्थ बालक को छुपा लिया। क्षत्रियों को ज्ञात हुआ तो वे गर्भ की हत्या करने के लिए उसके पास पहुंचे। उनके पहुंचने पर बालक तुरंत प्रकट हो गया तथा उसके तेज से वे सब अंधे हो गये, क्योंकि बालक उरु

से (जांघ से) प्रकट हुआ था इसलिए वह और्व कहलाया उनके अनुनय-विनय करने पर और्व ने उन सबकी दृष्टि तो लौटा दी किंतु समस्त लोकों का नाश करने का विचार बनाया। तभी उसके पूर्वजों ने प्रकट होकर उससे कहा कि बूढ़े होने पर भी क्योंकि मृत्यु उनके पास नहीं फटक रही थी, इसी से उन्होंने मृत्यु के आलिंगन का मार्ग खोजा था। राजकुमार तो नियति के निमित्त मात्र बने थे। ब्राह्मण को क्रोध तथा हिंसा शोभा नहीं देते। और्व के सम्मुख धर्मसंकट आ उपस्थित हुआ क्योंकि वे प्रतिज्ञा कर चुके थे। पितरों ने कहा—"हे और्व, तुम्हारी क्रोधाग्नि, जो कि लोकों को नष्ट कर देना चाहती है, उसे जल में छोड़ दो क्योंकि जल में सभी प्रतिष्ठित रहते हैं।" और्व ने ऐसा ही किया। वह बढ़वाग्नि अब भी विद्यमान है तथा सागर का जल पीती रहती है।

म० भा०, आदिपर्व,
अध्याय १७७ से १८० तक

एक बार कोई बड़ा व्ययसाध्य काम पड़ने पर हैहयगणों ने भृगुवंशी पुरोहितों से कर्जा मांगा। उन लोगों ने धन को जमीन में गाड़ दिया और कहा कि वे धनशून्य हैं। हैहयगणों के भय से झूठ बोलकर वे पहाड़ों में जा छुपे। क्षत्रियों ने उनके घर खोदकर धन निकाल लिया तथा उनके कुल को नष्ट करने के लिए गर्भवती स्त्रियों के गर्भ का नाश भी करना आरंभ किया। स्त्रियां भी पहाड़ों में जा छुपीं। स्त्रियों को देवी भगवती ने स्वप्न में दर्शन दिए और उनका त्राण उन्हीं की संतान करेगी, ऐसा बताया। उनमें से एक गर्भवती ब्राह्मणी का पीछा करते हुए हैहयगण उसे त्रस्त कर रहे थे कि उसके गर्भ को चीरकर एक बालक प्रकट हुआ, जिसे देखते ही प्रत्येक क्षत्रिय अंधा हो जाता था। कालांतर में वे सब ब्राह्मणी से क्षमा-याचना करने लगे। वह बालक और्व ऋषि (उरु से उत्पन्न) हुआ। उन्होंने सबको पूर्ववत् शांतिपूर्वक रहने का आदेश दिया तथा क्षत्रियों को पुन: दृष्टि प्रदान की।

दे० भा०, ६।१६

औशनस भगवान राम ने एक राक्षस को मारकर दूर फेंक दिया था। उसका विशाल सिर महामुनि महोदर की जांघ छेद कर उसमें चिपक गया था। उससे निरंतर दुर्गंध आती रहती थी। अनेकों तीर्थों पर उससे छुटकारा प्राप्त करने के लिए उन महामुनि ने स्नान किया। अंततोगत्वा औशनस तीर्थ में स्नान करके वे कपाल से मुक्त हुए। शुक्राचार्य ने पहले वहीं तप किया था जिससे उनके हृदय में संपूर्ण नीति-विद्या स्फुरित हुई। महर्षि महोदर ने अपने आश्रम में जाकर समस्त महर्षियों को यह घटना सुनायी तो उस तीर्थ का नाम 'कपाल मोचन' भी पड़ गया।

म० भा०, शल्यपर्व, अध्याय ३९,
श्लोक ५-२४

औषधि पूर्वकाल में औषधियां सबकी माता कहलाती थीं। उनके मन में राजा पति की इच्छा बलवती हुई। ब्रह्मा की प्रेरणा से उन्होंने गंगा की वंदना की। गंगा ने प्रसन्न होकर उन्हें 'सोम' पति रूप में प्रदान किया।

ब्र० पु०, १६१।-

□

क

कंक कंक तथा न्यग्रोध आदि कंस से छोटे आठ भाई थे। उन्होंने कंस को मरता देखकर श्रीकृष्ण पर आक्रमण करना चाहा किंतु श्रीकृष्ण ने परिघ से उन सबको मार डाला।

श्रीमद् भा०, १०।४४।४०-४८

कंडु गोदावरी के तट पर तपस्यारत कंडु ने आकाश, पृथ्वी और स्वर्ग—तीनों लोकों को तपा दिया। मुनियों ने उद्विग्न होकर प्रम्लोचा नामक अप्सरा को उनका तप भंग करने के लिए भेजा। कंडु उस पर इतने मुग्ध हुए कि तप, ज्ञान सब नष्ट कर बैठे। नौ सौ वर्ष तक दोनों विहार करते रहे। एक सायं वे संध्या के लिए चले तब प्रम्लोचा से यह जानकर कि वे नौ सौ वर्षों के उपरांत संध्या की ओर प्रवृत्त हुए हैं, उन्हें अत्यधिक आत्मग्लानि हुई। अप्सरा को वहां से चले जाने का आदेश देकर उन्होंने विष्णु की उपासना से मुक्ति प्राप्त की।

ब्र० पु०, १७८।-

कंस कंस उग्रसेन के पुत्र का नाम था। उसके राज्याभिषेक की शर्त रखकर जरासंघ ने अपनी दोनों पुत्रियों का विवाह उससे किया था। कंस ने राजा बनते ही पिता उग्रसेन को कैद कर दिया। उग्रसेन के विश्वासपात्र मंत्री यादववंशी वसुदेव के सुझाव भी वह नहीं मानता था। कालांतर में उसने अपनी बहन देवकी का विवाह वसुदेव से कर दिया। देवकी की 'विदा' के समय कंस के प्रति आकाशवाणी हुई—"हे कंस! इसी देवकी का आठवां पुत्र तुम्हारा घात करेगा।" कंस तुरंत देवकी को मार डालना चाहता था किंतु वसुदेव ने ऐसा करने से रोकते हुए उसे सुझाया कि वह देवकी के आठवें बेटे को ही मारे। कंस ने देवकी के प्रत्येक बालक को मारना प्रारंभ कर दिया। देवकी के सातवें गर्भ में बलदेव थे। यमराज ने यम संबंधी माया से उस गर्भ को देवकी के उदर से निकाल रोहिणी की कुक्षी में स्थापित कर दिया। आठवें गर्भ में श्रीकृष्ण थे। कंस ने भावी बालक पर कठोर दृष्टि रखने के लिए कई मंत्री नियुक्त कर दिये। संयोगवश कृष्ण-जन्म के समय वे सभी लोग सो गये थे। अतः वसुदेव बालक को लेकर गोकुल पहुंचे, जहां उसे गोपों के मध्य छोड़ बदले में एक गोपकन्या ले आये। कंस ने उस कन्या को भी पृथ्वी पर दे मारा। वह कंस के हाथ से छूटकर हंसती हुई आर्यभाषा बोलती हुई वहां से चली गयी। इसी से उसका नाम आर्या पड़ा। श्रीकृष्ण ने कंस के अत्याचार से त्रस्त गोपों में जागृति उत्पन्न की तथा वयस्क होने पर कंस को मार डाला तथा उग्रसेन का पुनः राज्याभिषेक कर दिया। जरासंघ को यह सब विदित हुआ तो उसने पुनः युद्ध कर उग्रसेन को परास्त कर दिया तथा कंस के पुत्र को शूरसेन का राजा बनाया।

म० भा०, सभापर्व, अध्याय २२,
श्लोक ३६ के उपरांत

यदुवंशी राजा शूरसेन मथुरा में रहकर राज्य करते थे। उनके पुत्र वसुदेव का विवाह देवक की कन्या देवकी से हुआ। उग्रसेन का लड़का कंस अपनी चचेरी बहन देवकी के रथ को हांकने लगा। उसका देवकी से बहुत स्नेह था, तभी आकाशवाणी सुनायी पड़ी—"जिसे तू चाहता है, उस देवकी का आठवां बालक तुझे मार डालेगा।" ऐसा सुनकर कंस ने बहन को मारने के लिए तलवार निकाल

ली। वसुदेव ने उसे शांत किया तथा वादा किया कि अपना पुत्र उसे सौंप दिया करेंगे। पहला पुत्र होने पर जब वसुदेव कंस के पास पहुंचे तो नन्हे बालक को वैसे ही लौटाकर कंस ने कहा कि उसे तो आठवां बेटा चाहिए। एक दिन नारद ने कंस के पास पहुंचकर बताया कि यदुवंशी सब देवता, अप्सरा आदि हैं—वे दैत्यों का संहार करने के लिए जन्मे हैं, तो कंस ने सोचा—क्योंकि पूर्व जन्म में वह स्वयं भी 'कालनेमि' नामक राक्षस था, जिसे विष्णु ने मारा था, इसलिए अब भी देवकी के उदर से विष्णु ही जन्म लेंगे। ऐसा विचार कर उसने वसुदेव और देवकी को कैद कर लिया। कंस ने एक-एक करके देवकी के छह बेटों को जन्मते ही मार डाला। सातवें गर्भ में श्रीहरि के अंशरूप श्रीशेष (अनंत) ने प्रवेश किया था। कंस उसे भी मार डालेगा, ऐसा सोचकर भगवान ने योगमाया से देवकी का गर्भ ब्रज-निवासिनी वसुदेव की पत्नी रोहिणी के उदर में रखवा दिया। देवकी के गर्भ से खींचे जाने के कारण वे 'संकर्षण', लोकरंजन के कारण 'राम' तथा बलवान के होने के कारण बलभद्र नाम से विख्यात हुए। देवकी का गर्भपात हो गया। तदनंतर आठवें बेटे की बारी में श्रीहरि ने स्वयं देवकी के उदर से पूर्णावतार लिया तथा योगमाया को यशोदा के गर्भ से जन्म लेने का आदेश दिया। श्रीकृष्ण जन्म लेकर, देवकी तथा वसुदेव को अपने विराट् रूप के दर्शन देकर, पुन: एक साधारण बालक बन गये। योगमाया के प्रभाव से जेल के पहरेदारों से लेकर ब्रज-वासियों तक सभी बेसुध हो गये थे। योगमाया ने यशोदा के घर में जन्म लिया था। पर वह पुत्र है या पुत्री, अभी किसी को ज्ञात नहीं था। तभी वसुदेव मथुरा से शिशु कृष्ण को लेकर नंद के घर पहुंच गये। जेल के दरवाजे स्वयं ही खुलते चले गये। नदी ने भी वसुदेव को मार्ग दिया। नंद की नवजात बेटी (योगमाया) से वसुदेव ने अपने नवजात शिशु (श्रीकृष्ण) को बदल लिया। कंस ने उसे ही टांगों से उठाकर पटका। वह यह कहती हुई कि 'तुझे मारने वाला तो अन्यत्र जन्म ले चुका है,' आकाश की ओर उड़ गयी तथा अंतर्धान हो गयी। कंस ने वसुदेव तथा देवकी को छोड़ दिया। उसके मंत्रियों ने अपने प्रदेश के सभी नवजात शिशुओं को मारना अथवा तंग करना प्रारंभ कर दिया। मंत्रियों की सलाह से कंस ने ब्राह्मणों को भी मारना प्रारंभ कर दिया। उसने अनेक आसुरी प्रवृत्ति वाले लोगों से कृष्ण को मरवाना चाहा पर सभी कृष्ण तथा बलराम के हाथों मारे गये। कंस ने एक समारोह के अवसर पर कृष्ण तथा बलराम को आमंत्रित किया। उसकी योजना वहीं उन्हें मरवा डालने की थी किंतु कृष्ण ने कंस को बालों से पकड़कर उसकी गद्दी से खींचकर उसे फर्श पर पटक दिया। उसे मारकर वे लोग देवकी तथा वसुदेव को जेल से मुक्त करवाने गये। जब उन्होंने माता-पिता के चरणों में वंदना की तो देवकी तथा वसुदेव कृष्ण को जगदीश्वर समझकर हृदय से लगाने में संकोच करते रहे।

श्रीमद् भा०, १०।१-४, १०।४४।-
हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व। १-३०
वि० पु०, ५। १-२०।-

कक्षीवान् कक्षीवान् की मां का नाम उशिज था तथा पिता का दीर्घतमस। कक्षीवान् विद्याध्ययन समाप्त करके अपने घर की ओर जा रहा था। मार्ग में थककर सो गया। उसी मार्ग से राजा स्वनय भावयव्य दल-बल सहित जा रहा था। कोलाहल से ऋषि कक्षीवान् की नींद खुल गयी। राजा स्वनय तथा उनकी पत्नी मुग्ध भाव से सोते हुए कक्षीवान् को देख रहे थे। जब वह उठा तब राजा ने उसके गोत्र के विषय में पूछा। स्वगोत्र से कोई विरोध न पाकर राजा ने अपनी दसों पुत्रियों का विवाह कक्षीवान् से कर दिया। दस रथ और एक हजार साठ गायें दीं। गायों की पंक्तियों के पीछे दस रथ लेकर कक्षीवान् पितृगृह पहुंचा। अपने कुटुंबियों को गायों, रथों आदि का दान किया फिर इंद्र की स्तुति की। अनेक प्रकार के यज्ञ किये। इंद्र ने प्रसन्न होकर उसे वृचया नामक पत्नी प्रदान की।

ऋ० १।१८।१, १।५१।१३, १।११७।६, १।१२६, १।१२०।६, १।११२।११, ८।६।१०, १।११६।७, ६।७४।८, १०।२५।१०
शा०, ब्रा० १।३।४।३५

कच एक बार देवताओं और दैत्यों में त्रिलौकिक ऐश्वर्य के लिए संघर्ष प्रारंभ हुआ। विजय की इच्छा से दैत्यों ने शुक्र को अपना पुरोहित बनाया तथा देवताओं ने बृहस्पति को पुरोहित बनाया। शुक्राचार्य को संजीवनी विद्या ज्ञात थी; अतः वह मरे हुए दैत्यों को जिला देते थे। बृहस्पति संजीवनी विद्या नहीं जानते थे। देवताओं ने बृहस्पति के पुत्र कच से अनुरोध किया कि वह शुक्राचार्य को गुरु

धारण करके उक्त विद्या का अर्जन करे। कच शुक्राचार्य के पास गया। उनके शिष्य-रूप में एक हजार वर्ष तक रहने का व्रत लिया। शुक्राचार्य की पुत्री का नाम देवयानी था। कच दोनों की सेवा में रत रहता था। इस मध्य दानवों ने तीन बार उसको मार डाला। पहली बार उसके टूकड़े करके जानवरों को खिला दिये तथा दूसरी बार मृत शरीर चूर्ण करके समुद्र में मिला दिया। तीसरी बार शरीर भस्म करके मदिरा में मिलाकर शुक्राचार्य को ही पिला दिया। पहली दो बार तो शुक्राचार्य ने मृत संजीवनी के प्रयोग से उसे जिला दिया। तीसरी बार पुन: देवयानी के अनुरोध करने पर उन्होंने कहा—"यदि अब मृत संजीवनी का प्रयोग करूं तो वह तो जीवित हो जायेगा किंतु मेरा उदर विदीर्ण करके बाहर निकलेगा, अत: मेरी मृत्यु निश्चित है।" अंत में सोच-विचारकर उन्होंने उदरस्थ कच को मृत संजीवनी विद्या का दान देकर कहा कि उदर से बाहर निकलकर वह शुक्राचार्य को पुन: जिला दे। कच ने ऐसा ही किया। व्रत पूर्ण होने पर वह देवलोक जाने के लिए तैयार हुआ तो देवयानी ने उसके सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखा। किंतु उसने यह कहकर मना कर दिया कि वह शुक्राचार्य के उदर में रहा है, अत: उसके भाई के समान है। देवयानी ने उसे शाप दिया कि उसकी संजीवनी विद्या फलीभूत न हो। कच ने भी देवयानी को शाप दिया कि वह कभी भी किसी ब्राह्मण कुमार से विवाह न कर पाये।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय ७६-७७

कण्व (क) ऋषि कण्व तथा प्रगाथ भाई थे। एक बार कण्व ऋषि किसी कार्यवश आश्रम के बाहर गये। जब लौटे तो देखा, उनकी पत्नी की गोद में सिर रखकर प्रगाथ सो रहा है। उनकी पत्नी ने उन्हें चुप रहने का संकेत किया कि कहीं प्रगाथ की निद्रा भंग न हो जाये। ऋषि के मन में दोनों के चरित्र से संबद्ध शंका का उदय हुआ। उन्होंने प्रगाथ को अपने पांव से मारकर जगाया। उनकी पत्नी कुछ भी नहीं समझ पायी किंतु प्रगाथ ने स्थिति भांप ली और कहा—"हे कण्व, तुम मेरे पितावत् हो और ये (भाभी) मेरी मां स्वरूपा हैं।" यह कहकर उसने दोनों की चरण-वंदना की। कण्व की निर्मूल शंका तिरोहित हो गयी।

ऋ०, ८।१

नृषत् पुत्र कण्व ने अखग नामक असुर-कन्या से विवाह किया था। उसके दो पुत्र हुए—त्रिशोक तथा नभदि। एक बार वह रुष्ट होकर पुत्रों सहित अपने मैके चली गयी। कण्व भी वहां पहुंचे। असुरों ने उनकी आंख बंद करके उन्हें एक अंधेरी गुफा में बंद कर दिया और कहा कि यदि उषाकाल होने पर वे बता देंगे तब उन्हें ब्राह्मण मान लेंगे। रात में अज्ञात रूप से अश्विनीकुमारों ने कण्व के पास पहुंचकर उनसे कहा कि उषाकाल में वे वीणा बजाते हुए आकाश में जाएंगे। वीणा का स्वर सुनकर कण्व ने उषा काल बता दिया। असुरों ने उन्हें ब्राह्मण मान लिया तथा एक स्वर्ण आसंदी (कुर्सी) उनके बैठने के लिए रखी। पत्नी के मना करने पर भी वे उसपर बैठ गये। वह तुरंत शिला बन गयी और कण्व को अपने अंदर समेट लिया। त्रिशोक तथा नभदि ने शिला का भंजन किया तथा मंत्र-पाठ से पिता कण्व को पुनर्जीवित किया।

जै० ब्रा०, ३।७२

कण्व नाम के ऋषि ने घोर तपस्या की। उनके माथे पर बांबी जम गयी। वे फिर भी तपस्यारत रहे। ब्रह्मा प्रसन्न होकर उन्हें वर देने गये। वहां ब्रह्मा को एक बांस मिला। लोक-कल्याण के लिए ब्रह्मा ने उसके तीन धनुष बनाये, शिव के लिए पिनाक, श्रीहरि के लिये शाङ्र्ग तथा सोम के लिए गांडीव की रचना की।

म० भा०, दानधर्मपर्व, अध्याय १४०, श्लोक ८-९

कण्व (ब्राह्मण) (ख) कुकर्मी कण्व नामक ब्राह्मण वेश्या के लिए पान आदि लेकर जा रहा था जो कि पृथ्वी पर गिर गये। उसने 'नम: शिवाय' बोला। इस प्रकार वे पान शिव को अर्पित हो गये। फलत: मृत्यु के उपरांत उसे न केवल स्वर्ग मिला अपितु कुछ समय के लिए इंद्र का स्थान प्राप्त हुआ। कण्व ने विरोचन का पुत्र होकर सुरुचि के उदर में जन्म लिया।

शि० पु०, ११।३-४

कनकध्वज सीता नदी के तट पर स्थित पर्वत पर हेमपुर नामक नगर के राजा का नाम कनकाभ तथा रानी का नाम कनकमाला था। हरिध्वज (दे० नंदन) देव के जीव ने कनकाभ के पुत्र 'कनकध्वज' के रूप में जन्म लिया। उसका विवाह कनकप्रभा से हुआ। पिता के दीक्षा लेने के उपरांत उसने राज्य-भार संभाला। एक बार वह कनकध्वज तथा कनकप्रभा सुमेरु पर्वत के उद्यान में

गये। वहां सुव्रत मुनि के साक्षात्कार से उनके हृदय में वैराग्य उत्पन्न हुआ। लंबी तपस्या के उपरांत आयु की समाप्ति पर वह कपिष्ठ स्वर्ग में देवानंद नामक देव हुआ।

पउ० च०, सर्ग १२।-

कप इंद्रसहित समस्त देवता मद के सुख में पड़ गये तो च्यवन ने उनसे समस्त भूमि हर ली तथा कप नामक दानवों ने स्वर्गलोक पर अधिकार कर लिया। देवतागण ब्रह्मा की शरण में गये। ब्रह्मा ने उन्हें ब्राह्मणों की शरण में जाने का आदेश दिया। वे ब्राह्मणों की शरण में गये। ब्राह्मणों ने उन्हें अभयदान तथा कपों को नष्ट करने का आदेश दिया। कपों के दूत, धनी ने ब्राह्मणों से जाकर कहा—"हे ब्राह्मणो, कप भी तुम्हारी ही तरह यज्ञ, वेद-पाठ इत्यादि करते हैं फिर उनसे शत्रुता कैसी ?" ब्राह्मणों ने कहा कि देवद्रोही उनका भी द्रोही है। कपों ने अस्त्र-शस्त्र सहित पृथ्वी स्थित ब्राह्मणों पर आक्रमण किया। ब्राह्मणों के तेज-पुंज अग्नि से वे सब भस्म हो गये।

म० भा०, दानधर्मपर्व, अध्याय १२७

कपिंजल दैत्य चुमुरि तथा धुनि के हननोपरांत इंद्र तथा गृतस्मद का मैत्री-भाव प्रगाढ़ हो गया। इंद्र ने गृतस्मद को अपने घर पर बुलाकर उनका सत्कार किया। गृतस्मद ने इंद्र के प्रति प्रशस्तिवाचन किया। तदुपरांत वहां अचानक बृहस्पति को देखकर उन्होंने बृहस्पति, वरुण, विश्वदेवा, अपान्नपात्, रुद्र आदि की स्तुति की। इंद्र पुनः स्वस्तुति सुनने की इच्छा से कपिंजल (टिटिहरी) का रूप धारण करके बाहर की ओर उड़ गये। गृतस्मद इंद्र को घर में न पाकर आवास से बाहर निकले। कपिंजल को देखकर उन्होंने पहचान लिया कि वे इंद्र हैं। उन्होंने कपिंजल-रूपी इंद्र की स्तुति की और कहा—"हे इंद्र ! तुम सदैव विजयी रहो। जिस प्रकार निरंतर बोलने वाला कपिंजल नाव खेने के लिए निर्देश देता है, उसी प्रकार हे देव ! आप मंगल-प्रद हों।"

ऋ० २।२-४२

गृत्स (प्राण) तथा मद (अपान) दोनों शरीर धारण करके गृत्समद बन गये।

त्वष्य के पुत्र का नाम विश्वरूप था। उसके तीन सिर, छह आंखें तथा तीन मुख थे। वह एक मुख से सोमपान, दूसरे से सुरापान तथा तीसरे से अशना करता था। इंद्र का उससे द्वेष हो गया। उसने उसके तीनों सिर काट डाले। सोमपान वाला मुख कटने पर वह कपिंजल कहलाने लगा।

श० प० ब्रा०, ५।५।४।२-४

कपिल जल की खोज में थके-मांदे राम, सीता और लक्ष्मण कपिल की कुटिया में पहुंचे। कपिल की पत्नी सुशर्मा ने उन्हें ठंडा जल दिया। तभी समिधाएं एकत्र करके कपिल भी अपनी कुटिया पर पहुंचे। वहां धूलमंडित पैरों से आये उन तीनों अतिथियों का निरादर करके कपिल ने उन्हें घर से बाहर निकाल दिया। आंधी-तूफान और वर्षा से बचने के लिए उन्होंने एक बरगद की छाया में आश्रय लिया। इस वृक्ष के अधिपति कुंभकर्ण ने अपने स्वामी यक्षपति से कहा कि वृक्ष की छाया में साक्षात् हल-धर और नारायण आये हैं। वे तीनों वृक्ष की छाया में सो रहे थे। सुबह उठे तो देखा, एक विशाल महल में गद्दे पर सो रहे हैं। रात-भर में यक्षपति ने उनके लिए उस महल का निर्माण कर दिया था। वहां रहते हुए वे निकटस्थ जैन मंदिर के श्रमणों को यथेच्छ दान दिया करते थे। अगले दिन कपिल समिधा आकलन के लिए जंगल में गये तो महल देखकर विस्मित हो गये। वहां के निवासी जैनमतावलंबियों को दान देते हैं, यह जान-कर उन्होंने जैनियों से गृहस्थ-धर्म की दीक्षा ली। वे दोनों महल में गये तो उन तीनों को पहचानकर बहुत लज्जित हुए। राम ने उनका सत्कार करके उन्हें धन प्रदान किया। कपिल ने निःसंग होकर प्रव्रज्या ग्रहण की। वर्षाकाल के उपरांत उन तीनों ने वहां से प्रस्थान किया। यक्षपति ने राम को स्वयंप्रभ नाम का हार, लक्ष्मण को मणिकुंडल तथा सीता को चूड़ामणि-रत्न उपहारस्वरूप समर्पित किये। उनके प्रस्थान के उपरांत यक्षराज ने उस मायावी नगरी का संवरण कर लिया।

पउ० च०, ३५।-३६।१-८।-

कबंध सीता की खोज में लगे राम-लक्ष्मण को वन में बहुत विचित्र-सी आवाज सुनायी दी। अचानक उन्होंने एक विचित्र दैत्य देखा जिसके मस्तक और गला नहीं था तथा उसके पेट में मुख था। उसकी केवल एक आंख थी। उसकी जांघें टूटी हुई थीं। शरीर पर पीले रोंये थे। उसकी एक योजन लंबी बांहें थी। उसने दोनों भाइयों को एकसाथ पकड़ लिया। लक्ष्मण ने घबराकर

धैर्यशाली राम से कहा—"मैं इसकी पकड़ में बहुत विवश हो गया हूं। आप मुझे बलिस्वरूप देकर स्वयं निकल भागिए।" पर राम अवचलित रहे। दैत्य कबंध ने कहा कि वह भूखा है, अतः दोनों का भक्षण करेगा। राम और लक्ष्मण ने उसकी दोनों भुजाएं काट डालीं। कबंध ने भूमि पर गिरकर दोनों वीरों का परिचय प्राप्त किया, फिर प्रसन्न होकर बोला—"मेरा भाग्य है कि आपने मुझे बंधन-मुक्त कर दिया। मैं बहुत पराक्रमी तथा सुंदर था। राक्षसों जैसी भीषण आकृति बनाकर ऋषियों को डराया करता था। मैं दनु का पुत्र कबंध हूं। एक बार स्थूलशिरा नामक मुनि को फल चुराकर मैंने रुष्ट कर दिया था तथा उन्हीं के शाप से यह रूप धारण किया। बहुत अनुनय-विनय के बाद उन्होंने कहा कि 'जब श्रीराम वन में पहुंचकर हाथ काटकर तुम्हें जला देंगे तब तुम अपना मूल रूप पुनः प्राप्त करोगे।' मुनि से शापित होकर मैंने तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न करके दीर्घायु होने का वर प्राप्त किया। तदनंतर मुझे बहुत घमंड हो गया कि कोई मेरा हनन नहीं कर सकता। अतः मैंने सोचा कि इंद्र मेरा क्या बिगाड़ सकता है। इंद्र से युद्ध करते हुए उनके १०० गांठों वाले वज्र से मेरा सिर और जांघें मेरे शरीर के अंदर घुस गयीं पर ब्रह्मा की बात सच्ची रखने के लिए उन्होंने मेरे प्राण नहीं लिये। मेरे यह पूछने पर कि 'मस्तक, जंघा, मुख टूटने के बाद कैसे जीवित रहूंगा—खाऊंगा क्या ?' इंद्र ने मेरे दोनों हाथ एक-एक योजन लंबे कर दिये तथा पेट में तीखे दांतों वाला मुख बना दिया। मुझे पूर्व रूप प्रदान करने के लिए आप मेरा दाह-संस्कार कर दीजिए, फिर मैं अपनी दिव्य दृष्टि प्राप्त कर लूंगा और सीता को ढूंढ़ने में सहायता प्रदान कर पाऊंगा।" राम-लक्ष्मण ने उसका दाह-संस्कार किया, तदुपरांत उसने राम और लक्ष्मण को पंपासर के निकट रहने वाले सुग्रीव से मैत्री करने का सुझाव दिया।

बा० रा०, अरण्य कांड, सर्ग ६९ से ७२ तक

कबूतर प्राचीनकाल में एक बहेलिया किसी कबूतर की शरण में गया। वह बहेलिया पहले उसी कबूतर की कबूतरी को मार चुका था तथापि शरणागत के रूप में देखकर कबूतर ने उसकी रक्षा की। उसे अपने शरीर का मांस भी खिलाया।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग १८, श्लोक २०-२५

करंधम वैवस्वत मनु के वंश में राजा खनीनेत्र हुआ जो कि राजा विविंश के पंद्रह पुत्रों में सबसे बड़ा था। वह पराक्रमी था। अतः उसने निष्कंटक राज्य तो प्राप्त कर लिया, किंतु प्रजा में अनुराग न होने के कारण वह बहुत समय तक राज्य चला नहीं पाया। प्रजाजनों ने उसे हटाकर उसके पुत्र सुवर्चा को राजगद्दी पर प्रतिष्ठित कर दिया। सुवर्चा अत्यंत धर्मात्मा था किंतु वह धन और वाहन की सुरक्षा नहीं कर पाया। अतः शत्रुओं ने उस पर आक्रमण किया। अपनी प्रजासहित संकट से घिरकर उसने अपने हाथ को मुंह से लगाकर शंख की भांति बजाया (कर का धमन किया), इससे बहुत बड़ी सेना प्रकट हुई। उसकी सहायता से राजा ने शत्रुओं पर विजय प्राप्त की तथा उसका नाम करंधम पड़ गया।

म० भा०, आश्वमेधिकपर्व, अध्याय ४, श्लोक १-१६

खनिनेत्र पुत्र बलाश्व सम्यक् प्रकार से प्रजा का पालन करता था तथापि उसके अधीन राजाओं ने उसे कर देना बंद कर दिया। उसके अधिकार की सीमा और धन सिमटकर राजधानी तक रह गये। राजाओं ने मिल कर उस पर आक्रमण कर दिया। उसकी पुरी घेर ली। वह अपने मुंह को हाथों में छिपाकर लंबी-लंबी सांस लेने लगा। उसकी श्वास हाथों से आहत हो रही थी। उसी ने शत-शत योद्धा, घोड़े, हाथी और रथ प्रादुर्भूत हुए। इसी कारण उसका नाम करंधम पड़ा। उस सेना की सहायता से उसने शत्रु पर विजय प्राप्त की। करंधम के पुत्र का नाम अवीक्षित हुआ।

मा० पु०, ११८

कर्ण पृथा की अपरिमित सेवा से प्रसन्न होकर दुर्वासा ने पृथा (कुंती) को वर दिया कि वह जिस किसी देवता का आवाहन करेगी, उसकी कृपा से उसका पुत्र उत्पन्न होगा। कुतूहलवश उस कुमारी कन्या ने सूर्य का आवाहन किया और उसे पुत्र की प्राप्ति हुई। उसे जन्म से ही कवच तथा कुंडल प्राप्त थे। माता-पिता के भय से उसने उस पुत्र को एक पेटी में रखकर जल में छोड़ दिया। अधिरथ सूत को वह बालक मिला। उसने अपनी पत्नी राधा को वह थमा दिया। उन लोगों ने उसे पाला-पोसा तथा उसका नाम वसुषेण रखा। वह अत्यधिक दानशील था। एक बार स्वप्न में दर्शन देकर सूर्य

ने कर्ण को सावधान किया कि इंद्र ब्राह्मण के रूप में उससे कवच तथा कुंडल मांगने आयेंगे। उन्होंने यह भी कहा—"यदि तुम ये सब दे ही डालो तो उनके वर देने पर उससे शत्रु-हनन के लिए अस्त्र मांग लेना।" ऐसा ही हुआ। इंद्र ने ब्राह्मण का रूप धरकर उससे कुंडल तथा जन्म से मिला कवच मांगा। कर्ण ने निःसंकोच दे डाला। कवच और कुंडल काटकर देने के कारण वह वैकर्तन नाम से विख्यात हुआ। इंद्र ने विस्मित तथा प्रसन्न होकर कर्ण को एक अमोघ शक्ति प्रदान की जिससे वह एक व्यक्ति को, चाहे वह कोई भी क्यों न हो, निश्चित रूप से मार सकता था। एक बार समस्त पांडव तथा कौरव अपने युद्धकौशल का प्रदर्शन कर रहे थे। वहां कर्ण ने भी अपनी योग्यता का प्रदर्शन करना चाहा किंतु उसे सूतपुत्र कहकर उसकी भर्त्सना की गयी। दुर्योधन ने अर्जुन से अधिक अथवा समान बल वाले व्यक्ति को देखा तो तुरंत मित्रता का हाथ फैलाया। उसने कर्ण को अंगदेश के राज्य पर अभिषिक्त कर दिया।

म० भा०, आदिपर्व, अ० ६७, श्लोक १३४-१५०
आदिपर्व, अ० ११०, श्लोक २७-३१
आदिपर्व, अ० ३००-३१०
दे० भा०, २।६।-

कौरव-पांडवों का युद्ध जब निश्चितप्राय हो गया तो कृष्ण ने कर्ण के पास जाकर उसे पांडवों से संधि कर लेने के लिए समझाया। उसे यह भी बताया कि वह कुंती-पुत्र है। कर्ण ने यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं किया। कर्ण ने कृष्ण से कहा कि वह सूत-पुत्र ही है क्योंकि उसका लालन-पालन सूत ने किया है। वे इस तथ्य को भी गोपन रखें कि वह कुंती-पुत्र है अन्यथा युधिष्ठिर राज्य ग्रहण नहीं करेंगे। उन्हीं दिनों कर्ण ने दुःस्वप्न देखा कि वह तथा कौरव पराजित हो गये हैं तथा पांडव विजय प्राप्त कर चुके हैं तथापि कौरवों के मित्र-भाव की उपेक्षा कर अर्जुन के वीरत्व से भयातुर हो, वह पांडवों से संधि करने के लिए तत्पर नहीं हुआ। तदुपरांत कुंती ने कर्ण से जाकर कहा कि वह कुंती-पुत्र है, अतः पांडवों से युद्ध न करे। कर्ण थोड़ा तिक्त हो आया और बोला कि कुंती इस तथ्य को तब कैसे भूल गयी थी जब उसे नदी में बहाया गया था या भरी सभा में सूत-पुत्र घोषित किया गया था? कर्ण अपने निश्चय पर दृढ़ रहा किंतु कुंती का आना व्यर्थ न जाय, अतः कर्ण ने अर्जुन के अतिरिक्त शेष चार पांडवों को अभयदान दे दिया। साथ ही कर्ण ने कहा—"तुम्हारे पांच बेटे जीवित रहेंगे। अर्जुन अथवा मैं तथा शेष चार पांडव।" उसकी निस्पृहता तथा दृढ़ता देखकर कुंती कुछ और नहीं कह पायी। कर्ण ने युद्ध में अपनी कही बात सिद्ध करते हुए तथा उस पर दृढ़ रहते हुए अर्जुनेतर किसी भी पांडव का, अवसर मिलने पर भी, वध करने का प्रयास नहीं किया।

कौरवों-पांडवों का युद्ध प्रारंभ होने से पूर्व भीष्म ने दुर्योधन से कहा कि जब तक भीष्म युद्धक्षेत्र में रहेंगे तब तक वे कर्ण का युद्ध करना पसंद नहीं करेंगे क्योंकि कर्ण उनसे स्पृहा करता था। यह तथ्य विदित होने पर श्रीकृष्ण ने एक बार पुनः कर्ण से जाकर कहा कि भीष्म के युद्ध करने के समय तक वह पांडवों से मिल जाय किंतु कर्ण ने स्वीकार नहीं किया।

म० भा०, उद्योगपर्व, १४० से १४६ तक

युद्ध के दिनों में अनेक बार ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई कि कर्ण ने दुर्योधन को आश्वस्त करना चाहा, कि वह युद्ध-क्षेत्र में अर्जुन सहित समस्त पांडवों को मार डालेगा! किंतु भीष्म के वधोपरांत भी द्रोण, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा उसकी मदद का परिहास करते थे, वे सब उसको मन से पांडवों की ओर झुका हुआ मानते थे। अत्यधिक वीर योद्धा होने पर भी वह बार-बार अर्जुन के सम्मुख फीका पड़ जाता था। एक बार तो बात यहां तक बढ़ी कि कर्ण तथा कृपाचार्य ने एक-दूसरे को बुरा-भला कहा। कर्ण ने उन्हें मूर्ख वृद्ध ब्राह्मण कहकर पुकारा तो अश्वत्थामा कर्ण को मारने के लिए उद्यत हो गया किंतु दुर्योधन ने उनका बीच-बचाव करवाया। एक बार कर्ण ने सहदेव को पराजित कर दिया। वह सहज ही सहदेव का वध कर सकता था किंतु कुंती को दिये वचन के कारण उसने उसका वध नहीं किया। जयद्रथवध के उपरांत रात्रि में भी मशाल जलाकर कौरव-पांडव युद्ध होता रहा। कर्ण का निशाना कभी चूकता नहीं था, उसने धृष्टद्युम्न तथा पांचालों को परास्त कर दिया। पांडव हतोत्साहित होने लगे तो श्रीकृष्ण ने घटोत्कच को कर्ण से लड़ने के लिए उत्साहित किया। श्रीकृष्ण अर्जुन को कर्ण के सम्मुख जाने से रोकते रहे क्योंकि कर्ण के पास

इंद्र की दी हुई एक अमोघ शक्ति थी जिसे उसने अर्जुन पर प्रयोग करने के लिए ही रखा हुआ था। घटोत्कच से कर्ण का युद्ध हुआ। घटोत्कच की मायाशक्ति और दांवपेंच के सम्मुख कर्ण हल्का पड़ने लगा तो कौरवों ने उससे शक्ति का प्रयोग करने के लिए कहा। घटोत्कच मारा गया। पांडव दुखी थे, किंतु कृष्ण यह सोचकर प्रसन्न हुए कि कर्ण अब शक्तिविहीन हो गया है। कुंडल तथा कवच पहले ही दे चुका था, अतः उसे परास्त करना सहज हो गया।

कर्ण के पास विजय नामक धनुष था, जिसे विश्वकर्मा ने इंद्र के लिए बनाया था। इंद्र ने वह परशुराम को दे दिया और परशुराम से उसे कर्ण ने प्राप्त किया था। परशुराम ने कर्ण से ब्रह्मास्त्र इत्यादि अनेक अस्त्र ग्रहण किये थे। वह ब्राह्मण के वेश में परशुराम की सेवा किया करता था। एक बार गुरु परशुराम उसकी गोद में सिर रखकर सो रहे थे, तभी उसकी जांघ में एक कीड़े ने काटा। गुरु की निद्रा भंग न हो, इस विचार से वह बिना हिले-डुले बैठा रहा तथा उसकी जंघा से खून बहता रहा। जब परशुराम जागे तो उन्होंने परिस्थिति देखी और कहा—"तू ब्राह्मण नहीं हो सकता। सच बोल, कौन है?" कर्ण के यह बताने पर कि वह सूत्र-पुत्र है, परशुराम ने शाप दिया कि वह मृत्यु उपस्थित होने पर ब्रह्मास्त्र के प्रयोग की विधि भूल जायेगा क्योंकि ब्राह्मणेतर लोगों में यह अस्त्र स्थिर नहीं रह सकता। उस घटना को याद कर कर्ण ने सोचा कि वह अर्जुन पर इस अस्त्र से इतर कोई अन्य अस्त्र चला देगा। युद्ध-क्षेत्र की ओर बढ़ते हुए उसे एक और घटना की याद हो आयी। एक बार शस्त्रों का अभ्यास करते हुए अनजाने में ही उसके हाथों किसी ब्राह्मण की होमधेनु का बछड़ा मारा गया। ब्राह्मण ने कर्ण को शाप किया कि युद्धक्षेत्र में भयाक्रांत होने पर उसके रथ का पहिया गड्ढे में धंस जायेगा।

युद्ध में कर्ण ने केकयकुमार विशोक (सात्यकि के सारथि) को मार डाला।

कर्ण और अर्जुन के द्वैरथ युद्ध पर आकाशस्थ देवता, गंधर्व, यक्ष आदि तथा भूमिस्थ प्राणियों में विवाद होने लगा। इंद्र, पर्वत, समुद्र, वेद, वासुकि, ब्रह्मा, भूदेवी, महादेव आदि अर्जुन की विजय होगी, ऐसा कह रहे थे। जबकि द्यौ (अधिष्ठात्री देवी) सूर्य, वैश्य, शूद्र, सूत, संकर, आदि कर्ण की विजय-कामना कर रहे थे। इंद्र के नेतृत्व में देवता अर्जुन के साथ तथा सूर्य के नेतृत्व में असुर कर्ण की ओर उन्मुख हो गये। दोनों दलों का विवाद भयानक था। इंद्र ने ब्रह्मा की शरण ली और कहा—"महाराज, आपने कहा था कि दोनों अर्जुन और कृष्ण (नर-नारायण) विजयी होंगे, अब ऐसा ही होना चाहिए।" ब्रह्मा तथा महादेव ने उत्तर दिया—"देवेश्वर अर्जुन देव-पक्षी है, कर्ण असुर-पक्षी। असुरों पर देवताओं की विजय अवश्यंभावी है।" दोनों का भयानक युद्ध चलता रहा। अश्वत्थामा ने दुर्योधन से बार-बार कहा कि वह पांडवों से संधि कर ले किंतु वह किसी भी प्रकार तैयार नहीं हुआ। युद्ध में कर्ण ने भार्गवास्त्र आदि का तथा अर्जुन ने ब्रह्मास्त्र आदि दिव्यास्त्रों का प्रयोग किया। कर्ण ने पांच वाणों से कृष्ण को घायल किया जो पृथ्वी में घुसकर पातालगंगा में नहाकर पुनः कर्ण के पास चले गये। वे वास्तव में तक्षक पुत्र अश्वसेन के पक्षपाती पांच विशाल सर्प थे। एक बार अर्जुन की प्रत्यंचा भी ढीली होकर उतर गयी तो कर्ण ने समय का पूरा लाभ उठाया तथा उसे घायल कर दिया। कर्ण अर्जुन का मस्तक काट लेना चाहता था। कर्ण ने भयानक वाण का संधान किया। उस वाण को अर्जुन की ओर आते देख कृष्ण ने रथ के पहियों का कुछ भाग पृथ्वी में धंसा दिया जिसके कारण वह निशाना चूक गया, अतः अर्जुन का मुकुट प्रज्वलित होकर नीचे गिर गया तथा वह वाण पुनः कर्ण के पास पहुंच गया। वह मुकुट स्वयं ब्रह्मा ने इंद्र के लिए बनाया था और इंद्र ने अर्जुन को दिया था। अर्जुन बालों को श्वेत वस्त्र से बांधकर पुनः युद्ध में मग्न हो गया। वाण ने कर्ण के पूछने पर बताया—"मैं साक्षात् नाग हूं, मेरी माता का वध अर्जुन ने किया था, इसी कारण से वह मेरा वैरी है। तुम फिर से मेरा प्रयोग करो।" कर्ण ने कहा—"मैं एक वाण को दो बार संधान नहीं करता हूं, न किसी अन्य के सहारे से युद्ध करता हूं।" नाग ने स्वयं ही अर्जुन पर आक्रमण करना चाहा। श्रीकृष्ण की प्रेरणा से अर्जुन ने उसे मार डाला। उसकी अर्जुन से पुरानी शत्रुता थी। जब अर्जुन खांडव में अग्नि को तृप्त कर रहा था, तब वह सर्प अपनी मां के मुख में छिपा हुआ आकाश में उड़ रहा था। उसे बिना देखे अर्जुन ने उसकी मां का वध कर दिया था। कृष्ण ने अपनी बांह से रथ के फंसे हुए पहियों को पुनः धरती से ऊपर निकाल लिया। तदनंतर दोनों महारथी

दिव्यास्त्रों से परस्पर युद्ध करते रहे। अर्जुन ने कर्ण पर छोड़ने के लिए रौद्रास्त्र का आधान किया, तभी पृथ्वी ने कर्ण के रथ के पहियों को ग्रस लिया। कर्ण रथ से उतर पड़ा तथा रथ को झटके से ऊपर उठाने लगा। वह इतना ग्रसा हुआ था कि वन-पर्वतयुक्त पृथ्वी उसे ग्रसे हुए ही चार अंगुल ऊपर उठ गयी। कर्ण ने अर्जुन से कहा कि इस समय उस पर वार करना न्यायसंगत न होगा। श्रीकृष्ण ने कौरवपक्षीय विगत अनेक अन्याय तथा अनीतियों का स्मरण दिलाकर उससे पूछा—"क्या वह सब न्यायसंगत था? द्रौपदी से यह कहना भी कि पांडव नरक में चले गये—तू अब किसी अन्य का वरण कर ले, क्या यह उचित था?" कृष्ण की प्रेरणा से अर्जुन अंचलिक नामक बाण से कर्ण का सिर धड़ से अलग कर दिया तथा उसकी हाथी की सांकल से चिह्नित पताका तथा रथ को भी नष्ट-भ्रष्ट कर डाला।

म० भा०, भीष्मवधपर्व, अ० ४३।९०-९३।-
द्रोणपर्व, अ० १५८-१५९।-
द्रोणपर्व, अ० १६६।१२०।-
द्रोणपर्व, अ० १७३-१८२।-
कर्णपर्व, अ० ३१।४२-४४।-
अ० ४२, ८७-९१, ७२।३०, ८२-३,

कर्दम ब्रह्मा ने कर्दम को आज्ञा दी कि वह सृष्टि का विस्तार करे। कर्दम ने विष्णु को अपनी तपस्या से प्रसन्न करके अपने योग्य कन्या की याचना की। विष्णु ने कहा कि इसकी व्यवस्था वे पहले ही कर चुके हैं। तीसरे दिन मनु कर्दम की कुटिया में पहुंचकर अपनी कन्या का प्रस्ताव सामने रखेंगे जिसे कर्दम स्वीकार कर लें। विष्णु ने बताया कि वे स्वयं उसकी पत्नी के गर्भ से जन्म लेकर अवतरित होंगे। कालांतर में मनु ने अपनी कन्या के साथ कर्दम की कुटिया पर पधारकर विवाह का प्रस्ताव रखा। कर्दम ने सहर्ष ही देवहूति से विवाह कर लिया। देवहूति नारद के मुंह से कर्दम की प्रशंसा सुनकर उससे विवाह करने के लिए उत्सुक थी। कर्दम ने योग में स्थित होकर एक सर्वत्रचारी विमान की रचना की। देवहूति को सरस्वती नदी में स्नान करके विमान में प्रवेश करने को कहा। देवहूति ने ज्योंही नदी में गोता लगाया, उसे अनेक दासियां उबटन आदि लगाती हुई दिखायी दीं। उनकी सहायता से स्नान कर वह कर्दम के साथ विमान पर चढ़ी। विमान से उन दोनों ने बहुत भ्रमण किया। उन्होंने नौ कन्याओं को जन्म दिया। कर्दम देवहूति को यह बताकर कि पूर्व वरदान के फलस्वरूप विष्णु निकट भविष्य में उसकी कोख से जन्म लेकर अवतरित होंगे, ब्रह्मा की प्रेरणा से अपनी सब पुत्रियों का विवाह प्रजा-पतियों से कर दिया। कला, अनसूया, श्रद्धा, हविर्भू, गति, क्रिया, ख्याति, अरुंधती तथा शान्ति का विवाह क्रमशः मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वसिष्ठ तथा अथर्वा से संपन्न हो गया। देवहूति ने कपिल को जन्म दिया जो कि विष्णु के अवतार थे। कर्दम ने वन में तपस्या करके परम पद प्राप्त किया। कपिल मां के साथ रहे तथा उसे भक्ति-वैराग्य आदि के मार्ग पर अग्रसर किया। देवहूति ने उस आश्रम में रहकर ही गृहस्थ-धर्म का परित्याग कर योग के द्वारा अध्यात्म पथ का अनुसरण किया। कपिल मां की आज्ञा लेकर पिता के आश्रम 'ईशानकोण' की ओर चले गये।

श्रीमद् भा०, तृतीय स्कंध,
अध्याय २१-३३,

कल्की युगांत के समय संभल नामक ग्राम में किसी ब्राह्मण के घर में एक शक्तिशाली बालक जन्म लेगा जिसका नाम होगा विष्णुयशा कल्की। वही कल्की अव-तार होगा जो कलयुग का अंत कर पुनः सतयुग की स्थापना करेगा।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय १९०
श्लोक ९३-९७ अ०१९१।१-१५।-

कल्माषपाद कल्माषपाद इक्ष्वाकु-वंश का राजा था। एक बार वह जंगल में जा रहा था। मार्ग बहुत संकरा था और सामने से वसिष्ठ का पुत्र शक्ति आ रहा था। दोनों में विवाद हुआ कि कौन दूसरे को मार्ग दे। शक्ति ने कहा—"यह शास्त्रसम्मत है कि ब्राह्मण को पहले मार्ग मिलना चाहिए।" कल्माषपाद ने क्रुद्ध होकर कोड़े से शक्ति पर प्रहार किया। शक्ति ने उसे नरभक्षी होने का शाप दे दिया। उधर विश्वामित्र तथा वशिष्ठ दोनों ही यजमान की खोज में थे। विश्वामित्र कल्माषपाद को अपना यजमान बनाना चाहते थे। जिस समय यह घटना घटी, वे पास ही थे तथा अदृश्य होकर सब कुछ देखते-सुनते रहे। पूर्व-प्रतिस्पर्द्धा के कारण विश्वामित्र वसिष्ठ से बदला लेना चाहते थे, अतः उन्होंने एक राक्षस को कल्माषपाद के शरीर में प्रवेश करने की आज्ञा दी।

शापित राजा मुनि शक्ति को प्रसन्न करने में प्रयत्नशील था किंतु राक्षस के स्वशरीर में प्रवेश करने के उपरांत वह नरभक्षी बन गया। एक दिन उसे एक भूखा ब्राह्मण मिला। मांसयुक्त भोजन मांगने पर उसने ब्राह्मण से कुछ देर प्रतीक्षा करने के लिए कहा और शिकार खेलने चला गया। लौटने तक वह ब्राह्मण को भूल चुका था। अर्ध रात्रि में सोते हुए याद आया तो राजा ने अपने रसोइये को स्थान बताकर भोजन ले जाने के लिए कहा। रसोइये के पास मांस नहीं था; अतः राजा ने उसे मनुष्य का मांस ले जाने का आदेश दिया। ब्राह्मण ने जब जाना कि भोजन में नर का मांस है, उसने भोजन तो किया ही नहीं, साथ ही कल्माषपाद को नरमांस के लिए भटकते फिरने का शाप दिया। राजा जंगल में नरभक्षण के लिए भटकने लगा। सबसे पहले उसने मुनि शक्ति को खा लिया, तदुपरांत उसने एक-एक कर वसिष्ठ के सभी बेटों को खा डाला। वसिष्ठ ने ब्राह्मण होने के नाते उसका उन्मूलन नहीं किया किंतु आत्महत्या के अनेक प्रयत्न किये। वे सभी में असफल रहे। एक दिन वे जंगल में जा रहे थे कि उन्हें शक्ति मुनि के समान किया गया साङ्ग वेदपाठ सुनायी पड़ा। 'पीछे कौन है ?' पूछने पर उन्होंने जाना कि स्वर्गीय शक्ति की पत्नी तथा उनकी पुत्रवधू अदृश्यंती है, जिसके उदर में शक्ति का भावी पुत्र बारह वर्ष से वेदों का पाठ कर रहा है। वसिष्ठ को यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हुई कि उनके कुल का लोप नहीं हुआ है, अतः उन्होंने आत्महत्या का विचार छोड़ दिया। उसी समय कल्माषपाद ने लकड़ी के साथ उन पर आक्रमण किया। वसिष्ठ ने मंत्रपूत जल के छींटों से उसे शापमुक्त कर दिया। कल्माषपाद अपने कुकृत्यों के लिए बहुत लज्जित था। वह बारह बरस से जंगलों में भटक रहा था। उसके पुरोहित बनकर वसिष्ठ उसे अयोध्या तक छोड़ने गये तथा उसकी प्रार्थना पर उन्होंने राजा की पत्नी के साथ समागम स्थापित कर उन्हें एक योग्य बालक प्राप्त करने का वरदान दिया। बारह वर्ष तक रानी ने गर्भ धारण किया किंतु संतान-प्राप्ति न होने पर उसने अपने उदर पर अश्म (पत्थर) से प्रहार किया। फलस्वरूप बालक होने पर उसका नाम अश्मक रखा गया।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय १७५-१७६

राजा कल्माषपाद ने मुनि वसिष्ठ को अपनी पत्नी के साथ समागम करने के लिए क्यों आमंत्रित किया, इसका भी एक कारण है। कल्माषपाद जब शापवश नरभक्षण करते घूमते थे, तब एक दिन मैथुन के लिए उद्यत ब्राह्मण युगल उन्हें देख, भयभीत होकर भागे किंतु कल्माषपाद ने ब्राह्मणी के विलाप की उपेक्षा कर ब्राह्मण को क्रूरता से मारकर खा लिया। ब्राह्मणी (अंगिरसी) के आंसू जिस स्थान पर पड़े, वहां अग्नि उत्पन्न हो गयी तथा स्थान भस्म हो गया। उसी आवेश में ब्राह्मणी ने राजा को शाप दिया कि वह ऋतुकाल में पत्नी के साथ संपर्क स्थापित नहीं कर पायेगा। ऐसा करने पर उसे प्राण त्याग देने होंगे तथा जिन वसिष्ठ ऋषि के पुत्रों का भक्षण उस राजा ने किया था, उन्हीं मुनि के समागम से उसकी रानी पुत्र को जन्म दे पायेगी। प्रस्तुत शाप से मुनि अवगत थे, अतः उन्होंने राजा की प्रार्थना स्वीकार कर ली।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय १८१

सूर्यवंशी राजा इंद्रियजित अत्यंत धार्मिक था। एक बार मृगया में उसने अनेकों शेरों का हनन किया, साथ ही एक निशाचर के भाई को भी मार डाला। निशाचर ने सोचा कि शक्तिसंपन्न राजा को युक्ति से मारना चाहिए। अतः उसने राजा के यहां पाककर्ता का कार्य प्रारंभ किया। एक दिन गुरु वसिष्ठ को भोजन करवाते समय उसने नरमांस परोसा। गुरु ने रुष्ट होकर राजा को राक्षस होने का शाप दिया। राजा भी बहुत रुष्ट हुआ किंतु रानी (दमयंती) ने उसे गुरु को शाप नहीं देने दिया। राजा कल्माषपाद नामक राक्षस के नाम से प्रसिद्ध हुआ। एक दिन उसने स्वपत्नी-रत एक मुनि की हत्या कर दी। मुनि-पत्नी ने शाप दिया कि वह जब भी अपनी पत्नी का भोग करेगा, मर जायेगा। रानी को पता चला तो वह राजा की वासना को दबाती रही। राजा जंगल में चला गया। सूर्यवंश को अस्त होता देख वसिष्ठ ने उस रानी से एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम अंशुमान रखा गया। गौतम के कहने पर राजा ने गौकर्णमहालिंग की पूजा की तथा वह ब्रह्महत्या से मुक्त हो गया।

शि० पु०, ८।११; १०।७

कश्यप एक बार समस्त पृथ्वी पर विजय प्राप्त कर परशुराम ने वह कश्यप मुनि को दान कर दी। कश्यप मुनि ने कहा—"अब तुम मेरे देश में मत रहो।" अतः

गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए परशुराम ने रात को पृथ्वी पर न रहने का संकल्प किया। वे प्रति रात्रि में मन के समान तीव्र गमनशक्ति से महेंद्र पर्वत पर जाने लगे।

बा० रा०, बाल कांड, सर्ग ७६, श्लोक ११-१६

सतयुग में दक्ष प्रजापति की दो कन्याएं थी—कद्रू तथा विनता। उन दोनों का विवाह महर्षि कश्यप के साथ हुआ। एक बार प्रसन्न होकर कश्यप ने उन दोनों को मनचाहा वर मांगने को कहा। कद्रू ने समान पराक्रमी एक सहस्र नाग-पुत्र मांगे तथा विनता ने उसके पुत्रों से अधिक तेजस्वी दो पुत्र मांगे। कालांतर में दोनों को क्रमशः एक सहस्र, तथा दो अंडे प्राप्त हुए। ५०० वर्ष बाद कद्रू के अंडों के नाग प्रकट हुए। विनता ने ईर्ष्यावश अपना एक अंडा स्वयं ही तोड़ डाला। उसमे से एक अविकसित बालक निकला जिसका ऊर्ध्वभाग बन चुका था, अधोभाग का विकास नहीं हुआ था। उसने क्रुद्ध होकर मां को ५०० वर्ष तक कद्रू की दासी रहने का शाप दिया तथा कहा कि यदि दूसरा अंडा समय से पूर्व नहीं फोड़ा तो वह पूर्णविकसित बालक मां को दासित्व से मुक्त करेगा। पहला बालक अरुण बन-कर आकाश में सूर्य का सारथि बन गया तथा दूसरा बालक गरुड़ बनकर आकाश में उड़ गया।

विनता तथा कद्रू एक बार कहीं बाहर घूमने गयीं। वहां उच्चैश्रवा नामक घोड़े को देखकर दोनों की शर्त लग गयी कि जो उसका रंग गलत बतायेगी, वह दूसरी की दासी बनेगी। अगले दिन घोड़े का रंग देखने की बात रही। विनता ने उसका रंग सफेद बताया था तथा कद्रू ने उसका रंग सफेद, पर पूंछ का रंग काला बताया था। कद्रू के मन में कपट था। उसने घर जाते ही अपने पुत्रों को उसकी पूंछ पर लिपटकर काले बालों का रूप धारण करने का आदेश दिया जिससे वह विजयी हो जाय। जिन सर्पों ने उसका आदेश नहीं माना, उन्हें उसने शाप दिया कि वे जनमेजय के यज्ञ में भस्म हो जायें। इस शाप का अनुमोदन करते हुए ब्रह्मा ने कश्यप को बुलाया और कहा—"तुमसे उत्पन्न सर्पों की संख्या बहुत बढ़ गयी है। तुम्हारी पत्नी ने उन्हें शाप देकर अच्छा ही किया, अतः तुम उससे रुष्ट मत होना।" ऐसा कहकर ब्रह्मा ने कश्यप को सर्पो का विष उतारने की विद्या प्रदान की। विनता तथा कद्रू जब उच्चैश्रवा को देखने अगले दिन गयीं तब उसकी पूंछ काले नागों से ढकी रहने के कारण काली जान पड़ रही थी। विनता अत्यंत दुखी हुई तथा उसने कद्रू की दासी का स्थान ग्रहण किया।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय १६, २०। अ० २३
श्लोक १ से ३ तक
दे० भा० २।११।१२।-

गरुड़ ने सर्पो से पूछा कि कौन-सा ऐसा कार्य है जिसको करने से उसकी माता को दासित्व से छुटकारा मिल जायेगा? उसके नाग भाइयों ने अमृत लाकर देने के लिए कहा। गरुड़ ने अमृत की खोज में प्रस्थान किया। उसको समस्त देवताओं से युद्ध करना पड़ा। सबसे अधिक शक्तिशाली होने के कारण गरुड़ ने सभी को परास्त कर दिया। तदनंतर वे अमृत के पास पहुंचा। अत्यंत सूक्ष्म रूप धारण करके वह अमृतघट के पास निरंतर चलने वाले चक्र को पार कर गया। वहां दो सर्प पहरा दे रहे थे। उन दोनों को मारकर वह अमृतघट उठाकर ले उड़ा। उसने स्वयं अमृत का पान नहीं किया था, यह देखकर विष्णु ने उसके निर्लिप्त भाव पर प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि वह बिना अमृत पीये भी अजर-अमर होगा तथा विष्णु-ध्वजा पर उसका स्थान रहेगा। गरुड़ ने विष्णु का वाहन बनना भी स्वीकार किया। मार्ग में इंद्र मिले। इंद्र ने उससे अमृत-कलश मांगा और कहा कि यदि सर्पों ने इसका पान कर लिया तो अत्यधिक अहित होगा। गरुड़ ने इंद्र को बताया कि वह किसी उद्देश्य से अमृत ले जा रहा है। जब वह अमृत-कलश कहीं रख दे, इंद्र उसे ले ले। इंद्र ने प्रसन्न होकर गरुड़ को वरदान दिया कि सर्प उसकी भोजन सामग्री होंगे। तदनंतर गरुड़ अपनी मां के पास पहुंचा। उसने सर्पों को सूचना दी कि वह अमृत ले आया है। सर्प विनता को दासित्व से मुक्त कर दें तथा स्नान कर लें। उसने कुशासन पर अमृत-कलश रख दिया। जब तक सर्प स्नान करके लौटे, इंद्र ने अमृत चुरा लिया था। सर्पों ने कुशा को ही चाटा जिससे उनकी जीभ के दो भाग हो गए, अतः वे द्विजिव्ह कहलाने लगे।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय २८, अ० २६,
श्लोक १ से १४ तक, अ० ३०, श्लोक ३२ से ५२ तक
अध्याय ३२, ३३, ३४

इंद्र को बालखिल्य महर्षियों से बहुत ईर्ष्या थी। रुष्ट

होकर बालखिल्य ने अपनी तपस्या का भाग कश्यप मुनि को दिया तथा इंद्र का मद नष्ट करने के लिए कहा। कश्यप ने सुपर्णा तथा कद्रू से विवाह किया। दोनों के गर्भिणी होने पर वे उन्हें सदाचार से घर में ही रहने के लिए कहकर अन्यत्र चले गये। उनके जाने के बाद दोनों पत्नियां ऋषियों के यज्ञों में जाने लगीं। वे दोनों ऋषियों के यज्ञों में शुद्ध मन से जाती थीं किंतु बार-बार ऋषियों के मना करने पर भी हविष्य को दूषित कर देती थीं। अत: उनके शाप से वे नदियां (अपगा) बन गयीं। लौटने पर कश्यप को ज्ञात हुआ। ऋषियों के कहने से उन्होंने शिवाराधना की। शिव के प्रसन्न होने पर उन्हें आशीर्वाद मिला कि दोनों नदियां गंगा से मिलकर पुन: नारी-रूप धारण करेंगी। ऐसा ही होने पर प्रजापति कश्यप ने दोनों का सीमांतोन्नयन संस्कार किया। यज्ञ के समय कद्रू ने एक आंख से संकेत द्वारा ऋषियों का उपहास किया। अत: उनके शाप से वह कानी हो गयी। कश्यप ने पुन: ऋषियों को किसी प्रकार प्रसन्न किया। उनके कथनानुसार गंगास्नान से उसने पुन: पूर्वरूप धारण किया।

ब्र० पु०, १००।-

कामदेव (अनंग) कंदर्प (कामदेव) शरीरी था। एक बार भगवान शंकर तप कर रहे थे। कामदेव ने उन-पर आक्रमण कर मन में विकार उत्पन्न कर दिया। इससे क्रुद्ध होकर शंकर ने उसकी ओर देखा और उसके समस्त अंग गलकर गिर गए। वह 'अनंग' बन गया।

बा० रा०, बालकांड, सर्ग २३, श्लोक ८-१५

कामधेनु एक बार कामधेनु ने अपने दो पुत्रों (बैलों) को हल जोतते-जोतते अचेत होकर गिरते देखा। वह रोने लगी। उसके सुगंधित आंसू देवराज इंद्र पर पड़े। उन्होंने ऊपर मुंह उठाकर देखा तो पाया कि आकाश में बैठी कामधेनु रो रही है। इंद्र के पूछने पर कामधेनु ने बतलाया कि दो बैलों को एक किसान ने इतना मारा और बोझ से लादा कि वे अचेत होगये। इस प्रकार अपनी संतान का कष्ट देखना कामधेनु के लिए सहज नहीं है। सुरभि (कामधेनु) की हजारों संतानों से विश्व भरा हुआ है और निरंतर सबके पालन के लिए उद्यत रहती है। उसके शोक को देखकर इंद्र ने जाना कि मां के लिए अपने पुत्र से बढ़कर अधिक प्रिय कोई अन्य वस्तु नहीं होती।

बा० रा०, अयोध्या कांड, सर्ग ७५
श्लोक १५-२७

कामंदक कामंदक ऋषि के आश्रम में जाकर राजा आंगरिष्ठ ने पूछा कि यदि कोई राजा काम और मोह के वशीभूत होकर कोई पाप कर दे, फिर पश्चात्ताप का अनुभव भी करे तो उस कुकर्म का प्रायश्चित्त क्या होगा? ऋषि ने बताया कि उसे स्वयं अपने कुकर्म की निंदा करके मन कर्म की ओर प्रवृत्त करना चाहिए। उसे जल के मध्य खड़े होकर गायत्री का पाठ करना चाहिए।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय १२३

कायव्य कायव्य नामक दस्यु का जन्म क्षत्रिय पिता तथा निषाद जाति की स्त्री के सहवास से हुआ था। वह डाकू होते हुए भी अपनी मर्यादा का पालन करता था। उसका विचरण-स्थल परित्राय पर्वत था। अस्त्र-शस्त्र विद्या में निपुण वह अर्जित धन का व्यय अपने अंधे तथा बहरे माता-पिता, निर्धन लोगों तथा संन्यासी ब्राह्मणों पर करता था। जो लोग उसे लुटेरा समझकर उसका धन नहीं लेते थे, उनके घर वह चुपचाप फल-फूल रख आता था। डाकुओं का एक गिरोह उस वीर यशस्वी डाकू को अपना सरदार बनाने के लिए प्रयत्नशील था। कायव्य ने कहा कि वह उनका सरदार तभी बनेगा, जब वे उसकी शर्तें स्वीकार करेंगे। उसकी शर्तें ये थीं कि वे किसी नारी, ब्राह्मण, स्वेच्छा से धन देने वाले व्यापारी, आदि की लूट-पाट नहीं करेंगे। उनका डाका राष्ट्र को हानि नहीं पहुंचायेगा। वे धार्मिक उत्सव तथा विवाह के अवसर पर विघ्न प्रस्तुत नहीं करेंगे तथा उपार्जित धन का प्रयोग जनकल्याण के लिए करेंगे, अपने धन के वर्धन के लिए नहीं। डाकुओं की टोली ने उसकी शर्तें स्वीकार कर लीं। इस प्रकार कायव्य नामक डाकू ने सरदार बनकर अपनी समस्त टोली का उद्धार कर दिया। धर्म का पालन करते रहने के कारण उन सबको डाकू होते हुए भी सद्गति प्राप्त हुई।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय १३५

कार्तिकेय शिव और पार्वती के तपस्या मे लीन होने पर देवता बहुत चिंतित हुए तथा अग्नि को आगे करके ब्रह्मा के पास पहुंचे। उन्होंने कहा कि जिन रुद्रदेव ने हमें सेनापति देना था, वे तो तपस्या करने लगे। हम सब शापित हैं, फिर सेनापति-पुत्र की प्राप्ति कैसे होगी? ब्रह्मा ने कहा कि उमा का यह शाप अटल है कि देवताओं को अपनी पत्नियों से पुत्र की प्राप्ति नहीं होगी।

सेनापति-पुत्र को गंगा जन्म देगी। उमा भी उसका बहुत आदर करेगी तथा गंगा पुत्र से बहुत प्रेम करेगी। देवताओं ने अग्नि को शिव-पुत्र-जन्म का कार्य सौंपा। अग्निदेव ने गंगा से शिव-वीर्य धारण करने की प्रार्थना की। गंगा ने नदी-रूप त्यागकर दिव्य रूप धारण किया। वीर्य प्राप्त कर वे बोलीं कि उसे संभालने में असमर्थ हैं क्योंकि उनकी चेतना लड़खड़ा रही है। अग्निदेव ने कहा कि वह हिमवान के पास अपना गर्भ छोड़ दें। गंगा के ऐसा करने पर गंगा के शरीर से निकला हुआ तेज और जिस स्थान पर उसे रखा गया, वह तपाए सोने जैसा चमकने लगा, आसपास का वातावरण चांदी, तांबा, पीतल, लोहा आदि विभिन्न धातुओं में परिणत हो गया। तभी से स्वर्ण 'जातरूप' कहलाया। रुद्रतेज से उत्पन्न कुमार (कार्तिकेय) को सभी कृत्तिकाओं ने दुग्धपान कराया। वह उन सबका पुत्र कहलाया तथा छह मुंह से उसने सबके दुग्ध का पान किया। एक ही दिन में वह सेनापति का पद संभालने योग्य हो गया।

बा० रा०, बाल कांड, सर्ग ३७
श्लोक १-३२

नित्यप्रति के देवासुर-संग्राम को देखकर इंद्र एक सुयोग्य वीर सेनापति की खोज में थे, जो देवताओं की सेना का संचालन कर सके। देवसेना की रक्षा के संदर्भ में मानसपर्वत पर विचरते हुए इंद्र सूर्यास्त के साथ-साथ सूर्य में चंद्र के प्रवेश को (अमावस्या सदैव से देवासुर संग्राम का समय रही थी) देखकर (चंद्र-सूर्य का एक राशि में स्थित रौद्र मुहूर्त का होना देखकर) चिंतित हो उठे। उन्हें लगा कि इस समय जिसका जन्म होगा वह अत्यंत पराक्रमी होगा। तदनंतर वे महर्षियों के यज्ञ में सोमपान के लिए गये। हविष्य ग्रहण करने के उपरांत जाते हुए अग्निदेव के हृदय में सप्तर्षियों की पत्नियों को देखकर काम-भाव जागृत हो उठा। वे गार्हपत्य अग्नि में प्रविष्ट होकर उनके सौंदर्य-दर्शन के लिए वहीं रुक गये। वे कार्य के अनौचित्य से अवगत थे। प्रजापति दक्ष की पुत्री स्वाहा (शिवा) पहले से ही अग्नि पर आसक्त थी। अग्नि का ऋषि-पत्नियों के प्रति आकर्षण देख उसने, ऋषि पत्नियों का बारी-बारी से रूप धारण कर, वन में अग्निदेव के साथ समागम किया। स्खलित वीर्य हाथ में ग्रहण कर वह गरुड़ी के रूप में उसे निकटवर्ती श्वेत पर्वत के शिखर पर स्थित एक सुवर्णमय कुंड में डाल आती थी। उसने अग्नि को बताया कि गरुड़ी का रूप लोकलज्जावश धारण करती है। सप्तर्षियों की पत्नियों में से छह का रूप तो उसने धारण किया, किंतु अरुंधती (सातवीं ऋषि-पत्नी) की तपस्या के कारण वह उसका दिव्य रूप धारण नहीं कर पायी। कालांतर में सुवर्णमय कुंड में स्कंदित (स्खलित) वीर्य से एक तेजस्वी बालक का जन्म हुआ जो स्कंद कहलाया। उसके छह सिर तथा बारह हाथ तथा दो पैर थे किंतु पेट और गर्दन एक ही थे। स्कंद की अभिव्यक्ति द्वितीया के दिन, शिशु-रूप-धारण तृतीया को, सब अंग-उपांगों की संपन्नता चतुर्थी को हुई। उसने शिव के भयंकर धनुष पर टंकार की तथा हाथ में मुर्गा और हाथी लेकर खेलने लगा। दो भुजाओं से आकाश को पीटने लगा। उसने बाणों से हिमालय के पुत्र क्रौंच पर्वत को विदीर्ण कर दिया। सब पर्वत उड़कर इधर-उधर जाने लगे। पृथ्वी को पीड़ा हुई। अंत में सबने उसकी शरण ग्रहण की। चैत्ररथ के निवासियों ने उत्पात से त्रस्त होकर कहा—"ऋषिपत्नियों ने अग्नि से समागम करके यह उत्पाती अनर्थ उत्पन्न किया है।" कुछ लोग गरुड़ी को दोष देते रहे। विश्वामित्र संपूर्ण वृत्तांत की सत्यता से परिचित थे, क्योंकि वे देवों के यज्ञोपरांत गुप्त रूप से अग्नि के पीछे-पीछे गये थे। वे पहले तो कार्तिकेय की शरण में गये। फिर देवताओं से सब वृत्तांत कह सुनाया। गरुड़ी ने भी देवताओं से बार-बार कहा कि कार्तिकेय उसका पुत्र है किंतु ऋषियों ने अपनी छहों पत्नियों का परित्याग कर दिया। पहले इंद्र ने लोकमातृकाओं को, कार्तिकेय को मार डालने के लिए भेजा किंतु वे उसका ओज देख उसकी शरण में चली गयीं। उनके क्रोध ने एक नारी का रूप धारण कर कुमार की रक्षा करनी प्रारंभ कर दी, साथ ही लाल सागर की एक क्रूर कन्या थी। वह भी स्कंद की रक्षा करने लगी। उसका नाम लोहितायनि था। इंद्र के नेतृत्व में देवताओं ने उससे युद्ध किया। इंद्र ने वज्र से प्रहार किया जिससे स्कंद की दायीं पसली क्षत विक्षत हो गयी। वज्र के दायीं ओर प्रवेश करने से एक और तेजस्वी पुरुष का जन्म हुआ जो विशाख कहलाया। वज्र के प्रहार से उसके अतिरिक्त भी अनेक कुमार तथा कुमारिकाओं का जन्म हुआ। स्कंद बकरे के समान मुंह धारण करके समस्त कन्यागणों और पुत्रों से

घिर गये। कन्याओं ने वर प्राप्त किया कि वे सदैव पूजनीय मानी जायें। देवताओं तथा इंद्र ने भी स्कंद की शरण ग्रहण की। लोग स्कंद को कुमारग्रहों का पिता कहते हैं। स्कंद ने मातृकाओं को शिशु नामक पराक्रमी पुत्र प्रदान किया। मातृकाएं सात थीं। उनके सात शिशु तथा स्कंद को गिनकर जो नौ व्यक्ति होते हैं, उन्हें वीरनवक कहा जाता है। स्कंद के अतिरिक्त शेष वीराष्टक कहलाते हैं। ब्राह्मणों तथा इंद्र के बहुत कहने पर भी कार्तिकेय (स्कंद) ने इंद्र-पद पर आसीन होना स्वीकार नहीं किया। वे सहर्ष इंद्र के सेनापति बने। रुद्र नामक अग्नि (पिता) ने उन्हें कुक्कुट चिह्न से अलंकृत ऊंची ध्वजा प्रदान की। उनके शरीर पर एक सहज कवच का प्रवेश हो गया जो युद्ध के समय प्रकट होता था। इंद्र के आयोजनानुसार कार्तिकेय का विवाह पूर्वनिश्चित वधू देवसेना के साथ हो गया। बृहस्पति पुरोहित बने। कुमार के दक्षिण भाग पर वज्र लगने से जिन कुमार तथा कुमारिकाओं ने जन्म लिया था, वे भयानक ग्रह बन गये, जो गर्भस्थ शिशुओं का नाश करने लगे। ऋषियों की छहों पत्नियां कुमार के पास गयीं—उन्होंने अपने पूर्वस्थान की प्राप्ति तथा संतान-प्राप्ति की कामना की। उनके मिथ्या कलंक को दूर कर आदर प्रदान करने का वचन तो स्कंद ने दिया, किंतु संतानोत्पत्ति का समय निकल चुका था, अतः कुंठाग्रस्त वे भयानक ग्रह बन गयीं, जो १६ वर्ष तक की आयु तक के लोकमाताओं के बच्चों को डराने का काम करती हैं, क्योंकि लोकमाताओं ने उनकी भरसक निंदा की थी जिससे वे परित्यक्ता बनीं। उनके साथ रहने के लिए कुमार ने एक संपूर्ण प्रजा को खाने के इच्छुक ग्रह को जन्म दिया जो कुमारस्मार कहलाता है। वे मातृकाएं निम्नलिखित ग्रह बन गयीं—

(१) विनता शकुनि ग्रह कहलाती है। (२) पूतना, पूतना-ग्रह बनकर बच्चों को कष्ट देती है। (३) भयानक आकारवाली पिशाची शीतपूतना गर्भ-हरण का कार्य करती है। (४) अदिति रेवती अथवा रैवत-ग्रह के रूप में बच्चों को कष्ट देती है। (५) दैत्यों की माता जो दिति है, वह मुखमंडिका कहलाती है तथा बच्चों के मांस से अधिक प्रसन्न होती है। इनके अतिरिक्त लाल सागर की कन्या लोहितायनि (स्कंद की धाय) कद्रू, सुरभि आदि अनेक स्कंद ग्रह नामक ग्रहों का निर्माण हुआ। इन सबके दिये कष्टों का निवारण रुद्र की पूजा से होता है। तदनंतर स्वाहा ने कार्तिकेय से जाकर कहा—"तुम मेरे औरस पुत्र हो गये हो क्योंकि तुमने मातृगणों का मनोरथ पूर्ण किया है। मेरा अभीष्ट सिद्ध करो कि मैं सदैव अग्नि के साथ रह पाऊं।" कार्तिकेय ने कहा कि अग्नि में आहुति देते समय सदैव स्वाहा बोला जायेगा। स्वाहा संतुष्ट हो गयी। ब्रह्मा ने स्कंद से कहा कि वास्तव में शिव ने अग्नि में तथा उमा ने स्वाहा में प्रवेश करके उसे जन्म दिया था। शिव का वीर्य इससे इतर यत्र-तत्र जहां भी बिखर गया था, वहां से तुम्हारे शेष भयंकर मांसभक्षी पार्षद प्रकट हुए। इंद्र ने अपने दोनों वैजंती नामक घंटे उसे समर्पित किए। एक कार्तिकेय तथा दूसरा विशाख ने ग्रहण किया।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय २२३, श्लोक ३ से ५ तक,
अ० २२४ से २३० तक, २३१, श्लोक १ से १६ तक

(महाभारत में कार्तिकेय के जन्म की यह दूसरी कथा भी मिलती है) देवताओं ने शिव-पार्वती का समागम देखा तो चिंतित हो उठे कि उन दोनों का बालक देवताओं के पराभव का कारण होगा। उन्होंने शिव से प्रार्थना की कि वे पार्वती के गर्भ से किसी पुत्र को जन्म न दें। शिव ने स्वीकार कर लिया। पार्वती ने रुष्ट होकर देवताओं को शाप दिया कि वे सब संतानहीन रहेंगे। उन देवताओं में अग्निदेव नहीं थे। शिव ने अपने वीर्य को ऊपर चढ़ा लिया, अतः वे ऊर्ध्वरेता कहलाए (दे० अग्निदेव), तथापि शिव का तेजोमय वीर्य अग्नि में गिर गया। सर्वभक्षी होकर भी अग्नि वीर्य को भस्म नहीं कर पाये। उस तेजोमय गर्भ को धारण नहीं कर पाये तो अग्निदेव ने ब्रह्मा की आज्ञा से उसे गंगा में प्रवाहित कर दिया। गंगा ने गर्भ धारण करने में असमर्थता अनुभव करके हिमालय के शिखर पर सरकंडों के झुरमुट में उसे छोड़ दिया। वहां वह बालक अग्नि के समान तेजस्वी और प्रकाशित रूप में निरंतर बढ़ता रहा। पुत्र की अभिलाषा रखनेवाली कृत्तिकाओं ने उसे देखा तो सभी उसे अपना पुत्र कहने लगीं। वे संख्या में छः थीं। अतः बालक (स्कंद) ने छः मुंह प्रकट करके एकसाथ सबके स्तन से दुग्ध पान आरंभ किया। जिस पर्वत-शिखर पर गंगा ने उसे छोड़ा था, वह संपूर्ण ही स्वर्णमय दिखायी देने लगा। वही कुमार

कार्तिकेय नाम से विख्यात हुआ। गंधर्वों, मुनियों, अप्स-राओं, देवकन्याओं इत्यादि का साथ उसे सहज प्राप्त था। बृहस्पति ने उसका जातिकर्म आदि संस्कार किये तथा चारों वेद उसे समर्पित किये। वह सभी देवी-देव-ताओं तथा गणोंसहित शिव-पार्वती से घिरा हुआ था। वह अपने स्थान से उठकर चला तो गंगा, पार्वती, शिव इत्यादि के मन में उठा कि देखें, यह माता-पिता का गौरव किसे प्रदान करता है। कार्तिकेय ने तुरंत चार रूप प्रकट किये। स्कंद आगे वाला रूप था और फिर क्रमश: शाख, विशाख और नैगमेय थे। स्कंद शिव की ओर, विशाख उमा की ओर, शाख अग्नि की ओर तथा नैगमेय गंगा की ओर बढ़ गये। रुद्र, पार्वती, अग्नि तथा गंगा ने ब्रह्मा को प्रणाम किया तथा बालक के लिए कोई आधिपत्य प्रदान करने के लिए कहा। ब्रह्मा ने कार्तिकेय को देवताओं का सेनापति-पद प्रदान किया। उस समय उपस्थित देवताओं ने अनेक सेवक तथा उपहार प्रदान किये, जिनमें से मुख्य निम्नलिखित हैं: ब्रह्मा ने चार अनुचर प्रदान किये—नंदिसेन, लोहि-ताक्ष, घंटाकर्ण, तथा कुमुदमाली। शंकर ने सैकड़ों मायाओं को धारण करनेवाला असुर प्रदान किया। देवताओं ने सेना, यमराज ने यमस्वरूप 'उन्माथ' तथा 'प्रमाथ' नामक दो अनुचर, सूर्य ने सुभ्राज तथा भास्वर (दो सेवक), अग्नि ने ज्वालाचिह्न तथा ज्योति नामक दो सेवक, गरुड़ ने अपना पुत्र मयूर, अरुण ने ताम्रचूड (मुर्ग) तथा वरुण ने एक नाग आदि।

इन सब पार्षदों तथा मातृकाओं के साथ स्कंद ने देवताओं के शत्रुओं का नाश करने के लिए रण-यात्रा की। उनकी सेना देखकर दैत्य सभी दिशाओं में भागने लगे और देवता उनका पीछा करने लगे। कार्तिकेय ने शक्ति का प्रयोग किया तथा बलिष्ठ दैत्यराज 'तारक' को तथा महिषासुर को मार डाला। उन्होंने राजा बलि के बेटे बाणासुर को क्रौंच पर्वत विदीर्ण करके मार डाला, जहां कि वह छिपा हुआ था।

म० भा०, शल्यपर्व, अध्याय ४५, ४६
दानधर्मपर्व, अ० ८४, ८५

कार्तिकेय-तीर्थ तारक-वध से प्रसन्न होकर पार्वती ने कार्तिकेय को आमोद-प्रमोद की आज्ञा दी। उसने देव-पत्नियों के साथ रमण प्रारंभ किया। पार्वती को ज्ञात हुआ तो उन्होंने भी वैसा ही रूप धारण करके रहना आरंभ कर दिया, फलत: कार्तिकेय जब भी किसी देव-पत्नी के संपर्क में आता, उसे मातृत्व का आभास होता। अंत में नारी से मात्र मातृत्व का संबंध रखने का प्रण कर उसने 'गौतमी गंगा' में स्नान कर पाप मोचन किया। तब से वह स्थान कार्तिकेय-तीर्थ नाम से विख्यात हो गया।

ब्र० पु०, ८१।-

कालक वृक्ष क्षेमदर्शी कौशल का राजा था। उसके राज्य में अनेक मंत्री तथा राजकीय कर्मचारी चोरी आदि का कार्य करने लगे। उसके स्वर्गवासी पिता के मित्र मुनि कालकवृक्ष को इस तथ्य का ज्ञान हुआ तो वे एक कौआ पिंजरे में बांधकर अपने साथ लाये तथा क्षेमदर्शी के राज्य में घूम-घूमकर लोगों से कहते रहे कि वे लोग 'वायसी-विद्या' (कौओं की बोली समझने की कला) सीखें। कौए भूत, भविष्य तथा वर्तमान सभी कुछ बता देते हैं। इस बहाने से घूम-घूमकर उन्होंने प्रदेश स्थित समस्त कुकर्मियों की एक तालिका बना ली और दरबार में जाकर क्षेमदर्शी को कौए के बहाने से सबके कुकर्मों के विषय में बताया। राजा ने चोर, कुकर्मी और देश-द्रोही राज-कर्मचारियों को सहज ही पकड़ लिया। कालकवृक्ष ने अपना पूरा परिचय दिया। राजा ने मुनि की सहायता से समस्त भूमंडल पर विजय प्राप्त कर ली।

राजा क्षेमदर्शी के जीवन में, कुछ समय ऐसा भी आया था जब मंत्रियों सहित वह समस्त राज्य गंवा बैठा था। वह मुनि कालकवृक्ष की शरण में गया। मुनि ने उसे नीति की बात बतायी कि अपने शत्रु विदेहराज (राजा जनक) के प्रति मैत्रीभाव तथा स्नेह भाव का प्रयोग करके उनका विश्वास जीत ले। फिर उनमें विलास और फूट डलवाकर राज्य प्राप्त करे। सत्यप्रिय राजा क्षेमदर्शी ने कपट का आवाहन करना स्वीकार नहीं किया। अत: मुनि ने अत्यंत प्रसन्न होकर क्षेमदर्शी का राजा जनक से मेल करवा दिया। राजा जनक धर्मपूर्वक जगत्-विजयी हो चुके थे। उन्होंने क्षेमदर्शी को वीर मित्र के रूप में ग्रहण किया।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय ८२

कालयवन एक बार महर्षि गार्ग्य को उनके साले ने 'नपुं-सक' कहकर पुकारा। वहां यादववंशी लोग भी थे। वे हंसने लगे। मुनि गार्ग्य अत्यंत रुष्ट हो गये। उन्होंने

यादवों को भयभीत करने वाले एक पुत्र की प्राप्ति के लिए शिव की उपासना की। बारह वर्ष तक वे केवल लौहचूर्ण का ही भक्षण करते रहे। पुत्रहीन यवनराज उनका शिष्य था। उसकी पत्नी के संग से गार्ग्य मुनि ने भौंरे के समान कृष्ण वर्ण का पुत्र प्राप्त किया। यवन-राज उसे अपना राज्य सौंपकर वन चला गया। उसका नाम 'कालयवन' रखा गया। बड़े होने पर कालयवन ने नारद से यह जानकर कि सर्वाधिक दुर्जेय यादववंशी हैं, उनसे युद्ध करने की तैयारी की। उन दिनों अवध नरेश से भी यादवों के युद्ध की संभावना थी। कृष्ण ने सोचा कि दो शत्रुओं में से एक से युद्ध करके क्षीण होने के उपरांत दूसरे से पराजय होनी अवश्यंभावी है, अतः उन्होंने समुद्र से बारह योजन भूमि मांग कर उसमें द्वारिकापुरी का निर्माण किया जिसमें समस्त यादव-वंशियों को सुरक्षित करके वे मथुरा चले गये। शत्रुओं के आने पर वे बिना शस्त्र के ही मथुरा से बाहर निकले और उस गुफा की ओर दौड़े जहां मुचुकुंद सो रहे थे दे० मुचुकुंद

वि० पु०, ५।२३-२४।-

कालिका देवी शुंभ और निशुंभ ने देवताओं को पराजित करके उनके लोक, वाहन, वैभव आदि समस्त वस्तुओं का अपहरण कर लिया। देवताओं ने अत्यंत दुखी होकर दुर्गा का चिंतन आरंभ किया क्योंकि वे पहले कह गई थीं कि आपत्ति काल में स्मरण करने पर आकर वे उनके कष्ट का निवारण करेंगी। जब देवता स्तुति कर रहे थे तब पार्वती गंगा-स्नान के लिए वहां पहुंचीं। पार्वती ने पूछा—"आप लोग किसकी स्तुति कर रहे हैं?" तब उन्हीं के शरीर-कोश से प्रकट होकर शिवा बोलीं—"ये लोग मेरी स्तुति कर रहे हैं।" पार्वती के शरीर-कोश से प्रादुर्भूत होने के कारण अंबिका का नाम 'कौशिकी' पड़ा। कौशिकी के प्रकट होने पर पार्वती का शरीर काला पड़ गया। वे हिमालय पर रहने लगीं और कालिका देवी नाम से प्रख्यात हुई। चंडमुंड ने अनुपम सुंदरी अंबिका के विषय में शुंभ-निशुंभ को बताया तो उन्होंने अपने दूत सुग्रीव को यह संदेश लेकर अंबिका के पास भेजा कि सर्वाधिक शक्तिसंपन्न ऐश्वर्यवान शुंभ-निशुंभ हैं, अतः वे उनके पास चली जायं। देवी ने उत्तर में कहला भेजा कि वे पहले से ही शपथ ले चुकी हैं कि जो उन्हें युद्ध में परास्त कर देगा, उसी के पास जायेंगी।

मा० पु०, ८१-८२

कालिंदी कालिंदी सूर्यदेव की पुत्री थी। उसने विष्णु को पाने के लिए यमुना के किनारे तपस्या की थी। कालिंदी के पिता ने उसके लिए जमुना-जल में एक भवन भी बन-वाया था। कृष्ण ने उस पर कृपा कर उससे विवाह कर लिया था।

श्रीमद्० भा०, १०।५८।२०-२३।-

कालिया गरुड़ की माता विनता तथा नागों की माता कद्रू में परस्पर वैर था। माता के वैर को याद कर गरुड़ जो भी सर्प सामने पड़ जाता, उसे मार डालते थे; इससे व्याकुल होकर सर्पों ने ब्रह्मा की शरण ली। उन्होंने व्यवस्था दी कि प्रत्येक अमावस्या को एक सर्प की बलि गरुड़ को दे दी जाय।

कद्रू का पुत्र कालिया नाग अपने विष तथा बल के घमंड में मस्त था। दूसरे सांप गरुड़ को जो बलि देते, वह खा जाता था। रुष्ट होकर गरुड़ ने उसपर आक्रमण कर दिया। वह क्षतविक्षत स्थिति में वहां से सपरिवार भाग खड़ा हुआ। उसने यमुनास्थित जलाशय में शरण ली। उस जलाशय में पहले एक बार गरुड़ ने एक मत्स्य पकड़ लिया था अतः उसे महर्षि सौभरि ने शाप दिया था कि वहां फिर कभी भी जाने पर अपने प्राणों से हाथ धो बैठेगा। कालिया वहां पूर्ण सुरक्षित अनुभव करता था। कालिया के निवास के कारण जलाशय में भयंकर विष विद्यमान रहता था। उसका विषाक्त पानी सदैव खौलता रहता था तथा उधर उड़ने वाले पक्षी भी उससे झुलस-कर गिर जाते थे। एक दिन कृष्ण उस जलाशय में कूद गये। बलराम उनके साथ नहीं थे। अतः सब बहुत व्याकुल हुए। नाग ने कृष्ण के वक्ष पर दंशन कर उन्हें अपने पाश में आबद्ध कर लिया। तदनंतर श्रीकृष्ण ने अपना शरीर बढ़ाना प्रारंभ किया जिससे नाग का अंग-प्रत्यंग टूटने लगा। कृष्ण उसके लाल मणियों से युक्त एक सौ एक फनों पर नृत्य करने लगे। उनके घात-प्रति-घात से वह त्रस्त हो गया। उनकी पत्नियों ने कृष्ण की वंदना की और कहा कि सर्प होना ही दुष्ट कर्मों का प्रमाण है। अब कृष्ण क्षमा कर दें। कृष्ण ने उसे छोड़ते हुए आदेश दिया कि वह अपने परिवार सहित समुद्र में जा बसे। ब्रज का जलाशय वहां के निवासियों के लिए विषमुक्त कर जाय। कृष्ण ने यह भी कहा कि वे जानते थे कि गरुड़ के भय से वह रमणीक द्वीप छोड़कर उस जलाशय में जा बसा था। निर्द्वंद्वतापूर्वक वह कहीं भी

रहे क्योंकि उसके फनों पर कृष्ण के पांव के चिह्न देखकर गरुड़ उसे कुछ भी नहीं कहेगा।

श्रीमद् भा०, १०।१६-१७, हरि० व० पु०, विष्णु प०, ११-१२।वि० पु०, ५।७, ब्र० पु० १८५।-

काश्यप काश्यप नामक ऋषिकुमार कठोर व्रत का पालन करते थे। एक दिन धन के अभिमान से अभिभूत किसी वैश्य ने अपने रथ के धक्के से उन्हें गिरा दिया। गिरकर काश्यप को बहुत दुःख हुआ कि निर्धन व्यक्ति का संसार में सम्मान नहीं होता। वे जीवन के मिथ्यात्व का ध्यान कर आत्महत्या करने के लिए उद्यत हो गए। इंद्र ने यह जानकर कि ब्राह्मण मन-ही-मन धन लोलुपता से ग्रस्त होता जा रहा है—एक सियार का रूप धारण किया तथा काश्यप के पास गए और बोले— "आत्म हनन तो पाप है—उसके उपरांत जीव और भी खराब दशा तथा योनि प्राप्त करता है। धन अस्थायी है। इंद्रियों की लोलुपता शांत नहीं की जा सकती—वह गर्व को जन्म देती है। तुम्हें श्रेष्ठ मनुष्य शरीर प्राप्त है। तुम्हारे दो हाथ हैं, जिनसे कांटे निकाल सकते हो, शरीर से कीड़े भी हटा सकते हो—पर मुझे यह सुविधा भी प्राप्त नहीं है।" काश्यप ने सियार का उपदेश सुनकर ज्ञान-दृष्टि से उसकी ओर देखा। उन्होंने तत्त्वरूपी इंद्र को पहचान लिया। आत्महनन की बात छोड़ परम् संतुष्ट वे इंद्र की आराधना कर, अपने घर चले गये।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय १८०

काश्यप-बंधु उरुवेला में दो जटिल (जटाधारी) काश्यप बंधु थे, जिनके नाम उरूबेल काश्यप तथा नदी काश्यप था। बुद्ध ने उरुबेल काश्यप से उसकी अग्निशाला में रहने की अनुमति मांगी। उरूबेल काश्यप ने अनुमति तो दे दी किंतु साथ ही यह भी कहा कि वहां एक भयंकर नाग है, वह किसी प्रकार की हानि न पहुंचाये। बुद्ध वहां ठहर गये। उन्होंने उपद्रवी नाग के तेज (विष) को अपने तेज से खींचकर एक पात्र में रख दिया। नाग के शरीर पर किसी प्रकार का प्रहार नहीं हुआ। प्रातःकाल यह वृत्तांत सुनकर उरुबेल बहुत चमत्कृत हुआ तथा बुद्ध से वहीं रहने का आग्रह करने लगा। कुछ समय उपरांत वहां एक महायज्ञ का आयोजन था। उरुबेल काश्यप चिंतित हो गया कि भगवान के चमत्कार जानकर यज्ञ में सम्मिलित होने वाले उसके महत्त्व को भूल जायेंगे, अतः उस समय यदि भगवान आश्रम में न रहें तो अच्छा है। बुद्ध ने यह बात जान ली, अतः वे वन चले गये। वहां उन्हें कुछ फटे हुए कपड़े मिले। उन्होंने मन में विचारा कि उन्हें कहां धोया जाय? कहां कूटा जाय और कहां सुखाया जाय? इंद्र ने उनके मन की बात जानकर उनके निकट ही धोने के लिए पुष्करिणी खोद दी। कपड़े कूटने और सुखाने के लिए चट्टानें डाल दीं। अगले दिन उन्हें ढूंढ़ता हुआ उरुबेल आया तो समस्त चमत्कारों से बहुत प्रभावित हुआ। बुद्ध उसके आश्रम में नहीं गये। कारण भी उन्होंने उसे बता दिया। फिर एक बार बहुत तेज वर्षा होने पर सब लोग सोचने लगे कि बुद्ध पानी में बह गये होंगे। नाव लेकर उनके पास पहुंचे तो देखा कि वे जल के बीच में से निकले स्थल पर चल रहे हैं। उड़कर वे नौका पर पहुंच गये। उनसे प्रभावित होकर काश्यप बंधुओं ने अपने अनुयायियों सहित प्रव्रज्या ले ली।

बु० च०, १।६।-

काश्यपी अंग नामक नरेश ने ब्राह्मणों को पृथ्वी दान करने का निश्चय किया। ब्रह्मा की पुत्री पृथ्वी को ज्ञात हुआ तो उसने भूमित्व (धारण करने का धर्म) त्यागकर ब्रह्मलोक चले जाने का निश्चय किया। महर्षि कश्यप ने पृथ्वी को जाते देखा तो शरीर त्यागकर योग का आश्रय लेकर ये भूमि के स्थूल विग्रह में प्रविष्ट हो गये। पृथ्वी पहले से भी अधिक समृद्धिशालिनी हो गयी तथा धर्म का अधिकाधिक प्रसार होने लगा। कश्यप तीस हजार दिव्य वर्ष तक पृथ्वी के रूप में स्थित रहे। तत्पश्चात् पृथ्वी ब्रह्मलोक से लौट आयी तथा कश्यप को प्रणाम कर उसकी पुत्री के रूप में रहने लगी। इसी कारण वह काश्यपी कहलाती है।

म० भा०, दानधर्मपर्व,
अध्याय १५४, श्लोक १-७

किरातार्जुन काम्यक वन में वनवासी पांडवों को द्वैपायन व्यास ने दर्शन दिए। उन्होंने युधिष्ठिर को प्रतिस्मृति विद्या प्रदान की तथा बताया कि उसका विधिवत् प्रयोग करने से समस्त जगत अच्छी प्रकार से ज्यों का त्यों दीखने लगेगा। व्यास ने युधिष्ठिर को आदेश दिया कि वह उस विद्या का दान अर्जुन को देकर दिव्यास्त्रों के निमित्त तपस्या करने के लिए उसे उद्यत करे। युधिष्ठिर से प्रतिस्मृति विद्या का उपदेश पाकर अर्जुन इंद्रकील पर्वत पर चला गया। घोर तपस्या के परिणामस्वरूप उसे

इंद्र के दर्शन हुए। इंद्र एक ब्राह्मण के रूप में थे। उन्होंने अनेक प्रकार के वरदानों का प्रलोभन देकर अर्जुन को विचलित करने का प्रयास किया किन्तु अर्जुन दृढ़ रहा। इंद्र ने प्रसन्न होकर उससे कहा कि जब शंकर उसे दर्शन देंगे तभी दिव्यास्त्रों की प्राप्ति संभव होगी। अर्जुन ने पुनः उग्र तपस्या का अनुष्ठान किया। कालांतर में शंकर किरात का रूप धारण करके अपने गणों तथा पार्वती के साथ वहां पहुंचे। वहां उन्होंने सूअर के वेश में मूक नामक दानव को देखा जो अर्जुन को मार डालने का उपाय सोच रहा था। अर्जुन ने उसे अपने वाण का लक्ष्य बनाया तभी किरात (शिव) ने उसे ऐसा करने से रोका और कहा कि वह उसे पहले से ही मन में लक्ष्य बना चुका है, अतः अर्जुन उस पर वाण न चलाये किंतु अर्जुन ने वाण चला दिया। अतः अर्जुन तथा किरात के वाणों ने एकसाथ ही मूक को बेधा। किसने उसका वध किया है, यह प्रश्न विवाद का रूप ले बैठा। दोनों में घमासान युद्ध हुआ। अर्जुन के अक्षय तूणीर के समस्त वाण तथा धनुष तक भी किरात के शरीर में समा गये किंतु वह पूर्ववत् प्रफुल्लित ही दिखलायी पड़ा। अर्जुन के साथ किरात का मल्ल युद्ध होने लगा जिसमें अर्जुन हल्का पड़ रहा था। अतः उसने एक मिट्टी की वेदी बनाकर उस पर पार्थिव शिवलिंग की स्थापना की। शिवलिंग पर माला चढ़ाते ही वह माला किरात के मस्तक पर देखी तो अर्जुन तुरंत उसके महादेवत्व को पहचान गया तथा अनजाने में किए गये अपराध के लिए क्षमा-याचना करते हुए उसने शिव की स्तुति की। शिव ने अर्जुन के संमुख प्रकट होकर उसका आलिंगन किया। शिव के स्पर्श से अर्जुन के शरीर में जो कुछ भी अमंगलकारी था, सब नष्ट हो गया। शिव ने अर्जुन को दिव्यदृष्टि दी, फिर यह बताया कि वह पूर्व 'नर' नामक ऋषि ही है। शिव ने अर्जुन से प्रसन्न होकर उसे पाशुपतास्त्र प्रदान किया, जिसका प्रयोग केवल विपुल शक्तिशाली जीवों पर ही हो सकता था अन्यथा समस्त पृथ्वी के नाश का भय था। वह भयंकर अस्त्र मूर्तिमान हो, अग्नि के समान प्रज्वलित तेजस्वी रूप में अर्जुन के पार्श्व भाग में खड़ा हो गया। तदनंतर शिव ने अर्जुन का गांडीव उसको वापस कर दिया। शिव ने अर्जुन को स्वर्ग जाने का आदेश दिया तथा स्वयं अदृश्य हो गए। यमराज ने वहां दक्षिण दिशा में प्रकट होकर उन्हें दंडास्त्र समर्पित किया। वरुण ने पश्चिम में प्रकट होकर उन्हें 'वरुणपाश' दिए तथा कुबेर ने अंतर्धान नामक अस्त्र प्रदान किया। इंद्र ने उन्हें स्वर्गलोक के लिए आमंत्रित किया। स्वर्ग में इंद्र के आदेश से अर्जुन को चित्रसेन ने नृत्य तथा संगीत की शिक्षा दी। पांच वर्ष तक स्वर्गलोक में रहकर अर्जुन ने अस्त्र शस्त्र संचालन की पूर्ण विद्या प्राप्त की। इंद्र ने लोमश मुनि के द्वारा पांडवों तथा द्रौपदी के पास संदेश भिजवाया कि अर्जुन स्वर्गलोक में दिव्यास्त्र, संगीत तथा नृत्य का अभ्यास कर रहा है। अर्जुन ने अनुरोध किया कि वे (मुनिवर) उसके पुनरागमन तक सबकी सुरक्षा का ध्यान रखें।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय ३६, श्लोक ३० से ४५ तक
अ० ३७ से ४४ तक, अ० ४७

अर्जुन ने अपने पिता इंद्र की स्तुति की। तदनंतर शिव-स्तुति में लग गया। शिव उसकी परीक्षा लेने के लिए किरात के रूप में पहुंचे। दुर्योधन ने अर्जुन के तप का समाचार सुना तो उसे मारने के लिए एक दैत्य को भैंसे का रूप धारण करवाकर भेजा। किरात ने उस भैंसे अपने वाण से मार डाला। अर्जुन ने भी वाण चलाया था, सो उस मृत शरीर में लगा वाण कौन लेगा, इस प्रश्न पर दोनों का विवाद प्रारंभ हो गया। किरात ने अनेक प्रकार से अर्जुन से युद्ध किया। अस्त्र-शस्त्र नष्ट करके मल्ल युद्ध भी हुआ तथा किरात की अनंत सेना के साथ भी युद्ध हुआ। अर्जुन के साहस से प्रसन्न होकर शिव ने अपने वास्तविक रूप के दर्शन दिये तथा उसे पाशुपत-अस्त्र प्रदान किया।

शि० पु०, ७।५५।५७।

किर्मीक किर्मीक बकासुर का भाई था। बकासुर तथा अन्य अनेक राक्षसों का हनन करनेवाले भीमसेन की खोज में वह वर्षों से लगा हुआ था। द्यूतक्रीड़ा में अपना संपूर्ण वैभव गंवाकर पांचों पांडव द्रौपदी को साथ लेकर जब काम्यकवन में पहुंचे तब किर्मीक ने उनका मार्ग रोक लिया तथा मायावी भयानक रूप धारण कर लिया। श्री धौम्य (पांडवों के पुरोहित) ने विभिन्न मंत्रों के जाप से उस माया का नाश कर दिया। तदनंतर इच्छानुसार रूप धारण करने वाले उस राक्षस ने क्रोध के आवेग में उनका परिचय पूछा। परिचय पाकर वह अत्यंत प्रसन्न हुआ क्योंकि भीमसेन को मार डालने के लिए वह चिरकाल से आकुल था। भीम ने युद्ध में उसे मार डाला।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय १०, श्लोक २२ से २६ तक
अ० ११, श्लोक १ से ६८ तक

कीचक क्षत्रिय पिता तथा ब्राह्मणी माता का पुत्र सूत कहलाता है। कीचक भी सूत जाति का था। वह केकय राजा (सूतों के अधिपति) के मालवी नामक पत्नी के पुत्रों में सबसे बड़ा था। केकय की दूसरी रानी की कन्या का नाम सुदेष्णा था—वही अपने अनेक भाइयों की एकमात्र बहन थी जिसका विवाह राजा विराट से हुआ। उसके भाइयों की संख्या बहुत अधिक थी तथा सभी शक्तिशाली होकर विराट के साथियों में थे। द्रौपदी को सैरंध्री छद्मवेश में रानी सुदेष्णा की सेवा करते दस मास से अधिक हो चुके थे, तभी एक दिन राजा विराट के सेनापति तथा साले कीचक ने उसे देखा तो उस पर आसक्त हो गया। उसने सुदेष्णा की आज्ञा लेकर सैरंध्री के सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखा, किंतु सैरंध्री ने यह बता कर कि उसका विवाह हो चुका है तथा पांच शक्तिसंपन्न गंधर्व उसके पति तथा संरक्षक हैं, उसे अस्वीकार कर दिया। कीचक माननेवाला नहीं था। रानी को भी उसके रूप के प्रति अपने पति के आकर्षण का भय बना रहता था, अतः उसने भाई से सलाह कर एक दिन सैरंध्री को उसके महल में शराब लेने के बहाने भेजा। मार्ग में सैरंध्री सूर्य भगवान से अपनी रक्षा की प्रार्थना करती हुई गयी। कीचक पहले से ही तैयार था, वह बलात्कार करना चाहता था किंतु सैरंध्री उससे छूटकर दौड़ती हुई राजा विराट की सभा में पहुंची। कीचक ने उसे अपने पांव से ठोकर मारी तथा उसके बाल खींचे—किंतु अज्ञातवास का भेद खुलने के भय से पांडव सब कुछ देखते हुए भी उसकी रक्षा के लिए आगे नहीं बढ़े। राजा विराट ने कीचक को समझा-बुझाकर लौटा दिया। सैरंध्री (द्रौपदी) बहुत दुःखी होकर रात के समय वल्लभ (भीमसेन) के रसोईगृह में पहुंची तथा उसने वचन दिया कि वह (वल्लभ) कीचक को मार डालेगा। भीम ने द्रौपदी से मंत्रणा की, तदनुसार कीचक के पुनः प्रणय-निवेदन पर द्रौपदी ने रात्रि के अंधकार में जनशून्य नृत्यशाला में उससे मिलने का वादा किया। रात में वल्लभ (भीम) नृत्यशाला में स्थित पलंग पर चादर ओढ़ कर लेट गया। कीचक के आने पर उसने उससे युद्ध किया तथा उसे मार डाला। कीचक की दुर्दशा देख सबने समझा कि सैरंध्री के पांचों गंधर्व पतियों ने उसे मार डाला है। अतः समस्त उपकीचकों (कीचक के संबंधियों) ने सैरंध्री को कीचक के साथ ही श्मशान में भस्म करने की ठानी। सैरंध्री ने पूर्व निश्चित पांचों नामों (जय, जयंत, विजय, जयत्सेन, जयद्वल) को पुकारकर रक्षा करने को कहा। वल्लभ (भीम) ने अपनी इच्छानुसार एक विशाल रूप धारण किया तथा श्मशान में जाकर एक सौ पांच उपकीचकों का वध कर सैरंध्री को छुड़ा लिया। शेष समस्त लोग वहां से भाग गये। वह पुनः पूर्व रूप में रसोई में जा पहुंचा।

रानी ने सैरंध्री को बुलाकर कहा—"तुम्हारे गधर्वों द्वारा प्राप्त पराभव से महाराज भयभीत हैं। अतः तुम अपनी इच्छानुसार कहीं चली जाओ।" सैरंध्री ने कहा—"मुझे मात्र तेरह दिन यहां रहने की आज्ञा दीजिए क्योंकि तब तक गंधर्वो का अभीष्ट पूर्ण हो जायेगा और वे मुझे लिवा ले जायेंगे। आपने मुझे आश्रय दिया, अतः वे आपकी कृतज्ञता सदैव स्वीकार करते रहेंगे। इससे आपका कल्याण होगा।"

सुदेष्णा ने उसे यथेच्छ दिवस रहने की अनुमति दी, साथ ही अपनी सुहृदजनों की रक्षा करने का भार भी उसे सौंप दिया।

म० भा०, विराटपर्व, अध्याय १४ से २४ तक

कुंडाधार मेघ एक निर्धन ब्राह्मण सकाम भाव से यज्ञ में प्रवृत्त रहता था। वह यज्ञ करने के लिए धन चाहता था और उसके लिए घोर तपस्या में लगा रहता था। उसने देखा, कुंडाधार मेघ देवताओं के आसपास रहता है साथ ही याचकों की भीड़ भी उसे घेरे नहीं रहती। अतः उसी के माध्यम से कुछ प्राप्त करना सहज होगा। उसने अपनी तपस्या तथा भक्ति से कुंडाधार को प्रसन्न कर लिया। कुंडाधार ने यक्षराज मणिभद्र के चरणों पर सिर टेककर ब्राह्मण पर दया करने के लिए कहा। यक्ष ने धन देना चाहा किंतु कुंडाधार ने यह सोचकर कि मानव-जीवन चंचलता से भरा रहता है, ब्राह्मण को तपोबल दिलवाना अधिक आवश्यक समझा, अतः उसने यक्षराज से बार-बार कहकर उसकी धर्म-विषयक आस्था को दृढ़ करने का ही वर मांगा। यक्षराज ने प्रसन्न होकर ब्राह्मण को ऐसा वर दे दिया। ब्राह्मण बहुत खीज रहा था क्योंकि वह धन चाहता था और मिली उसे आस्था की दृढ़ता। वह वन में जाकर तप करने लगा। कालांतर में उसे दिव्य दृष्टि तथा सिद्धि प्राप्त हुई जिससे कि वह जिस किसी को धन और राज्य देना चाहे, देने में

समर्थ हो गया। कुंडाधार ने प्रकट होकर ब्राह्मण से कहा—"तुम धन चाहते थे किंतु मैं तुम्हें धर्मपरायण बनाना चाहता था। अपनी दिव्य दृष्टि से देखो, कितने ही राजा नरकभोगी हैं और प्रत्येक धर्मात्मा स्वर्ग प्राप्त करता है।" गद्‌गद होकर ब्राह्मण ने कुंडाधार को साष्टांग प्रणाम किया।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय २७१,

कुंती (पृथा) पृथा यदुवंशी शूरसेन की पुत्री थी। शूरसेन ने अपने फुफेरे भाई कुंतिभोज से प्रतिज्ञा की थी कि वह अपनी पहली संतान उसको भेंट कर देगा, अतः पृथा का लालन-पालन कुंतिभोज ने किया। इसी से वह कुंती कहलायी। दुर्वासा ने उसके आतिथ्य से प्रसन्न होकर उसे देवताओं का आह्वान करने का मंत्र दिया था। कुंती का विवाह पांडु के साथ हुआ। पांडु का दूसरा विवाह मद्रराज की कन्या माद्री से हुआ। कुंती तथा माद्री की प्रेरणा से वे वन में निवास करने लगे तथा तरह-तरह के शिकार में रत रहने लगे।

म० भा०, आदिपर्व,
अध्याय ११०, १११, ११२ ११३,
दे० भा० २।६।-

कुंभकर्ण कुंभकर्ण रावण का भाई तथा विश्वश्रवा का पुत्र था। कुंभकर्ण की ऊंचाई छह सौ धनुष तथा मोटाई सौ धनुष थी। उसके नेत्र गाड़ी के पहिये के बराबर थे।

बा० रा०, सर्ग ६५, श्लोक ४१

उसका विवाह वेरोचन की कन्या 'व्रज्रज्वाला' से हुआ था।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग १२, श्लोक सं० २२, २३

वह जन्म से ही अत्यधिक बलवान था। उसने जन्म लेते ही कई हजार प्रजाजनों को खा डाला था। उसे बेहद भूख लगती थी और वह मनुष्य और पशुओं को खा जाता था। उससे डरकर प्रजा इंद्र की शरण में गयी कि यदि यही स्थिति रही तो पृथ्वी खाली हो जायेगी। इंद्र से कुंभकर्ण का युद्ध हुआ। उसने ऐरावत हाथी के दांत को तोड़कर उससे इंद्र पर प्रहार किया। उससे इंद्र जलने लगा।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ६१, श्लोक १२ से २८ तक

घोर तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न कर लिया अतः जब वे उसे वर देने के लिए जाने लगे तो इंद्र तथा अन्य सब देवताओं ने उनसे वर न देने की प्रार्थना की क्योंकि कुंभकर्ण से सभी लोग परेशान थे। ब्रह्मा बहुत चिंतित हुए। उन्होंने सरस्वती से कुंभकर्ण की जिह्वा पर प्रतिष्ठित होने के लिए कहा। फलस्वरूप ब्रह्मा के यह कहने पर कि कुंभकर्ण वर मांगे—उसने अनेक वर्षों तक सो पाने का वर मांगा। ब्रह्मा ने वर दिया कि वह निरंतर सोता रहेगा। छह मास के बाद केवल एक दिन के लिए जागेगा। भूख से व्याकुल वह उस दिन पृथ्वी पर चक्कर लगाकर लोगों का भक्षण करेगा।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग १०, श्लोक ३६-४६

राम की सेना से युद्ध करने के लिए कुंभकर्ण को जगाया गया था। वह अत्यंत भूखा था। उसने वानरों को खाना प्रारंभ किया। उसका मुंह पाताल की तरह गहरा था। वानर कुंभकर्ण के गहरे मुंह में जाकर उसके नथुनों और कानों से बाहर निकल आते थे। अंततोगत्वा राम युद्ध-क्षेत्र में उतरे। उन्होंने पहले बाणों से हाथ, फिर पांव काटकर कुंभकर्ण को पंगु बना दिया। तदनंतर उसे ऐंद्रास्त्र से मार डाला। उसके शव के गिरने से लंका का बाहरी फाटक और परकोटा गिर गये।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ६६, ६७

कुंभपुर के महोदर नामक राजा की कन्या तडित्माला से भानुकर्ण का विवाह हुआ। कुंभपुर में उसके सुंदर कानों को देखकर किसी व्यक्ति ने उसे प्रेम से बुलाया था, इसलिए वह 'कुंभकर्ण' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

पउ० च० ८।५५-६०।-

कुजंभ दानव शिरोमणि कुजंभ ने युद्ध में अंश नामक आदित्य को परास्त किया था। उसने असिलोमा तथा वृत्रासुर से मिलकर हरि तथा अश्विनीकुमार को भी पराजित कर दिया।

हरि० वं० पु०, भविष्यपर्व।५६।४२-६५
अ० ५७ संपूर्ण

कुजृंभ विदूरथ नामक राजा शिकार खेलने गया। मार्ग में उसने एक बहुत बड़ा गड्ढा देखा। उसके पास ही एक तपस्वी ब्राह्मण बैठे थे। राजा ने पूछा—"क्या यह गर्त इतना गहरा है कि भीतरी भाग दिखायी दे?" ब्राह्मण ने कहा—"आपके राज्य में गर्त है तो आपको उसके विषय में ज्ञात होना चाहिए। यह कुजृंभ नामक दानव ने बनाया है। वह पाताल में रहते हुए ही इस प्रकार के अनेक जृंभ भूमि में बना लेता है। उसके पास विश्वकर्मा का बनाया मूसल भी है, जिसके प्रहार से कोई बच नहीं

सकता किंतु यदि कोई नारी मूसल का स्पर्श कर दे तो एक दिन के लिए उसकी शक्ति नष्ट हो जाती है।" घर पहुंचकर राजा ने मंत्रियों को इस विषय में बताया कि वहां राजकुमारी मुदावती भी बैठी थी। उसने भी समस्त विवरण सुना। कुछ दिन बाद अपनी सखियों के साथ घूमती राजकुमारी मुदावती का उसी दैत्य (कुजृंभ) ने अपहरण कर लिया। राजा ने सुनीति और सुमति नामक अपने दोनों बेटों को दैत्य-हनन के लिए भेजा। कुजृंभ ने उन्हें पाशबद्ध कर लिया। तदनंतर राजा ने डोंडी पिटवा दी कि जो भी दैत्य को मारकर राजकुमारी तथा राजकुमारों को मुक्त करवा लायेगा, उससे वह अपनी कन्या का विवाह कर देगा। भलंदन के पुत्र वत्सप्री ने उसी विवर से पाताल में प्रवेश किया। कुजृंभ विभिन्न शस्त्रों के प्रयोग के उपरांत अपना मूसल लेने दौड़ा। मुदावती पिता के मुंह से मूसल के शक्ति-क्षय के विषय में सुन चुकी थी, अतः उसकी पूजा के निमित्त नमन कर उसने अपनी अंगुलियों से बार-बार उसका स्पर्श किया। कुजृंभ ने मूसल से कितने ही प्रहार किए किंतु सब व्यर्थ गये। राजकुमार ने आग्नेयास्त्र से उस दानव को मार डाला। वह राजकुमारों तथा मुदावती सहित राजा विदूरथ के पास पहुंचा। विदूरथ ने मुदावती का विवाह वत्सप्री से कर दिया। कुजृंभ के वधोपरांत नागों के अधिपति अनंत ने वह मूसल ले लिया। नारी के स्पर्श से वह बल खो देता था तथा मुदावती ने उसका अनेक बार स्पर्श किया था, अतः अनंत ने उस मूसल का नाम सुनंदा रख दिया। वही मूसल बलराम (कृष्ण के भाई) के पास रहा।

मा० पु० ११३।-

कुर्णिगर्ग पुत्री कुर्णिगर्ग नामक ऋषि बहुत ही तपस्वी तथा शक्तिशाली थे। उन्होंने घोर तपस्या के उपरांत एक मानस पुत्री को जन्म दिया। कालांतर में वे शरीर त्यागकर स्वर्ग चले गये। वह कन्या कठोर से कठोरतम तपस्या में लग गयी। बूढ़ी होने पर उसने शरीर त्यागकर परलोक जाने का निश्चय किया। नारद को ज्ञात हुआ तो उन्होंने उस वृद्धा कन्या से कहा कि अविवाहित रहने के कारण यह पुण्यलोक प्राप्त करने में असमर्थ है। उस वृद्ध कन्या ने ऋषि सभा में उपस्थित होकर कहा—"आपमें से कोई भी मेरा पाणिग्रहण कर लें—मैं अपने आधे पुण्य प्रदान करूंगी।" गालव पुत्र शृंगवान् ने इस शर्त पर कि वह एक रात उनके साथ व्यतीत करेगी—उससे विधिवत् विवाह कर लिया। रात्रि में उसका जो तरुण दिव्य सुंदर रूप शृंगवान् को दिखलायी पड़ा, उसपर वह मुग्ध हो गया। प्रातः उठकर अपने आधे पुण्य ऋषिपुत्र को प्रदान कर आज्ञा ले उस वृद्धा कन्या ने स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया। शृंगवान् भी उसके विरह में अधिक समय नहीं रह पाये तथा अपनी देह त्याग उन्होंने भी उसी का अनुसरण किया। घटनास्थल पर एक अद्‌भुत तीर्थ बन गया। वृद्धा कन्या उस स्थान के लिए यह कह गयी थी कि जो व्यक्ति भी उस तीर्थ पर एक रात व्यतीत करेगा, उसे अट्ठावन वर्ष तक विधिवत् ब्रह्मचर्य पालन का फल प्राप्त होगा।

म० भा०, शल्यपर्व, अध्याय ५२

कुत्स इंद्र ने कुत्स की रक्षा करते हुए दशद्यु नामक बैल को बचाया (ऋ० १।३३।१४-१५)। कुत्स को बचाने के लिए शुष्ण के साथ युद्ध किया (ऋ० १।५१।६)। इंद्र ने उशना की स्तुति से प्रसन्न होकर शुष्ण के दुर्गों को नष्ट किया तथा जल के प्रवाह को मुक्त किया (ऋ० १।५१।११)। कुत्स के निमित्त इंद्र ने शुष्ण, अशुष तथा कुयर्व को वशीभूत किया (ऋ० २।१६।६)। कुत्स की रक्षा का निश्चय करके इंद्र उसके घर चले गये। कुत्स इंद्र से मित्रता करने का इच्छुक था। जब दोनों यथास्थान बैठ गये तो इंद्र की पत्नी शची ने लक्ष्य किया कि इंद्र और कुत्स समरूप दिखलायी पड़ रहे हैं। वह बड़े धर्मसंकट में पड़ गयी। कुत्स ने उसके संकट का निवारण करने के लिए इंद्र के तीव्रगामी घोड़ों को अपने रथ में लगाकर वहां से प्रस्थान किया (ऋ० ४।१६।१०-११)।

कुत्स इंद्र की उरु (जांघ) से पैदा हुआ था और वह बिलकुल इंद्र के तुल्य था। इंद्र की पत्नी शची पौलोमी ने उसे देखा और इंद्र ही समझा। इंद्र ने पूछा कि "तूने यह कैसे समझा?" उसने उत्तर दिया "मैंने तुम दोनों में भेद नहीं देखा।" तब इंद्र ने उसे गंजा (खलति) करवा दिया। अतः गंजा कुत्स पगड़ी बांधकर शची के पास पहुंचा। शची ने उसे इंद्र समझकर व्यवहार किया। इंद्र के कारण पूछने पर शची ने कहा—"वह पगड़ी बांधकर मेरे पास आया था, अतः मैं उसे पहचान नहीं पायी।" इंद्र ने उसके दोनों कंधों के बीच पांसु कर दिये। ऐसा करने पर वह उन पांसुओं को ढककर इंद्राणी के पास पहुंचा। वह फिर से धोखा खा गयी। इंद्र के पूछने पर उसने वही उत्तर

दिया। तब इंद्र ने कुत्स को दबाया और कहा, "भल्लोसि।" कुत्स ने इंद्र से प्रार्थना की—"हे मघवन, हमें मारो मत। आप मुझे जीवित रहने दें। मैं आपसे ही पैदा हुआ हूं। आपने मेरे कंधों के बीच जो पांसु पैदा कर दिये हैं, उन्हें नष्ट कर दें।" इंद्र ने उन्हें प्रध्वंसित कर दिया। उनसे रजस् और रजीयांस नाम का महान जनपद उठ खड़ा हुआ। कुत्स राजा हुआ। राजा कुत्स का पुरोहित सुश्रवा का पुत्र उपगु बना। कुत्स ने उसे आज्ञा दी कि वह इंद्र की यजन न करे। कुत्स ने कहा—"जो मेरी नगरी में इंद्र का यजन करेगा, वह विनष्ट हो जायेगा। देवता अहुत का भक्षण नहीं करते हैं।" इंद्र उपगु के पास पहुंचकर बोले—

'यज्ञ करवाता हूं।" वह बोला—"यहां यजन नहीं होता। जो यहां यज्ञ करेगा, उसे मार दिया जायेगा।" इंद्र ने उसे कई लोक दिखाये कि जो यज्ञ करता है, उसे ये सब लोक प्राप्त होते हैं। तब सौश्रवस उपगु ने कहा—"कोई परवाह नहीं, आप मुझे यज्ञ कराइए।" इंद्र ने उसका यज्ञ कराया तथा कुत्स को सूचित कर दिया। कुत्स ने जाना तो बोला कि इस उपगु की ताड़ना करो। उपगु का ताड़न किया गया। इंद्र ने उपगु को लोक-लोकांतर का प्रलोभन देकर फिर यज्ञ करने को कहा। उपगु भी दिव्य लोकों की प्राप्ति के लोभ में फिर यज्ञ करने लगा। उसने इंद्र से कहा कि तुम यहां से छिपकर जाओ, जिससे कुत्स न देख सके। इंद्र ने जाकर कुत्स को सब बताया। तब कुत्स ने स्वयं जाकर उपगु के टुकड़े कर जल में बहा दिए। यह बात उपगु के पिता सुश्रवा स्थौरायण को मालूम पड़ी, तो वह दौड़कर कुत्स के पास गया और बोला कि मेरा पुत्र कहां है। उसने कहा कि वह जल में पड़ा हुआ है। पिता ने दुःख में पुत्र का अनुगमन किया। इंद्र ने रोहित का रूप धारण करके सोमपान करवाया। सुश्रवा ने इंद्र को पहचानकर उसकी स्तुति की तथा कहा कि मेरे पुत्र को प्रेरित करो, जिला दो। इंद्र ने उसे पुनर्जीवन प्रदान किया।

(नोट : पांसु का अर्थ मिट्टी का ढेला अथवा कलंक)

जै० ब्रा०, ३।१६६

सुश्रवा का पुत्र उपगु नाम का ऋषि उरु-पुत्र कुत्स का पुरोहित था। कुत्स ने इंद्र से द्वेष कर यह सूचना राज्य में प्रचारित कर दी कि जो यजमान इंद्र का यजन करेगा उसका सिर काट दिया जायेगा तब इंद्र सौश्रवस उपगु से प्रदत्त पुरोडाश को हाथ में ले कुत्स के पास पहुंचा और कहा कि "ले, तेरे पुरोहित ने ही मुझे पुरोडाश दिया है।" यह सुनकर सभा में गाते हुए उपगु का सिर कुत्स ने उदुंबुर की तेज स्थूला से काट दिया। सौश्रवस ने इंद्र से कहा कि तेरे ही कारण यजमान ने मेरा सिर काट दिया है। इंद्र ने सौश्रवस उपगु का सिर फिर जोड़ दिया।

ब्रा०, ता० ब्रा० १४।६।८

कुबेर (एकाक्षीपिंगल) भगवान शंकर को प्रसन्न करने के लिए कुबेर ने हिमालय पर्वत पर तप किया। तप के अंतराल में शिव तथा पार्वती दिखायी पड़े। कुबेर ने अत्यंत सात्त्विक भाव से पार्वती की ओर बायें नेत्र से देखा। पार्वती के दिव्य तेज से वह नेत्र भस्म होकर पीला पड़ गया। कुबेर वहां से उठकर दूसरे स्थान पर चला गया। वह घोर तप या तो शिव ने किया था या फिर कुबेर ने किया, अन्य कोई भी देवता उसे पूर्ण रूप से संपन्न नहीं कर पाया था। कुबेर से प्रसन्न होकर शिव ने कहा—"तुमने मुझे तपस्या से जीत लिया है। तुम्हारा एक नेत्र पार्वती के तेज से नष्ट हो गया, अतः तुम एकाक्षीपिंगल कहलाओगे।

रा०, उत्तर कांड, सर्ग १३, श्लोक २०-३१

कुबेर ने रावण के अनेक अत्याचारों के विषय में जाना तो अपने एक दूत को रावण के पास भेजा। दूत ने कुबेर का संदेश दिया कि रावण अधर्म के क्रूर कार्यों को छोड़ दे। रावण के नंदनवन उजाड़ने के कारण सब देवता उसके शत्रु बन गये हैं। रावण ने क्रुद्ध होकर उस दूत को अपनी खड्ग से काटकर राक्षसों को भक्षणार्थ दे दिया। कुबेर को यह सब जानकर बहुत बुरा लगा। रावण तथा राक्षसों का कुबेर तथा यक्षों से युद्ध हुआ। यक्ष बल से लड़ते थे और राक्षस माया से, अतः राक्षस विजयी हुए। रावण ने माया से अनेक रूप धारण किये तथा कुबेर के सिर पर प्रहार करके उसे घायल कर दिया और बलात् उसका पुष्पक विमान ले लिया।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग १३ से १५,

विश्वश्रवा की दो पत्नियां थीं। पुत्रों में कुबेर सबसे बड़े थे। शेष रावण, कुंभकर्ण और विभीषण सौतेले भाई थे। उन्होंने अपनी मां से प्रेरणा पाकर कुबेर का पुष्पक विमान लेकर लंकापुरी तथा समस्त संपत्ति छीन ली। कुबेर अपने पितामह के पास गये। उनकी प्रेरणा से कुबेर ने शिवाराधना की। फलस्वरूप उन्हें धनपाल की पदवी,

पत्नी और पुत्र का लाभ हुआ। गौतमी के तट का वह स्थल धनदतीर्थ नाम से विख्यात है।

ब्र० पु०। ६७

कुबेर तीर्थ कुबेर ने घोर तपस्या की तथा अनेक वर प्राप्त किये। उनकी रुद्र से मित्रता हो गयी थी। उन्होंने धन का स्वामित्व, देवत्व, लोकपालत्व और नलकूबर नामक पुत्र को सहज ही उपलब्ध किया। देवताओं ने जिस स्थान पर उनका यक्षों के राजत्व पद पर अभिषेक किया तथा उन्हें दो हंसों से जुता हुआ दिव्य वाहन उपहारस्वरूप प्रदान किया, वह स्थान 'कुबेर तीर्थ' नाम से विख्यात है।

म० भा०, शल्य पर्व, अध्याय ४७, श्लोक २७

कुब्जा बलराम तथा ग्वालों के साथ कृष्ण मथुरा के बाजार में घूम रहे थे। उन्हें एक सुंदर मुख तथा कुबड़ी कमरवाली स्त्री दिखायी दी। वह कंस के लिए अंगराग बनाती थी। उससे अंगराग लेकर कृष्ण तथा बलराम ने लगाया तदनंतर उससे प्रसन्न होकर कृष्ण ने उसके दोनों पंजों को अपने पैरों से दबाकर हाथ ऊपर उठवाकर ठोड़ी को ऊपर उठाया, इस प्रकार उसका कुबड़ापन ठीक हो गया। उसके बहुत आमंत्रित करने पर उसके घर जाने का वादा कर कृष्ण ने उसे विदा किया। कालांतर में कृष्ण ने उद्धव के साथ कुब्जा का आतिथ्य स्वीकार किया। कुब्जा के साथ प्रेम-क्रीड़ा भी की। उसने कृष्ण से वर मांगा कि वे चिरकाल तक उसके साथ वैसी ही प्रेम-क्रीड़ा करते रहें।

श्रीमद् भा० १०।४२।१०।४८
ब्र० पु० १९३/-

कुरुक्षेत्र कुरु ने जिस क्षेत्र को बार-बार जोता था, उसका नाम कुरुक्षेत्र पड़ा। कहते हैं कि जब कुरु बहुत मनोयोग से इस क्षेत्र की जुताई कर रहे थे तब इंद्र ने उनसे जाकर इस परिश्रम का कारण पूछा। कुरु ने कहा—"जो भी व्यक्ति यहां मारा जायेगा, वह पुण्य लोक में जायेगा।" इंद्र उनका परिहास करते हुए स्वर्गलोक चले गये। ऐसा अनेक बार हुआ। इंद्र ने देवताओं को भी बतलाया। देवताओं ने इंद्र से कहा—"यदि संभव हो तो कुरु को अपने अनुकूल कर लो अन्यथा यदि लोग वहां यज्ञ करके हमारा भाग दिये बिना स्वर्गलोक चले गये तो हमारा भाग नष्ट हो जायेगा।" तब इंद्र ने पुनः कुरु के पास जाकर कहा—"नरेश्वर, तुम व्यर्थ ही कष्ट कर रहे हो। यदि कोई भी पशु, पक्षी या मनुष्य निराहार रहकर अथवा युद्ध करके यहां मारा जायेगा तो स्वर्ग का भागी होगा।" कुरु ने यह बात मान ली। यही स्थान समंत-पंचक अथवा प्रजापति की उत्तरवेदी कहलाता है।

म० भा०, शल्यपर्व, अध्याय ५३

कुवलयापीड़ कंस के मंडप की देहली पर ही कुवलयापीड़ नामक हाथी था। उसे अंकुश से उकसाकर महावत ने कृष्ण की ओर भेजा। कृष्ण ने थोड़ी देर उससे लड़ाई की, फिर उसे धरती पर दे पटका। उसके दोनों दांत निकाल-कर कृष्ण और बलराम ने एक-एक अपने कंधे पर रख लिये। कंस डर गया। उसने कृष्ण के साथ चाणूर को तथा बलराम के साथ मुष्टिक नामक मल्ल को लड़ने के लिए भेजा। दोनों ही भयानक योद्धा माने जाते थे। कृष्ण ने सहज ही चाणूर को तथा बलराम ने मुष्टिक को मार डाला। इसी प्रकार उन दोनों ने कूट, शल और तोशल को भी मार डाला। शेष मल्ल जान बचाकर भागे। कंस ने क्रुद्ध होकर वसुदेव को कैद करने की तथा उन दोनों को नगर से निकालने की आज्ञा दी। कृष्ण ने उसके सिंहासन के पास पहुंचकर उससे युद्ध आरंभ कर दिया तथा उसे धरती पर घसीट लिया। कंस मारा गया। द्वेष भाव से ही सही, कृष्ण का बार-बार स्मरण करने के कारण उसे सारूप्य मुक्ति प्राप्त हुई।

श्रीमद् भा० १०।४३-४४, हरि० वं० पु०।
विष्णुपर्व ।२९। वि० पु० ५।२०।-

कुवलाश्व महर्षि उत्तंक ने घोर तपस्या से विष्णु को प्रसन्न किया। विष्णु ने प्रसन्न होकर उसे वर दिया कि उसकी बुद्धि सत्य, धर्म तथा इंद्रियनिग्रह में लगी रहेगी तथा वह भविष्य में उसे ऐसा योग-बल प्राप्त होगा कि वह देवताओं तथा तीनों लोकों के लिए महान कार्य करेगा। विष्णु ने यह भी कहा कि उसकी प्रेरणा से कुवलाश्व नामक राजा धुंधु नामक राक्षस का वध करेगा। कालांतर में धुंधु नामक राक्षस उत्तंक के आश्रम के निकटवर्ती उज्जालक समुद्र (जो कि जलहीन था) की रेत में छुपकर रहने लगा। वह मधु तथा कैटभ नामक राक्षसों का पुत्र था। वह समस्त देवताओं, राक्षसों, गंधर्वों, नागों आदि के लिए अवध्य था, ऐसा वर उसने ब्रह्मा से प्राप्त कर रखा था। वह वर्ष में एक बार सांस लेने के लिए बालू से बाहर निकलता था। उसके श्वास लेने पर सात दिन तक समस्त भूमंडल में भूकंप-सा आ जाता था। चिनगारियां, ज्वालाएं, रेत और धुआं मिल-

कर एक भयानक दृश्य उत्पन्न कर देते थे। उत्तंग त्रस्त होकर राजा वृहदश्व की शरण में गया। वृहदश्व अपने पुत्र कुवलाश्व को राजपाट सौंपकर वन की ओर प्रस्थान कर रहा था। उसने मुनि को अपने पुत्र के पास भेज दिया। कुवलाश्व अपने इक्कीस हजार बलवान पुत्रों को साथ लेकर मुनि के साथ उज्जालक पहुंचा। उन राजकुमारों ने सात दिन तक रेत खोदकर धुंधु को खोज निकाला। युद्ध में राजा कुवलाश्व के मात्र तीन राजकुमार जीवित रह पाये। विष्णु ने अपना तेज कुवलाश्व के शरीर में प्रवेश किया—अतः उसके हाथों धुंधु मारा गया। कुवलाश्व धुंधुमार कहलाने लगा तथा उसे देवताओं से वर मिला कि वह सदैव कर्म में प्रवृत्त रहेगा।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय २०१, श्लोक ६ से ३४ तक, अध्याय २०२, २०४,

कुशध्वज ह्रस्वरोमा के दो पुत्र हुए। बड़े का नाम जनक था और छोटे का कुशध्वज। वृद्धावस्था में जनक को राज्य तथा भाई के लालन-पालन का भार सौंपकर वे वन में चले गये। कुशध्वज का पालन जनक ने देवताओं के समान ही किया। सीता के युवती होने पर सांकाश्या नगरी के राजा सुधन्वा ने अचानक मिथिलापुरी के चारों ओर घेरा डाल लिया तथा सीता से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। युद्ध में जनक ने सुधन्वा को मार डाला और अपने भाई कुशध्वज का राज्याभिषेक कर, उसे सांकाश्या का राज्य सौंप दिया।

बा० रा०, बाल कांड, सर्ग ७१, श्लोक १४-१६

कुशनाभ कुश नामक धर्मात्मा ब्राह्मण तपस्वी के चार पुत्र हुए—कुशांब, कुशनाभ, अमूर्तरजस और वसु। इन चारों ने चार नगर बसाये—कुशांब ने कौशांबी, कुशनाभ ने महोदयपुर, अमूर्तरजस ने धर्मारण्य तथा वसु ने गिरिव्रज। राजा कुशनाभ के घृताची आदि सौ सुंदर कन्याएं हुईं। उनके युवती होने पर वायुदेव ने उनके समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा तथा यह प्रलोभन भी दिया कि वे सदैव सुंदरी और युवती रहेंगी। उन सौ लड़कियों ने स्वयं अपने विवाह की बात करने से इंकार कर दिया और कहा कि वह उनके पिता का विषय है। वायुदेव ने रुष्ट होकर उन्हें लुंज कर दिया। उनके घर पहुंचने पर पिता (कुशनाभ) को सब पता चला। वे लड़कियों पर प्रसन्न हुए किंतु उनकी स्थिति देखकर उन्हें बहुत खेद हुआ। बहुत सोच-विचार के बाद उन्होंने अपनी सौ कन्याओं का विवाह सोमदा के पुत्र ब्रह्मदत्त से कर दिया। ब्रह्मदत्त के स्पर्श से वे सब युवतियां पूर्ववत् सुंदरी हो गयीं।

बा० रा०, बाल कांड, सर्ग ३२, श्लोक १-२६

कृत्तिका तीर्थ तारक वध के निमित्त कवि (अग्नि) ने शिव के वीर्य का सोमवत् पान किया। सप्तर्षिपत्नियों में से अरुंधती से इतर सब ऋतुस्नाता थीं। उन्होंने इच्छा मात्र से अग्नि द्वारा गर्भ धारण किया। अपने कृत्य पर लज्जित होकर उन्होंने बलपूर्वक पेट दबाकर गर्भ को फेनवत् स्थिति में गंगा में छोड़ दिया। वह मिलित गर्भ छः सिर और एक धड़वाला बालक हुआ। उनको पतियों से निर्वासन मिला। नारद ने कष्ट की मुक्ति के लिए उन्हें गंगापुत्र (अग्नि से उत्पन्न) स्कंद के पास भेजा। उन्होंने उन्हें (कृत्तिकाओं को) गौतमी गंगा में स्नान कर शिवाराधना करने को कहा। उन्होंने वैसा ही करके पुनः स्वर्ग प्राप्त किया। वह स्थान कृत्तिका तीर्थ कहलाता है।

कथा में पर्याप्त अंतर है, दे० कार्तिकेय

ब्र० पु०, ८२

कृपाचार्य गौतम के एक प्रसिद्ध पुत्र हुए हैं, शरद्वान् गौतम। वे घोर तपस्वी थे। उनकी विकट तपस्या ने इंद्र को अत्यंत चिंता में डाल दिया। इंद्र ने उनकी तपस्या को भंग करने के लिए जानपदी नामक देवकन्या को उनके आश्रम में भेजा। उसके सौंदर्य पर मुग्ध होकर शरद्वान् गौतम का अनजाने ही वीर्यपात् हो गया। वह वीर्य सरकंडे के समूह पर गिरकर दो भागों में विभक्त हो गया, जिससे एक कन्या और एक पुत्र का जन्म हुआ। शरद्वान् धनुर्वेत्ता थे। वे धनुषबाण तथा काला मृगचर्म वहीं छोड़कर कहीं चले गये। शिकार खेलते हुए शांतनु को वे शिशु प्राप्त हुए। उन दोनों का नाम कृपी और कृप रखकर शांतनु ने उनका लालन-पालन किया। शरद्वान् गौतम ने गुप्त रूप से कृप को धनुर्विद्या सिखायी। कृप ही बड़े होकर कृपाचार्य बने तथा धृतराष्ट्र और पांडु की संतान को धनुर्विद्या की शिक्षा दी।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय १२८

महाभारत युद्ध में कृपाचार्य कौरवों की ओर से सक्रिय थे। कर्ण के वधोपरांत उन्होंने दुर्योधन को बहुत समझाया कि उसे पांडवों से संधि कर लेनी चाहिए किंतु दुर्योधन ने अपने किये हुए अन्यायों को याद कर कहा कि न पांडव इन बातों को भूल सकते हैं और न उसे क्षमा

कर सकते हैं। युद्ध में मारे जाने के सिवा अब कोई भी चारा उसके लिए शेष नहीं है। अन्यथा उसकी सद्गति भी असंभव है।

म० भा० शल्यपर्व, अ० ५, श्लोक १ से २७ तक

कृपावती पूर्वकाल में राजपक्षी के मुंह से गिरी शारिका को देखकर एक महात्मा मूर्च्छित हो गये। उनका मन शारिका के प्रति कृपा (दया) से आपूरित था। मूर्च्छा दूर होने पर उनके शरीर से एक कन्या उत्पन्न हुई जिसका नाम कृपावती रखा गया। वह मुनि के आश्रम में रहकर बड़ी होने लगी। एक बार अगस्त्य मुनि के भाई फूल चुन रहे थे। वे कृपावती की सखियों से रुष्ट हो गये। उन्होंने कृपावती से कहा—"तूने मुझे वैश्य कहा, तू वैश्या कन्या हो जायेगी।" कृपावती ने अपनी निर्दोषता बतायी तो उन्होंने कहा—"वैश्य योनि से जन्म लेकर भी जब तू अपने पुत्र को पृथ्वी-पालन के लिए भेजेगी तो तू पुनः क्षत्रियत्व प्राप्त कर लेगी।" कृपावती ही अगले जन्म में नाभाग की पत्नी सुप्रभा हुई।

मा० पु०, ११३, दे० नाभाग (दिष्टिपुत्र)

कृशागौतमी राहुल-जन्म पर नगर में प्रवेश करते हुए सिद्धार्थ को देखकर कृशागौतमी नामक क्षत्रिय कन्या ने नगर की परिक्रमा की और कहा—"ऐसे रूप को देखकर मां, पत्नी, पिता, सभी का मन परम शांत होता है।" सिद्धार्थ ने सुना तो विचार-मग्न हो गये कि रागादि अग्नि के शांत होने पर द्वेषाग्नि शांत हो जाती है। कृशागौतमी के वचन को इस रूप में ग्रहण करके सिद्धार्थ ने उसे गुरु-दक्षिणास्वरूप एक लाख का मोती का हार प्रदान किया।

कृशागौतमी उस जन्म में निर्धन थी। उसने एक पुत्र को जन्म दिया। पुत्र का देहावसान हो गया। वह गौतम बुद्ध के पास गयी और बोली—"मेरे पुत्र को जीवित कर दो।" बुद्ध ने कहा—"जिस परिवार में कभी कोई नहीं मरा, वहां से मुझे पीली सरसों लाकर दो।"

वह जगह-जगह भटकी, किंतु ऐसा कोई परिवार उसे नहीं मिला। जीवन की अनित्यता का बोध होने पर वह प्रव्रजित हो गयी।

बु० च०, **यौवन** १।२, ४।६

कृष्ण एक बार आंगिरस ऋषि ने देवकी के पुत्र कृष्ण को यज्ञदर्शन सुनाया था। फलस्वरूप कृष्ण शेष समस्त विधाओं के प्रति तृष्णाहीन हो गये थे।

छा० उ०, अध्याय ३, खंड १७, श्लोक ६

वे अव्यक्त होते हुए भी व्यक्त ब्रह्म थे। मूलतः वे नारायण थे। वे स्वयंभू तथा संपूर्ण जगत के प्रपितामह थे। द्युलोक उनका मस्तक, आकाश नाभि, पृथ्वी चरण, अश्विनीकुमार नासिकास्थान, चंद्र और सूर्य नेत्र तथा विभिन्न देवता विभिन्न देहयष्टियां हैं। वे (ब्रह्म रूप) ही प्रलयकाल के अंत में ब्रह्मा के रूप में स्वयं प्रकट हुए तथा सृष्टि का विस्तार किया। रुद्र इत्यादि की सृष्टि करने के उपरांत वे लोकहित के लिए अनेक रूप धारण करके प्रकट होते रहे।

श्रीकृष्ण के रूप में वही अव्यक्त नारायण व्यक्त रूप धारण करके अवतरित हुए। वे वसुदेव के पुत्र हुए। कंस के भय से वसुदेव उन्हें नंद गोप के यहां छोड़ आये। वहीं पलकर वे बड़े हुए। यशोदा (नंद की पत्नी) से उन्हें अद्‌भुत वात्सल्य की उपलब्धि हुई। शिशुरूप में वे (१) एक बार छकड़े के नीचे सो रहे थे। यशोदा उन्हें वहां छोड़ यमुना तट गयी थी। बाल-लीला का प्रदर्शन करते हुए रोते हुए कृष्ण ने अपने पांव के अंगूठे से छकड़े को धक्का दिया तो वह उलट गया। उसपर रखे समस्त मटके चूर-चूर हो गये। (२) देवताओं के देखते-देखते उन्होंने पूतना को मार डाला। (३) वे अपने बड़े भाई संकर्षण (बलदेव) के साथ खेलते-कूदते बड़े हुए। सात वर्ष की अवस्था में गोचारण के लिए जाया करते थे। एक बार मक्खन चुराकर खाने के दंडस्वरूप मां (यशोदा) ने उन्हें ऊखल में बांध दिया। कृष्ण ने उस ऊखल को यमल तथा अर्जुन नामक दो वृक्षों के बीच में फंसाकर इतने जोर से खींचा कि वे दोनों वृक्ष भूमिसात् हो गये। इस प्रकार उन वृक्षों पर रहनेवाले दो राक्षसों को उन्होंने मार डाला। (४) वे दोनों भाई ग्वालोचित वेशधारी वन में पिपिहरी तथा बांसुरी बजाकर आमोद-प्रमोद के साथ गायों को चराते थे। कृष्ण पीले और बलराम नीले वस्त्र धारण करते थे। वे पत्तों के मुकुट पहन लेते। कभी-कभी रस्सी का यज्ञोपवीत भी धारण कर लेते थे। वे गोप बालकों के आकर्षण का केंद्रबिंदु थे। (५) उन्होंने कदंबवन के पास ह्रद (कुंड) में रहनेवाले कालिया नाग के मस्तक पर नृत्यक्रीड़ा की थी तथा अन्यत्र जाने का आदेश दिया था। (६) गोपाल बालकों द्वारा किये गये गिरि यज्ञ में सम्मिलित होकर उन्होंने अपने सर्वभूत स्रष्टा ईश्वर स्वरूप को प्रकट किया तथा गिरिराज को समर्पित होनेवाली खीर वे स्वयं खा गये।

तब से गोपगण उनकी पूजा करने लगे। (७) जब इंद्र ने वर्षा की थी तब श्रीकृष्ण ने गौओं की रक्षा के निमित्त एक सप्ताह तक गोर्वधन पर्वत को अपने हाथ पर उठाए रखा था। इंद्र ने प्रसन्न होकर उन्हें गोविंद नाम दिया। (८) श्रीकृष्ण ने पशुओं की हितकामना से वृक्ष रूप-धारी अरिष्ट नामक दैत्य का संहार किया। (९) ब्रजनिवासी केशी नामक दैत्य का संहार किया। उस दैत्य का शरीर घोड़े जैसा और बल दस हजार हाथियों के समान था। (१०) कंस के दरबार में रहनेवाले चाणूर नामक मल्ल को उन्होंने मार डाला। (११) कंस के भाई तथा सेनापति शत्रुनाशक का भी उन्होंने नाश कर डाला। (१२) कंस के कुवलयापीड़ नामक हाथी को भी उन्होंने मार गिराया। (१३) कंस को मार-कर उन्होंने उग्रसेन का राज्याभिषेक कर दिया। (१४) उज्जयिनी में दोनों भाइयों ने वेद विद्याध्ययन किया। धनुर्विद्या सीखने वे सांदीपनि के पास गये। सांदीपनि ने गुरु-दक्षिणा में अपने पुत्र को वापस मांगा, जिसे कोई समुद्री जंतु खा गया था। श्रीकृष्ण ने समुद्र में रहनेवाले उस दैत्य का संहार कर दिया तथा गुरुपुत्र को पुनर्जीवन-दान दिया जो कि वर्षों पूर्व यमलोक में जा चुका था। कृष्ण के कृपाप्रसाद से उसने पूर्ववत् अपना शरीर धारण किया। (१५) श्रीकृष्ण ने नरकासुर (भौमासुर) को मार डाला (१६) श्रीकृष्ण ने उषा अनिरुद्ध का मिलन करवाया, बाणासुर को मारा। (१७) उन्होंने रुक्मी को पराजित करके रुक्मिणी का हरण किया। (१८) इंद्र को परास्त करके परिजात वृक्ष का अपहरण किया। श्रीकृष्ण ने इस प्रकार अनेक लीलाएं कीं। वे प्राणियों के साथ उसी प्रकार क्रीड़ा करते हैं जैसे मनुष्य खिलौनों से क्रीड़ा करता है। संपूर्ण चराचर भूत नारायण से उद्-भूत है। पानी के बुद्बुद्वत् उसी में लीन हो जाता है।

म० भा०, सभापर्व, अध्याय ३८

स्वयंवर में गांधारराज की राजकुमारी को प्राप्त किया था। विवाहोपरांत उनके रथ में अच्छी नस्ल के घोड़ों की तरह से राजाओं को जोता गया था। द्यूतक्रीड़ा के उपरांत पांडवों के वनवासकाल में कौरव-पांडवों के युद्ध की संभावना देख श्रीकृष्ण कौरवों को समझाने के लिए उनकी सभा में गये। कृष्ण के साथ धृतराष्ट्र, गांधारी, विदुर, सात्यकि इत्यादि सभी इस मत के थे कि पांडवों का राज्य उन्हें लौटा देना चाहिए तथा उनसे संधि कर, शांति स्थापित करनी चाहिए; किंतु दुर्योधन उसके लिए तैयार न था। उसने शकुनि तथा कर्ण से सलाह करके कृष्ण को बंदी बना लेने का निश्चय किया। सात्यकि को विदित हुआ तो उसने सभासदों के सम्मुख ही कृष्ण को इस तथ्य की सूचना दी। कृष्ण ने क्रुद्ध होकर अपना विश्व रूप (विराट् रूप) प्रदर्शित किया। कृष्ण की दाहिनी बांह पर अर्जुन, बायीं बांह पर हलधर, वक्ष पर शिव तथा अंग-प्रत्यंग पर विभिन्न देवी-देवता साक्षात् दिखलायी दिए। कृष्ण के अट्टहास से भूमंडल कांप उठा। शरीर से ज्वाला प्रस्फुटित हुई तथा सब ओर अनेक देवता और योद्धाओं के दर्शन होने लगे। ऐसे रूप के दर्शन दे, कृष्ण ने वहां से प्रस्थान किया। महा-भारत युद्ध में कृष्ण ने अर्जुन के सारथी का कार्यभार संभाला था। अभिमन्यु की मृत्यु के उपरांत कृष्ण ने अपने-आप स्वीकार किया कि अर्जुन (नर) नारायण (श्रीकृष्ण) का आधा शरीर है। युद्ध में पांडवों की विजय के उपरांत वे लोग कृष्ण सहित कुरुक्षेत्र में रहे। जब तक सूर्य उत्तरायण नहीं हो गया, भीष्म पितामह नित्य ही उन्हें दान, धर्म, कर्तव्य का उपदेश देते रहे। उनके स्वर्गारोहण उपरांत पांडवों को हस्तिनापुर छोड़ते हुए कृष्ण अपने माता-पिता के दर्शन करने द्वारकापुरी चले गये।

म० भा०, उद्योगपर्व, १३०-१३१
द्रोणपर्व ७९

श्रीकृष्ण मंझले भाई थे। उनके बड़े भाई का नाम बलराम था जो अपनी भक्ति में ही मस्त रहते थे। उनसे छोटे का नाम 'गद' था। वे अत्यंत सुकुमार होने के कारण श्रम से दूर भागते थे। श्रीकृष्ण के बेटे प्रद्युम्न अपने दैहिक सौंदर्य से मदासक्त थे। कृष्ण अपने राज्य का आधा धन ही लेते थे, शेष समस्त राज्य आदि उग्रसेन को दे दिया था, जिनके साथ शेष यादववंशी उसका उपभोग करते थे। श्रीकृष्ण के जीवन में भी ऐसे क्षण आये जब उन्होंने अपने जीवन का असंतोष नारद के सम्मुख कह सुनाया और पूछा कि यादववंशी लोगों के परस्पर द्वेष तथा अलगाव के विषय में उन्हें क्या करना चाहिए। नारद ने उन्हें सहनशीलता का उपदेश देकर एकता बनाये रखने को कहा।

म० भा०, द्रोणाभिषेकपर्व, ११, श्लोक १०-११
शांतिपर्व ८१, आश्वमेधिकपर्व, ५२,

महाभारत युद्ध में कौरवों के संहार के उपरांत गांधारी ने श्रीकृष्ण को समस्त वंश सहित नष्ट होने का शाप दिया था। युद्ध के ३६ वर्ष उपरांत यादववंशियों में अन्याय और कलह अपने चरम पर पहुंच गया। श्रीकृष्ण को बार-बार गांधारी के शाप का स्मरण हो आता। तभी मौसल युद्ध (दे० मूसल-कांड) में समस्त यादव, वृष्णि तथा अंधकवंशी लोगों का नाश हो गया। श्रीकृष्ण तपस्या में लगे भाई बलराम के पास तपस्या करने के लिए चले गये। बलराम योगयुक्त समाधिस्थ बैठे थे। कृष्ण ने देखा कि उनके मुंह से एक श्वेत वर्ण का विशालकाय सर्प निकला जिसके एक सहस्र फन थे । वह महासागर की ओर बढ़ गया। सागर में से तक्षक, अरुण, कुंजर इत्यादि सबने भगवान अनंत की भांति उसका स्वागत किया। इस प्रकार बलराम का शरीर-त्याग देखकर कृष्ण पुन: गांधारी के शाप तथा दुर्वासा के शरीर पर जूठी खीर पुतवाने की बात स्मरण करते रहे, फिर मन, वाणी और इंद्रियों का निरोध करके पृथ्वी पर लेट गये। उसी समय जरा नामक एक भयंकर व्याध मृगों को मारता हुआ वहां पहुंचा। लेटे हुए कृष्ण को मृग समझकर उसने वाण से प्रहार किया जो श्रीकृष्ण को पांव के तलवों में लगा। पास जाकर उसने कृष्ण को पहचाना तथा क्षमा-याचना की। कृष्ण उसे आश्वस्त कर ऊर्ध्वलोक में चले गये ।

म० भा०, मौसलपर्व, अध्याय ४
ब्र० पु०, ।२१० से २११ तक

अभिमन्यु तथा उत्तरा के विवाह के उपरांत उपस्थित मित्र तथा संबंधियों ने मंत्रणा की कि तेरह वर्ष पूर्ण होने पर भी कौरव आधा राज्य दे देंगे, ऐसा नहीं प्रतीत होता, अत: एक दूत दुर्योधन के पास भेजना चाहिए ताकि उसके विचार पता चले और दूसरी ओर सेना-संचय प्रारंभ करना चाहिए। निश्चय के अनुसार अर्जुन कृष्ण के पास युद्ध में सहायता मांगने के लिए पहुंचा। इससे पूर्व वहां दुर्योधन पहुंच चुका था। कृष्ण सो रहे थे। दुर्योधन सिर-हाने की ओर के आसन पर बैठा था—अर्जुन पांव की ओर खड़ा रहा। कृष्ण ने उठकर पहले अर्जुन को देखा फिर दुर्योधन को दोनों सहायता के लिए आये थे। एक पहले आया था, दूसरा पहले देखा गया था। अत: कृष्ण ने एक को सेना देने का तथा दूसरे को स्वयं बिना हथियार उठाए सहायता करने का निश्चय किया। अर्जुन कृष्ण को पाकर तथा दुर्योधन सेना पाकर प्रसन्न हो गये ।

म० भा०, उद्योगपर्व, अध्याय १ से ७

कृष्ण और बलराम ने अनुभव किया कि ब्रजभूमि की वनश्री बच्चों की क्रीड़ा, गोपों की फल-सब्जी बेचने के लिए उपज तथा गौओं के क्षारयुक्त मल इत्यादि से नष्ट हो गयी है। इस कारण से उन्होंने निश्चय किया कि गोव-र्धन पर्वत से युक्त कदंब इत्यादि वृक्षों से आपूरित वृंदा-वन में जाकर रहना चाहिए। कृष्ण ने अपने रोम-रोम से भयानक भेड़ियों को उत्पन्न किया। उनको देखकर गोप-गोपांगनाएं तथा गायें अत्यंत त्रस्त होकर ब्रजभूमि छोड़ने के लिए तुरंत तैयार हो गये। लोग वृंदावन में जा बसे ।

हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व ।८-९।

कंस की कारागार में वसुदेव के यहां भगवान ने कृष्ण-रूप में अवतार लिया। दस वर्ष तक बलराम के साथ ऐसे रहे कि उनकी कीर्ति वृंदावन से बाहर नहीं गयी। वे गाय चराते तथा बांसुरी बजाकर सबको रिझाते थे। खेल-खेल में उन्होंने अनेक असुरों का संहार किया, कंस को उठाकर पटक दिया। कृष्ण ने अपनी शक्ति योगमाया से भौमासुर की लाई राजकन्याओं से एक ही मुहूर्त में अलग-अलग महलों में विधिवत् पाणिग्रहण संस्कार संपादित किया। एक बार नंद ने कार्तिक शुक्ल एकादशी का उपवास किया तथा रात्रि में यमुना में स्नान करने लगे। वह असुरों की वेला थी। अत: एक असुर उन्हें पकड़कर वरुण के पास ले गया। कृष्ण वरुण के पास गये तथा नंद बाबा को वापस ले आये ।

नारद ने कंस को जाकर बताया कि कृष्ण वसुदेव का बेटा है तथा बलराम रोहिणी का। वे दोनों छिपाकर नंद के यहां रखे गये हैं। कंस ने कृष्ण को अपनी भावी मृत्यु का कारण मानकर वसुदेव तथा देवकी को पुन: कैद कर लिया। श्रीकृष्ण ने कंस को मारकर उन्हें कैद से छुड़ाया। यदुवंशियों को ययाति का शाप था कि वे कभी शासन नहीं कर पायेंगे। अत: कृष्ण ने अपने नाना उग्रसेन से शासन ग्रहण करने का अनुरोध किया। कृष्ण और बलराम ने नंद से कहा—"पिताजी, आपका वात्सल्य अपूर्व है। आपने तथा यशोदा ने अपने बालकों के समान ही हमें स्नेह दिया। आप ब्रज जाइए। हम लोग भी यहां का काम निपटाकर आपसे मिलने आयेंगे।" वे दोनों अवंतीपुर (उज्जैन) निवासी गुरुवर संदीपनि के गुरुकुल में रहकर उनकी सेवा करने लगे। चौंसठ दिन में उन दोनों ने चौंसठ कलाओं में निपुणता प्राप्त की तथा संदीपनि को गुरु-दक्षिणास्वरूप उसका मृत पुत्र पुन:

लौटाकर वे दोनों मथुरा लौट गये (दे० पंचजन्य)।

श्रीमद् भा० ३।३।-, १०।२८।-, १०।४४।-

श्रीकृष्ण के अनेक विवाह हुए थे। (कुछ को विशेष प्रसिद्धि नहीं प्राप्त हुई, वे यहां उल्लिखित हैं।) उनकी श्रुतकीर्ति नामक बूआ का विवाह केकय देश में हुआ था। उनकी कन्या का नाम था सुभद्रा जिसका विवाह उसके भाई आदि ने कृष्ण से कर दिया था। मद्रदेश की राजकुमारी सुलक्षणा को कृष्ण ने स्वयंवर में हर लिया था। इनके अतिरिक्त भौमासुर को मारकर अनेक सुंदरियों को वे कैद से छुड़ा लाये थे।

श्रीमद् भा०, १०।५८।५७ ५८

एक बार सूर्य-ग्रहण के अवसर पर भारत के विभिन्न प्रांतों की जनता कुरुक्षेत्र पहुंची। वहां वसुदेव, कृष्ण और बलराम से नंद, यशोदा, गोप-गोपियों आदि का सम्मिलन हुआ। कृष्ण ने गोपियों आदि को अध्यात्म ज्ञान का उपदेश दिया। उन्हीं दिनों वसुदेव के यज्ञोत्सव का आयोजन था। उस संदर्भ में नंद बाबा, यशोदा तथा पांडव-परिवार के अधिकांश सदस्य तीन माह तक द्वारका में ठहरे।

श्रीमद् भा० १०।८२-८४

एक बार कृष्ण अपने दो भक्तों पर विशेष प्रसन्न हुए। उनमें से एक तो मिथिलानिवासी गृहस्थी ब्राह्मण श्रुतदेव था और दूसरा मिथिला का राजा बहुलाश्व था। श्रीकृष्ण ने दो रूप धारण करके एक ही समय में दोनों को दर्शन दिए तथा दोनों भक्तों ने भगवत्स्वरूप प्राप्त किया।

श्रीमद् भा०, ।१०।८६।१३-

ब्रह्मा की प्रार्थना पर विष्णु ने हंस का रूप धारण करके सनकादि के चित्त तथा गुणों के अनैक्य के विषय में उपदेश दिया था। यदुवंशियों के संहार के उपरांत जरा नामक व्याध को निमित्त बनाकर श्रीकृष्ण ने स्वधाम में प्रवेश किया। उन्हें अपने धाम में प्रवेश करते कोई भी देवता देख नहीं पाया। श्रीकृष्ण की कृपा से उनके शरीर पर प्रहार करनेवाला व्याध सदेह स्वर्ग चला गया।

नश्वर शरीर के त्यागोपरांत वसुदेव, अर्जुन आदि बहुत दुखी हुए। सब उनकी अलौकिक लीलाओं को स्मरण करते रहे।

श्रीमद् भा०, ११।१३।१५-४२/-
११।३०।-

कृष्ण-कथा में अंकित सभी पात्र किसी न किसी कारण-वश शापग्रस्त होकर जन्मे थे। कश्यप ने वरुण से काम-धेनु मांगी थी फिर लौटायी नहीं, अतः वरुण के शाप से वे ग्वाले हुए। देवी भागवत में दिति और अदिति को दक्ष कन्या माना गया है। अदिति का पुत्र इंद्र था जिसने मां की प्रेरणा से दिति के गर्भ के ४९ भाग कर दिए थे जो मरुत हुए। अदिति से रुष्ट होकर दिति ने शाप दिया था—"जिस प्रकार गुप्त रूप से तूने मेरा गर्भ नष्ट करने का प्रयत्न करवाया है उसी प्रकार पृथ्वी पर जन्म लेकर तू बार-बार मृतवत्सा होगी। फलतः उसने देवकी के रूप में जन्म लिया।

विष्णु ने देवताओं की रक्षा करने के निमित्त भृगु की पत्नी (शुक्र की मां) का हनन किया था अतः भृगु के शापवश उन्होंने पृथ्वी पर बार-बार जन्म लिया (दे० शुक्र), (दे० नर नारायण)। नर-नारायण अर्जुन और कृष्ण के रूप में अवतरित हुए। अप्सराएं राजकुमारियों के रूप में जन्मीं तथा कृष्ण की पत्नियां हुईं (दे० नर-नारायण, पृथ्वी)।

दैत्य मधु का पुत्र लवण ब्राह्मणों को अनेक प्रकार से पीड़ित कर रहा था। लक्ष्मण के भाई शत्रुघ्न ने उस दैत्य को मारकर मथुरा नामक नगरी की स्थापना की। कालांतर में सूर्यवंश क्षीण हो गया। ययाति यादवों ने मथुरा पर अधिकार कर लिया।

शूरसेन के पुत्र का नाम वसुदेव था। वह वरुण के शाप तथा कश्यप के अंश से उत्पन्न हुआ था। शूरसेन की मृत्यु के उपरांत उग्रसेन को राज्य की प्राप्ति हुई। उग्रसेन के पुत्र का नाम कंस था। देवक राजा की कन्या का नाम देवकी था। उसका जन्म वरुण के शाप तथा अदिति के अंश से हुआ था। देवक ने उसका विवाह वसुदेव से कर दिया। विवाह होते ही आकाशवाणी हुई कि देवकी की आठवीं संतान कंस को मार डालेगी। कंस ने देवकी के बाल पकड़कर उसे मारने के लिए खड्ग उठा लिया। वसुदेव के वीर साथियों से कंस का युद्ध होने लगा। यादवों ने कंस को समझा-बुझाकर शांत किया कि अपनी बहन पर हाथ उठाना उचित नहीं है। हो सकता है, किसी शत्रु ने ही यह आकाशवाणी रची हो। वसुदेव ने कहा कि वह अपनी प्रत्येक संतान कंस को अर्पित कर देगा। इस शर्त पर कंस ने उसे छोड़ दिया। वसुदेव देवकी को लेकर अपने घर चला गया। प्रथम पुत्र उत्पन्न होने पर वसुदेव पुत्र सहित कंस के पास पहुंचा। कंस ने

'प्रथम बालक से नहीं, अष्टम बालक से भय है' कहकर बालक उसे लौटा दिया, किंतु तभी नारद ने वहां पहुंचकर कंस को समझाया कि गिनती कहां से शुरू करके किस बालक को अष्टम माना जायेगा, नहीं कहा जा सकता। यह सुनकर कंस ने बालक को शिला पर पटककर मार डाला। इसी प्रकार देवकी के छह पुत्र मारे गये। वे छहों शापवश जन्मते ही नष्ट हो गये। पूर्वकाल में ब्रह्मा अपनी कन्या के प्रति कामुक हो उठे थे। रमण करते हुए ब्रह्मा को देख महर्षि मरीचि के (उर्णा नामक पत्नी के गर्भ से उत्पन्न) छह पुत्रों ने उनका परिहास किया था। इससे रुष्ट होकर ब्रह्मा ने उन्हें असुर योनि में जन्म लेने का शाप दिया था। फलत: पहले वे कालनेमि के पुत्र हुए, फिर हिरण्यकशिपु के पुत्र हुए। दूसरे जन्म में ज्ञान विच्युत न होने के कारण ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर कहा था कि वे मनवांछित देवता अथवा गंधर्व हो जायें। वर पाकर वे लोग तो प्रसन्न हुए। हिरण्यकशिपु ने अपने पुत्रों को ब्रह्मा का प्रिय जान क्रोधावेश में कहा—"तुम पाताल में जाकर निद्रा में पड़े रहोगे। पृथ्वी पर षड्गर्भ नाम से प्रसिद्ध होगे। देवकी के गर्भ से जन्म लेकर कालनेमि के वंश से उत्पन्न कंस के हाथों मारे जाओगे।" देवकी के सातवें गर्भ में अनंत देव आये। योगमाया ने योग-बल से इस गर्भ का आकर्षण करके उसे रोहिणी के गर्भ में स्थापित किया। भौतिक दृष्टि से देवकी का गर्भपात मान लिया गया। तदनंतर विष्णु के अंशावतार कृष्ण ने अष्टम् पुत्र के रूप में जन्म लिया। योगमाया ने स्वेच्छा से यशोदा के गर्भ में प्रवेश किया। अन्य पात्रों के जन्म के मूलांश की तालिका निम्नलिखित

मूलांश	**कृष्ण-कथा के पात्र**
हिरण्यकशिपु	शिशुपाल
विप्रचित्ति	जरासंध
प्रह्लाद	शल्य
खर	लंबक तथा धेनुक
वाराह और किशोर	चाणूर और मुष्टिक
दिति पुत्र अरिष्ट	कुवलय नामक कंस का हाथी
यम, रुद्र, काम और क्रोध—चारों के अंश से	अश्वत्थामा

भूमि का भार-हरण करने की प्रार्थना सुनकर हरि ने देवताओं को दो बाल दिये थे; एक काला—कृष्ण, दूसरा सफेद—बलराम।

दे० भा०, ४।२०-२५

श्रीकृष्ण परमात्मा हैं। उनके सोलहवें अंश का एक अंश, सौ करोड़ सूर्यों के प्रकाश से युक्त एक बालक होकर, मूलशक्ति प्रसूत डिंब में स्थापित था। डिंब के दो भागों में विभक्त होने पर भूखा-प्यासा वह बालक रोने लगा। कालांतर में पूर्व संस्कार के बल से वह परम पुरुष श्रीकृष्ण के ध्यान में मग्न होकर हंसने लगा। श्रीकृष्ण उस बालक को आशीर्वाद देकर त्रैलोक्य चले गये। कृष्ण के आशीर्वाद से वह ज्ञानयुक्त हुआ। उसने विराट रूप धारण किया, उसी के नाभि-कमल से ब्रह्मा ने जन्म लिया तथा सृष्टि की रचना की। सृष्टि के संहार के लिए ब्रह्मा के ललाट से एकादश रुद्र उत्पन्न हुए। उस बालक के क्षुद्रांश से ही विष्णु ने उत्पन्न होकर सृष्टि का पालन किया। श्रीकृष्ण को चतुर्भुज नारायण से भिन्न माना गया है। कृष्ण ही ब्रह्मा, विष्णु, महेश के कारणभूत हैं। राधा सर्वशक्तिमति देवी हैं।

दे० भा०, ८।३

दुर्वासा कृष्ण की परीक्षा लेने गये। पर्याप्त आतिथ्य पाकर उन्होंने अपने रथ को कृष्ण तथा उनकी पत्नी रुक्मिणी से खिंचवाने की इच्छा प्रकट की। कृष्ण और रुक्मिणी के सहर्ष रथ खींचने से प्रसन्न होकर दुर्वासा ने कृष्ण को 'पायस' दी और कहा कि वे अपने बदन पर लगा लें। जहां-जहां यह लगेगी, वहां किसी अस्त्र-शस्त्र का प्रहार नहीं लग पायेगा। कृष्ण ने वैसा ही किया।

शि० पु०, ४४।७।२६

कृष्णासुर एक बार कृष्णासुर अंशुमती नदी के कछारों में दस हजार सैनिकों के साथ छिप गया था। इंद्र को मालूम पड़ा तो देवसेना सहित वे युद्ध करने गये। वृहस्पति की सहायता से इंद्र ने ससैन्य कृष्णासुर का संहार कर दिया।

ऋ० ८।९६।१३-१५

आसुरी प्रजा देवों के विरुद्ध आचरण कर रही थी। इंद्र ने बृहस्पति की सहायता से उनपर विजय प्राप्त की। असुर कृष्ण वर्ण के होते हैं, अत: वे कृष्णासुर कहलाये।

ऐ० ब्रा०, ६।३६
गो० ब्रा०, २।६।१६

केकयराजा केकय राजा वन में घोर तपस्या कर रहे थे। उन्हें एक राक्षस ने पकड़ लिया। केकयराजा ने उस

राक्षस से कहा—"मेरे राज्य में सब वर्णों के लोग अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं तथा कोई अन्याय अथवा व्यभिचार नहीं होता, फिर तुमने मुझमें कैसे प्रवेश कर लिया ?" राक्षस ने कहा—"ठीक है, तुम जैसा न्यायशील सुकर्मी राजा मेरी पकड़ के योग्य नहीं है।" राक्षस उन्हें छोड़कर चला गया।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय ७

केदारेश्वर स्वायंभुव मनु की कन्या आकूती का विवाह रुचि मुनि से हुआ। विष्णु ने नर-नारायण रूपों में उससे जन्म लिया। वे दोनों केदार पर्वत पर तप करने लगे। शिव पूर्णांश से ज्योतिर्लिंग होकर वहां स्थापित हुए तथा केदारेश्वर कहलाये। नारायण ने उनकी पूजा की। वह स्थान बद्रीवन भी कहलाया।

शि० पु०, ८।२७

केशिध्वज धर्मध्वज के दो पौत्र थे—केशिध्वज (कृतध्वज का पुत्र) तथा शांडिक्य जनक (अमितध्वज का पुत्र)। शांडिक्य कर्ममार्ग में प्रवीण था तथा केशिध्वज अध्यात्म विद्या में। दोनों में प्रतिस्पर्धा रहती थी। केशिध्वज ने शांडिक्य को पराजित करके राज्यच्युत कर दिया। वह वन में चला गया। केशिध्वज ने अनेक यज्ञों का अनुष्ठान किया। एक यज्ञ में उसकी धर्मधेनु (हवि के लिए दूध देने वाली गौ) को वन में सिंह ने मार डाला। उसके लिए क्या प्रायश्चित्त है—वह नहीं जानता था। ब्राह्मणों ने कहा कि शांडिक्य ही इस तथ्य को जानता है। वह शांडिक्य के पास गया। उसके (शांडिक्य) मंत्रियों ने उसे मारकर अपना राज्य प्राप्त करने की सलाह दी किंतु वह बोला कि वह लौकिक फल की अपेक्षा अलौकिक फल का इच्छुक है अतः उसने प्रायश्चित्त का कर्मकांड भाई को समझा दिया। केशिध्वज निर्विघ्न यज्ञ समाप्त करके गुरु-दक्षिणा देने की इच्छा से शांडिक्य के पास पहुंचा। उसने गुरु-दक्षिणास्वरूप अध्यात्म ज्ञान मांगा। केशिध्वज ने उसे ब्रह्मयोग-निर्णय से परिचित करवा दिया।

वि० पु०, ६।६ ७।

केशिनी केशिनी नामक सुंदरी स्वयंवर में श्रेष्ठ पति का वरण करना चाहती थी। उसके सम्मुख प्रह्लादपुत्र (दैत्यकुमार) विरोचन तथा सुधन्वा (ब्राह्मण पुत्र) दो पात्र थे। दोनों ही अपने को एक-दूसरे से अधिक श्रेयस्कर बताते थे। दोनों ने प्राण की बाजी लगाकर प्रस्तुत समस्या का समाधान करवाना चाहा। वे विरोचन के पिता प्रह्लाद के पास गये। प्रह्लाद ने व्यवस्था दी कि ब्राह्मण होने के कारण सुधन्वा विरोचन से तथा उसके पिता (अंगिरा) मुझसे अधिक श्रेष्ठ हैं। ऐसी विषम स्थिति में भी प्रह्लाद ने झूठ नहीं बोला। इस तथ्य तथा अपनी विजय से प्रसन्न हुए सुधन्वा से प्रह्लाद ने अपने प्रिय पुत्र के प्राण मांगे। सुधन्वा ने कहा—"ठीक है किंतु विरोचन को केशिनी के सम्मुख मेरे पांव धोने पड़ेंगे।"

म० भा०, उद्यो पर्व, अध्याय ३५, श्लोक ६ से ३८ तक

केशी कंस ने कृष्ण का हनन करने के लिए केशी को भेजा। वह घोड़े का रूप धरकर वहां पहुंचा। कृष्ण ने उसके पीछे के दोनों पैर पकड़कर उसे घुमाकर आकाश में फेंक दिया। केशी नीचे गिरकर पुनः सचेत हो गया। कृष्ण ने उसके मुंह में हाथ डाला तो उसके दांत उखड़ गये। तदनंतर कृष्ण का हाथ इतना बढ़ता गया कि उसका दम घुट गया और वह मर गया।

श्रीमद् भा०, १०।३७।
हरि० व० पु०, विष्णुपर्व।२४।
ब्र० पु०, १९०।-, वि० प०, ५।१६।-

कैकसी कैकसी रावण की मां का नाम था। लंका में सेना सहित राम के आगमन का समाचार जानकर वृद्धा कैकसी ने रावण को समझाने का पर्याप्त प्रयत्न किया कि वह सीता-हरण के कारण राम जैसे सशक्त व्यक्ति को शत्रु बनाकर अपनी मृत्यु को आमंत्रित कर रहा है, पर रावण नहीं माना।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ३४, श्लोक २०-२५

कैकेयी पुरातन काल की बात है, एक बार देवासुर संग्राम में इंद्र की सहायता के लिए दशरथ और कैकेयी गये। वैजयंत नामक नगर में संबर नाम से विख्यात, अनेक मायाओं का ज्ञाता तिमिध्वज रहता था। उसने इंद्र को युद्ध के लिए चुनौती दी थी। रात को सोये हुए घायल सैनिकों को बिछौनों से खींचकर दैत्य लोग मार डालते थे। भयंकर युद्ध करते हुए दशरथ भी घायल होकर अचेत हो गये। राजा के अचेत होने पर कैकेयी उन्हें रणक्षेत्र से बाहर ले आयी थी, अतः प्रसन्न होकर दशरथ ने दो वरदान देने का वादा किया था। राम के राज्याभिषेक के विषय में सुनकर, मंथरा की प्रेरणा से कैकेयी ने एक वर से भरत का राज्याभिषेक और दूसरे से राम के लिए १४ वर्ष तक वनवास मांगा।

राम को बुलाकर कैकेयी ने अपने दो वर मांगने की बात बतलायी। राम सहर्ष वनगमन की तैयारी में लग गये।

बा० रा०, अयोध्याकांड, सर्ग ६,
श्लोक ११-६६, सर्ग १०, ११, १२, १८, १६

उन्होंने अपना समस्त धन ब्राह्मण और निर्धन लोगों में बांट दिया तथा वनगमन के लिए उद्यत हुए। दशरथ ने उन्हें विदा करते हुए कहा कि मेरा समस्त कोष तथा सेना राम के साथ वन जायेगी। इसपर क्रुद्ध होकर कैकेयी ने कहा कि धनविहीन राज्य भरत नहीं लेंगे, अत: दशरथ को मन मारकर चुप रहना पड़ा।

बा० रा०, अयोध्या कांड, सर्ग १६-३६ तक,

अयोध्या की प्रजा राम को छोड़ने बहुत दूर तक गयी। सबसे पहला पड़ाव तमसा नदी के तट पर पड़ा। वहां जब सब लोग सो गए तब राम ने उन्हें सोता छोड़कर, सुमंत के रथ में सीता और लक्ष्मण समेत प्रस्थान किया।

बा० रा०, अयोध्याकांड,
सर्ग ४६-४८

कैकेयी दशरथ की पत्नी थी। उसके दो पुत्र हुए—भरत तथा शत्रुघ्न। अपने विवाह के समय स्वयंवर के शेष राजाओं से दशरथ का संग्राम हुआ था, जिसमें कैकेयी ने सारथी का कार्य किया था। अत: दशरथ ने उसे वर देने का निश्चय किया था। दशरथ राम को राज्य सौंपकर प्रव्रज्या लेना चाहते थे। भरत को भी विरक्ति का उद्बोधन हुआ, उस समय दशरथ से कैकेयी ने भरत के लिए राज्य मांगा। कैकेयी दुश्चिंता में थी कि पति भी जा रहे हैं और पुत्र भी प्रव्रज्या लेना चाहता है। फलत: राम-लक्ष्मण को बुलाकर दशरथ ने अपने पूर्वप्रदत्त वर के अनुसार भरत का राज्याभिषेक करने की सूचना दे दी। भरत को भी तैयार किया कि वह राज्य ग्रहण करे। राम तथा लक्ष्मण सीता सहित परिजनों से आज्ञा लेकर प्रवास पर चले गये।

पउ० च०, ३१-३२।-

कैटभ मधु और कैटभ नामक दो असुरों की उत्पत्ति विष्णु के कानों की मैल से हुई थी। ब्रह्मा ने पहले मिट्टी से उन दोनों के आकार-प्रकार का निर्माण किया था, फिर ब्रह्मा की प्रेरणा से वायु ने उनकी आकृति में प्रवेश किया। ब्रह्मा ने उनपर हाथ फेरा तो एक कोमल था, उसका नाम मधु रखा तथा दूसरा कठोर था, अत: उसका नाम कैटभ रखा। वे दोनों जल-प्रलय के समय पानी में विचरते रहते थे। उन्हें युद्ध करने की आकांक्षा रहती थी। एक बार वे द्युलोक में पहुंचे। विष्णु तथा उनकी नाभि से निकले कमल में ब्रह्मा सो रहे थे। उन दोनों असुरों ने अपने बल से उन्मत्त हो वहां विचरना प्रारंभ किया। विष्णु ने उन दोनों के बलिष्ठ रूप को देखकर उन्हें वर देने की इच्छा की—पर अभिमानी मधु-कैटभ स्वयं विष्णु को वर देना चाहते थे। विष्णु ने उनसे वर मांगा कि वे दोनों विष्णु के हाथों मारे जायें, तदुपरांत उन्होंने विष्णु से वर मांगा कि उन दोनों का वध खुले आकाश में हो तथा वे दोनों विष्णु के पुत्र हों। विष्णु ने वर दे दिया तदुपरांत पद्मनाभ से उन दोनों का युद्ध हुआ। उन्होंने नारायण से प्रार्थना की कि उनकी मृत्यु जल में न हो। नारायण ने उन दोनों को अपनी जंघा पर मसलकर मार डाला। दोनों लाशें जल में मिलकर एक हो गयीं। उन दोनों दैत्यों के मेद से आच्छादित होकर वहां का जल अदृश्य हो गया, जिससे नाना प्रकार के जीवों का जन्म हुआ। वसुधा उन दोनों के मेद से आपूरित होने के कारण मेदिनी कहलायी।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय २०३, श्लोक १० से ३५ तक
म० भा०, सभापर्व, अध्याय ३८।-
म० भा०, भीष्मपर्व, अध्याय ६७, श्लोक १४-१५
हरि० वं० पु०, भविष्यपर्व १३।२५,२६

मार्कंडेय पुराण की कथा में अंतर मात्र इतना है कि विष्णु ने अपनी जंघा पर मधु-कैटभ के सिर रखकर उन्हें चक्र से मार डाला। उन दोनों को ब्रह्मा की प्रेरणा से योग निद्रा-रूपी महामाया ने मोहित कर लिया था। महामाया ने ही विष्णु को जगाया तथा उन्हें इतनी शक्ति प्रदान की कि वे उन दोनों को मार पाए!

मा० पु०, ७८।-

कैलास पर्वत शिव अपने गणो तथा देवी-देवताओं सहित निधिनाथ (कुबेर) के पास अलकापुरी गये। उनका आतिथ्य ग्रहण करके शिव ने विश्वकर्मा को आज्ञा दी कि वह कैलास पर्वत पर उनके तथा गणों के लिए मंदिर बनवाये। मंदिर बनने के उपरांत वे वहां चले गये। सब देवी-देवताओं को उन्होंने अपना-अपना कार्य संपन्न करने के लिए विदा किया।

शि० पु० १। पूर्वार्द्ध २०-२२।-

कोटवी देवी वाणासुर के पक्ष से कार्तिकेय ने बलराम, कृष्ण तथा प्रद्युम्न पर आक्रमण किया। कृष्ण ने अपना

चक्र ग्रहण किया। यह देखकर महादेवी (पार्वती) की आज्ञा से महाभागा कोटवी (जो कि पार्वती का आठवां भाग थी तथा जिसने सुंदरी नारी का शरीर ग्रहण कर रखा था) दोनों के मध्य नग्न रूप में जा खड़ी हुई। वह आकाश में निराधार लटकती-सी जान पड़ रही थी। कृष्ण ने अपने नेत्र मूंद लिए। वह कार्तिकेय को युद्धस्थल से दूर ले गयी।

हरि० व० पु०, विष्णुपर्व ।१२६।

कौंडिन्य महामाया के गर्भ धारण के दिन ब्राह्मणों ने उसका स्वप्न सुनकर सगुन विचारा। आठ में से सात ब्राह्मणों ने दो अंगुलियां उठाकर कहा—"शिशु या तो चक्रवर्ती राजा होगा अन्यथा परिव्राजक।" आठवें तरुण ब्राह्मण कौंडिन्य ने एक अंगुली उठाकर कहा—"बालक निश्चय ही विवृत कपाट बुद्धि होगा। आओ, हम लोग भी प्रव्रज्या ग्रहण करें।" शेष सात में से चार लोग प्रव्रज्या लेने के लिए तैयार हो गये। वे पांचों ब्राह्मण आगे चलकर पंचवर्गीय स्थविरों के नाम से प्रसिद्ध हुए।

'बुद्ध' होने के उपरांत भगवान ने ब्रह्मा की प्रेरणा से धर्मोपदेश आरंभ किये। उन्होंने ऋषिपत्तन जाकर पंचवर्गीय स्थविरों को धर्मोपदेश दिया। पहले तो वे पांचों उनके प्रति श्रद्धाभाव रहित थे। भगवान का उपदेश सुनकर उन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। अत: कौंडिन्य का नाम 'अज्ञात कौंडिन्य' पड़ गया।

बु० च० ११। बाल्य ।५।-

कौशिक एक बार कौशिक नामक प्रसिद्ध ब्राह्मण एक वृक्ष के नीचे बैठा वेदपाठ कर रहा था। ऊपर से एक बगुली की बीट उसपर पड़ गयी। उसके क्रोध से बगुली भस्म हो गयी। वह ब्राह्मण एक दिन भिक्षा-याचना कर रहा था। किसी नारी के रोकने पर वह द्वार पर खड़ा भिक्षा की प्रतीक्षा करने लगा। उसी समय नारी ने अपने थके हुए पति को आये देखा तो वह सेवारत हो गयी। पति को भोजन करवाकर उसने ब्राह्मण को भिक्षा दी। ब्राह्मण विलंब के लिए क्रुद्ध था पर उस नारी ने कहा कि ब्राह्मण-सेवा की अपेक्षा पातिव्रत धर्म अधिक महत्त्वपूर्ण है। उसने कौशिक को मिथिला में रहनेवाले एक धर्मव्याध के पास भेजा। धर्मव्याध ने कौशिक को सत्य, अहिंसा, निष्ठा, गुण, ब्राह्मी विद्या आदि विषयक अनेक उपदेश दिये। उसने बताया कि पूर्वजन्म में वह ब्राह्मण था तथा अनजाने उसके हाथों एक ऋषि का वध हो गया था। उन्होंने एक जन्म व्याध-रूप में व्यतीत करके पुन: ब्राह्मण बनकर स्वर्ग पाने का शाप दिया था। अत: वह उस जीवन में व्याध बना हुआ था। धर्मव्याध के आदेश से कौशिक अपने अंधे माता-पिता की सेवा करने घर चला गया—जिनकी उपेक्षा करके वह विद्यार्जन के लिए निकला था।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय २०६ से ३१६ तक

कौशिक नामक ब्राह्मण पूर्वजन्म के पापों के कारण कोढ़ी हो गया था। उसकी पत्नी उसकी अथक सेवा करती थी। एक दिन उस ब्राह्मण ने अपनी पत्नी से कहा कि वह उसे उस वेश्या के घर ले चले जिसे उसने सड़क पर जाते देखा था। पत्नी रुपया लेकर उसे अपने कंधे पर चढ़ाकर निर्विकार भाव से वेश्या के घर की ओर चली। कौशिक स्वयं चलने में असमर्थ था। मार्ग में एक सूली स्थित थी। उस सूली पर निरपराधी मांडव्य नामक ब्राह्मण को, चोर समझकर चढ़ा दिया गया था। कौशिक का पांव लगने से सूली हिल गयी। मांडव्य को कष्ट का अनुभव हुआ। उसने शाप दिया कि सूर्य निकलते ही कौशिक नष्ट हो जायेगा। कौशिक की पत्नी अत्यंत पतिव्रता थी। उसने कहा—सूर्य निकलेगा ही नहीं। सूर्योदय का क्रम लुप्त हो गया। दस दिन तक लगातार अंधकार बना रहा। देवताओं ने अनसूया से पतिव्रता ब्राह्मणी को प्रसन्न करने के लिए कहा। अनसूया ब्राह्मणी के घर गयीं। ब्राह्मणी को उसके पति के चिरायु होने का आश्वासन देकर उन्होंने सूर्य का आह्वान किया। सूर्योदय के साथ ही मांडव्य ऋषि के शापवश ब्राह्मण जड़ हो गया। अनसूया ने अपने पातिव्रत धर्म को स्मरण कर उसके नीरोग जीवन की कामना की। ब्राह्मण सुंदर, स्वस्थ रूप में जीवित हो उठा। देवताओं ने प्रसन्न होकर अनसूया से वर मांगने को कहा। अनसूया ने ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश को जन्म दे पाने का वर मांगा।

भा० पु०, १६।१-६१

क्रौंच-वध एक बार महर्षि वाल्मीकि अपने शिष्य भारद्वाज के साथ तमसा नदी के किनारे पहुंचे। वहां एक स्वच्छ स्थान पर शिष्य को कलश रखने की आज्ञा देकर, हाथ में वल्कल-वस्त्र पकड़कर वे टहल रहे थे। समीप ही एक क्रौंच पक्षियों का जोड़ा विहार कर रहा था। अचानक एक निषाद के बाण से नर क्रौंच की हत्या हो गयी और 'मादा क्रौंच' विलाप करने लगी। उन्हें देखकर वाल्मीकि ने 'अनुष्टुप' छंद में एक श्लोक की रचना की—मा

निषाद प्रतिष्ठाम त्वमगमशास्वतीसमा यत्क्रौंच मिथुनादेक मवधीत काममोहितम् ।।--ब्रह्मा ने उनके आश्रम में पधार-कर उन्हें इसी छंद में रामचंद्र का चरित्र-गान करने की प्रेरणा प्रदान की।

बा० रा०, बा० का०, सर्ग २, ३-१४, २३-४३,

क्रौष्टुकि क्रौष्टुकि ने मार्कंडेय से सृष्टि के प्रारंभ के विषय में प्रश्न करके तद्विषयक विस्तृत व्याख्या उनसे सुनी। सृष्टि के उद्भव से लेकर प्रलय तक का समस्त ज्ञान प्राप्त किया।

मा० पु, ०४७।-

□

क्ष

क्षुप खनित्र के पुत्र क्षुप का यश दूर-दूर तक फैला हुआ था। उसकी प्रजा के लोग उसकी समानता ब्रह्मा के पुत्र क्षुप से किया करते थे। इससे प्रेरणा पाकर वह ब्रह्मा-पुत्र क्षुप की भांति ही गौ तथा ब्राह्मणों को दान देने में लग गया। कृषि क्षीण होने अथवा उसका अभाव होने पर वह तीन-तीन यज्ञ किया करता था। उसकी पत्नी का नाम प्रमथा था।

मा० पु०, ११६।१-१२।

क्षेमधूर्ति कर्ण के सेनापतित्व ग्रहण करने के उपरांत युद्ध-क्षेत्र में भीम तथा कौरवपक्षीय क्षेमधूर्ति की मुठ-भेड़ हो गयी। क्षेमधूर्ति कुलूत देश का राजा था। वे दोनों वीर हाथी पर बैठे हुए थे। भीम से युद्ध होने पर पहले तो क्षेमधूर्ति मैदान से भागने लगा किंतु भीम उसका पीछा करने लगे तो वह फिर से युद्ध में सक्रिय हो उठा। उसने भीम के हाथी को घायल कर दिया। भीम ने अपने हाथी से कूद उसके हाथी को मार डाला तथा अपनी गदा के प्रहार से क्षेमधूर्ति को भी मार डाला।

म० भा०, कर्णपर्व, अध्याय १२, श्लोक २५ से ४५

□

ख

खड्ग पहले केवल सागर था। न पृथ्वी थी, न आकाश, न नक्षत्र। सब ओर शांत निश्चल एकार्णव। न उत्ताल तरंगें थीं, न जलचर। जल के अतिरिक्त अंधकार था। तदुपरांत ब्रह्मा ने पृथ्वी, नक्षत्र, वनस्पति, मनुष्य, देवता, दानव, इत्यादि सबकी सृष्टि की। दानवों के उत्पात से दुखी होकर कई सहस्र वर्षों के उपरांत ब्रह्मा ने एक वृहद् यज्ञ का आयोजन किया। समस्त देवताओं ने उसमें भाग लिया। समिधाओं में प्रज्वलित अग्निदेव से एक नील वर्ण के भयंकर भूत का प्रादुर्भाव हुआ। उसका नाम 'असि' था। तत्पश्चात् वह रूप त्यागकर तीन अंगुल के तीखे खड्ग के रूप में प्रकाशित होने लगा। उसके उद्भव के साथ ही पृथ्वी की शांति समाप्त हो गयी। समुद्र का जल चंचल लहरों से युक्त हो गया, समस्त लोक डावांडोल हो उठे। ब्रह्मा ने वह तलवार लोक-रक्षा के निमित्त शिव को प्रदान की। शिव ने वह ग्रहण करके एक दूसरा चतुर्भुज रूप धारण किया, जो कि विकराल था, तीन नेत्रों से युक्त था। रुद्र (शिव) ने दैत्यों से युद्ध कर उन्हें मार भगाया। तदुपरांत रुद्र का रूप छोड़ पुनः शिव-रूप में प्रकट हुए। उन्होंने वह रक्तरंजित खड्ग ससम्मान विष्णु को समर्पित कर दी। विष्णु से लोकपालों, मनु, मनुसंतान के पास होती हुई खड्ग महाभारत के वीर योद्धाओं तक पहुंच गयी।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय १६६,

खनित्र वत्सप्री के पौत्र का नाम प्रजाति था। प्रजाति के पांच पुत्रों में ज्येष्ठ खनित्र था। खनित्र न्यायी तथा लोकप्रिय था। उसने राज्य संभाला तो चारों दिशाओं में चारों भाइयों को अभिषिक्त कर दिया। पांचों भाई प्रेम से कार्यरत थे। शौरि नामक भाई के मंत्री विश्ववेदी ने शौरि को बहुत समझाया कि उसे राज्य प्राप्त करके अपने पुत्र-पौत्रों के लिए राज्य की परंपरा निर्दिष्ट करनी चाहिए। इसी प्रकार शेष तीन भाइयों (उदावसु, सुनय, महारथ) के मंत्रियों तथा पुरोहितों ने भी अपने-अपने स्वामी के लिए राज्य-प्राप्ति की मंत्रणा आरंभ कर दी। चारों पुरोहितों ने खनित्र के विरुद्ध भयंकर पुरश्चरण किया। फलतः चार कृत्याएं प्रकट हुईं। राजा खनित्र के पुण्यों से वे चारों कृत्याएं पराजित हो गयीं तो उन्होंने अपनी-अपनी उत्पत्ति के हेतु ब्राह्मण को ही खा लिया। मंत्री विश्ववेदी भी जलकर भस्म हो गया। राजा खनित्र ने सुना तो चिंतित होकर उसने वसिष्ठ से इसका कारण पूछा। महर्षि वसिष्ठ ने समस्त दुर्घटनाओं के विषय में बताया तो राजा को अपने राज्य, धन और कार्यों से अत्यधिक विरक्ति हुई, क्योंकि वे सब चार ब्राह्मणों तथा एक मंत्री की मृत्यु का कारण थे। राजा ने समस्त राज्य अपने पुत्र, (क्षुप) को सौंप दिया तथा स्वयं तीनों पत्नियों सहित वन चला गया। तपस्या से शरीर को क्षीण कर उसने पुण्यलोक प्राप्त किये।

भा० पु०, ११५।-

खनिनेत्र खनिनेत्र धार्मिक तथा दानी था। उसने तिहत्तर हजार सात सौ सड़सठ यज्ञ किये थे; किंतु वह संतानहीन था। पुत्र-कामना से पितृयज्ञ करने के लिए मांस की आवश्यकता थी। वह अकेला ही शिकार खेलने गया। जंगल में एक मृग ने उपस्थित होकर उसे अपना मांस समर्पित करने की इच्छा प्रकट की। राजा ने

आश्चर्यचकित होकर उससे पूछा कि वह देहत्याग क्यों करना चाहता है, मृग ने कहा कि कोई संतान न होने के कारण उसका जीवन व्यर्थ था। तभी एक दूसरा मृग अपना समर्पण करने के लिए वहां पहुंचा। वह अपरिमित संतान के सुख-दुःख की चिंता से इतना दुखी हो गया था कि उसे अपना जीवन भारस्वरूप प्रतीत होता था। राजा ने निश्चय किया कि वह किसी को भी नहीं मारेगा। उसने पितृयज्ञ न करके पुत्र-प्राप्ति की कामना से इंद्र की स्तुति की। इंद्र ने प्रसन्न होकर उसे पुत्र प्रदान किया जिसका नाम बलाश्व रखा गया।

मा० पु०, ११७।११८।१-८।-

खरदूषण मेघप्रभ के पुत्र खरदूषण ने रावण की अनुपस्थिति में उसकी बहन चंद्रनखा का अपहरण कर लिया। उस समय रावण अपनी कन्या अवली के विवाह में व्यस्त था। लौटने पर समस्त समाचार जानकर रावण खरदूषण को मारने के लिए उद्यत हुआ किंतु मंदोदरी ने समझा-बुझाकर उसे शांत कर दिया।

पउ० च०, ९।१०-१९

खांडववन-दाह श्वैतकि के यज्ञ में निरंतर बारह वर्षों तक घृतपान करने के उपरांत अग्नि देवता को तृप्ति के साथ-साथ अपच हो गया। उन्हें किसी का हविष्य ग्रहण करने की इच्छा नहीं रही। स्वास्थ्य की कामना से अग्निदेव ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने कहा कि यदि वे खांडववन को जला देंगे तो वहां रहनेवाले विभिन्न जंतुओं से तृप्त होने पर उनकी अरुचि भी समाप्त हो जायेगी। अग्नि ने कई बार प्रयत्न किया किंतु इंद्र ने तक्षक नाग तथा जानवरों की रक्षा के हेतु अग्निदेव को खांडववन नहीं जलाने दिया। अग्नि पुनः ब्रह्मा के पास पहुंचे। ब्रह्मा से कहा कि नर और नारायण रूप में अर्जुन तथा कृष्ण खांडववन के निकट बैठे हैं, उनसे प्रार्थना करें तो अग्नि अपने मनोरथ में निश्चित सफल होंगे। एक बार अर्जुन तथा कृष्ण अपनी रानियों के साथ जल-विहार के लिए गये। अग्निदेव ने उन दोनों को अकेला पा ब्राह्मण के वेश में जाकर उनसे यथेच्छा भोजन की कामना की। उनकी स्वीकृति प्राप्त कर अग्निदेव ने अपना परिचय दिया तथा भोजन के रूप में खांडववन की याचना की। अर्जुन के यह कहने पर कि उसके पास वेग वहन करनेवाला कोई धनुष, अमितवाणों से युक्त तरकश तथा वेगवान रथ नहीं है। अग्निदेव ने वरुणदेव का आवाहन करके गांडीव धनुष, अक्षय तरकश, दिव्य घोड़ों से जुता हुआ एक रथ (जिसपर कपिध्वज लगी थी) लेकर अर्जुन को समर्पित किया। अग्नि ने कृष्ण को एक चक्र समर्पित किया।

गांडीव धनुष अलौकिक था। वह वरुण से अग्नि को और अग्नि से अर्जुन को प्राप्त हुआ था। वह देव, दानव तथा गंधर्वों से अनंत वर्षों तक पूजित रहा था। वह किसी शस्त्र से नष्ट नहीं हो सकता था तथा अन्य लाख धनुषों की समता कर सकता था। उसमें धारण करनेवाले के राष्ट्र को बढ़ाने की शक्ति विद्यमान थी। उसके साथ ही अग्निदेव ने एक अक्षय तरकश भी अर्जुन को प्रदान किया था जिसके वाण कभी समाप्त नहीं हो सकते थे। गति को तीव्रता प्रदान करने के लिए जो रथ अर्जुन को मिला, उसमें अलौकिक घोड़े जुते हुए थे तथा उसके शिखर पर एक दिव्य वानर बैठा था। उस ध्वज में अन्य जानवर भी विद्यमान रहते थे जिनके गर्जन से दिल दहल जाता था। पावक ने कृष्ण को एक दिव्य चक्र प्रदान किया, जिसका मध्य भाग वज्र के समान था। वह मानवीय तथा अमानवीय प्राणियों को नष्ट कर पुनः कृष्ण के पास लौट आता था। तदनंतर अग्निदेव ने खांडववन को सब ओर से प्रज्वलित कर दिया। जो भी प्राणी बाहर भागने की चेष्टा करता, अर्जुन तथा कृष्ण उसका पीछा करते। इस प्रकार दहित खांडववन के प्राणी व्याकुल हो उठे। उनकी सहायता के लिए इंद्र समस्त देवताओं के साथ घटनास्थल पर पहुंचे किंतु उन सबकी भी अर्जुन तथा कृष्ण के सम्मुख एक न चली। अंततोगत्वा वे सब मैदान से भाग खड़े हुए। तभी इंद्र के प्रति एक आकाशवाणी हुई—"तुम्हारा मित्र तक्षक नाग कुरुक्षेत्र गया हुआ है, अतः खांडववन दाह से बच गया है। अर्जुन तथा कृष्ण नर-नारायण हैं अतः उनसे कोई देवता जीत नहीं पायेगा।" यह सुनकर इंद्र भी अपने लोक की ओर बढ़े। खांडववन-दाह से अश्वसेन, मायासुर तथा चार शार्ङ्गक नामक पक्षी बच गये थे। इस वन के दाह से अग्निदेव तृप्त हो गये तथा उनका रोग भी नष्ट हो गया। उसी समय इंद्र मरुद्गण आदि देवताओं के साथ प्रकट हुए तथा देवताओं के लिए भी जो कार्य कठिन है, उसे करनेवाले अर्जुन तथा कृष्ण को उन्होंने वर मांगने के

लिए कहा। अर्जुन ने सब प्रकार के दिव्यास्त्रों की कामना प्रकट की। इंद्र ने कहा कि शिव को प्रसन्न कर लेने पर ही दिव्यास्त्र प्राप्त होंगे। कृष्ण ने इंद्र से वर प्राप्त किया कि अर्जुन से उनका (कृष्ण का) प्रेम नित्य प्रति बढ़ता जाये।

म० भा० आदिपर्व, अध्याय २२१ से २२७ तक,
अ० २३३, श्लोक ७ से १४ तक

□

ग

गंगा पार्वती के विवाह के समय उसके पांव के अंगूठे को देखने मात्र से ब्रह्मा काम-विमोहित हो उठा। लज्जावश उसने अपने पतित वीर्य को चूर्ण कर दिया जिससे बाल-खिल्य उत्पन्न हुए। देवताओं ने देखकर हाहाकार मचाया। ब्रह्मा बाहर चले गये। शिव ने नंदी को भेज-कर उन्हें बुलवाया। शिव ने कहा—"जल तथा पृथ्वी सबके पापों का नाश करते हैं।" शिव ने दोनों का सार तत्त्व जल के रूप में निकालकर पृथ्वी-रूपी कमंडलु में रखा। उसमें तीनों लोकों को पवित्र करने की शक्ति का आवाहन करके ब्रह्मा को थमा दिया। विष्णु ने जब 'वामन' अवतार लिया और 'पग' से धरती नापने लगे तब उनका दूसरा चरण ब्रह्मा के लोक तक पहुंचा। उनकी अर्चना के निमित्त ब्रह्मा ने शिव का दिया पावन-जल युक्त कमंडलु वामन के चरण पर अर्पित कर दिया। वह जल विष्णु के चरण का प्राक्षालन करके मेरु पर्वत पर गिरा। वह चार भागों में विभक्त हो गया तथा चारों दिशाओं में पृथ्वी पर गिर पड़ा। दक्षिण में गिरनेवाली धारा को शिव ने अपनी जटाओं में धारण किया। पश्चिम में गिरा जल ब्रह्मा के कमंडलु में आ गया, उत्तर दिशा में गिरनेवाली जलधारा विष्णु ने स्वयं ग्रहण की। पूर्व से गिरनेवाली धारा को ऋषिदेव पितर और लोकपालों आदि ने ले लिया। शिव ने ब्रह्मा के दोष के निवारण के लिए गंगा को जुटाया था किंतु स्वयं उस-पर मोहित हो गये। शिव उसे निरंतर अपनी जटाओं में छिपाकर रखते थे। पार्वती अत्यंत क्षुब्ध थी तथा उसे सौतवत् मानती थी। पार्वती ने अपने दोनों पुत्रों तथा एक कन्या (गणेश, स्कंद तथा जया) को बुलाकर इस विषय में बताया। गणेश ने एक उपाय सोचा। उन दिनों समस्त भूमंडल पर अकाल का प्रकोप था। एक-मात्र गौतम ऋषि के आश्रम में खाद्य पदार्थ थे क्योंकि उस आश्रम की स्थापना उस पहाड़ पर की गयी थी जहां पहले शिव तपस्या कर चुके थे। अनेक ब्राह्मण उनकी शरण में पहुंचे हुए थे। गणेश ने स्वयं ब्राह्मणवेश धारण किया तथा जया को गाय का रूप धारण करने को कहा, साथ ही उसे आदेश दिया कि वह आश्रम में जाकर गेहूं के पौधे खाना आरंभ करे, रोकने पर बेहोश होकर गिर जाये। वहां पहुंचकर उन दोनों ने वैसा ही किया। मुनि ने तिनके से गाय को हटाने का प्रयास किया तो वह जड़वत् गिर गयी। ब्राह्मणों के साथ गणेश ने गौतम के पाप-कर्म की ओर संकेत कर तुरंत आश्रम छोड़ने की इच्छा प्रकट की। गोहत्या के पाप से दुखी गौतम ने पूछा कि पाप का निराकरण कैसे किया जाये। गणेश ने कहा—"शिव की जटाओं में गंगा का पुनीत जल है, तपस्या करके उन्हें प्रसन्न करो। गंगा को पर्वत पर लाओ और इस गऊ पर छिड़को। इस प्रकार पाप-शमन होने पर ही हम सब यहां रह सकेंगे।" गौतम तपस्यारत हो गये। उससे प्रसन्न होकर शिव अपनी जटाओं में समेटी हुई गंगा का एक अंश उसे प्रदान कर दिया। गौतम ने यह भी वर मांगा कि वह धरती पर सागर से मिलने से पूर्व अत्यंत पावन रहेगी तथा सबके पापों का नाश करनेवाली होगी। गौतम गंगा को लेकर ब्रह्म गिरि पहुंचे। वहां सबने गंगा की पूजा-अर्चना की। गंगा ने गौतम से पूछा—"मैं देवलोक जाऊं? कमंडलु में अथवा रसातल में?" गौतम ने कहा—"मैंने शिव से तीनों लोकों

के उपकार के लिए तुम्हें मांगा था। गंगा ने पंद्रह आकृतियां धारण कीं जिनमें से चार स्वर्गलोक, सात मृत्युलोक तथा चार रूपों में रसातल में प्रवेश किया। हर लोक की गंगा का रूप उस लोक में ही दृष्टिगत होता है, अन्यत्र नहीं।

ब्र० पु०, अ० ७२ से ७८ तक

गंगा का बचा हुआ दूसरा अंश भगीरथ को तप के फलस्वरूप अपने पितरों के उद्धार के निमित्त शिव से प्राप्त हुआ। गंगा ने पहले सगर के पुत्रों का त्राण किया फिर उसकी प्रार्थना से हिमालय पहुंचकर भारत में प्रवाहित होते हुए वह बंगसागर की ओर चली गयी।

ब्र० पु०, अध्याय ७६, ७७, १७५

(दे० सरस्वती) भगीरथ की तपस्या से प्रसन्न होकर कृष्ण ने उसे दर्शन दिये। उन्होंने गंगा को आज्ञा दी कि वह शीघ्र भारत में अवतीर्ण होकर सगर-पुत्रों का उद्धार करे। गंगा के पूछने पर उन्होंने कहा—"वहां मेरे अंश से बना लवणोदधि तुम्हारा पति होगा। भारती के शापवश तुम्हें पांच हजार वर्ष तक भारत में रहना पड़ेगा। भारत में पापियों का पाप तुम्हारे जल में घुल जायेगा किंतु भक्तों के स्पर्श से तुममें समाहित समस्त पाप नष्ट हो जायेंगे (त्रिपथगा : दे० राधा)।"

श्रीकृष्ण ने राधा की पूजा करके रास में उनकी स्थापना की। सरस्वती तथा समस्त देवता प्रसन्न होकर संगीत में खो गये। चैतन्य होने पर उन्होंने देखा कि राधा और कृष्ण उनके मध्य नहीं हैं। सब ओर जल ही जल है। सर्वात्म, सर्वव्यापी राधा-कृष्ण ने ही संसारवासियों के उद्धार के लिए जलमयी मूर्ति धारण की थी, वही गोलोक में स्थित गंगा है। एक बार गंगा श्रीकृष्ण के पार्श्व में बैठी उनके सौंदर्य-दर्शन में मग्न थी। राधा उसे देखकर रुष्ट हो गयी थी। लज्जावश उसने श्रीकृष्ण के चरणों में आश्रय लिया था (दे० राधा)। फलतः पशु, पक्षी, पौधे, मनुष्य अपने कष्ट की दुहाई देते हुए ब्रह्मा की शरण में पहुंचे। ब्रह्मा, विष्णु, महेश कृष्ण के पास गये। कृष्ण की प्रेरणा से उन्होंने राधा से गंगा के निमित्त अभयदान लिया। फिर श्रीकृष्ण के पांव के अंगूठे से गंगा निकली। उसका वेग थामने के लिए पहले ब्रह्मा ने उसे अपने कमंडलु में ग्रहण किया, फिर शिव ने अपनी जटाओं में, फिर वह पृथ्वी पर पहुंची। जब समस्त संसार जल से आपूरित हो गया तब ब्रह्मा उसे नारायण के पास बैकुंठधाम में ले गये जहां ब्रह्मा ने समस्त घटनाएं सुनाकर उसे नारायण को सौंप दिया। नारायण ने स्वयं गांधर्व-विधान द्वारा गंगा से पाणिग्रहण किया।

दे० भा०, ९।११-१४

गंगावतरण नारायण के ध्रुवधार नामक पद से गंगा की उत्पत्ति हुई। वहां से चलकर वह जल के आधारभूत चंद्रमंडल में प्रविष्ट हुई। अत्यंत पवित्र रूप में वह मेरु पर्वत पर गिरी फिर चार धाराओं में विभक्त होकर मेरु, मंदर, हिमालय, गंधमादन नामक बड़े-बड़े पर्वतों को विदीर्ण करती हुई आगे बढ़ी। वह मानसरोवर को अपने जल से आपूरित करके शैलराज के रमणीय शिखर पर पहुंची। गंगा के हिमालय पर पहुंचने पर शिव ने उसे अपने सिर पर धारण किया। राजा भगीरथ ने तपस्या द्वारा शिव को प्रसन्न करके गंगा की याचना की। शिव ने गंगा को छोड़ दिया। वह सात धाराओं में विभक्त होकर प्रवाहित हुई। गंगा की तीन धाराएं तो पूर्व की ओर बढ़ीं और एक धारा भगीरथ के पीछे-पीछे चल दी। स्थानांतर से उसका नामांतर होता गया। उपर्युक्त चार पर्वतों को विदीर्ण करके पूर्व की ओर जानेवाली धारा 'सीता' कहलायी। वह वरुणोदय सरोवर में गयी। मेरु के दक्षिण में जानेवाली धारा अलकनंदा के नाम से विख्यात है। मेरु के पश्चिम की ओर प्रवाहित धारा सुचक्षु तथा उत्तर दिशा की धारा भद्रसोमा नाम से पुकारी जाती है।

मा० पु०, ५३।-

गंधर्व केकय नरेश ने राम के पास संदेश भेजा कि सिंधु नदी के दोनों किनारों पर गंधर्वदेश सुशोभित है। वहां शैलूष नामक गंधर्व के तीन करोड़ पुत्र हैं। उस नगर को जीतकर अपने राज्य में मिला लीजिए। राम के आदेशानुसार भरत अपने दोनों पुत्रों को लेकर ससैन्य उस प्रदेश में पहुंचे। वहां के शासक को पराजित करके भरत ने राज्य के दो भाग कर अपने तक्ष तथा पुष्कल नामक दोनों पुत्रों को एक-एक राज्य सौंप दिया।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग १००-१०१

गज-ग्राह पूर्वकाल में हूहू नामक एक गंधर्व था। देवल के शाप से वह ग्राह बन गया। द्रविड़ देश के राजा का नाम इंद्रद्युम्न था। एक बार वह राजपाट छोड़कर तपस्या करने चला गया। वह तपस्यारत था, तभी वन के उसी खंड में अगस्त्य मुनि पहुंचे। राजा को अतिथि-

सत्कार छोड़कर तपस्या करते देख उन्होंने उसे जड़ बुद्धि गज बन जाने का शाप दिया। राजा भगवद्भक्त था, अत: गज बनकर भी उसके संस्कार नष्ट नहीं हुए। एक बार पानी में स्नान करते हुए उस गज का पांव ग्राह (हूहू) ने पकड़ लिया। गज ने भगवत् स्मरण किया। भगवान ने उसे ग्राह सहित पानी से बाहर खींच लिया। तदनंतर चक्र से ग्राह का मुंह फाड़कर गजेंद्र को मुक्त कर दिया। भगवान की कृपा से हूहू (ग्राह) शापमुक्त हो गया तथा गंधर्व-लोक चला गया। इंद्रद्युम्न भी शापमुक्त हो गया। श्रीहरि ने उसे अपना पार्षद बना लिया।

श्रीमद् भा०, अष्टम स्कंध, अध्याय १-४

गजासुर महिषासुर के पुत्र का नाम गजासुर था। अपने पिता के वध पर अत्यंत दुखी होकर उसने तप किया कि उसे कोई ऐसा व्यक्ति न मार सके जो स्वयं काम पर विजय न प्राप्त कर चुका हो। ब्रह्मा से ऐसा वर पाकर वह अनाचार करने लगा। उससे त्राण प्राप्त करने के लिए लोगों ने काशी में जाकर शिव से प्रार्थना की। शिव ने त्रिशूल से उसका वध कर दिया। त्रिशूल के पावन स्पर्श से वह पवित्र हो गया। शिव ने उसे वर मांगने को कहा। वह बोला—"आप नित्य मेरी चर्म धारण करें, अन्यथा त्रिशूल नित्य मेरा स्पर्श करे और मैं कृत्तिवासा के नाम से प्रसिद्ध होऊं।" शिव ने वर दिया कि उसका शरीर शिव का लिंग होकर कृत्तिवासेश्वर के नाम से प्रसिद्ध होगा, जिसके दर्शनमात्र से मोक्ष की प्राप्ति होगी।"

शि० पु०, पूर्वार्द्ध ५।४४।-

गणपति संतानहीन होने के कारण पार्वती का रोष देखकर शिव ने उसे एक वर्ष तक गणपति चौथ का व्रत रखने को कहा। चौथ के व्रत में चंद्रमा को अर्घ्य देते हैं। शिव ने इसका कारण यह बताया कि पूर्वकाल में गणपति फिसलकर गिर गये थे। चंद्रमा को अपने सौंदर्य पर गर्व था अत: उसने गणपति का परिहास किया। गणपति ने उसे कलंकित होने का शाप दिया था और फिर देवताओं सहित उसके अनुनय-विनय पर शुक्लपक्ष के चंद्रमा का दर्शन दूषित तथा कृष्णपक्ष का उचित मान लिया। मूलत: गणपति मान्य देवता हैं किंतु उनका जन्म दो प्रकार से वर्णित है :

(१) व्रत की समाप्ति के उपरांत पार्वती के साथ शिव ने संभोग किया। संभोग के अंतिम क्षणों में गणपति के ब्राह्मण का रूप धारण करके द्वार पर आने के कारण शिव का वीर्यपात् पलंग पर हो गया। दंपत्ति से सुखद आतिथ्य पाकर गणपति द्वार से अंतर्धान हो गये तथा जहां वीर्यपात हुआ था वहां बालक के रूप में प्रकट हुए। गिरिजा तथा शिव ने अत्यंत हर्ष के साथ उस बालक का पालन किया तथा देवताओं ने प्रकट बालक के दर्शन किये (दे० शनीचर)। शनी के दर्शन करते ही बालक का सिर गायब हो गया। गिरिजा रोने लगी। विष्णु ने हाथी का सिर लाकर दिया। गिरिजा ने उसे बालक की गर्दन के साथ जोड़ दिया तथा शिव ने उसे जीवन-दान दिया।

(२) गिरिजा ने अपनी सहेलियों की प्रेरणा से अपने शरीर के मैल से एक पुतला बनाकर उसे गणपति नाम देकर जीवन प्रदान किया। वह गणवत् उनके द्वार पर रहने लगा। एक बार गणों सहित शिव वहां पहुंचे। पार्वती स्नान कर रही थीं। गणपति ने उन्हें अंदर जाने से रोका तो शिव के गण तथा अन्य देवताओं ने गणपति से युद्ध किया जिसमें गणपति ही जीते। अंत में प्रलय के लक्षण देखकर विष्णु ने शूल से गणपति का सिर काट डाला। नारद से समस्त वृत्तांत सुनकर गिरिजा ने अपने शरीर से विकराल शक्तियां उपजायीं जो देवताओं का भक्षण करने लगीं। देवता गिरिजा की शरण में गये। गिरिजा ने आशंकित प्रलय को रोकने के लिए यह शर्त रखी कि उनके बालक को जीवित किया जाये तथा भविष्य में ब्रह्मा, विष्णु, महेश से पूर्व उसकी पूजा की जाये। शिव की प्रेरणा से विष्णु उत्तर दिशा की ओर किसी प्राणी का सिर ढूंढ़ने गये। वहां से हाथी का सिर लाकर उन्होंने बालक की गर्दन पर जोड़ दिया और वह शिव की कृपा से जीवित हो उठा।

गणपति तथा स्कंद बराबर आयु के थे। उनके विवाह की समस्या आने पर तय किया गया कि जो पहले पृथ्वी की परिक्रमा कर लेगा, उसका विवाह पहले किया जायेगा। स्कंद परिक्रमा के लिए चले गये तो गणपति ने माता-पिता की परिक्रमा करके अनेक बार पूजा की और बोले कि "मां, तुम्हें वेद त्रिभुवन का रूप कहते हैं। तुम्हारी परिक्रमा ही तीनों लोकों की परिक्रमा हुई।" उनके वाक्चातुर्य से प्रसन्न होकर विश्व-रूप की सिद्धि और बुद्धि नामक दोनों कन्याओं से उनका विवाह कर

दिया गया। उनके दो पुत्र हुए—सिद्धि से क्षेम तथा बुद्धि से लाभ। स्कंद को लौटने पर समस्त समाचार विदित हुए। नारद ने उसे खूब उकसाया, फलतः वह क्रौंच पर्वत पर चला गया। हर पूर्णमासी पर देवता उनके दर्शन करते हैं।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध ४।११-२८।-

गय अमूर्तरया के पुत्र राजा गय ने पयोष्णी नदी के किनारे सात अश्वमेध यज्ञ किये थे। उनके पात्र आदि सब स्वर्ण के बने थे तथा उन्होंने ब्राह्मणों में अपरिमित धन का वितरण किया था। उनके राज्य की प्रायः समस्त भूमि पर किसी न किसी यज्ञ का मंडप बंधा था। उन्होंने पयोष्णी नदी में स्नान करके इंद्रादि लोकों की प्राप्ति की थी। गय ने सौ वर्ष तक यज्ञ शेष के अतिरिक्त कुछ ग्रहण नहीं किया। अतः अग्निदेव ने प्रसन्न होकर वर दिया कि धर्म से वह निरंतर धन की वृद्धि करता रहे तथा अपने ही वर्ण की पतिव्रता कन्याओं से उसका विवाह हो।

राजा गय ने यज्ञ में ब्राह्मणों को देने के लिए दस व्याम (पचास हाथ) चौड़ी और इससे दुगुनी लंबी पृथ्वी बनवायी थी। गंगा में जितने बालूकण हैं, राजा गय ने उतनी गौओं का दान किया था।

म०भा०, वनपर्व, अध्याय १२१, श्लोक ३ से १४ तक
द्रोणपर्व, अध्याय, ६६
शांतिपर्व, अध्याय २६, श्लोक १११-११६

गरुड़ समुद्र तटवर्ती एक विशाल बरगद का वृक्ष था। उस वृक्ष की डालियों पर अनेक मुनिगण बैठा करते थे। एक बार गरुड़ भोजन करने के निमित्त उस बरगद की एक शाखा पर जा बैठे। उनके भार से शाखा टूट गयी। यह देखकर उस शाखा के निवासी वैखानस, माष, बालखिल्य इत्यादि सब इकट्ठे हो गये। मुनियों की रक्षा के निमित्त गरुड़ ने एक पांव के सहारे शाखा पर बैठकर हाथी और कच्छप का मांस खाया तथा उस सौ योजन तक विस्तृत शाखा को निषाद देश पर गिरा दिया, जो पूर्णतः नष्ट हो गया।

बा० रा०, अरण्य कांड, सर्ग ३५,
श्लोक २७-३३

अमृत की खोज में निकले हुए गरुड़ ने अपनी भूख शांत करने के लिए कछवे (विभावसु) तथा हाथी (सुप्रतीक) को चोंच में दबा रखा था तथा बैठने का स्थान खोज रहे थे। एक पुराने बरगद ने उन्हें आमंत्रित किया। वे जिस शाखा पर बैठे, वह टूट गयी। उसी शाखा पर बालखिल्य ऋषि लटककर तपस्या कर रहे थे। गरुड़ ने हाथी और कछवे को पंजों में दबाकर वटवृक्ष की उस शाखा को चोंच में दबा लिया तथा उड़ने लगे। उन्हें भय था कि कहीं भी बैठने से ऋषि-हत्या का पाप लगेगा। उड़ते-उड़ते वे अपने पिता कश्यप के पास पहुंचे जिन्होंने ऋषियों से प्रार्थना की कि वे शाखा का परित्याग कर दें। ऋषियों के शाखा छोड़ देने के उपरांत गरुड़ ने वह शाखा एक निर्जन पर्वत शिखर पर छोड़ दी।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय २६, श्लोक ४२ से ४४ तक
अ० ३०, १ से २५ तक

विष्णु क्षीर सागर में सो रहे थे। विरोचन के पुत्र एक दैत्य ने ग्राह का रूप धारण करके विष्णु का दिव्य मुकुट हर लिया था। विष्णु ने कृष्ण के रूप में अवतार लिया। एक बार वे गोमंत पर्वत पर बैठे बलराम से बात कर रहे थे कि गरुड़ दैत्यों को हराकर वह दिव्य मुकुट ले आया तथा उसने वह कृष्ण को पहना दिया।

हरि० पु० वं०, विष्णुपर्व, ४१।

शर्त में हार के कारण विनता कद्रू की दासी बन गयी। कद्रू पुत्र नाग थे तथा विनता पुत्र गरुड़ था। कद्रू ने गरुड़ को प्रतिदिन सूर्य नमस्कार करने जाते देखा तो एक दिन नागों को भी साथ ले जाने के लिए कहा। गरुड़ मान गया। सूर्य के निकट पहुंचने से पहले ही नाग ताप से आकुल हो उठे। उनके मना करने पर भी गरुड़ उन्हें सूर्य के निकट ले गया। वे झुलस गये। वापस लौटने पर कद्रू बहुत रुष्ट हुई। नागों की शांति के लिए कद्रू के कहने से गरुड़ ने रसातल से गंगाजल लाकर उनपर छिड़का।

ब्र० पु०, १५६।-

गरुड़ तीर्थ शेषनाग का पुत्र बलवान मणिनाग था। शिव की तपस्या कर उसने गरुड़ से निर्भय होने का वरदान प्राप्त किया था। उसकी निर्भीकता से असंतुष्ट होकर विष्णु के वाहन गरुड़ ने उसे क्षीरसागर के निकट पाकर कैद कर लिया। नंदी ने शिव को जाकर बताया तो शिव ने नंदी को विष्णु के पास यह प्रार्थना लेकर भेजा कि वे गरुड़ से उस नाग को मुक्त करवा दें। विष्णु ने जाना कि गरुड़ को अपने ऊपर इतना गर्व है कि वह विष्णु के समस्त कार्यों का कारण स्वयं को

मानने लगा है अतः विष्णु ने उसकी पीठ पर अपनी कनिष्ठा अंगुली रखकर उसे नदी तक ले जाने को कहा। अंगुली के भार से वह चूर-चूर हो गया। विष्णु ने नंदी से कहा कि वह शेष तथा विकृत गरुड़ को शिव के पास ले जाय। उन्हीं की कृपा से वह पूर्व-रूप प्राप्त कर पायेगा। शिव के कहने पर जिस स्थान पर गंगा में स्नान करके उसने पूर्वरूप प्राप्त किया, वह स्थान गरुड़-तीर्थ नाम से विख्यात हुआ।

ब्र० पु०, ६०।-

गर्गस्रोत सरस्वती नदी का वह तीर्थस्थल जहां वृद्ध गर्ग ने काल का ज्ञान, गति, ग्रह नक्षत्रों की उलट-फेर, दारुण उत्पात इत्यादि तथ्यों की जानकारी प्राप्त की थी, गर्गस्रोत नाम से विख्यात है। तदनंतर काल-ज्ञान करने के इच्छुक ऋषियों ने उसी स्थल पर गर्ग मुनि की सेवा की थी।

म० भा०, शल्यपर्व, अध्याय ३७, श्लोक १३-१७

गांडीव वज्र की गांठ को गांडी कहा गया है। उससे बना धनुष 'गांडीव' कहलाया। अन्य अनेक अक्षय शस्त्रों की भांति अपनी शक्ति के वर्धन के लिए दैत्यों ने इसका भी निर्माण किया था किंतु देवताओं ने उन्हें परास्त कर अक्षय शस्त्रों को प्राप्त कर लिया।

अर्जुन को गांडीव धनुष अत्यधिक प्रिय था। उसने प्रतिज्ञा की थी कि जो व्यक्ति उसे गांडीव किसी और को देने के लिए कहेगा, उसे वह मार डालेगा। युद्ध में एक बार कर्ण ने युधिष्ठिर को परास्त कर दिया। युधिष्ठिर को मैदान छोड़कर भागना पड़ा। अर्जुन को जब युधिष्ठिर नहीं दीखे तो उनको देखने के लिए वह शिविर में गया। युधिष्ठिर घायल, दुखी, क्रुद्ध हो कर्ण पर खीजे हुए थे। अतः उन्होंने अर्जुन को लानत दी कि वह अब तक भी कर्ण को नहीं मार पाया। यह भी कहा कि वह गांडीव धनुष किसी और को दे दे। प्रतिज्ञानुसार अर्जुन ने तलवार निकाल ली किंतु कृष्ण ने युधिष्ठिर की मनःस्थिति समझाकर उसे शांत किया और कहा कि बड़े व्यक्ति का अपमान कर देना ही उसके वध के समान है अतः अर्जुन ने युधिष्ठिर को अपमानसूचक बातें कहकर उसे मृतवत् मानकर अपनी प्रतिज्ञा का निर्वाह किया—फिर क्षमा-याचना कर बड़े भाई को प्रणाम करके वह युद्ध करने चला या(दे० खांडववन)।

म० भा०, उद्योगपर्व, अध्याय ९८, श्लोक १९ से २२ तक
कर्णपर्व, ६९-७१

गाधि अपनी पुत्रियों का विवाह करने के उपरांत कुशनाभ अत्यधिक अकेले पड़ गए। उनके मन में पुत्र-प्राप्ति की कामना बलवती हो गयी। वे ब्रह्मलोक चले गए। कुछ समय पश्चात् उनके यहां गाधि नामक पुत्र का जन्म हुआ। गाधि मुनिवर विश्वामित्र के पिता थे। विश्वामित्र की एक बहन थी, नाम था सत्यवती। वह अत्यंत धार्मिक वृत्ति की थी तथा अपने पति के साथ सशरीर स्वर्ग चली गयी थी। उसीसे कौशिकी नामक महानदी उत्पन्न हुई।

बा० रा०, बाल कांड, सर्ग ३४, १-११

कुशिक सदावन में अहीरों के साथ ही रहा था। उसने इंद्र के समान पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से तप आरंभ किया। एक हजार वर्ष उपरांत इंद्र ने उसके गाधि नामक पुत्र के रूप में जन्म लिया। गाधि की कन्या का नाम सत्यवती था। गाधि ने उसका विवाह भृगुपुत्र ऋचीक से किया। ऋचीक ने गाधि के तथा अपने, घर में एक-एक पुत्र की कामना से दो चरु बनाये। उसने सत्यवती से कहा कि एक चरु वह अपनी मां को खिला दे तथा दूसरा स्वयं खा ले। पहले चरु से गाधि-पत्नी तेजस्वी क्षत्रिय संतान को जन्म देगी। दूसरे से सत्यवती तपस्वी ब्राह्मण पुत्र को जन्मेगी। ऋचीक तपस्या के निमित्त चले गये। मां-बेटी ने संयोग से चरु बदलकर खा लिया। ऋचीक ने तपस्या से लौटकर पत्नी को देखा तो तुरंत पहचान लिया कि चरु बदल गये हैं। सत्यवती ने उससे जाना कि उसका बेटा क्रूरकर्मी होगा तो वह बहुत दुखी हुई तथा उसने ब्राह्मण धर्मवाले पुत्र की कामना प्रकट की। शीलवान पुत्र न होने पर कोमल स्वभाव वाला पौत्र मांगा। ऋचीक की कृपा से उसके जमदग्नि नामक पुत्र ने जन्म लिया तथा परशुराम नामक पौत्र का जन्म हुआ जो कि समस्त क्षत्रियों को नष्ट करनेवाला हुआ। राजा गाधि के घर में विश्वामित्र नामक पुत्र का जन्म हुआ।

ब्र० पु०, १०।२४-५८

गांधारी गांधारराज सुबल की पुत्री का नाम गांधारी था। उसने शिव को प्रसन्न करके सौ पुत्र पाने का वरदान प्राप्त किया था। भीष्म की प्रेरणा से धृतराष्ट्र का विवाह उसके साथ किया गया। गांधारी ने जब सुना कि उसका भावी पति अंधा है तो उसने अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली कि पातिव्रत धर्म का पालन कर पाये। महर्षि व्यास अत्यंत थके हुए तथा भूखे थे। गांधारी ने

उनका सत्कार किया। प्रसन्न होकर उन्होंने गांधारी को अपने पति के अनुरूप सौ पुत्र प्राप्त करने का वरदान दिया। गर्भाधान के उपरांत दो वर्ष बीत गये। कुंती ने एक पुत्र प्राप्त भी कर लिया किंतु गांधारी ने संतान को जन्म नहीं दिया अत: क्रोध और ईर्ष्या के वशीभूत उसने अपने उदर पर प्रहार किया जिससे लोहे के समान कठोर मांसपिंड निकला। व्यास जी के प्रकट होने पर गांधारी ने उन्हें सब कुछ कह सुनाया। व्यास ने गुप्त स्थान पर घी से भरे हुए एक सौ एक मटके रखवा दिये। मांस-पिंड को शीतल जल से धोने पर उसके एक सौ एक खंड हो गये। प्रत्येक खंड एक-एक मटके में दो वर्ष के लिए रख दिया गया, उसके बाद ढक्कन खोलने पर प्रत्येक मटके से एक-एक बालक प्रकट हुआ। अंतिम मटके से एक कन्या हुई जिसका नाम दु:शला रखा गया तथा उसका विवाह जयद्रथ से हुआ।

पहला मटका खोलने पर जो बालक प्रकट हुआ उसका नाम दुर्योधन हुआ। उसने जन्म लेते ही गदहे की तरह बोलना प्रारंभ किया तथा प्रकृति में अपशकुन प्रकट हुए। पंडितों ने कहा कि इस बालक का परित्याग कर देने से कौरव-वंश की रक्षा हो सकती है अन्यथा अनर्थ होगा, किंतु मोहवश गांधारी तथा धृतराष्ट्र ने उसका परित्याग नही किया। उसी दिन कुंती के घर में भीम ने जन्म लिया। धृतराष्ट्र की एक वैश्य जाति की सेविका थी जिससे धृतराष्ट्र को युयुत्सुकरण नामक पुत्र की प्राप्ति हुई।

महाभारत में विजय प्राप्त करने के उपरांत पांडव पुत्र-विहीना गांधारी के सम्मुख जाने का साहस नहीं कर पा रहे थे। वह उन्हें देखते ही कोई शाप न दे दें, इस बात का भी भय था। अत: उन लोगों ने श्रीकृष्ण को तैयार करके उनके पास भेजा। कृष्ण गांधारी के क्रोध का शमन कर आये। तदुपरांत पांडव धृतराष्ट्र की आज्ञा लेकर गांधारी के दर्शन करने गये। गांधारी उन्हें शाप देने के लिए उद्यत हुईं किंतु महर्षि व्यास ने उनकी मन:-स्थिति जानकर उन्हें समझाया कि कौरवों के प्रतिदिन प्रणाम करने पर वह आशीष देती थीं कि जहां धर्म वहीं जय है फिर धर्म के जीतने पर उन्हें इस प्रकार क्रुद्ध नहीं होना चाहिए। गांधारी ने कहा कि भीम ने दुर्योधन के साथ अधर्म युद्ध किया था। उसने नाभि के नीचे गदा से प्रहार किया जो कि नियम-विरुद्ध था, अत: उस संदर्भ में वह उन्हें कैसे क्षमा कर दे? भीम ने अपने इस अपराध के लिए क्षमा-याचना की, साथ ही याद दिलाया कि उसने भी द्यूतक्रीड़ा, चीरहरण आदि में अधर्म का प्रयोग किया था। गांधारी ने पुन: कहा--"तुमने दु:शासन का रक्त-पान किया।" भीम ने कहा—"सूर्यपुत्र यम जानते हैं कि रक्त मेरे दांत के अंदर नहीं गया, मेरे हाथ रक्तरंजित थे। वह कर्म केवल त्रास उत्पन्न करने के लिए किया था। द्रौपदी के केश खींचे जाने पर मैंने ऐसी प्रतिज्ञा की थी।" गांधारी ने कहा—"तुम मेरे किसी भी एक कम अपराधी पुत्र को जीवित छोड़ देते तो हम दोनों के बुढ़ापे का सहारा रहता।" गांधारी ने युधिष्ठिर को पुकारा, वह कौरवों का वध करने का अपराध स्वीकारते हुए गांधारी के चरण-स्पर्श करने लगे। गांधारी ने आंख पर बंधी पट्टी से ही उनके पैर की कोर देखी और उनके नाखून काले पड़ गये। यह देखकर अर्जुन भयभीत होकर कृष्ण के पीछे छिप गया। उसके छिपने की चेष्टा जानकर गांधारी का क्रोध ठंडा पड़ गया। तदुपरांत कुंती के दर्शन किये। कुंती पांडवों के क्षत-विक्षत शरीरों पर हाथ फेरती और देखती ही रह गयी। द्रौपदी अभिमन्यु इत्यादि वीरगति को प्राप्त हुए अपने बेटों को याद कर रोती रही। उन सबके बिना राज्य भला किस काम का! गांधारी ने दोनों को धीरज बंधाया। जो होना था, हो गया। उसके लिए शोक करने से क्या लाभ? तदनंतर वेदव्यास जी के वरदान से गांधारी को दिव्य दृष्टि प्राप्त हुई जिससे वह कौरवों का संपूर्ण विनाश-स्थल देखने में समर्थ हो गयीं। गांधारी युद्ध-क्षेत्र में पड़े कौरव-पांडव बंधुओं, सैनिकों के शव तथा उनसे चिपटकर रोती उनकी पत्नियों और माताओं का विलाप देख-देखकर श्रीकृष्ण को संबोधित कर रोने लगीं। उन दु:खिताओं में उत्तरा भी थी, कौरवों की पत्नियां भी थीं, दु:शला भी थी, जो अपने पति जयद्रथ का सिर खोजने के लिए इधर-उधर भटक रही थी। भूरिश्रवा की पत्नियां विलाप कर रही थीं। शल्य, भगदत्त, भीष्म, द्रोण को देख गांधारी सिसकती रहीं, विलाप करती रहीं।

द्रुपद की रानियां और पुत्रवधुएं उसकी जलती चिता की परिक्रमा ले रही थीं। रोते-रोते गांधारी अचानक क्रुद्ध हो उठीं। उन्होंने श्रीकृष्ण से कहा—"मेरे पातिव्रत में बल है तो शाप देती हूं कि यादववंशी समस्त लोग परस्पर लड़कर मर जायेंगे। तुम्हारा वंश नष्ट हो

जायेगा, तुम अकेले जंगल में अशोभनीय मृत्यु प्राप्त करोगे क्योंकि कौरव-पांडवों का युद्ध रोक लेने में एकमात्र तुम ही समर्थ थे और तुमने उन्हें रोका नहीं। तुम्हारे देखते-देखते कुरुवंश का नाश हो गया।" श्रीकृष्ण ने मुस्कराकर कहा, "जो कुछ आप कह रही हैं, यथार्थ है—यह सब तो पूर्व निश्चित है, ऐसा ही होगा।"

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय १०६, ११४, ११५
स्त्रीपर्व २१-२५, शल्यपर्व ६३

गालव विश्वामित्र तपस्या में लीन थे। गालव (उनके शिष्य) सेवारत थे। धर्मराज ने विश्वामित्र की परीक्षा लेने के लिए वसिष्ठ का रूप धारण किया और आश्रम में जाकर विश्वामित्र से तुरंत भोजन मांगा। विश्वामित्र ने मनोयोग से भोजन तैयार किया किंतु जब तक 'वसिष्ठ' रूप-धारी धर्मराज के पास पहुंचे, वे अन्य तपस्वी मुनियों का दिया भोजन कर चुके थे। यह बतलाकर वे चले गये। विश्वामित्र उष्ण भोजन अपने हाथों से, माथे पर थामकर जहां के तहां मूर्तिमान, वायु का भक्षण करते हुए १०० वर्ष तक खड़े रहे। गालव उनकी सेवा में लगे रहे। सौ वर्ष उपरांत धर्मराज पुन: उधर आये और विश्वामित्र से प्रसन्न हो उन्होंने भोजन किया। भोजन एकदम ताजा था। परम संतुष्ट होकर उनके चले जाने के उपरांत गालव मुनि की सेवा-शुश्रूषा से प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने उसे स्वेच्छा से जाने की आज्ञा दी। उसके बहुत आग्रह करने पर खीज कर विश्वामित्र ने गुरु-दक्षिणा में चंद्रमा के समान श्वेत वर्ण के किंतु एक ओर से काले कानों वाले आठ सौ घोड़े मांगे। गालव निर्धन विद्यार्थी था—ऐसे घोड़े भला कहां से लाता! चिंतातुर गालव की सहायता करने के लिए विष्णु ने गरुड़ को प्रेरित किया। गरुड़ गालव का मित्र था। वह गालव को पूर्व दिशा में ले उड़ा। ऋषभ पर्वत पर उन दोनों ने शांडिली नामक तपस्विनी ब्राह्मणी के यहां भोजन प्राप्त किया और विश्राम किया। जब वे सोकर उठे तब देखा कि गरुड़ के पंख कटे हुए हैं। गरुड़ ने कहा कि उसने सोचा था कि वह तपस्विनी को ब्रह्मा, महादेव इत्यादि के पास पहुंचा दे। हो सकता है कि अनजाने में यह अशुभ चिंतन हुआ हो। फलस्वरूप उसके पंख कट गये। शांडिली से क्षमा करने की याचना करने पर गरुड़ को पुन: पंख प्राप्त हुए। वहां से चलने पर पुन: विश्वामित्र मिले तथा उन्होंने गुरुदक्षिणा शीघ्र प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। गरुड़ गालव को अपने मित्र ययाति के यहां ले गया। ययाति राजा होकर भी उन दिनों आर्थिक संकट में था। अत: ययाति ने सोच-विचारकर अपनी सुंदरी कन्या गालव को प्रदान की और कहा कि वह धनवान राजा से कन्या के शुल्कस्वरूप अपरिमित धनराशि ग्रहण कर सकता है, ऐसे घोड़ों की तो बात ही क्या! कन्या का नाम माधवी था—उसे वेदवादी किसी महात्मा से वर प्राप्त था कि वह प्रत्येक प्रसव के उपरांत पुन: 'कन्या' हो जायेगी। किसी भी एक राजा के पास कथित प्रकार के आठ सौ घोड़े नहीं थे। गालव को बहुत भटकना पड़ा। पहले वह अयोध्या में इक्ष्वाकुवंशी राजा हर्यश्व के पास गया। उसने माधवी से वसुमना नामक (दानवीर) राजकुमार प्राप्त किया तथा शुल्क-रूप में कथित २०० अश्व प्रदान किये। धरोहर-स्वरूप घोड़ों को वहीं छोड़ गालव माधवी को लेकर काशी के अधिपति दिवोदास के पास गया। उसने भी २०० अश्व दिये तथा प्रतर्दन नामक (शूरवीर) पुत्र प्राप्त किया। तदुपरांत दो सौ घोड़ों के बदले में भोजनगर के राजा उशीनर ने शिवि नामक (सत्यपरायण) पुत्र प्राप्त किया। गुरुदक्षिणा में अभी भी २०० अश्वों की कमी थी। माधवी तथा गालव का पुन: गरुड़ से साक्षात्कार हुआ। उसने बताया कि पूर्वकाल में ऋचीक मुनि गाधि की पुत्री सत्यवती से विवाह करना चाहते थे। गाधि ने शुल्कस्वरूप इसी प्रकार के एक सहस्र घोड़े मुनि से लिये थे। राजा ने पुंडरीक नामक यज्ञ कर सभी घोड़े दान कर दिये। राजाओं ने ब्राह्मणों से दो, दो सौ घोड़े खरीद लिये। घर लौटते समय वितस्ता (झेलम) नदी पार करते हुए चार सौ घोड़े बह गये थे। अत: इन छह सौ के अतिरिक्त ऐसे अन्य घोड़े नहीं मिलेंगे। दोनों ने परस्पर विचार कर छ: सौ घोड़ों के साथ माधवी को विश्वामित्र की सेवा में प्रस्तुत किया। विश्वामित्र ने माधवी से अष्टक नामक यज्ञ अनुष्ठान करनेवाला एक पुत्र प्राप्त किया। तदुपरांत गालव को वह कन्या लौटाकर वे वन में चले गये। गालव ने भी गुरुदक्षिणा देने के भार से मुक्त हो ययाति को कन्या लौटाकर वन की ओर प्रस्थान किया।

म० भा०, उद्योगपर्व, अध्याय १०६ से ११९ तक

गिरिजा (पार्वती) मैना और हिमालय ने आदिशक्ति के वरदान से आदिशक्ति को कन्या के रूप में प्राप्त किया। उसका नाम पार्वती रखा गया। वह भूतपूर्व सती तथा

आदिशक्ति थी। उसी को उमा, गिरिजा और शिवा भी कहते है। पार्वती के विवाह संबंधी दो कथाएं है :

(१) पार्वती ने स्वयंवर में शिव को न देखकर स्मरण किया और वे आकाश में प्रकट हुए। पार्वती ने उन्हीं का वरण किया।

(२) हिमालय का पुरोहित पार्वती की इच्छा जानकर शिव के पास विवाह का प्रस्ताव लेकर पहुंचा। शिव ने अपनी निर्धनता इत्यादि की ओर संकेत कर विवाह के औचित्य पर पुन: विचारने को कहा। पुरोहित के पुन: आग्रह पर वे मान गये। शिव ने पुरोहित और नाई को विभूति प्रदान की। नाई ने वह मार्ग में फेंक दी और पुरोहित पर बहुत रुष्ट हुआ कि वह बैल वाले अवधूत से राजकुमारी का विवाह पक्का कर आया है। नाई ने ऐसा ही कुछ जाकर राजा से कह सुनाया। पुरोहित का घर विभूति के कारण धन-धान्य रत्न आदि से युक्त हो गया। नाई उसमें से आधा अंश मांगने लगा तो पुरोहित ने उसे शिव के पास जाने की राय दी। शिव ने उसे विभूति नहीं दी। नाई से शिव की दारिद्रय के विषय में सुनकर राजा ने संदेश भेजा कि वह बारात में समस्त देवी-देवताओं सहित पहुंचें। शिव हंस भर दिये और राजा के मिथ्याभिमान को नष्ट करने के लिए एक बूढ़े का वेश धारण करके नंदी का भी बूढ़े जैसा रूप बनाकर हिमालय की ओर बढ़े। मार्ग में लोगों को यह बताने पर कि वे शिव हैं और पार्वती से विवाह करने आये हैं, स्त्रियों ने घेरकर उन्हें पीटा। स्त्रियां नोच, काट, खसोटकर चल दीं और शिव ने मुस्कराकर अपनी झोली में से निकालकर ततैये उनके पीछे छोड़ दिये। उनका शरीर ततैयों के काटने से सूज गया। शुक्र और शनीचर दुखी हुए पर शिव हंसते रहे। मां-बाप को उदास देखकर पार्वती ने विजया नामक सखी को बुलाकर शिव तक पहुंचाने के लिए एक पत्र दिया जिसमें प्रार्थना की कि वे अपनी माया समेटकर पार्वती के अपमान का हरण करें। पार्वती की प्रेरणा से हिमालय शिव की अगवानी के लिए गये। उन्हें देख शुक्र और शनीचर भूख से रोने लगे। हिमालय उन्हें साथ ले गये। एक ग्रास में ही उन्होंने बारात का सारा भोजन समाप्त कर दिया। जब हिमालय के पास कुछ भी शेष नहीं रहा तब शिव ने उन्हें झोली से निकालकर एक-एक बूटी दी और वे तृप्त हो गये। हिमालय पुन: अगवानी के लिए गये तो उनका अन्न इत्यादि का भंडार पूर्ववत् हो गया। समस्त देवताओं से युक्त बारात सहित पधारकर शिव ने गिरिजा से विवाह किया।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध ३।८।३०।

गुणकेशी मातलि इंद्र के सारथी थे। उन्हें अपनी 'गुणकेशी' नामक कन्या के लिए जब देवताओं तथा मनुष्यों में कोई वर नहीं मिला तो वे अपनी पत्नी सुधर्मा से विचार विनिमय कर वर की खोज में नागलोक जाने के लिए चल पड़े। मार्ग में उन्हें नारद मुनि मिले जो कि वरुण देवता से भेंट करने 'सर्वतोभद्र' (वरुण का निवास-स्थल) जा रहे थे। पृथ्वी तथा पाताल-लोक से पर्याप्त परिचित थे। अत: उन्होंने वरुण के पुत्र पुष्कर तथा पुत्रवधू (सोम की बड़ी कन्या) आदि के विषय में अनेक बातें बतायी। इसी प्रकार वर की खोज में अनेक स्थानों का भ्रमण करते हुए वे दोनों नागलोक पहुंचे। वहां मातलि ने ऐरावत कुल में उत्पन्न आर्यक के पौत्र, वामन के दौहित्र तथा नागराज चिकुर के पुत्र सुमुख को गुणकेशी के लिए चुना। मातलि तथा नारद ने आर्यक के सम्मुख गुणकेशी तथा सुमुख के विवाह का प्रस्ताव रखा। आर्यक ने कहा कि वह इस प्रकार के प्रस्ताव से बहुत प्रसन्न होता किंतु सुमुख के पिता को जब गरुड़ ने मारा था तब यह कह गया था कि आगामी माह में वह सुमुख को भी मार डालेगा। ऐसी स्थिति में उससे विवाह करना गुणकेशी के साथ अन्याय होगा। तदनंतर मातलि तथा नारद सुमुख को साथ ले इंद्रपुरी गये। इंद्र के पास उस समय विष्णु भी विराजमान थे। मातलि ने सब कुछ कह सुनाया तो विष्णु ने इंद्र से कहा कि वह सुमुख को अमृतपान करवा दें। इंद्र ने सोच-विचारकर ऐसा तो नहीं किया किंतु उसे लंबी आयु प्रदान की। वे सब प्रसन्नतापूर्वक लौट गये। जब गरुड़ को विदित हुआ कि सुमुख को दीर्घायु प्रदान कर दी गयी है तो वह विष्णु के पास पहुंचा। उसने दर्पदीप्त वचनावली के अंतर्गत यहां तक कह डाला कि वह बलानुसार तो त्रिलोकी का शासन कर सकता है। किंतु क्योंकि उसने विष्णु की सेवा स्वीकार की, अत: उसकी अवमानना करते हुए उसका निश्चित भोज्य ले लिया गया है कि वह सपरिवार भूखा मर जाय। विष्णु ने उसका मान-मर्दन करने के निमित्त उसके कंधे पर अपना दाहिना हाथ रख दिया। उसके भार को वहन करने में असमर्थ गरुड़ अचेत भूमिसात् हो गया। विष्णु ने उसे उसकी शक्ति की सीमा दिखलाते हुए क्षमा कर

दिया तथा अपने पांव के नाखून से सुमुख को उठाकर उसके वक्षस्थल पर रख दिया तथा भविष्य में घमंड न करने का आदेश दिया। तब से गरुड़ सुमुख का सदैव वहन करता है।

म० भा०, उद्योगपर्व, अध्याय ९७, श्लोक १२-९७, अ० १०३, १०४, १०५,

गुणनिधि यज्ञदत्त ब्राह्मण के पुत्र का नाम गुणनिधि था। उसने परंपरागत सुकर्मों का परित्याग कर जुआ खेलना आरंभ कर दिया। उसकी माता उसके कुकर्मों को छिपाने का प्रयास करती रहती थी। सोलह वर्ष की उम्र में एक शीलवती कन्या से उसका विवाह हो गया। वह घर की अनेक वस्तुएं जुए में हार गया। पिता को पता चला तो वह रुष्ट हुआ। गुणनिधि घर से भाग गया। वह सारे दिन भूखा-प्यासा रहा। संध्याकाल उसे शिव-भक्त मिले। उनके साथ उसने शिवपूजन देखा। वह शिवरात्रि थी। उन सबके सो जाने पर गुणनिधि ने अपने वस्त्र को फाड़कर बत्ती बनायी, उसे जलाकर उसके प्रकाश में वह शिव का नैवेद्य उठाकर भागा। भक्तों की नींद खुल गयी। नगर-रक्षक के तीर से वह मारा गया। शिव ने उसे क्षमा कर दिया क्योंकि उसने शिवरात्रि का पूजन देखा था, अपने वस्त्र की बत्ती बनाकर जलायी थी, सारा दिन उपवास किया था। शिव की कृपा से दूसरे जन्म में वह कलिंग देश का राजा इंद्रमुनि का पुत्र हुआ। उसका नाम कंदर्भ रखा गया। वह प्रसिद्ध शिव-भक्त हुआ। उसने अपने राज्य में प्रत्येक शिवमंदिर में नित्य दीपदान की आज्ञा दी, ऐसा न करने पर मृत्युदंड की घोषणा करवा दी।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध १।१५-१८।

ब्राह्मण यज्ञदत्त का पुत्र गुणनिधि संगदोष तथा मां के लाड़ से बिगड़ गया। एक बार उसने जुए में पिता की एक अंगूठी हार दी। पिता को ज्ञात होने के भय से वह घर से भाग गया। संयोग से वह शिवरात्रि का दिन था। जंगल में भटकते हुए उसे शिवभक्तों की एक टोली मिली। वह नैवेद्य चुराने के विचार से उनके साथ हो लिया। चोरी करते हुए वह पकड़ा गया तथा उसे बहुत मार पड़ी। पिटाई से मरने पर भी शिवरात्रि की पूजा के माहात्म्य से वह अगले जन्म में कलिंग देश का राजा निधिनाथ हुआ और तदनंतर निधिपति के रूप में शिव का मित्र बना।

शि० पु० १०१६

गुह (निषाद) श्रृंगवेरपुर का राजा गुह जाति से निषाद था। राम के वन-आगमन का समाचार सुनकर वह नाना व्यंजन लेकर सेवा में उपस्थित हुआ। राम ने घोड़ों के चारे के अतिरिक्त सब कुछ लौटा दिया और कहा कि वे कुश-शैया पर सोएंगे, कंदमूल खाएंगे। सीता और राम के सोने पर लक्ष्मण उनका पहरा देते रहे। निषाद के बहुत आग्रह पर भी न वे बिछौने पर सोए, न कुछ खाया। प्रात: होने पर निषाद से नाव प्राप्त कर, सुमंत्र को रथ और घोड़े समेत विदा कर राम ने गंगा के दूसरे तट पर जाने के लिए प्रस्थान किया। प्रस्थान से पूर्व उन्होंने बरगद के पेड़ के दूध से अपने बालों की जटा बना ली। लक्ष्मण ने भी बालों की जटाएं बना लीं।

गंगा की धार के मध्य पहुंचकर सीता ने गंगा को प्रणाम किया और कहा कि यदि १४ वर्ष की अवधि को भली भांति व्यतीत कर वे सकुशल लौटेंगे तो सीता राम के राज्य पा लेने पर एक लाख गौ तथा अन्न ब्राह्मणों को दान में देंगी तथा हजार घड़े मदिरा और मांसयुक्त भात अर्पण करके गंगा की पूजा करेंगी, साथ ही तट स्थित सभी देवालयों में पूजा करेंगी।

बा० रा०, अयोध्या कांड, सर्ग ५०, ५१, ५२, ५३,

गृतस्मद वेनवंशियों का यज्ञ था। इंद्र आदि सभी देवता एकत्र होकर अग्नि को आहुतियां दे रहे थे। असुरों ने निश्चय किया कि वे इंद्र के यज्ञ को निर्विघ्न समाप्त नहीं होने देंगे, अत: उन्होंने भांति-भांति से विघ्न डालने आरंभ कर दिये। वे इंद्र को मारने के लिए कटिबद्ध थे। ऋषि गृतस्मद ने एक उपाय सोचा। वे इंद्र का रूप धारण करके यज्ञ से भाग खड़े हुए। उपस्थित शक्तिशाली दैत्यों ने गृतस्मद को वास्तविक इंद्र समझकर उनका पीछा किया। दैत्यों में मुख्य दो थे : चुमुरि तथा धुनि। गृतस्मद ने उन्हें खूब भटकाया। पीछा करने के भटकाव में वैन्य यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हो गया। तदुपरांत गृतस्मद ने उन दोनों दैत्यों से कहा कि वे इंद्र नहीं हैं। इंद्र तो यज्ञ में हैं। गृतस्मद नेउ न दोनों के समक्ष इंद्र की वीरता, शौर्य तथा प्रभुत्व का इतना वर्णन किया कि उनका नैतिक बल समाप्त होने लगा। उसी समय इंद्र ने वहां पहुंचकर दोनों को मार डाला।

ऋ० २।१।१-१५, २।१२।१ अथर्ववेद, कांड, २०, सूक्त ३४, १-१८
ऐ० ब्रा० २।२।१,
शत० ब्रा० ५।२, २२।४,

गोलभ एक बार महात्मा गोलभ गंधर्व के साथ बालि का युद्ध हुआ। युद्ध निरंतर रात-दिन पंद्रह वर्ष तक चलता रहा। सोलहवें वर्ष गोलभ मारा गया।

वा० रा०, किष्किंधा कांड, सर्ग २२, श्लोक २८-३०

गोवर्द्धन चिरकाल से ब्रजवासी गोप इंद्र की पूजा करते थे। इंद्र के गर्व का मर्दन करने के लिए श्रीकृष्ण ने वृंदावन के समस्त निवासियों को इंद्र के स्थान पर गिरिराज की पूजा करने के लिए प्रेरित किया। इंद्र ने उन्हें गिरि की पूजा करते देखा तो उसने अपने सांवर्तक नामक गण को ब्रज पर चढ़ाई करने के लिए कहा। इंद्र ने प्रलय मेघों को बंधन मुक्त कर ब्रज की ओर भेज दिया। अपरिमित वर्षा से समस्त ब्रजभूमि पानी से भर गयी। श्रीकृष्ण ने अपने हाथ पर गिरिराज (गोवर्द्धन) को उठा लिया तथा उसके गड्ढों में समस्त ब्रजवासियों को गौओं सहित सुरक्षित बैठ जाने को कहा। एक सप्ताह तक श्रीकृष्ण अपने हाथ पर गोवर्द्धन को उठाए रहे। तदनंतर कृष्ण की योगमाया का प्रभाव देखकर इंद्र ठगा-सा रह गया तथा उसने अपने मेघों को वापस बुला लिया। इंद्र ने कृष्ण के सम्मुख नतमस्तक हो क्षमा-याचना की। कामधेनु ने कृष्ण को बधाई दी। इंद्र ने ऐरावत की सूंड़ के द्वारा आकाशगंगा का जल लाकर श्रीकृष्ण का अभिषेक किया तथा उन्हें 'गोविंद' संबोधन प्रदान किया।

श्रीमद् भा०, १०।२४-२५।-
ब्र० पु०, १८८।-

(उक्त कथा का पूर्वांश श्रीमद् भा० में दी गयी कथा की भांति है।) कथा के अंत में यह दिखाया गया है कि इंद्र ने कृष्ण से अनुरोध किया कि वे अर्जुन का ध्यान रखें। श्रीकृष्ण ने उन्हें आश्वस्त किया।

हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व, १५-२८।-

(पूर्व कथा श्रीमद् भा० पु० में अंकित कथा के समान है।)

गोकुल की रक्षा होने के उपरांत देवराज इंद्र को कृष्ण के दर्शन करने की इच्छा हुई। ऐरावत पर चढ़कर इंद्र वहां पहुंचे तो ग्वाल-बाल के साथ कृष्ण गौएं चरा रहे थे तथा गरुड़ अदृश्य भाव से उनके ऊपर रहकर अपने पंखों से छाया कर रहा था। इंद्र ने विनीत भाव से कृष्ण के दर्शन किये तथा 'गौओं के इंद्र' की उपाधि से विभूषित करके उन्हें 'गोविंद' नाम प्रदान किया। इंद्र ने श्रीकृष्ण से कहा—"मेरा अंश अर्जुन के रूप में पृथ्वी पर अवतरित है, आप उसकी रक्षा करें।" श्रीकृष्ण ने स्वीकार कर लिया।

वि० पु०, ५।१०-१३।

गोहरण कीचक-वध का समाचार सुनकर कौरव बहुत प्रसन्न हुए। उन्हें लगा कि अब राजा विराट का सर्वाधिक शक्तिशाली सेनापति नहीं रहा, अतः अच्छा अवसर है। सुशर्मा की सलाह से कौरवों तथा त्रिगर्तों ने मिलकर मत्स्यदेश पर धावा बोल दिया। पांडवों के अज्ञातवास की अवधि समाप्त हो चुकी थी किंतु वे अभी छद्मवेश में ही रह रहे थे। बृहन्नला को छोड़कर शेष चारों पांडव भी राजा विराट् के साथ युद्धस्थल पर जा पहुंचे। पांडवों ने व्यूह-रचना की। युधिष्ठिर ने अपने-आपको श्येन (बाज) के रूप में प्रस्तुत किया। स्वयं बाज की चोंच के रूप में नकुल और सहदेव पंखों के स्थान पर तथा भीमसेन पूंछ के स्थान पर स्थिर रहे। उन्होंने अनेक शत्रुओं का संहार किया। रात्रि में भी युद्ध चलता रहा। सुशर्मा ने राजा विराट् का रथ तोड़कर उन्हें पकड़ लिया किंतु भीम ने राजा विराट् को छुड़ाकर सुशर्मा को कैद कर लिया। युधिष्ठिर के बहुत कहने पर उसने सुशर्मा को छोड़ दिया। राजा विराट् ने चारों छद्मवेशी पांडवों से प्रसन्न होकर उनका अभिनंदन किया। अभी वे राजधानी में पहुंचे भी नहीं थे कि कौरवों ने राजा विराट् की साठ हजार गौओं का अपहरण कर लिया। राजा की अनुपस्थिति में उसके पुत्र उत्तर पर गौरक्षा का भार आ पड़ा। उसका सारथी मारा जा चुका था। बृहन्नला (अर्जुन) ने सैरंध्री (द्रौपदी) से कहलवाया कि बृहन्नला अर्जुन का सारथी रह चुका है। इस प्रकार उत्तर के सारथी के रूप में बृहन्नला भी युद्ध-क्षेत्र में पहुंचा। उत्तर ने कौरवों की विशाल सेना देखकर हिम्मत हार दी। वह युद्ध-क्षेत्र से दौड़ पड़ा। बृहन्नला ने उसे समझा-बुझाकर अपना सारथी बना लिया तथा शमी वृक्ष से अपने अस्त्र-शस्त्र उतारकर बृहन्नला ने अपना वास्तविक परिचय देकर उत्तर के भय का निवारण किया। अर्जुन ने बताया कि पूर्वकाल में एक बार उसने अपने वंश की मूल जननी उर्वशी को अपलक देखा था, जब वह इंद्र के सम्मुख नृत्य कर रही थी। रात्रि में वह रमण की इच्छा से अर्जुन के पास पहुंची। अर्जुन ने उसे माता के समान सत्कार दिया। अतः उसने अर्जुन को नपुंसक होने

का शाप दिया था। वह शाप अज्ञातवास में काम आया। अर्जुन ने रथ पर कपिध्वज (अर्जुन की ध्वजा) धारण की। अर्जुन के शंखनाद करने पर उत्तर पुन: घबरा गया। अर्जुन ने उसे समझाया। तदुपरांत अर्जुन ने अकेले ही समस्त कौरव योद्धाओं को पराजित करके गौवों को पुन: प्राप्त किया। रणक्षेत्र से चलते हुए उसे उत्तरा (उत्तर की बहन) की बात याद आ गयी कि उसने अपनी गुड़िया के वस्त्र बनाने के लिए पराजित शत्रु सैनिकों के कपड़े मांगे थे। अत: अचेत शत्रुओं के रंग-बिरंगे कपड़े उतारकर वह साथ ले गया। शमी वृक्ष पर पहुंचकर अर्जुन ने अपने अस्त्र-शस्त्र पुन: वहीं रख दिये तथा पूर्ववत् वस्त्र धारण कर उत्तर से कहा कि वह विजय का श्रेय स्वयं ले तथा अर्जुन का परिचय अभी राजा विराट् को न दे। अभी वे दोनों वहां सुस्ता ही रहे थे कि राजा को नगर में पहुंचकर समाचार मिला कि उत्तर अकेला ही बृहन्नला को लेकर कौरवों से युद्ध करने गया है। राजा विराट् ने पुत्र की रक्षा के लिए तुरंत अपनी सेना भेजने का आयोजन किया। इतने में ही दूत ने उत्तर की विजय का समाचार दिया। राजा पुत्र की विजय पर बहुत प्रसन्न हुआ। कंक ने कहा—"जिसका सारथी बृहन्नला है, उसकी विजय निश्चित है।" कंक ने उत्तर से अधिक मान हिजड़े को दिया है, इससे क्रुद्ध होकर राजा ने हाथ का पासा युधिष्ठिर की नाक पर दे मारा—जहां से खून निकलने लगा। द्वारपाल ने उत्तर तथा बृहन्नला के आगमन की सूचना दी। कंक ने अकेले उत्तर को अंदर भेजने के लिए कहा क्योंकि अर्जुन ने प्रण किया था कि यदि किसी के कारण भाई का खून निकलेगा तो वह जीवित नहीं रहने दिया जायेगा। सैरंध्री ने कंक को स्वर्ण-पात्र पकड़ा दिया था ताकि रक्त पृथ्वी पर न गिरे अन्यथा निर्दोष का रक्त पृथ्वी पर गिरने से राजा विराट् का समस्त राज्य नष्ट हो जाता। कालांतर में निश्चय करके एक प्रात: पांचों पांडवों तथा द्रौपदी ने राजा विराट् को अपना परिचय दिया। उत्तर ने बताया कि गौवों की रक्षा के लिए वास्तव में अर्जुन ने ही युद्ध किया था। राजा ने अपनी पुत्री उत्तरा का विवाह अर्जुन से करना चाहा, किंतु अर्जुन ने कहा कि वह उसे शिष्या अथवा पुत्री के समान मानता रहा है। अत: उसके पुत्र अभिमन्यु से उसका विवाह कर दिया गया। विवाह में धनधान्य सहित श्रीकृष्ण, बलराम, वसुदेव, द्रुपद आदि अनेक राजा सम्मिलित हुए।

म० भा०, विराटपर्व, अध्याय ३० से ७२ तक

गौतम (क) प्यासी भूमि एवं जनमेदिनी की प्यास शांत करने के लिए मेघरूपी कुएं को आकाश की ओर उत्प्रेरित करने के लिए गौतम ऋषि ने यज्ञ के द्वारा स्तुतिगान किया।

(दे० अहल्या)
ऋ० १।८१।९०

राजा माधव के मुंह में वैश्वानर अग्नि रहती थी। उसके पुरोहित गौतम ने उसे पुकारा तो वह बोला नहीं कि कहीं अग्नि मुंह से नीचे न गिर जाये। गौतम ने अग्नि का आह्वान किया। अग्नि इतनी प्रज्वलित हो उठी कि राजा उसे अपने मुंह में नहीं समा पाया। वह मुख से नीचे भूमि पर गिर गयी। उस समय राजा विदेह माधव सरस्वती के किनारे पर था। अग्नि से उत्तरी पहाड़ से निकलनेवाली सदानीरा नामक नदी को छोड़कर शेष समस्त नदियां सूखती गयीं तथा राजा और मंत्री जलते हुए उसके पीछे-पीछे चलने लगे, क्योंकि वैश्वानर ने सदानीरा को दग्ध नहीं किया था इसलिए पहले ब्राह्मण लोग उस नदी को पार नहीं करते थे। वैश्वानर से बची रहने के कारण नदी के आसपास बहुत ठंड थी। राजा ने अग्नि से पूछा—"मैं कहां रहूं?" अग्नि ने उसे सदानीरा के पूर्व की ओर रहने के लिए कहा।
तदनंतर गौतम ने राजा से मौन रहने का कारण पूछा। राजा ने बताया कि मुंह से अग्नि न गिर जाय, यह विचार कर ही वह चुप था पर गौतम के मंत्र बोलते हुए घृत का नाम लेते ही वह इतनी भभकी कि मुंह में संभालनी कठिन हो गयी।

ता० ब्रा०, १३।१२।६-८
श० प० १।४।१।१०

ब्रह्मा ने अमित प्रजा की रचना के उपरांत एक अतीव सुंदरी की रचना की। उसकी रचना में विरूपता नहीं थी अत: वह अ+हल्य कहलायी। ब्रह्मा ने उसका विवाह गौतम मुनि से कर दिया। इंद्र इससे विवाह करने का इच्छुक था। कामाधीन इंद्र ने गौतम का रूप धारण करके उसके साथ विहार किया। गौतम ने क्रुद्ध होकर इंद्र को शाप दिया—"हे इंद्र, तूने परायी स्त्री से भोग करने की प्रथा चलायी है अत: यह मनुष्य-लोक में फैल जायेगी। तूने जघन्य काम किया है इसलिए तू युद्ध में परास्त होगा और बंदी बनकर शत्रु के पास पहुंचेगा।"

गौतम ने अहल्या को भी शाप दिया। कि उसका रूप प्रजा में बंट जाये, वह आश्रम के पास ही नष्ट हो जाये; क्योंकि उसके साथ धोखे से संभोग किया गया था अत: अहल्या को उन्होंने इतनी छूट दी कि जब विष्णु रामचंद्र के रूप में विश्वामित्र का यज्ञ कराने के लिए वन में जायेंगे तब उनके दर्शनोपरांत वह निष्पाप हो जायेगी।

बा० रा०, उत्तरकांड, सर्ग ३०
श्लोक २० ४५

(ख) मध्यप्रदेश में गौतम नामक एक ब्राह्मण था जिसने वेदाध्ययन नहीं किया था। अत्यंत दरिद्र स्थिति में वह एक संपन्न गांव देखकर भीख मांगने गया। वहां एक धनवान दस्यु था—जिसने उसे रहने के लिए स्थान, एक वर्ष का भोजन, वस्त्र तथा एक पतिरहित दासी प्रदान की। वह सुखपूर्वक वहां रहता हुआ लक्ष्य बेधने का अभ्यास करने लगा। तदनंतर वह एक कुशल शिकारी तथा डाकू बन गया। एक दिन उसका पूर्व परिचित ब्राह्मण भिक्षा की खोज में वहां पहुंचा। गौतम को पहचानकर उसके कर्मों को देखकर उसने बहुत धिक्कारा। उसे उसके कुल-खानदान की याद दिलाकर डांटता रहा, किंतु उसने उसके घर की किसी वस्तु का स्पर्श नहीं किया। उसके चले जाने के बाद लज्जावश गौतम गृहत्याग कर समुद्र-तट की ओर बढ़ा। मार्ग में एक वैश्य दल के साथ हो लिया। किंतु एक हाथी के बिगड़ जाने से वह दौड़ा तो दल का साथ छूट गया। थका-मांदा वह एक बरगद के पेड़ के नीचे सुस्ताने लगा। उसपर अनेक पक्षियों का अधिवास था। वहां महर्षि कश्यप का पुत्र, ब्रह्मा का मित्र नाडीजंघ भी रहता था। वह बगुलों का राजा था तथा राजधर्मा नाम से विख्यात था। राजधर्मा ने उसका अतिथि-सत्कार किया तथा रात भर वहां विश्राम करने के लिए अनुरोध किया। प्रात:काल उसने अपने मित्र महाबली राक्षसराज 'विरूपाक्ष' के पास जाने के लिए प्रेरित किया। ब्राह्मण उसके पास पहुंचा तो अपना नाम तथा जाति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं बता पाया। विरूपाक्ष उसकी सहायता करना चाहता था, क्योंकि उसके मित्र ने गौतम को भेजा था, यद्यपि न वह विद्वान था, न सत्कर्मी, उसने शूद्र जाति की पूर्व विवाहिता स्त्री से विवाह भी कर रखा था, तथापि उसने अन्य ब्राह्मणों के साथ उसे भोजन कराया तथा सोने और हीरे के बने पात्रों के साथ रत्नादि भी भेंटस्वरूप दिये। साथ ही सब ब्राह्मणों से कहा कि एक दिन तक उन्हें राक्षसों से कोई भय नहीं रहेगा, वे तुरंत घर चले जायें। गौतम वह सब लेकर जाते हुए बरगद के पेड़ तक पहुंचा। राजधर्मा का आतिथ्य ग्रहण कर विश्राम करते हुए उसने सोचा कि घर दूर है, रास्ते में कोई भोज्य पदार्थ मिलेगा नहीं, क्यों न राजधर्मा को मारकर साथ ले लिया जाये? राजधर्मा उसकी रक्षा के लिए आग जलाकर पास ही सो रहा था। ब्राह्मण ने उसे जलती हुई लकड़ी से मार डाला। दो दिन तक जब राजधर्मा विरूपाक्ष के यहां नहीं गया तो विरूपाक्ष चिंतित हो उठा; क्योंकि समस्त पक्षी प्रतिदिन ब्रह्मा की आराधना के लिए जाया करते थे। राजधर्मा लौटते हुए प्रतिदिन उससे मिलने जाता था। विरूपाक्ष को बार-बार स्वाध्याय रहित हिंसक गौतम का स्मरण आता रहा। उसे लग रहा था कि गौतम ने ही कुछ गड़बड़ी की है। उसने अपने पुत्र को अपने मित्र की खोज-खबर लेने भेजा। राक्षस पुत्र ने वटवृक्ष के नीचे कंकाल, हड्डियों का ढेर देखा तो गौतम को पकड़ने के लिए भाग-दौड़ की। अंततोगत्वा उसने ब्राह्मण को राजधर्मा के शव सहित पकड़ लिया और पिता के पास ले गया। विरूपाक्ष ने पुत्र से कहा कि वह ब्राह्मण को मार डाले और राक्षस स्वेच्छा से उसके मांस— उपयोग करें किंतु राक्षसों ने उस अधम का मांस खाने की अनिच्छा प्रकट की तो उसे दस्युओं के हवाले करने का निश्चय किया गया। दस्युओं ने भी उस कृतघ्न का मांस खाने से इंकार कर दिया। क्योंकि ब्राह्मण-मांस का भोजन का प्रायश्चित्त तो शास्त्रों में है, किंतु मित्रद्रोही का नहीं। तदनंतर विरूपाक्ष ने अपने मृत मित्र के लिए एक चिता तैयार करवा दी। उसपर बकराज का शव रखकर आग जला दी। उसी क्षण ब्रह्माप्रेषित सुरभि आकाश में प्रकट हुई। उसके मुंह से दुग्धमिश्रित फेन शव पर गिरी तो बकराज पुनर्जीवित हो उड़कर विरूपाक्ष के पास चला गया। इंद्र ने प्रकट होकर बताया कि एक बार ब्रह्मा की सभा में न पहुंच पाने के कारण राजधर्मा को यह शाप मिला था कि वह वध का कष्ट भोगेगा किंतु उसे पुनर्जीवित करने का प्रयत्न विरूपाक्ष ने ही किया है। राजधर्मा ने इंद्र से गौतम को पुनर्जीवन दान करने का अनुरोध किया। गौतम को जीवित देख बकराज ने उसे सप्रेम विदा किया। उस शूद्र दासी (पत्नी-

वत्) के उदर से गौतम ने अनेक पापाचारी पुत्रों को जन्म दिया ।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय १६८, श्लोक ३०-५२, अ० १६६-१७३

(ग) गौतम नामक एक ब्राह्मण था । वह अत्यत दयालु था । एक कष्ट सहते हुए मातृविहीन हाथी शावक को उसने पुत्रवत् पालकर बड़ा किया । वह श्वेत वर्ण का था । एक दिन इंद्र ने धृतराष्ट्र का रूप धारण कर उस हाथी का अपहरण कर लिया । गौतम ने बहुत दुखी होकर अपना हाथी मांगा और कहा—"इस समय न देने पर स्वर्ग, नरक, यम आदि में से किसी लोक में पहुंचकर उसे हाथी वापस करना पड़ेगा ।" धृतराष्ट्र ने कहा कि उसे किसी लोक में जाना ही नहीं है । तदनंतर गौतम ने इंद्र को पहचान लिया । इंद्र ने हाथी के प्रति उसका सच्चा स्नेह देखकर उसे वह लौटा दिया ।

म० भा०, दानधर्मपर्व, अध्याय १०२,

(घ)एक बार भयानक दुर्भिक्ष से त्रस्त होकर ब्राह्मण गौतम के आश्रम पर पहुंचे । गौतम नित्य गायत्री की प्रार्थना करते थे अत: उन्हें कोई कष्ट नहीं था । ब्राह्मणों को भी उन्होंने गायत्री का जाप करते हुए आश्रम में रहने को कहा । एक दिन गायत्री माता ने प्रत्यक्ष दर्शन देकर गौतम को एक कटोरा दिया, जिससे यथेच्छ अन्न इत्यादि खाद्य पदार्थ, वस्त्र तथा पशु आदि भी प्राप्त हो सकते थे । गौतम ने बारह वर्षों तक ब्राह्मणों की सेवा की । इंद्र इत्यादि देवता गौतम की कीर्ति सुनकर उनके दर्शन करने उनके आश्रम में पहुंचे । उन सबके मुंह से गौतम की प्रशंसा सुनकर ब्राह्मण बालक ईर्ष्या का अनुभव करने लगे तथा वे मंत्रणा करने लगे कि किसी प्रकार से ऋषि की कीर्ति का ह्रास हो । सुभिक्ष होने पर (दुर्भिक्ष की समाप्ति पर) एक दिन उन ब्राह्मणों ने माया से एक वृद्धा गौ का निर्माण किया । यज्ञ के समय उसे शाला से हटाने के लिए गौतम ने ज्योंही हूहू किया, उसने प्राण त्याग दिये । गौहत्या के कारण सबने ऋषि को धिक्कारा । गौतम ने ध्यान लगाकर समस्त घटना को जान लिया तथा क्रोधावेश में ब्राह्मणों को गायत्री विमुख होकर अधम होने का शाप दिया । ब्राह्मण देवी के अनुष्ठान से विमुख होकर पतित हो गये । गौतम के शाप से ही उन्होंने पंचतंत्र, कामशास्त्र, कापालिक मत तथा बौद्ध धर्म में श्रद्धा स्थापित कर ली । गौतम ने महादेवी को प्रणाम किया तो देवी ने हंसकर कहा-"सांप को दिया दूध विष के निमित्त ही होता है ।" तदनंतर ब्राह्मणों ने दु:ख से प्रायश्चित्त किया, मुनि से क्षमा मांगी । मुनि ने कहा—"कृष्णावतार होने तक ब्राह्मणों को कुंभीपाक नरक भोगना पड़ेगा, फिर कलियुग में ब्राह्मणों का पुनर्जन्म होगा ।"

दे० भा० १२।६

गौतमी गौतमी नामक ब्राह्मणी के पुत्र की मृत्यु सर्पदंशन से हो गयी तो निकटवर्ती व्याध अत्यंत क्रुद्ध हो उठा । उसने सर्प को पकड़ लिया और गौतमी से पूछा कि उसका वध किस प्रकार करना चाहिए । गौतमी ने कहा—"सर्प को मारने से क्या लाभ ? उसको छोड़ दो ।" व्याध का मत था कि दोषी से बदला लेकर मन शांत हो जाता हैं, साथ ही उसकी मृत्यु अनेक मनुष्यों को भावी दंशन से मुक्ति प्रदान कर देगी । तभी सर्प मानव-भाषा में बोला कि अपराध उसका नहीं है, क्योंकि वह मृत्यु-प्रेषित था । मृत्यु ने वहां आकर कहा कि वह भी दोषी नहीं है, वह काल-प्रेरित थी । तभी काल भी वहां पहुंच गया । उसने कहा—"मनुष्य के कर्म प्रत्येक घटना के लिए उत्तरदायी होते हैं ।" गौतमी ने उसकी बात स्वीकार की और यह सोचकर कि उसके तथा उसके पुत्र के कर्मो के कारण ही यह दिन देखना पड़ा—मन में संतोष धारण कर लिया ।

म० भा०, दानधर्मपर्व, अध्याय १

ग्रहपति विश्वामित्र ने सचक्षुमति से विवाह किया तथा दीर्घकाल के उपरांत शिव की कृपा से एक पुत्र प्राप्त किया जिसका नाम ग्रहपति रखा गया । नारद ने उसका हाथ देखकर बताया कि बारहवें वर्ष में अनिष्ट है । माता-पिता चिंतित हो उठे । ग्रहपति ने कहा कि शिव की कृपा से उसका कुछ भी अनिष्ट नहीं हो सकता । विश्वामित्र की प्रेरणा से ग्रहपति ने शिवलिंग की स्थापना करके तपस्या की । शिव ने इंद्र के रूप में प्रकट होकर वर मांगने को कहा । ग्रहपति ने बताया कि उसका इष्ट तो मात्र शिव है । प्रसन्न होकर शिव ने उसे देवता होकर तीनों लोकों में भ्रमण करने का वर दिया । उसके माता-पिता को दिक्पति बना दिया तथा स्वयं उसी शिवलिंग में समा गये ।

शि० पु०, ७।२७-२८

घंटाकर्ण श्रीकृष्ण बदरिकाश्रम गये और समाधि लेकर तपस्या करने लगे। रात के समय अनेक मशाल जल उठीं। मृग और कुत्ते जानवर तथा दो भयानक पिशाच विष्णु की स्तुति करते हुए वहां पहुंचे। कृष्ण को देखकर पिशाचों ने उनका परिचय पूछा। कृष्ण ने अपना लौकिक परिचय देकर उन सबके विषय में पूछा। उनमें से एक पिशाच का नाम घंटाकर्ण था। उसने कहा—"मैं पापपूर्ण कृत्य करता हुआ विष्णु के नाम से भी दूर रहता था। अपने कानों से उसका नाम न सुन पाऊं, इस कारण से कानों में घंटे लटकाकर रहता था। आराधना से शिव को प्रसन्न करके मैं मुक्ति प्राप्त करना चाहता था। शिव ने बदरिकाश्रम में विष्णु की शरण में जाने को कहा। विष्णु जगत्पालक हैं, यह जानते हुए मैं इन कुत्तों आदि के साथ यहां पहुंचा हूं ताकि उनके दर्शन कर पाऊं।" तदनंतर वह कुशासन पर समाधि लगाकर बैठ गया। ध्यान में विष्णु के दर्शन करके उसने कृष्ण के अलौकिक रूप को पहचान लिया। उसने हाल ही में मारे गये ब्राह्मण के शव को धोकर दो टुकड़ों में बांटा और एक पात्र में रखकर श्रीकृष्ण को अर्पित किया। पिशाच का भोजन वही था। उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर उसे अपने भाई (दूसरे पिशाच) सहित कृष्ण ने वर दिया कि जब तक इंद्र रहेंगे, वे दोनों इंद्रलोक में भोगों का उपभोग करेंगे। तदुपरांत वे दोनों इंद्रलोक से ऊपर उठकर सायुज्य मुक्ति प्राप्त करेंगे। कृष्ण की कृपा से वह ब्राह्मण पुन: जीवित हो गया तथा पिशाचों ने सुंदर रूप प्राप्त किया। कृष्ण की तपस्या से प्रसन्न होकर, कालांतर में शिव ने दर्शन दिए। दोनों ने परस्पर स्तुति की।

हरि० व० पु०, भविष्यपर्व।७३-८०।

घटोत्कच घटोत्कच भीमसेन का पुत्र था। उसका जन्म हिडिंबा (राक्षसी) के उदर से हुआ था। दिग्विजय के संदर्भ में सहदेव ने दक्षिणी सीमा पर समुद्र के तट पर डेरा डालकर घटोत्कच को स्मरण किया। घटोत्कच के आने पर सहदेव ने उसे लंका के राजा विभीषण से कर वसूल करने का आदेश दिया। उसने सहज ही कर लाकर सहदेव को अर्पित कर दिया।

म० भा०, सभापर्व, अध्याय ३१, श्लोक ७२ के उपरांत

महाभारत के युद्ध में एक बार भगदत्त ने घटोत्कच के रथ का खंडन कर उसे युद्ध-क्षेत्र से भगा दिया था। आठवें दिन घटोत्कच ने न केवल वीरता का परिचय दिया अपितु अपनी माया के बल से समस्त कौरव सेना को भागने के लिए बाध्य कर दिया। घटोत्कच की ध्वजा में गीध शोभा पाता था। युद्ध के चौदहवें दिन की रात्रि में सात्यकि की ओर बढ़ती हुई शत्रुसेना से घटोत्कच का युद्ध हुआ। अपने पुत्र अंजनपर्वा को अश्वत्थामा के हाथों मारा गया देखकर वह अत्यंत क्रुद्ध हो उठा तथा मायावी युद्ध करने लगा। कभी आकाश से मूसलों की, पत्थरों तथा अस्त्र-शस्त्रों की वर्षा करता, कभी अदृश्य हो जाता, फिर से प्रकट होकर तरह-तरह की माया का प्रसार करता। उसके साथ अन्य अनेक राक्षसों ने भी अश्वत्थामा पर आक्रमण किया किंतु अश्वत्थामा सबका सामना करने में समर्थ रहे। रात्रि-युद्ध में मशाल जलाकर कौरव-पांडव युद्धरत थे। कर्ण का अचूक निशाना पांडवों को त्रस्त करने लगा। अर्जुन कर्ण से युद्ध करने

के लिए उतावला था किंतु कृष्ण ने यह बताकर कि कर्ण के पास इंद्र की दी हुई एक अमोघ शक्ति है, उसे रोक लिया तथा घटोत्कच को कर्ण से युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। कौरवों ने उसे युद्ध-क्षेत्र में आता देखा तो वे घबरा गये। तभी राक्षस जटासुर के बेटे अलंबुष ने दुर्योधन से कहा कि उसके पिता को पांडवों ने राक्षस-विनाश कर्म के संदर्भ में मार डाला था, अत: वह उनसे बदला लेना चाहता है। दुर्योधन ने उसे घटोत्कच से युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। द्वंद्व-युद्ध में घटोत्कच ने उसे मार डाला। उसका सिर काटकर दुर्योधन को समर्पित किया तथा उससे कहा कि वह कर्ण सहित इसी गति के लिए तैयार रहे। घटोत्कच और कर्ण का जमकर युद्ध हुआ। विविध अस्त्रों का प्रयोग करने के उपरांत घटोत्कच ने दिव्य सहस्रार चक्र का प्रयोग किया जिसे कर्ण ने नष्ट कर दिया। घटोत्कच ने क्रोधवश माया का प्रसार किया। कभी वह आकाश से वृक्षों की वर्षा करता, कभी धरती पर खड़ा हुआ युद्ध करता। कभी वह अनेक टुकड़ों में विभक्त पड़ा हुआ-सा जान पड़ता, कभी अनेक विकराल मुंह धारण कर लेता। कभी विशाल हो जाता तो कभी अंगूठे के बराबर। उस युद्ध में उसने कौरवपक्षीय राक्षस अलायुध का वध कर दिया। वह कभी ऐसे रूप धारण करता कि जंगली जानवर तथा सर्प सब ओर से काटते जान पड़ते। कौरव ने कर्ण को प्रेरित किया कि जो शक्ति उसने अर्जुन के लिए रखी थी, उसका प्रयोग घटोत्कच पर ही कर दे। कर्ण ने शक्ति के द्वारा उसका हनन कर दिया।

म० भा०, भीष्मवधपर्व, अध्याय ८३, श्लोक ३०-४२
अ० ९४, ४१-५०, २३, ९०,
द्रोणपर्व, १५६, ५७, से ८०,
९२-१९०
द्रोणपर्व, १७३ से १७९ तक

घुस्मेश्वर एक ब्राह्मण की कोई संतान नहीं थी। उसकी पत्नी (सुदेहा) ने आग्रहपूर्वक उसकी दूसरी शादी करवा दी। दूसरी पत्नी का नाम घुस्मा था। उसने पुत्र को जन्म दिया। तदनंतर सुदेहा को उससे ईर्ष्या होने लगी। यद्यपि घुस्मा कहती थी—"यह तुम्हारा ही पुत्र है, मैं तो तुम्हारी बांदी हूं।" किंतु सुदेहा को संतोष नहीं हुआ। बड़े होने पर पुत्र का विवाह भी हो गया। सुदेहा ने ईर्ष्या-वश उसके सोते हुए पुत्र को मार डाला। सुदेहा ने उसका सिर काटकर वहां डाल दिया जहां घुस्मा शिव-पूजन के उपरांत पार्थिव मृत्तिका-निर्मित शिवलिंग डाल देती थी। घुस्मा शिवभक्त थी। जो कुछ हुआ, उसने शिव पर छोड़ दिया। शिव ने प्रकट होकर सुदेहा को सजा देने की बात कही किंतु घुस्मा ने रोक दिया। घुस्मा की प्रेरणा से शिव ने वहां घुस्मेश्वर नामक शिवलिंग की स्थापना की, साथ ही उन्होंने घुस्मा को सौ पुत्र प्रदान किये।

शि० पु० ८।५०-५१

घोषा कक्षीवत की पुत्री का नाम घोषा था। घोषा समस्त आश्रमवासियों की लाडली थी किंतु बाल्यावस्था में ही रोग से उसका शरीर विकृत हो गया था। अत: उससे किसी ने विवाह करना स्वीकार नहीं किया। वह साठ वर्ष की वृद्धा हो गयी; किंतु कुमारी ही थी। एक बार उदासी के क्षणों में अचानक उसे ध्यान आया कि उसके पिता कक्षीवत ने अश्विनीकुमारों की कृपा से आयु, शक्ति तथा स्वास्थ्य का लाभ किया था। घोषा ने भी तपस्या की। साठवर्षीय यह मंत्रद्रष्टा हुई अश्विनीकुमारों का स्वतन किया। उसपर प्रसन्न होकर अश्विनीकुमारों ने दर्शन दिये और उसकी उत्कट आकांक्षा जानकर उसे नीरोग कर रूप-यौवन प्रदान किया। तदनंतर उसका विवाह संपन्न हुआ। अश्विनीकुमारों की कृपा से ही उसने पुत्र-धन आदि भी प्राप्त किये।

ऋ० १।११७, १२० से १२३

□

चंड-मुंड धूम्रलोचन के वध का समाचार सुनकर शुंभ-निशुंभ ने चडमुंड को देवी से युद्ध करने के लिए भेजा। पुन: असुरों की सेना देखकर अंबिका ने विकराल रूप धारण कर लिया। उसका रंग काला पड़ गया। दंत-पंक्ति चमकने लगी। जीभ बाहर निकालकर वह अट्टहास करती हुई असुर सेना की ओर बढ़ी। असुरों का रक्तपान करती हुई ललकारती हुई तथा उनके मुंडों की माला धारण करके वह आगे बढ़ी। चंड के बाल पकड़कर देवी ने उसका सिर तलवार से काट दिया तथा मुंड को खट्वांग से मार डाला। असुर सेना भागती चली गयी। तब काली चंड और मुंड के मस्तक उठाकर चंडिका के निकट उपस्थित हुई और बोली --"इन दोनों का हनन करके मैं तुम्हें समर्पित करती हूं, अब शुंभ-निशुंभ का हनन तुम स्वयं करना।" चंडिका देवी काली से बोलीं—"तुमने चंड और मुंड का संहार किया है इसलिए तुम 'चामुंडा' के नाम से विख्यात होगी।"

मा० पु०, ८४

चंद्रमा ब्रह्मा के पुत्र अत्रि हुए और अत्रि के नेत्रों से चंद्रमा का जन्म हुआ। ब्रह्मा ने चंद्रमा को ब्राह्मण, औषधि तथा नक्षत्रों का अधिपति बना दिया। वह तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर राजसूय यज्ञ कर मदमस्त हो उठा। उसने बृहस्पति की पत्नी का हरण कर लिया। देवताओं सहित रुद्र ने चंद्रमा से युद्ध किया। शुक्राचार्य को बृहस्पति से द्वेष था, अत: उसने चंद्रमा का साथ दिया। बृहस्पति की पत्नी (तारा) निमित्त घोर संग्राम हुआ। अंगिराओं ने ब्रह्मा से प्रार्थना कर युद्ध रुकवाया तथा ब्रह्मा ने चंद्रमा को डांट-डपटकर तारा को वापस करवाया। बृहस्पति ने अपनी पत्नी प्राप्त कर ली। वह गर्भवती थी। उसकी कोख से चंद्रमा के पुत्र बुध ने जन्म लिया।

श्रीमद् भा०, नवम स्कंध, अध्याय १४, श्लोक १-१४, वि० पु०, ४।६।१-४७

ब्रह्मा के मन से अत्रि मुनि का जन्म हुआ। मुनि ने हजार देव-वर्ष तक घोर तपस्या की। उनका वीर्य शरीर के ऊर्ध्व भाग में जाकर अमृत बन गया तथा अत्यंत प्रकाशमय रूप में नेत्रों से प्रवाहित होने लगा। ब्रह्मा की आज्ञा से दसों दिशाओं ने वीर्य को ग्रहण किया किंतु वे गर्भ संभाल नहीं पायीं अत: वह पृथ्वी पर गिर गया। ब्रह्मा ने उसे एक रथ पर स्थापित किया। रथ से उसने (पृथ्वी पर गिरे गर्भ ने) समुद्र सहित पृथ्वी की २१ परिक्रमाएं कीं जिससे उसका तेज पृथ्वी में व्याप्त हुआ। ब्रह्मा ने उसे चंद्रमा नाम दिया तथा उसे बीज, औषधि, ब्राह्मण तथा जल का राज्य दिया। चंद्रमा ने एक लाख दक्षिणा-वाले राजसूय यज्ञ को संपन्न किया। उसने ब्रह्मर्षियों को तीनों लोक दिये। तदनंतर ऐश्वर्य के मद से उसने बृहस्पति की पत्नी तारा का अपहरण कर लिया। शुक्र आदि दैत्यों ने चंद्रमा का तथा महादेव सहित देवताओं ने बृहस्पति का साथ दिया। दोनों पक्षों का युद्ध ठन गया। ब्रह्मा ने बृहस्पति को उसकी पत्नी लौटवा दी। वह गर्भवती थी। उसने मूंज के ढेर पर चंद्र के पुत्र बुध को जन्म दिया।

शुक्र तारा को चंद्रमा से लेकर आये तथा बृहस्पति के साथ गंगास्नान करने पर उसके पापों का नाश हुआ।

ब्र० पु०, १५२।-

ब्र० पु०, ९।-

दक्ष ने अपनी कन्याओं में से सत्ताइस का विवाह चंद्रमा के साथ किया था। चंद्रमा उन सबसे एक-सा व्यवहार न करके रोहिणी से सर्वाधिक प्रेम करता था अतः रुष्ट होकर दक्ष ने उसे क्षय से पीड़ित होने का शाप दिया। चंद्रमा ने ब्रह्मा के चरणों में अनुनय-विनय की। ब्रह्मा की प्रेरणा से चंद्रमा ने प्रभास क्षेत्र में शिवलिंग की स्थापना की तथा छः मास तप किया। शिव ने प्रसन्न होकर उसे प्रतिमास घटने और बढ़ने की व्यवस्था प्रदान की क्योंकि दक्ष का शाप पूरी तरह समाप्त नहीं हो सकता था।

शि० पु०, ८।१९-२०।-

चंद्रमा की तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने सूर्यलोक से एक लाख योजन ऊपर चंद्रलोक प्रदान किया। वह ताप और दुःख से अछूता लोक है।

शि० पु०, १२।१३

बृहस्पति की पत्नी तारा चंद्रमा के घर गयी। तारा और चंद्रमा परस्पर मुग्ध होकर कामातुर हो उठे। वे दोनों वहीं रहने लगे। बृहस्पति के कहने पर भी चंद्रमा ने गुरु-पत्नी को वापस नहीं किया। दुबारा चंद्रमा के घर जाने पर द्वारपाल ने उन्हें घर के अंदर नहीं जाने दिया। वे द्वार पर ही प्रतीक्षा करते रहे। बृहस्पति ने शाप देने की धमकी दी तो चंद्रमा ने कहा—"तारा रूपवती है, वह तुम्हारे योग्य नहीं है—कोई कुरूपा ढूंढ़ो।" बृहस्पति ने इंद्र से कहा। इंद्र ने अपना विचक्षण दूत भेजा किंतु सब व्यर्थ। शुक्र का बृहस्पति से वैर था, अतः उसने चंद्र की सहायता की। इंद्र के साथ देवताओं ने बृहस्पति का पक्ष लिया। भयानक लंबा देवासुर संग्राम हुआ। अंत में ब्रह्मा ने भृगु को बुलाकर चंद्र के पास भेजा। भृगु ने कहा—"असुरों के संपर्क से तुम्हारी मति भ्रांत हो गयी है। तुम्हारे पिता की आज्ञा है कि गुरु-पत्नी वापस करो।" चंद्रमा ने तारा को वापस कर दिया। इसी मध्य गर्भाधान हो जाने के कारण तारा ने चंद्रमा के पुत्र 'बुध' को जन्म दिया। बृहस्पति के जात-कर्म संस्कार करने पर चंद्रमा ने आपत्ति की तभी उसने यह भी बताया कि बुध उसका पुत्र है, बृहस्पति का नहीं।

दे० भा०, स्कंध १, अध्याय ११।

चंद्रसेन राजा चंद्रसेन ने शिवाराधना की। शिव के गण मणिभद्र ने उसे एक-एक चिंतामणि प्रदान की जो समस्त चिंताओं तथा कष्टों को दूर करनेवाली थी। देश के अन्य राजाओं ने मिलकर उसपर आक्रमण कर दिया क्योंकि वे मणि ग्रहण करना चाहते थे। उन्हीं दिनों पांच साल के एक बालक ने चंद्रसेन की पूजा देखकर एक पत्थर की प्रतिष्ठा की और शिव की उपासना करने लगा। उसकी मां उसे भोजन के लिए बुलाने गयी। बालक के न चलने पर उस गोपिका ने उसे मारा और मिट्टी से बना शिवलिंग उठाकर दूर फेंक दिया। बालक बहुत रोया और मूर्च्छित हो गया। होश आने पर उसने अपने को एक रत्नजटित खंभों से युक्त शिव-मंदिर में पाया। वहां शिव ने साक्षात् दर्शन दिये। बालक ने अपनी मां के अपराध के लिए क्षमा-याचना की। तभी उसने देखा कि मां रत्नजटित शैया पर सो रही है। बालक के जगाने पर वह भी वातावरण के वैचित्र्य से आश्चर्यचकित हो उठी। सब योद्धाओं ने हथियार डालकर चंद्रसेन को उक्त घटना के विषय में बताया। राजा भी मंदिर में पहुंचा। वहां उसने भी महाकाल के दर्शन किए। हनुमान ने प्रकट होकर कहा—"गोपों की आठवीं पीढ़ी में शिव की आज्ञा से विष्णु कृष्ण-रूप में जन्म लेंगे। आज से इस बालक का नाम श्रीकर होगा।" यह कहकर हनुमान अंतर्धान हो गये। शिव ने गोप बालक से प्रसन्न होकर उसे धनधान्य से परिपूर्ण कर दिया तथा गोपों का राजा बना दिया। समस्त राजा शिवभक्ति की महिमा देखकर वहां से भाग खड़े हुए।

शि० पु०, ८।२३-२४, १०।९-१०

चक्रतीर्थ (क)—दक्ष की अवहेलना से रुष्ट होकर शिव ने उसके यज्ञ को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। उसमें समस्त देवता दक्ष का साथ दे रहे थे। विष्णु ने अपना चक्र छोड़ा तो वह भी शिव ने हस्तगत कर लिया। कालांतर में देवासुर संग्राम में चक्र की आवश्यकता अनुभव हुई। विष्णु ने एक सहस्र कमल चढ़ाकर शिवाराधना करने का निश्चय किया। एक कमल कम होने पर विष्णु ने अपना एक नेत्र (कमलनयन) पूजा में चढ़ा दिया। शिव ने प्रसन्न होकर उनको चक्र तथा नेत्र दोनों ही प्रदान किये। जहां यह घटना घटी, वह स्थान चक्रतीर्थ नाम से विख्यात है।

ब्र० पु०, १०९

(चक्रतीर्थ के विषय में एक और कथा प्रचलित है)

(ख) गौतमी के तट पर वसिष्ठ आदि सात मुनियों ने सत्र-यज्ञ आरंभ किया। राक्षसों का उपद्रव समाप्त

करने के लिए ब्रह्मा ने मुक्तकेशी नामक अजामाया दी, जिसे देखने से ही राक्षस नष्ट हो जाते थे। शंबर नामक दैत्य ने उसे खा लिया, अतः विष्णु ने अपने चक्र से सब राक्षसों को मार डाला। चक्र-प्रक्षालन का स्थान चक्रतीर्थ कहलाया।

ब्र० पु०, १३४।-

चतुर्मुख ब्रह्मा ने एक सर्वोत्तम सर्वसुंदरी की रचना की जिसका नाम तिलोत्तमा था। उसके सौंदर्य में समस्त रत्नों का तिल-तिल सार सन्निहित किया गया था। वह शिव को लुभाती हुई उनकी परिक्रमा करने लगी। वह जिस-जिस दिशा में गयी, उस-उस दिशा में शिव का एक मनोरम मुख प्रकट हो गया। इसी कारण से शिव के चार मुख हो गये। पूर्व दिशावाले मुख से वे इंद्र पद का अनुशासन करते हैं। पश्चिम दिशावाले मुख से प्राणियों को सुख प्रदान करते हैं। उत्तर दिशावाला मुख पार्वती से वार्तालाप करता है तथा दक्षिण दिशावाला भयानक मुख रौद्र है जो प्रजा का संहार करता है।

म० भा०, दानधर्मपर्व, अध्याय १४१, श्लोक १-६

चाक्षुष मनु (६) राजा अनमित्र की पत्नी भद्रा ने एक पुत्र को जन्म दिया। मां वत्सलभाव में डूबी रहती और बेटा उसको देखकर मुस्कराता। एक दिन बेटे ने कहा--"मां, मैं इसलिए मुस्करा रहा हूं क्योंकि यहां अदृश्य भाव से एक बिल्ली खड़ी है जो मुझे खा जाना चाहती है। दूसरी ओर जातहारिणी है जो मुझे तत्काल हड़प लेना चाहती है। तीसरी तुम हो, जो पाल-पोसकर मुझसे उपभोग्य वस्तुएं प्राप्त करना चाहती हो। इन दोनों में और तुममें मात्र इतना ही अंतर है।" मां रुष्ट होकर सूतिका गृह से बाहर चली गयी। जातहारिणी ने तुरंत उसे उठा लिया और राजा विक्रांत की पत्नी के पास सुला दिया। विक्रांत के बेटे को एक ब्राह्मण के घर ले गयी, वहां उसे छोड़कर ब्राह्मण पुत्र को खा गयी। यह जातहारिणी का नित्यकर्म था—किसी के बच्चे को बदलना, किसी के बच्चे को खा लेना। राजा विक्रांत के घर में पलकर अनमित्र का बेटा बड़ा हुआ. उसका नाम आनंद रखा गया। आनंद को अपने पूर्वजन्म का भी स्मरण था। इस जन्म से पूर्व उसका जन्म ब्रह्मा के नेत्र से हुआ था अतः उसका पूर्व नाम चाक्षुष था। उपनयन संस्कार के समय पंडितजी ने उसे अपनी मां के पांव छूने के लिए कहा। आनन्द ने पूछा कि पांव जन्मदात्री मां के छूने हैं अथवा पालन करनेवाली मां के? तदनंतर उसने पंडितजी को अपने जन्म से लेकर समस्त घटनाओं के विषय में बताया। उसने पालक पिता को उनके पुत्र का निवास-स्थान भी बता दिया। वह तपस्या करने वन चला गया तथा राजा विक्रांत ने अपने वास्तविक पुत्र, चैत्र को बुलाकर राज्य करने योग्य बनाया। तपस्या में लगे हुए आनंद से ब्रह्मा ने प्रकट होकर कहा—"चाक्षुष! अभी तुम्हारे कर्म-भोग का अधिकार क्षीर्ण नहीं हुआ, अतः मुक्ति के हेतु तपस्या व्यर्थ है। तुम्हें मनु बनकर समस्त पृथ्वी का भोग करना है।" चाक्षुष (आनंद) ने ब्रह्मा की आज्ञा मान ली। उसने राजा उग्र की कन्या विदग्धा से विवाह किया तथा वह छठा मनु हुआ।

भा० पु०, ७३।

चाणूर कंस के विशेष मल्लों में से था। उसे कृष्ण को मारने के लिए छोड़ा गया। उस विशालकाय मल्ल को बालक कृष्ण ने मार डाला था।

हरि० व० पु०, विष्णुपर्व, ३०।

कृष्ण का चाणूर के साथ द्वंद्व युद्ध हुआ। दैत्य मल्ल चाणूर जितना अधिक कृष्ण के संघर्ष में आता था, उतना ही उसका बल क्षीण होता जाता था। कृष्ण ने चाणूर को धरती पर पटककर मार डाला।

वि० पु०, ५।२०।६३-७६

चायमान वीर वरशिख के नेतृत्व में तुर्वश तथा वृचीवंत ने चायमान तथा संजय के पुत्र प्रस्तोक को पराजित कर दिया। चायमान और प्रस्तोक बहुत लज्जित हुए। उन्होंने अपनी विजय के लिए यज्ञ करने का विचार किया। उन्होंने भारद्वाज से पुरोहित बनने के लिए प्रार्थना की। ऋषि ने प्रार्थना स्वीकार की तथा अपने पुत्र पायु से कहा कि वह उन लोगों को सामर्थ्यवान् बना दे। पायु ने धनुष, वाण, लोह वर्म, अश्व आदि समस्त युद्ध के उपकरणों का अलग-अलग अभिषेक किया। चायमान तथा प्रस्तोक ने नये उत्साह का अनुभव किया। भरद्वाज ने उनकी विजय के निमित्त इंद्र की स्तुति की। इंद्र ने प्रसन्न होकर युद्ध में उनका साथ दिया अतः चायमान तथा प्रस्तोक युद्ध में विजयी हुए तथा इंद्र ने वृत्तीवान के पुत्रों का हनन कर दिया। राजा तुर्वश तथा वरशिख के पुत्रों को वशवर्ती किया। विजयोपरांत उन्होंने ऋषि पायु को धनधान्य दक्षिणास्वरूप प्रदान किया।

ऋ० ६।२७, ७५, ६।४७।२५

चार्वाक महाभारत में विजय प्राप्त करने के उपरांत युधिष्ठिर जब राजमहल में पहुंचे तो बहुत लोग एकत्र थे। उन्होंने युधिष्ठिर का स्वागत किया। एक ओर बहुत-से ब्राह्मणों के मध्य ब्राह्मण-वेश में चार्वाक नामक राक्षस भी खड़ा था। वह दुर्योधन के परम मित्रों में से था। उसने आगे बढ़कर कहा—"मैं इन ब्राह्मणों की ओर से यह कहना चाहता हूं कि तुम अपने बंधु-बांधवों का वध करनेवाले एक दुष्ट राजा हो। तुम्हें धिक्कार है। तुम्हारा मर जाना ही श्रेयस्कर है।" युधिष्ठिर अवाक् देखते रह गये। ब्राह्मण आपस में खुसपुसाए कि हमारी ओर से यह ऐसा कहनेवाला कौन है, जबकि हमने ऐसा कहा ही नहीं? उन्हें अपमान की अनुभूति हुई, तभी कुछ ब्राह्मणों ने उसे पहचान लिया। उन्होंने युधिष्ठिर को आशीर्वाद देते हुए बतलाया कि वह दुर्योधन का मित्र है—राक्षस होते हुए भी ब्राह्मण-वेश में आया है। इससे पहले कि युधिष्ठिर कुछ कहें, ब्राह्मणों के तेज से जलकर चार्वाक वहां गिर गया। वह अचेतन तथा जड़ हो गया। श्रीकृष्ण ने बताया कि पूर्वकाल में चार्वाक ने अनेक वर्षों तक बद्रिकाश्रम में तपस्या की थी, तदनंतर उसने ब्रह्मा से वर प्राप्त किया कि उसे किसी भी प्राणी से मृत्यु का भय न रहे। ब्रह्मा ने साथ ही यह भी कहा कि यदि वह किसी ब्राह्मण का अपमान कर देगा तो उसके तेज से नष्ट हो जायेगा। दूसरे ब्राह्मणों की ओर से बोलने की बात कहकर उसने ब्राह्मणों को रुष्ट कर दिया—इसी से उनके तेज से वह भस्म हो गया। ब्राह्मणों ने सामूहिक रूप से युधिष्ठिर का अभिनंदन किया।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय ३८, ३९,

चिंचा एक सुंदरी का नाम चिंचा था। बुद्ध के शत्रुओं ने उसे बहकाया कि वह किसी प्रकार भगवान की निंदा का वातावरण उत्पन्न करे। वे शत्रुगण गौतम के आवास जेतवन के निकट तैर्थिकाराम में रहते थे। जिस समय धर्मोपदेश सुनकर लोग जेतवन से बाहर निकलते थे, चिंचा सज-धजकर जैतवन की ओर बढ़ती थी। रात-भर तैर्थिकाराम में रहकर प्रातःकाल लोगों पर यह व्यक्त करती हुई कि बुद्ध के विहार में रही हैं, अपने घर लौट जाती थी। एक दिन अपने पेट पर लकड़ी की मटकी बांधकर तथा उसे उत्तरीय से ढककर वह सभा में पहुंची और उसे बुद्ध का गर्भ बताने लगी। लोगों में विश्वास-अविश्वास का विवाद उत्पन्न हो गया। इंद्र ने यह देखा तो चार चूहे भेजे जिन्होंने बंधन की डोर काट दी। अतः लकड़ी का मटका उसके पैरों पर गिर गया। उससे दोनों पैरों के पंजे कट गये। उसका झूठ सबपर प्रकट हो गया। वह धरती में समा गयी।

बु० च०, ४।२

चिच्चिक एक वेदज्ञ ब्राह्मण दूसरों को बहुत कष्ट देता था, अतः वह अगले जन्म में दो मुंहवाला पक्षी बना। उसका नाम चिच्चिक था। राजा पवमाम की सहायता से वह गौतमी तक पहुंचा तथा उसके तट पर गदाधर नामक तीर्थ में स्नान करके स्वर्ग चला गया।

ब्र० पु०, १६४।-

चित्रकेतु राजा चित्रकेतु की अनेक रानियां थीं तथापि उसकी कोई संतान नहीं हुई। वह धर्मात्मा सत्यपरायण राजा था। एक बार अंगिरा उसके आवास पर पधारे तथा त्वष्टा के योग्य चरु (आहुति) निर्माण करके उसका यजन किया। फलस्वरूप राजा को अपनी बड़ी रानी कृतद्युति से एक पुत्र की प्राप्ति हुई। राजा उस पुत्र तथा उसकी मां पर विशेष आसक्त रहने लगा। अतः शेष रानियों ने उसे विष दे दिया। बालक की मृत्यु पर राजा-रानी शोक से व्याकुल हो गये। नारद तथा अंगिरा ने दोनों को शांत करने का भरसक प्रयास किया। नारद ने मृत बालक की आत्मा का आवाहन करके उसे फिर से शरीर में प्रवेश कर राज्य-भोग के लिए कहा। आत्मा ने उत्तर दिया कि जब तक शरीर धारण किये रहे, तभी तक संबंधियों के सुख-दुःख का प्रभाव रहता है। वह आत्मा इससे पूर्व न जाने कितने शरीर धारण कर चुका है, अब इच्छुक नहीं है। जीवात्मा इस प्रकार कहकर चला गया तो राजा को सत्य का ज्ञान हुआ और वह मोह-बंधनों से मुक्त हो गया। नारद के उपदिष्ट मार्ग का अनुसरण कर राजा ने भगवान संकर्षण के दर्शन किये तथा आत्मा और परमात्मा के एकत्व को जाना। तदनंतर वह स्वच्छंद रूप से भगवत् प्रदत्त दिव्य विमान पर बैठकर आकाश में भ्रमण कर रहा था। उसने बड़े-बड़े सिद्धों की सभा में एक हाथ से पार्वती का आलिंगन करते हुए शिव को बैठे देखा। चित्रकेतु ने शिव के इस कृत्य की आलोचना करते हुए परिहास किया। शंकर तो परिहास सुनकर हंसने लगे, किंतु पार्वती को बुरा लगा। पार्वती ने उसे असुर-योनि में जाने का शाप दिया। चित्रकेतु ने रुष्ट पार्वती से अपने अपराध की

क्षमा मांगी और वहां से चला गया। शापवश वही वृत्रासुर के रूप में उत्पन्न हुआ।

श्रीमद् भा०, षष्ठ स्कंध, अध्याय १४-१७

चित्ररथ पांडवों के साथ कुंती ने पांचाल देश की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में गंगा के किनारे सोमाश्रयायण नामक तीर्थ पड़ता था। रात्रि की वेला में वे वहां जा निकले। उस समय गंगा में गंधर्वराज अंगारपर्ण चित्ररथ अपनी पत्नी के साथ जलक्रीड़ा कर रहा था। उस एकांत में पांडवों की पदचाप सुनकर वह क्रुद्ध हो उठा। पांडवों में सबसे आगे हाथ में मशाल लिये अर्जुन थे। चित्ररथ ने कहा कि रात्रि का समय गंधर्व, यक्ष तथा राक्षसों के विचरण के लिए निश्चित है अत: उनका आगमन अनुचित था। उसने अर्जुन पर प्रहार किया। अर्जुन ने उसपर आग्नेयास्त्र छोड़ दिया, जिससे वह मूर्च्छित हो गया। उसकी पत्नी कुंभीनसी ने युधिष्ठिर की शरण ग्रहण की। पांडवों ने चित्ररथ को छोड़ दिया। चित्ररथ ने कृतज्ञता प्रदर्शन करते हुए उन्हें चाक्षुषी विद्या सिखायी। इस विद्या के प्रभाव से, जिसे जिस रूप में देखने की इच्छा हो, देखा जा सकता है। चित्ररथ ने प्रत्येक पांडव को गंधर्वलोक के सौ-सौ घोड़े प्रदान किये जो स्वेच्छा से आकार-प्रकार तथा रंग बदलने में समर्थ थे। वे घोड़े कभी भी स्मरण करने पर उपस्थित हो सकते थे। अर्जुन ने चित्ररथ को दिव्यास्त्र (आग्नेयास्त्र) की विद्या प्रदान की। चित्ररथ का रथ उस युद्ध में खंडित हो गया था अत: उसने अपना नाम चित्ररथ के स्थान पर दग्धरथ रख लिया।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय १६९

चित्रांगद राजा चित्रवर्मा की बेटी का नाम सीमंतिनी था। उसका विवाह इंद्रसेन के पुत्र चित्रांगद से हुआ था। एक बार उसका पति नौका-विहार करते हुए डूब गया किंतु वह शिव की भक्ति में निरंतर लगी रही। वह अपने माता-पिता के पास चली गयी क्योंकि उसका ससुर इंद्रसेन एक ओर पुत्र-वियोग से व्याकुल था, दूसरी ओर शत्रुओं ने उसके राज्य पर अधिकार कर लिया था। तभी एक सोमवार का व्रत करते हुए उसे अपने पति की पुन: प्राप्ति हुई। पानी में डूब जाने पर चित्रांगद की रक्षा तक्षक आदि ने की थी। तीन वर्ष तक वह उनके साथ रहा, उस सोमवार को वह पुन: सीमंतिनी के पास लौट आया। इस प्रकार शिव की भक्ति के प्रभाव से वह कष्ट से मुक्त हुई।

शि० पु०, १०।१७-२०

चित्रांगदा चित्रांगदा मणिपुर नरेश चित्रवाहन की पुत्री थी। जब बनवासी अर्जुन मणिपुर पहुंचे तो उसके रूप पर मुग्ध हो गये। उन्होंने नरेश से उसकी कन्या मांगी। राजा चित्रवाहन ने अर्जुन से चित्रांगदा का विवाह करना इस शर्त पर स्वीकार कर लिया कि उसका पुत्र चित्रवाहन के पास ही रहेगा क्योंकि पूर्वयुग में उसके पूर्वजों में प्रभंजन नामक राजा हुए थे। उन्होंने पुत्र की कामना से तपस्या की थी तो शिव ने उन्हें पुत्र प्राप्त करने का वरदान देते हुए यह भी कहा था कि हर पीढ़ी में एक ही संतान हुआ करेगी अत: चित्रवाहन की संतान वह कन्या ही थी। अर्जुन ने शर्त स्वीकार करके उससे विवाह कर लिया। चित्रांगदा के पुत्र का नाम 'बभ्रुवाहन' रखा गया। पुत्र-जन्म के उपरांत उसके पालन का भार चित्रांगदा पर छोड़ अर्जुन ने विदा ली। चलने से पूर्व अर्जुन ने कहा कि कालांतर में युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ करेंगे, तभी चित्रांगदा अपने पिता के साथ इंद्रप्रस्थ आ जाय। वहां अर्जुन के सभी संबंधियों से मिलने का सुयोग मिल जायेगा।

म०भा०, आदिपर्व, अध्याय २१४, श्लोक १५ से २७ तक, अ० २१६ श्लोक २४ से ३५ तक

अश्वमेध यज्ञ के संदर्भ में अर्जुन मणिपुर पहुंचे तो बभ्रुवाहन ने उनका स्वागत किया। अर्जुन क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने यह क्षत्रियोचित नहीं माना तथा पुत्र को युद्ध के लिए ललकारा। उलूपी (अर्जुन की दूसरी पत्नी) ने भी अपने सौतेले पुत्र बभ्रुवाहन को युद्ध के लिए प्रेरित किया। युद्ध में अर्जुन अपने ही बेटे के हाथों मारा गया। चित्रांगदा उलूपी पर बहुत रुष्ट हुई। उलूपी ने संजीवनी मणि से अर्जुन को पुनर्जीवित किया तथा बताया कि वह एक बार गंगा तट पर गयी थी। वहां वसु नामक देवता गणों का गंगा से वार्तालाप हुआ था और उन्होंने यह शाप दिया था कि गंगापुत्र को शिखंडी की आड़ से मारने के कारण अर्जुन अपने पुत्र के हाथों भूमिसात होंगे, तभी पापमुक्त हो पायेंगे। इसी कारण से उलूपी ने भी बभ्रुवाहन को लड़ने के लिए प्रेरित किया था।

म० भा०, आश्वमेधिक पर्व ७९-८१

चिरकारी महर्षि गौतम का पुत्र धर्मपरायण था तथा प्रत्येक कार्य करने से पूर्व बहुत देर तक सोच-विचार करता था। अत: वह चिरकारी कहलाने लगा। एक बार इंद्र ब्राह्मण-वेश में गौतम के यहां पहुंचे। गौतम ने उनका स्वागत कर अपने घर में ठहराया। उन्होंने गौतम का सा

रूप धारण किया। गौतम की पत्नी ने उस रूप में उन्हें देख आत्मसमर्पण किया। गौतम ऋषि को पता चला तो वे बहुत रुष्ट हुए और उन्होंने चिरकारी को उसकी माता का वध करने की आज्ञा दी। गौतम भजन-पूजन के लिए चले गये। उनका पुत्र चिरकाल तक पिता की आज्ञा के औचित्य पर विचार करता रहा। उधर जब गौतम घर लौटे तब तक अपनी पत्नी की निर्दोषता पर किया गया आक्रोश उन्हें दग्ध करने लगा था। गौतम का सा रूप धारण करने के कारण दोष तो इंद्र का ही था, पत्नी का नहीं। यही विचार कर वे अपनी कठोर आज्ञा से संतप्त थे तथा सोच रहे थे कि यदि चिरकारी ने अभी उसका वध न किया हो तो कितना अच्छा हो। घर पहुंचकर उन्होंने देखा कि पुत्र तब तक भी सोच-विचार में डूबा हुआ था, पत्नी निश्चेष्ट-सी खड़ी थी। पुत्र ने उनके चरणों में सिर टिकाया। वह पिता की आज्ञा का पालन न कर पाने के कारण विचारमग्न था। मुनि ने प्रसन्नतापूर्वक दोनों को ग्रहण किया। वर्षों बाद उन्होंने अपने पुत्र के साथ स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया।

म० भा०, शांति पर्व, अध्याय १६५-१६६,

चीरहरण (क) मयनिर्मित सभाभवन में अनेक वैचित्र्य थे। दुर्योधन जब वहां घूम रहा था तब उसको अनेक बार स्थल पर जल की, जल पर स्थल की, दीवार में दरवाजे की और दरवाजे में दीवार की भ्रांति हुई। कहीं वह सीढ़ी में समतल की भ्रांति होने के कारण गिर गया और कहीं पानी को स्थल समझ पानी में भीग गया। ऐसे ही एक बावली में उसके गिर जाने पर युधिष्ठिर के अतिरिक्त शेष चारों पांडव हंसने लगे। दुर्योधन परिहासप्रिय नहीं था। अतः ईर्ष्या, लज्जा आदि से जल उठा। राजसूय यज्ञ में राजा अनेक प्रकार की भेंट लेकर आये थे। द्विजों में प्रधान कुणिंद ने धर्मराज को भेंट में एक शंख दिया, जो अन्नदान करने पर स्वयं बज उठता था। उसकी ध्वनि से वहां उपस्थित सभी राजा तेजोहीन तथा मूर्च्छित हो गये, मात्र धृष्टद्युम्न, पांडव, सात्यकि तथा आठवें श्रीकृष्ण धैर्यपूर्वक खड़े रहे। दुर्योधन आदि के मूर्च्छित होने पर पांडव आदि जोर-जोर से हंसने लगे तथा अर्जुन ने अत्यंत प्रसन्न होकर एक ब्राह्मण को पांच सौ बैल समर्पित किये। युधिष्ठिर ने वह शंख अर्जुन को भेंटस्वरूप दे दिया। इस प्रकार की अनेक घटनाओं से दुर्योधन चिढ़ गया था। अतः हस्तिनापुर जाते हुए उसने मामा शकुनि के साथ पांडवों को हराकर उनका वैभव हस्तगत करने की एक युक्ति सोची। शकुनि द्यूतक्रीड़ा में निपुण था—युधिष्ठिर को शौक अवश्य था किंतु खेलना नहीं आता था। अतः उन सबने मिलकर धृतराष्ट्र को मना लिया। विदुर के विरोध करने पर भी धृतराष्ट्र ने उसीको इंद्रप्रस्थ जाकर युधिष्ठिर को आमंत्रित करने के लिए कहा, साथ ही यह भी कहा कि वह पांडवों को उनकी योजना के विषय में कुछ न बताये। विदुर उनका संदेश लेकर पांडवों को आमंत्रित कर आये। पांडवों के हस्तिनापुर में पहुंचने पर विदुर ने उनको एकांत में संपूर्ण योजना से अवगत कर दिया तथापि युधिष्ठिर ने चुनौती स्वीकार कर ली तथा द्यूतक्रीड़ा में वे व्यक्तिगत समस्त वैभव हारने के बाद भाइयों को, स्वयं अपने को तथा अंत में द्रौपदी को भी हार बैठे। विदुर ने कहा कि अपने-आपको दांव पर हारने के बाद युधिष्ठिर द्रौपदी को दांव पर लगाने के अधिकारी नहीं रह जाते, किंतु धृतराष्ट्र ने प्रतिकामी नामक सेवक को द्रौपदी को वहां ले आने के लिए भेजा। द्रौपदी ने उससे यही प्रश्न किया कि धर्मपुत्र ने पहले कौन-सा दांव हारा है—स्वयं अपना अथवा द्रौपदी का। दुर्योधन ने क्रुद्ध होकर दुःशासन (भाई) से कहा कि वह द्रौपदी को सभाभवन में लेकर आये। युधिष्ठिर ने गुप्त रूप से एक विश्वस्त सेवक को द्रौपदी के पास भेजा कि यद्यपि वह रजस्वला है तथा एक वस्त्र में है, वह वैसी ही उठकर चली आये, सभा में पूज्य वर्ग के सामने उसका उस दशा में कलपते हुए पहुंचना दुर्योधन आदि के पापों को व्यक्त करने के लिए पर्याप्त होगा। द्रौपदी सभा में पहुंची तो दुःशासन ने उसे स्त्री वर्ग की ओर नहीं जाने दिया तथा उसके बाल खींचकर कहा—"हमने तुझे जुए में जीता है। अतः तुझे अपनी दासियों में रखेंगे।" द्रौपदी ने समस्त कुरुवंशियों के शौर्य, धर्म तथा नीति को ललकारा और श्रीकृष्ण को मन-ही-मन स्मरण कर अपनी लज्जा की रक्षा के लिए प्रार्थना की। सब मौन रहे किंतु दुर्योधन के छोटे भाई विकर्ण ने द्रौपदी का पक्ष लेते हुए कहा कि हारा हुआ युधिष्ठिर उसे दांव पर नहीं रख सकता था किंतु किसी ने उसकी बात नहीं सुनी। कर्ण के उकसाने से दुःशासन ने द्रौपदी को निर्वस्त्रा करने की चेष्टा की। उधर विलाप करती हुई द्रौपदी ने पांडवों की ओर देखा तो भीम ने युधिष्ठिर से कहा कि वह उसके हाथ जला देना चाहता है, जिनसे उसने जुआ खेला था। अर्जुन ने

उसे शांत किया। भीम ने शपथ ली कि वह दुःशासन की छाती का खून पियेगा तथा दुर्योधन की जांघ को अपनी गदा से नष्ट कर डालेगा। द्रौपदी ने विकट विपत्ति में श्रीकृष्ण का स्मरण किया। श्रीकृष्ण की कृपा से अनेक वस्त्र वहां प्रकट हुए जिनसे द्रौपदी आच्छादित रही फलतः उसके वस्त्र खींचकर उतारते हुए भी दुःशासन उसे नग्न नहीं कर पाया। सभा में बार-बार कार्य के अनौचित्य अथवा औचित्य पर विवाद छिड़ जाता था। दुर्योधन ने पांडवों को मौन देख 'द्रौपदी को, दांव में हारे जाने' की बात ठीक है या गलत, इसका निर्णय भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव पर छोड़ दिया। अर्जुन तथा भीम ने कहा कि जो व्यक्ति स्वयं को दांव में हरा चुका है, वह किसी अन्य वस्तु को दांव पर रख ही नहीं सकता। धृतराष्ट्र ने सभा की नब्ज पहचानकर दुर्योधन को फटकारा तथा द्रौपदी से तीन वर मांगने के लिए कहा। द्रौपदी ने पहले वर से युधिष्ठिर की दासभाव से मुक्ति मांगी ताकि भविष्य में उसका पुत्र प्रतिविंध्य दास पुत्र न कहलाए। दूसरे वर से भीम, अर्जुन, नकुल तथा सहदेव की, शस्त्रों तथा रथ सहित दासभाव से मुक्ति मांगी। तीसरा वर मांगने के लिए वह तैयार ही नहीं हुई, क्योंकि उसके अनुसार क्षत्रिय स्त्रियां दो वर मांगने की ही अधिकारिणी होती हैं। धृतराष्ट्र ने उनसे संपूर्ण विगत को भूलकर अपना स्नेह बनाए रखने के लिए कहा, साथ ही उन्हें खांडववन में जाकर अपना राज्य भोगने की अनुमति दी। धृतराष्ट्र ने उनके खांडववन जाने से पूर्व, दुर्योधन की प्रेरणा से, उन्हें एक बार फिर से जुआ खेलने की आज्ञा दी। यह तय हुआ कि एक ही दांव रखा जायेगा। पांडव अथवा धृतराष्ट्र पुत्रों में से जो भी हार जायेंगे, वे मृगचर्म धारण कर बारह वर्ष वनवास करेंगे और एक वर्ष अज्ञातवास में रहेंगे। उस एक वर्ष में यदि उन्हें पहचान लिया गया तो फिर से बारह वर्ष का वनवास भोगना होगा। भीष्म, विदुर, द्रोण आदि के रोकने पर भी द्यूत-क्रीड़ा हुई जिसमें पांडव हार गये, छली शकुनि जीत गया। वनगमन से पूर्व पांडवों ने शपथ ली कि वे समस्त शत्रुओं का नाश करके ही चैन की सांस लेंगे।

श्रीधौम्य (पुरोहित) के नेतृत्व में पांडवों ने द्रौपदी को साथ ले वन के लिए प्रस्थान किया। श्री धौम्य साम मंत्रों का गान करते हुए आगे की ओर बढ़े। वे कहकर गये थे कि युद्ध में कौरवों के मारे जाने पर उनके पुरोहित भी इसी प्रकार साम गान करेंगे। युधिष्ठिर ने अपना मुंह ढका हुआ था (वे अपने क्रुद्ध नेत्रों से देखकर किसी को भस्म नहीं करना चाहते थे), भीम अपने बाहु की ओर देख रहा था (अपने बाहुबल को स्मरण कर रहा था), अर्जुन रेत बिखेरता जा रहा था (ऐसे ही भावी संग्राम में वह बाणों की वर्षा करेगा), सहदेव ने मुह पर मिट्टी मली हुई थी (दुर्दिन में कोई पहचान न ले), नकुल ने बदन पर मिट्टी मल रखी थी (कोई नारी उसके रूप पर आसक्त न हो), द्रौपदी ने बाल खोले हुए थे, उन्हीं से मुंह ढककर विलाप कर रही थी (जिस अन्याय से उसकी वह दशा हुई थी, चौदह वर्ष बाद उसके परिणाम-स्वरूप शत्रु-नारियों की भी वही दशा होगी, वे अपने सगे-संबंधियों को तिलांजलि देंगी)।

म० भा०, सभापर्व, अध्याय ४७ से ७७ तक

अ० ८१/-

(ख) हेमंत ऋतु से पूर्व ब्रजकुमारियां कात्यायनी व्रत करके यमुना में स्नान कर रही थीं। उन्होंने अपने वस्त्र तट पर रख दिये थे। श्रीकृष्ण ने उन सबके वस्त्र उठा लिए तथा निकटवर्ती कदंब के वृक्ष पर चढ़ गये। गोपिकाओं ने अपने वस्त्र मांगे तो उन्होंने उन्हें पानी से बाहर निकलकर बारी-बारी से आकर अथवा समूह रूप में आकर वस्त्र लेने के लिए कहा। साथ ही कृष्ण ने उन्हें सूर्य को प्रणाम करने का आदेश दिया क्योंकि नग्न रूप में यमुना में स्नान करने से यमुना तथा जल के अधिष्ठाता वरुण का अपराध होता है। कृष्ण ने गोपिकाओं की मनोकामना जानकर उनको भावी शरत् पूर्णिमा में रास रचाने का आश्वासन दिया तथा उन्हें अपने-अपने घर जाने के लिए विदा किया।

श्रीमद् भा० १०।२२।

चूली चूली नामक एक तेजस्वी ब्राह्मण ब्रह्मचारी और सदाचारी महर्षि ब्रह्म-प्राप्ति के लिए तप कर रहे थे। उर्मिला की पुत्री, सोमदा नामक गंधर्वी उनकी सेवा में रहती थी। एक बार प्रसन्न होकर उन्होंने सोमदा से पूछा कि वे उसके लिए क्या कर सकते हैं। सोमदा अविवाहिता थी। उसने ब्रह्म-तप से युक्त एक धार्मिक पुत्र की कामना अभिव्यक्त की। चूली के आशीर्वाद से उसे ब्रह्मदत्त नामक पुत्र की प्राप्ति हुई, जो कांपिल्यपुरी में इंद्र के समान ऐश्वर्य के साथ रहने लगा।

बा० रा०, बालकांड, सर्ग ३३ पद ११-१९

च्यवन एक बार शर्यात नामक राजा के राज्य में अव्यावहारिक आचरण होने लगा। बहुत सोचने और पूछने के बाद मालूम पड़ा कि उनके राजकुमारों ने तपस्या में लीन किसी वृद्ध जर्जर शरीर को वल्मीक तथा मिट्टी से आपूरित देखकर खेल-खेल में लकड़ी से उसपर प्रहार किया था। संभवत: मुनि ने नाराज होकर शाप दिया होगा। राजा शर्यात अपनी पुत्री सुकन्या को लेकर ऋषि च्यवन के पास पहुंचे। कुमारों के दुर्व्यवहार के लिए क्षमा मांगकर उनके हाथ में अपनी कन्या का हाथ सौंपकर चले आये। सुकन्या उन बूढ़े ऋषि की सेवा करने लगी। एक बार अश्विनीकुमारों ने उसे देखा तो उसपर आसक्त हो गए। सुकन्या ने उनके शारीरिक संपर्क स्थापित करने का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया। जब ऋषि ने जाना तो सुकन्या से कहा कि वह उनसे अपने पति के लिए यौवन की कामना करे।

अश्विनीकुमारों के पुन: आने पर सुकन्या ने उनसे च्यवन ऋषि के लिए यौवन प्राप्त करने की कामना अभिव्यक्त की। अश्विनीकुमारों की कृपा से च्यवन ने पुन: यौवन प्राप्त किया।

ऋ० १।११६।१०, १।११७।१३, १।११८।६,
५।७४।५, ७।६८।६, ७।७१।५,
साम वे० ४७५, ता० ब्रा० १४।६।१०,
जै० ब्रा० ३।१५६-१६१
श० ब्रा० ४।१।५।१

भृगु के पुत्र च्यवन घोर तपस्या में लीन थे। उनका समस्त शरीर मिट्टी के लोंदे के समान जान पड़ता था जहां सर्वत्र दीमक विद्यमान थीं। वे सब ओर लता-गुल्मों से घिरे हुए थे। एक बार राजा शर्याति अपनी चार हजार रानियों तथा एकमात्र संतान सुकन्या नामक पुत्री के साथ उसी स्थल पर विहारार्थ गये। अपनी सखियों के साथ क्रीड़ा करती हुई सुकन्या ने मिट्टी के लोंदे में बांबी के पास जुगनू के समान कोई चमकीली वस्तु देखी। उसने कुतूहलवश तिनके से उसे कुरेदना चाहा। वह वास्तव में च्यवन की आंखें थीं। अत: क्रुद्ध होकर च्यवन ने राजा के समस्त सैनिकों का मल-मूत्र का द्वार बंद कर दिया। राजा विचित्र समस्या में फंस गये। कारण जानने पर उन्होंने च्यवन से क्षमा-याचना की। महर्षि ने सुकन्या से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। ऐसा होने पर राजा पुन: वापस चले गये। कालांतर में उसी स्थल पर अश्विनीकुमार गये। वे सुकन्या के रूप पर मुग्ध हो गये तथा उससे प्रेम-निवेदन करने लगे। सुकन्या के सम्मुख उन्होंने प्रस्ताव रखा कि वे दोनों च्यवन को एक रूपवान युवक बना देंगे क्योंकि वे देवताओं के वैद्य हैं। तदुपरांत उन तीनों में से सुकन्या अपने योग्य पति का चयन कर ले। सुकन्या ने महर्षि को सब कुछ बता दिया। महर्षि ने ऐसा करने की अनुमति ही नहीं दी, अपितु उसे प्रस्ताव मान लेने के लिए प्रेरित भी किया। अश्विनीकुमारों ने च्यवन को सरोवर में स्नान करने के लिए कहा। स्नान करके वह रूपवान युवक बन गये। सुकन्या ने महर्षि को ही पतिरूप में पुन: पसंद किया। च्यवन ने अश्विनीकुमारों के प्रति अपना आभार प्रदर्शित किया कि उन्होंने वृद्ध महर्षि को यौवन तथा रूप प्रदान किया। साथ ही कहा कि वह उन दोनो को इंद्र के समान यज्ञ में सोमरस पान करने का अधिकारी बना देंगे। उन्होंने राजा शर्याति से यज्ञ करवाया। यज्ञ करते हुए उन्होंने अश्विनीकुमारों के लिए सोमरस का भाग हाथ में लिया। इंद्र ने वहां साक्षात् उपस्थित होकर उन्हें ऐसा करने से मना किया और कहा कि अश्विनीकुमार चिकित्सक हैं। नानावेश धारण कर वे भूलोक में विचरते हैं। अत: सोमरस के अधिकारी नहीं हैं। महर्षि अपने संकल्प पर दृढ़ रहे तो इंद्र ने उनपर आघात करने के लिए वज्र उठाया। च्यवन ने उनकी भुजा स्तंभित कर दी। ऋषि के तपोबल से वहां कृत्या उत्पन्न हो गयी। वह एक राक्षस के रूप में थी जिसका अधर पृथ्वी था तथा ऊपर का ओष्ट स्वर्गलोक तक पहुंच गया था। वह मदासुर (मद से युक्त असुर) इंद्र की ओर बढ़ने लगी तो इंद्र ने ऋषि से क्षमा-याचना की तथा कहा कि भविष्य में संपूर्ण देवताओं सहित अश्विनीकुमार भी इंद्र की भांति यज्ञ में सोम रस के अधिकारी होंगे। भृगुनंदन च्यवन ने इंद्र को मुक्त कर दिया तथा मद (मदासुर में व्याप्त) को मद्यपान, स्त्री, जुआ तथा मृगया में बांटकर यज्ञ स्थली से दूर कर दिया।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय १२२ से १२४ तक
अ० १२५, श्लोक १ से ११ तक

च्यवन ने महान् व्रत का आश्रय लेकर जल के भीतर रहना आरंभ कर दिया। वे गंगा-यमुना-संगम स्थल पर रहते थे। वहां उनकी जलचरों से प्रगाढ़ मैत्री हो गयी। एक बार मछवाहों ने मछलियां पकड़ने के लिए जाल डाला तो मत्स्यों सहित च्यवन ऋषि भी जाल में फंस

गये। नदी से बाहर निकलने पर उन्हें देख समस्त मछवाहे उनसे क्षमा मांगने लगे। च्यवन ने कहा कि उनके प्राण मत्स्यों के साथ ही त्यक्त अथवा रक्षित रहेंगे। उस नगर के राजा को जब च्यवन की इस घटना का ज्ञान हुआ तो उसने भी मुनि से उचित सेवा पूछी। मुनि ने उससे मछलियों के साथ-साथ अपना मूल्य मछवाहों को देने के लिए कहा। राजा ने पूरा राज्य देना भी स्वीकार कर लिया किंतु च्यवन उसे अपने समकक्ष मूल्य नहीं मान रहे थे। तभी गौ के पेट से जन्मे गोताज मुनि उधर आ पहुंचे। उन्होंने राजा नहुष से कहा—"जिस प्रकार च्यवन अमूल्य हैं, उसी प्रकार गाय भी अमूल्य होती है, अत: आप उनके मूल्यस्वरूप एक गौ दे दीजिए।" राजा के ऐसा ही करने पर च्यवन प्रसन्न हो गये। मछवाहों ने क्षमा-याचना सहित वह गाय च्यवन मुनि को ही समर्पित कर दी तथा उनके आशीर्वाद से वे लोग मछलियों के साथ ही स्वर्ग सिधार गये। च्यवन तथा गोताज अपने-अपने आश्रम चले गये।

एक बार च्यवन मुनि को यह ज्ञात हुआ कि उनके वंश में कुशिक वंश की कन्या के संबंध से क्षत्रियत्व का दोष आनेवाला है। अत: उन्होंने कुशिक वंश को भस्म करने की ठान ली। वे राजा कुशिक के यहां अतिथि-रूप में गये। राजा-रानी उनकी सेवा में लग गये। उन दोनों से यह कहकर कि वे उन्हें जगाये नहीं और उनके पैर दबाते रहें—वे सो गये। इक्कीस दिन तक वे लगातार एक करवट सोते रहे और राजा-रानी उनके पैर दबाते रहे। फिर वे अंतर्धान हो गये। पुन: प्रकट हुए और इसी प्रकार वे दूसरी करवट सो गये। जागने पर भोजन में आग लगा दी। तदनंतर एक गाड़ी में दान, युद्ध इत्यादि की विपुल सामग्री भरकर उसमें राजा-रानी को जोतकर सवार हो गये तथा राजा-रानी पर चाबुक से प्रहार करते रहे। इस प्रकार के अनेक कृत्य होने पर भी जब राजा कुशिक तथा रानी क्रोध अथवा विकार से अभिभूत नहीं हुए तो च्यवन उनपर प्रसन्न हो गये। उन्हें गाड़ी से मुक्त कर अगले दिन आने के लिए कहा और राजमहल में भेज दिया तथा स्वयं गंगा के किनारे रुक गये। अगले दिन वहां पहुंचकर राजा-रानी ने एक अद्‌भुत स्वर्णमहल देखा जो चित्रविचित्र उपवन से घिरा था। उसके चारों ओर छोटे-छोटे महल तथा मानव-भाषा बोलनेवाले पक्षी थे। दिव्य पलंग पर च्यवन ऋषि लेटे थे। राजा-रानी मोह में पड़ गये। च्यवन ने उन दोनों को अपने आने का उद्देश्य बताकर कहा कि उनसे वे इतने प्रसन्न हुए हैं कि वे उनके बिना मांगे ही इच्छित वर देंगे। तदनुसार राजा कुशिक की तीसरी पीढ़ी से कौशिक वंश (ब्राह्मणों का एक वंश) प्रारंभ हो जायेगा। च्यवन ऋषि बोले—"चिरकाल से भृगुवंशी लोगों के यजमान क्षत्रिय रहे हैं किंतु भविष्य में उनमें फूट पड़ेगी। मेरे वंश में 'ऊर्व' नाम का तेजस्वी बालक त्रिलोक-संहार के लिए अग्नि की सृष्टि करेगा। ऊर्व के पुत्र ऋचीक होंगे। वे तुम्हारी पौत्री (गाधी की पुत्री) से विवाह करके ब्राह्मण-पुत्र को जन्म देंगे जिसका पुत्र क्षत्रिय होगा। ऋचीक की कृपा से तुम्हारे वंश गाधि को विश्वामित्र नामक ब्राह्मण-पुत्र की प्राप्ति होगी। जो कुछ दिव्य तुम यहां देख रहे हो, वह स्वर्ग की एक झलक मात्र है। इतना कहकर ऋषि ने उन दोनों से विदा ली।

म० भा०, दानधर्मपर्व, अध्याय ५०-५६,
अ० १५६, श्लोक १७-३५

मनु पुत्र राजा शर्याति की सुंदरी कन्या का नाम सुकन्या था। वन में घूमते हुए उसने दीमक की बांबी (मिट्टी) में चमकती हुई तपस्वी च्यवन की आंखें देखीं, कोई चमकीली वस्तु समझकर सुकन्या ने कांटे से उन्हें कुरेद दिया जिससे खून टपकने लगा। शर्याति ने देखा तो बहुत अनुनय-विनय से च्यवन को प्रसन्न किया तथा सुकन्या का विवाह उनसे कर दिया। च्यवन बहुत वृद्ध थे। एक बार अश्विनीकुमारों ने मुनि का आतिथ्य ग्रहण किया। मुनि ने उन्हें सोमपान कराने का वादा किया तथा उनसे अनुरोध किया कि उन्हें युवावस्था प्रदान कर दें। अश्विनीकुमारों ने उनसे एक कुंड में स्नान करने के लिए कहा। गोता लगाकर निकलने पर वे अत्यंत सुंदर तेजस्वी युवक दिखलायी पड़े। सुकन्या ने उन्हें नहीं पहचाना। अत: वह अश्विनीकुमारों की शरण में गयी। 'वही च्यवन हैं', यह जानकर वह अत्यंत प्रसन्न हुई। कुछ समय बाद राजा अपनी कन्या से मिलने वन में गया। उसे किसी युवक पुरुष के साथ देखकर राजा को उसके चरित्र पर बहुत क्रोध आया। 'वे च्यवन ही हैं,' जानकर वे भी बहुत प्रसन्न हुए। च्यवन मुनि ने राजा से सोमयज्ञ का अनुष्ठान करवाया तथा यज्ञ में अश्विनीकुमारों को सोमपान करवाया। अश्विनीकुमार वैद्य होने के कारण सोमपान के अधिकारी नहीं माने जाते थे। उनके सोमपान के

विषय में सुनकर इंद्र बहुत रुष्ट हुआ तथा उसने शर्याति को मारने के लिए वज्र उठा लिया। च्यवन मुनि ने इंद्र की बांह स्तंभित कर दी। जब देवताओं ने अश्विनी-कुमारों को सोमपान का अधिकारी मान लिया तब इंद्र की बांह का स्तंभन ठीक हुआ।

श्रीमद् भा०, नवम स्कंध, अध्याय ३, श्लोक १-२६

□

ज

जंबमाली हनुमान ने सीता के दर्शन करने के उपरांत लंका के वन-उपवन नष्ट करने आरंभ कर दिये। रावण को जब मालूम पड़ा तो उसने अपने किंकरों को भेजा, जिन्हें हनुमान ने मार डाला। रावण ने प्रहस्त-पुत्र जंबूमाली को भेजा। वह बहुत वीर था। उसने हनुमान को घायल भी किया किंतु हनुमान ने उसे भी मार डाला।

बा० रा०, सुंदर कांड, सर्ग ४४,

जटायु सीता को ढूंढ़ने जाते हुए राम-लक्ष्मण ने घायल जटायु को देखा। मृतप्राय जटायु ने सीता-हरण की समस्त कथा कह सुनायी और यह भी बताया कि रावण से युद्ध करके वह घायल हो गया है। तदनंतर जटायु ने प्राण त्याग दिये। राम-लक्ष्मण ने उसका दाह-संस्कार, पिंडदान तथा जलदान किया।

दे० मारीच

बा० रा०, अरण्य कांड, सर्ग ६६, श्लोक ६-३८

राम, सीता तथा लक्ष्मण दंडकारण्य में थे। उन्होंने देखा—कुछ मुनि आकाश से नीचे उतरे। उन तीनों ने मुनियों को प्रणाम किया तथा उनका आतिथ्य किया। पारने के समय जल, रत्न, पुष्प आदि की वृष्टि हुई। वहां पर बैठा हुआ एक गीध उनके चरणोदक में लोट गया। फलस्वरूप उसकी जटायें आदि रत्न के समान प्रकाशमान हो गयीं। साधुओं ने बताया कि पूर्वकाल में दंडक नामक एक राजा था। किसी मुनि के संसर्ग से उसके मन में भक्ति का उदय हुआ। उसके राज्य में एक परिव्राजक था। वह दूसरों को कष्ट देने के लिए उद्यत रहता था। एक बार वह अंतःपुर में रानी से बातचीत कर रहा था। राजा ने उसे देखा तो दुश्चरित्र जानकर उसके दोष से सभी श्रमणों को यंत्रों में पिलवाकर मरवा डाला। एक श्रमण बाहर गया हुआ था। लौटने पर समाचार ज्ञात हुआ तो उसके शरीर से ऐसी क्रोधाग्नि निकली कि जिससे समस्त स्थान भस्म हो गया। राजा के नामानुसार इस स्थान का नाम दंडकारण्य रखा गया। मुनियों ने उस दिव्य 'जटायु' (गीध) की सुरक्षा का भार सीता और राम को सौंप दिया। उसके पूर्व जन्म के विषय में बताकर उसे धर्मोपदेश भी दिया। रत्नाभ जटाएं हो जाने के कारण वह 'जटायु' नाम से विख्यात हुआ।

पउ० च०, ४१।-

जटासुर भीमसेन तथा घटोत्कच की अनुपस्थिति में जटासुर ने अनायास ही द्रौपदी, युधिष्ठिर, नकुल तथा सहदेव का अपहरण कर लिया। युधिष्ठिर ने उसे धर्मोपदेश दिया किंतु वह वहां से चल दिया। सहदेव किसी प्रकार उसके बंधन से मुक्त हो गया तथा भीम को पुकारने लगा। युधिष्ठिर ने उसकी गति कुंठित कर दी। तब तक भीम वहां पहुंच गया था। उसने राक्षस से युद्ध करके उसे मार डाला।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय १५७

जटिला जटिला गौतम गोत्र की कन्या थी। उसने सात ऋषियों के साथ विवाह किया था।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय १६५, श्लोक १४

जनक (वंश-परिचय) जनक के पूर्वजों में सर्वप्रथम धर्मात्मा निमि नाम से विख्यात थे। निमि, मिथि, जनक। जनक सर्वप्रथम राजा हुए थे। जनक, उदावसु, नंदिवर्धन, सुकेतु, देवरात, बृहद्रथ, महावीर, सुधृति, धृष्टकेतु,

हर्यश्व, मरु, प्रतींधक, कीर्तिरथ, देवभीरु, विबुध, महीध्रक, कीर्तिरात, महारोमा, स्वर्णरोमा, ह्रस्वरोमा के दो पुत्र हुए—बड़े विदेह जनक तथा छोटे कुशध्वज।

दे० विदेह

बा० रा०, बाल कांड, सर्ग ७१, पद १-१३

जनमेजय परीक्षित के पुत्र का नाम जनमेजय था। बड़े होने पर जब परीक्षित की मृत्यु का कारण सर्पदंशन जाना तो उसने तक्षक से बदला लेने का उपाय सोचा। जनमेजय ने सर्पों के संहार के लिए सर्पसत्र नामक महान यज्ञ का आयोजन किया। नागों को इस यज्ञ में भस्म होने का शाप उनकी मां कद्रू ने दिया था। नागगण अत्यंत त्रस्त थे। समुद्र-मंथन में रस्सी के रूप में काम करने के उपरान्त वासुकि ने सुअवसर पाकर अपने त्रास की गाथा ब्रह्मा से कही। उन्होंने कहा कि ऋषि जरत्कारू का पुत्र धर्मात्मा सर्पों की रक्षा करेगा, दुरात्मा सर्पों का नाश उस यज्ञ में अवश्यंभावी है। अत: वासुकि ने एलायत्र नामक नाग की प्रेरणा से अपनी बहन जरत्कारू का विवाह ब्राह्मण जरत्कारू से कर दिया था। उनके पुत्र का नाम आस्तीक रखा गया।

जनमेजय ने सर्पसत्र प्रारंभ किया। अनेक सर्प आह्वान करने पर अग्नि में गिरने प्रारंभ हो गये, तब भयभीत तक्षक ने इंद्र की शरण ग्रहण की। वह इंद्रपुरी में रहने लगा। वासुकि की प्रेरणा से आस्तीक परीक्षित के यज्ञस्थल भी पहुंचा तथा भांति-भांति से यजमान तथा ऋत्विजों की स्तुति करने लगा। उधर ऋत्विजों ने तक्षक का नाम लेकर आहुति डालनी प्रारंभ की। इंद्र तक्षक को अपने उत्तरीय में छिपाकर वहां तक आये। यज्ञ का विराट रूप देखकर वे तक्षक को अकेला छोड़कर अपने महल में चले गये। विद्वान ब्राह्मण बालक, आस्तीक, से प्रसन्न होकर जनमेजय ने उसे एक वरदान देने की इच्छा प्रकट की तो उसने यज्ञ की तुरंत समाप्ति का वर मांगा, अत: तक्षक बच गया क्योंकि उसने अभी अग्नि में प्रवेश नहीं किया था। नागों ने प्रसन्न होकर आस्तीक को वर दिया कि जो भी इस कथा का स्मरण करेगा—सर्प कभी भी उसका दंशन नहीं करेंगे।

जनमेजय को अनजाने में ही ब्रह्म-हत्या का दोष लग गया था। उसका सभी ने तिरस्कार किया। वह राज्य छोड़कर वन में चला गया। वहां उसका साक्षात्कार इंद्रोत मुनि से हुआ। उन्होंने भी उसे बहुत फटकारा। जनमेजय ने अत्यंत शांत रहते हुए विनीत भाव से उनसे पूछा कि अनजाने में किये उसके पाप का निराकरण क्या हो सकता है तथा उसे सभी ने वंश सहित नष्ट हो जाने के लिए कहा है, उसका निराकरण कैसे होगा? इंद्रोत मुनि ने शांत होकर उसे शांतिपूर्वक प्रायश्चित्त करने के लिए कहा। उसे ब्राह्मणों की सेवा तथा अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करने के लिए कहा। जनमेजय ने वैसा ही किया तथा निष्पाप, परम् उज्ज्वल हो गया।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय १५, ३८, ३९, ४८ से ५६ तक
शांतिपर्व, १५० से १५२ तक

परीक्षित-पुत्र जनमेजय सुयोग्य शासक था। बड़े होने पर उसे उत्तंक मुनि से ज्ञात हुआ कि तक्षक ने किस प्रकार परीक्षित को मारा था। जिस प्रकार रुरु ने अपनी भावी पत्नी को आधी आयु दी थी वैसे परीक्षित को भी बचाया जा सकता था (दे० रुरु)। मंत्रवेत्ता कश्यप सर्पदंशन का निराकरण कर सकते थे पर तक्षक ने राजा को बचाने जाते हुए मुनि को रोककर उनका परिचय पूछा। उनके जाने का निमित्त जानकर तक्षक ने अपना परिचय देकर उन्हें परीक्षा देने के लिए कहा। तक्षक ने न्यग्रोध (बड़) के वृक्ष को डंस लिया। कश्यप ने जल छिड़ककर वृक्ष को पुन: हरा-भरा कर दिया। तक्षक ने कश्यप को पर्याप्त धन दिया तथा लौट जाने का अनुरोध किया। कश्यप ने योगबल से जाना कि राजा की आयु समाप्त हो चुकी है, अत: वे धन लेकर लौट गये। यह सब जानकर जनमेजय क्रुद्ध हो उठा तथा उत्तंक की प्रेरणा से उसने सर्पसत्र नामक यज्ञ किया जिससे समस्त सर्पों का नाश करने की योजना थी। तक्षक इंद्र की शरण में गया। उत्तंक ने इंद्र सहित तक्षक का आवाहन किया। जरत्कारू के धर्मात्मा पुत्र आस्तीक ने राजा का सत्कार ग्रहण कर मनवांछित फल मांगा, फलत: राजा को सर्पसत्र नामक यज्ञ को समाप्त करना पड़ा। राजा ने उसे तो संतुष्ट किया किंतु स्वयं अशांत चित्त हो गया। व्यास से उसने समस्त महाभारत सुनी तथा जाना कि आस्तीक ने सर्पों की रक्षा क्यों की।

दे० आस्तीक

दे० भा०, २।१०-१२

जयंत चित्रकूट पर्वत के वनों में विचरण करते हुए राम और सीता थककर विश्राम कर रहे थे। सीता और राम दोनों ही सो रहे थे। मांस-भक्षण की इच्छा से एक कौए ने जाकर सीता के स्तन पर प्रहार किया। सीता के

स्तन से रक्त गिरने लगा। खून के स्पर्श से राम की नींद खुली तो उसने संपूर्ण घटना को जाना तथा क्रुद्ध होकर राम ने ब्रह्मास्त्र के मंत्र से आमंत्रित करके एक कुशा को धनुष से छोड़ा। वह कौए के वेश में इंद्र का पुत्र जयंत था। कौआ विविध लोकों में रक्षा की कामना से गया, किंतु कुशा ने उसका पीछा नहीं छोड़ा। अंत में वह पुनः राम की शरण में पहुंचा और राम ने उसे क्षमा कर दिया किंतु ब्रह्मास्त्र के मंत्रों से पूत कुशा व्यर्थ नहीं जा सकती थी अतः उसने कौए की दाहिनी आंख फोड़ दी किंतु उसके प्राण बच गए।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ३८, श्लोक १२-३८
सुंदर कांड, सर्ग ६७, श्लोक १-१८

मेघनाथ और इंद्र के युद्ध में भयंकर माया का विस्तार हुआ। मेघनाथ ने सब ओर अंधकार का प्रसार कर दिया। हाथ को हाथ नहीं सूझता था। तभी शची का पिता पुलोमा जयंत को उठाकर समुद्र में ले गया। राक्षस और देवसेना जयंत को न देखकर भागा हुआ या मरा हुआ मानते रहे।

युद्ध-समाप्ति के उपरांत ब्रह्मा ने इंद्र को बतलाया कि जयंत जीवित है और उसका नाना पुलोमा उसे लेकर 'महासमुद्र' में चला गया है।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग २८, श्लोक १५-२४
बा० रा०, उत्तरकांड, सर्ग ३०, श्लोक ५०-५१

जयद्रथ जयद्रथ सिंधुनरेश का पुत्र तथा धृतराष्ट्र का जामाता था। एक बार पांडवगण पुरोहित धौम्य तथा महर्षि तृणबिंदु की आज्ञा लेकर तथा द्रौपदी को उनके निरीक्षण में छोड़कर हिंसक पशुओं के शिकार के लिए विभिन्न दिशाओं में गये हुए थे, तभी जयद्रथ अपने साथियों के साथ वहां पहुंचा और अपने आश्रम के द्वार पर खड़ी द्रौपदी को देखकर उसपर आसक्त हो गया। वह अपने साथियों सहित द्रौपदी की कुटिया में पहुंचा। पांडवों की धनहीनता पर प्रकाश डालकर वह उसका अपहरण करना चाहता था किंतु पतिपरायणा द्रौपदी ने क्रुद्ध होकर कहा—"दुःशला (कौरवों की बहन) के पति होने के नाते तुम मेरे भाई हुए। तुम्हें मेरा रक्षक होना चाहिए। मेरे पतियों के विषय में अनर्गल बात मत करो।" जयद्रथ ने बलात् उसका हरण कर लिया। पुरोहित धौम्य भीमसेन को पुकारते हुए उसके रथ के पीछे, सैनिकों के साथ-साथ चले जा रहे थे। पांडवों ने घर लौटकर अपनी सेविका से समस्त समाचार जाना तो जयद्रथ का पीछा करने लगे। शीघ्र ही उसे खोजकर सेना को नष्ट कर पांडवों ने उसे बंदी बना लिया। दुःशला के वैधव्य की कल्पना कर युधिष्ठिर ने उसका वध करने से भाइयों को रोक दिया था। भीम ने जयद्रथ को पकड़कर उसका सिर मूड डाला तथा पांच शिखाएं सिर पर छोड़ दीं, फिर उसे घसीटकर युधिष्ठिर, द्रौपदी तथा अन्य एकत्र ब्राह्मणों के सम्मुख ले गया। युधिष्ठिर ने पुनः ऐसा अधर्म कार्य न करने का आदेश देकर उसे क्षमा कर दिया। आत्मग्लानि से दग्ध जयद्रथ ने हरिद्वार जाकर अपनी तपस्या से शिव को प्रसन्न कर उनसे पांडवों को युद्ध में जीतने का वर मांगा। शिव ने कहा कि यह तो असंभव है किंतु एक दिन के लिए वह युद्ध में अर्जुन को छोड़कर शेष चार पांडवों को आगे बढ़ने से रोक पायेगा। जयद्रथ अपने राज्य सिंधुप्रदेश को लौट गया।

म० भा० वनपर्व, अध्याय २६४ से १७१ तक
अ० २७२, श्लोक १ से १९ तक
दे० भा०, ३।१६।१९-३६।-

महाभारत युद्ध के तेरहवें दिन जब अभिमन्यु ने द्रोणरचित व्यूह का भेदन किया, कौरवों की सेना तितर-बितर होने लगी। जयद्रथ ने युद्धक्षेत्र में वीरता का परिचय दिया। पूर्व प्राप्त वरदान के कारण उस दिन के लिए वह पांडवों को व्यूह के द्वार पर रोकने में समर्थ रहा। अर्जुन उस दिन दक्षिण दिशा में युद्ध कर रहा था। क्योंकि जयद्रथ ने चारों पांडवों को व्यूह के अंदर नहीं घुसने दिया, इसलिए कौरव अकेले अभिमन्यु को चारों ओर से घेरकर मार डालने में समर्थ हो गये। सायंकाल घर पहुंचने पर अर्जुन ने अपने पुत्र की हत्या का वृत्तांत सुना तो क्रोध से लाल-पीला हो उठा। अन्यायपूर्वक हत्या करनेवाले कौरवों से क्रुद्ध हो अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि अगले दिन या तो वह जयद्रथ को मार डालेगा अन्यथा आत्मदाह कर लेगा। जयद्रथ भयातुर होकर अपने नगर भाग जाना चाहता था किंतु कौरवों के आश्वासन पर रुक गया। अगले दिन द्रोण ने चक्रशटक व्यूह की रचना की तथा उसके पृष्ठभाग में पद्मव्यूह के मध्य जयद्रथ को सुरक्षित स्थान प्रदान किया। अर्जुन कृष्ण के साथ संधान करता हुआ जयद्रथ के पास जा पहुंचा। वह कौरव-योद्धाओं से आरक्षित था। कृष्ण ने माया से अंधकार फैला दिया। जयद्रथ तथा कौरवगण यह सोचकर कि संध्या हो गयी

है—सूर्य की ओर देखने लगे, तभी कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि वह जयद्रथ का सिर काटकर संध्या में लीन उसके पिता की गोद में पहुंचा दे, क्योंकि उसके पिता वृद्धक्षत्र ने दीर्घ प्रतीक्षा के उपरांत जयद्रथ नामक पुत्र प्राप्त किया था। उसके जन्म पर आकाशवाणी हुई थी कि वह किसी पराक्रमी वीर क्षत्रिय से युद्ध-क्षेत्र में मारा जायेगा। वीर क्षत्रिय उसका सिर काटेगा। वृद्धक्षत्र ने पुत्र-प्रेम से आप्लावित होकर कहा था कि जो उसके सिर को पृथ्वी पर गिरायेगा, उसके सिर के सौ खंड हो जायेंगे। तदुपरांत वे राज्य-भार जयद्रथ को सौंप स्वयं वन में तपस्या करने चले गये थे। अर्जुन ने दिव्यास्त्र के द्वारा उसके सिर को काटकर वाज पक्षी के समान उड़ाकर योजनों दूर बैठे उसके पिता की गोद तक पहुंचा दिया। वृद्धक्षत्र को पता ही नहीं चला। जब वे संध्योपासना के उपरांत उठे तो जयद्रथ का सिर पृथ्वी पर लुढ़क गया। फलस्वरूप उनका अपना सिर सौ खंडों में विभक्त हो गया। जयद्रथ-वध के उपरांत कृष्ण ने माया से फैलाया हुआ अंधकार समेट लिया तथा सूर्य पूर्ववत् अस्ताचल की ओर बढ़ने लगा। रात्रि में भी मशालें जलाकर युद्ध चलता रहा। युधिष्ठिर को अपनी विजय की सूचना देकर पांडवों ने अनेक वीरों सहित द्रोणाचार्य पर आक्रमण कर दिया। द्रोण ने शिवि का वध किया।

म० भा०, द्रोणपर्व, अध्याय, ४२, ४३, १४६ अ० १५५, श्लोक १ से १६ तक

जरत्कारू जरत्कारू उच्च कोटि के यायावर (सदा विचरने वाले मुनि) थे। उन्होंने इंद्रियों पर तथा निद्रा पर विजय प्राप्त कर ली थी, अत: पलक नहीं झपकते थे। एक बार एक जंगल में उन्होंने पांव ऊपर और सिर नीचे करके जर्जरित तिनकों के सहारे एक विशाल गड्ढे में लटके हुए वृद्ध महात्माओं को देखा। कारण जानने की उत्सुकता से प्रश्न करने पर उन महात्माओं ने कहा कि उनकी कुलपरंपरा में एक जरत्कारू नामक यायावर है जो विवाह नहीं करता, अत: वंश की इतिश्री होनेवाली है। संतान-परंपरा का नाश होने पर वे पृथ्वी पर गिर जायेंगे। उनका उद्धार जरत्कारू का भावी पुत्र ही कर सकता है। जरत्कारू ने उन्हें अपना परिचय दिया तथा इस शर्त पर विवाह करना स्वीकार कर लिया कि कन्या पक्षवाले कन्या को भिक्षा के रूप में उसे प्रदान करें तथा कन्या का नाम भी जरत्कारू हो। कुछ समय पश्चात् वासुकि ने अपनी छोटी बहन जरत्कारू को भिक्षा के रूप में उन्हें समर्पित किया और मुनि ने उससे विवाह कर लिया। उनके पुत्र का नाम आस्तीक हुआ।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय, १३,१४,४५,४६,४७

जरासंध मगध देश में वृहद्रथ नामक राजा राज्य करता था। उसने काशिराज की जुड़वां कन्याओं से विवाह किया तथा दोनों में विषमता न रखने का वचन दिया। दीर्घकाल तक बालक का मुंह न देख पाने के कारण उसने अत्यंत व्याकुलतापूर्वक काक्षीवान के पुत्र चंड कौशिक मुनि की सेवा और भेंट से प्रसन्न कर पुत्र-प्राप्ति का वर प्राप्त किया। मुनि ने उसे एक अभिमंत्रित आम दिया। उसने यथासमय अपनी दोनों रानियों को वह आम खिला दिया। दोनों ने आधे मुख, एक हाथ, एक पैरवाले आधे-आधे बालक को जन्म दिया। उसके रूप से दुखी हो दोनों ने सलाह करके अपनी दासियों से कपड़े में लिपटवाकर उन अर्धबालकों को चौराहे पर फिंकवा दिया। कालांतर में वहां जरा नामक राक्षसी आयी। वह भक्ष्य मांस की खोज में थी, उसने दोनों टुकड़ों को साथ-साथ रखा तो वे जुड़कर एक शक्तिशाली राजकुमार बनकर रोने लगा। जरा ने राजा को अपना परिचय देकर वह बालक अर्पित कर दिया। उसका नाम जरासंध रखा गया। उसने महादेव को प्रसन्न करके एक अद्भुत शक्ति प्राप्त कर ली थी, जिससे वह किसी से परास्त नहीं होता था। कंस ने उसकी दोनों कन्याओं (अस्ति तथा प्राप्ति) से विवाह करके शक्ति का संचय किया। उग्रसेन के पुत्र कंस से जरासंध ने अपनी बेटियों का विवाह इस शर्त पर किया था कि तुरंत उसका (कंस का) राज्याभिषेक कर दिया जायेगा। कंस ने राजा बनते ही अपनी प्रजा पर अत्याचार करना प्रारंभ कर दिया। प्रजाजनों ने मिलकर कंस से छुटकारा पाने की मंत्रणा की। कृष्ण ने अक्रूर का विवाह आहुक की पुत्री सुतनु से करवा दिया तथा उससे मिलकर श्रीकृष्ण तथा बलराम ने कंस का वध कर डाला। जरासंध बदला लेने के लिए उद्यत हुआ। उसके साथियों में हंस और डिंभक नामक दो भाई भी थे, जिनको शस्त्रों के प्रभाव से सुरक्षित होने का वरदान प्राप्त था। कृष्ण और जरासंध का सत्रहवीं बार युद्ध हुआ तो हंस नामक कोई अन्य राजा बलराम के हाथों मारा गया। हंस के निधन का समाचार सुनकर डिंभक ने अपने भाई का निधन समझा और शोकवश जमुना में कूदकर आत्महत्या कर ली। हंस

को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने भी भाई डिंभक की तरह प्राण त्याग दिये। जरासंध हताश होकर अपनी नगरी में वापस चला गया। उसकी बेटियों ने उसे पुनः युद्ध करने के लिए प्रेरित किया ताकि वह कंस का बदला ले सके, अतः उसके त्रास से लोग मथुरा छोड़ भागकर पश्चिम स्थिति रैवतक पर्वत पर चले गये। जरासंध ने अपने जामाता (कंस) के वध के विषय में जाना तो क्रुद्ध होकर अपनी गदा निन्यानबे बार घुमाकर गिरिव्रज से निन्यानबे योजन दूर मथुरा की ओर फेंकी। जहां वह गदा गिरी थी, वह स्थान गदावसान के नाम से विख्यात है। उसने महादेव के सम्मुख बलि देने के लिए सौ राजाओं को कैद कर लिया। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ करने का निश्चय करने पर श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा भीमसेन ने बुद्धि और बल के प्रयोग से जरासंध का वध करने की ठानी। उन्होंने ब्राह्मण-वेश धारण किया। वे तीनों जरासंध के राज्य में पहुंचे। नगर के निकट ही स्थित चैत्यक पर्वत का शिखर उन्होंने तोड़ डाला, फिर नगर में स्थित वृहद्रथ निर्मित तीन नगाड़ों को फोड़कर उन्होंने जरासंध की राजधानी में प्रवेश किया। जरासंध आतिथ्य-सत्कार के लिए प्रसिद्ध था। उसका आतिथ्य ठुकराकर उन तीनों ने उसे अपना परिचय दिया। जरासंध ने भीम से द्वंद्व युद्ध करना चाहा। भीम और जरासंध एक दूसरे की टक्कर के वीर थे। जब जरासंध थका हुआ जान पड़ा तब कृष्ण ने अपने हाथ में नरकट (पोले डंठल) की एक टहनी लेकर उसे चीर लिया। इस प्रकार भीम को संकेत दिया कि वह जरासंध का शरीर चीर डाले। भीम के ऐसा करने पर शरीर के दोनों टुकड़े पुनः जुड़ गये। श्रीकृष्ण ने वैसा ही एक और डंठल लेकर उसे चीरा और विपरीत दिशाओं में फेंक दिया। भीम ने भी जरासंध के शरीर के साथ ऐसा ही किया (एक भाग का जिस दिशा में सिर था, दूसरे भाग का उस दिशा में पैर रखा। इस प्रकार जरासंध का वध कर उन तीनों वीरों ने सौ राजाओं को उसकी कैद से मुक्त कर दिया, जरासंध के पुत्र सहदेव का राज्याभिषेक किया तथा सौंदर्यवान् नामक रथ लेकर इंद्रप्रस्थ की ओर चल पड़े। वह रथ मूलतः इंद्र का था। इंद्र ने उससे निन्यानबे दानवों का वध किया था। इंद्र से वसु ने, वसु से वृहद्रथ ने तथा वृहद्रथ से जरासंध ने उस रथ को प्राप्त किया था। इंद्रप्रस्थ जाने पर युधिष्ठिर ने वह रथ (सौंदर्यवान्) श्रीकृष्ण को भेंटस्वरूप अर्पित किया।

श्रीकृष्ण ने अर्जुन को बताया कि यदि जरासंध के पास उसकी गदा विद्यमान होती तो उसे कोई भी मार नहीं सकता था। एक बार रोहिणीनंदन बलराम ने युद्ध में जरासंध को पछाड़ दिया था, जिससे क्रुद्ध होकर उसने सर्वघातिनी गदा से प्रहार किया था। अग्नि के समान प्रज्वलित वह गदा इंद्रचालित वज्र की भांति आकाश में सीमांत रेखा बनाती हुई गिरती दिखायी दी। बलराम ने स्थूणाकर्ण नामक अस्त्र से उसका वेग रोका। वह गदा पृथ्वी को विदीर्ण कर भूतल पर गिरी, जहां जरा नामक भयानक राक्षसी अपने पुत्र तथा बंधु-बांधवों सहित मारी गयी अन्यथा महाभारत युद्ध में वे सब कौरवों का साथ देने के लिए तैयार रहते।

म० भा०, सभापर्व, अध्याय १४, श्लोक २९ से ७० तक
अ० १७, श्लोक १३ से २४ तक, अ० १५, १८ से २४ तक,
द्रोणपर्व १८१।८-१९।-

कंस की दो रानियां थी—अस्ति तथा प्राप्ति। पति की मृत्यु के उपरांत वे दोनों अपने पिता की राजधानी में गयीं। वे दोनों मगधराज जरासंध की कन्यायें थीं। उनकी कथा सुनकर जरासंध ने क्रुद्ध होकर मथुरा पर आक्रमण कर दिया। श्रीकृष्ण ने सोचा कि अभी जरासंध को मारना नहीं चाहिए, क्योंकि उसके जीवित रहने पर अनेकों असुरों की सेनाएं भविष्य में मारी जायेंगी। कृष्ण और बलराम ने मानव-रूप में ही उससे युद्ध करने की ठानी। आकाश से तत्काल सूर्य के समान चमकते हुए दो रथ वहां पहुंचे, जिनपर बैठकर दोनों भाइयों ने जरासंध की सेना को नष्ट कर दिया तथा उसे उपेक्षित-सा छोड़ दिया। इसी प्रकार सत्रह बार आक्रमण करके जरासंध हारा। अठारहवीं बार जरासंध के साथ 'कालयवन' नामक यवन ने भी आक्रमण किया। कृष्ण और बलराम ने समुद्र के अंदर एक दुर्ग तथा एक नगर बना लिया था, जिसमें निवास करनेवाले लोगों को भूख-प्यास आदि कष्ट नहीं सताते थे। उन्होंने अपने प्रियजनों को द्वारिका पहुंचा दिया। शेष प्रजा की रक्षा के लिए बलराम को मथुरापुरी में रखा और स्वयं अस्त्र-शस्त्र रहित कमल की माला पहनकर नगर के द्वार से बाहर निकल आये। कालयवन ने निश्चय किया कि वह कृष्ण से बिना किसी शस्त्र के ही लड़ेगा, क्योंकि वे शस्त्रहीन दीख रहे थे। ऐसा सोचकर वह कृष्ण की ओर बढ़ा तो कृष्ण मैदान से दौड़ खड़े हुए। कालयवन ने कृष्ण का

पीछा किया। वे एक गुफा में घुस गये। पीछे-पीछे वह भी गया। वहां मुचकुंद सो रहे थे। उन्हींको कृष्ण समझकर कालयवन ने लात दे मारी। जागने पर मुचकुंद के देखने भर से वह भस्म हो गया।

श्रीकृष्ण मथुरा पहुंचकर, जरासंध के देखते-देखते बलराम सहित फिर से भाग खड़े हुए। जरासंध ने परिहास करते हुए उनका पीछा किया। वे दोनों भाई दौड़ते हुए 'प्रवर्षण' पर्वत पर चढ़ गये। जरासंध ने पर्वत के चारों ओर से आग लगवा दी और यह मानकर कि दोनों भाई जलकर मर गये होंगे, अपने राज्य में लौट गया। कृष्ण और बलराम ने पर्वत की चोटी से धरती पर छलांग लगा दी तथा समुद्र स्थित अपनी नगरी में चले गये।

पांडवों ने राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए कृष्ण को आमंत्रित किया था। उन्हीं दिनों जरासंध के कैदी राजाओं (जिन्हें दिग्विजय करते हुए जरासंध ने पकड़ा था) ने अपना दूत कृष्ण के पास भेजा कि वे उन सबको मुक्त करवा दें। कृष्ण राजसूय यज्ञ के लिए पांडवों के पास गये। जरासंध के अतिरिक्त शेष सब दिशाओं के राजाओं पर पांडव विजय प्राप्त कर चुके थे। श्रीकृष्ण, भीम और अर्जुन ब्राह्मण-वेश में जरासंध के अतिथि बने किंतु राजा ने तीनों को पहचान लिया तथापि उनके ब्राह्मणवेशी होने के कारण राजा उन्हें भिक्षा देने के लिए तत्पर रहा। श्रीकृष्ण ने अपना (तीनों का) वास्तविक परिचय देकर उससे द्वंद्व युद्ध की भिक्षा मांगी। उसने कहा—"अर्जुन अवस्था में छोटा है, उससे मैं नहीं लड़ूंगा। श्रीकृष्ण तो युद्धक्षेत्र से भागकर समुद्र में शरण लेनेवाला है, इसलिए उससे भी नहीं लड़ूंगा। भीम से द्वंद्व युद्ध करूंगा। भीम के साथ उसका गदा-युद्ध हुआ। अट्ठाइस दिन तक दिन के समय दोनों का द्वंद्व युद्ध होता तथा शेष समय वे मित्रवत् रहते। अट्ठाइसवें दिन भीम ने उसे पराजित करने में अपनी असमर्थता प्रकट की तो कृष्ण ने पेड़ की टहनी चीरकर जरा के पुत्र जरासंध को चीर-कर मारने का संकेत दिया। भीम ने युद्धक्षेत्र में उसे धरती पर पटक दिया तथा उसकी दोनों टांगें पकड़कर उसे चीर डाला। उसके वधोपरांत कैदी राजाओं को मुक्त कर दिया गया।

श्रीमद् भा०, १०।५०, १०-५२। ५-१४, १०।७०-७३।-
ब्र० पु०, १९५।-

(जरासंध की कथा में श्रीमद्भागवत में अंकित कथा से जो अंतर है वही यहां दिया गया है—शेष कथा श्रीमद्-भागवत में दी गयी कथा के समान है।)

कृष्ण और बलराम गोमंत पर्वत पर गये हुए थे (जरासंध से भागकर नहीं, अपितु परशुराम जी के प्रोत्साहन से)। जरासंध ने पर्वत को चारों ओर से घेर लिया तथा शिशु-पाल ने वन में आग लगा दी। बलराम उन लोगों से युद्ध करने के लिए पर्वत के शिखर से उनके बीच में कूद पड़े। कृष्ण ने शिखर से कूदने के पूर्व पांव से उसे दबाया तो पर्वत दबकर जलमग्न हो गया तथा अग्नि बुझ गयी। उन दोनों के आवाहन करने पर उनके अस्त्र-शस्त्र प्रकट हो गये। बलराम के मूसल से चोट खाने के कारण राजा दरद का सिर उसके शरीर में ही घुस गया। जरासंध पराजित होकर भाग गया तथा चेदिराज दमघोष ने कृष्ण और बलराम से संधि कर ली। उसके आमंत्रण पर दोनों भाई अपनी सेनासहित करजीरपुर गये। करजीरपुर के राजा शृगाल ने कृष्ण से युद्ध किया। युद्ध में वह कृष्ण के हाथों मारा गया तथा उसके पुत्र का राज्या-भिषेक हुआ।

हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व।३४,४०।४०-४४।-

जलंधर एक बार इंद्र सहित सब देवताओं ने एकत्र होकर शिव के दर्शन की इच्छा की। शिव मायावी भया-नक रूप में प्रकट हुए। किसी ने उन्हें नहीं पहचाना। इंद्र के पूछने पर भी उस मायावीस्वरूप ने उत्तर नहीं दिया तो इंद्र ने वज्र से प्रहार किया। शिव के कंठ पर वज्र लगा, अतः वे नीलकंठ कहलाये किंतु वज्र जलकर भस्म हो गया। बृहस्पति ने शिवस्मरण किया। उन्हें पहचानकर कहा कि वे इंद्र को क्षमा करें। तब तक शिव के तृतीय नेत्र से अग्नि निकल चुकी थी। शिव ने अग्नि समुद्र में फेंक दी, जिससे एक सुंदर बालक का जन्म हुआ। वह इतनी जोर से रोया कि समस्त देवता घबराने लगे। ब्रह्मा ने उसे गोद में उठाया तो उसने इतनी जोर से उनकी दाढ़ी खींची कि ब्रह्मा की आंखों से आंसू निकल पड़े। इसी कारण से बालक का नाम जलंधर रखा गया। ब्रह्मा ने कहा कि बालक तुरंत युवा होकर वेद-ज्ञाता हो जाय। शुक्र को बुलाकर उत्सव किया गया। जालंधरी नगरी उसकी राजधानी हुई। कालांतर में वह समुद्र-मंथन की घटना से अवगत हुआ। अपने पिता 'समुद्र' से निकले समस्त रत्नों को लौटाने का संदेश देकर उसने घस्मर नामक दूत को इंद्र के पास भेजा। इंद्र ने कहा—"हम

लोग मंथन से निकली वस्तुओं को नहीं लौटाएंगे क्योंकि समुद्र ने हमारे शत्रुओं (दैत्यों तथा पंख कटे पर्वतों) को शरण दी थी।" देवताओं और दैत्यों का युद्ध हुआ। शुक्र को संजीवनी विद्या आती थी और बृहस्पति द्रोणागिरि की एक औषधि का प्रयोग करते थे, अतः न देवता ही मृत रहते थे, न दैत्य ही। जलंधर ने द्रोणागिरि पर्वत को जड़ से उखाड़कर समुद्र में छुपा दिया। देवताओं को युद्धक्षेत्र से भाग जाना पड़ा। विष्णु ने जलंधर की वीरता से प्रसन्न होकर उसे वर मांगने के लिए कहा। जलंधर ने वर मांगा कि उसकी बहन लक्ष्मी सहित विष्णु तथा अन्य देवता उसी के घर में रहें। इस प्रकार उसने सब देवताओं का वैभव हस्तगत कर लिया। उसको नष्ट करने का कोई उपाय नहीं समझ पड़ता था क्योंकि वह शिवभक्त तथा न्यायप्रिय था। अंत में नारद ने जलंधर के पास जाकर उसके वैभव की प्रशंसा की और यह भी बताया कि उसके पास पार्वती जैसी दारा की कमी है। कामुक जलंधर ने शिव के पास पार्वती को देने का संदेश राहु के द्वारा भेजा। जलंधर का जन्म शिव की क्रोधाग्नि से हुआ था, अतः उसे नष्ट करना बहुत कठिन था। उसके संदेश से रुष्ट होकर शिव ने समस्त देवताओं के तेज को इकट्ठा करके सुदर्शन चक्र का निर्माण किया। पार्वती को प्राप्त करने के लिए जलंधर और दैत्यों का देवताओं के साथ युद्ध हुआ। शिव के मुंह से एक कृत्या उत्पन्न हुई जो शुक्र को लेकर उड़ गयी, अतः दैत्यों का बार-बार जीवित होना समाप्त हो गया। जलंधर ने ऐसी माया का प्रसार किया कि सब ओर राग-रागिनियों की गूंज तथा नर्तन इत्यादि का प्रसार होने लगा। शिव सहित सब उस नाद में व्यस्त हो गये और वह (जलंधर) शिव का रूप धारण करके गिरिजा के पास पहुंचा। गिरिजा उसके मायावी रूप को पहचानकर अंतर्धान हो गयी। उसने विष्णुसे कहा—"पतिव्रता नारी का पति नहीं मरता, अतः जलंधर की पत्नी वृंदा का पातिव्रत धर्म नष्ट कर दो।" विष्णु ने ऐसा ही किया (दे० वृंदा)। जलंधर की प्रेरणा से मायावी गिरिजा को शुंभ-निशुंभ मारते हुए लाए और जलंधर ने शिव को ललकारा कि वह उसे बचा सकता है तो बचा ले। शिव ने सुदर्शन चक्र से उसे मार डाला तथा शुंभ-निशुंभ को शाप दिया कि वे गिरिजा के हाथों ही मारे जायें। जलंधर का तेज, उसके वध के उपरांत शिव जी में समा गया।

शि० पु० पूर्वार्द्ध ५।१०-२२

जलोद (सागर) जलोद (सागर) में और्वऋषि के तेज से भी बड़वामुख का तेज बड़ा है। प्रलय काल में बड़वामुख चराचर जगत को उदरस्थ कर लेता है—अतः इसे देखकर प्राणिमात्र व्याकुल हो उठता है। इसी से यहीं हमेशा करुण क्रंदन सुनायी देता है।

बा० रा०, किष्किधा कांड, सर्ग ४०, श्लोक ४७-४६

जांबवती रुक्मिणी का पुत्र प्रद्युम्न शंबरासुर का वध करने के उपरांत द्वारका आया। वहां चारुदेष्ण, प्रद्युम्न आदि रुक्मिणी के पुत्रों को देखकर जांबवती श्रीकृष्ण के पास पहुंची। उसने भी रुक्मिणी के पुत्रों के समान पुत्र प्राप्त करने की आकांक्षा व्यक्त की। श्रीकृष्ण ने उसे ऐच्छित पुत्र प्रदान करने का आश्वासन दिया तथा अपने माता-पिता, भाई-बंधुओं से विदा लेकर जांबवती के लिए पुत्र-प्राप्ति के निमित्त वे हिमालय स्थित उपमन्यु के आश्रम में तपस्या करने के लिए चले गये। उपमन्यु ने श्रीकृष्ण का सिर मुंडवाकर, शरीर में घी लगवाकर दंड, कुशा, चीर एवं मेखला धारण करवा दी। कृष्ण कभी जल पर, कभी वायु पर ही जीवित रहे। तदनंतर शिव-पार्वती ने साक्षात् दर्शन देकर आठ वर मांगने को कहा। श्रीकृष्ण ने धर्म में दृढ़ता, शत्रु-संहार की क्षमता, श्रेष्ठ यश, उत्तम बल, योगबल, सबकी प्रियता, शिव का सामीप्य, तथा दस हजार पुत्र वर रूप में मांगे। पार्वती ने भी आठ वर प्रदान किये, जिनमें से एक वर यह था कि वे सदैव कमनीय शरीर वाले बने रहेंगे।

म० भा०, दानधर्मपर्व, अध्याय १४, श्लोक २९-११०, अ० १५, श्लोक ३८०-४२१

जांबवान वानर सेना में अंगद, सुग्रीव, परपुंजद, पनस, सुषेण (तारा के पिता), कुमुद, गवाक्ष, केसरी, शतबली, द्विविद, मैंद, हनुमान, नील, नल, शरभ, गवय आदि थे। जांबवान का नाम विशेष उल्लेखनीय है। जांबवान का जन्म अग्नि द्वारा एक गंधर्वकन्या के गर्भ से हुआ था। देवासुर संग्राम में देवताओं की सहायता के लिए उसका जन्म हुआ था।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग २४ से ३०

जाजलि जाजलि नामक प्रसिद्ध ब्राह्मण ने घोर तपस्या की। वह समस्त ऋतुओं में आकाश के नीचे जड़वत खड़े रहते थे। अतः उनके बालों की जटाएं बन गयीं जिनमें पक्षी-युगल ने घोंसला बनाकर अंडे दे दिये।

अंडे फूटने पर बच्चे निकले—जब वे उड़ने योग्य हो गए तब वे बहुत समय तक घोंसले से बाहर ही रहने लगे। उनके माता-पिता अन्यत्र कहीं चले गये। एक बार एक माह तक दोनों पक्षी बालक घोंसले में नहीं आये तो जाजलि ने समझा कि यह उनके सिद्ध पुरुष हो जाने के कारण ही है। वे अभिमान से सराबोर नदी के तट पर ताल ठोककर कहने लगे—"मैंने धर्म प्राप्त कर लिया है।" तभी किसी अदृश्य पुरुष ने कहा—"तुम काशीनिवासी, सौदा बेचनेवाले, तुलाधार के समान धार्मिक नहीं हो।" जाजलि खोज करते हुए तुलाधार के पास पहुंचे। उसने उठकर उनका स्वागत किया और कहा कि उसे पूर्व विदित था कि जाजलि उसके पास पहुंचनेवाले हैं। तुलाधार ने जाजलि को निष्काम कर्म, हिंसा रहित, युक्तिसंगत, सत्पुरुष सेवित धर्म का उपदेश देते हुए अभिमान तथा कठोर वाणी का त्याग करने की बात कही। उसने कहा कि चिड़ियों का पालन करने के कारण वे समस्त पक्षियों के लिए पितातुल्य हैं, अत: उनसे भी धर्म के विषय में पूछ सकते हैं। जाजलि ने पक्षियों को बुलाकर धर्म का स्वरूप जानने की इच्छा प्रकट की। पक्षियों ने मनुष्य की वाणी में उन्हें श्रद्धा, निवृत्ति तथा अहिंसा का उपदेश दिया। तुलाधार से उपदिष्ट परम् संतुष्ट ब्राह्मण जाजलि ने विशेष शांति प्राप्त की।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय २६१-२६४,

जाबालि जाबालि नामक कृषक ब्राह्मण अपने बैलों को तनिक भी विश्राम नहीं करने देता था। कामधेनु ने नंदी से कहा। नंदी ने पशुव्यथा जानकर पृथ्वी पर से गौओं को गायब कर दिया। देवताओं ने शिव से प्रार्थना की। उन्होंने कहा—"नंदी से बात करें।" नंदी ने उन्हें गोसव नामक यज्ञ करने को कहा। फलस्वरूप जिस स्थान पर यज्ञ और गोवृद्धि हुई, वह गोवर्द्धन तीर्थ के नाम से विख्यात है।

ब्र० पु० ९१

जाह्नवी सुहोत्र पुरुरवा की संतति में से था। उसके पुत्र का नाम जह्नु था। उसकी जन्मदातृ केशिनी थी। जह्नु ने सर्पमेध तथा महामख यज्ञ किये थे। गंगा उसे पति रूप में प्राप्त करना चाहती थी। वह गंगा की ओर से विरक्त रहा, अत: उसने जह्नु की यज्ञभूमि को जल में डुबो दिया। उसका अभिमान नष्ट करने के लिए क्रुद्ध जह्नु ने समस्त जल पी लिया तथा युवनाश्व की पुत्री कावेरी से विवाह कर लिया। ऋषियों ने गंगा का जह्नु के द्वारा पीया जाना देखा तो उसे जह्नु की पुत्री जाह्नवी कहना आरंभ कर दिया।

ब्र० पु०, १०।१-२०

जीमूत मत्स्यप्रदेश (विराटनगर) में अज्ञातवास करते हुए पांडवों तथा द्रौपदी को अभी चार मास ही हुए थे कि वहां हमेशा की तरह ब्रह्मा की पूजा का दिवस मनाया गया। समारोह का एक अंश मल्लों की कुश्ती का भी था। उनमें एक जीमूत नामक मल्ल भी था, जिसने अनेक बार अखाड़े में विजय प्राप्त की थी। उसका सामना करने के लिए कोई भी तैयार नहीं था। अत: राजा विराट ने अपने रसोइए वल्लभ (भीमसेन) को उसके साथ कुश्ती लड़ने के लिए कहा। वल्लभ तथा जीमूत की भयानक मल्लक्रीड़ा हुई। वल्लभ ने जीमूत को पटककर मार डाला। फलस्वरूप राजा विराट ने प्रसन्न होकर उसे असीम धनराशि प्रदान की।

म० भा०, विराटपर्व, अध्याय १३,
श्लोक १५ से ४१ तक

जीवक मगध के राजा श्रेणिक बिंबसार नैगम वैशाली गया। लौटने पर वहां के वैभव की प्रशंसा करते हुए उसने राजा को प्रेरित किया कि वह अपने राज्य में भी 'गणिका' की नियुक्ति करे। राजा ने सालवती नामक सुंदरी को गणिका घोषित किया। वह नृत्य-संगीत में भी बहुत अच्छी थी। कालांतर में वह गर्भवती हुई। उसने यह बात सबसे छिपा ली तथा पुत्र-जन्म होने पर अपनी परिचारिका के हाथ शिशु को कूड़े में फिंकवा दिया। उधर से राजकुमार अभय जा रहा था। कूड़े में पड़े जीवित शिशु को उठवाकर वह राज्यभवन में ले गया। बड़े होने पर वह शिशु यह नहीं जान पाया कि उसकी मां कौन थी। वह तक्षशिला के एक प्रसिद्ध वैद्य से पढ़कर स्वयं भी वैद्य बन गया। निपुणता प्राप्त करके जब वह अपनी नगरी की ओर लौट रहा था तब उसे पता चला कि साकेत में श्रेष्ठि की पत्नी को सात वर्ष से सिरदर्द है। उसने उसे ठीक कर दिया। फलस्वरूप उसे विपुल धनराशि प्राप्त हुई। उसने वह धन अभय को देना चाहा किंतु अभय ने कहा—"यह तुम्हारा है, तुम ही रखो।" तदनंतर उसने राजा बिंबसार से लेकर भगवान बुद्ध तक अनेक व्यक्तियों की परिचर्या की।

बु० च०, ३।१२

जैगीषव्य मुनि आदित्य तीर्थ में असितदेवल नामक मुनि गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए रहते थे। एक बार जैगीषव्य मुनि, जो कि संन्यासी थे, उस तीर्थ पर पहुंचे और असित देवल के आश्रम में रहने लगे। वे प्रतिदिन देवल से भिक्षा लेते थे किंतु मौन रहते थे। असित देवल भी उनके सामने तप-पूजा इत्यादि नहीं करते थे और वे कितनी शक्ति से संपन्न हैं, यह जानना चाहते थे। एक बार असित देवल आकाश-मार्ग में समुद्र-तट पर पहुंचे। वहां उन्होंने जैगीषव्य को देखा। वहां से कलश में पानी भरकर लौटने पर आश्रम में पहले से ही विराजमान जैगीषव्य मुनि को देख वे आश्चर्य में डूब गये। फिर तो अनेक लोकों में जाते हुए मुनि को उन्होंने बार-बार देखा। एक दिन अचानक वे अगोचर हो गये, तो देवल मुनि ने उन लोकों में रहनेवाले सिद्धों से उनके विषय में जानना चाहा। उन लोगों ने बताया कि वे ब्रह्मलोक गये हैं। देवल भी आकाश-मार्ग से वहां पहुंचना चाहते थे किंतु गिर गये। सिद्धों ने उनसे कहा कि वे अभी 'जैगीषव्य' जितना आत्मिक विकास नहीं कर पाये हैं। वे लज्जित होकर आश्रम पहुंचे तो जैगीषव्य मुनि को वहां विराजमान पाया। असित देवल ने उनके पांव पकड़ लिये तथा गृहस्थ छोड़कर संन्यास की दीक्षा लेने की इच्छा प्रकट की। ऐसा कहते ही उनके पितरों इत्यादि की आवाजों से सब दिशाएं गूंज उठीं कि उनके संन्यास लेने के बाद समस्त प्राणियों सहित पितरों को कौन अन्नदान करेगा। क्षणिक विचलता के उपरांत उन्होंने दृढ़ निश्चय के साथ संन्यास लेने का विचार बना लिया। सब लोग जैगीषव्य की प्रशंसा कर रहे थे किंतु नारद ने वहां पहुंचकर कहा—"जैगीषव्य तपस्वी नहीं है, चमत्कार का प्रदर्शन मात्र करना जानता है।" देवताओं ने नारद को समझाया। जैगीषव्य ने असित देवल को समत्व बुद्धि का उपदेश तथा संन्यास की दीक्षा दी, इस कारण आदित्य तीर्थ का महत्त्व द्विगुणित हो गया। उसका पूर्व महत्त्व मात्र इतना ही था कि आदित्य ने वहां यज्ञ करके ज्योतियों का आधिपत्य प्राप्त किया था।

म० भा०, शल्यपर्व, अ० ५०, शांतिपर्व, अध्याय २२६

जैगीषव्य शिव का अनन्य भक्त था। काशी में पुनरागमन के अवसर पर शिव सर्वप्रथम उसीकी कुटिया पर गये। वह एकाकी रहता था तथा शिव के दर्शन न होने की अवस्था में वर्षों तक उसने जल और भोजन ग्रहण नहीं किया।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध ६।१६-२१।-

ज्योतिर्लिंग द्वारका नामक राक्षसी ने गिरिजा से वरदान प्राप्त किया कि उसके पास एक सुंदर नगर होगा। जहां वह जायेगी, नगर भी उसके साथ जायेगा। दारुका का विवाह दारुक नामक वीर दैत्य से होगा। दारुक सबको त्रस्त किए हुए था। देवता और मनुष्य मिलकर शिव-भक्त उर्व मुनि की शरण में पहुंचे। मुनि ने समस्त राक्षसों को शाप दिया कि उनमें से जो भी पृथ्वी पर आकर यज्ञभंग अथवा मानव-हनन करेगा नष्ट हो जायेगा। दारुक-दारुका आदि अपनी नगरी समेत जल के अंदर चले गये। वे वहीं से नौकाएं डुबोकर सबको तंग करने लगे। एक मनुष्य शिवभक्त था। दारुक ने उसे डरा-धमकाकर पूछा कि वह क्या करता है। अपने भक्त को कष्ट में देखकर शिव ने पाशुपत् अस्त्र दिखाकर सबको वहां से भगा दिया। दारुका ने गिरिजा का स्मरण किया। गिरिजा ने शिव से प्रार्थना की कि वे दारुक, दारुका, उनका वन तथा राक्षस सुरक्षित रहने दें। उस समय शिव ने उन्हें सुरक्षित छोड़ दिया। भविष्य में अपने भक्त राजा विभ्रसेन को एक नौका प्रदान की जिससे पश्चिम समुद्र से 'दारुक-वन' में जाकर विभ्रसेन ने वहां से पाशुपत् अस्त्र (जो कि उस प्रदेश में रखा था) उठाकर राक्षसों को मार डाला। शिव का नागेश नामक ज्योतिर्लिंग वहां स्थापित हुआ।

शि० पु०, ८।४७

ज्वर दक्ष प्रजापति ने अश्वमेध यज्ञ किया। उसमें भाग लेने के लिए सभी देवता गये, मात्र शिव नहीं गये। उमा ने देखा तो शिव से उसका कारण पूछा। शिव ने बताया कि उनके लिए यज्ञ में 'भाग' रखने की व्यवस्था नहीं है। उमा अत्यंत दुखी हो उठी। उन्होंने शिव से पूछा कि इतने बड़े और मुख्य देवता होने पर भी उनका 'भाग' न होना तो अपमानसूचक है। शिव क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने दक्ष के यज्ञ में विघ्न उपस्थित करवा दिया। उनका कोई गण दहाड़ने लगा, कोई रक्त की वर्षा करने लगा, कोई उपस्थित लोगों का भक्षण करने लगा। भयातुर यज्ञ मृग का रूप धारण करके आकाश की ओर दौड़ा। शिव ने धनुष और बाणसहित उसका पीछा किया। क्रोध के कारण उनके मस्तक से पसीने की बूंद पृथ्वी पर गिरी। पहले तो

उसने ज्वाला का रूप धारण किया, तदुपरांत एक भयानक पुरुष के रूप में परिणत हो गयी, जो ज्वर कहलाया। जगत का हाहाकार देखकर ब्रह्मा शिव के पास पहुंचे। उन्होंने बताया कि भविष्य में प्रत्येक यज्ञ में उनका भाग रखा जायेगा। ब्रह्मा ने कहा कि उनके ज्वर का सामूहिक रूप से कोई भी वहन नहीं कर सकता। अत: वे उसे खंड-खंड करके सृष्टि में बांट दें। अत: शिव का ज्वर हाथियों में मस्तक का ताप, पानी में सेवार, घोड़ों के गले में मांस-पिंड, भेड़ों के पित्तमेद, तोतों की हिचकी, शेर की थकावट और मनुष्य के ज्वर के रूप में प्रकट होने लगा। इसी प्रकार प्रत्येक तत्त्व के साथ उसका कोई-न-कोई रूप जुड़ा रहता है।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय २८३

ज्वाला भवानी दक्ष प्रजापति के यहां अपनी तथा अपने पति शिव की अवमानना देखकर सती ने अपना शरीर छोड़ दिया। शिव उस जड़ शरीरको देख मूर्च्छित हो गये। कालांतर में होश आने पर वे उस शव को अपने शरीर से चिपटाए इधर-उधर भटकते रहे। देश-भर का चक्कर काटकर वे देवनदी के तट पर पहुंचे। वरगद के वृक्ष के नीचे बैठकर वे बहुत जोर से रोने लगे। उनके आंसू भूमि पर गिरे जिससे नेत्र सरोवर नामक तीर्थ का निर्माण हुआ। उनके शरीर से सती का जो कोई अंग भी जुदा होकर गिरा, उसके गिरने का स्थान एक तीर्थ बन गया। बची हुई देहयष्टि का उन्होंने दाह-संकार किया, हड्डियों की माला बनाकर गले में पहन ली। सती के भस्म होते शरीर से एक ज्योति उठी तो पश्चिम की ओर एक प्रदेश में गिर पड़ी। वह प्रदेश ज्वाला भवानी नाम से प्रसिद्ध हुआ।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध २।३७-३८।-

□

तंडि सतयुगीन तंडि ऋषि ने शिव को प्रसन्न करने के लिए तपस्या की थी। शिव ने पार्वतीसहित दर्शन देकर विद्वान पुत्रदायी वर प्रदान किया था। ऐसा पुत्र, जो कि कल्पसूत्र का निर्माण करे। तंडि ने वर मांगा था कि वे शिव के अनन्य भक्त बने रहें।

म० भा०, दानधर्मपर्व, अध्याय १६,

तडित्केशी राजा तडित्केशी लंकानरेश था। एक बार वह अपनी पत्नी श्रीचंद्रा के साथ उद्यान में क्रीड़ा कर रहा था। सहसा एक बंदर ने नीचे गिरकर रानी के स्तन विदीर्ण कर डाले। बहते हुए रुधिर को देखकर राजा बहुत रुष्ट हुआ। उसने बंदर पर प्रहार किया। बंदर घायल होकर मृतप्राय स्थिति में एक मुनि के पास पहुंचा। मुनि के प्रभाव से उसने दूसरा जन्म उदधिकुमार नामक भवनवासी देव के रूप में लिया। उदधिकुमार ने पूर्वजन्म का स्मरण करके वानरों के साथ पत्थरों की वर्षा आरंभ की। तडित्केश ने उदधिकुमार से उसका परिचय और इस कृत्य का मंतव्य पूछा। उदधिकुमार ने पूर्वजन्म की कथा कह सुनायी। राजा ने क्षमा-याचना की। दोनों मित्रवत् महाघोष मुनि के पास गये, जिन्होंने उन दोनों के पूर्वजन्म के विषय में अनेक घटनाएं बतायीं।

पउ० च०, ६।६६-१४४

तपती सूर्य की कन्या का नाम तपती था। वह अत्यंत गुणवती तथा सुंदरी थी। सूर्य उसके समान कोई वर नहीं खोज पा रहे थे। उन्हीं दिनों ऋक्ष के पुत्र राजा संवरण सूर्य की उपासना कर रहे थे। एक दिन जंगल में शिकार करते समय उनका घोड़ा मारा गया, अत: वे पैदल ही इधर-उधर भटक रहे थे। तभी उन्हें तपती दिखायी पड़ी। तपती के सौंदर्य पर वे इतने आसक्त हो गये कि मूर्च्छा ने उन्हें घेर लिया। पिता की आज्ञा लिए बिना तपती उनके प्रेम-निवेदन का उत्तर देने के लिए तैयार नहीं थी। मूर्च्छित राजा को उनके मंत्री आदि उठाकर राज्य में ले गये। वे पुन: सूर्य की उपासना में रत हो गये। वसिष्ठ ने सूर्य से जाकर सब कुछ कह सुनाया तथा तपती से संवरण का विवाह हो गया। विवाहोपरांत उस युगल ने वहीं पर्वत पर बारह वर्ष तक विहार किया। उनकी अनुपस्थिति में कार्यभार मंत्रियों पर था। बारह वर्ष तक इंद्र ने उनके राज्य में एक बूंद पानी भी नहीं बरसाया, अत: दुर्भिक्ष की स्थिति उत्पन्न हो गयी। वसिष्ठ ने अपने तपोबल से उस नगरी में वर्षा की तथा प्रवासी संवरण और तपती को नगर में ले आये। इंद्र ने पूर्ववत् वर्षा प्रारंभ कर दी। संवरण तथा तपती ने कुरु को जन्म दिया, जिससे कौरव-वंश का सूत्रपात हुआ।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय १७० से १७२ तक

ताटका सुकेतु नाम का एक बहुत बलवान नि:संतान यक्ष था। उसने अपने तप से ब्रह्मा को प्रसन्न करके ताटका नामक पुत्री को प्राप्त किया। कालांतर में सुंदरी ताटका का विवाह जंभपुत्र 'सुंद' के साथ कर दिया गया। उसने मारीच नामक एक दुर्धर्ष पुत्र को जन्म दिया। एक बार अगस्त्य मुनि ने शाप देकर सुंद को मार डाला तब ताटका क्रोध से पागल होकर उन्हें धर दबोचने के लिए उद्यत हुई। पहले तो अगस्त्य मुनि ने उसके पुत्र मारीच को राक्षस हो जाने का शाप दिया, तदनंतर ताटका (यक्षिणी) को भी महाराक्षसी बन जाने का तथा कुरूपा हो जाने का शाप दिया। फलस्वरूप उसका रूप विकृत

हो गया तथा वह तपोभूमि को उजाड़ती रही। विश्वामित्र से प्रेरणा पाकर राम और लक्ष्मण ने उसे मार डाला। यद्यपि उसे मारना बहुत कठिन काम था। वह नाना रूप धारण करती हुई आंधी और उपल-वर्षा करने में व्यस्त रही तथापि राम-लक्ष्मण इस कार्य में सफल रहे। राम से प्रसन्न होकर विश्वामित्र ने उन्हें अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये।

वा० रा०, बाल कांड, सर्ग २५।१-२२
सर्ग २६।१-३६

तामस मनु (४) स्वराष्ट्र नामक विख्यात राजा के मंत्री के तप से प्रसन्न होकर सूर्य ने राजा को बहुत लंबी आयु प्रदान की। उसकी सौ रानियां थीं। वे सब सेवकों, सेनापतियों, मंत्रियों सहित स्वर्ग सिधार गयीं। राजा की लंबी आयु अभी शेष थी। उसे दुखी और क्षीण देखकर राजा विमर्द ने युद्ध में परास्त कर उसका राज्य ग्रहण कर लिया। राजा वितस्ता (झेलम) के तट पर प्रकृति का कोप सहता हुआ तपस्या करने लगा। एक बार एक बाढ़ में वह बह गया। बहते हुए उसने एक मृगी की पूंछ पकड़ ली। तट पर लगकर कीचड़ पार करने तक भी वह उसकी पूंछ पकड़े रहा। मृगी ने उसके काम-विमोहित भाव को पहचानकर मानव-वाणी में कहा—"मैं आपकी पटरानी उत्पलावती थी। बचपन में काम-क्रीड़ारत एक मृग युगल को विलग कर देने के कारण मृग ने मुझे इस जीवन में मृगी बनकर अपने पुत्र का वहन करने का शाप दिया था। मृगी के प्रेम के कारण उसने मृग का रूप धारण कर रखा था। वास्तव में वह मुनिपुत्र था। मेरे अनुनय-विनय पर उसने मुझे पुत्र-जन्म के पश्चात् शापमुक्त होकर उत्तम लोक प्राप्त करने का वर दिया था। उसने यह भी कहा था कि वह पुत्र वीर यशस्वी मनु होगा।" मृगी ने पुत्र-जन्म के उपरांत उत्तम लोक प्राप्त किये। राजा ने उसका पालन किया। तामसी योनि में पड़ी हुई माता के जन्म लेने के कारण उसका नाम तामस रखा गया। उसने अपने पिता (राजा) के समस्त शत्रुओं का दमन किया तथा अनेक यज्ञ किये। वही चौथा मनु था।

मा० पु०, ७१

तारक ब्रह्मा से वरदान प्राप्त कर वरांगी और वज्रांग के एक वीर, उत्पाती पुत्र का जन्म हुआ। उसके जन्म लेते ही संसार भूकंप इत्यादि प्राकृतिक प्रकोपों से ग्रस्त हो गया। देवता अकुलाने लगे। मां-बाप के दुःख को दूर करनेवाला वह पुत्र तारक कहलाया। उसने शिव को प्रसन्न करने के लिए आसुरी तप किया जिसमें अपने शरीर को काट-काटकर होम करने लगा। तीनों लोकों में अग्नि प्रज्वलित हो उठी। देवता त्रस्त हो गये। विष्णु ने मोहिनी रूप धारण करके उसे रिझाने का असफल प्रयास किया। सब लोग शिव की शरण में गये। शिव ने तारक से तप छोड़कर वर मांगने को कहा। तारक ने वर मांगा कि वह शिव के हाथों ही मारा जाय तथा उससे पूर्व करोड़ों वर्ष तक लोक में राज्य करे। सब असुरों का नायक बनकर उसने देवताओं पर चढ़ाई की तथा उन्हें परास्त करके राज्य हस्तगत कर लिया। यमराज, इंद्र, कुबेर आदि के स्थान दैत्यों ने ग्रहण कर लिये तथा देवताओं को बंदी बना लिया। शक्ति में अपने से अधिक जानकर विष्णु ने सबको नर के रूप में नृत्यादि से तारक को रिझाने की सलाह दी। इस उपनय से तारक को प्रसन्न कर उन्होंने पुनः अपने स्थान प्राप्त कर लिये। किंतु पूर्व पराजय उनका मन सालती रही। पूछने पर ब्रह्मा ने कहा कि शिव के वीर्य से उत्पन्न बालक ही तारक को मारने में समर्थ हो सकता है। उन्होंने कामदेव से कहा कि वह शिव को विमुग्ध करे। शिव उन दिनों हिमालय पर थे। कामदेव ने अपने बाणों का प्रयोग किया तो शिव ने तीसरे नेत्र से उसे भस्म कर दिया तथा हिमालय का परित्याग करके वे कैलास पर्वत चले गये। पूर्वकाल में कामदेव ने ब्रह्मा के मन में सरस्वती (संध्या) के प्रति वासना उत्पन्न की थी तब ब्रह्मा ने उसे शिव के द्वारा भस्म होने का शाप दिया था। गिरिजा और रति शिव तथा कामदेव के विरह में दुखी हो उठीं। देवताओं की आराधना के फलस्वरूप शिव ने कहा—"काम 'अतन' नाम से विख्यात होगा। वह केवल मन में उपजा करेगा। विष्णु के अवतार कृष्ण का पुत्र होकर जन्म लेगा। तब तक वह कैलास पर रहेगा। रति इंद्र के पास रहेगी।" नारद ने गिरिजा को शिव-प्राप्ति के लिए तपस्या करने को कहा। कामदेव को भस्म जानकर देवतागण शिव के पास गये और उनसे इच्छा प्रकट की कि वे गिरिजा से विवाह करें तथा बारात में सब देवताओं को ले चलें। शिव ने विवाह के विरोधी होते हुए भी उनका आग्रह मान लिया। गिरिजा तपस्या कर रही थी। शिव ने 'सप्तऋषि' को उसके प्रेम की परीक्षा लेने के लिए भेजा। अनेक प्रकार से समझाने पर भी गिरिजा शिव से विवाह करने की हठ पर दृढ़ रही। उसकी मां मैना शिव

के औघड़ रूप से घबरा गयीं। अंत में शिव ने अपने सुरूप के दर्शन दिये। 'नाद' गोत्रवाले शिव से गिरिजा का विवाह हुआ। विवाह के समय कपड़े से बाहर निकले गिरिजा के अंगूठे को देखकर ब्रह्मा से 'काम' पृथ्वी पर गिरा। उससे असंख्य 'बटुकों' का जन्म हुआ। शिव ने उन्हें सूर्य को सौंप दिया। शिव के विवाह पर सब प्रसन्न थे। सुअवसर देखकर रति ने अपने पति काम को मांगा। शिव ने काम को पुनः शरीर प्रदान किया। समस्त देवता यह प्रार्थना लेकर शिव के पास पहुंचे कि वे 'तारक' वध के निमित्त किसी को जन्म दें। शिव-पार्वती अंतःपुर में थे। शिव उनके बुलाने पर तुरंत बाहर निकल आये। देवताओं से आने का कारण पूछने से पूर्व उन्होंने कहा—"मेरा वीर्यपात हो रहा है, जो सशक्त हो ग्रहण करे।" विष्णु के संकेत पर कपोत रूपधारी अग्नि उसका पान करके उड़ गया। शिव के लौटने में विलंब देखकर पार्वती बाहर निकली और सब देवताओं से रुष्ट होकर शाप दिया कि उनकी पत्नियां बांझ रहें (दे० स्कंद)। शिव के पुत्र स्कंद ने देवताओं को साथ लेकर तारक पर आक्रमण किया। वीरभद्र और तारक का युद्ध हुआ। अंत में तारक षडानन (स्कंद) की सांगी से मारा गया।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध ३।३२-५८-
ब्र० पु०, ७१।-

तारा ज्वलशिख की कन्या का नाम तारा था। दुष्ट विद्याधर साहसगति तथा सुग्रीव दोनों ही उस कन्या से विवाह करना चाहते थे। ज्वलशिख ने किसी मुनि से पूछा। उन्होंने बताया कि साहसगति की आयु कम है, अतः उसने तारा का विवाह सुग्रीव से कर दिया।

पउ० च०, १०। १-१०

तुलसी तुलसी शंखचूड़ की पत्नी थी। शंखचूड़ को युद्ध में परास्त करने के लिए शिव की प्रेरणा से विष्णु शंखचूड़ का वेश धारण करके तुलसी के पास पहुंचे। उन्होंने दर्शाया कि वह (शंखचूड़) देवताओं को परास्त करके आया है। प्रसन्नता के आवेग में तुलसी ने उनके साथ समागम किया। तदनंतर विष्णु को पहचानकर पातिव्रत धर्म नष्ट करने के कारण उसने शाप दिया—"तुम पत्थर हो जाओ। तुमने देवताओं को प्रसन्न करने के लिए अपने भक्त के हनन के निमित्त उसकी पत्नी से छल किया है।" शिव ने प्रकट होकर उसके क्रोध का शमन किया तथा कहा—"तुम गंडकी नदी होकर विष्णु के अंश से बने समुद्र के साथ विहार करोगी। तुम्हारे शाप से विष्णु गंडकी नदी के किनारे पत्थर के होंगे और तुम तुलसी के रूप में उनपर चढ़ाई जाओगी। शंखचूड़ पूर्वजन्म में सुदामा था, तुम उसे भूलकर विष्णु के साथ विहार करो। शंखचूड़ की पत्नी होने के कारण नदी के रूप में तुम्हें सदैव शंख का साथ मिलेगा।" शिव अंतर्धान हो गये और वह शरीर का परित्याग करके बैकुंठ चली गयी।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध ५।३८।-

धर्मध्वज की पत्नी का नाम माधवी तथा पुत्री का नाम तुलसी था। वह अतीव सुंदरी थी। जन्म लेते ही वह नारीवत् होकर बदरीनाथ में तपस्या करने लगी। ब्रह्मा ने दर्शन देकर उसे वर मांगने के लिए कहा। उसने ब्रह्मा को बताया कि वह पूर्वजन्म में श्रीकृष्ण की सखी थी। राधा ने उसे कृष्ण के साथ रतिकर्म में मग्न देखकर मृत्युलोक जाने का शाप दिया था। कृष्ण की प्रेरणा से ही उसने ब्रह्मा की तपस्या की थी, अतः ब्रह्मा ने उससे पुनः श्रीकृष्ण को पतिरूप में प्राप्त करने का वर मांगा। ब्रह्मा ने कहा—"तुम भी जातिस्मरा हो तथा सुदामा भी अभी जातिस्मर हुआ है, उसको पतिरूप में ग्रहण करो। नारायण के शाप-अंश से तुम वृक्ष रूप ग्रहण करके वृंदावन में तुलसी अथवा वृंदावनी के नाम से विख्यात होगी। तुम्हारे बिना श्रीकृष्ण की कोई भी पूजा नहीं हो पायेगी। राधा को भी तुम प्रिय हो जाओगी।" ब्रह्मा ने उसे षोडशाक्षर राधा मंत्र दिया। महायोगी शंखचूड़ ने महर्षि जैगीषव्य से कृष्णमंत्र पाकर बदरीनाथ में प्रवेश किया। तुलसी से मिलने पर उसने बताया कि वह ब्रह्मा की आज्ञा से उससे विवाह करने के निमित्त वहां पहुंचा था। तुलसी ने उससे विवाह कर लिया। वे लोग दानवों के अधिपति के रूप में निवास करने लगे। एक दिन हरि ने अपना शूल देकर शिव से कहा कि वे शंखचूड़ को मार डालें। शिव ने उसपर आक्रमण किया। सबने विचारा कि जब तक उसकी पत्नी पतिव्रता है तथा उसके पास नारायण का दिया कवच है, उसे मारना असंभव होगा। अतः नारायण ने बूढ़े ब्राह्मण के रूप में जाकर उससे कवच की भिक्षा मांगी। शंखचूड़ का कवच पहनकर स्वयं उसका-सा रूप बनाकर वे उसके घर के सम्मुख दुंदुभी बजवाकर अपनी विजय की घोषणा की तथा तुलसी का सतीत्व नष्ट कर डाला। तुलसी ने जब अनुभव किया कि

मायावी पुरुष शंखचूड़ नहीं अपितु कृष्ण हैं तब उसने छली कृष्ण को पाषाण होने का शाप दिया। कृष्ण ने कहा—"मुझे पाने का तप तो तुमने ही किया था। इस शरीर को त्यागकर अब तुम लक्ष्मीवत् मेरे साथ रमण करो। तुम्हारा यह शरीर गंडकी नामक नदी तथा केश तुलसी नामक पवित्र वृक्ष होंगे। तुलसी समस्त लोकों में पवित्रतम वृक्ष के रूप में रहेगी।" श्रीकृष्ण ने कार्तिक की पूर्णिमा को तुलसी का पूजन करके गोलोक में रमा के साथ विहार किया, अतः वही तुलसी का जन्मदिन माना जाता है। प्रारंभ में लक्ष्मी तथा गंगा ने तो उसे स्वीकार कर लिया था, किंतु सरस्वती बहुत क्रुद्ध हुई। तुलसी वहां से अंतर्धान होकर वृंदावन में चली गयी। नारायण पुनः उसे ढूंढ़कर लाये तथा सरस्वती से उसकी मित्रता करवा दी। सबके लिए आनंदायिनी होने के कारण वह नंदिनी भी कहलाती है।

दे० भा०,९।१७-६५

तृणावर्त तृणावर्त नामक दैत्य कंस की प्रेरणा से गोकुल गया। उससे बवंडर का रूप धारण किया तथा श्रीकृष्ण को उड़ा ले चला। श्रीकृष्ण ने अत्यंत भारी रूप धारण कर लिया तथा दैत्य की गरदन दबाते रहे। अंततोगत्वा वह निष्प्राण होकर कृष्ण सहित ब्रज में गिर पड़ा (श्रीमद् भागवत की टीका के फुटनोट में संदर्भोल्लेख रहित प्रस्तुत कथा दी गयी है—पूर्वकाल में पांडुदेश में सहस्राक्ष नामक राजा था। वह रानियों के साथ जलविहार कर रहा था। अतः निकट से जाते दुर्वासा को उसने प्रणाम नहीं किया। दुर्वासा ने उसे राक्षस होने का शाप दिया तथा मुक्ति के लिए श्रीकृष्ण का स्पर्श वांछनीय बताया। वही राजा तृणावर्त के रूप में गोकुल पहुंचा।) वह राक्षस-रूप में पृथ्वी पर गिरा तो उसका विशाल शरीर क्षत-विक्षत दिखलायी पड़ रहा था।

श्रीमद् भा०, १०।७।१८-३७

त्रिजट वनगमन से पूर्व राम ने अपनी समस्त धनराशि निर्धन ब्रह्मणों में बांटनी प्रारंभ कर दी, तब त्रिजट की पत्नी ने त्रिजट के पास जाकर कहा—"फाल, कुदाल छोड़कर तुम बच्चों का हाथ थामो और श्रीराम के पास जाकर देखो, शायद कुछ मिल जाये।" उसने ऐसा ही किया। राम ने उससे परिहास में कहा—"हे ब्राह्मणदेव, सरयू के उस पार मेरी हजारों गायें हैं। आप एक दंड उठाकर फेंकिए, वह जितनी दूर गिरेगा, उतनी दूर तक की समस्त गायें आपकी हो जायेंगी।" ऐसा करने पर मुनि त्रिजट का दंड एक हजार गायों से युक्त, गोशाला में गिरा, जो कि सरयू नदी के दूसरे पार थी। वे समस्त गायें मुनि त्रिजट की हो गयी। वे राम को आशीर्वाद देकर अपने आश्रम चले गये।

वा० रा०, अयोध्या कांड, सर्ग ३२
श्लोक २८-४४

त्रिजटा रावण ने सीता को अशोकवाटिका में रख दिया था। वहां अनेक राक्षसियां नियुक्त थी, जो उसे डरा-धमकाकर रावण की सहचरि बनाना चाहती थीं। उन्हीं में से एक त्रिजटा थीं, जो एकांत में सीता को सदैव सांत्वना देती रहती थी। उसने सीता को बताया कि रावण उसके साथ अनाचार नहीं करेगा, क्योंकि कामुक रावण ने अपनी पुत्रवधू-तुल्य नलकूबर की पत्नी रंभा का स्पर्श किया था। नलकूबर ने उसे शाप दिया था कि नारी की इच्छा के बिना रावण उसका स्पर्श नहीं कर पायेगा। त्रिजटा ने यह भी बताया कि राम के हितचिंतक राक्षस अविंध्य ने उसके माध्यम से संदेश भेजा है कि राम-लक्ष्मण सुग्रीव के साथ शीघ्र ही रावण से युद्ध करने के लिए आ रहे हैं।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय २८०, श्लोक ५४-७४

त्रित त्रित प्राचीन देवताओं में से थे। उन्होंने सोम बनाया था। इंद्रादि अनेक देवताओं की स्तुतियां समय-समय पर की थीं। त्रित ने बल के दुर्ग को नष्ट किया था। युद्ध के समय मरुतों ने उनकी शक्ति की रक्षा की थी। वही त्रित अपनी अनेक गायों को लेकर जा रहे थे। मार्ग में आततायी सालावृकों ने उनपर आक्रमण कर दिया। त्रित को बांधकर एक अंधे कुएं में डाल दिया तथा वे लोग गायों को बलात् हांकते हुए ले गये। जल-विहीन टूटे-फूटे कुएं में गिरकर त्रित को बहुत खेद हुआ। सूखे कुएं पर सब ओर सूखी हुई काई और टूटी हुई दीवारें थीं। त्रित अपने विगत पराक्रम, पौरुष, स्तुतियों तथा देव-मित्रों का स्मरण करके बहुत क्षुब्ध हुए कि उनमें से कोई भी उनकी सहायता करने नहीं आता। त्रित निरंतर सोचते रहे कि भविष्य में उनका कंकाल उसी कुएं में पड़ा रहेगा और ऋतुएं उसे नष्ट कर डालेंगी। टूटे कुएं की दीवारों से टकराकर आहत त्रित की स्थिति पर दया कर देवगुरु बृहस्पति ने वहां जाकर उन्हें बाहर निकाला तथा सालावृक से उनकी गउएं लौटवा दीं।

ऋ० १।१०५ से १०६ तक

महात्मा गौतम के तीन पुत्र थे। तीनों ही मुनि थे। उनके नाम एकत, द्वित और त्रित थे। उन तीनों में सर्वाधिक यश के भागी तथा संभावित मुनि त्रित थे। कालांतर में महात्मा गौतम के स्वर्गवास के उपरांत उनके समस्त यजमान तीनों पुत्रों का आदर-सत्कार करने लगे। उन तीनों में से त्रित सर्वाधिक लोकप्रिय हो गये, अतः शेष दोनों भाई इस विचार में मग्न रहने लगे कि उसके साथ यज्ञ करके धन-धान्य प्राप्त करें तथा शेष जीवन सुख-सुविधा से यापन करें। एक बार तीनों ने किसी यज्ञ में सम्मिलित होकर अनेक पशु आदि धन प्राप्त किया। निःस्पृह त्रित आगे चलते जा रहे थे, दोनों भाई पशुओं के पीछे-पीछे उनकी सुरक्षा करते चले जा रहे थे। पशुओं के महान समुदाय को देख उन दोनों के मन में बार-बार उठता था कि कौन-से उपाय से त्रित को दिये बिना, समस्त पशु प्राप्त किये जा सकते हैं। तभी सामने एक भेड़िया देखकर त्रित भागा और एक अंध कूप में गिर गया। एकत और द्वित उसे वहीं छोड़कर पशुओं सहित घर लौट गये। त्रित ने कुएं में बहुत शोर मचाया किंतु कोई उसके त्राण के लिए आता नहीं दीखा। कुएं में तृण, वीरुध (झाड़ियां) और लताएं थीं। त्रित सोम से वंचित तथा मृत्यु से भयभीत था। मुनि ने बालू-भरे कुएं में संकल्प और भावना से जल, अग्नि आदि की स्थापना की और होता के स्थान पर अपनी प्रतिष्ठा की तदनंतर फैली हुई लता में सोम की भावना करके ऋग्, यजु, साम का चिंतन किया। लता को पीसकर सोम रस निकाला। उसकी आहुति देते हुए वेद-मंत्रों का गंभीर उच्चारण किया। वेद-ध्वनि स्वर्गलोक तक गूंज उठी। तुमुलनाद को सुनकर देवताओं सहित बृहस्पति त्रित मुनि के यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए गये। न पहुंचने पर उन्हें मुनि के शाप का भय था। मुनि ने विधिपूर्वक सब देवताओं को भाग समर्पित किये। देवताओं ने प्रसन्न होकर उनसे वर मांगने को कहा। त्रित ने उनसे दो वर मांगे—एक यह कि वे कूप से बाहर निकल आयें और दूसरे भविष्य में जो भी आचमन करे, वही यज्ञ में सोमपान का अधिकारी हो। देवताओं ने दोनों वर दे दिये। वह कुआं सरस्वती नदी के तट पर था, तुरंत ही उसमें जल लहलहाता हुआ भरने लगा। त्रित मुनि जल के साथ-साथ ऊपर उठने लगे और फिर कुएं से बाहर निकल आये। देवतागण अपने लोक चले गये। त्रित अपने घर पहुंचे तो उन्होंने दोनों भाइयों से कहा—"तुम पशुओं के लालच में पड़कर मुझे कुएं में छोड़ आये, अतः तुम भयानक दाढ़ों वाले भेड़िये बनकर भटकोगे तथा तुम्हें बंदर-लंगूर जैसी सन्तानें प्राप्त होंगी।" दोनों भाई तुरंत ही भेड़ियों की सूरत के हो गये।

म० भा०, शल्यपर्व, अध्याय ३६,
श्लोक ८ से ५५ तक

त्रिदेवपरीक्षा एक बार देवताओं के मन में संशय उठा कि ब्रह्मा, विष्णु, महेश में से कौन सबसे महान है। उसकी परीक्षा के लिए भृगु को नियुक्त किया गया। वे सबसे पहले ब्रह्मा के पास पहुंचे तथा उन्हें अभिवादन इत्यादि किये बिना उनकी सभा में चले गये। ब्रह्मा ने अपना पुत्र जानकर क्रोधावेश दबा लिया। भृगु शिव के पास गये। शिव ने हाथ बढ़ाकर उनका आलिंगन करना चाहा किंतु वे उन्हें उलटी-सीधी बातें कहने लगे। शिव त्रिशूल उठाकर उनके पीछे भागे। सती ने उन्हें शांत किया। तदनंतर वे विष्णु के पास गये। विष्णु लक्ष्मी की गोद में सिर रखकर लेटे हुए थे। भृगु ने उनकी छाती पर अपने पैर से प्रहार किया। विष्णु ने तुरंत उठकर उनसे क्षमा-याचना की कि उनके आगमन का ज्ञान न होने के कारण वे सुचारु सेवा नहीं कर पाये। देवताओं ने माना, विष्णु ही सर्वश्रेष्ठ हैं।

श्रीमद् भा०, १०।८९।-

त्रिपुर देवताओं और असुरों में परस्पर विजय पाने के लिए सर्वप्रथम तारकामय युद्ध हुआ। उस समय देवताओं ने दैत्यों को परास्त कर दिया। दैत्यों के परास्त होने के उपरांत ताराकासुर के तीन पुत्र ताराक्ष, कमलाक्ष तथा विद्युन्माली ने तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न कर लिया तथा वर प्राप्त किया कि वे तीनों आकाश में तीन वृहत् नगराकार विमानों में तीन पुरों की स्थापना करेंगे। तीनों पुरों में से एक सोने का पुर स्वर्गलोक में स्थित हुआ जिसका अधिपति तारकाक्ष था। दूसरा पुर चांदी का था जिसका अधिपति कमलाक्ष बना तथा वह अंतरिक्ष लोक में स्थिति हुआ। तीसरे पुर का अधिपति विद्युन्माली बना। वह पुर लोहे का था तथा उसकी स्थापना भूलोक में हुई। इस प्रकार वे तीनों दैत्य, तीनों लोकों को दबाकर रखते थे। उन तीनों पुरों का निर्माण विश्वकर्मा ने किया था। दैत्यों ने जब त्रिपुर स्थापना कर वर प्राप्त किया था तब वे त्रिपुर के अजर अमरत्व के आकांक्षी भी

थे किंतु ब्रह्मा ने यह नहीं माना था। अंततोगत्वा यह निश्चित हुआ था कि एक सहस्र वर्ष के उपरांत तीनों पुर परस्पर मिलेंगे—उस समय एक ही वाण से मार डालनेवाला देवेश्वर ही उनके नाश का कारण बन पायेगा। तारकाक्ष के पुत्र का नाम हरि था। उसने तपस्या से ब्रह्मा को संतुष्ट कर तीनों नगरों में ऐसा एक-एक तालाब बनवाने का वर प्राप्त किया, जिसमें स्नान करके मृत दैत्य पुनः जीवित हो जायें। अतः दैत्यों की मृत्यु कठिन हो गयी। उन दैत्यों से देवतागण अत्यंत त्रस्त हो गये। उन्हें नष्ट करने में देवताओं का कोई प्रयत्न फलीभूत नहीं हुआ, तो वे सब ब्रह्मा के पास पहुंचे तथा उनके दिये वरदान का निराकरण पूछने लगे। ब्रह्मा ने कहा कि मात्र शिव ही एक वाण से त्रिपुर का नाश करने में समर्थ हैं। देवताओं ने शिव की शरण ग्रहण की। शिव ने उनसे कहा कि वे शिव का आधा बल ग्रहण करके दानवों से युद्ध करें; पर देवताओं ने उत्तर दिया कि वे शिव का आधा बल वहन करने में असमर्थ हैं। शिव ही सव देवताओं का आधा तेज ग्रहण करके त्रिपुरवध कर दें। शिव ने स्वीकार कर लिया। देवताओं ने तीनों लोकों के तेज से शिव के लिए एक तेजस्वी रथ का निर्माण किया। निर्माणकर्ता विश्वकर्मा ही था। उसने दिव्य वाण का निर्माण किया, जिसकी गांठ में अग्नि, फल में चंद्रमा तथा अग्रभाग में विष्णु का निवास था। जगत के विविध उपकरणों से बने उस दिव्य रथ में सूर्य तथा चंद्रमा पहिये बने। (रथ के विभिन्न अवयवों का निर्माण किससे हुआ, जानने के लिए देखिए—'महादेव') अपनी जटाएं समेटकर, मृगचर्म कसकर तथा कमंडलु को अलग रखकर ब्रह्मा सारथी बने तथा उन्होंने अपने हाथ में चाबुक ले लिया। धनुष के क्षोभ से रथ शिथिल होने लगा तो वाण के भाग से बाहर निकलकर विष्णु ने वृषभ का रूप धारण किया तथा शिव के विशाल रथ को ऊपर उठाया। शिव ने वृषभ तथा घोड़े की पीठ पर खड़े होकर त्रिपुर देखे। शिव ने वृषभ के खुरों को चीरकर दो भागों में बांट दिया, तथा घोड़े के स्तन काट दिये। तभी से बैलों के दो-दो खुर होते हैं तथा घोड़े के स्तन नहीं होते। तदनंतर शिव ने उस दिव्य वाण से एक रूप हुए त्रिपुर का नाश कर दिया। देवतागण प्रसन्नचित्त अपने-अपने स्थान पर लौट गये।

म० भा०, कर्णपर्व, ३३।- कर्णपर्व।३४।११८
हरि० वं० पु० भविष्यपर्व।

(पूर्व कथा महाभारत के समान है।)
देवता शिव की शरण में पहुंचे। शिव ने वाण से उनका उच्छेद किया किंतु मय मायाप्रवीण था। उसने समस्त दैत्यों को उठाकर अमृत के कुएं में डाल दिया। अतः वे फिर जी उठे। कृष्ण ने अपने संकल्प में विफल महादेव को उदास देखा तो एक उपाय खोज निकाला। कृष्ण और ब्रह्मा क्रमशः गौ तथा बछड़ा बनकर तीनों पुरों में गये और कुओं का अमृत पी गये। तदनंतर तीनों लोकों को जला दिया फिर शिव त्रिपुरारि कहलाये।।

श्रीमद् भा०, सप्तम स्कंध, अध्याय १०, श्लोक ५३-७१

तारक-वध के उपरांत उसके तीनों पुत्रों (तडिन्माली, तारकाक्ष तथा कमलाक्ष) ने शिव की आराधना करके यह वर प्राप्त किया कि उनमें से प्रत्येक के लिए एक-एक नगर का निर्माण होगा। जो तीनों नगरों को एक ही वाण से नष्ट करे, मात्र वही उन तीनों दैत्यों को नष्ट करने में समर्थ हो सकेगा। उनके लिए मय दानव ने तीन पुर बनाये जो कि त्रिपुर नाम से विख्यात हुए। वहां के वासी शिवपूजक थे। त्रिपुर से समस्त देवता त्रस्त होकर ब्रह्मा के पास पहुंचे। उन सबने अपनी आराधना से शिव को प्रसन्न किया तथा विष्णु ने अपने शरीर से 'अर्हण' को जन्म दिया। विष्णु ने उसे अनीतिपूर्ण, वेद-शास्त्र विरुद्ध बातों से युक्त एक महान ग्रंथ प्रदान किया और उसका प्रचार त्रिपुर में करने को कहा। धीरे-धीरे समस्त त्रिपुरवासी शिवभक्ति छोड़कर उस अधार्मिक ग्रंथ को मानने लगे, अतः शिव ने एक ही वाण से त्रिपुर का नाश कर दिया।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध ५।१-२।-

त्रिपृष्ठ (पूर्वभव दे० विश्वभूति) जंबू द्वीप के विजयार्थ पर्वत पर स्थित अलका नगरी के राजा और रानी का नाम मयूरकंठ तथा मयूरकंठी था। विशाखनंदी के जीव ने उनके रूप में जन्म लिया। उसका नाम अश्वग्रीव रखा गया। इसी क्षेत्र के सुरमा नामक प्रदेश के राजा प्रजापति की दो पत्नियां थीं। उनमें से जयावती की कोख से विशाखभूति के जीव ने जन्म लिया जो विजय कहलाया, तथा मृगवती की कोख से विश्वनंदी के जीव ने त्रिपृष्ठ नामक बालक के रूप में जन्म लिया। वह अत्यंत बलवान था। एक बार राज्य को त्रस्त करनेवाले भयानक सिंह को पकड़कर उसने चीर डाला था। इससे उसकी ख्याति दूर-दूर तक पहुंची। रथनूपुर नगर के राजा ज्वलनजटी

ने अपनी कन्या का विवाह उससे कर दिया। अश्वग्रीव को ज्ञात हुआ तो वह बहुत क्रुद्ध हुआ कि विद्याधर की कन्या का विवाह एक भूमिगोचर से किया गया है। उसने त्रिपृष्ट से युद्ध किया, किंतु पराजित हो गया। उसने चक्ररत्न से त्रिपृष्ठ पर प्रहार किया। चक्ररत्न ने त्रिपृष्ठ की परिक्रमा की तथा उसके हाथ में जा टिका। त्रिपृष्ठ ने उसी चक्ररत्न से अश्वग्रीव को मार डाला। तदुपरांत उसने दिग्विजय की। कालांतर में उसकी मृत्यु के उपरांत विजय ने राज्यभार संभाला। त्रिपृष्ठ का जीव सातवें नरक में गया।

बृ० च०, सर्ग ५-१०

त्रिशंकु त्रिशंकु के मन में सशरीर स्वर्ग-प्राप्ति के लिए यज्ञ करने की कामना बलवती हुई तो वे वसिष्ठ के पास पहुंचे। वसिष्ठ ने यह कार्य असंभव बतलाया। वे दक्षिण प्रदेश में वसिष्ठ के सौ तपस्वी पुत्रों के पास गये। उन्होंने कहा—"जब वसिष्ठ ने मना कर दिया है तो हमारे लिए कैसे संभव हो सकता है?" त्रिशंकु के यह कहने पर कि वे किसी और की शरण में जायेंगे, उनके गुरु-पुत्रों ने उन्हें चांडाल होने का शाप दिया। चांडाल रूप में वे विश्वामित्र की शरण में गये। विश्वामित्र ने उसके लिए यज्ञ करना स्वीकार कर लिया। यज्ञ में समस्त ऋषियों को आमंत्रित किया गया। सब आने के लिए तैयार थे, किंतु वसिष्ठ के सौ पुत्र और महोदय नामक ऋषि ने कहला भेजा कि वे लोग नहीं आयेंगे। क्योंकि जिस चांडाल का यज्ञ कराने वाले क्षत्रिय हैं, उस यज्ञ में देवता और ऋषि किस प्रकार हवि ग्रहण कर सकते हैं। विश्वामित्र ने क्रुद्ध होकर शाप दिया कि वे सब कालपाश में बंधकर यमपुरी चले जायें तथा वहां सात सौ जन्मों तक मुर्दों का भक्षण करें। यज्ञ आरंभ हो गये। बहुत समय बाद देवताओं को आमन्त्रित किया गया पर जब वे नहीं आये तो क्रुद्ध होकर विश्वामित्र ने अपने हाथ में सुवा लेकर कहा—"मैं अपने अर्जित तप के बल से तुम्हें (त्रिशंकु को) सशरीर स्वर्ग भेजता हूं।" त्रिशंकु स्वर्ग की ओर सशरीर जाने लगे तो इंद्र ने कहा—"तू लौट जा, क्योंकि गुरु से शापित है। तू सिर नीचा करके यहां से गिर जा।" वह नीचे गिरने लगा तो विश्वामित्र से रक्षा की याचना की। उन्होंने कहा—"वहीं ठहरो," तथा क्रुद्ध होकर इंद्र का नाश करने अथवा स्वयं दूसरा इंद्र बनने का निश्चय किया। उन्होंने अनेक नक्षत्रों तथा देवताओं की रचना कर डाली। देवता, ऋषि, असुर विनीत भाव से विश्वामित्र के पास गये। अंत में यह निश्चय हुआ कि जब तक सृष्टि रहेगी, ध्रुव, सूर्य, पृथ्वी, नक्षत्र रहेंगे, तब तक विश्वामित्र का रचा नक्षत्रमंडल और स्वर्ग भी रहेंगे और उस स्वर्ग में त्रिशंकु, सशरीर, नतमस्तक विद्यमान रहेंगे।

बा० रा०, बाल कांड, सर्ग ५७, पद ६-२२
सर्ग ५८, १-२४, सर्ग ५९, १-२२, सर्ग ६०, १-३४

मांधाता के वंश में त्रैय्यारुणि के पुत्र का नाम सत्यव्रत था। वह चांडाल हो गया था। एक बार बारह वर्ष तक अनावृष्टि रही। सत्यव्रत विश्वामित्र मुनि के परिवार के पालन तथा अपने चंडालपन से छुटकारा पाने के लिए प्रतिदिन गंगा के तट पर एक वटवृक्ष पर मृग का मांस बांध आता था। विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर उसे सदेह स्वर्ग भेज दिया। देवताओं ने उसे स्वर्ग नहीं आने दिया, अतः वह बीच में लटका हुआ रह गया। वह बाद में त्रिशंकु नाम से विख्यात हुआ।

वि० पु०, ४।३।१८-२४

मांधाता के कुल में सत्यव्रत नामक पुत्र का जन्म हुआ। सत्यव्रत अपने पिता तथा गुरु के शाप से चांडाल हो गया था तथापि विश्वामित्र के प्रभाव से उसने सशरीर स्वर्ग प्राप्त किया। देवताओं ने उसे स्वर्ग से धकेल दिया। अतः वह सिर नीचे और पांव ऊपर किये आज भी लटका हुआ है, क्योंकि विश्वामित्र के प्रभाव से वह पृथ्वी पर नहीं गिर सकता। वही सत्यव्रत त्रिशंकु नाम से विख्यात हुआ।

श्रीमद् भा०, नवम स्कंध, अध्याय ७, श्लोक ४-६

त्रैय्यारुणि के पुत्र का नाम सत्यव्रत था। चंचलता और कामुकतावश उसने किसी नगरवासी की कन्या का अपहरण कर लिया। त्रैय्यारुणि ने रुष्ट होकर उसे राज्य से निकाल दिया तथा स्वयं भी वन में चला गया। सत्यव्रत चांडाल के घर रहने लगा। इंद्र ने बारह वर्ष तक उसके राज्य में वर्षा नहीं की। विश्वामित्र पत्नी को उसी राज्य में छोड़कर तपस्या करने गये हुए थे। अनावृष्टि से त्रस्त उनकी पत्नी अपने शेष कुटुंब का पालन करने के लिए मंझले पुत्र के गले में रस्सी बांधकर सौ गायों के बदले में उसे बेचने गयी। सत्यव्रत ने उसे छुड़ा दिया। गले में रस्सी पड़ने के कारण वह पुत्र गालव कहलाया। सत्यव्रत उस परिवार के निमित्त प्रतिदिन मांस जुटाता था। एक

दिन वह वसिष्ठ की गाय को मार लाया। उसने तथा विश्वामित्र-परिवार ने मांस-भक्षण किया। वसिष्ठ पहले ही उसके कर्मों से रुष्ट थे। गोहत्या के उपरांत उन्होंने उसे त्रिशंकु कहा। विश्वामित्र ने उससे प्रसन्न होकर उसका राज्याभिषेक किया तथा उसे सशरीर स्वर्ग जाने का वरदान दिया। देवताओं तथा वसिष्ठ के देखते-देखते ही वह स्वर्ग की ओर चल पड़ा। उसकी पत्नी ने निष्पाप राजा हरिश्चंद्र को जन्म दिया।

ब्र० पु०, ७।९७-१०९, ब्र० पु० ८-

त्रैय्यारुणि (मुचुकुंद के भाई) का एक पुत्र हुआ, जिसका नाम सत्यव्रत था। वह दुष्ट तथा मंत्रों को भ्रष्ट करने वाला था। राजा ने क्रुद्ध होकर उसे घर से निकाल दिया। वह रसोईघर के पास रहने लगा। राजा राज्य छोड़कर वन में चला गया। उसके साथ ही मुनि विश्वामित्र भी तपस्या करने चले गये। एक दिन मुनि-पत्नी अपने बीच के लड़के के गले में रस्सी बांधकर उसे सौ गायों के बदले में बेचने के लिए ले जा रही थी। सत्यव्रत ने दयार्द्र होकर उसे बंधन मुक्त करके स्वयं पालना आरंभ कर दिया तब से उसका नाम गालव्य पड़ गया। सत्यव्रत अनेक प्रकार से विश्वामित्र के कुटुंब का पालन करने लगा, किन्तु किसीने उसने घर के भीतर नही बुलाया। एक बार क्षुधा से व्याकुल होकर उसने वसिष्ठ की एक गाय मारकर विश्वामित्र के पुत्र के साथ बैठकर खा ली। वसिष्ठ को पता चला तो वे बहुत रुष्ट हुए। विश्वामित्र घर लौटे तो स्वकुटुंब पालन के कारण इतने प्रसन्न हुए कि उसे राजा बना दिया तथा सशरीर उसे स्वर्ग में बैठा दिया। वसिष्ठ ने उसे पतित होकर नीचे गिरने का शाप दिया तथा विश्वामित्र ने वहीं रुके रहने का आशीर्वाद दिया, अतः वह आकाश और पृथ्वी के बीच आज भी ज्यों का त्यों लटक रहा है। वह तभी से त्रिशंकु कहलाया।

शि० पु०, ११।२०

(वि० पु० की कथा से अंतर यहां उल्लिखित है) अरुण के पुत्र का नाम सत्यव्रत था। उसने ब्राह्मण कन्या का अपहरण किया था। प्रजा ने अरुण से कहा कि उसने ब्राह्मण भार्या का अपहरण किया है, अतः राजा ने उसे चांडाल के साथ रहने का शाप देकर राज्य से निर्वासित कर दिया। वसिष्ठ को ज्ञात था कि वह ब्राह्मण कन्या थी, भार्या नहीं किंतु उन्होंने राजा की वर्जना नहीं की, अतः सत्यव्रत उनसे रुष्ट हो गया। वन में उसने विश्वामित्र के परिवार की सेवा की। एक दिन शिकार न मिलने पर वसिष्ठ की गाय का वध करके उन्हें मांस दिया। वसिष्ठ ने रुष्ट होकर उसे कभी स्वर्ग न प्राप्त कर पाने का शाप दिया तथा ब्राह्मण कन्या के अपहरण, राज्य भ्रष्ट होने तथा गोहत्या करने के कारण उसके मस्तक पर तीन शंकु (कुष्ठवात्) का चिह्न बन गया, तभी से वह त्रिशंकु कहलाया। इस सबसे दुखी हो वह आत्म-हत्या के लिए तत्पर हुआ, किंतु महादेवी ने प्रकट होकर उसकी वर्जना की। विश्वामित्र के वरदान तथा महादेवी की कृपा से उसे पिता का राज्य प्राप्त हुआ। उसके पुत्र का नाम हरिश्चंद्र रखा गया। हरिश्चंद्र को युवराज घोषित करके वह सदेह स्वर्ग-प्राप्ति के लिए यज्ञ करना चाहता था। वसिष्ठ ने उसका यज्ञ कराना अस्वीकार कर दिया। वह किसी और ब्राह्मण पुरोहित की खोज करने लगा तो रुष्ट होकर वसिष्ठ ने उसे श्वपचाकृति पिशाच होने तथा कभी स्वर्ग प्राप्त न करने का शाप दिया। विश्वामित्र त्रिशंकु से विशेष प्रसन्न थे क्योंकि उसने उनके परिवार का पालन किया था, अतः उन्होंने अपने समस्त पुण्य उसे प्रदान करके स्वर्ग भेज दिया। श्वपचाकृति के व्यक्ति को इंद्र ने स्वर्ग में नहीं घुसने दिया। वहां से पतित होकर उसने विश्वामित्र को स्मरण किया। विश्वामित्र ने उसे पृथ्वी पर नहीं गिरने दिया, अतः वह मध्य में रुका रह गया। विश्वामित्र उसके लिए दूसरे स्वर्ग का निर्माण करने में लग गये। यह जानकर इंद्र स्वयं उसे स्वर्ग ले गये।

दे० भा०,७।१०-१३

त्रिशिरा सूत्रद्रष्टा त्रिशिरा के तीन सिर थे। वह एक मुंह से सुरापान, दूसरे से सोमपान और तीसरे से अन्न ग्रहण करता था। वह त्वष्ट्र का पुत्र होने के कारण त्वाष्ट्र भी कहलाया। उसकी मां असुरों की बहन थी, अतः त्रिशिरा देवपुरोहित होते हुए भी असुरों से अधिक प्रेम करता था। एक बार इंद्र ने सोचा कि त्रिशिरा को असुर-पुरोहित बनाना असुरों की चाल है, अतः उन्होंने उसके तीनों सिरों को काट डाला। सोमपान करनेवाला मुख गिरते ही कपिंजल पक्षी बन गया। सुरापान वाला मुंह कल-विड़्क (चिड़िया) बन गया और अन्न ग्रहण करनेवाला तित्तिर पक्षी बन गया। इंद्र पर ब्रह्महत्या का दोष लग गया। इंद्र ने अपना पाप तीन भागों में विभक्त कर पृथ्वी, वृक्ष तथा स्त्रियों में स्थापित कर दिया, अतः

पृथ्वी में सड़ने का, वृक्षों में गिरने का और स्त्रियों में रजस्वला का दोष उत्पन्न हो गया। इंद्र के पातक को दूर करने के लिए सिंधु द्वीप के बांबरीष ऋषि ने जल अभिसिंचित किया। अभिषिक्त जल इंद्र की मूर्धा पर डालकर इंद्र की मलिनता को शुद्ध किया गया।

ऋ०, १०।८-६, ता० ब्रा० १७।५।१
जै० ब्रा० २।१३५, २।१५३-१५४

त्वष्टा नामक प्रसिद्ध देवता की इंद्र के प्रति द्रोह बुद्धि हो गयी। अतः त्वष्टा ने एक तीन सिरवाले (त्रिशिरा) विश्वरूप नामक बालक को जन्म दिया। वह तेजस्वी था, इंद्र का स्थान प्राप्त करने की प्रार्थना करता था। आरंभ में वह यज्ञ का होता बनकर देवताओं को प्रत्यक्ष तथा असुरों को परोक्ष रूप से यज्ञों का भाग देता था। वह असुरों का भांजा था। अतः हिरण्यकशिपु को आगे करके समस्त असुर उसकी मां के पास पहुंचे और उसे अपने पुत्र को समझाने के लिए कहने लगे क्योंकि देवताओं की वृद्धि और असुरों का क्षय होता जा रहा था। मां की आज्ञा अलंघनीय मानकर विश्वरूप ने राजा हिरण्यकशिपु के पुरोहित का स्थान ग्रहण किया। राजा के पूर्व पुरोहित, वसिष्ठ ने क्रोधवश शाप दिया कि वह (राजा) यज्ञपूर्ति से पूर्व ही किसी अभूतपूर्व प्राणी के हाथों मारा जायेगा। ऐसा ही होने पर विश्वरूप देवताओं का चिरविरोधी बन गया। वह एक मुख से वेदों का स्वाध्याय, दूसरे से सुरापान करता था तथा तीसरे से समस्त दिशाओं को ऐसे देखता था जैसे उन्हें पी जायेगा। साथ ही अन्न भक्षण भी करता था। इंद्र ने भयभीत होकर अप्सराओं को उसकी तपस्या भंग करने के लिए भेजा। त्रिशिरा में इससे कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ, तो इंद्र ने अपने वज्र से उसकी हत्या कर दी, फिर भी उसे संतोष नहीं हुआ। एक बढ़ई से इंद्र ने उसके तीनों सिरों को खंडित करवाया। तीनों सिर कटने पर जिस मुंह से वह वेदपाठ करता था, उससे कपिंजल पक्षी; जिससे सुरापान करता था, उससे गौरैये तथा जिससे दिशाओं को देखता था, उससे तीतर पक्षी प्रकट हुए। इंद्र ने इस ब्रह्महत्या को एक वर्ष तक छिपाकर रखा, फिर समुद्र, पृथ्वी, वृक्ष तथा स्त्री समुदाय में ब्रह्महत्या के पाप को बांटकर स्वयं शुद्ध हो गया।

म० भा०, उद्योगपर्व, अध्याय ६।
श्लोक १ से ४४ तक, शांतिपर्व, अ० ३४२।२७-४२।-

इंद्र को अपनी शक्ति का मद हो गया था। एक बार उनकी सभा में बृहस्पति पहुंचे तो उन्हें उचित सम्मान नहीं मिला। बृहस्पति देवताओं का साथ छोड़कर अंतर्धान हो गये। फलस्वरूप शुक्राचार्य से आदिष्ट असुर बलवान होकर युद्धविजयी होने लगे। देवता ब्रह्मा की सलाह से त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप की शरण में गये। उनकी नीति का पालन करके देवताओं ने पुनः विजय प्राप्त की। विश्वरूप के तीन सिर थे। उनके पिता देवता तथा मां असुरों से संबद्ध थी। अतः वे लुक-छिपकर असुरों को भी आहुति दिया करते थे। इंद्र को पता चला तो उसने उनके तीनों सिर काट डाले। विश्वरूप का सोमरस पान करनेवाला मुंह पपीहा, सुरापान करनेवाला गौरैया तथा अन्न खानेवाला तीतर हो गया। इंद्र को ब्रह्महत्या का दोष लगा, जिसे स्त्री, पृथ्वी, जल और वृक्षों ने परस्पर बांटकर इंद्र को दोष-मुक्त कर दिया।

श्रीमद् भा०, षष्ठ स्कंध, अध्याय ७-६

विश्वकर्मा देवताओं का प्रिय शिल्पी था। उसने इंद्र के प्रति विद्वेष के कारण परम् रूपवान त्रिशिरा (विश्वरूप) नामक पुत्र को उत्पन्न किया। उसके तीन मुख थे। एक से वह वेद पढ़ता था, दूसरे से सुरापान करता था तथा तीसरे से समस्त दिशाएं देखता था। वह घोर तपस्या करने लगा। ग्रीष्म में वह पेड़ से उलटा लटककर तथा शीत में पानी में निवास करते हुए तपस्या करता था। इंद्र को भय हुआ कि कहीं वह इंद्रासन न प्राप्त कर ले, अतः उसने उर्वशी आदि अप्सराओं को उसकी तपस्या भंग करने के लिए भेजा। वे असफल होकर लौट आयीं। इंद्र ने क्रुद्ध होकर अपने वज्र से त्रिशिरा का सिर काट डाला। मुनि भूमि पर गिरकर भी तेजस्वी जीवित-सा जान पड़ रहा था, अतः इंद्र ने तक्ष (बढ़ई) को यज्ञ में, सदा पशु का सिर देने का, लालच देकर उसके कुठार से त्रिशिरा के तीनों मस्तकों का छेदन करवाया। तत्काल तीनों मुखों से (१) कलविंक (सुरापान करने वाले मुख से), (२) तीतर (समस्त दिशादर्शी मुख से) तथा (३) कपिंजल (वेदाभ्यासी मुख से) आविर्भूत हुए। इंद्र प्रसन्न होकर चला गया। विश्वकर्मा ने दुर्घटना के विषय में जाना तो पुत्रोत्पत्ति के निमित्त यज्ञ करने लगा। यज्ञ से तपस्वी पुत्र पाकर विश्वकर्मा ने उसे अपना समस्त बल और तेज प्रदान किया। पर्वतवत् विशाल उस पुत्र का नाम वृत्र रखा

क्योंकि वह दुःख से रक्षा करने के लिए निमित्त उत्पन्न किया गया था।

दे० भा०, ६।१।२६, ६।२।-

त्रिशिरा (ज्वर) श्रीकृष्ण और वाणासुर के परस्पर युद्ध में त्रिशिरा ने भी भाग लिया था। वह वाणासुर का साथी था। उसके तीन पैर, तीन सिर, छः बांहें, नौ आंखें थीं। वह निरंतर जम्हाई लेता रहता था। उसका आयुध भस्म था। वह जिसपर भस्म फेंकता, वही दग्ध होने लगता था। अतः वह त्रिशिरा-ज्वर कहलाता था। उसने बलराम पर भस्म फेंकी। वे जलने लगे तो कृष्ण ने उन्हें गले से लगाया और वे दाह से मुक्त हो गये। कृष्ण पर फेंकी गयी भस्म प्रज्वलित होकर तत्काल ही शांत हो गयी। कृष्ण ने उसे पृथ्वी पर पटक दिया। वह तत्काल कृष्ण के शरीर में प्रवेश कर गया। फलस्वरूप कृष्ण जम्हाई लेने और निद्रा का अनुभव करने लगे। कृष्ण ने वैष्णव ज्वर की सृष्टि की जिसने उनके शरीर से त्रिशिरा-ज्वर को बलात् बाहर निकाल दिया। उसने कृष्ण की शरण ग्रहण की। उसने अनुनय-विनय से अपने प्राणों की रक्षा की तथा कृष्ण से वर मांगा कि उससे इतर दूसरा ज्वर न हो पाये। कृष्ण ने ज्वर से कहा कि वह अपने-आपको तीन भागों में विभक्त करे। एक भाग से चौपायों में, दूसरे से स्थावर वस्तुओं में और तीसरे भाग से मनुष्य तथा पक्षियों में निवास करे। इस प्रकार त्रिशिरा-ज्वर समस्त रोगों का अधिपति बन गया।

हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व, १२२-१२३

त्रिहारिणी इंद्रसावर्णी कट्टर वैष्णव थे, किंतु उन्हीं के पुत्र का नाम वृषध्वज था, जो कट्टर शैव था। शिव उसे अपने पुत्रों से भी अधिक प्यार करते थे। उसके विष्णुभक्त न होने के कारण रुष्ट होकर सूर्य ने आजीवन भ्रष्टश्री होने का शाप दिया। शिव ने जाना तो त्रिशूल लेकर सूर्य के पीछे गए। सूर्य कश्यप को साथ लेकर नारायण की शरण में बैकुंठधाम पहुंचा। नारायण ने उसे निर्भय होकर अपने घर जाने को कहा, क्योंकि शिव भी उनके भक्तों में से हैं। उसी समय शिव ने वहां पहुंचकर नारायण को प्रणाम किया तथा सूर्य ने चंद्रशेखर को प्रणाम किया। नारायण ने शिव के क्रोध का कारण जानकर कहा—"बैकुंठ में आये आधी घड़ी होने पर भी मृत्युलोक के इक्कीस युग बीत चुके हैं। वृषध्वज कालवश लोकांतर प्राप्त कर चुका है। उसके दो पुत्र रथध्वज और धर्मध्वज भी हतश्री हैं तथा शिवभक्त हैं। वे लक्ष्मी की उपासना कर रहे हैं। लक्ष्मी आंशिक रूप से उनकी पत्नियों में अवतरित होंगी, तब वे श्रीयुक्त होंगे।" यह सुनकर शिव तपस्या करने चले गये। कुछ समय उपरांत उनके कुशध्वज तथा धर्मध्वज नामक दो पुत्र हुए। कुशध्वज की पत्नी मालावती ने कमला के अंश से एक कन्या को जन्म दिया। उसने जन्म लेते ही वेद-पाठ आरंभ कर दिया। अतः वेदवती कहलायी तथा स्नान करते ही तप करने के लिए वन में जाने की इच्छा प्रकट की। अत्यंत कठिन तपस्या करने पर भी उसका शरीर क्षीण नहीं हुआ। एक दिन उसे आकाशवाणी सुनायी पड़ी कि श्रीहरि स्वयं उसके पति होंगे। एक दिन रावण अतिथिवेश में वहां पहुंचा। वह बलात्कार के लिए उद्यत हुआ तो वेदवती ने उसका स्तंभन कर दिया। रावण ने मन-ही-मन देवी की स्तुति की। देवी ने उसे मुक्त कर दिया किंतु वेदवती का स्पर्श करने के दंडस्वरूप उसे शाप दिया—"तुम अर्चना के फलस्वरूप परलोक जा सकते हो, किंतु क्योंकि तुमने कामभावना सहित मेरा स्पर्श किया था, अतः तुम अपने वंश-सहित नष्ट हो जाओगे।" रावण को अपना कौशल दिखाते हुए उसने देह त्याग दी। त्रेतायुग में वही सीता होकर जनक के यहां उत्पन्न हुई तथा रावण का समस्त कुल उसके लिए नष्ट हो गया। (दे० सीता बा० रा०। उस कथा में जो अंतर है, वह निम्नलिखित है।) अग्नि-परीक्षा के उपरांत अग्नि ने राम के हाथ में प्रकृत सीता का समर्पण किया। छाया सीता ने राम से भविष्य-कर्तव्य का निर्देश मांगा। राम के कथनानुसार वह पुष्कर में तपस्या करके स्वर्गलक्ष्मी हुई।

पुष्कर में तपस्या करते-करते उसने शिव से बार-बार पति प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। विनोदी शिव ने उसे पांच पति प्राप्त करने का वर दिया। फलतः द्वापर में वह द्रौपदी के रूप में उत्पन्न हुई। इस प्रकार वेदवती, सीता, और द्रौपदी के रूप में जन्म लेने के कारण वह त्रिहारिणी कहलायी।

दे० भा०, ६।१५-१६

त्र्यंबकम् शिवलिंग संसार में अत्यंत सूखा पड़ने पर गौतम, उनकी पत्नी अहल्या तथा उनके शिष्यों ने घोर तप किया। वरुण ने प्रसन्न होकर एक हाथ भर गर्त (कुंड) प्रदान किया जिसका पानी कभी समाप्त नहीं

हो सकता था तथा एक अक्षय कमल दिया। उसके निकट अनेक मुनि आकर रहने लगे। एक बार गौतम के शिष्य बिना पानी भरे वहां से लौट आये, क्योंकि मुनि-पत्नियों ने पहले पानी भरने की इच्छा प्रकट की थी। अहल्या ने उनके साथ जाकर पानी भरवा दिया। मुनि पत्नियों ने झूट बोला कि शिष्य उनसे बुरा-भला कहकर गये हैं, अतः समस्त मुनि गौतम से रुष्ट हो गये तथा गणेश के समझाने पर भी नहीं समझे। एक दिन खेत खराब करती हुई गाय को गौतम ने तिनके से हटाना चाहा तो वह पृथ्वी पर गिर गयी और सबने मिलकर गौतम को गौ-हत्यारा माना। गौतम और अहल्या दूर निर्जन स्थान में पंद्रह दिन तक पड़े रहे, फिर मुनियों के पास पहुंचे। उन्होंने अपनी पत्नियों की बात को सच जानकर शिव की तपस्या करने को कहा। वैसा करने पर शिव ने पुत्र और गणों सहित प्रकट होकर गौतम को वर मांगने के लिए कहा। गौतम के मांगने पर शिव ने उन्हें नारी-रूपी गंगा प्रदान की। गौतम ने गंगा की आराधना करके पाप से मुक्ति प्राप्त की। गौतम तथा मुनियों को गंगा ने पूर्ण पवित्र कर दिया। वह गौतमी कहलायी। गौतमी नदी के किनारे त्र्यंबकम् शिवलिंग की स्थापना की गयी, क्योंकि इसी शर्त पर वह वहां ठहरने के लिए तैयार हुई थी।

शि० पु०,८।३९-४२

त्र्यरुण एक बार राजा त्र्यरुण को एक सारथी की आवश्यकता थी। उसके पुरोहित वृषजान ने घोड़ों की लगाम को थाम लिया। पुरोहित को सारथी रूप में पाकर राजा रथारूढ़ हुए। मार्ग में एक बालक आ गया। अथक प्रयत्न से भी वृषजान घोड़ों को वह न रोक पाया तथा बालक रथ के पहिये से कुचलकर मारा गया। जनता इकट्ठी हो गयी, हाहाकार मच गया। पुरोहित ने अथर्वन् मंत्रों तथा 'वार्शसाम' स्तोत्र द्वारा स्तवन किया। बालक पुनः जीवित हो गया। विवाद शुरू हो चुका था कि अपराधी कौन है—सारथी या रथी? सबने निश्चय किया कि इक्ष्वाकु इसका निर्णय करेंगे। इक्ष्वाकु की व्यवस्था के अनुसार वृषजान को स्वदेश त्यागना पड़ा।

प्रजा के सम्मुख विकट संकट उत्पन्न हो गया। अग्नि तापरहित हो गयी। भोजन तैयार करना, दूध-पानी गरम करना असंभव हो गया। प्रजा ने एकत्र होकर कहा कि पुरोहित को दंड देना अनुचित है। इक्ष्वाकु ने अपने वंशज (त्र्यरुण) के साथ पक्षपात करके पुरोहित को विदेश-गमन की व्यवस्था दी है, इसीसे अग्नि का ताप नष्ट हो गया। राजा पुरोहित के पास गये। उनसे क्षमायाचना की और कहा—"पुरोहितवर, आपका धर्म क्षमादान है। मेरा दंडदान—आप मुझे क्षमा कीजिए। मेरे कारण प्रजा को कष्ट पहुंचाना उचित नहीं है।" पुरोहित वृषजान ने राजा को क्षमा कर दिया तथा राज्य का पुरोहित-पद पुनः स्वीकार कर लिया, किंतु अग्नि का ताप नहीं लौटा। पुरोहित ने कहा कि वे कारण जान गये हैं। उन्होंने कहा कि रानी पिशाचिनी है। रानी को बुलाया गया। पुरोहित ने अग्निदेव का आवाहन किया। रानी अत्यंत मलिन उदास थी। अग्नि देवता ने प्रकट होकर रानी को भस्म कर दिया। पाप की समाप्ति के साथ अग्नि का तेज और प्रकाश पुनः लौट आए।

ऋ० ५।२, ५।२१, जै० ब्रा० ३।९।२

त्वष्टा त्वष्टा चतुर शिल्पी थे। उन्होंने इंद्र का वज्र बनाया था। उनके तीन शिष्य प्रसिद्ध हैं—ऋभु, बिंबन तथा बाज। देवताओं के लिए उन्होंने अनेक वस्तुओं का निर्माण किया था, जिनमें चमस, संपत्तिपूर्ण कलश, सोम पात्र, चमस पात्र आदि उनकी सुंदर कला के परिचायक थे। उन्होंने विविध प्राणियों को भी जन्म दिया था। उनकी पुत्री का नाम सरण्यू तथा पुत्र का नाम त्रिशिरा था। सरण्यू का विवाह उन्होंने विवस्वत (सूर्य) से किया था।

ऋ० १०।१७

□

दंड-विधान ब्रह्मायज्ञ करना चाहते थे किंतु उनको कोई सुयोग्य ऋत्विज नहीं दिखायी दिया। उन्होंने अपने मस्तक में गर्भ धारण किया। सहस्र वर्ष उपरांत उन्हें छींक आने के कारण गर्भ नीचे गिर गया। उमसे जो बालक निकला, उसका नाम क्षुप रखा गया। ब्रह्मा के यज्ञ में प्रजापति क्षुप ही ऋत्विज हुए। यज्ञ आरंभ होने पर ब्रह्मा का दंड अंतर्धान हो गया। अत: प्रजा में अनाचार, वर्ण संकरता आदि फैलने लगी। अत: ब्रह्मा ने विष्णु का पूजन करके महादेव से स्थिति संभालने के लिए कहा। त्रिशूलधारी महादेव स्वयं दंड के रूप में प्रस्तुत हुए। सरस्वती ने दंडनीति की रचना की। महादेव ने वरुण को जल का, कुबेर को धन और राक्षसों का, अग्नि को तेज का, इस प्रकार समस्त देवी-देवताओं को विभिन्न वस्तुओं का नियंता नियुक्त कर दिया। देवताओं ने दंड का प्रयोग किया—उनके पास होता हुआ दंड मनु के पास पहुंचा। मनु ने अपने पुत्रों को सौंप दिया। इस प्रकार उत्तरोत्तर क्रमश: वह दंड अधिकारियों के हाथ में आकर प्रजा का पालन करता हुआ जागता रहता है।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय १२२, श्लोक १५-५६

दंडाधार दंडाधार मगधनिवासी वीर योद्धा था। वह कौरवों की ओर से कुरुक्षेत्र में युद्ध कर रहा था। उसने पांडवों की सेना को बहुत क्षति पहुंचायी। वह गजसेना के योद्धाओं में अद्वितीय माना जाता था। अंत में वह अर्जुन के हाथों मारा गया। उसके उपरांत उसका भाई, जिसका नाम दंड था, अर्जुन से युद्ध करने पहुंचा, पर उसे भी वीरोचित मृत्यु प्राप्त हुई।

म० भा०, कर्णपर्व, अध्याय १८,

दंभोद्भव दंभोद्भव नामक एक सार्वभौम सम्राट था। वह नित्य प्रात: उठकर क्षत्रियों से प्रश्न करता था—"मेरे समान युद्ध करनेवाला संसार में कोई है क्या?" ब्राह्मणों ने अनेक बार उसे आत्मप्रशंसा करने से रोकना चाहा, किंतु उसका दंभ बढ़ता ही गया। एक बार ब्राह्मणों ने कहा कि गंधमादन पर्वत पर नर और नारायण तपस्यारत हैं। उनके बराबर योद्धा संसार में कोई भी नहीं है। दंभी दंभोद्भव उनसे युद्ध करने के लिए अपने अस्त्र-शस्त्र तथा सेना सहित वहां पहुंचा। नर और नारायण के लाख समझाने पर भी वह युद्ध करने के लिए आकुल था। नर ने मुट्ठी भर सींकें हाथ में उठा ली। 'एषीकास्त्र' का प्रयोग कर नर ने सींकों से ही समस्त सैनिकों के कान, आंख और नाक बींध डाले। राजा ने नर-नारायण की ही शरण ग्रहण की। उन्होंने राजा को भविष्य में दंभ न करने तथा ब्राह्मणों का हितैषी बनने का आदेश देकर छोड़ दिया।

म० भा०, उद्योगपर्व, अध्याय ९६, श्लोक ५-५२

दंश सतयुग में दंश नामक एक असुर था। आयु में वह महर्षि भृगु के बराबर था। उसने भृगु की पत्नी का बलपूर्वक अपहरण कर लिया। अत: भृगु ने उसे मलमूत्र, राल खानेवाला कीड़ा बनने का शाप दिया। दंश ने शाप का निराकरण पूछा तो भृगु ने कहा कि उन्हीं के वंशज परशुराम शाप का निवारण करेंगे। तब से दंश राक्षस 'अलर्क' नामक कीड़ा बनकर रहने लगा। ब्रह्मास्त्र प्राप्त करने के लोभ से जब कर्ण ब्राह्मण के वेश में परशुराम

की सेवा कर रहा था तब अलर्क ने उसकी टांग में बार-बार दंशन किया, पर क्योंकि उसकी गोद में सिर रखकर परशुराम सो रहे थे, इसलिए कर्ण न हिला न डुला। परशुराम ने जागने पर उसे लहूलुहान देखा—पास ही कीड़े को देखा। उनकी दृष्टि से अलर्क का शापमोचन हो गया और वह पुन: दंश राक्षस के रूप में परशुराम को अपना परिचय देकर चला गया। इतना कष्ट होने तथा खून बहने पर भी चुप रहनेवाला व्यक्ति ब्राह्मण नहीं हो सकता, यह परशुराम का निश्चित मत था। कर्ण से क्रुद्ध होकर पूछने पर उसे सूत-पुत्र जानकर उन्होंने शाप दिया कि ब्रह्मास्त्र का स्मरण उसे तभी तक होगा जब तक उसकी मृत्यु का समय नहीं आ जायेगा।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय ३

दक्ष प्रजापति दक्ष प्रजापति ने अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया। उस यज्ञ में दधीचि मुनि भी उपस्थित थे। उन्होंने देखा कि शिव के अतिरिक्त सभी देवता वहां विद्यमान हैं, अत: उन्होंने दक्ष का ध्यान इस ओर केंद्रित किया। दक्ष ने उपेक्षा भाव से कहा—"हाथों में त्रिशूल और मस्तक पर जटाजूट धारण करनेवाले ग्यारह रुद्र हमारे यहां रहते हैं। उनके अलावा किसी महादेव को मैं नहीं जानता।" दधीचि को लगा, सब देवताओं ने मिलकर शिव को न बुलाने की मंत्रणा की है। उन्होंने कहा—"मैं भावी संहार की आशंका से त्रस्त हूं—बड़ों की अवमानना का फल यही होता है।" किसी ने इस ओर ध्यान नहीं दिया। कैलास पर्वत पर पार्वती ने भी शिव को ध्यान दिलाया—"सब देवता यज्ञ में सम्मिलित हो रहे हैं। केवल 'शिव' का ही 'भाग' उस यज्ञ में क्यों नहीं है?" शिव ने क्रुद्ध होकर अपने मुंह से वीरभद्र नामक भयंकर प्राणी की सृष्टि की तथा उसे दक्ष का यज्ञ नष्ट करने के लिए कहा। भवानी के क्रोध से प्रकट महाकाली महेश्वरी भी यज्ञ नष्ट करने के लिए गयी। समस्त अतिथि, देवता, दास इत्यादि भयभीत होने लगे। देवताओं ने वीरभद्र के आने का निमित्त पूछा। वीरभद्र ने पार्वती के रोष के कारण यज्ञ नष्ट करने का अपना निश्चय बताया तो दक्ष ने शिव की आराधना प्रारंभ की। वीरभद्र के रोम-कूपों से अनेक रौम्य नामक गणेश्वर प्रकट हुए थे। वे विध्वंस कार्य में लगे हुए थे। दक्ष की आराधना से प्रसन्न होकर शिव ने अग्नि के समान ओजस्वी रूप में दर्शन दिये और उसकी मनोकामना जानकर यज्ञ के नष्ट-भ्रष्ट तत्त्वों को पुन: ठीक कर दिया। दक्ष ने एक हजार आठ नामों (शिव सहस्र नाम स्तोत्र) से शिव की आराधना की और उनकी शरण ग्रहण की। शिव ने प्रसन्न होकर उसे एक हजार अश्वमेध यज्ञों, एक सौ वाजपेय यज्ञों तथा पाशुपत् व्रत का फल प्रदान किया।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय २८३-२८४

दक्ष यज्ञ मनु ने अपनी तीसरी बेटी प्रसूति का विवाह दक्ष प्रजापति से किया था। अपनी कन्याओं में उन्हें 'सती' सर्वाधिक प्रिय थी। ब्रह्मा ने बीच में पड़कर सती का विवाह शिव से करवा दिया था। एक बार एक सभा में दक्षप्रजापति शिव से अत्यधिक रुष्ट हो गये। उन्हें शिव में शिष्टाचार का अभाव लगता था तथा उन्होंने उनकी बहुत अवमानना की। कुछ समय उपरांत प्रजापति दक्ष ने एक वृहत यज्ञ का आयोजन किया। उसमें सती तथा शिव आमंत्रित नहीं थे। शिव तो नहीं गये परंतु सती शिव के मना करने पर भी यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए चली गयी। सती को भी पिता के घर में अपमान सहना पड़ा, सो उसने उत्तर दिशा में बैठकर अपने शरीर का त्याग कर दिया। नारद से यह समाचार ज्ञात होने पर महादेव ने अपनी जटा उखाड़कर पृथ्वी पर दे मारी, फलत: विशालकाय वीरभद्र का आविर्भाव हुआ। महादेव की आज्ञा से वीरभद्र ने दक्ष का यज्ञ विध्वंस कर डाला तथा उनका सिर बकरे की भांति काटकर यज्ञाग्नि में डाल दिया। विध्वंस से त्रस्त समस्त देवता शिव की शरण में गये। शिव ने दक्ष को क्षमा कर दिया किंतु उसके सिर के स्थान पर बकरे का सिर लगा दिया गया। तदनंतर दक्ष ने अपना यज्ञ पूरा किया। तदुपरांत प्रत्येक यज्ञ में देवताओं के साथ ही शिव का 'भाग' भी निश्चित हो गया। सती ने प्राण त्यागकर हिमालय की पत्नी मेना के गर्भ से दूसरा जन्म प्राप्त किया। उस जन्म में भी उसने महादेव का ही वरण किया।

श्रीमद् भा०, चतुर्थ स्कंध, अध्याय २-७,
शि० पु०, २।२२-३८।-

दक्ष का शाप दक्ष प्रजापति ने पंचजन की पुत्री असिकजी से विवाह कर लिया। उससे पहले हर्यश्व नाम के दस हजार पुत्र तथा फिर शबलाश्व नामक एक हजार पुत्र प्राप्त किए। दक्ष प्रजापति ने हर्यश्व नामक पुत्रों को संतति की उत्पत्ति के लिए तप करने भेजा। वहां नारद से

भेंट हो जाने पर वे सब मोक्ष मार्ग की ओर उन्मुख हो गये। तदनंतर राजा ने शबलाश्व नामक पुत्रों को संतति उत्पन्न करने की आज्ञा दी। उन्होंने भी नारद का संसर्ग प्राप्त कर बड़े भाइयों का अनुसरण किया। दक्ष को इस तथ्य का ज्ञान हुआ तो उसने क्रुद्ध होकर नारद को शाप दिया कि उन्हें रहने के लिए एक ठौर प्राप्त न हो तथा वे निरंतर भटकते रहें। ब्रह्मा की प्रेरणा से दक्ष ने अपनी पत्नी के गर्भ से साठ कन्याएं प्राप्त कीं, जिनका विवाह विभिन्न देवताओं से हुआ तथा उनका वंश पुष्पित-पल्लवित होता गया।

श्रीमद् भा०, षष्ठ स्कंध, अध्याय ५-६

दक्षिण सूर्य ने वेद-विधिवत्-यज्ञ करके आचार्य कश्यप को दक्षिणास्वरूप इस दिशा का दान किया था, इसीसे यह दक्षिण दिशा कहलायी। मृत प्राणी तथा उनके कर्म इसी दिशा में आश्रय लेते हैं। दक्षिण दिशा में आकर सबके प्राण पुन: पांच भागों में बंट जाते हैं तथा प्राणी नूतन जन्म लेता है।

म० भा०, उद्योगपर्व, १०९।१, ७, १३

दक्षिणा ब्रह्मा के पुत्र स्वायंभुव मनु ने अपनी बहन शतरूपा से विवाह किया था। उसके प्रियव्रत और उत्तानपाद नामक दो पुत्र तथा प्रसूति और आकूति नामक दो पुत्रियां हुईं। प्रसूति का विवाह प्रजापति दक्ष से तथा आकूति का विवाह प्रजापति रुचि से हुआ। आकूति ने जुड़वां संतान को जन्म दिया, जिनमें से पुत्र का नाम यज्ञ तथा कन्या का नाम दक्षिणा रखा गया। दक्षिणा से बारह पुत्र हुए, जो स्वायंभुव मन्वंतर में याम नाम के देवता कहलाये। दक्ष ने प्रसूति से चौबीस कन्याओं को जन्म दिया।

वि० पु०, अंश १, अध्याय ७

दक्षिणा (दे० वि० पु०) ने गोकुल में 'सुशीला' नामक गोपिका के रूप में जन्म लिया।

एक बार रास में सुशीला नामक सखि श्रीकृष्ण के वाम अंग में स्थित हुई। कृष्ण के देखा कि राधा क्रुद्ध हो गयी है, अत: वे अंतर्धान हो गये। राधा ने भय से पलायन करती सुशीला को शाप दिया कि वह गोलोक में प्रवेश करेगी तो भस्म हो जायेगी। सुशीला (दक्षिणा) लक्ष्मी के शरीर में प्रवेश कर गयी। देवतागणों को यज्ञ का फल मिलना बंद हो गया। वे ब्रह्मा की शरण में पहुंचे। ब्रह्मा सहित उन्होंने नारायण को आराधना से प्रसन्न करके दक्षिणा की याचना की। नारायण ने लक्ष्मी के शरीर से लेकर वह पुन: उन्हें प्रदान की। उसके स्वरूप को देखकर यज्ञ मुग्ध हो गया। विधाता ने दक्षिणा से यज्ञ का विवाह संपन्न किया। बारह वर्षों के उपरांत उन्होंने (कर्मों के) फलस्वरूप पुत्र को प्राप्त किया।

दे० भा०, ९।४५

दत्तात्रेय एक बार वैदिक कर्मों का, धर्म का तथा वर्णव्यवस्था का लोप हो गया था। उस समय दत्तात्रेय ने इन सबका पुनरुद्धार किया था। हैहयराज अर्जुन ने अपनी सेवाओं से उन्हें प्रसन्न करके चार वर प्राप्त किये थे: (१) बलवान, सत्यवादी, मनस्वी, अदोषदर्शी तथा सहस्र भुजाओं वाला बनने का (२) जरायुज तथा अंडज जीवों के साथ-साथ समस्त चराचर जगत का शासन करने के सामर्थ्य का। (३) देवता, ऋषियों, ब्राह्मणों आदि का यजन करने तथा शत्रुओं का संहार कर पाने का तथा (४) इहलोक, स्वर्गलोक और परलोक विख्यात अनुपम पुरुष के हाथों मारे जाने का। कार्तवीर्य अर्जुन (कृतवीर्य का ज्येष्ठ पुत्र) के द्वारा दत्तात्रेय ने लाखों वर्षों तक लोक कल्याण करवाया। कार्तवीर्य अर्जुन, पुण्यात्मा, प्रजा का रक्षक तथा पालक था। जब वह समुद्र में चलता था तब उसके कपड़े भीगते नहीं थे। उत्तरोत्तर वीरता के प्रमाद से उसका पतन हुआ तथा उसका संहार परशुराम-रूपी अवतार ने किया।

म० भा०, सभापर्व, अध्याय ३८

कृतवीर्य हैहयराज की मृत्यु के उपरांत उनके पुत्र अर्जुन का राज्याभिषेक होने का अवसर आया तो अर्जुन ने राज्यभार ग्रहण करने के प्रति उदासीनता व्यक्त की। उसने कहा कि प्रजा का हर व्यक्ति अपनी आय का बारहवां भाग इसलिए राजा को देता है कि राजा उसकी सुरक्षा करे। किंतु अनेक बार उसे अपनी सुरक्षा के लिए और उपायों का प्रयोग भी करना पड़ता है, अत: राजा का नरक में जाना अवश्यंभावी हो जाता है। ऐसे राज्य को ग्रहण करने से क्या लाभ? उनकी बात सुनकर गर्ग मुनि ने कहा—"तुम्हें दत्तात्रेय का आश्रय लेना चाहिए, क्योंकि उनके रूप में विष्णु ने अवतार लिया है। एक बार देवतागण दैत्यों से हारकर बृहस्पति की शरण में गये। बृहस्पति ने उन्हें गर्ग के पास भेजा। वे लक्ष्मी (अपनी पत्नी) सहित आश्रम में विराजमान थे। उन्होंने दानवों को वहां जाने के लिए कहा। देवताओं ने दानवों को युद्ध के लिए

ललकारा, फिर दत्तात्रेय के आश्रम में शरण ली। जब दैत्य आश्रम में पहुंचे तो लक्ष्मी का सौंदर्य देखकर आसक्त हो गये। युद्ध की बात भुलाकर वे लोग लक्ष्मी को पालकी में बैठाकर अपने मस्तक से उनका वहन करते हुए चल दिये। परनारी का स्पर्श करने के कारण उनका तेज नष्ट हो गया। दत्तात्रेय की प्रेरणा से देवताओं ने युद्ध करके उन्हें हरा दिया। दत्तात्रेय की पत्नी, लक्ष्मी पुनः उनके पास पहुंच गयी।" अर्जुन ने उनके प्रभावविषयक कथा सुनी तो दत्तात्रेय के आश्रम में गये। अपनी सेवा से प्रसन्न कर उन्होंने अनेक वर प्राप्त किये। मुख्य रूप से उन्होंने प्रजा का न्यायपूर्वक पालन तथा युद्धक्षेत्र में एक सहस्र हाथ मांगे। साथ ही यह वर भी प्राप्त किया कि कुमार्ग पर चलते ही उन्हें सदैव कोई उपदेशक मिलेगा। तदनंतर अर्जुन का राज्याभिषेक हुआ तथा उसने चिरकाल तक न्यायपूर्वक राज्य-कार्य संपन्न किया।

मा० पु०, १७

दधीचि इंद्र के वज्र का निर्माण दधीचि की अस्थियों से हुआ था।

ऋ० १०।४८, साम० १७६-६१३

अथर्वा के पुत्र दधीचि ऋषि अत्यंत तेजस्वी थे। उन्हें देखकर ही दैत्य धराशायी हो जाते थे। कुछ समय उपरांत वे स्वर्गलोक चले गये। असुरों ने इंद्र को धर दबोचा। इंद्र ने दधीचि के विषय में पूछा कि यदि वे स्वर्ग चले गये हैं तो उनका कुछ यहां बचा है अथवा नहीं। लोगों ने कुरुक्षेत्र से अश्व का वह सिर लाकर दिया जिससे दधीचि ने अश्विनीकुमारों को मधुविद्या का दान दिया था। असुर उस सिर को देखकर ही मरने लगे। उस अश्व-सिर की हड्डियों से इंद्र के लिए वज्र बना, जिससे निन्यानबे असुरों को मारा गया।

जै० ब्रा०, ३।६४।६५

पूर्वकाल में राजा छू तथा दधीचि में विवाद छिड़ गया। राजा छू का कहना था कि राजा सर्वश्रेष्ठ होते हैं, दधीचि ब्राह्मण की श्रेष्ठता बता रहे थे। दधीचि ने राजा के सिर पर हाथ मारा और राजा छू ने वज्र से उनका शरीर छिन्न कर दिया। शुक्र ने प्रकट होकर उनका शरीर पूर्ववत् किया तथा शक्ति-संचय के लिए शिवाराधना का मार्ग बताया। शिव ने प्रसन्न होकर उन्हें वर दिया कि उनकी हड्डियां वज्र के समान हो जायेंगी। उन्होंने राजा के पास जाकर उसके सिर पर लात से प्रहार किया। राजा के शस्त्रों का उनपर कोई प्रभाव नहीं हुआ। छू विष्णुभक्त था। उसने विष्णु को प्रसन्न कर अपनी विजय का वर मांगा। विष्णु ब्राह्मण-वेश में दधीचि के पास गये। दधीचि ने उन्हें पहचान लिया तथा शिवभक्त होने का अहंकार व्यक्त किया। विष्णु ने ससैन्य उनपर आक्रमण किया, किंतु उनका कुछ भी नहीं बिगड़ा। अंततोगत्वा छू को लेकर विष्णु दधीचि के पास गये और उसीकी शरण में उसे छोड़ आये।

शिव पु०, पूर्वार्द्ध २।३१-३

दध्यङ् इंद्र ने अथर्वा के पुत्र दध्यङ् ऋषि से प्रसन्न होकर उन्हें वर मांगने के लिए कहा। ऋषि ने मधुविद्या जानने की इच्छा प्रकट की। इंद्र ने इस शर्त पर मधुविद्या का रहस्योद्घाटन किया कि यदि दध्यङ् ने किसी अन्य को यह रहस्य बतलाया तो उनका सिर काट डाला जायेगा। ऋषि ने स्वीकार कर लिया। अश्विनीकुमारों से इंद्र का वैमनस्य हो गया था, अतः इंद्र ने यज्ञों में उनका बहिष्कार कर दिया। वे अपनी शक्ति को बढ़ाने की चिंता में थे। दध्यङ् के मधुविद्या जानने की बात जानकर वे ऋषि के पास पहुंचे। इंद्र की शर्त जानने के कारण उन्होंने ऋषि से प्रार्थना की कि वे अपना सिर कटवाकर सुरक्षित रख लें तथा अश्व का सिर अपने कंधे पर लगवाकर मधुविद्या का उद्घाटन कर दें। इंद्र क्रुद्ध होकर अश्व का सिर काट डालेगा। तदुपरांत उनका सुरक्षित सिर फिर से लगाया जा सकेगा। याचक को याचित वस्तु प्रदान न करने के पाप से बचने के लिए ऋषि ने ऐसा ही किया। इंद्र ने क्रुद्ध होकर दध्यङ् ऋषि का अश्व-मुख वज्र से काटकर दूर फेंक दिया। जिस स्थान पर वह गिरा, वह स्थान 'शर्य्यणावान्' नामक सरोवर कहलाया तथा तीर्थ-स्थान बन गया। अश्विनीकुमार शल्य-चिकित्सक थे। उन्होंने ऋषि का पहला सिर फिर से उनके गले पर स्थापित कर दिया। मधु से शक्ति प्राप्त करके वे दोनों पुनः यज्ञ में भाग लेने के अधिकारी बन गये।

ऋ०, १।८०।१६, १।८४, १।११६।१२, १।११७।२२

दभीति एक बार राक्षस दभीति ऋषि को पकड़कर ले जा रहे थे, इंद्र ने दैत्यों के अस्त्र नष्ट कर दिये तथा दभीति को गौ-धन प्रदान किया।

ऋ०, २।१५।३

दशरथ इक्ष्वाकु-वंश के राजा अज के पुत्र का नाम दशरथ था। सुमंत ने राजा दशरथ की पुत्र-प्राप्ति की

इच्छा को जानकर उन्हें बतलाया कि सनत्कुमार ने ऋषियों को एक कथा सुनायी थी, जिसका संबंध उनकी पुत्र-प्राप्ति से है। उन्होंने बतलाया था कि भविष्य में इक्ष्वाकु-वंश में दशरथ नामक एक अत्यंत धर्मात्मा राजा होंगे। वे संतान की इच्छा से अंगराज के पुत्र, अपने मित्र रोमपाद से कहेंगे कि वे ऋष्य शृंग को उनका, संतान-प्राप्ति का, यज्ञ संपन्न करने के निमित्त भेज दें। ऐसा सुनकर राजा दशरथ ने अंगप्रदेश में जाकर महाराज रोमपाद से ऐसी ही प्रार्थना की। उन्होंने सहर्ष अपनी पुत्री शांता तथा जामाता रोमपाद को राजा दशरथ के साथ भेज दिया। सरयू नदी के उत्तर तट पर यज्ञशाला का निर्माण किया गया। अश्व छोड़ा गया। एक वर्ष बाद जब घोड़ा दिग्विजयोपरांत लौटा, तब यज्ञ आरंभ हुआ। सर्वप्रथम कौशल्या ने घोड़े की पूजा की, फिर तीन बार तलवार चलाकर उसका वध किया। यह यज्ञ संपन्न होने पर ऋष्यशृंग की प्रेरणा से राजा दशरथ ने पुत्रेष्टि यज्ञ प्रारंभ किया। उसी स्थान पर देवता, गंधर्व, सिद्ध और परमर्षि अपना-अपना भाग लेने आये। तदुपरांत वे ब्रह्मा के पास गये और उनसे प्रार्थना की कि रावण के प्राबल्य से वे लोग बहुत त्रस्त हैं। रावण को ब्रह्मा ने जिन प्राणियों से अभय का वरदान दिया था, उनमें 'मानव' को अकिंचन मानकर उसका उल्लेख नहीं किया था। अत: रावण की मृत्यु का कारण मानव बन सकता था। उन सबकी प्रार्थना पर मानव होना स्वीकार किया। उधर दशरथ के अग्निकुंड से एक महातेजस्वी प्राणी प्रकट हुआ। उसने खीर से भरा एक कटोरा राजा को दिया और कहा कि वह विष्णु का भेजा हुआ अतिथि है तथा पात्र का पायस रानियों को पुत्र-प्राप्ति के निमित्त खिलाना है। उन्होंने आधा पायस कौशल्या को दिया। आधे में से आधा सुमित्रा को तथा शेष के दो भाग किये, एक कैकेयी को दे दिये और एक सुमित्रा को। इस प्रकार तीन रानियों के गर्भ से राम, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और भरत नामक चार पुत्रों का जन्म हुआ।

बा० रा०, बा० का०, सर्ग ११ से१६ तक
बा० रा०, बा० का०, सर्ग ६०

दशरथ-दर्शन राम, सीता और लक्ष्मण के वनगमन के मूल में कैकेयी थी, अत: दशरथ ने उसे शाप दिया तथा प्राणत्याग दिये। कालांतर में रावण का वध करके तथा सीता की अग्नि-परीक्षा के बाद राम, लक्ष्मण और सीता अयोध्या लौटे तो दिव्य विमानारूढ़ दशरथ ने राम और लक्ष्मण को दर्शन दिए। राम ने दशरथ से प्रार्थना की कि वे कैकेयी को दिया हुआ शाप वापस ले लें कि दशरथ का भरत और कैकेयी से कोई संबंध नहीं है। दशरथ ने स्वीकार किया। इंद्र ने कहा—"हे राम, जब तुम अश्व-मेध यज्ञ कर चुकोगे तभी तुम स्वर्ग जा पाओगे।"

दे० राम, कैकेयी
बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग १२२,

देवासुरों के यत्र-तत्र निरंतर युद्ध होने पर ब्रह्मा ने कहा कि जिस ओर से दशरथ लड़ेंगे, वही पक्ष विजयी होगा। दशरथ के पास पहले पहुंचनेवाला दूत वायु था, जो देवदूत था। अत: उन्होंने देवताओं को पक्ष लेने का निश्चय कर लिया। युद्धस्थल में नमुचि ने दशरथ के रथ की धुरी को बाणों से तोड़ दिया। कैकेयी ने अपने हाथ से रथ की धुरी को थामा, अत: राजा ने उसे तीन वर दिये (अन्यत्र दो वर की चर्चा है)। चार पुत्र प्राप्त करने के उपरांत (दे० रामजन्म,बा० रा०) राजा ने राम को राज्य देना चाहा। कैकेयी ने मंथरा की प्रेरणा से राम का वनगमन मांगा तथा भरत को राज्य। दशरथ पूर्वभूत स्मृति से अकुला उठे (दे० श्रवणकुमार, बा० रा०)। उसी ऊहापोह में उनका देहांत हो गया। किंतु श्रवणकुमार आदि की मृत्यु से लगे पापवश वे नर्क भुगतते रहे और वन में राम, लक्ष्मण और सीता को भयानक आकृति में मिले। उनकी सद्गति के लिए राम, लक्ष्मण और सीता ने उनकी तीनों ब्रह्म हत्याओं (श्रवणकुमार तथा उनके माता-पिता) को परस्पर बांट लिया तथा तीनों ने शिवाराधना से दशरथ को पाप-मुक्त कर दिया।

ब्र० पु०, १२३।-

साकेतपुरी के राजा अनरण्य की पटरानी पृथ्वी से दो पुत्रों का जन्म हुआ—अनंत तथा दशरथ। राजा ने अपने पुत्र अनंतरथ के साथ दीक्षा ग्रहण की तथा दशरथ को राज्य सौंप दिया। दशरथ का विवाह राजा सुकौशल की कन्या अपराजिता तथा राजा सुबंधुतिलक की कन्या से हुआ। विवाह के उपरांत दशरथ ने उसका नाम सुमित्रा रख लिया। राजा शुभमति की कन्या कैकेयी ने स्वयंवर में दशरथ को माला पहनायी। अज्ञात कुलवाले दशरथ पर शेष राजाओं ने आक्रमण कर दिया। कैकेयी ने रथ की धुरी के आसन पर बैठकर हाथ में लगाम थाम ली। दशरथ ने शत्रुओं को परास्त कर दिया और कैकेयी को

लेकर साकेत पहुंचा। राजा ने प्रसन्न होकर कैकेयी से कोई वर मांगने के लिए कहा। कैकेयी ने कहा कि भविष्य में कभी मांगने पर वर प्रदान करें। अपराजिता के गर्भ से कमल के समान सुंदर मुखवाला बालक उत्पन्न हुआ। उसका नाम पद्म (राम) रखा गया। सुमित्रा से लक्ष्मण तथा कैकेयी से भरत और शत्रुघ्न का जन्म हुआ।

पउ० च०, २२।५६-११०।-२४-२५।-

दशाश्वमेध तीर्थ विश्वकर्मा के पुत्र विश्वरूप के पौत्र भौवन ने एकसाथ ही दस अश्वमेध यज्ञ करने की ठानी। कश्यप जी ने यज्ञ प्रारंभ करवाये। तीन बार दस-दस अश्वमेध प्रारंभ करके बाधाओं के घिर आने से रोक देने पड़े। दुखी होकर राजा और कश्यप बृहस्पति के बड़े भाई 'संवर्त' तथा तदनंतर ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने गोमती के तट पर यज्ञ करने को कहा। वहां दसों यज्ञ सफलता से पूर्ण हुए। राजा कश्यप को भूमिदान करना चाहता था, पर पृथ्वी ने कहा कि उसका बार-बार दान करने से वह जल में डूब जाती है। अतः राजा ने अन्न-दान किया। वह स्थान दशाश्वमेध तीर्थ नाम से विख्यात हुआ।

ब्र० पु०, ८३।-

दावानल ग्वालबाल खेल में लगे रहे और उनकी गौएं वन में कहीं दूर निकल गयीं। वे गौओं को ढूंढ़ने में व्यस्त थे कि देखा, सब ओर से दावाग्नि ने उन्हें घेर लिया है। कृष्ण ने सब बालकों को आंख मूंदने को कहा और अग्नि का पान कर लिया। सब ग्वालों की रक्षा हो गयी।

श्रीमद् भा०, १०।१६।

दिति अपने पुत्रों की हत्या से दुःखी दिति मरीचि के पुत्र कश्यप के पास गयी और कहा कि अदिति के पुत्रों ने उसके पुत्रों को मार डाला है। वह अपने पति से ऐसे गर्भ की इच्छुक है, जिससे उत्पन्न बेटा इंद्र की हत्या कर डाले। कश्यप ने स्वीकार कर लिया तथा पुत्र-जन्म तक पवित्रता से रहने का आदेश दिया। पुत्र-जन्म एक हजार वर्ष बाद होना था। दिति कुशप्लव नामक तपोवन में तपस्या करने लगी। इंद्र ने उसे अपनी सेवा से प्रसन्न कर लिया। पुत्र-प्राप्ति से दस वर्ष पूर्व दिति ने इंद्र से कहा कि उसकी सेवा से प्रसन्न होकर वह अपने पुत्र को उसका वध नहीं करने देगी। दिति पायताने की ओर सिर करके सो गयी। इंद्र ने ऐसी अपवित्र स्थिति में उसे सोते देखा तो उसके गर्भ में प्रवेश कर बालक के सात टुकड़े कर डाले। बालक के चिल्लाने पर दिति जाग गयी। इंद्र ने विनीत भाव से कहा कि इंद्र का वध करने वाले गर्भस्थ शिशु के सात टुकड़े इस कारण किये कि वह अशुचितापूर्वक पायताने पर सिर रखकर सो रही थी। लज्जित होकर दिति ने इस कर्म का परिमार्जन करने की प्रार्थना की। दिति ने कहा कि उसके सात दिव्यरूपधारी बेटे हों जो 'मारुत' कहलाएं क्योंकि गर्भ को काटते हुए इंद्र ने 'मारुत' (रो मत) कहा था। इनमें से चार इंद्र के अधीन रहकर चारों दिशाओं में विचरें। शेष तीन में से दो क्रमशः ब्रह्मलोक तथा इंद्रलोक में विचरें और तीसरा महायशस्वी दिव्य वायु के नाम से विख्यात हो।

बा० रा०, बाल कांड, सर्ग ४६, पद १
सर्ग ४७, १-१०

दिति कश्यप की पत्नी थी। संध्या समय जब कश्यप यज्ञ में खीर की आहुतियां दे रहे थे, दिति कामासक्त थी। कश्यप के बहुत समझाने पर भी कि यह 'भूत भ्रमण काल है', दिति समागम का आग्रह करती रही। कश्यप ने पत्नी की बात मान ली। कालांतर में काममुक्त होकर दिति अपने कृत्य के लिए लज्जा तथा खेद का अनुभव करती हुई पति के पास गयी। मुनि ने कहा कि असमय में संभोग करने के कारण उसके पुत्र दैत्य होंगे तथा भगवान के हाथों मारे जायेंगे। चार पौत्रों में से एक भगवान का प्रसिद्ध भगवद्भक्त होगा। दिति को आशंका थी कि उसके पुत्र देवताओं के कष्ट का कारण बनेंगे, अतः उसने सौ वर्ष तक अपने शिशुओं को उदर में ही रखा। तदनंतर सब दिशाओं में अंधकार फैल गया, अतः देवताओं ने ब्रह्मा से जाकर प्रार्थना की कि उसका निराकरण करें। ब्रह्मा ने कहा कि पूर्वकाल में सनकादि मुनियों को बैकुंठ धाम में छः सीढ़ियों के ऊपर जाने से विष्णु के पार्षदों ने अज्ञतावश रोक दिया था। सनकादि आयु में, संसार में सबसे बड़े होने पर भी पांच ही वर्ष के दिखलायी पड़ते थे। वे लोग विष्णु के दर्शनाभिलाषी थे। उन्होंने क्रुद्ध होकर उन दोनों को पार्षद का पद छोड़कर पापमय योनि में जन्म लेने को कहा था। वे जय-विजय नामक पार्षद बैकुंठ से पतित होकर दिति के गर्भ में बड़े हो रहे हैं।

तदनंतर सृष्टि में भयानक उत्पात के उपरांत दिति के

गर्भ से हिरण्यकशिपु तथा हिरण्याक्ष का जन्म हुआ। जन्म लेते ही दोनों पर्वत के समान दृढ़ तथा विशाल हो गये। हिरण्याक्ष के हनन के समय दिति के स्तन से रुधिर प्रवाहित होने लगा था।

श्रीमद् भा०, तृतीय स्कंध, अध्याय १४-१८

दिलीप राजा दिलीप इलविला के पुत्र थे। वे कर्मकांड तथा ज्ञानकांड में समान रूप से पारंगत थे। दिलीप ने यज्ञ करते समय सारी पृथ्वी (संपूर्ण धनधान्य सहित) ब्राह्मणों को दान कर दी थी। उन्होंने यज्ञों में स्वर्ण की सड़कें बनवायी थीं। उनके राज्य में रस की नहरें बहती थीं तथा अन्न के पहाड़ों के समान ढेर लगे रहते थे। राजा दिलीप सत्यवादी, वैभवसंपन्न तथा देवताओं के भी अत्यंत प्रिय थे।

खट्वांग (दिलीप) के भवन में वेद शास्त्रों के स्वाध्याय का, धनुष की प्रत्यंचा का तथा अतिथ्यानुरोध के शब्द सदैव सुनाई देते थे।

म० भा०, द्रोणपर्व, अध्याय ६१, शांतिपर्व, अध्याय २९, ७१-८०

दिवोदास स्वायंभुव मनु के कुल में रिपुंजय नामक राजा का जन्म हुआ। उसने राज्य छोड़कर तप करना प्रारंभ कर दिया। राजा के न रहने से देश में काल और दुःख फैल गया। ब्रह्मा ने उसे तपस्या छोड़कर राज्य संभालने को कहा और बताया कि उसका विवाह वासुकि की कन्या अनंगमोहिनी से होगा। रिपुंजय ने तप छोड़ने के लिए यह शर्त रखी कि देवता आकाश में और नागादि पाताल में रहेंगे, अर्थात् वे सब पृथ्वी को छोड़ देंगे। ब्रह्मा ने शर्त मान ली। अग्नि, सूर्य, चंद्र इत्यादि सब पृथ्वी से अंतर्धान हो गये तो रिपुंजय ने प्रजा के सुख के लिए उन सबका रूप धारण किया। यह देखकर देवता बहुत लज्जित हुए। रिपुंजय अर्थात् दिवोदास अपनी योजना में सफल रहा। देवता चाहते कि उसे कोई पाप लग जाय। शिव आदि पुनः काशीवास के लिए आतुर थे, अतः दिवोदास को पथभ्रष्ट करने के लिए शिव ने क्रमशः योगिनियों, सूर्य, ब्रह्मा, गणों, गणपति आदि को भूस्थित काशी भेजा। गणपति का आवास एक मंदिर में था। उससे रानी लीलावती तथा राजा दिवोदास सहित समस्त जनता प्रभावित थी। गणेश ने ज्योतिषाचार्य का रूप धारण किया था। उसने राजा को बताया कि अठारह दिन बाद एक ब्राह्मण राजा के पास पहुंचकर सच्चा उपदेश करेगा। दिवोदास अत्यंत प्रसन्न हुआ। शिवप्रेषित सभी लोग भेस बदलकर काम कर रहे थे। उनमें से किसी के भी न लौटने पर शिव बहुत चिंतित हुए तथा उन्होंने विष्णु को भेजा। विष्णु ने ब्राह्मण का वेश धारण करके अपना नाम पुण्यकीर्ति, गरुड़ का नाम विनयकीर्ति तथा लक्ष्मी का नाम गोमोक्ष प्रसिद्ध किया। वे स्वयं गुरु रूप में तथा उन दोनों को चेलों के रूप में लेकर काशी पहुंचे। राजा को समाचार मिला तो गणपति की बात को स्मरण करके उसने पुण्यकीर्ति का स्वागत करके उपदेश सुना। पुण्यकीर्ति ने हिंदू धर्म का खंडन करके बौद्ध धर्म का मंडन किया। प्रजासहित राजा बौद्धधर्म का पालन करके अपने धर्म से च्युत हो गया। पुण्यकीर्ति ने राजा दिवोदास से कहा कि सात दिन उपरांत उसे शिवलोक चले जाना चाहिए। उससे पूर्व शिवलिंग की स्थापना भी आवश्यक है। श्रद्धालु राजा ने उसके कथनानुसार शिवलिंग की स्थापना की। गरुड़ विष्णु के संदेशस्वरूप समस्त घटना का विस्तृत वर्णन करने शिव के सम्मुख गये। तदुपरांत दिवोदास ने शिवलोक प्राप्त किया तथा देवतागण काशी में अंश रूप से रहने के पुनः अधिकारी बने। काशीवासी ब्राह्मणों ने शिव से वरदान मांगा कि वे कभी काशी का परित्याग नहीं करेंगे। वहां अनेक शिवालयों का निर्माण किया गया।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध ६।५-२१।

दीर्घतमा बृहस्पति अपने ज्येष्ठ भ्राता उच्थ्य की पत्नी 'ममता' पर आसक्त हो गये। ममता के बहुत विरोध करने पर भी एकांत में उन्होंने बलपूर्वक उसके साथ संभोग किया। ममता गर्भवती थी, अतः रति का पूर्ण आनंद न ले पाने के कारण उन्होंने अपने बड़े भाई के गर्भस्थ पुत्र को जन्मांध होने का शाप दिया। ममता को बहुत दुःख हुआ। उसका पुत्र दीर्घतमा अत्यंत सुंदर होते हुए भी जन्मांध था। दीर्घतमा मेधावी, सुंदर गायक, शास्त्रों का ज्ञाता तथा दर्शनवेत्ता था। उसने अनेक देवी-देवताओं की स्तुति की कि वह दृष्टि प्राप्त कर ले। अश्विनी, विष्णु, अग्नि, इंद्र, सूर्य आदि विभिन्न देवताओं की स्तुति में वह निरंतर लग्न रहता था। एक बार उसके परिचायक बहुत दुखी हुए कि वृद्ध दीर्घतमा की देह का अंत नहीं होता। वह लाठी टेककर चलता है और सेवकों की कठिनाई बनी रहती है, अतः वे पूर्वनिश्चित योजना के अनुसार दीर्घतमा को एक गहरी नदी में स्नानार्थ ले गये। वहां अथाह जलराशि में उन्होंने उसे धकेल दिया। वहां भी

डूबता न देखकर त्रेतन ने अपनी कटार निकालकर चक्षुहीन दीर्घतमा पर वार किया किंतु कटार का प्रत्येक वार त्रेतन को ही आहत करता गया। त्रेतन का शरीर खंड-खंड होकर नष्ट हो गया। कालांतर में अनेक सूत्रों के द्रष्टा दीर्घतमा सौ वर्ष की आयु भोगकर ब्रह्मलीन हो गये।

ऋ० १।१४०-१६४, ४।४।१३, ८।९।१०

दुंदुभी कैलास पर्वत के शिखर जैसा विशाल एक दैत्य था, जिसका नाम दुंदुभी था। उसमें हजार हाथी का बल था। बल का गर्व हो जाने पर वह एक बार समुद्र के पास पहुंचा तथा उसे युद्ध के लिए ललकारा। समुद्र ने कहा कि वह उससे लड़ने में समर्थ नहीं है, दुंदुभी को हिमवान् से युद्ध करना चाहिए। दुंदुभी ने हिमवान् के पास पहुंचकर उसकी चट्टानों और शिखरों को तोड़ना प्रारंभ कर दिया। हिमवान् बोला—"हे दुंदुभी! तुम मुझे मत सताओ, मैं ऋषियों का सहायक हूं, युद्ध से दूर रहना चाहता हूं। तुम इंद्र के पुत्र बालि से युद्ध करो।" तदनंतर दुंदुभी का वानरराज बालि से युद्ध हुआ। बालि ने उसे मार डाला तथा रक्त से लथपथ उसके शव को एक योजन दूर उठा फेंका। मार्ग में उसके मुंह से निकली रक्त की बूंदें महर्षि मतंग के आश्रम पर जाकर गिरीं। उन्होंने बालि को शाप दिया कि वह और उसके वानरों में से यदि कोई उनके आश्रम के पास एक योजन की दूरी तक जायेगा तो मर जावेगा, अतः बालि के समस्त वानरों को भी वह स्थान छोड़कर जाना पड़ा। मतंग का आश्रम ऋष्यमूक पर्वत पर स्थित था, अतः बालि और उसके वानर वहां नहीं जा सकते थे।

बा० रा०, किष्किंधा कांड, सर्ग ११, श्लोक ७-६३

नृसिंह-रूप धारण करके विष्णु ने दिति के दो पुत्रों को मार डाला था। प्रतिक्रियास्वरूप दिति के भाई दुंदुभी ने ब्राह्मणों का नाश करने का निश्चय किया। वह काशी के निकटवर्ती जंगल में जा बैठा तथा वहां आनेवाले प्रत्येक ब्राह्मण को खाने लगा। ब्राह्मणों ने सामूहिक रूप से शिव की आराधना की। शिव ने दुंदुभी को मार डाला। ब्राह्मणों ने शिव से प्रार्थना की कि वे काशी की रक्षा के निमित्त अपने उसी रूप में निरंतर वहां निवास करें, अतः वहां 'हर व्याघ्र' नामक लिंग की स्थापना हुई।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध ५।५६-५७।-

दुःशासन-वध भीम और दुःशासन का भयंकर युद्ध हुआ। दुःशासन धृतराष्ट्र-पुत्र था तथा भीम पांडु-पुत्र। अंततोगत्वा भीम की विजय हुई। उसने अपनी गदा से दुःशासन का सिर फोड़ दिया था। भीम ने घोर गर्जना के साथ कहा—"कौरवों की सभा में रजस्वला द्रौपदी के केश खींचकर उसके वस्त्रों का अपहरण करनेवाले दुःशासन! आज तेरा खून पी लूंगा।" तदनंतर दुःशासन ने एक रथ से पृथ्वी पर गिर जाने पर भी अपनी बांह उठाकर कहा, "यही वह बांह है जिससे मैंने तुम सबके देखते हुए द्रौपदी के बाल खींचे थे।" भीम अत्यंत क्रुद्ध होकर दुःशासन पर कूद पड़ा। उसने उसकी उठी हुई बांह शरीर से उखाड़कर दूर फेंक दी, फिर उसकी छाती चीरकर लहू-पान करने लगा। भीम का भयानक रूप देख सैनिक चित्रसेन के साथ भागने लगे। राजकुमार युधामन्यु ने कर्ण के भाई चित्रसेन को बाणों से बींधकर मार डाला।

म० भा०, कर्णपर्व, अध्याय ८३

दुःसह मृत्यु की भार्या निऋति, अलक्ष्मी नाम से विख्यात हुई। यह विनाश के समय मनुष्य के विभिन्न अंगों में रहती है। अलक्ष्मी के चौदह पुत्र हुए। चौदहवें का नाम दुःसह हुआ। उसका स्वर कौए के समान होता है। जन्म लेते ही वह ब्रह्मा को खाने के लिए दौड़ा। उसे भूखा जानकर ब्रह्मा ने कहा—"अधर्मपरायण लोग तुम्हारा बल हैं और झूठा, कच्चा तथा अशुद्ध आदि भोजन तुम्हें देता हूं।" दुःसह का विवाह यम की कन्या निर्माष्टि से हुआ।

मा० पु०, ४७।३३-६७, ४८।१-२

दुर्गम हिरण्याक्ष के वंश में रुरु के पुत्र का नाम दुर्गम था। उस दानव ने तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न करके उनसे वरस्वरूप समस्त वेदमंत्र प्राप्त कर लिए। ब्राह्मण समस्त मंत्र भूल गये, अतः समस्त वेद-क्रियाओं, यज्ञों के लुप्त होने से देवताओं को हवि मिलना समाप्त हो गया। वे क्षीण हो गये। दुर्गम ने अमरावती नामक नगरी को घेर लिया। होम न होने से वर्षा आदि का क्रम भी नष्ट हो गया। फलतः असंख्य मनुष्य पशु-पक्षी मर गये। देवताओं ने सुमेरू पर्वत की गुहाओं में शरण ली तथा ब्राह्मणों ने तप से महेश्वरी देवी को प्रसन्न किया। देवी ने असंख्य नेत्रों से युक्त देह धारण करके उन्हें दर्शन दिये। ब्राह्मणों ने वरस्वरूप दुःखमोचन मांगा। देवी के असंख्य नेत्रों से जलधारायें प्रवाहित होने लगीं, अतः सृष्टि पर सूखे का प्रकोप समाप्त हो गया। दुर्गम को ज्ञात हुआ तो उसने विशाल सेना के साथ उनपर आक्रमण किया। देवी ने

अनेक चक्रों से दुर्गम की अक्षौहिणी सेना को घेर लिया। देवी के शरीर से अनेक शक्तियों का उद्भव हुआ। दस दिन तक निरंतर युद्ध होता रहा। दुर्गम ने समस्त शक्तियों को परास्त कर दिया किंतु भुवनेश्वरी के हाथों मारा गया, उसके मरते ही शरीर से दिव्य शक्ति निकलकर देवी में समा गयी। तब से देवी दुर्गा मां तथा 'शताक्षी' नामों से विख्यात हुई। देवी ने ब्राह्मणों को पुन: वेद प्रदान किये। ब्राह्मणों के हवन से देवतागण पुन: हवि प्राप्त करके पुष्ट होने लगे।

दे० भा०, ७।२८

दुर्गा काशी में दुर्ग नामक दैत्यों ने देवताओं को तंग कर रखा था। शिव ने शरणागत देवताओं की सहायता के निमित्त पार्वती से कहा कि वह दुर्ग का हनन कर दे। उसको मारने के कारण ही गिरिजा 'दुर्गा' कहलायी।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध ६।७१-

दुर्योधन (सुयोधन) (क) दुर्योधन धृतराष्ट्र के सबसे बड़े बेटे का नाम था। कर्ण की सहायता से उसने कलिंगराज की कन्या का अपहरण किया था। उसे बाल्यावस्था से ही पांडवों से ईर्ष्या थी। बड़े होने पर मामा शकुनि की सलाह पर चलकर उसने अनेक प्रकार के प्रपंच किये, पांडवों को द्यूतक्रीड़ा में हराकर समस्त राज्य हस्तगत कर लिया। द्रौपदी का अपमान किया। अंततोगत्वा कौरव-पांडवों में युद्ध आरंभ हो गया तो उसने तरह-तरह से उन्हें पराजित करने का प्रयत्न किया। घटोत्कच के वध के उपरांत रात्रि में भी युद्ध होता रहा। दोनों पक्षों की सेना थक चुकी थी। अर्जुन ने अपनी सेना को विश्राम करने का अवसर दिया तो दुर्योधन ने द्रोण को उकसाने का भरसक प्रयत्न किया कि वे सोती हुई पांडव सेना पर आक्रमण कर दें। शल्य के नेतृत्व में युद्ध करते हुए दुर्योधन ने पांडवपक्षीय योद्धा चैकितान को मार डाला। भयानक युद्ध होता रहा। युद्ध आरंभ होने के समय दुर्योधन के पास ग्यारह अक्षौहिणी सेनाएं थीं। नष्ट होते-होते अंत में अश्वत्थामा, कृतवर्मा, कृपाचार्य तथा दुर्योधन के अतिरिक्त कोई भी अन्य महारथी जीवित नहीं बचा। दुर्योधन को विदुर के उपदेश याद आने लगे। वह युद्ध-क्षेत्र से भागा। मार्ग में उसे संजय मिले, जिन्होंने अपने जीवित छूटने का वृत्तांत कह सुनाया।

दुर्योधन यह कहकर कि मेरे पक्ष के लोगों से कह देना कि मैं राज्यहीन हो जाने के कारण सरोवर में प्रवेश कर गया हूं। वह सरोवर में जाकर छिप गया तथा माया से उसका पानी बांध लिया। तभी कृपाचार्य, अश्वत्थामा तथा कृतवर्मा दुर्योधन को ढूंढ़ते हुए उस ओर जा निकले। संजय के समस्त समाचार जानकर वे पुन: युद्धक्षेत्र की ओर बढ़े। राजधानी में कौरवों की सेना के नाश और पराजय का समाचार पहुंचा तो राजमहिलाओं सहित समस्त लोग नगर की ओर दौड़ने लगे। युद्ध-क्षेत्र जन-शून्य पाकर वे पुन: सरोवर पर पहुंचे और दुर्योधन को पांडवों से युद्ध करने का आदेश देने लगे, "इस प्रकार जल में छिपना कायरता है।" उसी समय कुछ व्याध मांस के भार से थके पानी पीने के लिए सरोवर पर पहुंचे। संयोगवश दुर्योधन को ढूंढ़ते हुए पांडव उन व्याधों से उसके विषय में पूछताछ कर चुके थे। व्याधों ने उन सबकी मंत्रणा चुपके से सुनी कि दुर्योधन कुछ समय तालाब में छिपकर विश्राम करना चाहता है। उन्होंने धन-वैभव के लालच में पांडवों तक उसके छुपने के स्थान का पता पहुंचा दिया। पांडव अपने सैनिकों के साथ सिंह-नाद करते हुए उस द्वैपायन नामक सरोवर तक पहुंचे। अश्वत्थामा आदि ने समझा कि वे अपनी विजय की प्रसन्नता के आवेग में घूम रहे हैं, अत: वे दुर्योधन को वहां छोड़ दूर एक बरगद के पेड़ के नीचे जा बैठे तथा भविष्य के विषय में चर्चा करने लगे। बाहर से दुर्योधन दिखलायी नहीं पड़ता था, अत: वे लोग आश्वस्त थे। पांडवों ने वहां पहुंचकर देखा कि सरोवर का जल माया से स्तंभित है और उसके अंदर दुर्योधन भी पूर्ण सुरक्षित है। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को भी माया का प्रयोग करने का परामर्श दिया। युधिष्ठिर आदि ने दुर्योधन को कायरता के लिए धिक्कारा तथा युद्ध के लिए ललकारा। दुर्योधन ने उत्तर में कहा कि वह भयाक्रांत प्राण-रक्षा के निमित्त वहां नहीं है, अपितु कुछ समय विश्राम करना चाहता है तथा उसके पास रथ इत्यादि की व्यवस्था भी नहीं है। अपने बंधु-बांधवों के नाश के उपरांत वह मृगचर्म धारण करने के लिए उत्सुक है। पांडव मित्रशून्य धरती पर राज्य करें। युधिष्ठिर ने जमकर फटकार लगायी, कहा—"तुम्हारी दी धरती भोगने को कोई भी इच्छुक नहीं है।" क्षत्रिय लोग किसी का दिया दान नहीं लेते। तुम मर्द हो तो सामने आकर लड़ो, इस प्रकार छिपना कहां की वीरता है।" सुयोधन (दुर्योधन) स्वभाव से ही क्रोधी था। उसने कहा कि वह एक-एक पांडव के साथ गदा-युद्ध करने

के लिए तैयार है। युधिष्ठिर ने उससे कहा—"तुम कवच इत्यादि युद्ध के लिए आवश्यक अवयव ग्रहण कर लो। तुम किसी भी एक पांडव से युद्ध करो, जीत जाओगे तो तुम अपना सारा राज्य ले लेना।" कृष्ण इस बात पर रुष्ट हो गये। वे युधिष्ठिर से बोले—"आप लोगों में से भीम से इतर कोई भी उससे गदा-युद्ध करने योग्य नहीं है। आपने दयावश फिर भयंकर भूल की है। द्यूतक्रीड़ा की भांति ही उसे यह अवसर देना कि वह भीम को छोड़कर किसी और को ललकार ले—कौन-सी बुद्धिमत्ता है? भीम ने अवसर देखकर दुर्योधन को युद्ध के लिए ललकारा। दोनों का द्वंद्व युद्ध आरंभ हुआ। तभी तीर्थाटन करते हुए बलराम को नारद मुनि से कुरु-संहार का समाचार मिला, अतः वे भी वहां पहुंचे। पांडवों ने उन्हें सादर अपने शिष्यों का द्वंद्व युद्ध देखने के लिए आमंत्रित किया। बलराम की सलाह से सब लोग कुरुक्षेत्र के सामंतपंचक तीर्थ में गये। वहां भीम और दुर्योधन गदा-युद्ध में जुट गये। दोनों का पलड़ा बराबर था। श्रीकृष्ण तथा अर्जुन ने परस्पर विचार-विमर्श किया कि भीम अधिक बलवान है तथा दुर्योधन अधिक कुशल, अतः धर्मयुद्ध में दुर्योधन को परास्त करना बहुत कठिन है। भीम ने जुए के समय यह प्रतिज्ञा की थी—'मैं गदा मारकर तेरी दोनों जांघें तोड़ डालूंगा।' भीम के देखने पर अर्जुन ने अपनी बायीं जांघ को ठोका। भीम संकेत समझ गया और उसने पैंतरा बदलते हुए दुर्योधन की जांघें गदा के प्रहार से तोड़ डाली। वह धराशायी हो गया तो भीम ने उसकी गदा ले ली और बायें पैर से उसका सिर कुचल दिया, साथ ही द्यूतक्रीड़ा तथा चीरहरण के लज्जाजनक प्रसंग की याद दिलायी। युधिष्ठिर ने भीम को पद-प्रहार करने से रोका। कहा कि मित्रहीन दुर्योधन अब दया का पात्र है, उपहास का नहीं, जिसके तर्पण के लिए भी कोई शेष नहीं बचा। युधिष्ठिर ने दुर्योधन से क्षमा-याचना की और दुखी होने लगे कि राज्य पाकर विधवा बहुओं-भाभियों को कैसे देख सकेंगे। बलराम ने दुर्योधन को अनीति से पराजित देखा तो क्रोध से लाल-पीले हो उठे तथा बोले—"मेरे शिष्य को अन्याय से गिराना मेरा अपमान है।" वे अपना हल उठाकर भीमसेन की ओर दौड़े, किंतु श्रीकृष्ण ने उन्हें बीच में रोककर बतलाया कि किस प्रकार चीरहरण के समय भीम ने उसकी जंघायें तोड़ने की शपथ ली थी। किस प्रकार समय-समय पर कौरवों ने पांडवों को छला, किस प्रकार अभिमन्यु को अन्याय से मारा गया, इत्यादि। यह तो प्रतिशोध मात्र था। बलराम संतुष्ट नहीं हुए तथा द्वारका की ओर चल दिये। श्रीकृष्ण की बात सुनकर टांगें कटा हुआ दुर्योधन उचककर धरती पर बैठ गया और बोला—"तुम लोगों ने भीष्म, द्रोण, कर्ण, भूरिश्रवा तथा मुझे अधर्म से मारा है। मैं अपनी मृत्यु से दुखी नहीं हूं। मुझे क्षत्रिय धर्म के अनुसार ही मृत्यु प्राप्त हो रही है। मैं स्वर्ग भोग करूंगा और तुम लोग भग्न मनोरथ होकर शोचनीय जीवन बिताते रहोगे। भीम के पद-प्रहार का भी मुझे दुख नहीं, क्योंकि कुछ समय बाद कौए-गृध इस शरीर का उपभोग करेंगे।" उसका वाक्य समाप्त होते ही पवित्र सुगंधवाले पुष्पों की वर्षा आरंभ हो गयी। गंधर्वगण वाद्य बजाने लगे और राजा पांडवों को धिक्कारने लगे। श्रीकृष्ण ने सब राजाओं को दुर्योधन के कुकृत्यों की तालिका सुनाकर कहा कि उपर्युक्त पांचों योद्धा अतिरथी थे, उन्हें धर्मयुद्ध में पराजित करना असंभव था, किंतु वे अधर्म की ओर से लड़ रहे थे अतः अनीति से ही उन्हें पराजित किया जा सकता था। असुरों का विनाश करने के लिए पूर्ववर्ती देवताओं ने भी इसी मार्ग को अपनाया था। पांडव दुर्योधन को उसी स्थिति में छोड़कर चले गये। दुर्योधन तड़पता रहा। तभी संयोग से संजय वहां पहुंचे, दुर्योधन ने उनके सम्मुख सब वृत्तांत कह सुनाया, फिर संदेशवाहकों से अश्वत्थामा, कृपाचार्य तथा कृतवर्मा को बुलवाकर सब कृत्य सुनाये। अश्वत्थामा ने क्रुद्ध होकर पांडवों को मार डालने की शपथ ली तथा वहीं पर उन्हें कौरवों के सेनापति-पद पर नियुक्त कर दिया गया। उन तीनों के जाने के उपरांत उस रात वह वहीं तड़पता रहा। तीनों महारथी निकटवर्ती गहन जंगल में छिपकर रात व्यतीत करने के लिए चले गये। घोड़ों को पानी इत्यादि पिलाकर वे विश्राम करने लगे। कृपाचार्य तथा कृतवर्मा को नींद आ गयी किंतु अश्वत्थामा जागे रहे। वे लोग बरगद के एक बड़े वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहे थे। अश्वत्थामा ने देखा कि एक उल्लू ने अचानक आक्रमण करके पेड़ की कोटरों में सोते हुए अनेक कौओं को मार डाला। उन्होंने इसी प्रकार पांडवों को मारने का निश्चय किया और इसे दैवी संकेत ही माना। दोनों साथियों को जगाकर उन्होंने अपना विचार प्रकट किया तो कृपाचार्य ने उन्हें दैव की प्रबलता के कारण कौरवों का नाश हुआ है—यह समझाकर शांत करना चाहा

और अगले दिन प्रातः युद्ध करने का विचार प्रकट किया किंतु अश्वत्थामा अपने निश्चय पर अटल रहे। वे अकेले ही सर्वनाश करने के लिए उद्यत थे। अतः तीनों वीर उस रात पांडवों के शिविर में पहुंचे। वहां द्वार पर उन्हें सर्पों का यज्ञोपवीत तथा मृगचर्म धारण किये एक विशालकाय द्वारपाल मिला। अश्वत्थामा ने अनेक दिव्य अस्त्रों का प्रयोग किया किंतु प्रत्येक अस्त्र उस दिव्य व्यक्ति के शरीर में विलीन हो जाता था। अस्त्रहीन होने के उपरांत अश्वत्थामा ने उस दिव्य पुरुष को पहचाना, वे साक्षात् शिव थे। उन्हें प्रणाम कर, अश्वत्थामा ने उनसे खड्ग की याचना की। उनका दृढ़ निश्चय जानकर उनके सम्मुख तत्काल ही एक स्वर्णवेदी प्रकट हुई, जिसपर अग्निदेव का आविर्भाव हुआ तथा दिशायें अग्नि की ज्वालाओं से युक्त हो गयीं। वहां अनेक गण प्रकट हुए। सब विचित्र भाव-भंगिमा तथा मुख-नेत्र आदि से युक्त थे। उनके दर्शन से ही व्यक्ति भयभीत हो सकता था। द्रोणपुत्र ने बाण-धनुष सहित उनके सम्मुख आत्मसमर्पण कर दिया। उस आत्मसमर्पण रूपी यज्ञ में आत्मबलसंपन्न अश्वत्थामा, धनुष समिधा, बाण कुशा, तथा शरीर हविष्य रूप में प्रस्तुत हुए। वे स्वर्णवेदी की ज्वालाओं के मध्य जा बैठे। शिव ने प्रसन्न होकर कहा कि कृष्ण ने सदैव उनकी पूजा की है, इसीसे वे उन्हें सर्वाधिक प्रिय हैं। पांचालों की रक्षा कृष्ण के सम्मान तथा अश्वत्थामा की परीक्षा के लिए की गयी थी। तदुपरांत शिव ने अपने स्वरूप भूत उनके शरीर में प्रवेश किया और एक दिव्य खड्ग प्रदान की। अनेक अदृश्य गण अश्वत्थामा के साथ हो लिए। दोनों महारथियों को द्वार पर छोड़ कि कोई जीवित न भाग सके, अश्वत्थामा शिविर के अंदर गये। वहां धृष्टद्युम्न, उत्तमोजा, युधामन्यु, शिखंडी, द्रौपदी के पांच पुत्रों तथा अन्य जितने भी लोग शिविर में थे, उन्हें कुचल-कर, गला घोंटकर अथवा तलवार से काटकर मार डाला। पौ फटने पर शेष दोनों योद्धाओं को साथ ले वे दुर्योधन के पास पहुंचे। दुर्योधन ने रात्रि का मृत्युकांड सुनकर संतोषपूर्वक प्राण त्याग दिये।

म० भा०, सभापर्व से कर्णपर्व, शल्यपर्व,
अध्याय २९ से ३४, ५४ से ६१, ६३ से ६५
सौप्तिकपर्व, अध्याय १ से ९ तक, शांतिपर्व

(ख) मनु के पुत्र का नाम इक्ष्वाकु था। उसके सौ पुत्रों में से दसवें का नाम दशाश्व था, जो मदिराश्व के नाम से विख्यात हुआ। उसका पुत्र द्युतिमान तदनंतर क्रमशः कुल-परंपरा, सुवीर, दुर्जय से होती हुई दुर्योधन तक पहुंची। दुर्योधन का विवाह नर्मदा नामक नदी से हुआ, जिसकी पुत्री का नाम सुदर्शना था। दुर्योधन अत्यंत धर्मात्मा तथा सुचारु कार्य करनेवाला राजा था। उसकी पुत्री सुदर्शना पर आसक्त होकर अग्निदेव ने ब्राह्मण का रूप धारण कर राजा से उसकी याचना की, किंतु राजा दुर्योधन ने उसे दरिद्र तथा अपने से भिन्न जाति का देखकर अपनी कन्या देने से इंकार कर दिया। फलस्वरूप अग्निदेव क्रुद्ध होकर उसके यज्ञ से अदृश्य हो गये। दुर्योधन अपने आचरण की त्रुटि समझ ही नहीं पाया। उसने ब्राह्मणों से कारण जानने का यत्न करने की प्रार्थना की। ब्राह्मणों ने अग्निदेव की शरण लेकर कारण जान लिया तथा राजा को बताया। दुर्योधन ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी पुत्री सुदर्शना का विवाह अग्नि-देव से कर दिया तथा शुल्क-रूप में अग्नि से मांगा कि वे माहिष्मती नगरी में सदैव निवास करेंगे।

म० भा०, दानधर्मपर्व, अध्याय २, श्लोक १-३३

दुर्वासा एक बार दुर्वासा मुनि अपने दस हजार शिष्यों के साथ दुर्योधन के यहां पहुंचे। दुर्योधन ने उन्हें आतिथ्य से प्रसन्न करके वरदान मांगा कि वे अपने शिष्यों सहित बनवासी युधिष्ठिर का आतिथ्य ग्रहण करें। वे उनके पास तब जायें जब द्रौपदी भोजन कर चुकी हों। दुर्योधन ने यह कामना प्रकट की थी, क्योंकि उसे मालूम था कि उसके भोजन कर लेने के उपरांत बटलोई में कुछ भी शेष नहीं होगा, और दुर्वासा उसे शाप देंगे। दुर्वासा ऐसे ही अवसर पर शिष्यों सहित पांडवों के पास पहुंचे तथा उन्हें रसोई बनाने का आदेश देकर स्नान करने चले गये। धर्मसंकट में पड़कर द्रौपदी ने कृष्ण का स्मरण किया। कृष्ण ने उसकी बटलोई में लगे हुए जरा से साग को खा लिया तथा कहा—"इस साग से संपूर्ण विश्व के आत्मा, यज्ञभोक्ता सर्वेश्वर भगवान श्रीहरि तृप्त तथा संतुष्ट हों।" उनके ऐसा करते ही दुर्वासा को अपने शिष्यों सहित तृप्ति के डकार आने लगे। वे लोग यह सोचकर कि पांडवगण अपनी बनाई रसोई को व्यर्थ जाता देख रुष्ट होंगे—दूर भाग गये। एक बार दुर्वासा यह कहकर कि वे अत्यंत क्रोधी हैं, कौन उनका आतिथ्य करेगा, नगर में चक्कर लगा रहे थे। उनके वस्त्र फटे हुए थे। कृष्ण ने उन्हें अतिथि-रूप में आमंत्रित

किया। उन्होंने अनेक प्रकार से कृष्ण के स्वभाव की परीक्षा ली। दुर्वासा कभी शैया, आभूषित कुमारी इत्यादि समस्त वस्तुओं को भस्म कर देते, कभी दस हजार लोगों के बराबर खाते, कभी कुछ भी न खाते। एक दिन खीर जूठी करके उन्होंने कृष्ण को आदेश दिया कि वे अपने और रुक्मिणी के अंगों पर लेप कर दें। फिर रुक्मिणी को रथ में जोतकर चाबुक मारते हुए बाहर निकलें। थोड़ी दूर चलकर रुक्मिणी लड़खड़ाकर गिर गयी। दुर्वासा क्रोध से पागल दक्षिण दिशा की ओर चल दिये। कृष्ण ने उनके पीछे-पीछे जाकर उन्हें रोकने का प्रयास किया तो दुर्वासा प्रसन्न हो गये तथा कृष्ण को क्रोधविहीन जानकर उन्होंने कहा—"सृष्टि का जब तक और जितना अनुराग अन्न में रहेगा, उतना ही तुममें भी रहेगा। तुम्हारी जितनी वस्तुएं मैंने तोड़ीं या जलायी हैं, सभी तुम्हें पूर्ववत् मिल जायेंगी।"

म० भा०, वनपर्व, अध्याय २६२ से २६३ तक,
दानधर्मपर्व, अध्याय १५९

ब्रह्मा के पुत्र अत्रि ने सौ वर्ष तक ऋष्यमूक पर्वत पर अपनी पत्नी सहित तपस्या की। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर उनकी इच्छानुसार ब्रह्मा, विष्णु और महेश ने उन्हें एक-एक पुत्र प्रदान किया। ब्रह्मा के अंश से विधु, विष्णु के अंश से दत्त तथा शिव के अंश से दुर्वासा का जन्म हुआ। दुर्वासा ने जीवन-भर भक्तों की परीक्षा ली।

एक बार द्रौपदी नदी में स्नान कर रही थी। कुछ दूर पर दुर्वासा भी स्नान कर रहे थे। दुर्वासा का अधोवस्त्र जल में बह गया। वे बाहर नहीं निकल पा रहे थे। द्रौपदी ने अपनी साड़ी में से थोड़ा-सा कपड़ा फाड़कर उनको दिया। फलस्वरूप उन्होंने द्रौपदी को वर दिया कि उसकी लज्जा पर कभी आंच नहीं आयेगी।

शि० पु०, ७।२५-२६।-

दुष्यंत पुरुवंशी दुष्यंत शिकार खेलता हुआ वन में पहुंचा। वहां विश्वामित्र तथा मेनका की पुत्री शकुंतला पर आसक्त हो उसने उससे गंधर्व विवाह कर लिया और उसे वहीं छोड़कर अपनी राजधानी लौट गया। शकुंतला का लालन-पालन कण्व ऋषि ने किया था, क्योंकि मेनका उसे वन में छोड़ गयी थी। कण्व बाहर गये हुए थे। लौटने पर उनको सब समाचार विदित हुए। शकुंतला ने पुत्र को जन्म दिया। कण्व ने उनको नगर पहुंचाने की व्यवस्था की। पहले तो दुष्यंत ने उसे ग्रहण नहीं किया, फिर आकाशवाणी से जानकर कि वह उसी का पुत्र है, उसने शकुंतला तथा पुत्र भरत को स्वीकार कर लिया। भरत श्रीहरि का अंशावतार था। उसके हाथ में चक्र था तथा पैरों में कमलकोश का चिह्न था।

श्रीमद् भा०, ९।२०।१-२२

दूषण देवताओं से अपरिमित बल प्राप्त करने का वरदान प्राप्त करके दूषण नामक असुर तीनों लोकों को तंग करने लगा। ब्रह्मा अन्य देवताओं के साथ शिव के पास पहुंचे। शिव की प्रेरणा से दूषण ने उज्जयिनी में शिव-भक्तों का नाश करने की ठानी। शिवभक्त बिना डरे अपने घरों में बैठे रहे। दैत्य उनकी ओर बढ़ा तो धरती में बहुत बड़ी खायी बन गयी। शिव ने वहां प्रकट होकर दूषण का हनन कर दिया। शिव का वह रूप महाकाल कहलाया।

शि० पु०, ८।२२

देवकी देवकी ने श्रीकृष्ण और बलराम के अलौकिक रूप को पहचानकर उनसे अनुरोध किया कि वे देवकी के मृत छः पुत्रों का उन्हें एक बार दर्शन करवा दें। श्रीकृष्ण और बलराम योगमाया का आश्रय लेकर सुतल गये। वहां बलि ने उनका सुचारु रूप से आतिथ्य किया। कृष्ण ने उससे कहा—"स्वायंभुव मन्वंतर में प्रजापति मरीचि की पत्नी ऊर्णा के गर्भ से छः पुत्र हुए थे। वे सभी देवता थे। उन्होंने देखा कि ब्रह्मा अपनी ही पुत्री से समागम करने के लिए उद्यत हैं तो ब्रह्मा का परिहास किया, फलस्वरूप ब्रह्मा ने उन्हें शाप दिया। वे हिरण्यकशिपु के पुत्र-रूप में उत्पन्न हुए। योगमाया ने उन्हें वहां से लाकर देवकी के गर्भ में रख दिया और उत्पन्न होते ही कंस ने उन्हें मार डाला। वे तुम्हारे पास हैं। देवकी उनके दर्शनों के लिए आतुर हैं।" बलि से वे छः पुत्र लेकर कृष्ण ने देवकी को सौंप दिये। वात्सल्यवश उनके स्तनों में दूध उतर आया। देवकी का दुग्धपान कर तथा कृष्ण का स्पर्श पा, वे छहों शापमुक्त होकर देवलोक चले गये।

श्रीमद् भा०, १०।८५।२९-५६
वि० पु०, ५।१-४

देवतीर्थ राजा आर्ष्टिषेण तथा उसकी पत्नी जया ने अपने पुत्र भर तथा उसकी पत्नी सुप्रभा को राज्यभार

सौंप दिया तथा स्वयं अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा ली। यज्ञ के मध्य ही मिथु नामक दानव पुरोहित तथा पत्नी सहित राजा को उठाकर पाताल ले गया। पुरोहित के पुत्र का नाम देवापि था। उसने मां से सब वृत्तांत सुना तो राजा भर से आज्ञा लेकर उन्हें ढूंढ़ने निकला। अनेक देवी-देवताओं की आराधना करके अंत में वह वेदों की शरण में गया। उनके कथनानुसार गौतमी तट पर शंकर की आराधना करके उसने उन तीनों को प्राप्त किया। तदनंतर वे लोग अश्वमेध यज्ञ कर पाये तथा वह स्थान देवतीर्थ नाम से विख्यात है।

ब्र० पु०, १२७।-

देवदत्त देवदत्त भगवान् बुद्ध के अनुयायियों में से था। एक बार उसने व्यक्तिगत सत्कार तथा लाभ प्राप्त करने के लिए राजकुमार अजातशत्रु को प्रभावित किया। पहले एक बालक का रूप धारण करके वह राजकुमार की गोद में जा बैठा, फिर अपना परिचय देकर वास्तविक रूप में प्रकट हुआ। इस अलौकिक क्रीड़ा से चमत्कृत होकर, राजकुमार पांच सौ रथों के साथ नित्य उसके पास जाने लगा। भगवान ने कहा, "इस प्रकार चमत्कार दिखाना मनुष्य के कुशल धर्मों में व्याघात उत्पन्न करता है।" महंताई प्राप्त करने की इच्छा उत्पन्न होने पर देवदत्त का योगबल नष्ट हो गया। उसने राजकुमार से कहा—"तुम यदि राजा बनना चाहते हो तो अपने पिता को मारकर राज्य प्राप्त करो।" अजातशत्रु पिता को मारने के प्रयास में पकड़ा गया। राजा बिंबसार (उसके पिता) ने उसकी इच्छा जानकर उसे राज्य सौंप दिया। राजा बनते ही देवदत्त की प्रेरणा से उसने (अजातशत्रु) गौतम बुद्ध को मरवाने के लिए आदमी भेजे। वे प्रभावित होकर बुद्ध के अनुयायी बन गये। तदनंतर देवदत्त गृध्र-कूट पर्वत पर गया और शिला उठाकर भगवान की ओर फेंकी। दो पर्वत कूटों ने शिला को रोक लिया किंतु शिला की एक पपड़ी ने छिटककर भगवान के पैर पर आघात किया। देवदत्त ने 'नालागिरि' नामक हाथी से प्रहार करवाना चाहा। भगवान ने उसके कुंभ का स्पर्श किया, वह सूंड़ से भगवान की चरणधूलि लेने लगा। देवदत्त ने परिषद् में जाकर भगवान का अभि-वादन किया, फिर कहा, "भिक्षुओं के लिए पांच बातें अनिवार्य होनी चाहिए—चीथड़े पहनना, वृक्ष के नीचे रहना, केवल भिक्षा खाना, मछली व मांस न खाना, जंगल में रहना। भगवान उन्हें दोषी नहीं मानते थे जो निमंत्रण स्वीकार करें, नगर में जाकर रहें, गृहस्थ के दिए वस्त्र धारण करें तथा धर्मानुशासन के अनुसार जीवन व्यतीत करें।" देवदत्त ने रुष्ट होकर कहा—"जो मेरी बातें मानते हैं वे शलाका ग्रहण करें।" इस प्रकार पांच सौ भिक्षुओं को लेकर वह 'गयासीस' चला गया। एक बार भिक्षुओं को धार्मिक कथा कहते थक गया तो उसने सारिपुत्र महामौद्गल्यायन को उपदेश देने के लिए कहा और स्वयं सो गया। सारिपुत्र उपदेश देते हुए उन पांच सौ भिक्षुओं को लेकर पुनः भगवान के पास चले गये। कोकालिक ने देवदत्त को जगाकर बताया तो उसके मुंह से गर्म खून निकल पड़ा।

बु० च०, ४।१३।-

देवभूषण एक बार राम, लक्ष्मण और सीता ने देखा कि एक नगर से सब लोग चले जा रहे हैं। पूछने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि 'निकटवर्ती' पहाड़ी के ऊपर से बड़ा विचित्र-सा शोर आ रहा है। पता नहीं, कब कोई नष्ट करने आ जाये। राम, सीता और लक्ष्मण पहाड़ी पर चढ़े। उन्होंने वहां दो मुनियों को देखा। उन तीनों ने उन दोनों को प्रणाम किया। राम ने मनोहर स्वर की वीणा बजाई, वंदना गायी तथा सीता ने नृत्य करना प्रारंभ किया। तभी आकाश में अंधकार छा गया। जानवरों के मुखों वाले भूत आकाश में घिर आये और जोर-जोर से बोलने लगे। राम और लक्ष्मण ने उपसर्ग का नाश किया। अनलप्रभ नामक देव ने उपसर्ग का संवरण कर लिया क्योंकि उसने जान लिया था कि राम नारायण हैं। उन दोनों मुनियों ने राम, सीता और लक्ष्मण को उपसर्ग के कारणभूत पूर्वजन्म की घटनाएं सुनायीं। उन दोनों मुनियों का नाम देवभूषण तथा कुलभूषण था। निकटवर्ती नगर के राजा सुरप्रभ ने राम के कहने से वहां अनेक जिनेंद्र भवन बनवाएं अतः वह पर्वत रामगिरि नाम से विख्यात हुआ।

पउ० च०, ३९।-४०।-

देवसेना एक बार मानस पर्वत पर इंद्र ने किसी नारी का आर्तनाद सुना। पास जाकर देखा कि केशी नामक राक्षस किसी कन्या के बाल खींच रहा था। इंद्र ने केशी को मारकर उसकी रक्षा की। कन्या का नाम देवसेना था। उसने इंद्र को बताया कि उसकी बहन दैत्यसेना का अपहरण तो केशी राक्षस पहले ही कर चुका था। अब

उसे हरना चाहता था। वह प्रजापति की पुत्री होने के कारण इंद्र की मौसेरी बहन थी तथा पिता की आज्ञा लेकर अपनी बहन के साथ क्रीड़ा-विहार के लिए मानस पर्वत पर जाया करती थी। उसका परिचय पाकर इंद्र को उसके लिए सुयोग्य पराक्रमी वर खोजने की चिंता हुई। वे देवसेना को लेकर ब्रह्मलोक चले गये। वहां ब्रह्मा से उन्होंने इस कन्या के लिए सुयोग्य वर प्रदान करने की प्रार्थना की। कार्तिकेय के जन्म के उपरांत इंद्र ने उसे देवताओं का सेनापति घोषित किया। इंद्र ने कहा—"तुम्हारे जन्म से पूर्व ही ब्रह्मा ने तुम्हारा विवाह देवसेना से निश्चित कर दिया था।" अतः देवसेना से उसका विवाह हुआ। पुरोहित का कार्य बृहस्पति ने किया। विवाहोपरांत देवसेना उसकी पटरानी बनी तथा वह लक्ष्मी, कुहू, आशा, सुखप्रदा, अपराजिता आदि अनेक नामों से विख्यात हुई।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय २२३ श्लोक ६१ से ६५ तक, अ० २२४, श्लोक१ से २२ तक, अ० २२६, श्लोक ४६ से ४२ तक

देवापि ऋषि वेण के दो पुत्र थे, ज्येष्ठ का नाम देवापि तथा कनिष्ठ का नाम शांतनु था। ऋषि वेण की मृत्यु के उपरांत प्रजा के बहुत अनुरोध करने पर भी देवापि ने राज्य ग्रहण नहीं किया क्योंकि वह 'त्वंग' रोग से ग्रस्त था। उसने कहा—"आप शांतनु को राजा बना लीजिए। मैं रोगी हूं। स्वयं अपना भार उठाने में असमर्थ हूं तो राज्य संभालना भला कैसे संभव हो सकता है!" शांतनु तथा प्रजाजनों की दृष्टि में यह अनीति एवं अधर्म था, तथापि अंततोगत्वा शांतनु को राजा बनना पड़ा। देवापि वन में तप करने के लिए चला गया। शांतनु ने जब राज्य संभाला तब से निरंतर बारह वर्ष तक घोर अवर्षण रहा। सब ओर भयंकर सूखा पड़ने पर त्राहि-त्राहि होने लगी। समस्त प्रजा एक मत थी कि राज्याभिषेक में अधर्म हुआ इसलिए सब यह कष्ट भोग रहे हैं। शांतनु और प्रजाजन वन में गये। देवापि ने उनका पौरोहित्य-कर्म किया तथा राजा शांतनु की प्रजा का अकाल मिटाने के लिए यज्ञ किया। बृहस्पति, अग्नि तथा इंद्र की स्तुति की। इंद्र प्रसन्न हो गये। सब ओर वर्षा हुई और सब प्रसन्न हो गये। देवापि ने पुनः वन की ओर प्रस्थान किया।

ऋ० १०।९८

द्युमत्सेन राजा द्युमत्सेन के पुत्र का नाम सत्यवान था। एक बार राजा ने अनेक अपराधियों को प्राणदंड देने की घोषणा की तो सत्यवान ने पिता से कहा कि क्या प्राण-दंड के बिना काम नहीं चल सकता? यदि क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को ब्राह्मणों के अनुशासन में रख दिया तो धर्म की वृद्धि होगी। यदि प्रथम अपराध करने पर क्षमा, तदुपरांत प्राणदंड छोड़कर कोई और दंड दिया जाये तो दंडित व्यक्ति के परिवार के लोग जीविका रहित नहीं होंगे।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय २६७

द्रुमिल द्रुमिल नामक दानव सोमविमान का अधिपति था। एक बार विमानचालक के साथ वह सुयायुन नामक पर्वत पर गया। वहां उग्रसेन की पत्नी भी रमणार्थ गयी हुई थी। उसके सौंदर्य पर आसक्त होकर द्रुमिल ने उग्रसेन का रूप धारण किया तथा उससे समागम किया। द्रुमिल के छद्मरूप को जानकर रानी बहुत क्रुद्ध हुई। उसने द्रुमिल से पूछा—"तुम कौन हो? किसके पुत्र हो?" द्रुमिल ने कहा—"तुम्हारी कोख से मेरा पुत्र जन्म लेगा। तुमने कस्यत्वं (किसके पुत्र हो) पूछा, अतः तुम्हारे पुत्र का नाम कंस होगा।" द्रुमिल ने कहा कि उसकी कोख से कंस जन्म लेगा। रानी ने क्रोधवश कहा—"मेरे पति के कुल में भगवान जन्म लेंगे तो तुझे और तेरे पुत्र को नष्ट कर डालेंगे।" यह कथा नारद ने कंस को सुनायी।

हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व। २८।

द्रोण महर्षि भारद्वाज का वीर्य किसी द्रोणी (यज्ञकलश अथवा पर्वत की गुफा) में स्खलित होने से जिस पुत्र का जन्म हुआ, उसे द्रोण कहा गया। ऐसा उल्लेख भी मिलता है कि भारद्वाज ने गंगा में स्नान करती घृताची को देखा, आसक्त होने के कारण जो वीर्य स्खलन हुआ, उसे उन्होंने द्रोण (यज्ञकलश) में रख दिया। उससे उत्पन्न बालक द्रोण कहलाया। द्रोण अस्त्र-शस्त्र के ज्ञाता हुए तथा कौरव-पांडवों के गुरु रहे। पुत्र की कामना से उन्होंने कृपी (कृपाचार्य की बहन) से विवाह किया। उनके पुत्र का नाम अश्वत्थामा हुआ। बालक ने जन्म लेते ही उच्चैश्रवा घोड़े के समान शब्द किया, इसीसे उसका नाम अश्वत्थामा पड़ गया। द्रोण ने परशुराम से समस्त शस्त्र तथा शस्त्र-विद्या प्राप्त की। तदुपरांत वे अपने बालसखा द्रुपद के पास गये जो कि पांचाल-नरेश

था। द्रुपद ने निर्धन द्रोण को मित्र मानना स्वीकार नहीं किया, अतः तिरस्कार के दुःख से दुखी होकर वे अपनी पत्नी तथा पुत्र के साथ कृपाचार्य के पास चले गये। वहीं गुप्त रूप से रहने लगे। एक दिन पांडव खेल रहे थे। उनकी गुल्ली उछलकर एक अंधे कुएं में जा गिरी। अनेक प्रयत्न करके भी वे उसे निकाल नहीं पाये। तब एक श्यामवर्ण के ब्राह्मण ने गुल्ली को अभिमंत्रित सींक से वेंध डाला। एक सींक को दूसरी से वेंधते हुए उन्होंने सींक का सिरा कुएं के ऊपर तक पहुंचा दिया, जिसे खींचकर गुल्ली बाहर निकल आयी। उसी प्रकार अंगूठी को कुएं में फेंककर तीर से बाहर निकाल लिया। उनके विषय में सुनकर भीष्म वहां पहुंचे और उन्हें पहचानकर उनसे कौरवों तथा पांडवों का गुरु बनने का आग्रह किया। द्रोणाचार्य मनोयोग से उन सबको शस्त्र-विद्या सिखाने लगे, किंतु अपने पुत्र पर उनका विशेष ध्यान रहता था। वे अन्य सब शिष्यों को कमंडलु देते तथा अश्वत्थामा को चौड़े मुंह का घड़ा। इस प्रकार अश्वत्थामा अन्य सबकी अपेक्षा बहुत जल्दी पानी भरकर ले आते, अतः अन्य शिष्यों के आने से पूर्व वे अश्वत्थामा को अस्त्र-शस्त्र-संचालन सिखा देते। अर्जुन ने यह बात भांप ली। वह वरुणास्त्र से तुरंत ही कमंडलु भरकर प्रस्तुत कर देता। अतः वह अश्वत्थामा से पीछे नहीं रहा। एक बार भोजन करते समय हवा से दीपक बुझ गया, परंतु अभ्यासवश हाथ बार-बार मुंह तक ही पहुंचता था। इस तथ्य की ओर ध्यान देकर अर्जुन ने रात्रि में भी धनुर्विद्या का अभ्यास प्रारंभ कर दिया। वह द्रोण का अत्यंत प्रिय शिष्य था। द्रोण ने एकलव्य को शिष्य बनाना स्वीकार नहीं किया था क्योंकि वे अर्जुन को धनुर्विद्या में अद्वितीय बनाये रखना चाहते थे। द्रोणाचार्य ने गुरुदक्षिणा के रूप में शिष्यों से राजा द्रुपद को बंदी बना लाने के लिए कहा। ऐसा होने पर उसका आधा राज्य उसे लौटाते हुए द्रोण ने कहा—"तुम कहते थे कि राजा ही राजा का मित्र हो सकता है, अतः आज से तुम्हारा आधा राज्य मेरे पास रहेगा और दोनों राजा होने के कारण मित्र भी रहेंगे।" द्रुपद अत्यंत लज्जित स्थिति में अपने राज्य की ओर लौटा। द्रोण ने अर्जुन से गुरुदक्षिणा-स्वरूप यह प्रतिज्ञा ली कि यदि द्रोण भी उसके विरोध में खड़े होंगे तो वह युद्ध करेगा।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय ६३, श्लोक १०६,
अ० १२९-१३०, १३११-३२।-

द्रोण को मालूम पड़ा कि परशुराम अपना समस्त राज्य, धन-वैभव दान कर रहे हैं, अतः वह धन की कामना से परशुराम के पास गया। परशुराम तब तक अपने शरीर तथा अस्त्रों के अतिरिक्त सभी कुछ दान कर चुके थे, अतः उन्होंने अपने समस्त अस्त्र-शस्त्र द्रोण को दे दिये तथा उनके प्रयोग तथा उपसंहार की विधि भी प्रदान कर दी।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय १३७,
अध्याय १३६, श्लोक १३ से १५ तक

महाभारत-युद्ध में दसवें दिन भीष्म का वध हो जाने पर कौरवों ने द्रोण को सेनापति नियुक्त किया। द्रोण ने सेनापतित्व ग्रहण करते हुए कहा कि वे द्रुपद, धृष्टद्युम्न का हनन नहीं करेंगे; क्योंकि धृष्टद्युम्न का जन्म द्रोण को मारने के हेतु हुआ है। द्रोणाचार्य के सेनापतित्व ग्रहण करने से एक बार पुनः कौरवों में उत्साह का संचार हुआ। दुर्योधन ने उनसे युधिष्ठिर को पकड़ लाने के लिए कहा, मारने के लिए नहीं, तथा अपनी योजना उनपर इस प्रकार प्रकट की—"युद्ध के अंत में यदि जुए में युधिष्ठिर को समस्त वस्तुएं पुनः हरवा दी जायें तो कौरवों को राज्य तथा पांडवों को फिर से वनवास की प्राप्ति होगी। युद्ध में क्या होगा—अभी कहना कठिन है।"
द्रोणाचार्य यद्यपि कौरवों की ओर से युद्ध कर रहे थे तथापि उनका मोह पांडवों के प्रति था, ऐसा दुर्योधन बार-बार अनुभव करता था। द्रोण के सर्वतोप्रिय शिष्यों में से एक अर्जुन था। भीष्म के निधनोपरांत द्रोण को कौरवों का सेनापतित्व ग्रहण करना पड़ा। उन्होंने समय-समय पर अनेक प्रकार के व्यूहों की रचना की। उनके बनाये व्यूह को तोड़ने में ही अभिमन्यु मारा गया। अर्जुन ने क्रुद्ध होकर जयद्रथ को मारने की ठानी, क्योंकि उसने पांडवों को व्यूह में प्रवेश नहीं करने दिया था और अनेक रथियों ने अकेले अभिमन्यु को घेरकर मारा था जो कि युद्ध-नियमों के विरुद्ध था। अर्जुन को ज्ञात हुआ तो उसने अगले दिन सायं तक जयद्रथ को मारने अथवा आत्मदाह कर लेने की शपथ ली। अतः द्रोण ने जयद्रथ की सुरक्षा के लिए चक्रशकट व्यूह का निर्माण किया तथापि अर्जुन तथा श्रीकृष्ण ने अगले दिन संध्या से पूर्व जयद्रथ को मार डाला। श्रीकृष्ण ने माया से अंधकार फैला दिया। कौरवगण रात्रि का आगमन समझकर निश्चिंत हो गये और जयद्रथ को तब तक सुरक्षित देख

अर्जुन के आत्मदाह की कल्पना करने लगे, तभी अर्जुन ने जयद्रथ को मार डाला। शोकातुर पांडवों ने रात्रि में भी युद्ध का कार्यक्रम नहीं समेटा तथा सामूहिक रूप से द्रोण पर आक्रमण कर दिया। पंद्रहवें दिन से पूर्व की रात्रि में द्रोण से युद्ध करते हुए द्रुपद के तीन पौत्र, द्रुपद तथा विराट् आदि मारे गये। द्रोण दुर्योधन के वाक्बाणों से क्रुद्ध हो उठे थे, अतः उन्होंने अनेकों पांचाल सैनिकों को नष्ट कर डाला। जो भी रथी सामने आता, द्रोण उसी को नष्ट कर डालते। उन्हें क्षत्रियों का इस प्रकार विनाश करते देख अंगिरा, वसिष्ठ, कश्यप आदि अनेक ऋषि उन्हें ब्रह्मलोक ले चलने के लिए वहां पहुंचे। उन्होंने द्रोण से युद्ध छोड़ देने का अनुरोध किया, साथ ही यह भी कहा कि उनका युद्ध अधर्म पर आधारित है। दूसरी ओर श्रीकृष्ण ने पांडवों को कह-सुनकर तैयार कर लिया कि वे द्रोण तक अश्वत्थामा के मर जाने का संदेश पहुंचा दें। भले ही यह असत्य है। इसके अतिरिक्त युद्ध-धर्म से उन्हें विरक्त करने का कोई अन्य उपाय नहीं जान पड़ता। कालांतर में भीम ने मालव नरेश इंद्रवर्मा का अश्वत्थामा नामक हाथी मार डाला। भीम ने द्रोण को 'अश्वत्थामा मार डाला गया है'—यह समाचार दिया। द्रोण अपने बेटे के बल से परिचित थे, अतः उन्होंने धर्मावतार युधिष्ठिर से इस समाचार की पुष्टि करने के लिए कहा। युधिष्ठिर ने जोर से कहा—'अश्वत्थामा मारा गया' और साथ ही धीरे से यह भी कह दिया 'हाथी का वध हुआ है।' उत्तरांश द्रोण ने नहीं सुना तथा पुत्रशोक से संतप्त हो उनकी चेतना लुप्त होने लगी। वे अनमने से धृष्टद्युम्न से युद्ध कर रहे थे, तब भीम ने पुनः जाकर कहा—"तुम अपने एक पुत्र की जीविका के लिए ब्राह्मण होकर भी यह हत्याकांड कर रहे हो, वह पुत्र तो अब रहा भी नहीं।" द्रोण आर्तनाद कर उठे तथा कौरवों को पुकारकर कहने लगे कि अब युद्ध का कार्यभार वे लोग स्वयं ही संभालें। सुअवसर देखकर धृष्टद्युम्न तलवार लेकर उनके रथ की ओर लपका। द्रोण ने अस्त्र त्यागकर 'ओ३म्' का उच्चारण किया तथा उनके ज्योतिर्मय प्राण ब्रह्मलोक की ओर बढ़ते हुए आकाश में अदृश्य हो गये। इस अवस्था में उनके मस्तक के बाल पकड़कर धृष्टद्युम्न ने सबके मना करते हुए भी चार सौ वर्षीय द्रोण के सिर को धड़ से काट गिराया। अर्जुन कहता ही रह गया कि आचार्य को मारो मत, जीवित ही ले जाओ। वास्तव में राजा द्रुपद ने एक महान् यज्ञ में देवाराधन करके द्रोणाचार्य का विनाश करने के लिए धृष्टद्युम्न नामक राजकुमार को प्रज्वलित अग्नि से प्राप्त किया था। द्रोण को मृत देख कौरवों के अधिकांश सेनापति ससैन्य युद्धक्षेत्र से भागते हुए दिखलायी पड़ने लगे।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय १६२, श्लोक ८ से १२ तक, द्रोणाभिषेक पर्व, अ० ७, ८, १२१-

द्रौपदी द्रोण को आधा राज्य देने के उपरांत राजा द्रुपद बहुत क्षुब्ध था। वह द्रोण से बदला लेने के लिए आतुर था। निःसंतान होने के कारण वह संतान प्राप्त करने के लिए अनेक मंत्रसिद्ध ब्राह्मणों की शरण में गया। अंत में उसे याज और उपयाज नामक दो विद्वान ब्राह्मण मिले। सेवा से प्रसन्न करके वह उन्हें अपने राज्य ले आया। द्रुपद ने उन ब्राह्मणों से एक ऐसे पुत्र की कामना की, जो द्रोणाचार्य का वध कर सके तथा एक ऐसी कन्या की कामना की जो अर्जुन की पटरानी हो सके। दोनों ब्राह्मणों ने द्रुपद की संतान-उत्पत्ति के निमित यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ के अंत में याज ने द्रुपद की रानी को भविष्य-हविष्य ग्रहण करने का आदेश दिया। द्रुपद-पत्नी उस समय अंगराग धारण कर रही थी, अतः उसने स्नान आदि शुचिकर्मों से पूर्व आने में असमर्थता प्रकट की। हविष्य को स्वयं याज ने तैयार किया था तथा उपयाज ने अभिमंत्रित किया था, अतः उससे यजमान की कामना की पूर्ति निश्चित थी। याज ने संस्कारयुक्त हविष्य की आहुति ज्योंही अग्नि में डाली, तुरंत यज्ञाग्नि से सुंदर राजकुमार प्रकट हुआ। वह किरीट, कवच, खड्ग वाण आदि धारण किये था तथा प्रकट होते ही रथ पर चढ़ गया, जैसे युद्ध के लिए उद्यत हो। उसका नाम धृष्टद्युम्न रखा गया। उसी समय आकाश में अदृश्य महाभूत ने कहा—"यह बालक द्रोणाचार्य का वध करेगा।" तदुपरांत वेदी से द्रौपदी नामक सुंदर कन्या का प्रादुर्भाव हुआ, जिसका नाम कृष्णा रखा गया। आगे चलकर द्रोणाचार्य ने ही धृष्टद्युम्न को अस्त्रविद्या की शिक्षा दी।

द्रौपदी पूर्वजन्म में किसी ऋषि की कन्या थी। उसने पति पाने की कामना से तपस्या की। शंकर ने प्रसन्न होकर उसे वर देने की इच्छा की। उसने शंकर से पांच बार कहा कि वह सर्वगुणसंपन्न पति चाहती है। शंकर ने कहा कि अगले जन्म में उसके पांच भारतवंशी पति होंगे,

क्योंकि उसने पति पाने की कामना पांच बार दोहरायी थी।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय १६६, १६८-

कुंती तथा पांडवों ने द्रौपदी के स्वयंवर के विषय में सुना तो वे लोग भी सम्मिलित होने के लिए धौम्य को अपना पुरोहित बनाकर पांचाल देश पहुंचे। कौरवों से छुपने के लिए उन्होंने ब्राह्मणवेश धारण कर रखा था तथा एक कुम्हार की कुटिया में रहने लगे। राजा द्रुपद द्रौपदी का विवाह अर्जुन के साथ करना चाहते थे। लाक्षागृह की घटना सुनने के बाद भी उन्हें यह विश्वास नहीं होता था कि पांडवों का निधन हो गया है, अतः द्रौपदी के स्वयंवर के लिए उन्होंने यह शर्त रखी कि निरंतर घूमते हुए यंत्र के छिद्र में से जो भी वीर निश्चित धनुष की प्रत्यंचा पर चढ़ाकर दिये गये पांच बाणों से, छिद्र के ऊपर लगे, लक्ष्य को भेद देगा, उसीके साथ द्रौपदी का विवाह कर दिया जायेगा। ब्राह्मणवेश में पांडव भी स्वयंवर-स्थल पर पहुंचे। कौरव आदि अनेक राजा तथा राजकुमार तो धनुष की प्रत्यंचा के धक्के से ही भूमिसात हो गये। कर्ण ने धनुष पर बाण चढ़ा तो लिया किंतु द्रौपदी ने सूत-पुत्र से विवाह करना नहीं चाहा, अतः लक्ष्य भेदने का प्रश्न ही नहीं उठा। अर्जुन ने छद्मवेश में पहुंचकर लक्ष्य भेद दिया तथा द्रौपदी को प्राप्त कर लिया। कृष्ण उसे देखते ही पहचान गये। शेष उपस्थित व्यक्तियों में यह विवाद का विषय बन गया कि ब्राह्मण को कन्या क्यों दी गयी है। अर्जुन तथा भीम के रण-कौशल तथा कृष्ण की नीति से शांति स्थापित हुई तथा अर्जुन और भीम द्रौपदी को लेकर डेरे पर पहुंचे। उनके यह कहने पर कि वे लोग भिक्षा लाये हैं, उन्हें बिना देखे ही कुंती ने कुटिया के अंदर से कहा कि सभी मिलकर उसे ग्रहण करो। पुत्रवधू को देखकर अपने वचनों को सत्य रखने के लिए कुंती ने पांचों पांडवों को द्रौपदी से विवाह करने के लिए कहा। द्रौपदी का भाई धृष्टद्युम्न उन लोगों के पीछे-पीछे छुपकर आया था। वह यह तो नहीं जान पाया कि वे सब कौन हैं, पर स्थान का पता चलाकर पिता की प्रेरणा से उसने उन सबको अपने घर पर भोजन के लिए आमंत्रित किया। द्रुपद को यह जानकर कि वे पांडव हैं, बहुत प्रसन्नता हुई, किंतु यह सुनकर विचित्र लगा कि वे पांचों द्रौपदी से विवाह करने के लिए उद्यत हैं। तभी व्यास मुनि ने अचानक प्रकट होकर एकांत में द्रुपद को उन छहों के पूर्वजन्म की कथा सुनायी कि एक बार रुद्र ने पांच इंद्रों को उनके दुर-भिमान स्वरूप यह शाप दिया था कि वे मानव-रूप धारण करेंगे। उनके पिता क्रमशः धर्म, वायु, इंद्र तथा अश्विनीकुमार (द्वय) होंगे। भूलोक पर उनका विवाह स्वर्गलोक की लक्ष्मी के मानवी रूप से होगा। वह मानवी द्रौपदी है तथा वे पांचों इंद्र पांडव हैं। व्यास मुनि के व्यवस्था देने पर द्रौपदी का विवाह क्रमशः पांचों पांडवों से कर दिया गया। व्यास ने उनके पूर्व रूप देखने के लिए द्रुपद को दिव्य दृष्टि भी प्रदान की थी। द्रुपद के दिये तथा कृष्ण के भेजे विभिन्न उपहारों को ग्रहण कर वे लोग द्रुपद की नगरी में ही विहार करने लगे।

दौपदी ने पांच पांडवों से पांच पुत्रों की प्राप्ति की। उनके पुत्रों का नाम क्रमशः प्रतिविंध्य (युधि०), श्रुतसोम (भीम०), श्रुतकर्मा (अर्जुन), शतानीक (नकुल), श्रुतसेन (सहदेव) रखे गये।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय १८२ से १९८ तक

युद्ध की समाप्ति पर जब पांडव, द्रौपदी, श्रीकृष्ण, सात्यकि आदि शिविर में न ठहरकर ओघवती नदी के तट पर रात बिताकर उठे तो उन्हें अश्वत्थामा के किये पांचाल-संहार का समाचार मिला। द्रौपदी अपने मायके के समस्त नाते-रिश्तों के नष्ट होने के विषय में सुनकर बहुत दुखी हुई तथा उसने आमरण अनशन आरंभ कर दिया। उसने कहा कि अश्वत्थामा के मस्तक में उसके जन्म के साथ उत्पन्न हुई एक मणि है। यदि मुझे मणि नहीं दी जायेगी तो मैं भोजन नहीं करूंगी और प्राण त्याग दूंगी। मणि मिलने पर मैं उसे देख लूंगी। भीमसेन अत्यंत आवेग में अश्वत्थामा को मारने के लिए चल पड़े। श्रीकृष्ण यह जानते थे कि अश्वत्थामा को द्रोण ने ब्रह्मास्त्र का उपदेश दे रखा है। यद्यपि उन्होंने अर्जुन को पूर्णरूपेण ब्रह्मास्त्र प्रदान किया था। पूर्वकाल में अश्वत्थामा ने स्वयं कृष्ण को यह बताया था और यह भी कहा था कि वे अपना सुदर्शन चक्र उसे दे दें तो वह ब्रह्मास्त्र उन्हें प्रदान कर देगा। श्रीकृष्ण ने मुस्कराकर उसे कहा कि वह कृष्ण का कोई भी अस्त्र ग्रहण कर ले। अश्वत्थामा अनेक प्रयत्नों के उपरांत भी सुदर्शन चक्र को नहीं उठा पाया—लज्जित होकर लौट गया था। अतः अर्जुन और युधिष्ठिर को लेकर वे भी भीम के पीछे-

पीछे अश्वत्थामा के पास पहुंचे। अश्वत्थामा ने पांडवों को नष्ट करने के लिए एक तिनके में ब्रह्मास्त्र का आवाहन किया। वह तिनका भयानक रूप से प्रज्वलित हो उठा। अर्जुन ने अश्वत्थामा की मंगलकामना के साथ उसके ब्रह्मास्त्र को नष्ट करने के लिए ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। इससे पूर्व कि दोनों अस्त्र एक-दूसरे को नष्ट कर भयानक विस्फोट करते, नारद तथा व्यास ने प्रकट होकर दोनों वीरों को शांत होने का आदेश दिया क्योंकि मनुष्य पर उसका प्रयोग वर्जित है। अर्जुन अपने अस्त्र को लौटाने में समर्थ थे, अतः उन्होंने लौटा लिया किंतु अश्वत्थामा ने हाथ जोड़कर कहा कि वे लौटाने की शक्ति से संपन्न नहीं हैं। व्यास तथा नारद ने दोनों के अस्त्र छोड़ने के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए अश्वत्थामा से कहा कि वे अस्त्र का परिहार करें। अश्वत्थामा अत्यंत लज्जित होकर बोले कि वे इसमें असमर्थ हैं, क्योंकि पांडवों पर न छूटकर यह अस्त्र पांडवों के गर्भस्थ शिशुओं का नाश करेगा। व्यास की आज्ञा का पालन करते हुए अश्वत्थामा ने अपने मस्तिष्क की मणि भी पांडवों को अर्पित कर दी। वह समस्त राज्य से अधिक मूल्यवान तथा शस्त्र, क्षुधा, देवता, दानव, नाग, व्याधि, आदि से रक्षा करनेवाली थी। श्रीकृष्ण ने पुनः कहा कि विराट् की कन्या और अर्जुन की पुत्रवधू को (जब वह उपालव्य नगर में रहती थी) एक ब्राह्मण ने वरदान दिया था कि कौरववंश के क्षीण होने के उपरांत वह परीक्षित नामक शिशु को जन्म देगी। वह वचन तो सत्य होगा ही। अश्वत्थामा इसपर क्रुद्ध होकर बोला—"मेरा ब्रह्मास्त्र सभी गर्भस्थ शिशुओं को मार डालेगा।" श्रीकृष्ण ने कहा—"ठीक है, वह मृत उत्पन्न होकर लंबी आयु उपलब्ध करेगा तथा तेरे देखते-देखते ही वह भूमंडल का सम्राट् होगा। उस मृत बालक को मैं जीवनदान दूंगा। और तू? तू रोगों से पीड़ित होकर इधर-उधर भटकेगा।" व्यास, नारद, अश्वत्थामा को साथ लेकर वे सब द्रौपदी के पास पहुंचे। भीम ने उसे मणि देकर कहा—"तुम्हारा दुःख स्वाभाविक है, पर जब-जब शांति और संधि की बात उठी, तुमने अपने विगत अपमान की याद दिलाकर सबको युद्ध के लिए उत्साहित किया। अब तुम्हें वे सब बातें याद करनी चाहिए।" द्रौपदी ने कहा—"मैं अपने पुत्रों के वध का प्रतिशोध लेना चाहती थी। गुरु-पुत्र तो मेरे लिए भी गुरु ही हैं।" द्रौपदी के कहने से युधिष्ठिर ने वह मणि अपने मस्तक पर धारण कर ली।

म० भा० आदिपर्व, सौप्तिकपर्व, ११ से १६ तक,
अध्याय २२०, श्लोक ७८ से ८६ तक

वास्तव में द्रौपदी साक्षात् शची थी और पांडव इंद्र के ही पांच रूप थे। पूर्वकाल में इंद्र के हाथों त्वष्टा के पुत्र विश्वरूप का हनन हो गया था। ब्रह्महत्या के कारण इंद्र का तेज धर्मराज में प्रविष्ट हो गया। त्वष्टा ने क्रुद्ध होकर अपनी एक जटा उखाड़कर होम की। फलतः होम-कुंड से वृत्र का आविर्भाव हुआ। उसे अपने वध के लिए उद्यत देख इंद्र ने सप्तर्षियों से प्रार्थना की। उन्होंने कुछ शर्तों पर उन दोनों का समझौता करवा दिया। इंद्र ने शर्त का उल्लंघन कर वृत्र को मार डाला, अतः इंद्र के शरीर से निकलकर 'बल' ने वायु में प्रवेश किया। इंद्र ने गौतम का रूप धारण कर अहल्या के सतीत्व का नाश किया, अतः उसका रूप उसे छोड़ अश्विनीकुमारों में समा गया। पृथ्वी का भार हल्का करने के लिए जब सब देवता पृथ्वी पर अवतार लेने लगे, तब धर्म ने इंद्र का तेज कुंती के गर्भ में प्रतिष्ठित किया, अतः युधिष्ठिर का जन्म हुआ। इसी प्रकार वायु ने इंद्र का बल कुंती के गर्भ में प्रतिष्ठित किया तो भीम का जन्म हुआ। इंद्र के आधे अंश से अर्जुन तथा अश्विनीकुमारों के द्वारा माद्री के गर्भ में इंद्र के ही 'रूप' की प्रतिष्ठा के फलस्वरूप नकुल और सहदेव का जन्म हुआ। इस प्रकार पांडव इंद्र के रूप थे तथा कृष्णा शची का ही दूसरा रूप थीं।

मा० पु०, ४-५।

द्विज गौतम वृद्ध गौतम के पुत्र का नाम द्विज गौतम पड़ा, क्योंकि पिता ने उसका यज्ञोपवीत संस्कार कर दिया था। जन्म से नकटा होने के कारण हीन भावना से ग्रस्त वह न किसी गुरु के पास गया, न विद्याध्ययन ही किया। केवल गायत्री और अग्नि की उपासना करते रहने से उसकी आयु बढ़ती गयी। उसने विरूपता के कारण विवाह भी नहीं किया। एक बार एक एकांत गुफा देखकर वह उसमें प्रवेश करने के लिए बढ़ा तो एक वृद्धा ने उसे नमस्कार किया। उसने द्विज गौतम का वरण करने की बात कही। उसने बताया कि वह कृतध्वज (आर्ष्टिषेण के पुत्र) की कन्या थी। एक बार कृतध्वज मृगया के लिए जंगल में गया तो उसी गुफा में विश्राम करने लगा। वहीं उसका साक्षात्कार गंधर्वराज की

कन्या अप्सरा सुश्यामा से हुआ। दोनों काम-पीड़ित हो उठे, फलतः उसका जन्म हुआ। मां उसे वहीं छोड़ गयी थी। जाते हुए उसने कहा था—"जो भी इस गुफा में प्रवेश करेगा, तेरा पति होगा।" द्विज गौतम ने उसका ध्यान अपनी विरूपता तथा अज्ञान की ओर दिलाया। उस वृद्धा ने कहा—"मैंने तपस्या से सरस्वती, वरुण और अग्नि को प्रसन्न कर रखा है।" वृद्धा की सूर्य की उपासना के फलस्वरूप गौतम को रूप की प्राप्ति हुई। सरस्वती ने द्विज गौतम को विद्या प्रदान की। कालांतर में दोनों की आयु पर अनेक ऋषियों ने कटाक्ष किया। द्विज गौतम ने गौतमी के तट पर तपस्या की, अतः वृद्धा सर्वांग सुंदरी बन गयी। उसकी पत्नी के अभिषेक के जल से वृद्धा नदी का निर्माण हुआ।

ब्र० पु, १०७।-

द्विजेश राजा भद्रायुष का विवाह चंद्रांगद की कन्या कीर्तिमालिनी से हुआ था। राजा शिवभक्त था। एक बार वह पत्नी के साथ शिकार खेलने जंगल में गया हुआ था। शिव और गिरिजा ने उसकी परीक्षा लेने के निमित्त ब्राह्मण और ब्राह्मणी का रूप धारण किया तथा एक मायावी शेर को प्रकट किया जिससे भयभीत होने का प्रसंग लेकर वे दोनों राजा की शरण में पहुंचे। शेर गिरिजा को खा गया। ब्राह्मण ने राजा के प्रति रोष प्रकट किया तथा उसकी पत्नी मांगी, क्योंकि ब्राह्मण राजा का शरणागत था। राजा ने पत्नी देनी स्वीकार की तथा स्वयं अग्नि में प्रवेश करने की तैयारी करने लगा। तभी शिव ने प्रकट हो उसे सपरिवार गणों में शामिल होने का वर दिया। ब्राह्मण के रूप में अवतरित होकर शिव ने भद्रायुष की परीक्षा ली थी। शिव का वह रूप द्विजेश नाम से विख्यात हुआ।

शि० पु०, ७।४५

द्विविद द्विविद नामक वानर भौमासुर का सखा, सुग्रीव का मंत्री तथा मैंद का मित्र था। कृष्ण ने भौमासुर को मार डाला, अतः वह भी उन्हें और बलराम को तंग करने का अवसर ढूंढ़ने लगा। वह राष्ट्र में विप्लव करता था। कभी अग्निहोत्र में विघ्न डालता तो कभी नारियों को दूषित करता और कभी समुद्र का जल अंजुली भरकर उसके किनारे की ओर फेंकता कि प्रदेश जलमग्न हो जाता। एक दिन वन में सुंदरियों से घिरे बलराम को देख उसने पेड़ उखाड़कर उनसे लड़ना प्रारंभ किया—सुंदरियों के प्रति अशिष्ट व्यवहार करने लगा। बलराम ने उसे मार डाला।

श्रीमद् भा०, १०।६७
वि० पु०, ५।३६।-
ब्र० पु०, २०६।-

द्वैतवन दुर्योधन को किसी ब्राह्मण से ज्ञात हुआ कि वनवासी पांडव अत्यंत दयनीय स्थिति में द्वैतवन में निवास कर रहे हैं, तब उस खल बुद्धि ने उनके सन्मुख अपना वैभव-प्रदर्शन करने की ठानी। दुर्योधन, शकुनी तथा कर्ण अपनी असीम सेना तथा सजी-धजी रानियों के साथ घोषयात्रा के बहाने से द्वैतवन गये। उनकी गउएं वहां चरा करती थीं। गउओं की गणना करने के उपरांत उन्होंने द्वैतवन के तालाब के पास क्रीड़ा मंडप बनाने के लिए सैनिकों को भेजा। उस दिन युधिष्ठिर द्रौपदी के साथ उसी सरोवर के किनारे सद्यस्क (एक दिन का) राजर्षि यज्ञ का अनुष्ठान कर रहे थे। गंधर्वगण भी गंधर्वियों के साथ इस वन में विहार करते थे। कौरवों के सैनिकों को गंधर्वो ने वहां आने से रोका तो दोनों दलों में ठन गयी। गंधर्वों ने कौरवों को भयंकर युद्ध में परास्त कर बंदी बना लिया। वे उनकी रानियों सहित उन्हें गंधर्वलोक ले चले। ऐसे विकट समय में कौरवों के सेनापति गण युधिष्ठिर की शरण में पहुंचे। भीम के विरोध करने पर भी युधिष्ठिर ने उनकी रक्षा का वचन दिया क्योंकि अपना वंश था। स्त्रियों का अपहरण बहुत बड़ा अपमान है। पांडवों ने शरणागत की रक्षा के निमित्त गंधर्वों से युद्ध किया। गंधर्वराज चित्रसेन ने प्रकट होकर पांडवों को बताया कि उन्हें इंद्र ने युद्ध के लिए प्रेरित किया था, क्योंकि कौरव अपने वैभव का प्रदर्शन करके पांडवों को कुंठित करना चाहते थे। अर्जुन के कहने पर गंधर्वों ने अपहृत रानियों सहित दुर्योधन, शकुनी तथा कर्ण आदि को मुक्त कर दिया। दुर्योधन ने अत्यधिक आत्मग्लानि का अनुभव किया तथा हस्तिनापुर लौटने की अपेक्षा आमरण अनशन करके शरीर त्यागने का निश्चय किया। कर्ण आदि ने उससे कहा—"पांडवों का युद्ध करना स्वाभाविक कार्य था—तुमपर आभार नहीं था, क्योंकि शासक की रक्षा के निमित्त युद्ध करना प्रत्येक देशवासी का कर्तव्य है।" दुर्योधन किसी भी प्रकार नहीं माना। वह आचमन करके कुशासन पर आमरण अनशन के लिए बैठ गया। दानवों को मालूम पड़ा तो उन्होंने एक कृत्या से

उसे उठवाकर रसातल में मंगवा लिया। दानवों ने सामूहिक रूप से उसे समझाया कि दुर्योधन का जन्म उन्हीं लोगों की शिव की आराधना में की गयी तपस्या के फलस्वरूप हुआ था। उसका नाभि से ऊपर का प्रदेश वज्र से बना होने के कारण विदीर्ण नहीं हो सकता था, नाभि से नीचे का प्रदेश पार्वती ने पुष्पमय बनाया था, अतः वह स्त्रियों को मोहित करनेवाला है। भविष्य में अनेक दानव भीष्म, द्रोण, कृपाचार्य आदि के शरीर में प्रवेश करेंगे, अतः वे मोहित होकर बंधु-बांधवों को मारने में संकोच नहीं करेंगे। नरकासुर का वध श्रीकृष्ण ने किया था, वह कर्ण में प्रवेश करेगा। इंद्र यह जानकर कर्ण के कुंडल और कवच छल से ले लेगा—पर कौरवों की विजय ध्रुव है। इस प्रकार दुर्योधन को समझाकर दानवों ने कृत्या द्वारा उसे पुनः उसके आसन पर आसीन करवा दिया। दुर्योधन ने इसे स्वप्न समझा किंतु किसी पर प्रकट नहीं किया। प्रातःकाल कर्ण के पुनः समझाने-बुझाने तथा अर्जुन को मार डालने की प्रतिज्ञा करने पर दुर्योधन ने आमरण अनशन छोड़कर उनके साथ हस्तिनापुर में प्रवेश किया। कालांतर में कर्ण ने पृथ्वी पर दिग्विजय प्राप्त की तथा दुर्योधन ने वैष्णव यज्ञ किया। अधीनस्थ राजाओं के कर से सोने का हल बनवाकर उससे यज्ञमंडप की भूमि जोती गयी। दुर्योधन यद्यपि राजसूय यज्ञ करना चाहता था, किंतु उसी के कुल के युधिष्ठिर ने वह यज्ञ कर रखा था, अतः इसके जीवित रहते राजसूय यज्ञ करना संभव नहीं था, ऐसी ब्राह्मणों की व्यवस्था थी। यज्ञ के उपरांत कर्ण ने अर्जुन को मार डालने की शपथ ली और कहा कि वह जब तक अर्जुन को नहीं मारेगा, तब तक किसी से पैर नहीं धुलवायेगा, केवल जल से उत्पन्न पदार्थ नहीं खायेगा, किसी पर क्रूरता नहीं करेगा तथा कुछ भी मांगने पर मना नहीं करेगा। गुप्तचरों के माध्यम से यह समाचार पांडवों तक भी पहुंचा। उधर स्वप्न में द्वैतवन के हिंसक पशुओं ने युधिष्ठिर से जाकर प्रार्थना की कि पांडवगण अपना आवास स्थान बदल लें, क्योंकि द्वैतवन में पशुओं की संख्या अत्यंत न्यून हो गयी है। युधिष्ठिर ने द्वैतवन का त्याग कर पांडवों, द्रौपदी तथा शेष साथियों सहित काम्यक वन में स्थित तृणबिंदु नामक सरोवर के लिए प्रस्थान किया।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय २३७ से २५८ तक

द्वैपायन मत्स्यगंधा अथवा सत्यवती नदी में नाव चलाती थी। एक दिन नदी के किनारे पराशर ऋषि आये। उन्होंने सत्यवती से समागम की इच्छा प्रकट की तथा सत्यवती को वरदान दिया कि उसके शरीर से मछली की गंध हटकर सुगंध निसृत होगी। पुत्र-जन्म के बाद भी वह कन्या ही रहेगी। उसको लज्जा से मुक्त करने के लिए पराशर ने चारों ओर कोहरा फैला दिया। उनका पुत्र तुरंत ही उत्पन्न हो गया। सत्यवती के शरीर से सुगंध निसृत हुई, अतः वह योजनगंधा कहलायी। जिस पुत्र का जन्म हुआ, वह जन्म से ही जमुना के मध्य एक द्वीप पर तपस्या करने के लिए छोड़ दिया गया, अतः उन्हें द्वैपायन कहा गया। कालांतर में उन्होंने वेदों का विस्तार किया, अतः व्यास कहलाए।

महाभारत की रचना के उपरांत श्रांत व्यास हिमालय के एक शिखर पर अपने पांच शिष्यों (सुमंतु, जैमिनी, पैल, वैशंपायन तथा शुकदेव) के साथ रहने लगे। एक बार उन्होंने बताया कि सातवें कल्प के आरंभ में विष्णु के नाभिकमल से ब्रह्मा का जन्म हुआ। विष्णु ने उनसे सृष्टि-रचना के लिए कहा तो ब्रह्मा ने सृष्टि रचने की बुद्धि का अभाव प्रकट किया। विष्णु ने बुद्धि का चिंतन किया तथा मूर्तिमति बुद्धि को योगशक्ति संपन्न किया। उनके आदेश पर बुद्धि ने ब्रह्मा में प्रवेश किया। तब उन्हें सृष्टि का आदेश देकर वे अंतर्धान हो गये। तदनंतर उन्होंने दैत्य, दानव और राक्षसों से रक्षा करने के लिए युग-युग में अवतार धारण करने का निश्चय किया।

तदनंतर श्री हरि ने 'भोः' शब्द से प्रतिध्वनित करते हुए सरस्वती का उच्चारण किया। अतः सारस्वत का आविर्भाव हुआ, जिसका नाम 'अपांतरतमा' रखा गया। श्रीहरि ने उससे कहा कि वह वेदों में पारंगत हो जाय। भावी काल में उसका पुनर्जन्म पराशर मुनि (पिता) के घर में रहनेवाली एक कुंवारी कन्या से होगा और तुम कानीनगर्भ कहलाओगे।

अतः पहले अपांतरतमा नाम से उत्पन्न होनेवाले मुनि ही पुनः व्यास नाम से जन्मे।

म० भा०, आदिपर्व, ६३।७०-९०।-
शांतिपर्व ३४९।१-५९।-

देवीभागवत् में द्वैपायन ने द्वीप में जन्म लेते ही मां से कहा—"तुम जाओ, मैं अब तप करूंगा! जब भी तुम

याद करोगी, मैं तुरंत तुम्हारे पास उपस्थित हो जाऊंगा।"
(शेष कथा महाभारत की तरह)

दे० भा०, २।२।-

महाभारत की रचना करके व्यास मुनि ने उसे सर्वसुलभ पांचवें वेद का रूप दे दिया था तथापि वे अपने मन में संतोष का अनुभव नहीं करते थे। एक बार इसका कारण पूछने पर नारद ने बताया कि वे सर्वज्ञ, विद्वान, सदाचारी इत्यादि अनेक गुणों के आगार होने पर भी क्योंकि श्रीकृष्ण का भजन नहीं करते, इसी कारण से संतोष की न्यूनता का आभास होता है।

श्रीमद् भा०, प्रथम स्कंध, अध्याय ५, श्लोक १-२२

□

ध

धन्वंतरि आयु के पुत्र का नाम धन्वंतरि था। वह वीर यशस्वी तथा धार्मिक था। राज्यभोग के उपरांत योग की ओर प्रवृत्त होकर वह गंगासागर संगम पर समाधि लगाकर तपस्या करने लगा। गत अनेक वर्षो से उससे त्रस्त महाराक्षस समुद्र में छुपा हुआ था। वैरागी धन्वंतरि को देख उसने नारी का रूप धारण कर उसका तप भंग कर दिया, तदनंतर अंतर्धान हो गया। धन्वंतरि उसी की स्मृतियों में भटकने लगा। ब्रह्मा ने उसे समस्त स्थिति से अवगत किया तथा विष्णु की आराधना करने ले लिए कहा। विष्णु को प्रसन्न करके उसने इंद्रपद प्राप्त किया, किंतु पूर्वजन्मों के कर्मों के फलस्वरूप वह तीन बार इंद्रपद से च्युत हुआ—(१) वृत्रहत्या के फलस्वरूप नहुष द्वारा (२) सिंधुसेनवध के कारण (३) अहल्या से अनुचित व्यवहार के कारण। तदनंतर बृहस्पति के साथ इंद्र ने विष्णु और शिव को आराधना से प्रसन्न करके अपने राज्य की स्थिरता का वर प्राप्त किया। वह स्थान पूर्ण-तीर्थ नाम से विख्यात है।

ब्र० पु०, १२२।-

धर्म (यक्ष) एक तपस्वी ब्राह्मण का रस्सी में बंधा अरणी सहित मंथनकाष्ठ एक वृक्ष में टंगा हुआ था। एक हरिण उसी वृक्ष में अपना शरीर रगड़ने लगा। अरणी और मंथनकाष्ठ उसके सींगों में अटक गये। वह उतावली में उन सहित जंगल की ओर दौड़ गया। ब्राह्मण के कष्ट का निवारण करने के लिए पांचों पांडव उसके पीछे दौड़े। जंगल में दूर-दूर तक ढूंढ़ने पर भी वह नहीं मिला। भूखे-प्यासे पांडव पानी का संधान करने लगे। नकुल निकटवर्ती एक तालाब से पानी लेने गया। पानी का स्पर्श करने से पूर्व उसे एक आवाज सुनायी दी—"इस जल पर मेरा अधिकार है। इसका पान मत करो, पहले मेरे प्रश्नों का उत्तर दो।" नकुल ने उसकी अवहेलना करके पानी पी लिया और वह उसके किनारे जड़वत गिर गया। उसको ढूंढ़ता हुआ सहदेव आया। उसकी भी यही गति हुई। इसी प्रकार चार पांडवों के मर जाने के उपरांत युधिष्ठिर वहां पहुंचा। पानी की ओर बढ़ते ही उसने भी वही आवाज सुनी। वह रुक गया तथा उसने बोलने वाले का परिचय पूछा। वक्ता ने कहा कि वह एक यक्ष है। युधिष्ठिर ने समस्त प्रश्नों का सुचारु रूप से उत्तर दे दिया। प्रसन्न होकर वक्ता ने कहा कि वह किसी एक भाई को जीवन प्रदान कर सकता है। युधिष्ठिर ने कहा —"मेरे लिए कुंती तथा माद्री में कोई अंतर नहीं है। मैं दोनों को ही पुत्रवती देखना चाहता हूं। अतः नकुल को जीवन दीजिए।" यक्ष ने युधिष्ठिर की धर्मसंगत बात से प्रसन्न होकर उसे एक और वर मांगने को कहा। युधिष्ठिर ने ब्राह्मण के अरणी तथा मंथनकाष्ट की मांग की। यक्ष ने अतीव प्रसन्न होकर उसके सभी भाइयों को जीवित कर दिया। साथ ही बताया कि वास्तव में वह धर्म था तथा युधिष्ठिर की परीक्षा लेने इस रूप में पहुंचा था। धर्म ने ही मृग का रूप धारण कर ब्राह्मण की दोनों वस्तुएं वृक्ष से ली थीं। धर्म ने युधिष्ठिर को पुनः एक वर प्रदान किया कि वह १३वें वर्ष के अज्ञातवास में विराटनगर में रहते हुए स्वेच्छा से रूप धर पायेगा तथा कोई उसे पहचान नहीं पायेगा। धर्म ने बताया कि विदुर का जन्म भी उसके अंश से हुआ है।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय ३११ से ३१५ तक

धर्म धर्म के पुत्र का नाम काम था। काम की पत्नी रति तथा पुत्र हर्ष कहलाया। अधर्म की पत्नी हिंसा थी। उसके एक पुत्र तथा एक कन्या हुए। पुत्र का नाम अनृत तथा कन्या का नाम निःऋृति हुआ। इन दोनों के दो कन्या तथा दो पुत्र हुए। पुत्रों के नाम नरक और मद थे तथा कन्याओं के नाम माया और वेदना थे। इन चारों का परस्पर विवाह हो गया। मद की पत्नी माया ने मृत्यु नामक पुत्र को जन्म दिया। वेदना और नरक के पुत्र का नाम दुःख हुआ। मृत्यु से व्याधि, जरा, शोक, तृष्णा और क्रोध उत्पन्न हुए। इनके स्त्री और पुत्र नहीं होते। ये सब 'उर्ध्वरेता' हैं।

वि० पु०, १।७।, मा० पु०, ४७।१७-३२

धर्मारण्य (ब्राह्मण) धर्मारण्य ब्राह्मण चंद्रकुल से संबद्ध था तथा गंगा के दक्षिण तट पर रहता था। अनेक पुत्रों को जन्म देने के उपरांत वह द्विविधा में फंस गया कि शेष जीवन में मोक्ष-प्राप्ति के लिए कौन-सी वृत्ति अपनानी चाहिए। एक दिन एक ब्राह्मण अतिथि से भी उसने इस विषय में विचार-विमर्श किया। अतिथि ने उसे गोमती के तट पर स्थित नागपुर नामक नगर के प्रसिद्ध नागराज, पद्मनाभ से मिलने की सलाह दी : धर्मारण्य नागराज को खोजता हुआ उनके घर पहुंचा। उनकी गृहिणी से उसे यह ज्ञात हुआ कि नागराज हर वर्ष एक माह के लिए सूर्य का रथ ढोने जाते हैं, सो वहीं गये हुए हैं और पंद्रह दिन बाद वापस आयेंगे। ब्राह्मण ने नागराज की पत्नी से कहा—"मैं गोमती के किनारे प्रतीक्षा करूंगा, आने पर उन्हें वहां भेज दीजिएगा।" नागराज के लौटने पर पत्नी ने ब्राह्मण का संदेश उन्हें दे दिया। वे क्रुद्ध होने लगे कि इस प्रकार उन्हें आज्ञा देनेवाला मनुष्य कौन है? पत्नी ने उन्हें समझा-बुझाकर अतिथि ब्राह्मण के पास भेज दिया। वहां जाकर उन्हें ज्ञात हुआ कि गत पंद्रह दिवस निराहार रहकर ब्राह्मण नागराज की कुशल-कामना करता रहा है। नागराज अपने पूर्व विचारों पर बहुत लज्जित हुए तथा उन्होंने ब्राह्मण को अपना परिचय देकर उसके आने का उद्देश्य पूछा। ब्राह्मण ने कहा कि वह दर्शन करना चाहता था। यदि संभव हो तो सूर्य का रथ ढोने में जो चमत्कार दिखायी देते हैं, उनमें से कोई सुना दें। नागराज ने सुनाया कि एक दिन अचानक रथ पर चढ़े सूर्य के अतिरिक्त एक और सूर्य जैसा प्रकाशपुंज दिखायी दिया। दोनों सूर्य परस्पर मिले, फिर दूसरेवाला पहले में लय हो गया। नागराज ने सूर्य से पूछा कि वह कौन था तो पता चला कि ः (दुकान अथवा खेत में गिरे हुए अन्न मात्र का आहार करना) पर रहनेवाला कोई ब्राह्मण था। कथा सुनकर ब्राह्मण बहुत प्रसन्न हुआ। उसने नागराज पद्मनाभ को अपने मन की भूतपूर्व द्विविधा बतलाकर कहा कि इस कथा से उसकी शंका-समाधान हो गया है। अब वह भी उञ्छवृत्ति पर जीवन-निर्वाह करेगा। तदनंतर धर्मारण्य नागराज से विदा लेकर भृगुवंशी च्यवन ऋषि के पास गया तथा उन्हीं से उञ्छवृत्ति की दीक्षा भी ली।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय ३५३-३६५

धुंधु राजा वृहदश्व ने कुवलाश्व नामक पुत्र को राज्य देकर वन के लिए प्रस्थान किया। वन में उत्तंक नामक मुनि ने उससे कहा कि वह धुंधु नामक राक्षस के उत्पात के कारण तपस्या नहीं कर पाता, अतः राजा को उसका हनन कर देना चाहिए। धुंधु राक्षस मधु का पुत्र था। वह मरुधन्वा नामक प्रदेश में स्थित उद्दालक नामक बालू भरे समुद्र में बालू के भीतर रहता था। वह लोक-विनाश के लिए तप करके सोता था तथा वर्ष के अंत में सांस लेता था तो बालू का तूफान समस्त पृथ्वी को डुला देता था। राजा शस्त्र त्याग कर चुके थे, अतः उन्होंने अपने पुत्र को राक्षस-वध की आज्ञा दी और तपस्यारत हो गये। कुवलाश्व ने अपने सौ पुत्रों सहित समुद्र की बालू खोदनी आरंभ की। धुंधु ने पश्चिम दिशा में खड़े होकर मुंह से अग्नि निकालनी प्रारंभ की तथा समुद्र का जल वेग सहित बढ़ा दिया। उसने राजा के ९७ पुत्रों को जला दिया। राजा ने योगविद्या से जलमय वेग को तथा अग्नि को शांत किया तथा धुंधु को मार डाला। उत्तंक ने उसे वर दिया कि वह अक्षय धनवाला वीर होगा। उसके मृत पुत्र अक्षयलोक प्राप्त करेंगे।

ब्र० पु०, ७।५८-७४

धूम्रलोचन शुंभ-निशुंभ ने कालिका देवी के पास सुग्रीव नामक दूत भेजकर कहलाया कि वे पूर्ण शक्तिसंपन्न हैं, अतः देवी उनके पास चली आयें। देवी ने कहा—"जो मुझे युद्ध में परास्त कर देगा, मैं उसके पास जाऊंगी।" दैत्य सुग्रीव ने अंबिका देवी का उत्तर शुंभ-निशुंभ को दिया तो वे दोनों क्रोध से थरथरा उठे। उन्होंने धूम्रलोचन को आज्ञा दी कि अंबिका के केश पकड़कर उन्हें खींच लायें। धूम्रलोचन हिमालय पर पहुंचा। दैत्यराज का संदेश देने पर अंबिका ने हुंकार के द्वारा ही उसे भस्म कर

दिया तथा देवी के वाहन केसरी ने समस्त सेना नष्ट-भ्रष्ट कर डाला।

मा० पु०,८३।-

धूम्राक्ष रावण की ओर से धूम्राक्ष ससैन्य युद्ध करने के लिये गया था। उसे हनुमान ने मार डाला था।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ५३, श्लोक ३४-३६

धृतराष्ट्र धृतराष्ट्र पांडु का बड़ा भाई था। उसके सौ पुत्र कौरव नाम से विख्यात हुए (दे० गांधारी)। महाभारत जैसे वृहत् युद्ध में यद्यपि कौरवों की ओर से अन्याय हुआ था तथापि धृतराष्ट्र की सहानुभूति अपने पुत्रों की ओर ही रही। वयोवृद्ध होने पर भी न्यायसंगत बात उसके मुंह से नहीं निकली। उसने संजय के द्वारा पांडवों के पास यह संदेश भिजवाया था कि कौरवों के पास अपरिमित सैन्य बल है अतः वे लोग कौरवों से युद्ध न करें। युधिष्ठिर ने संजय से पूछा कि उसने पांडवों के किस कर्म से यह अनुभव किया है कि वे लोग युद्ध के लिए उद्यत हैं? श्रीकृष्ण ने कहा—"यदि पांडवों के अधिकार की हानि नहीं हो तो दोनों में संधि कराना श्रेयस्कर है अन्यथा क्षत्रिय का धर्म स्वराज्य-प्राप्ति के लिए युद्ध में प्राणों का स्वाहा कर देना है।" जैसा संदेश उसने पांडवों के पास भेजा था, वैसा कुछ कौरवों को समझाने का प्रयास उसने नहीं किया। विदुर (धृतराष्ट्र के छोटे भाई) ने भी धृतराष्ट्र को बहुत समझाया कि पांडवों का सर्वस्वहरण करने के उपरांत वे सब उनसे शांति की अपेक्षा कैसे कर सकते हैं? अन्याय से पांडव तो लड़ेंगे ही। भावी आशंका से ग्रस्त होकर धृतराष्ट्र अपने पुत्रों को युद्ध से नहीं रोक पाया। हुआ भी ऐसा ही। संभावित महाभारत युद्ध में सभी कौरवों का नाश हो गया। पांडवों के अधिकांश सैनिक तथा पांचाल नष्ट हो गये। दुर्योधन की मृत्यु के उपरांत धृतराष्ट्र अपने प्राण त्यागने को उद्यत हो उठा। व्यास तथा विदुर ने अपने पुराने कथनों का स्मरण दिलाकर और इस दुर्घटना को अनिवार्य बतलाकर धृतराष्ट्र को शांत किया तथा आदेश दिया कि वह पांडवों से मैत्रीभाव रखने का प्रयास करे। धृतराष्ट्र ने ऐसा ही करने का आश्वासन दिया किंतु वह पांडवों पर बहुत क्रुद्ध रहा। तदनंतर वह स्त्रियों तथा प्रजाजनों सहित मृत वीरों के अंत्येष्टिकर्म आदि के लिए रणभूमि की ओर चल पड़ा। मार्ग में कृपाचार्य, अश्वत्थामा तथा कृतवर्मा से भेंट हुई। उन तीनों वीरों ने पांचालों से लिए प्रतिशोध के विषय में सविस्तार वृत्तांत धृतराष्ट्र को सुनाया और यह बताकर कि वे पांडवों से छिपकर भाग रहे हैं—अश्वत्थामा व्यास मुनि के आश्रम की ओर, कृपाचार्य हस्तिनापुर तथा कृतवर्मा अपने देश की ओर बढ़े। हस्तिनापुर में रुदन करती हुई महिलाओं के मध्य रोती हुई द्रौपदी, पांडव, सात्यकि तथा कृष्ण भी थे। युधिष्ठिर उनसे भी मिले। भीम की लौह-प्रतिमा को उन्होंने गले लगाकर चूर-चूर कर दिया (दे० भीम)। कृष्ण ने उनके क्रोध को शांत किया, फटकारा भी, तब वे पांडवों को हृदय से लगा पाये।

धृतराष्ट्र-वनगमन पांडवों ने विजयी होने के उपरांत धृतराष्ट्र तथा गांधारी की पूर्ण तन्मयता से सेवा की। पांडवों में से भीमसेन ऐसे थे जो सबकी चोरी से धृतराष्ट्र को अप्रिय लगनेवाले काम करते रहते थे, कभी-कभी सेवकों से भी धृष्टतापूर्ण मंत्रणाएं करवाते थे। धृतराष्ट्र धीरे-धीरे दो दिन या चार दिन में एक बार भोजन करने लगे। पंद्रह वर्ष बाद उन्हें इतना वैराग्य हुआ कि वे वन जाने के लिए छटपटाने लगे। वे और गांधारी युधिष्ठिर तथा व्यास मुनि से आज्ञा लेकर वन में चले गये। चलते समय जयद्रथ तथा पुत्रों का श्राद्ध करने के लिए वे धन लेना चाहते थे। भीम देना नहीं चाहता था तथापि युधिष्ठिर आदि भीमेतर पांडवों ने उन्हें दान-दक्षिणा के लिए यथेच्छ धन ले लेने के लिए कहा। धृतराष्ट्र और गांधारी ने वन के लिए प्रस्थान किया तो कुंती भी उनके साथ हो ली। पांडवों के कितनी ही प्रकार के अनुरोध को टालकर उसने गांधारी का हाथ पकड़ लिया। कुंती ने पांडवों से कहा कि वह अपने पति के युग में पर्याप्त भोग कर चुकी है, वन में जाकर तप करना ही उसके लिए श्रेयस्कर है। पांडवों को चाहिए कि वे उदारता तथा धर्म के साथ राज्य का पालन करें। वे तीनों कुरुक्षेत्र स्थित महर्षि शतयूप के आश्रम में पहुंचे। शतयूप केकय का राज्य-सिंहासन अपने पुत्र को सौंपकर वन में रहने लगे थे। तदनंतर व्यास से वनवास की दीक्षा लेकर धृतराष्ट्र आदि शतयूप के आश्रम में रहने लगे। घूमते हुए नारद उस आश्रम में पहुंचे। उन्होंने बताया कि इंद्रलोक की चर्चा थी कि धृतराष्ट्र के जीवन के तीन वर्ष शेष रह गये हैं। तदुपरांत वे कुबेर के लोक में जायेंगे।

सपरिवार पांडव उनके दर्शन करने वन में पहुंचे। वे लोग धृतराष्ट्र के आश्रम पर एक मास तक रहे। इसी मध्य विदुर ने शरीर त्याग दिया तथा एक रात व्यास मुनि

सबको गंगा के तट पर ले गये। गंगा में प्रवेश कर उन्होंने महाभारत के समस्त मृत सैनिकों का आवाहन किया। उन सबके दर्शन करने के लिए व्यास ने धृतराष्ट्र को दिव्य नेत्र प्रदान किये। जो नारियां अपने मृत पति का लोक प्राप्त करना चाहती थीं, उन्होंने गंगा में गोता लगाया तथा वे शरीर त्याग उनके साथ ही चली गयीं। प्रातः-काल से पूर्व ही आहूत वीर अंतर्धान हो गये।

पांडवों के लौटने के उपरांत धृतराष्ट्र आदि हरिद्वार चले गये। धृतराष्ट्र मुंह में पत्थर का टुकड़ा रखकर केवल वायु का आहार करने लगे, गांधारी मात्र जल लेती थी, कुंती माह में एक बार और संजय दो दिन बाद तीसरे दिन एक बार भोजन करते थे। एक दिन वे चारों गंगा में स्नान करके चुके थे कि चारों ओर वन में दावाग्नि का प्रकोप फैल गया। धृतराष्ट्र ने संजय को वहां से भाग जाने का आदेश दिया तथा स्वयं गांधारी तथा कुंती के साथ पूर्वाभिमुख होकर बैठ गये। वे तीनों योगयुक्त होकर अग्नि में भस्म हो गये। संजय तापसों को इस दुर्घटना का समाचार देकर हिमालय की ओर चले गये। पांडवों ने उनकी हड्डियां चुनकर नदी में प्रवाहित कीं तथा उनका श्राद्ध किया।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय १, श्लोक ६४-६५
उद्योगपर्व २० से ३४
स्त्रीपर्व, १ से १२
आश्रमपर्व, ५-२०, ३३-३६

धृतराष्ट्र, गांधारी तथा विदुर ने वनगमन का निश्चय किया। वे लोग बिना किसी को बताए वन में चले गये। युधिष्ठिर प्रातःकाल प्रणाम करने के लिए उनके महल में गये तो उन्हें न पाकर बहुत चिंतित हुए। तभी नारद ने प्रकट होकर उनके वनगमन के विषय में बताया।

श्रीमद् भा०, प्रथम स्कंध, अध्याय १३

धृष्टद्युम्न धृष्टद्युम्न पांचाल-राज द्रुपद का पुत्र था। महाभारत-युद्ध में उसने द्रुमसेन का वध किया था। द्रोण के हाथों द्रुपद अपने तीन पौत्रों तथा विराट सहित मारे गये। धृष्टद्युम्न क्रोध से थरथरा उठा और द्रोण को मारने के लिए उसने शपथ ली, किंतु द्रोण वीर योद्धाओं से इतने सुरक्षित थे कि वह उनका कुछ भी बिगाड़ न पाया। तभी भीम ने आकर उसे युद्ध के लिए उत्साहित किया तथा दोनों वीर द्रोण की सेना में घुस गये। श्रीकृष्ण की प्रेरणा से पांडवों ने द्रोण तक यह झूठा समाचार पहुंचाया कि अश्वत्थामा मारा गया है (दे०द्रोण), फलस्वरूप द्रोण ने अस्त्र-शस्त्र त्याग दिये। अवसर का लाभ उठाकर धृष्टद्युम्न ने द्रोण के बाल पकड़कर सिर काट डाला। वास्तव में द्रुपद ने एक बृहत यज्ञ में देवो-पासना के उपरांत प्रज्वलित अग्नि से द्रोणाचार्य के वध के निमित्त ही धृष्टद्युम्न नामक राजकुमार को प्राप्त किया था तथा द्रोण ने धृष्टद्युम्न के वध के लिए अश्वत्थामा को जन्म दिया था। द्रोण-वध को लेकर अर्जुन तथा सात्यकि का धृष्टद्युम्न से बहुत विवाद हो गया। भीम, सहदेव, युधिष्ठिर तथा कृष्ण ने बीच-बचाव कराया।

म० भा०, द्रोणपर्व, अध्याय १६६, श्लोक १ से २२ तक
अ० १८६, अ० १९३

धेनुक बलराम तथा कृष्ण के साथ ब्रज के बच्चे ताड़ के फल खाने ताड़ के वन में गये। बलराम ने पेड़ों से फल गिराए, इससे पूर्व कि बालक उन फलों को खाते, धेनुक नामक असुर ने गदहे के रूप में उनपर आक्रमण किया। दो बार दुलत्तियां सहने के बाद बलराम ने उसे उठाकर पेड़ पर पटक दिया। पेड़ भी टूट गया तथा वह भी मर गया। उसकी इस गति को देखकर उसके भाई-बंधु अनेकों गदहे वहां पहुंचे। बलराम तथा कृष्ण ने सभी को मार डाला।

श्रीमद् भा०, १०।१५-
ब्र० पु०, १८६।-
वि० पु०, ५-५।-
हरि० वं० पु०, वि० पर्व, १३।-

ध्रुव मनु-पुत्र उत्तानपाद की दो रानियां थीं—सुरुचि तथा सुनीति। राजा सुरुचि से अधिक प्रेम करता था। एक दिन वह उसके पुत्र उत्तम को गोद में बैठाकर प्यार कर रहा था और ध्रुव उसकी गोद में चढ़ने के लिए मचल रहा था। सुरुचि ने ध्रुव की अवमानना करते हुए कहा कि वह सौत का पुत्र होने के नाते राजा की गोद में बैठने के योग्य नहीं है। इस योग्यता का अर्जन करने के लिए उसे श्रीनारायण की आराधना करके सुरुचि की कोख से जन्म ले पाने का वर प्राप्त करना होगा। राजा कुछ भी नहीं बोले। ध्रुव को बहुत बुरा लगा। उसने अपनी मां (सुनीति) से सलाह करके वन को प्रस्थान किया। पांच वर्ष की अवस्था में ही उसने अपनी तपस्या से विष्णु को प्रसन्न कर लिया। विष्णु ने उससे कहा—

"मैं तुझे ध्रुवलोक देता हूं। कालांतर में तुम्हारा पिता अपना राज्य तुम्हें सौंप देगा। भाई उत्तम शिकार खेलता हुआ मर जायेगा और सौतेली मां उसे ढूंढ़ती हुई दावानल में प्रवेश करेगी।" विष्णु के अंतर्धान होने के पश्चात् ध्रुव अपने घर के लिए चल दिया। उसे इस बात पर रह-रहकर ग्लानि हो रही थी कि श्रीहरि के दर्शन करके भी उसने पारस्परिक द्वेष को भूल कर मोक्ष क्यों नहीं मांगा। राजा को पता चला कि ध्रुव वापस आ रहा है तो उसे विश्वास नहीं हुआ। वह स्वयं अपने पूर्व कृत्य पर लज्जित था। ध्रुव का सभी ने स्वागत किया। उसका विवाह शिशुमार की पुत्री भ्रमि तथा वायुपुत्री इला से हुआ। भ्रमि के कल्प तथा वत्सर नामक दो पुत्र हुए तथा इला ने उत्कल नामक पुत्र तथा एक पुत्री को जन्म दिया। उत्तम का अभी विवाह नहीं हुआ था कि वह शिकार खेलता हुआ यक्षों के हाथों मारा गया। उसकी माता भी उसी के साथ परलोक सिधार गयी। ध्रुव को भाई की मृत्यु से अत्यंत दुःख हुआ। उसने आक्रमण कर अनेक अपराधी तथा निरपराधी यक्षों का हनन कर दिया। उसके पितामह मनु ने वहां पहुंचकर ध्रुव को समझाया कि निरपराधी का हनन पाप है। ध्रुव ने युद्ध रोक दिया। कुबेर ने प्रसन्न होकर उसे वर मांगने को कहा तो ध्रुव ने वर में यही मांगा कि उसे श्रीहरि की स्मृति बनी रहे। राजधानी में लौटकर अनेक यज्ञ करने के उपरांत ध्रुव वदरिकाश्रम चला गया। वहां वर्षों तक तपस्या करने के उपरांत श्रीहरि का दिव्य विमान सुनंद और नंद नामक पार्षद सहित ध्रुव को लेने के लिए पहुंचा। काल के सिर पर पांव रखकर ध्रुव ने श्रीहरि के विमान में पदार्पण किया। उसका बड़ा पुत्र उत्कल वासनाशून्य था। अतः लोग उसे मूर्ख समझते थे। ध्रुव के बाद राज्य उसे न देकर उसके छोटे भाई (भ्रमिपुत्र) वत्सर को दिया गया।

श्रीमद् भा०, चतुर्थ स्कंध, अध्याय ६-१२
वि०पु०, १।११।-

ब्रह्मा के पुत्र स्वायंभुव मनु हुए। उनकी पत्नी शतरूपा थी। उनके पुत्र का नाम उत्तानपाद था जिन्होंने सुनीति तथा सुरुचि से विवाह किये। सुनीति के पुत्र का नाम ध्रुव रखा गया। ध्रुव पिता की गोद में बैठना चाहते थे पर सुरुचि के संकोच से उत्तानपाद ने उन्हें गोद में नहीं बैठाया। सुरुचि ने अपशब्दों का प्रयोग भी किया। इन सबसे तिक्त हो ध्रुव ने कठोर तपस्या करने की ठानी। तपस्या के बल से उन्होंने वह पद प्राप्त किया जो कि मनुष्य को प्राप्त नहीं होता। तदनंतर उन्हें ध्रुवलोक की प्राप्ति हुई।

शि० पु०, ११।१५

□

नंदन नंदन राजा नंदिवर्द्धन का पुत्र था (दे० नंदिवर्द्धन)। पिता के विरक्त होने पर उसने राज्य को भली भांति संभाला। उसका पर्याप्त विस्तार भी किया। पिता ने आग्रहपूर्वक उसका विवाह प्रियंकरा के साथ संपन्न किया था। एक दिन उसे समाचार मिला कि वन में अवधि ज्ञानी प्रौष्ठिल मुनि आये हुए हैं। वह सविनय उनके दर्शनों के निमित्त गया तथा उसने अपने पूर्वजन्म के विषय में जिज्ञासा प्रकट की। प्रौष्ठिल मुनि ने बताया कि उस भव से पूर्व नौंवे भव में वह (नंदन) एक सिंह था। अनेक पशुओं का हिंसा कर वह अपनी गुफा के सामने बैठा विश्राम कर रहा था। आकाशचारी अमितकीर्ति तथा अमरप्रभ नामक मुनियों ने उसे देखा तो वे पृथ्वी पर उतर आये तथा जोर-जोर से 'प्रज्ञप्ति' का पाठ करने लगे। सिंह की तंद्रा भंग हो गयी। उसने उन मुनियों को सविनय प्रणाम किया। अमितकीर्ति ने उसे पुरुरवा भील से लेकर मरीचि तथा स्थावर तक के जन्मों के विषय में बताया। अंत में कहा— "हे सिंह, नरक के दु:ख भोगनेवाला तू ही है। दु:खों से बचने के लिए तू जितेंद्र भगवान के वचन-रूपी औषधि का पान कर। अब तेरी एक मास की आयु शेष है। तू हिंसा छोड़ दे। तू भरत क्षेत्र का अंतिम तीर्थंकर होनेवाला है।" वे दोनों पुन: आकाशमार्ग से अपने अभीष्ट की ओर बढ़े। सिंह अपने कृत्यों पर दुखी हो खाना-पीना त्याग कर संन्यासी की तरह बैठ गया। हिंसा का परित्याग कर वह मृत्यु के बाद सौधर्मस्वर्ग में हरिध्वज देव हुआ। इसी प्रकार उत्तरोत्तर लिए विभिन्न जन्मों तथा दीक्षा के उपरांत प्राप्त विभिन्न स्वर्गों के विषय में जानकर राजा नंदन भावविभोर हो उठा। प्रोष्ठिल मुनि ने कहा— "सूर्यप्रभ देव का जीव ही स्वर्ग से च्युत होकर तेरे रूप में श्वेतातपत्रा नगरी का राजा हुआ है।"

राजा नंदन ने मुनि को प्रणाम कर दीक्षा ली। उसने बारह प्रकार के तप और प्रकृति के बंधनों का अमित चिंतन किया। अंत में समता भाव से शरीर त्यागकर उसने स्वर्ग के पुष्पोत्तर विमान में (देवेंद्र के रूप में) इहलोक से प्रस्थान किया।

व० च०, सर्ग १।६६-६८, २।६२-७०, ३।११, १६,

नंदिकेश्वर शिलाद मुनि शिव के भक्त थे। उन्होंने विकट तपस्या के उपरांत शिव से यह वर मांगा कि उन्हें अमर अयोनिज पुत्र की प्राप्ति हो। शिव ने कहा कि पूर्वकाल में उन्होंने ब्रह्मा से वादा किया था कि वे अवतार लेंगे, शिलाद मुनि के यहां जन्म लेकर वे दोनों ही वर पूरे कर पायेंगे। फलत: मुनि के यज्ञ से त्रिनेत्र, चतुर्भुज बालक प्रकट हुआ। उसने त्रिशूल, ठंक, गदा आदि धारण कर रखे थे। उस बालक का नाम नंदी रखा गया। मुनि उसके साथ घर की ओर चले। लीलावश उसने अपना पहला तन त्यागकर दूसरा शरीर धारण किया। ग्यारह वर्ष की आयु तक उसने विद्याध्ययन आदि किया। एक बार शिव की परीक्षा लेने के लिए मित्र और वरुण को मुनि के पास भेजा। उन्होंने बालक के बुद्धिमान होने की प्रशंसा करके आयु की क्षीणता बतायी। शिलाद मुनि उससे चिपटकर रोने लगे। शिव उनके वात्सल्य से प्रसन्न होकर प्रकट हुए तथा नंदी को अपनी माला, दस भुजाएं आदि प्रदान करके मुनि को बता गये कि वह (नंदी) उन्हीं (शिव ही) का अवतार है। नंदीश्वर का गणों

के स्वामी के रूप में अभिषेक किया गया, ।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध ७।११-१२।-

नंदिवर्धन श्वेतातपत्रा नामक सुंदर नगरी के राजा का नाम नंदिवर्धन था। उसकी पत्नी का नाम वीरवती तथा पुत्र का नाम नंदन था। एक बार राजा अपने मित्रों के साथ पर्यटन करता हुआ, एक वन में पहुंचा। वहां एक शिलापट्ट पर बैठे श्रुतसागर मुनि का धर्मोपदेश सुनकर राजा ने अपने राज्य का कार्यभार अपने पुत्र को सौंप दिया। एक दिन आकाश में छायी मेघ घटा को क्षीण होकर विलीन होते देख राजा के हृदय में वैराग्य जागृत हुआ। उसने पुत्र को राज्य सौंपकर विहितास्रव मुनि से दीक्षा ग्रहण की।

व० च०, सर्ग १-२

नकुल माद्री-पुत्र नकुल तथा सहदेव ने युद्ध में अपने मामा मद्रराज शल्य को परास्त किया था।

म० भा०, भीष्मवधपर्व, अध्याय ८३, श्लोक ४५-५७

नचिकेता वाजश्रवा (अन्न आदि के दान से जिनका यश हो) नामक ब्राह्मण के पुत्र का नाम नचिकेता था। वाजश्रवा ने एक बार अपना समस्त धन, गोधन इत्यादि दान कर डाला। यह देखकर उनके पुत्र नचिकेता ने उससे कई बार पूछा कि वह नचिकेता को किसे देंगे। वाजश्रवा ने खीजकर कहा कि यमराज को दे देंगे। नचिकेता अल्पायु में ही अत्यंत मेधावी था। यमलोक जाने पर उसे ज्ञात हुआ कि यमराज बाहर गये हुए हैं। तीन दिन की प्रतीक्षा के उपरांत यमराज लौटे। घर आये ब्राह्मण को तीन रात तथा तीन दिन प्रतीक्षा करनी पड़ी, यह जानकर यमराज ने प्रत्येक दिन के निमित्त एक वर मांगने को कहा।

नचिकेता ने प्रथम वर से अपने पिता के क्रोध का परिहार तथा वापस लौटने पर उनका वात्सल्यमय व्यवहार मांगा। दूसरे वर से अग्नि के स्वरूप को जानने की इच्छा प्रकट की। अग्नि के स्वरूप का विवेचन करके तथा नचिकेता के ज्ञान से प्रसन्न होकर यमराज ने उसे एक चौथा वर और प्रदान किया। नचिकेता ने तीसरे वर से मनुष्य जन्म, मरण तथा ब्रह्म को जानने की इच्छा प्रकट की। यमराज इसका उत्तर नहीं देना चाहते थे। उनके अनेक प्रलोभन देने पर भी नचिकेता मृत्यु के रहस्य को जानने का आग्रह नहीं छोड़ा। अंत में यमराज को 'मृत्यु' का रहस्योद्घाटन करते हुए ब्रह्म के स्वरूप, जन्म-मरण, विद्या, अविद्या तथा मृत्यु आदि के रहस्य का उद्घाटन करना पड़ा।

कठोपनिषद् (समस्त)

उद्दालक ऋषि के पुत्र का नाम नचिकेता था। एक बार उद्दालक ऋषि ने फलमूल इत्यादि खाद्य पदार्थ नदी के किनारे रखकर स्नान आदि किया और घर लौट आये। घर पहुंचकर उन्हें भूख लगी तो याद आया कि भोग्य सामग्री तो नदी के तट पर ही छोड़ आये हैं। अतः उन्होंने नचिकेता को वह सब उठा लाने के लिए भेजा। नचिकेता के पहुंचने के पूर्व ही नदी के जल में वे सब वस्तुएं बह चुकी थीं। अतः वह खाली हाथ घर लौट आया। उद्दालक भूख से आकुल थे। नचिकेता को खाली हाथ लौटे देख वे रुष्ट होकर बोले—"तू जा, यमराज को देख।" पिता को प्रणाम कर नचिकेता का शरीर जड़ हो गया। वह यमपुरी में पहुंचा। यमराज ने उसका स्वागत किया और कहा कि उसकी मृत्यु नहीं हुई है किंतु पिता का वचन मिथ्या न जाय, इसीसे उसे यहां आना पड़ा है। यमराज ने नचिकेता को अपनी नगरी में घुमाकर तथा गोदान का उपदेश देकर पुनः लौटा दिया। उद्दालक ऋषि अपनी वाणी के कारण मृत बालक को देखकर अत्यंत आकुल थे। उसे पुनः जीवित देखकर वे प्रसन्न हो उठे।

म० भा०, दानधर्मपर्व, अध्याय ७१

नमि-विनमि ऋषभदेव के पौत्र नमि-विनमि भोगों की आकांक्षा से भगवान के पास गये। उनके चरणों में प्रणाम करके वे लोग बैठ गये। इंद्र ने उन दोनों को तलवार धारण किये बैठे देखा तो पूछा कि सशस्त्र वे दोनों कौन हैं? उन्होंने अपना परिचय तथा वहां पहुंचने का उद्देश्य बताया। धरणेंद्र ने अनेक प्रकार की बल तथा समृद्धि की विधाएं उन्हें प्रदान कीं।

पउ० च०, ३।१४४-१५१

नमुचि असुर नमुचि ऋषियों के यज्ञ-भंग करता था। त्रस्त ऋषियों ने एक बार इंद्र का आह्वान किया। नमुचि मायावी था और शक्तिशाली भी। इंद्र ने नमुचि की माया नष्ट कर दी। तदुपरांत शक्ति का युद्ध रह गया। नमुचि अत्यधिक शक्तिशाली भी था। उसने युद्धक्षेत्र में इंद्र का सामना करना कठिन देखकर सुंदर स्त्रियों का आह्वान किया, किंतु इंद्र पर यह रूप की माया नहीं चल पायी। पुरंदर ने उन स्त्रियों को कैद करके सेना के पीछे भेज

दिया और स्वयं युद्ध में रत रहे। इंद्र ने जल की फेन मे नमुचि का मस्तक चूर्ण कर दिया। इस प्रकार मनु (प्रथम मानव अधिपति) के लिए देवताओं तक पहुंचने का मार्ग निष्कंटक हो गया।

ऋ० १।५३।७, २।१४।५, ५।३०।६-१०,
६।२०।६, ८।१४।१३, १०।७३।७

इंद्र ने नमुचि के मस्तक पर अपने पैर से प्रहार किया। वहां से एक राक्षस उत्पन्न हुआ। इंद्र ने नमुचि से वायदा किया था कि वह उसे न दिन में न रात में, न धनुष से, न घूंसे से मारेगा—इस कारण विषम परिस्थिति में भी इंद्र निष्क्रिय पड़ा रहा। देवता इंद्र की सहायता के लिए गये, तब तक नमुचि इंद्र की सुरा इत्यादि वस्तुएं उठा ले गया था। अश्विनीकुमारों तथा सरस्वती ने फेन का वज्र बनाकर इंद्र को दिया जिससे उसने नमुचि का सिर काट दिया।

श० ब्रा० ५।४।१।९, १२।७।१।१०,
१२।७।३।१, १२।८।१।३

प्राचीनकाल में एक बार दैत्यराज नमुचि राज्यलक्ष्मी से च्युत हो गया तो इंद्र उसके पास पहुंचा और उसको विगत वैभव की याद दिलाकर उद्वेलित करने लगा। नमुचि ने कहा कि सभी का भाग्य चक्षु निरंतर गतिशील है, अतः उसे अपनी परिस्थिति से कोई क्षोभ नहीं है। नमुचि इंद्र के भय से सूर्य की किरणों में समा गया। इंद्र ने उससे मित्रता कर ली तथा उसे आश्वासन दिया कि वह न दिन में न रात में, न सूखे अस्त्र से न गीले अस्त्र से ही उसे मारेगा। एक दिन सब ओर कुहासा देखकर इंद्र ने समुद्र की फेन से उसका सिर काट दिया। असुर श्रेष्ठ नमुचि का कटा हुआ सिर इंद्र के पीछे लग गया। वह जहां भी जाता, कटा हुआ सिर उससे कहता—"मित्रघाती पापात्मा इंद्र, तू कहां जाता है ?" बार-बार वही बात सुनकर इंद्र बहुत संतप्त हुआ तथा उसने ब्रह्मा के पास जाकर सारी कथा सुनाकर निराकरण पूछा। ब्रह्मा ने इंद्र से विधिपूर्वक यज्ञ करके अरुणा के जल में स्नान करने के लिए कहा। ऐसा करने से ही वह पाप-मुक्त हो पाया। अरुणा तथा सरस्वती का संगमस्थल पुण्यदायक तीर्थ माना जाता है।

म० भा०, शल्यपर्व, अध्याय ४३, श्लोक ३८-४५
शांतिपर्व, अ० २२५

नरकासुर एक बार नरकासुर ने घोर तपस्या की। वह इंद्र-पद प्राप्त करने के लिए उत्सुक था। इंद्र ने घबराकर विष्णु का स्मरण किया। विष्णु ने इंद्र के प्रेम के वशी-भूत होकर नरकासुर का हनन कर दिया।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय १४२, श्लोक १५ से २८ तक

इंद्र ने कृष्ण से कहा—"भौमासुर (नरकासुर) अनेक देवताओं का वध कर चुका है, कन्याओं का बलात्कार करता है। उसने अदिति के अमृतस्रावी दोनों दिव्य कुंडल ले लिये हैं, अब मेरा 'ऐरावत' भी लेना चाहता है। उससे उद्धार करो।" कृष्ण ने आश्वासन देकर नरका-सुर पर आक्रमण किया। सुदर्शन चक्र से उसके दो टुकड़े कर दिए, अनेक दैत्यों को मार डाला। भूमि ने प्रकट होकर कृष्ण से कहा—"जिस समय वराह रूप में आपने मेरा उद्धार किया था, तब आप ही के स्पर्श से यह पुत्र मुझे प्राप्त हुआ था। अब आपने स्वयं ही उसे मार डाला है। आप अदिति के कुंडल ले लीजिए, किंतु नरकासुर के वंश की रक्षा कीजिए।" कृष्ण ने युद्ध समाप्त कर दिया तथा कुंडल अदिति को लौटा दिये।

ब्र० पु०,२०२।-वि० पु०, ५।२९

नरजरेश्वर व्याघ्रपाद मुनि के पुत्र का नाम उपमुनि था। उपमुनि अपनी निर्धन मां माया के साथ रहता था। प्रिय भोज्य दुग्ध न मिलने पर उसने मां की प्रेरणा से शिव की तपस्या की। तीनों लोक तप्त होने लगे तो शिव इंद्र का रूप धरकर उसके पास पहुंचे और शिव की निंदा करने लगे। उपमुनि ने रुष्ट होकर उन्हें और अपने-आप-को मारने का प्रयास किया। शिव ने उसे तथा उसके कुल को पाप तथा मृत्यु के भय से मुक्त करके अपनी भक्ति प्रदान की।

शि० पु०, ७।४९

नर-नारायण एक बार गंधमादन पर्वत पर बैठे हुए ब्रह्मा ने अन्य देवताओं को बताया कि जो-जो दैत्य, दानव तथा राक्षस संग्रामभूमि में मारे गये थे; वे मनुष्य-लोक में उत्पन्न हुए हैं, वे बलवान हैं तथा शेष सृष्टि के लिए भयं-कर हैं। उन सबका नाश करने के लिए मनुष्य-योनि में जन्म लेकर नारायण नर के साथ भूलोक में विचरण करेंगे। उनको लोग साधारण मनुष्य समझकर सीमित शक्तिवाला समझते रहेंगे, किंतु वास्तव में उनपर विजय प्राप्त करना असंभव होगा। हर युग में पाप के शमन के लिए वे जन्म लेते हैं—महाभारतकाल में वे ही कृष्ण तथा अर्जुन के रूप में प्रादुर्भूत हुए।

म० भा०, भीष्मवधपर्व, अध्याय ६५, श्लोक ४२-७५
भीष्मवधपर्व, अध्याय ६६,

ब्रह्मा के हृदय से धर्म उत्पन्न हुआ। दक्ष की कन्याओं से विवाह होने पर उसके हरि, कृष्ण, नर और नारायण नामक चार पुत्र हुए। हरि और कृष्ण योगाभ्यास करते थे तथा नर और नारायण ने तपस्या आरंभ की। उनकी तपस्या से भयभीत होकर इंद्र ने कभी वरदान देने के बहाने से, कभी कामदेव, अप्सराओं, बसंत आदि को भेजकर तपोभंग करने का प्रयास किया। उसकी प्रवंचना को जानकर नारायण ने अपने हृदय से उर्वशी आदि वारांगनाओं को उत्पन्न किया, जिन्होंने सभी अप्सराओं का आतिथ्य किया। उर्वशी आदि उन सबसे कहीं अधिक सुंदर थी। अप्सराओं ने इंद्र के भेजने का कारण बताकर क्षमा मांगी और नारायण से सेवा पूछी। नारायण सोचने लगे कि अहंकार के कारण ही उन्होंने उर्वशी आदि को जन्म दिया। अपने तप का अंश भी नष्ट किया तथा यह अहंकार ही संसार-रूपी वृक्ष की जड़ है। नर ने अपने बड़े भाई चिंतातुर नारायण को शांत भाव का अवलंबन लेने को कहा। नारायण ने अप्सराओं से कहा—"अभी हम तपस्वी हैं। कालांतर में पृथ्वी पर अवतरित होंगे, तब तुम सब भिन्न-भिन्न राजगृहों में जन्म लेकर हमारी पत्नियां बनोगी।" वे सब भी स्वर्ग की ओर चली गयीं।

दे० भा०, ४।५

नरांतक-वध राक्षस प्रेषित योद्धा नरांतक का वध अंगद के द्वारा हुआ था।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ७०
श्लोक ८६-६७

नरिष्यंत मरुत के अठारह पुत्रों में से नरिष्यंत सबसे बड़ा था। मरुत के उपरांत उसीने राज्य ग्रहण किया। राज्याभिषेक के उपरांत वह सोचने लगा कि उसके कुल की परंपरा यज्ञ-संपादन, वीरत्व तथा धर्म से युक्त रही है। इसको बनाए रखकर भी कुछ अनुपम कार्य करना चाहिए। फलतः उसने ऐसा यज्ञ किया कि जिससे ब्राह्मणों के पास इतना धन, अन्न, वैभव हो गया कि दूसरा यज्ञ करने के लिए पुरोहित ही नहीं मिले, ; क्योंकि समस्त ब्राह्मण उसके दिये धन से अपना ही यज्ञ कर रहे थे। दूसरे यज्ञ के समय ब्राह्मणों में ही अनेक यजमान थे, शेष उनके पुरोहित का कार्य कर रहे थे। नरिष्यंत के पुत्र का नाम दम था। वह अपनी माता इंद्रसेना के गर्भ में नौ वर्ष तक रहा था। चारुवर्मा की कन्या सुमना ने स्वयंवर में उसका वरण कर लिया था। शेष जितने राजा वहां गये थे, वे इस बात से रुष्ट हो गये। उनमें से कुछ ने विचार किया कि या तो सुमना को बलपूर्वक छीन लें अथवा दम को मार डालें। ऐसे राजाओं में मुख्यतः महानंद, वपुष्मान् तथा महाधनु थे। उन तीनों ने बलात् सुमना का हरण कर लिया। दम का उनके साथ युद्ध हुआ। युद्ध में दम के हाथों महानंद मारा गया, वपुष्मान् घायल हो गया, शेष सब भाग गये। चारुवर्मा ने अपनी कन्या का विवाह दम से कर दिया। नरिष्यंत के वनगमन के उपरांत दम न्यायपूर्वक राज्य करता रहा। एक बार वपुष्मान् शिकार खेलता हुआ वन गया। वहां नरिष्यंत तथा उसकी पत्नी इंद्रसेना तपस्वी-वेश में मिले। नरिष्यंत ने मौन रखा हुआ था। इंद्रसेना से परिचय पाकर उसे अपनी पूर्व शत्रुता स्मरण हो आयी, अतः पुत्र का बदला पिता से लेते हुए उसने नरिष्यत की जटा पकड़कर तलवार से उसका वध कर दिया। एक शूद्र तपस्वी के द्वारा इंद्रसेना से इसका समाचार राजा दम तक पहुंचा। दम ने वपुष्मान पर चढ़ाई कर दी। उसके सैनिक, मंत्री, सेनापति आदि को मारकर उसने वपुष्मान् की शिखा पकड़कर तलवार से उसका वध कर दिया। दम ने उसके मांस द्वारा पितृपिंड प्रदान किया, क्योंकि पिता के वध का समाचार जानकर उसने ऐसा करने का प्रण किया था।

मा० पु०, १२६-१३१

नल (क) निषध के राजा वीरसेन के पुत्र का नाम नल था। उन्हीं दिनों विदर्भ देश पर भीम नामक राजा राज्य करता था। उनके प्रयत्नों के उपरांत दमन नामक ब्रह्मर्षि को प्रसन्न कर उसे तीन पुत्र (दम, दान्त तथा दमन) और एक कन्या (दमयंती) की प्राप्ति हुई। दमयंती तथा नल अतीव सुंदर थे। एक-दूसरे की प्रशंसा सुनकर बिना देखे ही वे परस्पर प्रेम करने लगे। नल ने एक हंस से अपना प्रेम-संदेश दमयंती तक पहुंचाया, प्रत्युत्तर में दमयंती ने भी नल के प्रति वैसे ही उद्गार भिजवाए। कालांतर में दमयंती के स्वयंवर का आयोजन हुआ। .इंद्र, वरुण, अग्नि तथा यम, ये चारों भी उसे प्राप्त करने के लिए इच्छुक थे। इन्होंने भूलोक में नल को अपना दूत बनाया। नल के यह बताने पर भी कि वह दमयंती से प्रेम करता है, उन्होंने उसे दूत बनने के लिए बाध्य कर दिया। दमयंती ने जब नल का परिचय

प्राप्त किया तो स्पष्ट कहा—"आप उन चारों देवताओं को मेरा प्रणाम कहिएगा, किंतु स्वयंवर में वरण तो मैं आपका ही करूंगी।" स्वयंवर के समय उन चारों लोकपालों ने नल का ही रूप धारण कर लिया। दमयंती विचित्र परिस्थिति में फंस गयी। उसके लिए नल को पहचानना असंभव हो गया। देवताओं को मन-ही-मन प्रणाम कर उसने नल को पहचानने की शक्ति मांगी। दमयंती ने देखा कि एक ही रूप के पांच युवकों में से चार को पसीना नहीं आ रहा, उनकी पुष्पमालाएं एकदम खिली हुई दिखलायी पड़ रही हैं, वे धूल-कणों से रहित हैं तथा उनके पांव पृथ्वी का स्पर्श नहीं कर रहे। दमयंती ने पांचवें व्यक्ति को राजा नल पहचानकर उसका वरण कर लिया। लोकपालों ने प्रसन्न होकर नल को आठ वरदान दिये—(१) इंद्र ने वर दिया कि नल को यज्ञ में प्रत्यक्ष दर्शन देंगे, तथा (२) सर्वोत्तम गति प्रदान करेंगे। अग्नि ने वर दिये कि (३) वे नल को अपने समान तेजस्वी लोक प्रदान करेंगे तथा (४) नल जहां चाहे, वे प्रकट हो जायेंगे। यमराज ने (५) पाकशास्त्र में निपुणता तथा (६) धर्म में निष्ठा के वर दिये। वरुण ने (७) नल की इच्छानुसार जल के प्रकट होने तथा (८) उसकी मालाओं में उत्तम गंध-संपन्नता के वर दिये।

देवतागण जब देवलोक की ओर जा रहे थे तब मार्ग में उन्हें कलि और द्वापर साथ-साथ जाते हुए मिले। वे लोग भी दमयंती के स्वयंवर में सम्मिलित होना चाहते थे। इंद्र से स्वयंवर में नल के वरण की बात सुनकर कलियुग क्रुद्ध हो उठा, उसने नल को दंड देने के विचार से उसमें प्रवेश करने का निश्चय किया। उसने द्वापर से कहा कि वह जुए के पासे में निवास करके उसकी सहायता करे।

कालांतर में नल दमयंती की दो संतानें हुई। पुत्र का नाम इंद्रसेन था तथा पुत्री का इंद्रसेनी। कलि ने सुअवसर देखकर नल के शरीर में प्रवेश किया तथा दूसरा रूप धारण करके वह पुष्कर के पास गया। पुष्कर नल का भाई लगता था। उसे कलि ने उकसाया कि वह जुए में नल को हराकर समस्त राज्य प्राप्त कर ले। पुष्कर नल के महल में उससे जुआ खेलने लगा। नल ने अपना समस्त वैभव, राज्य इत्यादि जुए पर लगाकर हार दिया। दमयंती ने अपने सारथी को बुलाकर दोनों बच्चों को अपने भाई-बंधुओं के पास कुंडिनपुर (विदर्भ देश में) भेज दिया। नल और दमयंती एक-एक वस्त्र में राज्य की सीमा से बाहर चले गये। वे एक जंगल में पहुंचे। वहां बहुत-सी सुंदर चिड़ियां बैठी थीं, जिनकी आंखें सोने की थीं। नल ने अपना वस्त्र उतारकर उन चिड़ियों पर डाल दिया ताकि उन्हें पकड़कर उदराग्नि को तृप्त कर सके और उनकी आंखों के स्वर्ण से धनराशि का संचय करे, किंतु चिड़ियां उस धोती को ले उड़ीं तथा यह भी कहती गयीं कि वे जुए के पासे थे जिन्होंने चिड़ियों का रूप धारण कर रखा था तथा वे धोती लेने की इच्छा से ही वहां पहुंची थीं। नग्न नल अत्यंत व्याकुल हो उठा। बहुत थक जाने के कारण जब दमयंती को नींद आ गयी तब नल ने उसकी साड़ी का आधा भाग काटकर धारण कर लिया और उसे जंगल में छोड़कर चला गया। भटकती हुई दमयंती को एक अजगर ने पकड़ लिया। उसका विलाप सुनकर किसी व्याध ने अजगर से तो उसकी प्राणरक्षा कर दी किंतु कामुकता से उसकी ओर बढ़ा। दमयंती ने देवताओं का स्मरण कर कहा, कि यदि वह पतिव्रता है तो उसकी सुरक्षा हो जाय। वह व्याध तत्काल भस्म होकर निष्प्राण हो गया। थोड़ी दूर चलने पर दमयंती को एक आश्रम दिखलायी पड़ा। दमयंती ने वहां के तपस्वियों से अपनी दुःखगाथा कह सुनायी और उनसे पूछा कि उन्होंने नल को कहीं देखा तो नहीं है। वे तपस्वी ज्ञानवृद्ध थे। उन्होंने उसके भावी सुनहरे भविष्य के विषय में बताते हुए कहा कि नल अवश्य ही अपना राज्य फिर से प्राप्त कर लेगा और दमयंती भी उससे शीघ्र ही मिल जायेगी। भविष्यवाणी के उपरांत दमयंती देखती ही रह गयी कि वह आश्रम, तपस्वी, नदी, पेड़, सभी अंतर्धान हो गये। तदनंतर उसे शुचि नामक व्यापारी के नेतृत्व में जाती हुई एक व्यापार मंडली मिली। वे लोग चेदिराज सुबाहु के जनपद की ओर जा रहे थे। कृपाकांक्षिणी दमयंती को भी वे लोग अपने साथ ले चले। मार्ग में जंगली हाथियों ने उनपर आक्रमण कर दिया। धन, वैभव, जन आदि सभी प्रकार का नाश हुआ। कई लोगों का मत था कि दमयंती नारी के रूप में कोई मायावी राक्षसी अथवा यक्षिणी रही होगी, उसीकी माया से यह सब हुआ। उनके मन्तव्य को जानकर दमयंती का दुःख द्विगुणित हो गया। सुबाहु की राजधानी में भी लोगों ने उसे उन्मत्त समझा क्योंकि वह

कितने ही दिनों से बिखरे बाल, धूल से मंडित तन तथा आधी साड़ी में लिपटी देह लिए घूम रही थी। अपने पति की खोज में उसकी दयनीय स्थिति जानकर राजमाता ने उसे आश्रय दिया। दमयंती ने राजमाता से कहा कि वह उनके आश्रय में किन्हीं शर्तों पर रह सकेगी: वह जूठन नही खायेंगी, किसी के पैर नहीं धोयेगी, ब्राह्मण से इतर पुरुषों से बात नहीं करेगी, कोई उसे प्राप्त करने का प्रयत्न करे तो वह दंडनीय होगा। दमयंती ने अपना तथा नल का नामोल्लेख नहीं किया। वहां की राजकुमारी सुनंदा की सखी के रूप में वह वहां रहने लगी। दमयंती के माता-पिता तथा बंधु-बांधव उसे तथा नल को ढूंढ़ निकालने के लिए आतुर थे। उन्होंने अनेक ब्राह्मणों को यह कार्य सौंपा हुआ था। दमयंती के भाई के मित्र सुदैव नामक ब्राह्मण ने उसे खोज निकाला। सुदैव ने उसके पिता आदि के विषय में बताकर राजमाता को दमयंती का वास्तविक परिचय दिया। राजमाता उसकी मौसी थी किंतु वे परस्पर पहचान नहीं पायी थीं। दमयंती मौसी की आज्ञा लेकर विदर्भनिवासी बंधु-बांधवों, माता-पिता तथा अपने बच्चों के पास चली गयी। उसके पिता नल की खोज के लिए आकुल हो उठे।

दमयंती को छोड़कर जाते हुए नल ने दावानल में घिरे हुए किसी प्राणी का आर्तनाद सुना। वह निर्भीकतापूर्वक अग्नि में घुस गया। अग्नि के मध्य कर्कोटक नामक नाग बैठा था, जिसे नारद ने तब तक जड़वत निश्चेष्ट पड़े रहने का शाप दिया था जब तक राजा नल उसका उद्धार न करे। नाग ने एक अंगूठे के बराबर रूप धारण कर लिया और अग्नि से बाहर निकालने का अनुरोध किया। नल ने उसकी रक्षा की, तदुपरांत कर्कोटक ने नल को डंस लिया, जिससे उसका रंग काला पड़ गया। उसने राजा को बताया कि उसके शरीर में कलि निवास कर रहा है, उसके दु:ख का अंत कर्कोटक के विष से ही संभव है। दु:ख के दिनों में श्यामवर्ण प्राप्त राजा को लोग पहचान नहीं पायेंगे। अत: उसने आदेश दिया कि नल बाहुक नाम धर कर इक्ष्वाकुकुल के ऋतुपर्ण नामक अयोध्या के राजा के पास जाये। राजा को अश्वविद्या का रहस्य सिखाकर उससे द्यूतक्रीड़ा का रहस्य सीख ले। राजा नल को सर्प ने यह वर दिया कि उसे कोई भी दाढ़ीवाला जंतु तथा वेदवेत्ताओं का शाप त्रस्त नहीं कर पायेगा। सर्प ने उसे दो दिव्य वस्त्र भी दिये जिन्हें ओढ़कर वह पूर्व रूप धारण कर सकता था। तदनंतर कर्कोटक अंतर्धान हो गया। नल ऋतुपर्ण के यहां गया तथा उसने राजा से निवेदन किया कि उसका नाम बाहुक है और वह पाकशास्त्र, अश्वविद्या तथा विभिन्न शिल्पों का ज्ञाता है। राजा ने उसे अश्वाध्यक्ष के पद पर नियुक्त कर लिया। विदर्भराज का पर्णाद नामक ब्राह्मण नल को खोजता हुआ अयोध्या में पहुंचा। विदर्भ देश में लौटकर उसने बताया कि बाहुक नामक सारथी का क्रियाकलाप संदेहास्पद है। वह नल से बहुत मिलता है। दमयंती ने पिता से गोपन रखते हुए मां की अनुमति से सुदेव नामक ब्राह्मण के द्वारा ऋतुपर्ण को कहलाया कि अगले दिन दमयंती का दूसरा स्वयंवर है। अत: वह पहुंचे। ऋतुपर्ण ने बाहुक से सलाह करके विदर्भ देश के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में राजा ने बाहुक से कहा कि अमुक पेड़ पर अमुक संख्यक फल हैं। बाहुक वचन की शुद्धता जानने के लिए पेड़ के पास रुक गया तथा उसके समस्त फल गिनकर उसने देखा कि वस्तुत: उतने ही फल हैं। राजा ने बताया कि वह गणित और द्यूत-विद्या के रहस्य को जानता है। ऋतुपर्ण ने बाहुक को द्यूत विद्या सिखा दी तथा उसके बदले में अश्व-विद्या उसी के पास धरोहर रूप में रहने दी। बाहुक के द्यूत विद्या सीखते ही उसके शरीर से कलियुग निकलकर बहेड़े के पेड़ में छिप गया, फिर क्षमा मांगता हुआ अपने घर चला गया। विदर्भ देश में स्वयंवर के कोई चिह्न नहीं थे। ऋतुपर्ण तो विश्राम करने चला गया किंतु दमयंती ने केशिनी के माध्यम से बाहुक की परीक्षा ली। वह स्वेच्छा से जल तथा अग्नि को प्रकट कर सकता था। उसके चलाये रथ की गति वैसी ही थी जैसे राजा नल की हुआ करती थी। बाहुक अपने बच्चों से मिलकर खूब रोया भी था। दमयंती को रूप के अतिरिक्त किसी भी वस्तु में बाहुक तथा नल में विषमता नहीं दीख पड़ रही थी। उसने गुरुजनों की आज्ञा लेकर उसे अपने कक्ष में बुलाया। नल को भली भांति पहचानकर दमयंती ने उसे बताया कि नल को ढूंढ़ने के लिए ही दूसरे स्वयंवर की चर्चा की गयी थी। ऋतुपर्ण को अश्व-विद्या देकर नल ने पुष्कर से पुन: जुआ खेला। उसने दमयंती तथा धन की बाजी लगा दी। पुष्कर संपूर्ण धन-धान्य और राज्य हारकर अपने नगर चला

गया। नल ने पुन: अपना राज्य प्राप्त किया।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय ५३ से ७८ तक

(ख) दक्षिण में समुद्र के किनारे पहुंचकर राम ने समुद्र की आराधना की। प्रसन्न होकर वरुणालय ने सगरपुत्रों से संबंधित होकर अपने को इक्ष्वाकुवंशीय बतलाकर राम की सहायता करने का वचन दिया। उसने कहा—"सेना में नल नामक विश्वकर्मा का पुत्र है। वह अपने हाथ से मेरे जल में जो कुछ भी छोड़ेगा वह तैरता रहेगा, डूबेगा नहीं।" इस प्रकार समुद्र पर पुल बना जो नलसेतु नाम से विख्यात है।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय २८३,
श्लोक २४ से ४५ तक

नलकूबर रावण अष्टापद पर्वत पर गया था। यह विदित होने पर नलकूबर ने रावण के पास संदेश भेजा कि वह दुर्लंघ्यपुर में पहुंचकर नलकूबर से मिले। रावण ने स्वीकार कर लिया। दुर्लंघ्यपुर में नलकूबर ने युद्ध की तैयारी कर रखी थी किंतु उसकी पत्नी उपरंभा रावण पर आसक्त थी। उसने रावण को 'आशालिका' विद्या प्रदान की जिससे उसने नलकूबर को परास्त कर दिया किंतु उपरंभा की प्रेमाभिव्यक्ति के उत्तर में कहा—"तुम तो मेरी गुरु हो, क्योंकि तुमने मुझे आशालिका विद्या दी थी। तुम विलास का साधन हो ही कैसे सकती हो?"

पउ० च०, १२।३६-७२

नल-नील राम-रावण-युद्ध में नल-नील ने हस्त तथा प्रहस्त नामक महासुभटों का वध किया था क्योंकि उन लोगों की शत्रुता पूर्वजन्म से चली आ रही थी।

पउ० च०, ५८।-

नहुष नहुष चंद्रवंशी पांडवों का पूर्वज था। उसने अपनी तपस्या के बल से इंद्र का स्थान प्राप्त किया था। इंद्र वृत्रासुर तथा त्रिशिरा के वध करके विश्वासघात और ब्रह्महत्या के कारण जल में जा छिपा था। देवताओं ने नहुष को आश्वासन दिया था कि उसके सम्मुख जो भी पड़ेगा—उसका बल नहुष प्राप्त कर लेगा। इंद्र-पद प्राप्त करके नहुष का मद अत्यधिक बढ़ गया। वह कामासक्त हो गया। उसने पूर्व इंद्र की पत्नी शची को अपनी सेवा में उपस्थित होने का आदेश दिया। शची ने बृहस्पति की शरण ली। नहुष के उसे बार-बार बुलवाने पर बृहस्पति ने उसे कुछ अवधि मांगने की सलाह दी। शची ने नहुष से जाकर कहा—"हे देव, मैं इंद्र का पता चला लूं, यदि कुछ समय तक नहीं पता चला तो आत्मसमर्पण कर दूंगी।" नहुष ने यह मान लिया। देवताओं ने अश्वमेध का विधान कर इंद्र को पाप-मुक्त कर दिया। इंद्र ने समस्त ब्रह्महत्या का वितरण पृथ्वी, समुद्र, वृक्ष तथा स्त्री समूह में कर दिया। नहुष के अमित तेज को देख इंद्र पुन: जा छिपा। इंद्राणी शची ने उपश्रुति देवी की सहायता से एक दिव्य सरोवर में स्थित कमल की नाल से इंद्र को खोज निकाला। इंद्र ने शची से कहा कि नहुष को नष्ट करने के लिए युक्ति से काम लेना पड़ेगा। अत: शची को आदेश दिया कि वह नहुष से कहे कि शची का उससे मिलन तभी संभव है जब वह सप्तर्षियों तथा ब्रह्मर्षियों से अपनी शिविका का वहन करवाये। साथ ही इंद्र ने कहा कि वह अपने और इंद्र के मिलने को गुप्त रखे। शची के कहने पर नहुष अपनी पालकी देवर्षियों से उठवाने लगा। वेद विषयक मतवैभिन्न्य के कारण एक बार क्रोध में आकर उसने अगस्त्य मुनि के मस्तक पर अपनी लात से प्रहार किया। अगस्त्य मुनि उसकी पालकी वहन करनेवालों में थे। उन्होंने उसे शाप दिया कि वह सर्प होकर भूतल पर गिर जाय। नहुष के अनुनय-विनय पर उन्होंने कहा कि भविष्य में उसके पापों के क्षीण होने पर जब युधिष्ठिर उसके प्रश्नों का उत्तर देंगे तदुपरांत वह पुन: अपना स्थान प्राप्त करेगा। नहुष सर्प के रूप में जंगल की एक गुफा में रहने लगा। दिन के छठे प्रहर जो कोई भी उसके निकट आता, उसे वह अपना आहार बना लेता। एक दिन ऐसे ही समय उसने भीमसेन को पकड़ लिया। भीम का समस्त बल जवाब दे गया। वह तरह-तरह से सर्प को मनाने का प्रयत्न कर रहा था कि तभी युधिष्ठिर भीम को ढूंढ़ते हुए वहां पहुंचे। सर्प के समस्त प्रश्नों का समाधान कर उन्होंने सर्प को शापमुक्त कर दिया तथा भीम को सर्प-पाशमुक्त।

उधर बृहस्पति ने अग्नि के द्वारा पूर्व इंद्र को खोज निकाला, जो नहुष के पतन के पश्चात् पुन: अपने पद पर आसीन हुआ।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय १७८ से १८१ तक
दानधर्मपर्व, अध्याय ९९-१००
उद्योगपर्व, अध्याय ११ से १७ तक

इंद्र वृत्रासुर का छलपूर्वक हनन करने के उपरांत तेजहीन हो गया। वह ब्रह्महत्या की लज्जा के कारण कमल की

नाल में जा छुपा। राज्य में अराजकता हो जाने के कारण देवताओं ने नहुष को इंद्रासन पर बैठा दिया। नहुष ने इंद्राणी का भोग करने की इच्छा प्रकट की। बृहस्पति की मंत्रणा से इंद्राणी ने कहा कि जब तक इंद्र के होने की संभावना शेष है, वह नहुष के सम्मुख आत्म-समर्पण नहीं करेगी। तदनंतर नाल स्थित इंद्र से मिलकर देवताओं ने सब कुछ कह सुनाया। विष्णु ने समस्त देवताओं के सम्मुख इंद्र से कहा कि वह अश्वमेध यज्ञ से ब्रह्महत्या का पाप नष्ट करके अंबिकादेवी को प्रसन्न करे। इंद्र ने वैसा ही किया किंतु उपयुक्त समय की प्रतीक्षा में कमल की नाल में ही वास करता रहा। कालांतर में नहुष ने इंद्राणी को पुनः बुलाया। इंद्राणी ने भी गुरुमंत्र पाकर देवी को प्रसन्न कर लिया था। उसने देवी से वर प्राप्त किये थे कि वह इंद्र के दर्शन कर पायेगी तथा इंद्र को पुनः उसका राज्य प्राप्त होगा। इंद्राणी ने इंद्र से सलाह करके नहुष से कहा कि वह इस शर्त पर उससे मिलने के लिए तैयार है कि वह (नहुष) ऋषियों से वाहित पालकी पर बैठकर इंद्राणी के पास आये। मदमस्त नहुष ने तपस्वियों एवं ऋषियों से अपनी पालकी उठवायी। रास्ते में तपस्वियों में श्रेष्ठ लोपामुद्रा के पति वातापी को कोड़ा मारा तथा सर्प-सर्प (जल्दी चलो) कहा। क्रुद्ध होकर मुनि ने उसे सर्प होकर पृथ्वी पर पतित होने का शाप दिया। ऐसा होने पर देवी के प्रसाद से इंद्र को पुनः अपना राज्य प्राप्त हुआ।

दे० भा०, ६।७-६

नागतीर्थ शूरसेन नामक राजा ने महान प्रयत्नों के उपरांत एक पुत्र प्राप्त किया। वह एक विशाल सर्प था, किंतु मानव-भाषा बोलता था। उसने राजा से कहकर वेदाध्ययन किया, राजोचित धनुर्विद्या सीखी और फिर विवाह के लिए इच्छा प्रकट की। राजा ने पुत्र के सर्प होने की बात सबसे छुपा रखी थी। वह धर्मसंकट में पड़ गया। मंत्रियों को बुलाकर उसने अच्छी कन्या ढूंढ़ने की आज्ञा दी। एक वृद्ध मंत्री ने राजा का अभि-प्राय जानकर राजा विजय की कन्या भोगवती से उसकी अनुपस्थिति में ही उसका विवाह कर दिया और बहू को अपने राज्य में ले आये। इस प्रकार का विवाह भी क्षत्रियों में वैधानिक था। कालांतर में भोगवती ने अपने पति का साक्षात्कार किया; किंतु वह विचलित नहीं हुई। उसकी सहजता से नाग को आद्य स्मृति हो आयी। पूर्वकाल में वह शेषनाग का पुत्र था तथा शिव की बांह पर रहता था। भोगवती ही उसकी पत्नी थी। शिव पार्वती की वार्ता में उसके हंसने पर शिव ने रुष्ट होकर उसे मानव-कुल में सर्प होने का शाप दिया था। फिर यह भी कहा था कि गौतमी में स्नान करके वह दिव्य मानव रूप प्राप्त करेगा। भोगवती उसके साथ गौतमी में स्नान करने गयी। तदनंतर वह दिव्य सुंदर राजा हो गया। जहां उन्होंने स्नान किया, वह स्थान नागतीर्थ नाम से विख्यात है।

ब्र० पु०, १११।-

नागधन्वा नागधन्वा नामक तीर्थ सरस्वती के दक्षिण तट पर विद्यमान है। वहां वासुकि का अनेक सर्पो से घिरा हुआ स्थान है। वहां चौदह हजार ऋषि सदैव निवास करते हैं। उसी स्थान पर देवताओं ने सर्पों में श्रेष्ठ वासुकि को राजा के पद पर अभिषिक्त किया था।

म० भा०, शल्यपर्व, अध्याय ३७, श्लोक २८-३४

नाभाग (क) ऐतरेय ब्राह्मण में कथा निम्नलिखित ही है, किंतु नाभाग के स्थान पर मनुपुत्र नाभुमानेदिष्ट का उल्लेख है (ऐ० ब्रा० ५।१४)। नाम की भिन्नता के अतिरिक्त समस्त कथा यही है।

मनु-पुत्र नभग का पुत्र नाभाग था। उसके दो बड़े भाई थे। वह दीर्घकाल तक ब्रह्मचर्य का पालन करके लौटा तो उसके भाइयों ने समस्त संपत्ति परस्पर बांट ली तथा उसके हिस्से में केवल उसके पिता को दे दिया। नभग ने उसे अंगिरस गोत्री ब्राह्मणों को दो सूक्त बता आने के लिए भेजा, क्योंकि वे बार-बार अशुद्धि कर देते थे। नभग ने यह भी कहा कि स्वर्ग जाते हुए वे लोग बचा हुआ धन उसे दे जायेंगे। ऐसा ही हुआ। जब वह धन लेने लगा तब उत्तर दिशा से एक काले रंग के पुरुष ने प्रकट होकर वह समस्त धन अपना बतलाया। नाभाग ने अपने पिता से पूछा तो उन्होंने कहा—"दक्ष प्रजापति के यज्ञ में यह निश्चय हो गया था कि यज्ञ के उपरांत जो कुछ बचता है, वह रुद्र का हिस्सा होता है, अतः वह धन उन्हीं का है। नाभाग ने उस काले वर्ण के पुरुष से क्षमा-याचना करके पिता का कथन कह सुनाया। रुद्र ने प्रसन्न होकर वह धन तो उसे दे ही दिया, साथ ही ब्रह्मतत्त्व का भी ज्ञान दे दिया।

श्रीमद् भा०, नवम स्कंध, अध्याय ४, श्लोक १-११

(ख) दिष्ट नामक राजा के पुत्र का नाम नाभाग

था। उसको एक वैश्य कन्या सुप्रभा से प्रेम हो गया। उसने वैश्य से कन्या मांगी तो वैश्य ने कहा कि पहले वह अपने पिता की आज्ञा ले। इस विषय में उसका संकोच जानकर वैश्य स्वयं राजा के पास पहुंचा। राजा ने कहा कि पहले राजकुल की कन्या से विवाह करके फिर उसका वरण करेगा तो किसी प्रकार का दोष नहीं होगा किंतु राजकुमार ने पिता की बात नहीं मानी। उसने कन्या का अपहरण कर लिया और कहा कि वह राक्षस-विवाह करेगा। राजा ने अपनी सेना को उसपर आक्रमण करने का आदेश दिया। तभी आकाश से परिव्राट् मुनि प्रकट हुए। उन्होंने युद्ध की समाप्ति करवाकर कहा कि नाभाग वैश्य कन्या से विवाह करके स्वयं भी वैश्य हो गया है, युद्ध का अधिकारी नहीं रहा। तदनंतर अपने राज्य के मुनियों के आदेशानुसार नाभाग ने वैश्योचित पशुपालन, कृषि तथा वाणिज्य धर्म का संपादन किया। कालांतर में उसका एक पुत्र हुआ जिसका नाम भलंदन रखा गया। बड़े होने पर भलंदन ने राजर्षिव नीप से जाकर कहा—"मां मुझे गोपाल बनाना चाहती है किंतु मैं पृथ्वी का पालन करना चाहता हूं।" राजर्षि नीप ने उसे अस्त्र-शस्त्र विद्या प्रदान की। नीप की आज्ञा लेकर उसने पैतामहिक राज्य में आधा अंश मांगा। उन्होंने उसे वैश्य कहकर राज्यांश नहीं दिया तो उसने अपने बाहुबल से राज्य प्राप्त करके अपने पिता नाभाग के चरणों में अर्पित किया। पिता ने राज्य ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया क्योंकि उसके पिता की इसमें असहमति थी। दिष्ट ने कहा था कि वैश्य कन्या से विवाह करके वह वैश्य हो गया। नाभाग ने भलंदन से कहा कि वह स्वयं राज्य करे अथवा ज्ञातिगणों को दे दे। यह सुनकर भलंदन की मां सुप्रभा ने नाभाग से कहा—"न आप वैश्य हैं, न मैं। हम दोनों ही शापित थे कि कुछ समय के लिए वैश्य रूप धारण करेंगे। पूर्वजन्म की बात है, सुदेव नामक राजा अपने मित्र नल तथा अपनी रानियों के साथ वन में विहार कर रहे थे। नल ने महर्षि प्रभृति की पत्नी मनोरमा का हरण कर लिया। महर्षि ने राजा से उसकी रक्षा करने को कहा तो मित्र को बचाने के निमित्त उसने कह दिया, "मैं तो वैश्य हूं।" महर्षि प्रभृति के शाप से नल भस्म हो गया। प्रभृति ने राजा सुदेव को शाप दिया कि वह वैश्य बन जाये। जब उसकी कन्या का कोई अपहरण करे तब ही वह फिर से क्षत्रिय हो जाये। अतः मेरे अपहरण तक ही मेरे पिता वैश्य थे। पूर्वजन्म में मेरी सखियों से रुष्ट होकर अगस्त्य मुनि के भाई ने मुझे कुछ समय के लिए वैश्य की पुत्री होने का शाप दिया था। राज्य-भोग में यह शापजनित बाधा थी, अब निःशेष हो गयी है। अपने पुत्र के राज्य-लाभ करने के उपरांत मुनि ने मेरा पुनः क्षत्रिय होना बताया था।" पत्नी की बात सुनकर भी नाभाग ने राज्य लेना स्वीकार नहीं किया, अतः भलंदन ने राज्य संभाल लिया।

भा० पु०, ११०-११३।

नाभिकुलकर नाभिकुलकर की पत्नी का नाम मरुदेवी था। इंद्र की आज्ञा के अनुसार उसकी सेवा में ही श्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि एवं लक्ष्य नाम की देवियां रहती थीं। एक बार स्वप्न में उसने श्वेत वृषभ, श्वेत गज, ध्वजा, कलश आदि विभिन्न संपदासूचक वस्तुओं के दर्शन किये। नाभिकुलकर ने कहा कि निश्चय ही उसके गर्भ से जिनेश्वर जन्म लेनेवाले हैं। कालांतर में उसे एक पुत्र की प्राप्ति हुई। इंद्र का सेनापति 'हरिनेगमैषी' माता के पास एक कृत्रिम बालक रखकर उसे मेरु पर्वत पर ले गया। 'पांडुकंबल' नामक दीप्तिमती शिला पर बैठाकर इंद्र ने उस बालक का अभिषेक किया। तदुपरांत आभूषणों से सुसज्जित करके हरिनेगमैषी ने बालक को उसकी माता के पास पहुंचा दिया, क्योंकि स्वप्न में सुसज्जित वृषभ माता की कोख में प्रविष्ट हुआ था, अतः उस (जिनेश्वर) बालक का नाम ऋषभ रखा गया।

पउ० च०, ३।२७-१०६

नाभुमानेदिष्ट मनु का पुत्र नाभुमानेदिष्ट वेद पढ़ने गुरुकुल गया तो पीछे भाइयों ने सारी जायदाद परस्पर बांट ली। लौटने पर सबने पिता के पास जाने की सीख दी। पिता ने बताया कि उसके पास तो कुछ बचा नहीं है। मनु ने उसे अंगिराओं के पास भेजा जो कि स्वर्ग-प्राप्ति के लिए सत्र का अनुष्ठान कर रहे थे किंतु षष्ठ अह्न में वे भटक जाते थे। नाभुमानेदिष्ट ने उनके पास जाकर उनकी भ्रांति का निवारण किया। स्वर्ग में जाते हुए अंगिराओं ने समस्त धन उसे प्रदान किया, किंतु उत्तर भाग से रुद्र ने प्रकट होकर उसे कुछ भी लेने से रोक दिया। विवाद होने पर उसने उसे मनु से जाकर पूछने के लिए कहा कि धन किसका है। मनु ने कहा कि यज्ञशेष पर रुद्र का अधिकार होता है। नाभुमानेदिष्ट के

यह बनाने पर रुद्र ने उसे समस्त धन प्राप्त किया।

ऐ० ब्रा०, ५।१४

(ऐसी ही कथा श्रीमद् भागवत में नाभाग नाम से दी गयी है।)

नारद नारद मुनि के भांजे का नाम पर्वत था। वे दोनों मित्र भाव से साथ-साथ पृथ्वी पर विचरते थे। उन दोनों ने परस्पर यह तय कर रखा था कि अच्छी या बुरी कोई भी बात क्यों न हो—वे एक-दूसरे को अवश्य बताएंगे। एक बार वे राजा संजय के पास गये तथा उसके पास ठहरने की इच्छा अभिव्यक्त की। राजा ने दोनों का सहर्ष स्वागत किया तथा अपनी कन्या को उनकी सेवा के लिए नियुक्त कर दिया। कालांतर में नारद उस राजकुमारी पर आसक्त हो गये, पर उन्होंने यह बात पर्वत को नहीं बतायी। पर्वत ने उनके हाव-भाव से उनकी कामासक्ति को पहचान लिया। अतः पूर्वकृत प्रण को तोड़ने के फलस्वरूप नारद को शाप दिया—"यह कन्या तुम्हारी पत्नी होगी। विवाह होते ही सब लोग तुम्हें बंदर जैसे मुंह वाला देखने लगेंगे।" यह सुनकर नारद रुष्ट हो गये तथा उन्होंने प्रत्युत्तर में पर्वत को स्वर्ग न प्राप्त कर पाने का शाप दिया। तदनंतर दोनों परस्पर रुष्ट होकर विपरीत दिशाओं में चले गये। नारद का विवाह उस राजकुमारी से हो गया। वह शापानुकूल नारद को बंदर जैसी शक्ल का देखने लगी, तथापि उसकी पति-भक्ति में कोई अंतर नहीं आया। पर्वत निरंतर भटकता रहा, पर स्वर्ग नहीं प्राप्त कर पाया। बहुत भटकाव के बाद वह नारद के पास गया और उनसे शाप वापस लेने के लिए अनुनय-विनय करने लगा। दोनों ने अपने-अपने शाप वापस ले लिए तो नारद की पत्नी ने नारद को पहचाना नहीं। पर्वत ने पूर्वघटित दुर्घटना के विषय में बताकर उसका समाधान करवाया। कुछ समय बाद जब वे लोग संजय के महल से चलने लगे तो पर्वत ने संजय से कोई वर मांगने को कहा। संजय ने इंद्र को भी परास्त करने में समर्थ वीर पुत्र की कामना प्रकट की। पर्वत ने उसे वैसा ही पुत्र प्राप्त करने का वर दिया। साथ ही कहा कि उसकी आयु लंबी नहीं होगी क्योंकि संजय ने इंद्र की शक्ति से होड़ करनेवाले बालक की कामना की है। राजा बहुत चिंतित हो उठा तो नारद ने कहा कि वे मृत बालक को पुनः लंबी आयु प्रदान करेंगे। अतः दुर्घटना होने पर संजय को चाहिए कि वह नारद का स्मरण करे। नारद तथा पर्वत राजा के यहां से चले गये। कालांतर में राजा के यहां सुवर्णष्ठीवी नामक बालक ने जन्म लिया। वह अत्यत सुंदर, वीर तथा लोकप्रिय था। इंद्र का शासन डोलने लगा। अतः इंद्र ने उस बालक का वध करने का निश्चय किया। उन्होंने वज्र से कहा कि वह बाघ का रूप धारण करके सुवर्ण-ष्ठीवी का पीछा करे तथा अवसर पाकर उसे मार डाले। उनके वज्र ने ऐसा ही किया। एक बार धाय के साथ एकांत वन में खेलते हुए बालक को उसने मार डाला तथा उसका रक्तपान कर लिया। धाय के रोने पर राजा-रानी वहां पहुंचे। दोनों ही विषादग्रस्त थे। तभी राजा को नारद की कही बात का स्मरण हो आया, अतः संजय ने नारद को स्मरण किया। नारद ने वहां प्रकट होकर इंद्र की अनुमति से बालक को प्राणदान दिये। उस पुनर्जीवित पुत्र को नारद ने 'हिरण्यनाभ' कहकर पुकारा और कहा कि उसकी आयु एक हजार वर्ष की होगी।

नारद अत्यंत विद्वान, आलस्य, क्रोध, चपलता, अभिमान तथा अप्रीति से रहित थे। वे लज्जाशील, सुशील तथा विष्णु के प्रति दृढ़ भक्ति-भाव रखनेवाले थे।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय २९-३१, २३०

दक्ष के दस पुत्रों को ज्ञानोपदेश देकर नारद ने उन्हें संसार से विरक्त कर दिया, अतः ब्रह्मा उनसे रुष्ट हो गए। पूर्व कल्प में नारद ब्रह्मा के मानसपुत्र थे किंतु इस कल्प में उन्हें कश्यप ने प्रकट किया था। नारद ने पृथ्वी का भार से उद्धार करने के निमित्त विष्णु को अवतरित होने के लिए प्रेरित किया, तदुपरांत कंस को जाकर सूचना दी कि उसपर नारायण के जन्म लेने से विपत्ति आयेगी और नारायण देवकी के पुत्र-रूप में जन्म लेंगे।

हरि० वं० पु०, हरिवंशपर्व ३।-

वि० पु०, १।-

पूर्वजन्म में नारद वेदवादी ब्राह्मणों की एक दासी के पुत्र थे। बाल्यावस्था से ब्राह्मणों के संपर्क में आकर उन्हें बहुत कुछ ज्ञान हो गया था। ब्राह्मणों की अनुमति से उनकी बरतनों की जूठन वे प्रतिदिन एक बार खाते थे। सेवा से उनका हृदय शुद्ध होता गया तथा सत्संग में उन्होंने श्रीकृष्ण की मनोरम कथाएं सुनीं। सर्पदंशन के कारण उनकी मां का स्वर्गवास हो गया, तब वे पांच ही वर्ष के थे। वे घर को त्यागकर घोर वन में पीपल

के पेड़ के नीचे बैठे भगवान की ओर ध्यान लगाने लगे। एक बार भगवद् झलक दिखायी भी पड़ी। वह अनिर्वचनीय आनंद बहुत चाहकर भी उन्हें उस जीवन में फिर नहीं मिला। उन्हें अव्यक्त ब्रह्म ने गंभीर वाणी में कहा—"इस जन्म में मेरा दर्शन संभव नहीं है। मृत्यु के उपरांत मेरे पार्षद बन जाओगे। तुम्हारी श्रद्धा अटूट रहेगी।" नारद काल के आगमन की प्रतीक्षा करते रहे। ऐहिक शरीर के नष्ट होने पर वे भगवान के पार्षद बन गये। प्रलयकालीन समुद्र में सोते हुए विष्णु के हृदय में, सोने के लिए जब ब्रह्मा ने प्रवेश किया तब उनके साथ ही नारद ने भी प्रवेश पा लिया। एक सहस्र चतुर्युगी बीत जाने पर ब्रह्मा ने सृष्टि की इच्छा की तो उनकी इंद्रियों से मरीचि आदि ऋषियों के साथ नारद भी प्रकट हो गये। तभी से बैकुंठ आदि सभी लोकों में उनका निर्बंध प्रवेश है।

श्रीमद् भा०, प्रथम स्कंध, अध्याय ५-६

नारद गंगा के निकटवर्ती हिमालय खंड में तपस्या कर रहे थे। इंद्र को भय हुआ कि कहीं वे इंद्र-पद प्राप्त न कर लें, अतः उसने काम को ससैन्य उनके पास भेजा। संयोग से वह स्थान वही था, जहां शिव ने काम को भस्म किया था। इस कारण से काम नारद को प्रभावित नहीं कर पाया। नारद इस कारण को नहीं जानते थे, अतः उन्हें काम के पराजित होने का गर्व हुआ। उन्होंने शिव से सब कह सुनाया। शिव ने कहा—"काम को त्रिलोकी में कोई नहीं जीत सकता, अतः यह सब वृत्तांत किसी और से मत कहना।" नारद को यह बात इष्ट नहीं लगी। उन्होंने क्रमशः ब्रह्मा तथा विष्णु के पास जाकर भी अपनी तपस्या का वृत्तांत सुनाया। ब्रह्मा ने उन्हें ऐसी बात न करने को कहा तथा विष्णु ने कहा—"भला आपके ब्रह्मचर्य के सम्मुख किसका बस चल सकता है।" वे और भी अहंकारी हो गये। सदाशिव की माया से उनके मार्ग में एक शहर बस गया। जहां के स्त्री-पुरुषों के विहार पर काम भी लज्जित होता था। वहां के राजा शीलनिधि की कन्या का स्वयंवर हो रहा था। नारद ने काम-विमोहित होकर कन्या को पाने के लिए विष्णु से सौंदर्य की उपलब्धि की कामना की। उनका शरीर सुंदर किंतु बंदर जैसा हो गया। सदाशिव के दो गण उनके आसपास जा बैठे और उनके स्वरूप का परिहास करने लगे। कन्या ने उन्हें नहीं वरा। जल में उन्होंने अपने मुख का प्रतिबिंब देखा तो विष्णु को शाप दिया—"तुम पुरुष रूप में कष्ट पाओ। नारी के लिए मेरा परिहास हुआ है, पत्नी के वियोग का तुम्हें भी कष्ट उठाना पड़े। बंदर की शक्ल के लोग ही तुम्हारी सहायता करें।" शिव ने अपनी माया का परिहार कर लिया। नारद ने जब जाना कि सत्य क्या है, स्वप्न क्या है, तो विष्णु के पैरों में जा गिरे। विष्णु ने उन्हें मिथ्या गर्व का परित्याग करने को कहा तथा सदाशिव ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश—तीनों रूपों की व्याख्या की।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध, २-४।-

(ख) एक बार नदी के किनारे स्थित व्यास के आश्रम में नारद गये। नारद का आतिथ्य करके व्यास ने उनसे पूछा—"यह जानते हुए भी कि वासना और इच्छा कष्ट पहुंचाने के कारण हैं, लोग मोहयुक्त कर्म क्यों करते हैं?" नारद ने कहा—"मेरा जन्म होते ही मां ने मुझको द्वीप में छोड़ दिया था, तथापि बड़े होने पर मैंने शिव की तपस्या करके 'शुक' को पुत्र रूप में प्राप्त किया। ज्ञान प्राप्त करने पर वह मुझे रोता छोड़कर लोकांतर में चला गया। पुत्रविरह से आतुर मैं अपनी मां को स्मरण करने लगा। सरस्वती के तट पर आश्रम बनाकर मैं रहने लगा। मां ने शांतनु से विवाह किया था। विधवा होने पर मां अपने दो पुत्रों के साथ रहती थी। भीष्म उसका पालन करता रहा किंतु चित्रांगद का निधन होने के उपरांत वह शांत नहीं हो पा रही थी। उसने मुझको बुलाकर आज्ञा दी कि वे चित्रांगद की दोनों पत्नियों (अंबिका तथा अंबालिका) को एक-एक पुत्र प्रदान करें। नारद ने पहले तो संकोच किया। मां के बहुत कहने पर उसने दोनों के साथ संभोग किया। अंबिका ने मेरे रूप को लक्ष्य कर नेत्र मूंद लिए थे, अंबालिका पीली पड़ गयी थी, अतः दोनों के क्रमशः अंधा तथा पीतवर्ण का पुत्र हुआ। उनके नाम धृतराष्ट्र तथा पांडु रखे गये। दोनों को राजा होने के लिए अनुपयुक्त मानकर मां ने पुनः अंबिका से पुत्रोत्पन्न करने के लिए मुझे बाध्य किया। अंबिका ने अपने स्थान पर एक दासी को भेज दिया जिससे विद्वान, सुंदर तथा धर्मात्मा पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम विदुर रखा गया। उनके मोह में मैं शुक को भी भूल गया, पर एक बात भूलनी असंभव थी कि वे व्यभिचार से उत्पन्न थे तथा मेरे श्राद्ध आदि के अधिकारी भी नहीं थे। पांडु को राज्य मिलने पर मेरी प्रसन्नता भी 'मोह' ही था।

कालांतर में पांडु को शाप मिला कि स्त्री-संग से उसका देहांत हो जायेगा। वह अपनी दोनों पत्नियों (कुंती और माद्री) को लेकर वन में चले गये। मैंने उसे अपने आश्रम में बुलाया। वन में धर्म, वायु, इंद्र, अश्विनीकुमारों से पांच पुत्र प्राप्त हुए (प्रथम तीन से कुंती को युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन तथा अश्विनीकुमारों से माद्री को नकुल और सहदेव)। माद्री के आलिंगन करने पर पांडु की मृत्यु हुई। माद्री सती हो गयी, कुंती संतान-पालन के निमित्त जीवित रही। कर्ण कुंती के विवाह से पूर्व की संतान थी, जिसका जन्म होते ही कुंती ने उसे नदी में बहा दिया था। तदुपरांत कौरव, पांडवों का वैमनस्य देखकर निरंतर मेरा मन डोलता रहा। संसार में कोई भी मोहरहित नहीं रह पाता। एक और घटना याद हो आयी। एक बार मैं और मेरा भांजा पर्वत मृत्युलोक में विचरण करने गये। हमने तय किया था कि परस्पर कोई दुराव नहीं करेंगे। हम लोग चार माह राजा संजय के यहां रहे। राजपुत्री दमयंती मुझसे प्रेम करने लगी। कुछ समय बाद पर्वत को पता चला तो दुराव रखने के कारण उसने मुझे मर्कट-मुखी होने का शाप दिया, क्रोधवश मैंने भी उसे मृत्युलोक में रहने का शाप दे दिया। वह रुष्ट होकर चला गया। कालांतर में राजकुमारी ने आग्रहपूर्वक मुझसे विवाह कर लिया। वह मेरे संगीत पर मुग्ध थी। तीर्थाटन से लौटकर पर्वत मिला तो उसने मुझे और मैंने उसे शापमुक्त कर दिया, पर वह सब मिथ्या मोह पर आधारित कृत्य था।

एक बार मैं विष्णु के पास गया तो क्रीड़ारत कमला तुरंत अंदर चली गयी। विष्णु मुझे गरुड़ पर बैठाकर पुंतीर्थ नामक सरोवर पर ले गये। वहां स्नान करते ही मैं सुसज्जित नारी हो गया। विष्णु मेरी वीणा लेकर चले गये। वहां तालध्वज नामक एक राजा ने मेरे सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखा। उससे विवाह कर मैंने वीरवर्मा तथा सुधन्वा आदि अनेक पुत्रों को जन्म दिया। परिवार में बहुओं, पुत्र-पौत्रों से मोह उत्पन्न हो गया। कुछ समय उपरांत शत्रु से युद्ध होने पर वे सब मारे गये। इतने वर्षों में मेरा ज्ञान इत्यादि सब कुछ तिरोहित हो गया था। मैं बच्चों के वियोग से नित्य उदास रहने लगा। एक दिन विष्णु ने मुझे दर्शन दिये तथा पुनः पुंतीर्थ में स्नान करने के लिए प्रेरित करने लगे। वहां स्नान कर मैं पूर्ववत् पुरुष हो गया। उन्होंने मेरी वीणा वापस कर दी तथा कहा कि मोह ही समस्त कष्टों का मूल है। देवी की आराधना इस सबसे मुक्त करने में समर्थ है।" उधर राजा ने रानी को तालाब से निकलता न देखकर विलाप करना आरंभ कर दिया। उसे भास हुआ कि सब पुत्र तो मर ही चुके, रानी भी डूबकर मर गयी है। विष्णु ने उसे माया-मोह का परित्याग करके जीवन व्यतीत करने का उपदेश दिया।

दे० भा०, २६-१२४-३१।-

नारद ब्राह्मण नारद नामक ब्राह्मण यज्ञ करता था। उसे अजमेध यज्ञ में बलि देने के लिए एक बकरे की आवश्यकता थी। वरुण ने स्कंद को बकरा दिया था। वह बकरा स्कंद की इच्छा जानकर ब्राह्मण की ओर भाग गया। नारद उसे खूंटे से बांधकर किसी काम से गया तो उसने समस्त यज्ञ-मंच तहस-नहस कर डाला तथा सातों द्वीपों को जीतकर स्वर्ग में पहुंच गया। लौटकर बकरे को न पा नारद नामक ब्राह्मण ने यह जानकर कि यह सब स्कंद की ही लीला थी, स्कंद की शरण ली। स्कंद ने बीरबाहु नामक गण को बुलाकर बकरा ढूंढ़ने के लिए भेजा। वह बकरा स्कंद का वाहन था। उसके आने पर स्कंद ने उसपर बैठकर ब्राह्मण से कहा कि वह उनका वाहन होने के कारण बलि के योग्य नहीं है। स्कंद ने अजमेध यज्ञ किये बिना ही उनका फल नारद को प्रदान किया।

दे० तारक

शि० पु०। पूर्वार्द्ध ४।५-१०।-

नारद कुर्मी का पुत्र था। कुर्मी के पति ने वैराग्य ले लिया था। पुत्र-जन्म के उपरांत वह बालक को वन में छोड़कर संन्यास लेने चली गयी। बालक का पालन-पोषण 'जृंभक' नामक देवों ने किया तथा उसे अन्य शिक्षकों के साथ आकाशचारी शिक्षा भी दी। बड़ा होकर वह जहां-तहां घूमता था। वह विनोदी, गीतवाद्य तथा कलहप्रिय हुआ। क्षीरकदंब के दो शिष्य थे : एक अपना पुत्र पर्वतक और दूसरा वही ब्राह्मणपुत्र नारद। एक बार किसी साधु के यह कहने पर कि उन तीन तथा गुरुपत्नी में से कोई एक नरकभोगी होगा, क्षीरकदंब ने वैराग्य ले लिया। तदनंतर पर्वतक और नारद में 'अज' के अर्थ पर विवाद हो गया। यज्ञ में प्रयुक्त होनेवाला 'अज' क्या है? पर्वतक उसका अर्थ 'पशु' मानता था और नारद 'छिलके रहित जौ'। दोनों ने 'वसु' को मध्यस्थ माना। पर्वतक ने गुप्त

रूप से मां को 'वसु' के पास भेजा कि वह पर्वतक के पक्ष में व्यवस्था दे। अगले दिन दोनों के पहुंचने पर 'वसु' ने उसका अर्थ 'पशु' बताया। अतः वह (वसु) स्फटिक आसनसहित धरती में समा गया।

एक बार राजा मरुत्त पशुबली वाला यज्ञ करना चाह रहा था। नारद ने याज्ञिक ब्राह्मणों से अहिंसापूर्वक यज्ञ करने की बात कही तो उन्होंने नारद को सब ओर से घेरकर पीटा। रावण ने नारद को मुक्त करवाया तथा ब्राह्मणों को बहुत पीटा। यज्ञ तहस-नहस कर डाला। नारद आकाशमार्ग से लंका में रावण के पास गया तथा ब्राह्मणों को बहुत न मारने का तथा उन्हें पृथ्वी पर यथेच्छ घूमने देने का अनुरोध किया।

पउ० च०, ११।·

नारायण ब्रह्मा के अतिरिक्त अन्य कोई भी मार्कंडेय मुनि के समान दीर्घायु नहीं है। विकराल प्रलय में समस्त सृष्टि के नष्ट होने पर भी मार्कंडेय मुनि शेष रह गये थे। जब वे तैरते-तैरते थक गये, तब उनका ध्यान एक विशाल वट-वृक्ष पर गया, जो एकार्णव की विपुल जलराशि के मध्य स्थिर था। उसकी एक शाखा पर एक पलंग तथा बिछौना था, जिसपर एक सुंदर बालक सो रहा था। बालक ने कहा—"मैंने तुमपर कृपा की है—तुम मेरे शरीर के भीतर प्रवेश करके विश्राम कर सकते हो।" मार्कंडेय मुनि अनायास ही बालक के खुले मुंह से उसके शरीर में प्रवेश पा गये। वहां दृश्य अपूर्व था। भारत की गंगा, यमुना, कृष्णा आदि समस्त नदियां —जीव-जंतु, समुद्र, मनुष्य सुरक्षित थे तथा सभी अपने-अपने कार्य में सुचारु से लगे हुए थे। यज्ञ, दानव, सभी वहां विद्यमान थे। वर्षों तक भ्रमण करने पर भी जब उदरस्थ प्रदेश की समाप्ति नहीं हुई, तब मुनि ने उस बालस्वरूप का स्मरण कर उसकी माया को जानने की इच्छा प्रकट की। वे तुरंत बालक के उदर से बाहर निकल आये। उनके प्रणाम करते ही बालक ने इस प्रकार कहा—"मेरा निवासस्थान आरा (जल) है। इसीसे मैं नारायण कहलाता हूं। मैं ही विष्णु, ब्रह्मा तथा देव-राज इंद्र हूं। अग्नि मेरा मुख है, पृथ्वी चरण है, चंद्र और सूर्य नेत्र हैं। आकाश और दिशाएं मेरे कान हैं। वायु मेरे मन में स्थित है तथा मेरा पसीना ही जगत् में जल कहलाता है। मैंने अनेक शत यज्ञों द्वारा यजन किया है। मैं अनेक अवतार लेता रहा हूं। पृथ्वी के त्राण के लिए मैंने वराहरूप धारण किया था। अनेक कामनाओं की पूर्ति के लिए लोग मेरी सेवापूजा करते हैं। समस्त लोकों की उत्पत्ति, पालन तथा संहारकर्ता मैं ही हूं। धर्म की हानि तथा अधर्म का उत्थान होने पर मैं अपने को प्रकट करता हूं। जब तक ब्रह्मा जागते नहीं हैं, मैं बालस्वरूप धारण किये रहता हूं। जब वे जाग जाते हैं तो मैं उनके साथ एकीभूत होकर सृष्टि की रचना करता हूं। मैं ही विष्णु हूं।" उन्हीं विष्णु के अवतार त्रेतायुग में श्रीकृष्ण नाम से विख्यात हुए।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय १८७ से १८९ तक
अ० २७२, श्लोक ३८ से ४६ तक

'नर' (पुरुष अर्थात् भगवान पुरुषोत्तम) से उत्पन्न होने के कारण 'जल' को नार कहते हैं। प्रथम निवासस्थान जल (नार) होने के कारण भगवान को नारायण कहते हैं। ब्रह्मा अर्थात् नारायण ने जागकर देखा कि द्वितीय कल्प से पूर्व समस्त जग जलमय हो गया है, अतः उन्होंने जल में डूबी पृथ्वी को उबारने के लिए एक दूसरा रूप धारण किया।

वि० पु०, १।४।१-११

नाहुष नहुष का पुत्र नाहुष नाम से विख्यात था। वह मंत्रद्रष्टा था। एक बार उसने एक सहस्र वर्ष तक यज्ञ करने का संकल्प किया। नाहुष पृथ्वी स्थित नदियों के पास गया तथा उनसे यज्ञ के लिए उपयुक्त स्थान देने का अनुरोध किया। नदियों ने कहा—"हम एक सहस्र वर्ष की दीक्षा में किए गये यज्ञ का भाग लेने में असमर्थ रहेंगी, क्योंकि हम अल्प शक्तिसंपन्ना हैं। नाहुष के सम्मुख धर्मसंकट था, क्योंकि वह संकल्प कर चुका था। नदियों ने संकटमोचन करते हुए राजा को सलाह दी कि वह सरस्वती नदी के तट पर यज्ञ करें। वह नदी भारत की पूर्वी तथा ब्रह्मावर्त्त की पश्चिमी सीमा पर है। वह लौह दुर्ग के समान है। उसके तट पर पांच जातियों का अधिवास है। वहां के अधिपति का नाम चित्र है। सरस्वती नदी विद्युत की पुत्री है तथा नदियों की माता है। उसका तट चल-मंत्रों से गूंजता है तथा फल-फूलों से युक्त है। नाहुष ने सरस्वती नदी के तट पर नदी की आज्ञा से यज्ञमंडप की स्थापना की।

ऋ० २।४१।१६, ५।५३।११, ६।६१, ७।९५-९६
८।६।२४, ८।२१।१७-१८, ९।१०१,१०।६३।१

निकुंभ निकुंभ एक बहुत बड़ा असुर था। उसने एक लाख वर्ष तक तपस्या करके शिव को प्रसन्न किया था

तथा वर प्राप्त किया था कि उसे तीन रूप प्राप्त होंगे, जो अवध्य रहेंगे। शिव ने साथ ही यह भी कहा था कि ब्राह्मणों अथवा विष्णु का अप्रिय करने पर वह विष्णु द्वारा ही मारा जा सकेगा। उसका पहला रूप भानुमती के अपहरण के समय कृष्ण के द्वारा नष्ट हुआ। दूसरा रूप 'षट्पुर' के रूप में नष्ट हुआ। वह दूसरा रूप दिति देवी की सेवा में भी लगा रहता था।

दे० षट्पुर

हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व, ८५।३५-४५।

निमि यज्ञ में दीक्षित ऋषियों ने वसिष्ठ के शाप के कारण (दे० वसिष्ठ) निमि को बिना शरीर का देखा तो भी वे यज्ञ कराते रहे। यज्ञ समाप्त होने पर भृगु ने अचेतन निमि से कहा—"मैं तुमसे प्रसन्न हूं, अतः तुम्हारी चेतना को पुनः तुम्हारे शरीर में प्रवेश कराता हूं।" देवताओं ने भी उपस्थित होकर कहा कि "वर मांगो, तुम अपनी आत्मा की प्रतिष्ठा कहां करवाना चाहते हो।" निमि की आत्मा ने कहा—"हे देवताओ, मैं प्राणियों के नेत्रों में रहना चाहता हूं।" देवताओं ने कहा—"ऐसा ही होगा। तुम प्राणियों के नेत्रों में वायु-रूप में रहोगे तथा वे सब पलक झपककर तुम्हें विश्राम देंगे।" ऋषिगण निमि का शरीर यज्ञ स्थान में ले गये। निमि के पुत्र की इच्छा से उन्होंने निमि का शरीर अरणी से मथना प्रारंभ किया। मथे जाने पर शरीर से एक महातेजस्वी पुरुष उत्पन्न हुआ, अतः उसका नाम मिथी पड़ा, जनन (उत्पन्न) होने के कारण उसका नाम जनक पड़ा। विदेह से उत्पन्न होने के कारण 'वैदेह' नाम भी पड़ा।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग ५७, श्लोक १०-२१

राजा निमि इक्ष्वाकु-वंश में हुए। निमि ने सहस्र वर्ष में समाप्त होनेवाला यज्ञ प्रारंभ किया। वे वसिष्ठ को होता बनाना चाहते थे। वसिष्ठ पहले से इंद्र का पांच सौ वर्ष में समाप्त होनेवाला यज्ञ करवाने के लिए वचन-बद्ध थे, अतः मुनि ने राजा से पांच सौ वर्ष तक रुकने के लिए कहा। मुनि के जाने के उपरांत राजा ने गौतम आदि को होताओं के रूप में वरण करके यज्ञ प्रारंभ कर दिया। वसिष्ठ ने लौटकर देखा तो क्रोधावेश में उन्होंने निमि को देहहीन होने का शाप दिया। राजा ने भी वसिष्ठ को देह नष्ट होने का शाप दिया क्योंकि मुनि ने सोते हुए राजा को, बिना कुछ पूछे शाप दे दिया था। राजा के शाप से वसिष्ठ का लिंगदेह मित्रावरुण के वीर्य में प्रविष्ट हुआ। उर्वशी के देखने से उसका वीर्य स्ख-लित होने पर उसी से उन्होंने दूसरा देह धारण किया। निमि की मृत देह सुरांधयुक्त उसी तरह पड़ी रही। यज्ञ की समाप्ति पर यजमान को वर देने का समय आया। राजा निमि ने कहा—"मैं पुनः देह धारण नहीं करना चाहता। मैं समस्त लोगों के नेत्रों में निवास करना चाहता हूं।" देवों ने उसे इच्छित वर प्रदान किया, फलतः मनुष्य निमेषोन्मेष (पलक झपकने) करने लगे। अराजकता के भय से देवों ने उस पुत्रहीन राजा की देह को अरणी से मथा जिससे एक कुमार उत्पन्न हुआ, जिसका नाम जन्म लेने के कारण 'जनक' हुआ। मथने से उत्पन्न होने के कारण वह 'मिथि' भी कहलाता है। 'विदेह' का पुत्र होने के कारण वह वैदेह भी कहलाया।

वि० पु० ४।५।१-२३

राजा निमि ने एक वृहत् यज्ञ करने के निश्चय से विपुल सामग्री जुटायी। उसके पुरोहित वसिष्ठ थे किंतु वे इंद्र का यज्ञ करने के लिए वचनबद्ध थे, अतः प्रतीक्षा करने को कहकर चले गये। राजा ने गौतम को आमंत्रित करके यज्ञ किया। वसिष्ठ इंद्र के यज्ञ के समापन करके लौटे तो निमि को यज्ञ करते हुए पाया, अतः क्रोधवश उन्होंने शाप दिया कि वह देहरहित हो जाय। राजा को ज्ञात हुआ तो वह भी क्रुद्ध होकर बोला कि धन के लालच में इंद्र के पास जाने वाले वसिष्ठ की देह भी पतित हो जाये। वसिष्ठ ब्रह्मा की शरण में गये। ब्रह्मा ने उन्हें शरीर त्यागकर मित्रावरुण की देह में प्रवेश करने के लिए कहा। कालांतर में मित्रावरुण के आश्रम में उर्वशी आयी। उसके रूप पर मुग्ध होकर दोनों का वीर्यपात् हुआ जिसे उन्होंने एक खुले मटके में रख दिया, जिससे पहले अगस्त्य तथा फिर वसिष्ठ ने देह प्राप्त की। अगस्त्य बाल्यावस्था में ही तपस्वी हो गये तथा वसिष्ठ का, राजा इक्ष्वाकु ने पुरोहित रूप में वरण किया।

निमि के शाप के विषय में जानकर ऋषियों ने सर्वेश्वरी देवी का आह्वान किया तथा कहा कि यज्ञोपरांत फल-प्राप्ति के स्थान पर ऐसा शाप मिलना उचित नहीं है। ऋषियों ने निमि के शरीर को बहुत संभालकर रखा था, किंतु निमि की आत्मा ने पुनः शरीर प्राप्ति करने से इंकार कर दिया। उसने देवी से इच्छा व्यक्त की कि उसे प्राणिमात्र के ऊपर की पलक पर वायु रूप में

निवास प्राप्त हो। तभी से वह नेत्रोपरिनिमेष में निवास करने लगा। उसके शरीर को अरणि से मथने पर उसी-के समान पुत्र का जन्म हुआ, जिसका नाम जनक पड़ा। इस वंश के समस्त राजा 'विदेह' कहलाये।

दे० भा०, ६।१४-१५

निवातकवच अर्जुन इंद्र के साथ स्वर्गलोक में रहकर जब अस्त्र-शस्त्र तथा नृत्य की शिक्षा प्राप्त कर चुका तो देव-ताओं की प्रेरणा से निवातकवचों पर विजय प्राप्त करने के लिए पाताल-लोक गया। मातलि के साथ इंद्र के रथ में बैठकर उसने पाताल की ओर प्रस्थान किया। निवात-कवचों ने अर्जुन के तेज का परिचय पाया तो मायावी युद्ध प्रारंभ किया। कभी सब कुछ अंधकार में विलीन हो जाता और कभी जल में डूब जाता, कभी समस्त दानव अंतर्धान हो जाते। इस प्रकार के युद्ध में मातलि भी अचेत हो गया तथा उनके हाथों से लगाम छूट गयी। अर्जुन ने अपनी शक्ति से उनकी माया का परिहार कर दिया। कुछ दानवों ने पृथ्वी में घुसकर अर्जुन के रथ के घोड़ों को पकड़ लिया था, अतः रथ का गतिरोध हो गया। अर्जुन ने वज्रास्त्र से सबको नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। नगर में प्रवेश करके अर्जुन उनके ऐश्वर्य-वैभव से चमत्कृत रह गया। उसने मातलि से पूछा कि देवतागण इस प्रकार का वैभवसंपन्न नगर क्यों नहीं बसाते। मातलि ने बताया कि मूलतः वह नगर देवताओं का ही था, किंतु भयंकर तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न करके निवातकवचों ने वह नगर प्राप्त कर लिया, साथ ही यह वरदान भी प्राप्त किया कि उन्हें किसी देवता से भय नहीं रहेगा। इंद्र के अनुनय-विनय पर ब्रह्मा ने कहा—"इंद्र, तुम्हीं मानव रूप धारण करके इनका संहार करोगे।" मातलि ने कहा—"हे अर्जुन! तुम ही इंद्र के स्वरूप हो। दानवों के विनाश के उद्देश्य से ही इंद्र ने तुम्हें अस्त्र-बल की प्राप्ति करायी है।"

म० भा०, वनपर्व, अध्याय १६६ से १७२ तक

निशुंभ निशुंभ का चंडिका से युद्ध हुआ। निशुंभ ने देवी के वाहन केसरी के मस्तक पर प्रहार किया। देवी ने शक्ति, वाण, शूल आदि के प्रहारों से उसे मार गिराया।

मा० पु०, ८६ (दे० कालिका देवी)

निशुंभ दैत्य शुंभ का छोटा भाई था (दे० शुंभ)। देवी से युद्ध करने के लिए दोनों भाई कटिबद्ध थे। अंबिका देवी ने उन दोनों को मारने का निश्चय किया था क्योंकि दोनों देवताओं को त्रस्त कर रहे थे तथा इंद्रासन पर आधिपत्य जमाये बैठे थे। युद्ध में देवी ने उसका सिर काट दिया तो धड़ से ही युद्ध करता रहा। देवी ने उसके हाथ-पांव काट डाले और वह पर्वत की तरह जोर से पृथ्वी पर जा पड़ा।

दे० भा०, ५।२६-३०

नील असमचित्त नामक पापी ब्राह्मण ने एक दिन शिव-भक्तों को लूटने के लिए उन्हीं जैसा रूप धारण किया और उनके पास जा बैठा। भक्तगण इतने मुग्ध भाव से शिव-भक्ति में लीन थे कि असमचित्त भी शिवभक्त हो गया। उसके पाप नष्ट हो गये। सात दिन की तपस्या के उपरांत शिव के दर्शन हुए। शिव ने उसे कैलास पर्वत के एक स्थल पर रहने का अवसर दिया, ब्राह्मण को नील कहकर पुकारा तथा पर्वत का वह स्थल भी नील नाम से विख्यात हुआ।

शि० पु०, ६।४

नील राजा माहिष्मती पुरी के नील राजा की कन्या अत्यंत सुंदरी थी। वह प्रतिदिन पिता के अग्निहोत्र के लिए अग्नि को प्रज्वलित करती थी। अग्नि तब तक प्रज्वलित नहीं होती थी जब तक वह अपने होंठों से फूंक न मारे। अग्निदेव उस कन्या पर आसक्त थे। उन्होंने एक ब्राह्मण के वेश में उससे प्रणय-निवेदन किया। राजा नील ने उनपर अनुशासन करने का प्रयास किया तो अग्नि ने अपने वास्तविक रूप को प्रकट किया। राजा ने सहर्ष दोनों का विवाह कर दिया। अग्निदेव ने राजा के अभीष्ट की सिद्धि करनी चाही तो राजा नील ने अपनी सेना के लिए अभयदान का वर मांगा। तदनंतर जो राजा इस तथ्य को जानते थे, वे नील से टक्कर नहीं लेते थे। दिग्विजय के संदर्भ में सहदेव दक्षिण की ओर बढ़े तो राजा नील से उसका युद्ध हुआ। नील के सहायक अग्निदेव थे। युद्ध-क्षेत्र में सहदेव की सेना अग्नि से व्याप्त हो भयभीत हो उठी किंतु सहदेव ने अविचल भाव से अग्नि का स्तवन किया। अग्निदेव ने प्रसन्न होकर राजा नील को सहदेव की पूजा करने की प्रेरणा दी। नील ने सहदेव को कर देना स्वीकार किया।

महाभारत-युद्ध में आंधी की तरह बढ़ती तथा कौरव सेना को तहस-नहस करती हुई पांडव सेना का वीर योद्धा 'नील' युद्ध में मारा गया था।

म० भा०, सभापर्व, अध्याय ३१, श्लोक २७ से ५६
द्रोणपर्व, १६ से २६ तक

नृग राजा नृग ने एक बार एक करोड़ सवत्सा गायें ब्राह्मणों को दान कीं। एक दरिद्र ब्राह्मण को दान में मिली गाय उनकी गौशाला में फिर से लौट आयी तथा उनकी गउओं में मिल गयी। वह गलती से दानस्वरूप किसी और ब्राह्मण को दे दी गयी। पहला ब्राह्मण अपनी गाय को खोजता हुआ दूसरे ब्राह्मण के कनखल स्थित घर पहुंचा। उसने आवाज दी—"हे शवले, यहां आओ।" वह गाय पीछे चल पड़ी। दोनों ब्राह्मणों में झगड़ा होने लगा। दोनों राजा के द्वार पर पहुंचे। कई दिन की प्रतीक्षा के बाद भी राजा के दर्शन न होने पर उन्होंने राजा को शाप दिया—"हे राजन, जब तुम अर्थियों (मांगने वालों) का कार्य सिद्ध करने के लिए दर्शन नहीं देते तो तुम अदृश्य रहनेवाले गिरगिट बनकर कई हजार वर्ष तक एक सूखे कुएं में रहो। तुम्हारा उद्धार तब होगा जब विष्णु वासुदेव का रूप धारण कर अवतरित होंगे और तुम्हारा उद्धार करेंगे।" राजा नृग को मालूम पड़ा तो उन्होंने अपने पुत्र वसु का राज्याभिषेक कर दिया तथा अपने लिए कुशल कारीगर से ऐसे उत्तम गढ़ बनवाए जिनमें ऋतुओं का प्रभाव न हो। आसपास फल-फूल लगवाकर अपने शाप के दिन काटने की व्यवस्था की।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग ५३-५४

राजा नृग बड़े दानी थे। एक बार किसी महायज्ञ में ब्राह्मणों को गोदान करते समय उनसे भूल हो गयी और उन्होंने एक गउ दुबारा से दान कर दी। वह गाय किसी परदेश गये ब्राह्मण के घर से भागकर राजा की गउओं में मिल गयी थी। ब्राह्मण ने लौटने पर अपनी गाय पहचान ली। जिस ब्राह्मण को वह दान दी गयी थी, उससे विवाद खड़ा हो गया। राजा ने दोनों को गाय के बदले कुछ भी मांग लेने को कहा किंतु वे तत्पर नहीं थे। अत: इस पाप के फलस्वरूप राजा नृग गिरगिट बनकर द्वारकापुरी के एक कुएं में रहने लगे। एक बार बालकों ने वह विशाल गिरगिट देखा तो उसे बाहर निकालने का प्रयत्न करने लगे। जब नहीं निकाल पाये तो उन्होंने कृष्ण की सहायता मांगी। कृष्ण ने वहां पहुंचकर गिरगिट निकाला। कृष्ण का स्पर्श पाकर नृग पापमुक्त हो गये और गिरगिट के रूप से भी मुक्ति पा गये। इस योनि में भी उनकी स्मरणशक्ति कुंठित नहीं हुई थी। उद्धारोपरांत उन्होंने स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया।

म० भा०, दानधर्मपर्व, अध्याय ६, श्लोक ३८, अ० ७०

एक बार यदुवंशी बालकों ने एक अंधे कुएं में एक विशाल गिरगिट देखा। वे सब निकालने का असफल प्रयास करते रहे। कृष्ण को मालूम पड़ा तो उन्होंने उसे जैसे ही छुआ, वह दिव्य पुरुष बन गया। पूछने पर उसने परिचय दिया कि वह राजा नृग था। एक बार किसी ब्राह्मण की गाय गलती से उसने दूसरे ब्राह्मण को दान दे दी थी। गाय विषयक दोनों ब्राह्मणों का विवाद समाप्त न कर पाने के कारण आयु समाप्त होने पर यम ने पूछा कि वह पहले पुण्य का फल भोगना चाहता है अथवा पाप का। राजा नृग ने पहले पापों का फल भोगना चाहा। अत: वह गिरगिट बन गया था। कृष्ण के स्पर्श से उसका उद्धार हो गया।

श्रीमद् भा०, १०।६४,

नृसिंहावतार हिरण्यकशिपु अत्यंत बलवान् दैत्यराज था। उसने कठोर तपस्या के बल पर ब्रह्मा से यह वर प्राप्त किया कि रात में या दिन में, कोई पशु, पक्षी, जलचर, मनुष्य, देवता इत्यादि किसी भी प्रकार के शस्त्र से घर के बाहर अथवा भीतर उसे नहीं मार पायेगा। वरदान प्राप्त कर वह अपनी अमरता के उन्माद में सबपर नानाविध अत्याचार करने लगा। इस प्रकार वह पांच करोड़, इकसठ लाख, साठ हजार वर्ष तक सबको त्रस्त करता रहा। देवताओं ने ब्रह्मा से अनुनय-विनय की। ब्रह्मा ने कहा कि उनके भी जनक नारायण हैं, जो क्षीर सागर में शयन कर रहे हैं, वही उनका उद्धार कर पायेंगे। देवगण उनकी शरण में गये। नारायण ने आधा शरीर मनुष्य का-सा तथा आधा सिंह का-सा बनाकर नरसिंह विग्रह धारण किया तथा हिरण्यकशिपु से युद्ध प्रारंभ किया। कई हजार दैत्यों को मारकर उन्होंने हिरण्यकशिपु को सायंकाल के समय (जब न दिन था, न रात थी) राजमहल की देहली पर (जो भवन के भीतर थी, न बाहर) अपने नाखूनों से (जो कि शस्त्र नहीं थे) जंघा पर रखकर मार डाला।

म० भा०, सभापर्व, अध्याय ३८

हिरण्यकशिपु ने तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न करके अवध्य होने का वर प्राप्त किया। तदुपरांत देवतागण उसके निरंकुश उद्धत रूप से त्रस्त हो गये, अत: विष्णु नरसिंह का रूप धारण करके हिरण्यकशिपु की सभा में गये। उनका हिरण्यकशिपु से युद्ध हुआ जिसमें वह (हिरण्यकशिपु) मारा गया।

हरि० वं० पु०, भविष्यपर्व, ४१-४७,

नैमिषेय सतयुग की बात है—बारह वर्षों में पूर्ण होने-वाले एक महान् यज्ञ का अनुष्ठान किया गया था। नैमिषारण्य निवासी बहुत-से ऋषि-मुनि पधारे। उसके समापन पर अनेक अन्य ऋषि तीर्थ में स्नान करने के लिए आये। सरस्वती नदी के दक्षिण तट पर सभी तीर्थ खचाखच भर गये। अतः सैकड़ों ऋषियों को वहां रहने के लिए स्थान ही नहीं मिला। उनकी निराशा देखकर नदी अनेक कुंज बनाती हुई पीछे पश्चिम की ओर लौट पड़ी। सरस्वती ने सोचा, उन सबके लिए आश्रयस्थल बनाकर वह पुनः पूर्व दिशा की ओर प्रवाहित होने लगेगी।

म० भा०, शल्यपर्व, अध्याय ३७, श्लोक ४०-५६

□

पंचचूड़ा पंचचूड़ा ब्रह्मलोक की अनिंद्य सुंदरी अप्सरा थी। एक बार नारद ने उससे स्त्रियों के स्वभाव के विषय में पूछा। पंचचूड़ा ने स्त्री-दोषदर्शन करते हुए उनकी अमित कामुकता के विषय में बताया और कहा कि उनके लिए लंगड़ा, लूला, पापी, दुष्कर्मी, कोई भी पुरुष अगम्य नहीं है। पुरुष के अभाव में वे नारियां परस्पर भोगरत रहती हैं—साधारणतः नारियों का ऐसा ही स्वभाव होता है। पतिव्रता स्त्रियां बहुत कम होती हैं।

म० भा०, दानधर्मपर्व, अध्याय ३८

पंचजन (शंखासुर) कृष्ण और बलराम ने अध्ययन समाप्त कर अपने गुरु संदीपनि से उनकी इच्छित गुरु दक्षिणा के विषय में पूछा। गुरु ने कहा कि उनका पुत्र प्रभास क्षेत्र में जल में डूबकर मर गया था, वे गुरु-दक्षिणास्वरूप उसीको पुनर्जीवित रूप में प्राप्त करना चाहते थे। कृष्ण और बलराम ने प्रभास क्षेत्र में पहुंचकर समुद्र से कहा कि वह डूबे हुए बालक को लौटा दे। समुद्र ने कहा—"पानी में कोई बालक नहीं है, किंतु समुद्र-निवासी 'पंचजन' नामक एक दैत्य जाति का असुर, (जिसे शंखासुर भी कहते थे) शंख के रूप में रहता है, संभव है, उसने बालक चुरा लिया हो!" कृष्ण ने समुद्र में प्रवेश करके उस दैत्य को मार डाला। उसके उदर में कोई बालक नहीं था। उसके शरीर का शंख लेकर कृष्ण और बलराम यमपुरी पहुंचे। उनके शंख बजाने पर यमपुरी के बहुत-से लोग इकट्ठे हो गये। कृष्ण के मांगने पर यमराज ने गुरुपुत्र उन्हें दे दिया। उन लोगों ने उज्जैन जाकर संदीपनि को गुरु-दक्षिणा प्रदान की।

श्रीमद् भा०, १०।४५।
हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व, ३३।-

पंचशिख कपिला नामक ब्राह्मणी के दूध से पलने के कारण उसी के पुत्र कहलानेवाले (कापिलेय) पंचशिख, आसुरी मुनि के प्रथम शिष्य चिरंजीवी थे। वे सांख्य-शास्त्र के प्रवर्तक कपिल के साक्षात् रूप जान पड़ते थे। पृथ्वी की परिक्रमा करते हुए वे मिथिला में जनकवंशी राजा जनदेव के राज्य में पहुंचे। राजा की अनेक शंकाओं का समाधान करते हुए कापिलेय ने धर्म, वैराग्य, मोक्ष-तत्त्व आदि का उपदेश दिया। राजा जनदेव उनके उपदेश से बहुत प्रभावित हुए तो विष्णु ब्राह्मण का रूप धरकर उनकी परीक्षा लेने पहुंचे। ब्राह्मण ने मिथिला नगरी में प्रवेश कर कुछ विपरीत आचरण किया। अन्य ब्राह्मण उन्हें पकड़कर राजा के पास ले गये। राजा ने रुष्ट होकर उससे कहा कि वह उनके राज्य की सीमा से बाहर चला जाये। ब्राह्मण ने राज्य से बाहर जाते हुए नगर में आग लगा दी। राजा इस दुर्घटना से तनिक भी उद्विग्न नहीं हुआ। मिथिला नगरी के जलने से उसका संचित आत्मज्ञान-रूपी धन नष्ट नहीं हुआ। यह देखकर ब्राह्मण-रूपी विष्णु ने नगरी को पूर्ववत् कर दिया तथा राजा को अपने वास्तविक रूप में दर्शन देकर धर्म का उपदेश दिया तथा धर्म पर अटल रहने का आशीर्वाद दिया।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय २१८-२१९, अ० ३१९,

पणि देवताओं ने पृथ्वी से असुरों को निकाल भगाया। असुरों ने श्मशान में डेरा जमा लिया। पणि नामक असुर गायों को लेकर कहीं जा छिपा। अग्नि और सोम ने उसे ढूंढ़ निकाला और बलपूर्वक उससे गायें छीन लीं।

दे० सरमा

श० प० ब्रा०, १३।८।२।१-३
बै० ब्रा०, २।८।७।१०

परपुरंजय राजा परपुरंजय हैहयवंशी था। एक बार वन में हिंसक पशु समझकर उसने काले चर्मधारी एक ब्राह्मण की हत्या कर दी। पास जाकर जब देखा कि वह ब्राह्मण है, तब वह चिंतित होकर हैहयवंशी राजाओं के पास पहुंचा तथा उनसे सब कुछ कह डाला। राजा चिंतातुर होकर मुनि अरिष्टनेमि के आश्रम में गये तथा उन्हें सब कुछ कह सुनाया। मुनि ने उन्हें आश्वस्त किया तथा उनके साथ वन में गये तो मृत ब्राह्मण का शव कहीं मिला ही नहीं। तभी मुनि ने अपने तपोबल संपन्न पुत्र को दिखाकर पूछा—"कहीं वही तो वह ब्राह्मण नहीं है?" सब लोग विस्मित रह गये कि ब्राह्मण किस प्रकार से पुनर्जीवित हो उठा। महर्षि ने उन सबसे कहा कि सत्कर्म में रत विवेकी ब्रह्मचारी ब्राह्मण पर मृत्यु का कोई प्रभाव नहीं होता। ब्रह्महत्या के दोष से मुक्त वे राजा प्रसन्नचित्त वापस लौट गये।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय १८४

परशु (दैत्य) शाकल्य मुनि को परशु दैत्य बहुत तंग करता था। एक बार वह एक स्त्री के साथ ब्राह्मण-वेश में मुनि के पास पहुंचा। मुनि ने उसे भोजन के लिए कहा। परशु ने अपना वास्तविक परिचय देकर और अधिक भोजन मांगा। शाकल्य ने कहा—"तुम मुझे खा लो।" वह वास्तव में मुनि को खाने के लिए बढ़ा तो मुनि के अनेकों रूप विष्णु तथा शिव के समान दिखलायी पड़ने लगे। दैत्य ने सरस्वती का स्मरण किया, फिर विष्णु की स्तुति की, तदनंतर उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई।

ब्र० पु०, १६३।-

परशुराम चारों पुत्रों के विवाह के उपरांत राजा दशरथ अपनी विशाल सेना और पुत्रों के साथ अयोध्या पुरी के लिये चल पड़े। मार्ग में अत्यंत क्रुद्ध तेजस्वी महात्मा परशुराम मिले। उन्होंने राम से कहा कि वे उसकी पराक्रम गाथा सुन चुके हैं, पर राम उनके हाथ का धनुष चढ़ाकर दिखाएं। तदुपरांत उनके पराक्रम से संतुष्ट होकर वे राम को द्वंद्व युद्ध के लिए आमंत्रित करेंगे। दशरथ अनेक प्रयत्नों के उपरांत भी ब्राह्मणदेव परशुराम को शांत नहीं कर पाये। परशुराम ने बतलाया कि "विश्वकर्मा ने अत्यंत श्रेष्ठ कोटि के दो धनुषों का निर्माण किया था। उनमें से एक तो देवताओं ने शिव को अर्पित कर दिया था और दूसरा विष्णु को। एक बार देवताओं के यह पूछने पर कि शिव और विष्णु में कौन बलवान है, कौन निर्बल—ब्रह्मा ने दोनों में मतभेद स्थापित कर दिया। फलस्वरूप विष्णु की धनुषटंकार के सम्मुख शिव-धनुष शिथिल पड़ गया था, अतः पराक्रम की वास्तविक परीक्षा इसी धनुष से हो सकती है। शांत होने पर शिव ने अपना धनुष विदेह वंशज देवरात को और विष्णु ने अपना धनुष भृगुवंशी ऋचीक को धरोहर रूप में दिया था, जो कि मेरे पास सुरक्षित है।" राम ने क्रुद्ध होकर उनके हाथ से धनुषबाण लेकर चढ़ा दिया और बोले—"विष्णुबाण व्यर्थ नहीं जा सकता। अब इसका प्रयोग कहां किया जाये?" परशुराम का बल तत्काल लुप्त हो गया। उनके कथनानुसार राम ने बाण का प्रयोग परशुराम के तपोबल से जीते हुए अनेक लोकों पर किया, जो कि नष्ट हो गये। परशुराम ने कहा—"हे राम, आप निश्चय ही साक्षात् विष्णु हैं।" तथा परशुराम ने महेंद्र पर्वत के लिए प्रस्थान किया। राम आदि अयोध्या की ओर बढ़े। उन्होंने वह धनुष वरुणदेव को दे दिया। परशुराम की छोड़ी हुई सेना ने भी राम आदि के साथ प्रस्थान किया।

बा० रा०, बाल कांड, सर्ग ७४
श्लोक १-२५, सर्ग ७५, १-२८, सर्ग ७६, १-२४

पिता के आदेश पर परशुराम ने अपनी माता रेणुका को परशु से काट डाला था।

बा० रा०, अयोध्या कांड, सर्ग २१, श्लोक ३३

नारायण ने ही भृगुवंश में परशुराम रूप में अवतार धारण किया था। उन्होंने जंभासुर का मस्तक विदीर्ण किया। शतदुंदुभि को मारा। उन्होंने युद्ध में हैहयराज अर्जुन को मारा तथा केवल धनुष की सहायता से सरस्वती के तट पर हजारों ब्राह्मणद्वेषी क्षत्रियों को मार डाला। एक बार कार्तवीर्य अर्जुन ने बाणों से समुद्र को त्रस्त कर किसी परम वीर के विषय में पूछा। समुद्र ने उसे परशुराम से लड़ने को कहा। परशुराम को उसने अपने व्यवहार से बहुत रुष्ट कर दिया। अतः परशुराम ने उसकी हजार भुजाएं काट डालीं। अनेक क्षत्रिय युद्ध के लिए आ जुटे। परशुराम क्षत्रियों से रुष्ट हो गये, अतः उन्होंने इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन कर डाला। अंत में पितरों की आकाशवाणी सुनकर उन्होंने क्षत्रियों से युद्ध करना छोड़कर तपस्या की ओर ध्यान लगाया। वे सौ वर्षों तक सौम नामक विमान पर बैठे हुए शाल्व से युद्ध करते रहे किंतु गीत

गाती हुई नग्निका (कन्या) कुमारियों के मुंह से यह सुनकर कि शाल्व का वध प्रद्युम्न और सांब को साथ लेकर विष्णु करेंगे, उन्हें विश्वास हो गया, अत: वे तभी से वन में जाकर अपने अस्त्र-शस्त्र-आयुध इत्यादि पानी में डुबोकर कृष्णावतार की प्रतीक्षा में तपस्या करने लगे।

परशुराम ने अपने जीवनकाल में अनेक यज्ञ किए। यज्ञ करने के लिए उन्होंने बत्तीस हाथ ऊंची सोने की वेदी बनवायी थी। महर्षि कश्यप ने दक्षिणा में पृथ्वी सहित उस वेदी को ले लिया तथा फिर परशुराम से पृथ्वी छोड़कर चले जाने के लिए कहा। परशुराम ने समुद्र पीछे हटाकर गिरिश्रेष्ठ महेंद्र पर निवास किया।

म० भा०, सभापर्व, अध्याय ३८, द्रोणपर्व, अ० ७०
आश्वमेधिकपर्व, अ० २९

भृगुनंदन परशुराम क्षत्रियों का नाश करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे। दाशरथी राम का पराक्रम सुनकर वे अयोध्या गये। दशरथ ने उनके स्वागतार्थ रामचंद्र को भेजा। उन्हें देखते ही परशुराम ने उनके पराक्रम की परीक्षा लेनी चाही। अत: उन्हें क्षत्रियसंहारक दिव्य धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाने के लिए कहा। राम के ऐसा कर लेने पर उन्हें धनुष पर एक दिव्य वाण चढ़ाकर दिखाने के लिए कहा। राम ने वह वाण चढ़ाकर परशुराम के तेज पर छोड़ दिया। वाण उनके तेज को छीनकर पुन: राम के पास लौट आया। राम ने परशुराम को दिव्य दृष्टि दी, जिससे उन्होंने राम के यथार्थ स्वरूप के दर्शन किये। परशुराम एक वर्ष तक लज्जित, तेजोहीन तथा अभिमानशून्य होकर तपस्या में लगे रहे। तदनंतर पितरों से प्रेरणा पाकर उन्होंने वधूसर नामक नदी के तीर्थ पर स्नान करके अपना तेज पुन: प्राप्त किया।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय ९९, श्लोक ४१ से ७१ तक

गाधि नामक महाबली राजा अपने राज्य का परित्याग करके वन में चले गये। वहां उनकी एक पुत्री हुई जिसका वरण ऋचीक नामक मुनि ने किया। गाधि ने ऋचीक से कहा कि कन्या की याचना करते हुए उनके कुल में एक सहस्र पांडुवर्णी अश्व, जिनके कान एक ओर से काले हों, शुल्क स्वरूप दिये जाते हैं, अत: वे शर्त पूरी करें। ऋचीक ने वरुण देवता से उस प्रकार के एक सहस्र घोड़े प्राप्त कर शुल्कस्वरूप प्रदान किये। गाधि की सत्यवती नामक पुत्री का विवाह ऋचीक से हुआ। भृगु ने अपने पुत्र के विवाह के विषय में जाना तो बहुत प्रसन्न हुए तथा अपनी पुत्रवधू से वर मांगने को कहा। उनसे सत्यवती ने अपने तथा अपनी माता के लिए पुत्र-जन्म की कामना की। भृगु ने उन दोनों को दो 'चरु' भक्षणार्थ दिये तथा कहा कि ऋतुकाल के उपरांत स्नान करके सत्यवती गूलर के पेड़ तथा उसकी माता पीपल के पेड़ का आलिंगन करें तो दोनों को पुत्र प्राप्त होंगे। मां-बेटी के चरु खाने में उलट-फेर हो गयी। दिव्य दृष्टि से देखकर भृगु पुन: वहां पधारे और उन्होंने सत्यवती से कहा कि तुम्हारी माता का पुत्र क्षत्रिय होकर भी ब्राह्मणोचित व्यवहार करेगा तथा तुम्हारा बेटा ब्राह्मण होकर भी क्षत्रियोचित आचार-विचारवाला होगा। बहुत अनुनय-विनय करने पर भृगु ने मान लिया कि सत्यवती का बेटा ब्राह्मणोचित रहेगा किंतु पोता क्षत्रियों की तरह कार्य करने वाला होगा। सत्यवती के पुत्र जमदग्नि मुनि हुए। उन्होंने राजा प्रसेनजित की पुत्री रेणुका से विवाह किया। रेणुका के पांच पुत्र हुए—रुमण्वान्, सुषेण, वसु, विद्वावसु तथा पांचवें पुत्र का नाम परशुराम था। वही क्षत्रियोचित आचार-विचारवाला बालक था। एक बार सद्यस्नाता रेणुका राजा चित्ररथ पर मुग्ध हो गयी। उसके आश्रम पहुंचने पर मुनि को दिव्य ज्ञान से समस्त घटना ज्ञात हो गयी। उन्होंने क्रोध के आवेश में बारी-बारी से अपने चार बेटों को मां की हत्या करने का आदेश दिया किंतु कोई भी तैयार नहीं हुआ। जमदग्नि ने अपने चारों पुत्रों को जड़बुद्ध होने का शाप दिया। परशुराम ने तुरंत पिता की आज्ञा का पालन किया। जमदग्नि ने प्रसन्न होकर उसे वर मांगने के लिए कहा। परशुराम ने पहले वर से मां का पुनर्जीवन मांगा तथा फिर भाइयों के स्वास्थ्य, अपने मन को पाप से बचा पाने तथा युद्ध में सबपर विजय प्राप्त करने के वर मांगे। एक दिन जब परशुराम बाहर गये हुए थे तो कार्तवीर्य अर्जुन उनकी कुटिया पर आये। युद्ध के मद में उन्होंने रेणुका का अपमान किया तथा उसके बछड़ों का हरण करके चले गये। गाय रंभाती रह गयी। परशुराम को मालूम पड़ा तो क्रुद्ध होकर उन्होंने सहस्रबाहु हैहयराज (कार्तवीर्य अर्जुन) को मार डाला। हैहयराज के पुत्र ने आश्रम पर धावा बोला तथा परशुराम की अनुपस्थिति में मुनि जमदग्नि को मार डाला। परशुराम घर पहुंचे तो बहुत दुखी हुए तथा पृथ्वी को क्षत्रियहीन करने का संकल्प

किया। अत: परशुराम ने इक्कीस बार पृथ्वी के समस्त क्षत्रियों का संहार किया। समंत पंचक क्षेत्र में पांच रुधिर के कुंड भर दिये। क्षत्रियों के रुधिर से परशुराम ने अपने पितरों का तर्पण किया। उस समय ऋचीक साक्षात् प्रकट हुए तथा उन्होंने परशुराम को ऐसा कार्य करने से रोका। ऋत्विजों को दक्षिणा में पृथ्वी प्रदान कर दी। उन्होंने कश्यप को एक सोने की वेदी प्रदान की। ब्राह्मणों ने कश्यप की आज्ञा से उस वेदी को खंड-खंड करके बांट लिया, अत: वे ब्राह्मण जिन्होंने वेदी को परस्पर बांट लिया था, खांडवायन कहलाये।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय ११४ से ११७ तक

बड़े होने पर परशुराम ने शिवाराधन किया। उस नियम का पालन करते हुए उन्होंने शिव को प्रसन्न कर लिया। शिव ने उन्हें दैत्यों का हनन करने को आज्ञा दी। परशुराम ने शत्रुओं से युद्ध किया तथा उनका वध किया किंतु इस प्रक्रिया में परशुराम का शरीर क्षत-विक्षत हो गया। शिव ने प्रसन्न होकर कहा कि शरीर पर जितने प्रहार हुए हैं, उतना ही अधिक देवदत्व उन्हें प्राप्त होगा। वे मानवेतर होते जायेंगे। तदुपरांत शिव ने परशुराम को अनेक दिव्यास्त्र प्रदान किये, जिनमें से परशुराम ने कर्ण पर प्रसन्न होकर उसे दिव्य धनुर्वेद प्रदान किया।

म० भा०, कर्णपर्व, अध्याय ३४, श्लोक १२९-१५९

जमदग्नि ऋषि ने रेणुका के गर्भ से अनेक पुत्र प्राप्त किये। उनमें सबसे छोटे परशुराम थे। उन दिनों हैहय-वंश का अधिपति अर्जुन था। उसने विष्णु के अंशावतार दत्तात्रेय के वरदान से एक सहस्र भुजाएं प्राप्त की थीं। एक बार नर्मदा में स्नान करते हुए मदोन्मत्त हैहयराज ने अपनी बांहों से नदी का वेग रोक लिया, फलत: उसकी धारा उल्टी बहने लगी, जिससे रावण का शिविर पानी में डूबने लगा। दशानन ने अर्जुन के पास जाकर उसे भला-बुरा कहा तो उसने रावण को पकड़कर कैद कर लिया। पुलस्त्य के कहने पर उसने रावण को मुक्त किया। एक बार वह वन में जमदग्नि के आश्रम पर पहुंचा। जमदग्नि के पास कामधेनु थी। अत: वे अपरिमित वैभव के भोक्ता थे। ऐसा देखकर हैहयराज सहस्रबाहु अर्जुन ने कामधेनु का अपहरण कर लिया। परशुराम ने फरसा उठाकर उसका पीछा किया तथा युद्ध में उसकी समस्त भुजाएं तथा सिर काट डाले। उसके दस हजार पुत्र भयभीत होकर भाग गये। कामधेनु सहित आश्रम लौटने पर पिता ने उन्हें तीर्थाटन कर अपने पाप धोने के लिए आज्ञा दी क्योंकि उनकी मति में ब्राह्मण का धर्म क्षमादान है। परशुराम ने वैसा ही किया। एक वर्ष तक तीर्थ करके वे वापस आये। उनकी मां जल का कलश भरने के लिए नदी पर गयीं। वहां गंधर्व चित्ररथ अप्सराओं के साथ जलक्रीड़ा कर रहा था। उसे देखने में रेणुका इतनी तन्मय हो गयी कि जल लाने में विलंब हो गया तथा यज्ञ का समय व्यतीत हो गया। उसकी मानसिक स्थिति समझकर जमदग्नि ने अपने पुत्रों को उसका वध करने के लिए कहा। परशुराम के अतिरिक्त कोई अन्य पुत्र इस कार्य के लिए तैयार नहीं हुआ। पिता के कहने से परशुराम ने मां और सब भाइयों का वध कर दिया। पिता के प्रसन्न होने पर उसने वरदानस्वरूप उन सबका जीवित होना मांगा, अत: सब पूर्ववत् जीवित तथा स्वस्थ हो गये। हैहयराज अर्जुन के पुत्र निरंतर बदला लेने का अवसर ढूंढ़ते रहते थे। एक दिन पुत्रों की अनुपस्थिति में उन्होंने ऋषि जमदग्नि का वध कर दिया। परशुराम ने उन सबको मारकर महिष्मति नगरी में उनके कटे सिरों से एक पर्वत का निर्माण किया। उन्होंने अपने पिता को निमित्त बनाकर इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रियहीन कर दिया। वास्तव में परशुराम श्रीविष्णु के अंशावतार थे, जिन्होंने क्षत्रिय नाश के लिए ही जन्म लिया था। उन्होंने अपने पिता के धड़ को सिर से जोड़कर यजन द्वारा उन्हें स्मृति रूप सकल्पमय शरीर की प्राप्ति करवा दी।

श्रीमद् भा०, स्कंध ९, अ० १५-१६

परशुराम कुंड परशुराम कुड नामक तीर्थस्थान में पांच कुंड बने हुए हैं। परशुराम ने समस्त क्षत्रियों का संहार करके उन कुंडों की स्थापना की थी तथा अपने पितरों से वर प्राप्त किया था कि क्षत्रिय-संहार के पाप से मुक्त हो जायेंगे।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय ८३, श्लोक २६ से ४२ तक

पराशर मुनि शक्ति के पुत्र तथा वसिष्ठ के पौत्र का नाम पराशर था। बड़े होने पर जब उसे पता चला कि उसके पिता को वन में राक्षसों ने खा लिया था तब वह क्रुद्ध होकर लोकों का नाश करने के लिए उद्यत हो उठा। वसिष्ठ ने उसे शांत किया किंतु क्रोधाग्नि व्यर्थ नही जा सकती थी, अत: समस्त लोकों का पराभव न करके

पराशर ने राक्षस सत्र का अनुष्ठान किया। सत्र में प्रज्वलित अग्नि में राक्षस नष्ट होने लगे। कुछ निर्दोष राक्षसों को बचाने के लिए महर्षि पुलस्त्य आदि ने पराशर से जाकर कहा—"ब्राह्मणों को क्रोध शोभा नहीं देता। शक्ति का नाश भी उसके दिये शाप के फलस्वरूप ही हुआ। हिंसा ब्राह्मण का धर्म नहीं है।" समझा-बुझाकर उन्होंने पराशर का यज्ञ समाप्त करवा दिया तथा संचित अग्नि को उत्तर दिशा में हिमालय के आसपास वन में छोड़ दिया। वह आज भी वहां पर्व के अवसर पर राक्षसों, वृक्षों तथा पत्थरों को जलाती है।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय १७७ से १८० तक

पराशर-गीता एक बार राजा जनक ने पराशर मुनि से इहलोक और परलोक में भी कल्याणकारी कर्मों के विषय में पूछा। पराशर ने जनक को जो उपदेश दिया, वह पराशर-गीता नाम से विख्यात है।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय २६०-२६८

परीक्षित (क) अश्वत्थामा से जब अर्जुन का युद्ध हुआ था, तब अश्वत्थामा ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया था (दे० अश्वत्थामा), जिसे वापस लौटाने में असमर्थ होने के कारण उन्होंने पांडवों के गर्भों पर छोड़ दिया था। फलस्वरूप उत्तरा ने जिस पुत्र को जन्म दिया, वह मृत हुआ। अश्वत्थामा द्वारा पांडवों के गर्भ पर ब्रह्मास्त्र छोड़े जाने पर श्रीकृष्ण ने उत्तेजित होकर कहा था कि उत्तरा को परीक्षित नामक पुत्र की उपलब्धि का वरदान प्राप्त है, अतः उस बालक के मृत होने पर भी कृष्ण उसे प्राण प्रदान करेंगे। उत्तरा के मृत बालक को लक्ष्य कर कुंती ने कृष्ण को पूर्ववचनों का स्मरण दिलाया, अतः कृष्ण ने बालक को पुनर्जीवित कर दिया तथा उसका नाम परीक्षित रखा गया।

म० भा०, आश्वमेधिकपर्व, अध्याय ६६-७०

अभिमन्यु के पुत्र परीक्षित कौरववंशी राजा थे। वे अत्यंत न्यायप्रिय थे। एक बार शिकार खेलते हुए वे वन में पहुंचे। उनके बाण से घायल हुआ मृग अदृश्य हो गया। उसके विषय में पूछते हुए वे भूख और थकान से आतुर स्थिति में शमीक ऋषि के पास पहुंचे। कई बार हिरण के विषय में पूछने पर भी शमीक ने कोई उत्तर नहीं दिया क्योंकि उन्होंने मौनव्रत लिया हुआ था। राजा को मालूम नहीं था अतः क्रुद्ध होकर उन्होंने शमीक ऋषि के कंधे पर एक मरा हुआ सांप रख दिया और चले गये। रास्ते में उन्हें पश्चात्ताप होने लगा। शमीक के पुत्र का नाम शृंगी था। उसे जब मालूम पड़ा तो उसने राजा परीक्षित को सात दिन के अंदर तक्षक नामक सर्पदंशन से मरने का शाप दिया। शमीक ऋषि को ज्ञात हुआ तो वे बोले कि यह अच्छा नहीं हुआ क्योंकि राजा ने अनजाने में यह भूल की थी। शमीक ने इस शाप से सावधान रहने के लिए राजा को कहला भेजा। राजा एक खंबे के आधार पर टिके महल में अत्यंत सुरक्षित रहते रहे। सर्पदंशन के उपचार की समस्त औषधियां भी वहां विद्यमान थीं। जब कश्यप को इसके विषय में ज्ञात हुआ तो वे सर्प का विष उतारने की विद्या का प्रयोग करने के निमित्त राजमहल की ओर चले। मार्ग में छद्मवेश में उन्हें नाग मिले। उनके मंतव्य को जानकर सर्पों ने कहा—"राजा की आयु समाप्त होने वाली है, अतः इस उपचार से कोई विशेष लाभ नहीं होगा—धन की कामना से जा रहे हो तो लो।" कश्यप लौट आये। सर्पों ने कश्यप की विद्या की परीक्षा भी ली थी। एक वट वृक्ष को तक्षक ने डंस लिया था जो कि तुरंत भस्म हो गया था। कश्यप ने उसे पुनः जिला दिया था। सातवें दिन सर्पों ने ब्राह्मणों का रूप धारण करके उस महल में प्रवेश किया तथा राजा को फल, कुश तथा जल समर्पित किये। राजा तथा मंत्रियों ने जब फल खाने प्रारंभ किये तब राजा के हाथ में जो फल था, उससे एक छोटा-सा कीट निकला। कीट-रूप में वह तक्षक ही था। उसने राजा को डंस लिया और आकाश में उड़ गया।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय ४०, श्लोक १० से ४० तक
अ० ४१, ४२, ४३, ४४।१ से ६ तक

देवी भागवत् में राजा परीक्षित ने फल का कीड़ा उठाकर अपनी गर्दन पर रख लिया और बोला—"अब तो सायंकाल हो गया, मैं शाप को अंगीकार कर इस कीड़े से कटवा लेता हूं कि ब्राह्मण का शाप व्यर्थ न जाय।" वह कीड़ा तुरंत तक्षक बन गया (शेष महाभारत की कथा के समान)।

दे० भा०, २।८-१०।-

अश्वत्थामा के छोड़े ब्रह्मास्त्र के कारण पांच बाण उत्तरा का पीछा करते हुए दिखायी पड़े। वह रोती हुई श्रीकृष्ण की शरण में पहुंची और बोली—"मेरी मृत्यु भले ही हो जाय किंतु मेरा गर्भ नष्ट न हो।" श्रीकृष्ण ने उसके

गर्भ की रक्षा मायावी कवच से की तथा सुदर्शन चक्र से वाणों का उच्छेद कर दिया। गर्भस्थ शिशु जब अश्वत्थामा के ब्रह्मास्त्र से जलने लगा तो उसको अंगूठे-भर आकार के एक दिव्य पुरुष के दर्शन हुए। उसके चार हाथ थे। वह जलती हुई गदा लेकर शिशु के चारों ओर घूमकर उसकी रक्षा करता रहा, जब तक उसका जन्म नहीं हो गया। उत्तरा के पुत्र का नाम परीक्षित रखा गया। पांडवों के महाप्रस्थान से पूर्व परीक्षित का राज्याभिषेक कर दिया गया था। उसने दिग्विजय की। उसी संदर्भ में पर्यटन करते हुए परीक्षित ने राजा का वेश धारण किये हुए कलियुग को एक टांग पर चलनेवाले बैल तथा रोती हुई गाय को मारते देखा। राजा ने उन दोनों की रक्षा की तथा परिचय पूछा। यह जानकर कि "गौ साक्षात् पृथ्वी है, जो कि कृष्ण के विरह और अधर्म के बढ़ने से दुःख का अनुभव कर रही है तथा एक टांगवाला बैल अधर्म है जिसकी तप, पवित्रता और दयारूपी तीन टांगें नष्ट हो चुकी हैं, सत्य-रूपी टांग को भी कलयुग नष्ट करने पर तुला हुआ है, वह राजावेशी शूद्र ही कलयुग है।" राजा ने कलयुग को मारने के लिए तलवार उठायी। कलयुग ने परीक्षित की शरण ग्रहण की। राजा ने उसे अपना राज्य छोड़कर झूठ, मद, काम, वैर तथा सुवर्ण में रहने का आदेश दिया।

एक बार परीक्षित शिकार खेलते हुए बहुत थक गये तथा शमीक ऋषि के आश्रम में पहुंचे। शमीक समाधिस्थ थे। बार-बार मांगने पर भी राजा को पानी नहीं मिला तो रुष्ट होकर उसने एक मरा हुआ सांप धनुष की नोक से उठाकर ऋषि के गले में डाल दिया। शमीक के पुत्र ने रुष्ट होकर उन्हें सात दिन बाद तक्षक नामक सर्पदंशन से मरने का शाप दिया। राजा अपने कर्म पर बहुत लज्जित हुआ तथा गंगा के दक्षिण तट पर उत्तरामुख होकर बैठ गया। किस योनि में पुनर्जन्म होगा, इस विषय में वह चिंतित नहीं था अपितु वह भगवान का आशीर्वाद चाहता था कि वह ब्रह्मानुरक्त बना रहे। व्यास-पुत्र, शुकदेव ने प्रकट होकर उसे धर्म-संबंधी अनेक उपदेश दिये। उन्होंने राजा परीक्षित को संपूर्ण श्रीमद्भागवत सुनायी (द्वितीय स्कंध, ८।२८)। भागवत सुनने के उपरांत शुकदेव से आज्ञा लेकर परीक्षित गंगा-तट पर कुश बिछाकर, उत्तराभिमुख बैठ गया। वह महायोग में स्थित होकर ब्रह्मस्वरूप हो गया। शृंगी के शाप के कारण तक्षक सर्प राजा की ओर बढ़ रहा था। मार्ग में उसे सर्पदंशन का उपचार करनेवाले कश्यप नामक ऋषि मिले। तक्षक ने उन्हें धन देकर लौटा दिया। जब परीक्षित के पास पहुंचकर सर्प ने दंशन किया, तब वह ब्रह्मलीन हो चुका था। तक्षक के विष की ज्वाला से उसका शरीर देखते-देखते ही भस्म हो गया। जनमेजय ने सुना कि उसके पिता को तक्षक सर्प ने डंसा है; तो क्रोधवश उसने सर्पसत्र प्रारंभ किया। अनेकों सर्प यज्ञ में भस्म हो गये, किंतु तक्षक नहीं आया, क्योंकि उसने इंद्र की शरण ग्रहण कर ली थी। जनमेजय ने ब्राह्मणों को प्रेरित करके यज्ञाग्नि में सर्प और इंद्र का साथ-साथ ही आवाहन किया। इससे पूर्व कि वे दोनों यज्ञाग्नि में भस्म होते, बृहस्पति ने जनमेजय को समझाया कि वह सर्पसत्र बंद कर दें क्योंकि वह हिंसा के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। जन्म-मृत्यु के निमित्त पर मनुष्य का वश नहीं होता। जनमेजय ने बृहस्पति का कथन स्वीकार करके सर्पसत्र रोक दिया।

श्रीमद् भा०, प्रथम स्कंध, अध्याय ८, अ० १२, अ० १६-१९

(ख) परीक्षित इक्ष्वाकुवंश का राजा था। एक दिन शिकार खेलता हुआ वह घने जंगल में जा पहुंचा। वहां एक बावड़ी से पानी पीकर वह विश्राम कर रहा था। तभी उसे गीत गाती हुई एक सुंदरी के दर्शन हुए, राजा उसपर मुग्ध हो गया। उस सुंदरी ने राजा के साथ इस शर्त पर गंधर्व विवाह किया कि उसे कभी पानी के दर्शन नहीं कराए जायेंगे। राज्य में लौटकर राजा उसके साथ विहार करने में रत रहता था। उसके रनिवास में पानी नहीं जाने पाता था। एक दिन राजा उसके साथ एक उपवन में विहार करने लगा। वहां निर्मल जल से युक्त एक बावड़ी थी। राजा की अनुमति से रानी ने उसके जल में प्रवेश किया और फिर खो गयी। राजा ने सारा पानी निकलवाकर ढूंढ़ा तो वहां एक मेंढक मिला। राजा ने यह जानकर कि मेंढक ही रानी को खा गये हैं, क्रोध के आवेश में राज्य के समस्त मेंढकों को मार डालने का आदेश दिया। मंडूकराज ने राजा परीक्षित से मिलकर बताया कि वह रानी उसी की कन्या है—उसका नाम सुशोभना है। वह अनेक राजाओं को इसी प्रकार धोखा देती रही है। राजा सुशोभना को प्राप्त करने के लिए आकुल था। राजा से यह

आश्वासन लेकर कि वह अन्य मेढकों को नहीं मारेगा, मंडूकराज ने अपनी पुत्री उसे समर्पित कर दी, साथ ही सुशोभना को यह शाप भी दिया कि उसकी संतान ब्राह्मण-विरोधी होगी। कालांतर में रानी से शल, दल तथा बल नामक तीन पुत्रों का जन्म हुआ। उनमें सबसे बड़ा शल था। एक बार शल शिकार करता हुआ जंगल में दूर निकल गया। वह एक हरिण को पकड़ना चाहता था। सारथी ने कहा कि वाम्य घोड़ों के अतिरिक्त कोई अन्य घोड़ा हरिण की गति से नहीं दौड़ सकता। वामदेव मुनि के दोनों घोड़े वाम्य कहलाते थे। वे मन के समान वेग से चलते थे। शल मुनि के आश्रम पर पहुंचा। वामदेव ने मृग का वध करने के लिए दोनों घोड़े शल को दे दिये तथा कार्य-सिद्धि के उपरांत वाम्यों को वापस कर देने का आदेश दिया। शल ने कार्य-सिद्धि के उपरांत सारथी से कहा—"ये घोड़े ब्राह्मण के किस काम के! ये वापस करने की आवश्यकता नहीं है।" वामदेव मुनि ने एक माह के उपरांत अपने शिष्य से कहलाया, फिर स्वयं भी गये किंतु शल ने उन्हें ब्राह्मणोचित वाहन न मानकर दो बैल, खच्चर, गदहे अथवा अन्य घोड़े देने की इच्छा प्रकट की। वामदेव ने क्रुद्ध होकर चार राक्षसों को शल के चार टुकड़े करके उठा ले जाने को कहा। वैसा होने पर प्रजा ने दल का राज्याभिषेक कर दिया। मुनि ने दल से अपने घोड़े वापस मांगे तो उसने भी देने से इंकार कर दिया। साथ ही अपने सूत को आदेश दिया कि वह विष में बुझे हुए वाण से मुनि पर प्रहार करे तथा उसका शव कुत्तों को खाने दे। मुनि के शाप से दल का वाण रनिवास में पलते हुए उसके दसवर्षीय प्रिय पुत्र को लगा। बालक का नाम श्येनजित् था। दल क्रोध में अंधा था। उसने आदेश दिया कि एक और वाण लाया जाय और ब्राह्मण पर छोड़ा जाय। ब्राह्मण के शाप से राजा धनुष पर चढ़ाकर भी वाण नहीं छोड़ पाया। लज्जित होकर दल ने क्षमा-याचना की। वामदेव ने कहा कि विष-बुझे वाण से यदि राजा अपनी रानी का स्पर्श कर देगा तो वह ब्रह्महत्या के पाप से छूट जायेगा। राजा ने वैसे ही किया। प्रसन्न होकर मुनि ने रानी को वरदान दिया कि वह अपने बंधु-बांधवों सहित प्रसन्न रहे। वामदेव वाम्यों को लेकर वापस लौट गये।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय १९२,

परुष्णी तीर्थ अत्रि ने ब्रह्मा-विष्णु-महेश को आराधना से प्रसन्न करके उन्हें पुत्रों के रूप में मांगा तथा एक सुंदरी कन्या मांगी। फलतः उनके दत्त, सोम तथा दुर्वासा नामक पुत्र और आत्रेयी नामक कन्या का जन्म हुआ। आत्रेयी का विवाह अंगिरा से हुआ। वे अग्नि से उत्पन्न हुए थे, अतः क्रोधी थे। उनका पुत्र अंगिरस उन्हें शांत करता रहता था। क्रोध की शांति के लिए अग्नि ने बहू से कहा कि वह उन्हें जल में डुबो दे। आत्रेयी ने परुष्णी नामक नदी का रूप धारण करके पति को डुबो लिया। फलतः दंपति शांत स्वभाव के हो गये। उक्त नदी गंगा में जा मिली। उसी के नाम से वहां परुष्णी तीर्थ की स्थापना हुई।

ब्र० पु०, १४४।-

पलित एक जंगल में विशाल वटवृक्ष के कोटरों, डालियों तथा जड़ों में अनेक सर्पों, पशु-पक्षियों ने शरण ले रखी थी। उसकी जड़ में सौ दरवाजों वाले बिल बनाकर पलित नामक एक चूहा भी रहता था। उसकी डाली पर लोमश नामक बिलाव का अधिवास था। वहां एक चांडाल प्रति सायंकाल एक जाल बिछा जाता था। रात-भर में अनेक प्राणी उसमें फंस जाते थे। अतः प्रातःकाल उन्हें लेकर वह अपनी आजीविका चलाता था। एक रात असावधानता से लोमश (बिलाव) उसमें फंस गया, अतः पलित (चूहा) निर्द्वंद्व इधर-उधर घूम रहा था। तभी उसका ध्यान गया कि धरती पर नेवला तथा वृक्ष पर उल्लू उसकी घात लगाकर बैठे हुए हैं। उसने तुरंत लोमश से कहा—"यदि तुम इस समय मुझे शरण दो तो चांडाल के आने से पूर्व मैं तुम्हारा जाल काट दूंगा।" बिलाव मान गया। चूहा उसकी गोद में जा बैठा। नेवला और उल्लू निराश होकर लौट गये। चांडाल को आता देख चूहे ने लोमश को पाशमुक्त कर दिया तथा तुरंत बिल में घुस गया। चांडाल के निराश लौटने के उपरांत बिलाव अनेक बार पलित को अपने पास आने के लिए आमंत्रित किया, किंतु चूहे ने स्पष्ट रूप से यह कहकर कि 'जिस समय तुम्हारा भी मतलब था मैं तुमपर विश्वास कर सकता था, पर अब विपत्ति टल जाने पर तुम मेरे प्रति मित्रभाव नहीं रख सकते,' उसके पास जाने से इंकार कर दिया।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय १३७-१३८

पर्वत (पंख छेदन) इंद्र ने अनुभव किया कि पर्वतों के उड़कर स्थान बदल लेने से पृथ्वी का संतुलन बिगड़

जाता है, अतः इंद्र ने पर्वतों के पंखों का छेदन कर दिया। एकमात्र मैनाक पर्वत को ही पंखधारी रहने दिया। उसमें भी यह शर्त निश्चित थी कि वह समुद्र में ही स्थित रहेगा, अन्यथा उसके पंखों का भी छेदन कर डाला जायेगा।

हरि० वं० पु०, भविष्यपर्व, ३९।१८-२०।

पश्चिम दिन के पश्चात् सूर्य इस दिशा में अपनी किरणों का विसर्जन करता है, अतः यह पश्चिम दिशा कहलाती है। वरुण का निवासस्थल भी यही है। चंद्रमा यहां रहते हुए षट्रस का पान कर शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा पर यहीं उदित होता है। यहीं से निशा का प्राकट्य होता है। इसी दिशा में अंधकार में इंद्र ने सोयी हुई गर्भवती दिति के उदर में प्रवेश कर गर्भ का उच्छेद किया था जिससे मरुद्गणों की उत्पत्ति हुई थी। पश्चिम में मंदराचल, क्षीरसागर, विष्णु, नागराज, आदि का निवास है।

म० भा०, उद्योगपर्व, अ० ११०

पांचजन्य काश्यप (कश्यपपुत्र), वासिष्ठ (वसिष्ठपुत्र), प्राणक (प्राणपुत्र), च्यवन तथा त्रिवर्चा (दोनों अंगिरा के पुत्र हैं)—ये पांच अग्नियां हैं। इन पांचों ने पुत्र की प्राप्ति के लिए चिरकाल तक तपस्या की। फलस्वरूप उन्हें एक पुत्र प्राप्त हुआ, जो पांचजन्य कहलाया।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय २२०, श्लोक १ से ५ तक

पांडव एक बार सभी देवगण गंगा में स्नान करने के लिए गये तो उन्होंने गंगा में बहता एक कमल का फूल देखा। इंद्र उसका कारण खोजने गंगा के मूलस्थान की ओर बढ़े। गंगोत्री के पास एक सुंदरी रो रही थी। उसका प्रत्येक आंसू गंगाजल में गिरकर स्वर्णकमल बन जाता था। इंद्र ने उसके दुःख का कारण जानना चाहा तो वह इंद्र को लेकर हिमालय पर्वत के शिखर पर पहुंची। वहां एक देव तरुण एक सुंदरी के साथ क्रीड़ारत था। इंद्र ने उसकी अपमानजनक भर्त्सना की तथा दुरभिमान के साथ बताया कि वह सारा स्थान उसके अधीन है। उस देव पुरुष के दृष्टिपात मात्र से इंद्र चेतनाहीन जड़वत हो गये। देव पुरुष ने इंद्र को बताया कि वह रुद्र है तथा इंद्र को एक पर्वत हटाकर गुफा का मुंह खोलने का आदेश दिया। ऐसा करने पर इंद्र ने देखा कि गुफा के अंदर चार अन्य तेजस्वी इंद्र विद्यमान थे। रुद्र के आदेश पर इंद्र ने भी वहां प्रवेश किया। रुद्र ने कहा—"तुमने दुरभिमान के कारण मेरा अपमान किया है, अतः तुम पांचों पृथ्वी पर मानव-रूप में जन्म लोगे। तुम पांचों का विवाह इस सुंदरी के साथ होगा जो कि लक्ष्मी है। तुम सब सत्कर्मों का संपादन करके पुनः इंद्रलोक की प्राप्ति कर पाओगे।" अतः पांचों पांडव तथा द्रौपदी का जन्म हुआ। पंचम इंद्र ही पांडवों में अर्जुन हुए।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय १९६, श्लोक १ से ३६ तक

पांडव-महाप्रस्थान अर्जुन ने हस्तिनापुर पहुंचने पर पांडवों को वृष्णि, अंधक तथा यादव-वंश के नाश की दुर्घटना सुनायी। काल की गति पहचानकर पांडवों ने उत्तरा के पुत्र परीक्षित का राज्याभिषेक किया तथा उन पांचों ने द्रौपदी और एक कुत्ते के साथ राज्य का त्याग कर महाप्रस्थान किया। मार्ग में समुद्र में डूबी हुई द्वारका को देख वे हिमालय की ओर बढ़े। वे वल्कल धारण करके मुनियों के से वेश में थे। अचानक एक विशाल व्यक्ति ने उनका मार्ग रोक लिया। वह अग्नि था। उसने अर्जुन से कहा कि वरुण देवता से प्राप्त किया गांडीव वे उसे ही समर्पित कर दें। अर्जुन ने अपने समस्त अस्त्र-शस्त्र समुद्र में डुबो दिये। तदुपरांत हिमालय को पार कर वे बालू के समुद्र में पहुंचे। वहां उन्होंने मेरु पर्वत के दर्शन किये। पैदल चलते हुए उनमें से क्रमशः द्रौपदी, सहदेव, नकुल, अर्जुन तथा भीमसेन गिरकर प्राण त्यागते गये। युधिष्ठिर ने प्रत्येक व्यक्ति के धराशायी होने का कारण भीम को बताया—"द्रौपदी अर्जुन के प्रति विशेष पक्षपातपूर्ण थी, सहदेव अपनी बुद्धि के सम्मुख तथा नकुल रूप के सम्मुख किसी को कुछ नहीं समझते थे, अर्जुन को शौर्य पर तथा भीम, तुम्हें अपने बल पर अभिमान था।" उनकी ओर बिना देखे युधिष्ठिर आगे बढ़ते गये। देवराज इंद्र अपने रथ पर युधिष्ठिर को सशरीर ले जाना चाहते थे। उन्हें दिव्यलोक प्राप्त थे किंतु युधिष्ठिर अपने स्वामी-भक्त कुत्ते को जीते-जी भटकाव में छोड़कर जाने को तैयार नहीं हुए। वास्तव में कुत्ते का रूप धारण कर धर्म ही उनकी परीक्षा ले रहे थे। धर्म अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुए और युधिष्ठिर की प्रशंसा करने लगे। युधिष्ठिर ने अपने मृत भाइयों तथा पत्नी के विषय में पूछा तो इंद्र ने कहा कि वे शरीर त्यागकर स्वर्ग पहुंच चुके हैं। युधिष्ठिर सशरीर वहीं पहुंचेंगे। देवलोक पहुंचकर युधिष्ठिर ने देखा कि कर्ण, शेष पांडव तथा द्रौपदी तो वहां नहीं हैं किंतु दुर्योधन ऐश्वर्य भोग रहे हैं। वे दिव्यलोक छोड़कर

अपने बंधुओं के पास जाने के लिए आतुर थे। इंद्र ने उन्हें मायावी नरक में भेजकर यातनाओं से आक्रांत, पांडवों, द्रौपदी तथा कर्ण आदि के दर्शन करवाये। युधिष्ठिर वहीं रुकना चाहते थे क्योंकि उनका वहां रहना शेष बंधुओं के लिए सुखकर था। तदुपरांत इंद्र ने उस मायावी नरक का परिहार कर उन सबको दिव्यलोक में पहुंचा दिया। यह भी बताया कि प्रत्येक राजा अच्छे-बुरे कर्म करता है। जो पहले नरक भोग लेता है, वह अंत में स्वर्ग भोगता है। किंतु पहले स्वर्ग भोगनेवाला शेष समय नरक में काटता है। युद्ध में छल करने के कारण समस्त पांडवों के लिए एक बार नरक के दर्शन करने अनिवार्य थे। स्वर्ग में पहुंचकर युधिष्ठिर युद्ध में वीरगति प्राप्त करनेवाले समस्त जनसमुदाय से मिले।

म० भा०, महाप्रस्थानिकपर्व, स्वर्गारोहण,
अध्याय १।-, दे० भा०, २।८।-

पांडु महाराज पांडु को युद्ध तथा शिकार विशेष प्रिय थे। एक बार उन्होंने एक मृगरूपधारी किंदम नामक महर्षि को मैथुनकाल में मार डाला। उसने मरते हुए शाप दिया कि स्त्री-सहवास होने पर पांडु की मृत्यु हो जायेगी। पांडु की दो पत्नियां थीं—कुंती तथा माद्री। कुंती ने दुर्वासा से प्राप्त हुई विद्या का आश्रय लेकर क्रमशः धर्म, वायु तथा इंद्र का आवाहन किया, फलस्वरूप युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन का जन्म हुआ। फाल्गुनी नक्षत्रों के संधिकाल में जन्म लेने के कारण अर्जुन फाल्गुन भी कहलाये। माद्री ने भी कुंती से उपदेश पाकर अश्विनी-कुमारों का आवाहन किया, अतः नकुल तथा सहदेव नामक जुड़वां भाइयों का जन्म हुआ।

कालांतर में माद्री के सौंदर्य पर आसक्त होकर पांडु ने उससे समागम किया, अतः पांडु की मृत्यु हो गयी तथा माद्री सती हो गयी।

पितृलोक में रहते हुए पांडु को जब मालूम पड़ा कि नारद मुनि भूलोक जा रहे हैं तब उन्होंने युधिष्ठिर के पास संदेश भेजा कि वह राजसूय यज्ञ करें।

म० भा०, आदिपर्व, १।११३-११५।-
अ० ९५।-५९ से अंत तक।-
११७-१२४।-
सभापर्व, १२।२३-२८।-

पांड्य नरेश पांड्य-नरेश लोकविख्यात वीर माना गया है। अश्वत्थामा से उसका घमासान युद्ध हुआ। अंततोगत्वा वह अपने पीछे चलनेवाले छह महारथियों तथा हाथी समेत अश्वत्थामा के हाथों मारा गया।

म० भा०, कर्णपर्व, अध्याय २०

पाताल नागलोक का मध्यभाग 'पाताल' नाम से विख्यात है, क्योंकि जलस्वरूप जितनी भी वस्तुएं हैं, वे सब वहां पर्याप्त रूप से गिरती हैं (पतंति+अलम् के अनुसार पात+अलम्)। वहां दैत्य तथा दानव निवास करते हैं। जल का आहार करनेवाली आसुर अग्नि सदा उद्दीप्त रहती है। वह अपने को देवताओं से नियंत्रित मानती है, क्योंकि देवताओं ने दैत्यों का नाश करके अमृतपान किया तथा अमृत पीकर उसका अवशिष्ट भाग वहीं रख दिया था। अतः वह अग्नि अपने स्थान के आसपास नहीं फैलती। अमृतमय सोम की हानि और वृद्धि निरंतर दिखायी पड़ती है। सूर्य की किरणों से मृतप्राय पाताल-निवासी चंद्रमा की अमृतमयी किरणों से पुनः जी उठते हैं।

म० भा०, उद्योगपर्व, अध्याय ९९

पारिजात रुक्मिणी के व्रतोद्यापन के समय रैवतक पर्वत पर नारद मुनि भी पहुंचे। उन्होंने कृष्ण को पारिजात का पुष्प दिया, साथ ही बताया—"यह पुष्प दिव्य है।" पारिजात वृक्ष की सृष्टि कश्यप ने अदिति के पुण्यकर्म से संतुष्ट होकर की थी। यह वृक्ष गंगा के ऊपर प्रकट हुआ था। यह मनोकामनाओं को पूर्ण करनेवाला तथा अनेक अन्य गुणों से युक्त है। समुद्र-मंथन में से पारिजात वृक्ष के निकलने पर इंद्र ने शिव की प्रार्थना की थी कि वह वृक्ष शची के उद्यान में क्रीड़ावृक्ष के रूप में लगाया जाये। एक बार अंधक नामक दैत्य उस वृक्ष में घुस गया था, अतः दैत्य के अवध्य होने पर भी शिव ने मार डाला था। कृष्ण के निकट रुक्मिणी बैठी थी। कृष्ण ने उसे वह पुष्प दे दिया। नारद ने उसे कृष्ण की सर्वोत्कृष्ट प्रिया घोषित किया। सत्यभामा की दासियां भी उस उत्सव में गयी थीं। उन्होंने सत्यभामा को समस्त घटना कह सुनायी तो वह कोप-भवन में चली गयी। श्रीकृष्ण ने मानिनी सत्यभामा के क्रोध का शमन करने के लिए उसको वचन दिया कि पारिजात वृक्ष लाकर उसे दे देंगे। कृष्ण ने नारद को अपना दूत बनाकर इंद्र के पास भेजा और कहलाया कि इंद्र पारिजात वृक्ष दे दें अन्यथा कृष्ण उनपर गदा से प्रहार करेंगे। इंद्र ने दूत नारद से कहा—"मेरे बाद कृष्ण ही उन समस्त वस्तुओं का उपभोग करेंगे ; किंतु स्वर्गलोक

की वस्तु मृत्युलोक ले जाना उचित नहीं जान पड़ता।" यह उत्तर सुनकर कृष्ण ने इंद्र पर चढ़ाई कर दी। बृहस्पति को ज्ञात हुआ तो वे इंद्र पर बहुत बिगड़े, फिर उन्होंने शिव की तपस्या की। शिव ने प्रकट होकर कहा कि पूर्वकाल में इंद्र ने देवशर्मा नामक मुनि की पत्नी को हरने की अभिलाषा की थी, फलस्वरूप मुनि ने इंद्र का अशुभ चिंतन किया था। उसी निमित्त उपेंद्र (विष्णु) से इंद्र की पराजय होगी। तुम अदिति को इंद्र के महल में ले जाओ। सब शुभ होगा।" इंद्र से कृष्ण का ससैन्य युद्ध हुआ। गरुड़ के आक्रमण से पारियात्र पर्वत बिखर-कर पृथ्वी में धंस गया। ऐरावत प्रहारग्रस्त था, इंद्र हार रहे थे। रात-भर के लिए युद्ध रोक दिया गया। कृष्ण के चिंतन करने से गंगा भी वहां प्रकट हो गयी। कृष्ण की स्तुति से प्रसन्न होकर शिव ने वर दिया कि उन्हें पारिजात अवश्य मिलेगा। ब्रह्मा ने कश्यप तथा अदिति को उन दोनों को सुलह करवाने के लिए भेजा। अदिति ने कृष्ण से कहा कि वे पारिजात वृक्ष द्वारका ले जायें। सत्यभामा जब पुण्यक व्रत का अनुष्ठान कर ले तब वे वृक्ष को पुन: नंदनवन में स्थापित कर दें। कृष्ण ने मान लिया तथा वैसा ही किया।

हरि० वं० पु, विष्णुपर्व,६५-७६।

श्रीकृष्ण गरुड़ पर सत्यभामा सहित विराजमान स्वर्ग पहुंचे। आतिथ्य ग्रहण करके उन्होंने अदिति के कुंडल दे दिये तथा भौमासुर के वध की घटना सुनायी। इंद्र की पत्नी शची ने सत्यभामा को मानवी मानकर अपने 'पारिजात' वृक्ष के उसे पुष्प अर्पित नहीं किये। कृष्ण का आतिथ्य पारिजात से किया। सत्यभामा की प्रेरणा से कृष्ण ने पारिजात के वृक्ष का अपहरण कर लिया। वह वृक्ष समुद्रमंथन से निकला था और देवराज को मिला था। वनरक्षकों के रोकने पर सत्यभामा ने कहा—"समुद्रमंथन से निकले अमृत, मदिरा, चंद्र आदि की भांति यह वृक्ष भी सबकी सामूहिक संपत्ति है। शची को जाकर सूचित कर दो, चाहे तो इंद्र को युद्ध के लिए भेज दें।" इंद्र और कृष्ण के युद्ध में कृष्ण की विजय हुई। मैदान से भागते हुए इंद्र को बुलाकर सत्यभामा ने वृक्ष लौटा दिया और उसे पत्नीसहित देवता होने का मिथ्या गर्व न करने के लिए कहा।

शि०पु०, ५।३०

पार्वती सती के आत्मदाह के उपरांत विश्व शक्तिहीन हो गया। उस भयावह स्थिति से त्रस्त महात्माओं ने देवी की आराधना की। तारक नामक दैत्य सबको परास्त कर त्रैलोक्य पर एकाधिकार जमा चुका था। ब्रह्मा ने उसे शक्ति भी दी थी और यह भी कहा था कि शिव के औरस पुत्र के हाथों मारा जायेगा। शिव को पत्नीहीन देखकर तारक आदि दैत्य प्रसन्न थे। देवतागण देवी की शरण में गये। देवी ने हिमालय की एकांत साधना से प्रसन्न होकर देवताओं से कहा—"हिमालय के घर में मेरी शक्ति गौरी के रूप में जन्म लेगी। शिव उससे विवाह करके पुत्र को जन्म देंगे, जो तारक-वध करेगा।"

दे० भा०, ७।३१

पिंगला पिंगला एक वेश्या थी। एक सायं वह संकेत-स्थल पर खड़ी रही, किंतु उसका प्रिय नहीं आया। उन कुछ क्षणों में अचानक उसे ब्रह्म का बोध हुआ कि वह निरंतर उसके पास रहता है किंतु वह उधर से विरक्त हो हाड़-मांस के पुरुषों में लिप्त रहती है। उसी दिन से उसने ब्रह्मोपासना प्रारंभ कर दी तथा मानव शरीर-मोह का परित्याग कर दिया।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय १७४, श्लोक ५६-६३

पिंडोल भारद्वाज एक बार राजगृह के श्रेष्ठी को चंदन की एक बड़ी-सी गांठ मिली। उसने सोचा कि उसको खरदवा कर एक पात्र बनवाया जाये। पात्र बनवाकर उसने छींकें में रखकर बांस की एक नोक पर अटका दिया, फिर बांस के अंतिम सिरे से दूसरा बांस, फिर तीसरा बांस आदि जोड़कर उस पात्र को आकाश की ओर बढ़ा दिया तथा कहा कि जो अर्हत् हो, वह पात्र वहीं से ग्रहण करे। पिंडोल भारद्वाज ने यह सुना तो उड़कर वह पात्र उठा लिया। उसके चमत्कार को देखकर उसके पीछे भीड़ लग गयी। बुद्ध भगवान को मालूम पड़ा तो उन्होंने पिंडोल को धिक्कारा कि लकड़ी के पात्र के लिए इतना चमत्कार दिखाने की क्या आवश्यकता थी। साथ ही उन्होंने भिक्षुओं को चमत्कार-प्रदर्शन करने से वर्जित कर दिया तथा पात्र को तुड़वा दिया।

बु० च०, ९।१८

पितर त्रेता और द्वापर युगों के संधिकाल में दिव्य मानव-पितर, विश्वदेवों के साथ सुमेरु पर्वत पर बैठे हुए थे। चंद्रमा की कन्या (जिसका पहला नाम ऊर्जा तथा दूसरा स्वधा, तीसरा कोका था) अंजलि बांधकर अचानक जा खड़ी हुई। उसने पितरों को अपना परिचय देकर उनका

वरण करने की आज्ञा मांगी। उन सबकी दृष्टि उसपर केंद्रित देखकर विश्वदेव वहां से स्वर्ग चले गये। चंद्रमा अपनी कन्या को ढूंढ़ता हुआ वहां पहुंचा तो उसने धृष्ट कन्या को कोका नामक नदी होने का और पितरों को तप-भ्रष्ट हृदयहीन होकर नीचे गिर जाने का शाप दिया। कालांतर में असुरों ने विश्वदेवों रहित पितरों पर आक्रमण कर दिया। शापित पितरों ने एक शिला को कसकर पकड़ लिया। कोका नदी ने उन सबको अपने बल से ढककर छुपा लिया। वे जल में डूबे हुए क्षुधा से पीड़ित हो गये। अतः उन्होंने विष्णु की आराधना की। उनसे प्रसन्न होकर वराहावतार ने शिला को फोड़कर पितरों को जल से बाहर निकालकर उन्हें भोज्य पदार्थ प्रदान किये। पितरों ने विष्णु की कृपा से पुनः स्वर्ग प्राप्त किया तथा स्वधा (उनकी पत्नी) ने आकाशचारिणी योगमाता का रूप प्राप्त किया। उसका एक रूप कोका नदी के रूप में भूस्थित भी है।

ब्र० पु०, २१९।-

पिप्पला विश्वावसु की बहन का नाम पिप्पला था। उसने यज्ञ में वेदपाठी ऋषियों का परिहास किया, अतः शापिता वह यक्षिणी नामक नदी हो गयी। शिव के आशीष से गौतमी से संगम होने पर वह शापमुक्त हुई।

ब्र० पु०, १३२।-

पिप्पलाद एक बार भारद्वाजनंदन (सुकेशा), शिविकुमार (सत्यकाम), गर्गगोत्र में उत्पन्न सूर्य का पोता (सौर्यायणि), कौसलदेशीय (अश्वलायन अथवा अश्वलकुमार), विदर्भदेशीय (भार्गव) और कत्य के पोते का पुत्र (कबंधी)—ये छह परब्रह्म के जिज्ञासु ऋषिगण पिप्पलाद के पास पहुंचे। ऋषि पिप्पलाद ने उनसे एक वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचर्य तथा तपस्यासहित निवास करने के लिए कहा तथा उस अवधि के उपरांत उनके प्रश्नों का उत्तर देने का वचन दिया।

कबंधी (कत्य के प्रपौत्र) ने प्रश्न किया—"सृष्टि की उत्पत्ति किससे होती है?" प्रश्न का उत्तर देते हुए पिप्पलाद ने कहा—"सर्वशक्तिमान परब्रह्म परमेश्वर के संकल्प से प्राण (सूर्य—प्राणों का कारणभूत तत्त्व) तथा रवि (चंद्र—पिंड का पोषक तत्त्व) का निर्माण होता है। उनके संयोग से सृष्टि का निर्माण होता है।"

प्रश्नोपनिषद्, प्रथम प्रश्न

भार्गव ने महर्षि पिप्पलाद से तीन प्रश्न किये—"(१) प्राणियों का शरीर धारण करनेवाले कितने देवता हैं? (२) कौन-कौन इसको प्रकाशित करते हैं? (३) कौन-कौन अत्यंत श्रेष्ठ हैं?"

उनके उत्तर में ऋषि पिप्पलाद ने कहा—"वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी नामक चार महाभूतों से शरीर का निर्माण हुआ है, अतः ये धारक देवता हैं। ज्ञानेंद्रियां, कर्मेंद्रियां तथा चार अंतःकरण (अंतकरण के चार भाग) प्रकाशक हैं। ये सब देह को प्रकाशित करने के उपरांत परस्पर झगड़ पड़े कि सबसे मुख्य कौन है? प्राण ने सिद्ध किया कि वही इन सबकी सुरक्षा करता है, अतः वही सबसे अधिक मुख्य है।"

प्रश्नोपनिषद्, द्वितीय प्रश्न

आश्वलायन ने पूछा—"(१) प्राण किससे उत्पन्न होते हैं? (२) मनुष्य-शरीर में कैसे प्रवेश पाते और शरीर में कैसे स्थित रहते हैं, कैसे बाहर निकलते हैं?" इत्यादि।

पिप्पलाद ने उत्तर दिया—"प्राण की उत्पत्ति परमात्मा से होती है। वह अपने दृढ़ संकल्प से किसी शरीर में प्रवेश करता है। वह अपान, व्यान आदि रूपों में विभक्त होकर शरीर का संचालन करता हुआ वहां स्थित रहता है। मृत्यु के समय मनुष्य की आत्मा का जैसा संकल्प होता है, मन वैसा ही चिंतन करता है तथा उसीके अनुसार वह मुख्य प्राण उदान वायु से मिलकर मन और इंद्रियों से युक्त जीवात्मा को भिन्न-भिन्न लोक अथवा योनियों में ले जाता है।"

प्रश्नोपनिषद्, तृतीय प्रश्न

गार्ग्य सौर्यायणि ने पूछा—"मानव में कौन इंद्रियां सोती और जागती हैं तथा कौन-सा देव मानव के स्वप्नों का दर्शन करता है तथा किसमें सबकी प्रतिष्ठा होती है?" मुनि पिप्पलाद ने उसकी समस्त शंकाओं का समाधान करते हुए बतलाया कि "जिस प्रकार सूर्यास्त के समय समस्त किरणें सूर्य में सिमट जाती हैं, उसी प्रकार अंततोगत्वा समस्त इंद्रियां परमदेव मन में सिमट जाती हैं तब किसी प्रकार की चेष्टा अथवा विकार मन में शेष नहीं रहता और 'वह सोता है', ऐसा कहलाने लगता है।"

प्रश्नोपनिषद्, चतुर्थ प्रश्न

सत्यकाम (शिवि पुत्र) ने पूछा—"आजन्म ओंकार का चिंतन करनेवाला मनुष्य कौन-सा लोक जीतता है?" पिप्पलाद ने उसकी शंका का समाधान इस प्रकार किया—

"मनुष्य ओंकार की एक मात्रा के ज्ञान से लोक को, दो मात्राओं के चिंतन द्वारा सोमाधिष्ठित अंतरिक्ष को तथा तीन मात्राओं के बोध से ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है।"

प्रश्नोपनिषद्, पचम प्रश्न

सुकेशा (भारद्वाज के पुत्र) ने पूछा—"भगवान! सोलह कलाओंवाला पुरुष कौन है और कहां है ?"

पिप्पलाद ने उत्तर दिया—"जिससे सोलह कलाओंवाले पुरुष का जन्म होता है, उसे कहीं बाहर नहीं ढूंढ़ना पड़ता। वह शरीर के भीतर ही वर्तमान है। जो इस तत्त्व को समझ लेता है, वह परमब्रह्म को प्राप्त करके अजर तथा अमर हो जाता है।"

प्रश्नोपनिषद्, षष्ठ प्रश्न

दैत्यों से युद्ध करने के लिए इंद्र ने जिस वज्र का निर्माण करना था, उसके लिए दधीचि मुनि से उनकी अस्थियां मांगी गयीं। अस्थियों से विश्वकर्मा ने वज्र बनाया। दधीचि मुनि की पत्नी सुवर्चा को यह ज्ञात हुआ कि देवताओं ने मुनि से उनकी अस्थियां मांगी हैं तो उसने कुपित होकर समस्त देवताओं को पुत्रहीन रहने का शाप दिया तथा स्वयं सती होने का निश्चय किया।

आकाशवाणी ने उसकी इच्छा का निषेध किया। वह पीपल के पेड़ की जड़ में बैठी थी, वहीं से एक बालक उपजा, जो शिव का अवतार था, जिसका नाम पिप्पलाद रखा गया। सुवर्चा ने यह जानकर कि शिव ने ही उसके रूप में जन्म लिया है, उसकी स्तुति तथा अपने पति के पास जाकर पति-सहित पिप्पलाद का ध्यान रखने की इच्छा प्रकट की। पिप्पलाद की आज्ञा पाकर सुवर्चा सती हो गयी और शिवलोक में पति की सेवा करने लगी। कालांतर में पिप्पलाद ने पद्मा नामक एक राजकुमारी से विवाह किया। वह गिरिजा की अवतार थी तथा अत्यंत पतिव्रता थी। एक बार धर्मराज ने एक राजा का रूप धारण कर पद्मा की परीक्षा लेनी चाही। धर्मराज को कामी पुरुष समझकर पद्मा ने उसे शाप दिया कि वे सतयुग में ठीक रहेंगे, त्रेता में उनका एक पैर, द्वापर में दूसरा पैर और कलियुग में तीसरा और चौथा पैर नष्ट हो जायेगा।

शि० पु०, ७।३०

ऋषि दधीचि की पत्नी गर्भवती थी। वह लोपामुद्रा की बहन थी। उसे लोग बडवा भी कहते थे। एक बार दैत्यों को परास्त करके देवतागण दधीचि के पास पहुंचे और उन्होंने ऋषि से प्रार्थना की कि वे उनके अस्त्र-शस्त्र अपने आश्रम में रख लें ताकि दैत्य उन्हें ले न पायें। पत्नी के मना करने पर भी ऋषि ने उनकी बात मानकर शस्त्र अपने आश्रम में रख लिए। पत्नी का कहना था कि वीतराग को इस प्रकार के झंझट में नहीं पड़ना चाहिए। एक हजार वर्ष तक भी देवताओं ने शस्त्रों के विषय में नहीं पूछा। दधीचि ने मंत्रपूत जल से उन्हें धोकर पी लिया ताकि उनको शक्ति दधीचि के शरीर में प्रविष्ट हो जाये और दैत्य उन्हें प्राप्त करके भी देवताओं का कुछ बिगाड़ न सकें। संयोग से तदुपरांत देवताओं को शस्त्रों की आवश्यकता पड़ी। ऋषि-पत्नी जो कि गर्भवती थी, उमा की आराधना के निमित्त गयी हुई थी। देवताओं ने ऋषि-आश्रम में पहुंचकर दधीचि से अस्त्र-शस्त्र मांगे। दधीचि ने कहा कि उन सबका शक्ति-पान वे स्वयं कर चुके हैं, अतः उनकी हड्डियों से अस्त्र बनाने पर वे दैत्यों को जीत पायेंगे। ऋषि ने पद्मासन लगाकर प्राणों को शरीर मुक्त कर दिया। विश्वकर्मा से अस्त्र-शस्त्र बनाने के लिए कहा गया। उन्होंने गउओं से ऋषि-हड्डियों को साफ करने की प्रार्थना की, तदुपरांत उनके अस्त्र बना दिये। ऋषि-पत्नी उमा आराधना के उपरांत लौटीं तो समस्त समाचार जानकर बहुत दुखी हुई। देवताओं के हित के लिए प्राण त्याग किये हैं, अतः उन्होंने देवों को शाप देना उचित नहीं समझा। उन्होंने गर्भस्थ शिशु को अपनी कुक्षि फाड़कर बाहर निकाला, उसका लालन-पालन आश्रमवासियों को सौंपकर उसे पीपल पेड़ पर स्थापित करके वे सती हो गयीं। वह शिशु बड़े होने पर पिप्पलाद कहलाया। बड़े होने पर उसे अपने जीवन के विषय में ज्ञात हुआ तो वह अपने पिता के घातक देवताओं का नाश करने के लिए तत्पर हो उठा। उसने शिव को प्रसन्न करके देवनाश का वरदान पाना चाहा। शिव ने कहा, यदि वह उनका तीसरा नेत्र देख सकता है तो देव-नाश कर पायेगा। उसमें अपने को असमर्थ देख उसने पुनः तपस्या आरंभ की। अंततोगत्वा उसने तृतीय नेत्र को देख लिया। उसी समय पीपल के पेड़ों और बडवा ने कहा—"तुम्हारी मां यह कहती हुई स्वर्ग गयी थी कि अपकार करनेवाले भटकाव में पड़े हुए लोग नरक-कुंड में गिरते हैं।" यह सुनकर वह क्रुद्ध हो उठा। उपदेश उसके लिए व्यर्थ था। तत्काल उसके नेत्रों से एक कृत्या निकली। वह घोड़े के आकार की अग्निगर्भा थी। (क्योंकि उस समय बडवा की चर्चा चल रही थी,

इसी प्रभाव से) पिप्पलाद ने देवताओं को नष्ट करने की आज्ञा पाकर उसने सर्वप्रथम उसको ही पकड़ लिया क्योंकि वह देवअंग से उत्पन्न था। तदनंतर शिवस्तुति करके पिप्पलाद उससे बच पाया। शंकर ने कहा कि पिप्पलाद तीर्थ से एक योजन की सीमा तक कृत्या क्षति नहीं पहुंचा पायेगी अत: विश्वकर्मा ने पारिजात वृक्ष के काष्ठ से प्रकाशमान सूर्य की मूर्ति बनायी तथा उनसे प्रार्थना की कि वे निरंतर वहां रहते हुए, आंशिक रूप से विद्यमान, समस्त देवों की रक्षा करें। शिव ने पिप्पलाद को समझाया कि देवों का नाश करने पर भी दधीचि लौट नहीं सकते। इस प्रकार के कृत्य से वह अपने माता-पिता के किए पर पानी नहीं फेर देगा। उसकी समझ में बात आ गयी। उसने कहा—"यदि देवतागण पिप्पलतीर्थ को सर्वोच्च तीर्थ मानने लगें तो मैं उन्हें क्षमा कर दूंगा।" देवताओं ने उसकी बात मान ली। कष्ट से मुक्त होकर उन्होंने उसे इच्छित वस्तु मांगने के लिए कहा। पिप्पलाद ने माता-पिता के दर्शन करने की आकांक्षा प्रकट की। कृत्या नदी बनकर गंगा में जा मिली। अग्नि को कलस में रखकर सरस्वती, गंगा, यमुना, नर्मदा और ताप्ती ने समुद्र तक पहुंचा दिया। समस्त देवता पिप्पलाद से आज्ञा लेकर अपने-अपने आवास पर चले गये।

ब्र० पु०, ११०।-

पुनर्जीवन नैमिषारण्य निवासी एक ब्राह्मण परिवार था। उनका एकमात्र पुत्र, बालग्रह से पीड़ित हो मर गया। उसके बंधु-बांधव रोते-पीटते हुए उसे लेकर श्मशान पहुंचे। वहां उसका शव लिए वे जोर-जोर से रो रहे थे कि एक गीध ने प्रस्तुत हो उन्हें संसार की नश्वरता समझाते हुए झुटपुटा होने से पूर्व घर लौट जाने का उपदेश दिया। वे शव को वहीं छोड़ लौटने लगे तो एक सियार आ गया। सियार ने उनसे कहा कि रात्रि होने में समय है—अभी से वे लोग क्यों जा रहे हैं? क्या पता, बालक पुनर्जीवित ही हो उठे! वास्तव में गीध और सियार दोनों ही भूखे थे। अत: एक उन्हें तुरंत भेज देना चाहता था और दूसरा रात प्रारंभ होने तक रोकना चाहता था। उन दोनों के स्वार्थ से अनभिज्ञ बालक के बंधु-बांधव दोनों की बातें सुनकर किंकर्तव्यविमूढ़-से श्मशान में ही थे कि शिव ने दर्शन देकर उनके बालक को जीवित कर उसे सौ वर्ष की आयु प्रदान की, साथ ही गीध और सियार को क्षुधा-तृप्ति का वर दिया।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय, १५३

पुरंजन पुरंजन यशस्वी वीर राजा था। उसका अविज्ञात नामक मित्र था। पुरंजन किसी अनुपम विलासपूर्ण निवासस्थान की खोज में सारी पृथ्वी का भ्रमण कर आया। अंत में हिमालय के दक्षिण में स्थित एक नौद्वारों का नगर उसे पसंद आया। वहां उसका साक्षात्कार एक अनुपम सुंदरी से हुआ, जिससे उसने विवाह कर लिया। उस सुंदरी के दस सेवक थे। प्रत्येक की सौ पत्नियां थी तथा उसके उपवन का पहरा एक पांच फनवाला सांप देता था। राजा कामांध होकर भोगविलास में डूब गया। इस तथ्य को जानकर चंडवेग नामक गंधर्व ने यवनों के साथ मिलकर अपनी सेना सहित उसपर आक्रमण कर दिया। यवनराज भय का परिचय काल की कन्या जरा से भी था। वह वर खोजती घूम रही थी। नारद ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया था, अत: उसने नारद को कहीं भी स्थिर न रह पाने का शाप दिया था। भय ने उससे कहा कि वह उसके (भय के) भाई प्रज्वार के साथ युद्धस्थली पर चले। उसके सम्मुख कोई भी वीर टिक नहीं पायेगा। जरा ने स्वीकार कर लिया। जरा का आलिंगन करने के कारण पुरंजन की सारी श्री नष्ट हो गयी। यवनों तथा गंधर्वों ने उसका नगर जलाकर नष्ट कर दिया। पुरंजन को बांधकर वे लोग अपने साथ ले गये तथा सर्प ने भी उस नगर की रक्षा का कार्य त्याग दिया। नारी के प्रति विशेष आसक्त होने के कारण अगले जन्म में पुरंजन विदर्भराज के यहां कन्या-रूप में उत्पन्न हुआ। मलयध्वज नामक राजा ने उससे विवाह किया। मलयध्वज जब तपस्या के लिए चला तो उसकी पत्नी ने भी उसका अनुसरण किया। वन में तपस्या करते हुए मलयध्वज का देहावसान हो गया। रानी बहुत दुखी हुई तथा अवश एकाकी रोने लगी। पुरंजन के भूतपूर्व मित्र अविज्ञात ने प्रकट होकर विदर्भ-राज की पुत्री को उसके पूर्वजन्म की याद दिलाकर आत्मा-परमात्मा विषयक उपदेश दिया।

श्रीमद् भा०, चतुर्थ स्कंध, अध्याय २५-२९

पुरंजय मनु के छींकने पर उसकी नाक से इक्ष्वाकु का जन्म हुआ था। इक्ष्वाकु के पौत्र तथा विकुक्षि के पुत्र का नाम पुरंजय था। उसे 'इंद्रवाह' तथा 'कुकुत्स्थ' कहा जाता था। सतयुग के अंत में देवासुर संग्राम में देवता

हार गये। उन्होंने पुरंजय को सहायता के लिए बुलाया। पुरंजय ने कहा कि वह इस शर्त पर युद्ध में भाग लेगा कि इंद्र उसके वाहन बनें। आनाकानी के बाद इंद्र ने स्वीकार कर लिया तथा एक विशाल बैल का रूप धारण कर लिया। विष्णु ने पुरंजय को दिव्य अस्त्र-शस्त्र प्रदान किये। दैत्य भाग खड़े हुए। इंद्र का पुर जीतकर उसने इंद्र को प्रदान किया, इसलिए पुरंजय कहलाया। ककुद पर बैठने के कारण 'ककुत्स्थ' तथा इंद्र ने उसका वहन किया, इसलिए वह 'इंद्रवाह' नाम से प्रख्यात हुआ।

श्रीमद् भा०, नवम स्कंध, अध्याय ६, श्लोक, ४-१९

पुरु इंद्र ने पुरु की दरिद्रता दूर करने के लिए धन दिया।

ऋ० १।६३।७

पुरुरवा एक बार इंद्र की सभा में पुरुरवा की प्रशंसा हो रही थी। उसे सुनकर उर्वशी मन-ही-मन पुरुरवा की ओर आकृष्ट हो गयी। उसके मनुष्य की ओर आकृष्ट होने के कारण मित्र तथा वरुण को ईर्ष्या हुई तथा उन्होंने उर्वशी को मृत्युलोक में जाने का शाप दिया।

भूलोक में इला का पुत्र पुरुरवा था। पुरुरवा तथा उर्वशी ने जब एक-दूसरे को देखा तो परस्पर आसक्त हो गये। उर्वशी ने उसकी पत्नी के रूप में रहना स्वीकार कर लिया, साथ ही तीन शर्तें रखीं—(१) पुरुरवा उसकी इच्छा के विरुद्ध कभी समागम नहीं करेगा, (२) वह कभी नग्न रूप में नहीं दिखायी पड़ेगा तथा (३) एक दिन में तीन बार से अधिक आलिंगन नहीं करेगा। वे दोनों सुखपूर्वक रहने लगे। उर्वशी अपने शयनकक्ष में सदैव दो मेष बांधा करती थी, उन्हें पुत्रवत् मानती थी। उधर स्वर्ग में सबको उर्वशी का अभाव खलने लगा। वे उसे बुलाने की युक्तियां सोचने लगे। एक दिन विश्वावसु तथा अन्य गंधर्व उन दोनों के शयन-कक्ष से मेष खोल लाये। उर्वशी ने शोर मचाया, अपने पति के वीरत्व को ललकारा। पुरुरवा ने चुनौती स्वीकार की तथा नग्न ही मेषों को छुड़ा लाया। देवताओं ने शयन-कक्ष में अचानक प्रकाश फैला दिया। उर्वशी ने पुरुरवा को नग्न देखा तो अपनी शर्त याद कर उसका परित्याग कर स्वर्ग चली गयी। पुरुरवा उसके विरह में अत्यंत दुर्बल हो गया। राज-काज में उसका मन नहीं लगता था। एक दिन वह उर्वशी को ढूंढ़ता हुआ कुरुक्षेत्र स्थित विश्वयोजन सरोवर-तट पर पहुंचा। उसने सरोवर में क्रीड़ा करती हुई हंसिनियों-रूपी अप्सराओं को देखा। सब आगे निकल गयीं तब भी एक हंसिनी जल में रुककर पुरुरवा की ओर देखती रही। कुछ समय बाद वे सब अपने पूर्व रूप में आ गयीं, तब उसने देखा कि एकाकी हंसिनी उर्वशी थी। उर्वशी ने उसे लौटकर राज-काज संभालने के लिए कहा और बताया कि वह भूलोक में नहीं जा सकती। पुरुरवा ने कहा कि विरह से व्याकुल वह अपना वीरत्व आदि सब भुला चुका है, वहीं प्राण त्याग देगा किंतु उर्वशी ने उससे जीवित रहने का अनुरोध किया तथा स्वयं द्युलोक में विलीन हो गयी। उर्वशी ने यह भी बतलाया कि वह गर्भिणी है और तब से एक वर्ष की अंतिम रात्रि को वह गंधर्वलोक में आये। तब तक उसके पुत्र का जन्म भी हो चुका होगा। वह रात्रि वह उर्वशी के साथ व्यतीत कर पायेगा। तदुपरांत अपने पुत्र सहित वह अपने राज्य में लौट जायेगा। उर्वशी ने यह भी बतलाया कि देवताओं का कहना है कि पुरुरवा मृत्युंजय हो जायेगा तथा यज्ञ करके अंत में स्वर्गलोक में निवास करेगा।

पूर्वनिश्चित रात्रि में पुरुरवा उर्वशी के पास पहुंचा। गंधर्वगण उन दोनों के प्रेम पर प्रसन्न हो गये। उन्होंने पुरुरवा को मनवांछित वर देने की इच्छा प्रकट की। उर्वशी की प्रेरणा से पुरुरवा ने स्वयं एक गंधर्व बनकर उस लोक में रह पाने का वर मांगा। गंधर्व चिंतामग्न हो गये, फिर उन्होंने कहा—"तुम मानव हो। तुम्हारी शुद्धि के लिए हम तुम्हें यह अग्नि देते हैं। इस अग्नि में यज्ञ करके तुम पवित्र हो जाओगे, तभी यह संभव होगा।"

पुरुरवा अपने पुत्र को तथा थाली में स्थित अग्नि को लेकर अपने घर लौट रहा था। मार्ग में उर्वशी को प्राप्त न कर पाने के कारण दग्धहृदयी पुरुरवा ने अग्नि की थाली एक जंगल में रख दी और अपने पुत्र, आयुकुमार के साथ घर चला गया। आधी रात में उसे फिर उर्वशी की स्मृति ने सताया और अग्नि की थाली वन में छोड़ आने का संताप हुआ। वह अग्नि लाने के लिए पुनः वन में गया किंतु वहां अग्नि और थाली दोनों ही वस्तुएं नहीं थीं। थाली शमी वृक्ष का रूप धारण कर चुकी थी और अग्नि अश्वत्थ (पीपल) का। अश्वत्थ वृक्ष शमी के गर्भ में स्थित था। पुरुरवा अत्यंत व्यग्र

होकर विक्षिप्त-सा होने लगा। तभी गंधर्वों ने दर्शन देकर कहा—"लोप हुई वस्तु अपने मौलिक रूप में मिलना कठिन होती है। तुमने अज्ञानवश जो कुछ भी किया, उसके लिए पछताने से कुछ लाभ नहीं। कर्म से फिर उसे प्राप्त कर सकोगे। एक वर्ष तक यज्ञ करो।" गंधर्वों ने उसे यज्ञ की विधि बतलायी। तदनुसार पुरुरवा ने अश्वत्थ वृक्ष की अरणियों के मंथन से अग्नि प्राप्त की। उसमें यज्ञ करके गंधर्व-पद की प्राप्ति की। गंधर्वों ने प्रसन्न होकर कहा—"पुरुरवा, तुम धन्य हो। तुमने अग्नि को तीन भागों में विभक्त कर दिया है—(१) आह्वनीय अग्नि (२) गार्हपत्य अग्नि, (३) दक्षिणाग्नि। क्षत्रिय होते हुए तुमने ब्राह्मण-कर्म किया है। तुम सूर्य के समान हो; उर्वशी, उषा जल के समान तथा तुम लोगों का मनवांछित फल आयु है।

ऋ०, मंडल १०। सूक्त ६५।-
ऋ०, मंडल ५। सूक्त ४१। मंत्र १६-२०

बुध का विवाह इला से हुआ। उनकी संतान का नाम पुरुरवा रखा गया। इंद्र की सभा में उर्वशी ने पुरुरवा के विषय में सुना तो कामविमुग्ध होकर वह उसके पास पहुंची। उसके सौंदर्य पर पुरुरवा भी आसक्त हो गया। उर्वशी ने उसके साथ विहार करना स्वीकार किया किंतु दो शर्तें रखीं। पहली यह कि पुरुरवा उसके भेड़ के दो बच्चों को सुरक्षित रखेगा। दूसरी यह कि समागम के अतिरिक्त वह कभी निर्वस्त्र नहीं दिखायी देगा। इंद्र को कई दिन तक उर्वशी नहीं दिखी तो वह उदास हो गया और उसने गंधर्वों को उसे लिवा लाने के लिए भेजा। गंधर्वों ने भेड़ के बच्चों को चुरा लिया। रात का समय था, भेड़ों के मिमियाने की आवाज सुनकर राजा निर्वस्त्र ही उनकी सुरक्षा के लिए भागा। वह भेड़ों को तो ले आया, किंतु उर्वशी उसका त्याग कर चली गयी। कुछ समय बाद एक वन में सखियों के साथ घूमती हुई उर्वशी से उसका साक्षात्कार हुआ—वह गर्भवती थी। उसने राजा से हर वर्ष में एक बार मिलने का वादा किया। अगले वर्ष मिलने पर राजा को पता चला कि वह एक पुत्र को जन्म दे चुकी है। उर्वशी ने पुरुरवा से गंधर्वों की स्तुति कर उसको सदा के लिए मांगने की प्रेरणा दी। पुरुरवा ने गंधर्वों की स्तुति की। उन्होंने उसे एक अग्नि-स्थाली दी। मदहोश राजा उसीको उर्वशी समझ अपनी छाती से चिपटाकर घूमता रहा। होश आने पर उसने देखा कि वह अग्निस्थाली है तो उसे वह वन में छोड़कर अपने महल चला गया। त्रेतायुग के आरंभ होने पर राजा ने उर्वशी-लोक की इच्छा से भगवान श्रीहरि का भजन किया। फलस्वरूप राजा से वेदत्रयी तथा अग्नि-त्रयी का आविर्भाव हुआ।

श्रीमद् भा०, नवम स्कंध। १५
हरि० व० पु०,१०।-, ब्र० पु०, १०।-
दे० भा०, १।१३।-
वि० पु०, ४।६।३४-६४।-

पुलोमा पुलोमा जब बालिका थी, तब एक बार रो रही थी। पिता ने उसे धमकाते हुए कहा—"राक्षस, इसे ले जा।" कमरे के कोने में पुलोम नामक राक्षस छिपा हुआ था। उसने उसी दिन मन-ही-मन पुलोमा का वरण कर लिया। बड़े होने पर पुलोमा का विवाह भृगु से कर दिया गया। उसके गर्भ में भृगु की संतान पल रही थी, तभी एक दिन जब वह कुटिया में अकेली थी, पुलोम राक्षस उसके सौंदर्य पर मुग्ध हो गया। अग्नि देवता से निश्चित करके, उसने वराह रूप धारण कर पुलोमा का हरण किया। गर्भस्थ बालक योग-बल से मां के उदर से च्युत हो गया, अतः च्यवन कहलाया। वह इतना तेजस्वी था कि राक्षस पुलोम तुरंत भस्म हो गया। पुलोमा अपने बालक को गोद में लेकर रोती हुई ब्रह्मा के पास पहुंची। उसके आंसुओं से जो नदी बन गयी थी, उसका नाम ब्रह्मा ने वधूसरा रखा। वधूसरा च्यवन ऋषि के आश्रम के पास प्रवाहित हुई। भृगु संपूर्ण घटना को जानकर साक्षीस्वरूप अग्नि से रुष्ट हो गये। उन्होंने शाप दिया कि अग्नि सर्वभक्षी बन जाय। अग्नि ने अपने को समेटना आरंभ कर दिया, त्रस्त होकर सबने ब्रह्मा को समाचार दिया। ब्रह्मा ने कहा कि कच्चा मांस, मुर्दा आदि जलानेवाला अग्नि का रूप ही सर्वभक्षी होगा, शेष नहीं।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय ५, ६, ७

पूतना पूतना नामक राक्षसी कंस की आज्ञा से गोकुल के बच्चों का हनन करने गयी। उसने अपना रूप संवार-कर सुंदर युवती का सा वेश धारण कर रखा था। सबसे पहले श्रीकृष्ण हा मिले। वे पालने में सो रहे थे। पूतना ने अपने स्तन पर विष लगा रखा था। वह कृष्ण को स्तनपान कराने लगी। श्रीकृष्ण शिशुरूप में स्वयं दुग्धपान करते रहे और उनके क्रोध (रुद्र) ने पूतना के

प्राण पीये। पूतना पीड़ा से तड़प उठी और पुनः राक्षसी रूप में परिणत होकर मर गयी।

श्रीमद् भा०, १०।६।
ब्र० पु०, अध्याय १८४,
हरि० वं० पु०, ६।२३-२४।-
वि० पु०, ५।५।-

पूर्व चंद्र और सूर्य पूर्व दिशा में उदित होते हैं। इसी दिशा में गायत्री-जप के द्वारा बुद्धि प्राप्त हुई थी— जिसने समस्त जग को व्याप्त कर रखा है। लक्ष्मी का मूल स्थान, इंद्र का अभिषेकस्थल यही दिशा है। सूर्यदेव ने महर्षि याज्ञवल्क्य को शुक्ल यजुर्वेद के मंत्र भी इसी दिशा में दिये थे। वरुण ने पाताल का आश्रय ले लक्ष्मी को प्राप्त किया था।

म० भा०, उद्योगपर्व, १०८।

पृथु मृत्यु की मानसपुत्री का नाम सुनीथा था। उसने वेन को जन्म दिया। उसके अत्याचारी स्वभाव से रुष्ट होकर वेदवादी ऋषियों ने मंत्रपूत कुशों से उसे मार डाला। तदनंतर उसकी दाहिनी जंघा का मंथन करने से बेडौल आकृति वाले निषीद की तथा दाहिने हाथ के मंथन से तेजस्वी वीर, न्यायशील पृथु की उत्पत्ति हुई। 'निषीद' ने पर्वतीय निषादों को जन्म दिया। पृथु ने देवताओं की आज्ञानुसार राज्य का वहन किया। शुक्राचार्य उसके पुरोहित हुए, बालखिल्यगण तथा सरस्वती के तट पर रहनेवाले महर्षिगण मंत्री बने, गर्ग ज्योतिषी, सूत और मागध नाम के दो बंदी स्तुतिपाठ करनेवाले हुए। प्रसन्न होकर पृथु ने सूत को अनूप देश और मागध को मगध प्रदान किया। पृथु ने ऊबड़-खाबड़ समस्त पृथ्वी को समतल किया। समस्त देवताओं और सुमेरु पर्वत, नदियों आदि ने पृथु का राज्याभिषेक किया। पृथु के चिंतन करते हुए घोड़े, रथ, हाथी, मनुष्य (करोड़ों की संख्या में) प्रकट हो गये। वृद्धावस्था, चोरी, दुःख, तथा दुर्भिक्षविहीन राज्य सभालने वाला पृथु 'राजा' कहलाया क्योंकि उसने समस्त प्रजाओं का 'रंजन' किया था। विष्णु के ललाट से एक कमल प्रादुर्भूत हुआ जिसपर श्रीदेवी प्रकट हुई। धर्म के द्वारा श्रीदेवी से अर्थ की उत्पत्ति हुई। अतः पृथु के राज्य में धर्म, अर्थ और श्री की प्रतिष्ठा हुई।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय ५९, श्लोक ९३-१५४

महर्षियों ने राजसूय यज्ञ में उसे 'सम्राट' के पद पर आसीन किया था। प्रजा की अनुरक्ति के कारण वे राजा कहलाये। उस समय राष्ट्रों तथा नगरों का विभाजन नहीं था। पृथु यदि समुद्र-यात्रा करता था तो पानी थम जाता था और पर्वत उसे आगे बढ़ने का मार्ग देते थे। उसके रथ की ध्वजा कभी खंडित नहीं हुई। एक बार समस्त देव, असुर, प्रजाजन, सर्प, वनस्पति आदि ने पृथु से प्रार्थना की कि वह कुछ ऐसा करें कि वे सब अनंतकाल तक तृप्त रहें। पृथु ने स्वीकार कर लिया तथा अपना आजगर नामक धनुष हाथ में लिया, फिर कुछ सोचकर पृथ्वी से कहा कि वह सबके लिए दुग्ध की धारा प्रवाहित करे। पृथ्वी ने इस शर्त पर कि पृथु उसे अपनी पुत्री मानेगा, यह कार्यभार अपने ऊपर ले लिया। पृथ्वी गाय के रूप में दूही जाने लगी। समस्त प्रकार के प्राणी तथा वस्तुएं बछड़ों, दुहनेवालों, दुग्ध पात्रों तथा दूध के रूप में बंट गये। मुख्य रूप से बछड़ों में—शाल वृक्ष, उदयाचल, महादेव; दुहने वालों में—पाकड़ का पेड़, मेरुपर्वत, कुबेर; दुग्ध पात्रों में—गूलर, प्रस्तर, कच्चा बर्तन; दूध में—कट कर फिर से पनपना, रत्न तथा औषधि, विद्या आदि उल्लेखनीय हैं।

मनुष्यों ने पृथ्वी की उपज को ही दूध-रूप में दूहा। इस प्रकार समस्त भौतिक पदार्थों ने कामधेनुस्वरूपा पृथ्वी का दोहन प्रारंभ कर दिया।

म० भा०, द्रोणपर्व, अध्याय ६९

पृथु के रूप में श्रीहरि ने अंशावतार लिया था। दाहिने हाथ में हरि के चक्र का चिह्न तथा पांव में कमल का चिह्न देखकर ब्रह्मा ने यह जान लिया था कि वे अंशावतार हैं। पृथु के राज्याभिषेक के समय तक पृथ्वी ने अन्न इत्यादि देने बंद कर दिये थे। अतः प्रजा भूख के कारण सूख रही थी। पृथु ने धनुष पर बाण चढ़ाकर पृथ्वी को लक्ष्य निश्चित किया। अनेक प्रयत्न कर भी जब पृथ्वी उनकी दृष्टि से न बच पायी तो गौ के रूप में प्रकट होकर बोली कि वे किसी उपयुक्त व्यक्ति को बछड़ा निश्चित कर दें जिसके प्रेम के वशीभूत गौरूपी पृथ्वी दूध देगी। कोई उपयुक्त पात्र लेकर गौ-दोहन करे। पृथु ने मनु को बछड़ा मानकर धान्यों को दूह लिया। इसी प्रकार ऋषियों ने बृहस्पति को बछड़ा बनाकर वेदरूपी दूध तथा देवताओं ने इंद्र को बछड़ा बनाकर अमृत दूहा। फिर दैत्य, गंधर्व, राक्षस आदि ने भी पृथ्वी से विभिन्न वस्तुओं का दोहन किया। पृथु ने पृथ्वी की

प्रेरणा से धनुष की नोक से पर्वतों को फोड़कर भूमंडल को समतल कर दिया ताकि इंद्र का बरसाया हुआ पानी समस्त पृथ्वी को समान रूप से सींच सके। पृथु ने पृथ्वी को पुत्री के रूप में ग्रहण किया।

पृथु ने सौ अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय किया। उनमें से निन्यानवे ही निर्विघ्न हो पाये क्योंकि उनके उपरांत इंद्र छद्मवेश में यज्ञ का घोड़ा चुराकर ले गया। पृथु के पुत्र ने उसका पीछा किया। वह इंद्र पर बाण छोड़ना ही चाहता था कि इंद्र घोड़ा छोड़कर अंतर्धान हो गया। वह घोड़ा वापस ले आया तथा उसका नाम विजिताश्व पड़ गया। इसी घटना की पुनरावृत्ति होने पर पृथु भी क्रुद्ध हो उठा। उसने इंद्र को मार डालने की इच्छा से अस्त्र-शस्त्र ग्रहण किये तो ब्रह्मा ने प्रकट होकर उसे ऐसा करने से रोका। श्रीहरि ने प्रसन्न होकर उसे वर मांगने को कहा। पृथु स्वयं विष्णु का अंशावतार थे, अतः उन्होंने विष्णु में प्रेम बना रहने की इच्छा प्रकट की। ब्रह्मा तथा विष्णु दोनों ने ही उससे सौवां यज्ञ करने का आग्रह छोड़ने के लिए कहा। धर्मवेत्ता होने के नाते उसके लिए कोई यज्ञ आवश्यक नहीं रह गया। पृथु ने अपनी पत्नी अर्चि के साथ तपस्या करके परलोक की प्राप्ति की।

श्रीमद् भा०, चतुर्थ स्कंध, अध्याय १५-२३,
वि० पु०, १।१३।-
हरि वं० पु०, पर्व०५-६।-

वेन के पुत्र पृथु के जन्म पर पृथ्वी के समस्त प्राणी प्रसन्न हो उठे। पृथु ने पृथ्वी को खदेड़ा। वह गाय का रूप धारण करके ब्रह्मलोक आदि सभी लोकों में शरण प्राप्त करने के हेतु गयी किंतु कोई उसे पृथु से न बचा पाया। धनुषबाण सहित पृथु सर्वत्र उसका पीछा करता रहा। अंत में पृथ्वी कपिला उसी की शरण में गयी और बोली—"स्त्री को मारना अधर्म है।"

पृथु ने कहा—"जिस पापी को मारने से बहुतेरे सुखी हों, उसे मारने में पाप नहीं लगता। यदि तुम बचना चाहती हो तो मेरी पुत्रीवत् प्रजा का पालन करो।" पृथ्वी ने स्वीकार कर लिया। सर्वप्रथम पृथु ने स्वायंभुव मनु को बछड़ा बनाकर अपने हाथ से पृथ्वी को दूहा तो सभी प्रकार के अन्न पैदा हुए, फिर ऋषि-देवता आदि सबने पृथ्वी को दूहा और अलग-अलग पदार्थ प्राप्त किये। सबके दूहनेवाले, बछड़े और पदार्थ एक-दूसरे से भिन्न थे। पृथ्वी को कपिला कहते हैं, अतः जहां पृथ्वी को दूहा गया था, वह स्थान कपिला तीर्थ नाम से विख्यात हुआ।

ब्र० पु०, ४।५०, १४१।१३-३०।-

पृथूदक तीर्थ सरस्वती के तट पर स्थित है। ब्राह्मण रुषङ्गु सदा तपस्या में लीन रहते थे। जब वे बहुत बूढ़े हो गये, तब अपने बेटों को बुलाकर बोले कि वे उन्हें सरस्वती के तट पर स्थित इस तीर्थ में ले जायें। वे सब मिलकर उसे पृथूदक तीर्थ में ले गये। वहां उन्होंने स्नान किया और बेटों को बताया कि जो व्यक्ति इस तीर्थ में प्राण त्यागता है, वह जन्म-मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है।

म० भा०, शल्यपर्व, अध्याय ३९, श्लोक २५ ३९

पृथ्वी पुराकाल में अंगिराओं ने आदित्यों को यजन कराया। आदित्यों ने उन्हें दक्षिणास्वरूप संपूर्ण पृथ्वी प्रदान की। दोपहर के समय दक्षिणास्वरूप प्रदत्त पृथ्वी ने अंगिराओं को परितप्त कर दिया, अतः उन्होंने उसका त्याग कर दिया। उसने (पृथ्वी ने) क्रुद्ध होकर सिंह का रूप धारण किया तथा वह मनुष्यों को खाने लगी। उससे भयभीत होकर मनुष्य भागने लगे। उनके भाग जाने से क्षुधाग्नि में संतप्त भूमि में प्रदर (लंबे गड्ढे तथा खाइयां) पड़ गये। इस घटना से पूर्व पृथ्वी समतल थी।

ऐ० ब्रा०, ६।३५

प्राचीनकाल में समस्त देवर्षियों की उपस्थिति में पृथ्वी इंद्र की सभा में पहुंची। उसने याद दिलाया कि उससे पूर्व वह ब्रह्मा की सभा में गयी थी और उसने बताया था कि वह प्रजा के भार को वहन करके थकती चली जा रही है—तब देवताओं ने उसकी समस्या को सुलझा देने का आश्वासन दिया था। अतः पृथ्वी उनके सम्मुख अपने कार्य की सिद्धि की प्रार्थना लेकर गयी थी। विष्णु ने हंसते हुए सभा में उससे कहा—"शुभे! धृतराष्ट्र के सौ पुत्रों में जो सबसे बड़ा दुर्योधन (सुयोधन) नामक पुत्र है, वह राज्य प्राप्त करके तेरी इच्छा पूर्ण करेगा। वह राजा बनने के उपरांत जगत का संहार करने का अपूर्व प्रयत्न करेगा।" ब्रह्मा ने पूर्वकाल में पृथ्वी का भार हरण करने का आश्वासन दे रखा था। पृथ्वी के दुःखहरण तथा देवताओं के कथन की पूर्ति के लिए दुर्योधन ने गांधारी के उदर से जन्म लिया था। विभिन्न देवताओं ने भी आंशिक रूप से अवतरित होकर

महाभारत का संपादन किया। नारद ने नारायण को अवतरित होने के लिए प्रेरित किया।

म० भा०, स्वर्गपर्व, अध्याय ८, श्लोक २१ से ३० तक, श्लोक ४७, हरि० व० पु०, हरिवंशपर्व, ५२-५३।-

पाप के भार से कष्ट उठाती हुई पृथ्वी ब्रह्मा की शरण में गयी। ब्रह्मा उसे लेकर क्षीरसागर पहुंचे, जहां विष्णु थे। ब्रह्मा ने समाधि लगाकर कहा कि भगवान (श्रीहरि) का कहना है कि पृथ्वी के कष्ट को वे पहले से ही जानते हैं, अत: उसका उद्धार करने के लिए अवतरित होंगे। "हे देवताओ! भगवान का कहना है कि तब तुम सब भी उनको सहयोग देना। श्री राधा की सेवा के लिए देवांगनाएं भी जन्म लें।" समझा-बुझाकर ब्रह्मा ने पृथ्वी को वापस भेज दिया।

श्रीमद् भा०, १०।१।

राजा पृथु की पुत्री कहलाने के कारण वह पृथिवी नाम से विख्यात हुई। राजा पृथु ने पृथिवी को पराजित करके उसे समस्त प्रजा का पालन करने के लिए तैयार किया। सर्वप्रथम पृथु ने स्वायंभुव मनु को बछड़ा बनाकर अपने हाथ से उसे दूहा और सभी प्रकार के अन्न प्राप्त किये। उसका दोहन विभिन्न वर्गों ने भिन्न-भिन्न बछड़े, दुहनेवाले, दोहनी इत्यादि के साथ किया तथा सबको एक-दूसरे से भिन्न प्रकार के दूध की प्राप्ति हुई। इनकी तालिका निम्नलिखित है :

वर्ग—(१) ऋषियों ने,(२) देवताओं ने,(३)पितरों ने, (४)नागों ने, (५) दैत्यों ने,(६) यक्षों ने, (७)राक्षसों ने, (८) गंधर्वों ने, (९) वृक्षों ने।

बछड़ा—(१) सोम, (२) इंद्र, (३)यम, (४) तक्षक, (५) विरोचन(प्रह्लाद-पुत्र),(६) कुबेर, (७) सुमाली, (८)चित्ररथ, (९) पाकड़।

दूहनेवाला—(१)बृहस्पति,(२)सूर्य,(३)अंतक(काल), (४) ऐरावत(नाग), (५) मधु(दैत्य),(६)रजतनाभ, (७)रजतनाभ, (८) सुमेरु, (९)पुष्पित साखू(शाल)।

दोहनी—(१) वेद, (२) स्वर्ण, (३)चांदी, (४) तूंबी, (५) लोहा, (६) कांच, (७) कपाल, (८) कमल, (९) पलास।

प्राप्त पदार्थ-रूपी दूध—(१)तपस्या,(२)तेज,(३)अमृत, (४) विष, (५) माया, (६) अंतर्धान (छुप जाने की विद्या), (७) शोषित, (८) रत्न तथा औषधि, (९) कोंपल।

अत: अनेक प्रकार का फल देनेवाली पृथिवी पावनी, वसुंधरा, सर्वकाम-दोग्ध्री, मेदिनी इत्यादि विभिन्न नामों से विख्यात है।

ब्र० पु०, ४। १६-१११

एक बार कंस, केशी, धेनुक, वत्सक आदि के अत्याचारों से पीड़ित होकर भार उठाने में असमर्थता का अनुभव करती हुई पृथ्वी इंद्र की शरण में पहुंची। उसने कहा कि उसके समस्त कष्टों का मूल कारण विष्णु हैं। विष्णु ने वराह रूप धारण करके उसे समुद्र के जल से निकालकर स्थिर रूप प्रदान किया, इसीसे उसे समस्त भार का वहन करना पड़ा। इससे पूर्व उसका हरण करके हिरण्याक्ष ने उसे महार्णव में डुबो रखा था। तब कम-से-कम इस प्रकार की पीड़ा से तो वह बची हुई थी। पृथ्वी का कहना था कि कलियुग में तो उसे रसातल में ही जाना पड़ेगा। इंद्र पृथ्वी को लेकर ब्रह्मा के पास पहुंचा। ब्रह्मा ने भी अपनी असमर्थता स्वीकार की तथा विष्णु के पास गये। विष्णु ने बताया कि समस्त कार्यों के मूल में महेश्वरी हैं। देवी ने प्रकट होकर कहा—"मेरी शक्ति से युक्त होकर कश्यप ने अपनी माया के साथ वसुदेव देवकी के रूप में पहले ही जन्म ले लिया है। हे देवताओ, तुम सब भी अंशावतार लो। विष्णु भी भृगुशाप के कारण देवकी की कोख से जन्म लेंगे। वायु, इंद्र इत्यादि पांडवों के रूप में जायेंगे। मैं भी यशोदा की कोख से जन्म लेकर देवताओं का काम करूंगी। मैं सबको निमित्त बनाकर अपनी शक्ति से दुष्टों का संहार करूंगी। मद और मोह, आदि विकारों से ग्रस्त यादव-वंश ब्राह्मणों के शाप से नष्ट हो जायेगा। हे देवो, तुम सब पृथ्वी पर अंशावतार ग्रहण करो।" यह कहकर भुवनेश्वरी देवी (महामाया) अंतर्धान हो गयी। पृथ्वी आश्वस्त होकर अपने स्थान पर चली गयी।

दे० भा०, ४।१८-१९

पृषध्र मनु पुत्र पृषध्र ने शिकार करते हुए अचानक एक ब्राह्मण की गाय को कोई अन्य वनचारी जानकर मार डाला। ब्राह्मण (तपस्वी के बेटे) के शाप के कारण वह राजा शूद्र हो गया।

मा० पु०, १०९।

पृषध्र वैवस्वत मनु के पुत्रों में से एक थे। वसिष्ठ ने उन्हें गऊओं की रक्षा का कार्य सौंपा था। एक अंधेरी रात में गोशाला में एक बाघ घुस गया। गौएं इधर-उधर

दौड़ने लगीं। सूचीभेद अंधकार था। पृषध्र ने अपनी तलवार से वार किया। जिसे बाघ समझकर वार किया था, वह एक गौ थी। उसका सिर काटने के साथ-साथ बाघ का कान भी कट गया। बाघ तो भयभीत होकर भाग गया किंतु प्रातः होने पर जब यह देखा कि उसकी तलवार से गऊ-हत्या हुई है, तो वसिष्ठ ने उसे शूद्र हो जाने का शाप दिया। पृषध्र ने शूद्र के रूप में भी निरंतर तपस्या की तथा परमात्मा को प्राप्त किया।

श्रीमद् भा०, नवम स्कंध, अध्याय २, श्लोक १-१४

पौंड्रक करूप देश के अज्ञानी राजा पौंड्रक को उसके मित्रों ने समझाया कि वही वासुदेव हैं। उस मूर्ख ने कृष्ण के पास संदेश भेजा कि वही वासुदेव है, अतः कृष्ण चक्र, गदा, पीतांबर इत्यादि के साथ-साथ वासुदेव नाम का भी परित्याग कर दें। कृष्ण ने उसपर चढ़ाई कर दी। पौंड्रक ने नकली चक्र, शंख, तलवार, कौस्तुभ मणि आदि धारण कर रखी थी। वह एक अभिनेता-सा जान पड़ रहा था। वह पीले वस्त्र पहनकर युद्ध में गया। कृष्ण ने पौंड्रक तथा उसके सखा काशिनरेश को मार डाला; क्योंकि अनुकरण करने के निमित्त वह कृष्ण को बराबर याद करता रहता था, अतः उसे भगवान का सारूप्य प्राप्त हुआ। काशिराज के वधोपरांत उसके पुत्र सुदक्षण ने कृष्ण से बदला लेने की ठानी। उसने श्रीकृष्ण के लिए मारण पुरश्चरण प्रारंभ किया। अभिचार समाप्त होने पर यज्ञकुंड से एक भयानक कृत्या प्रकट हुई। उसके त्रिशूल से अग्नि की लपटें निकल रही थीं। आंखें भी मानो आग उगल रही थीं। वह द्वारका की ओर दौड़ी। द्वारका नगरी के लोग उसकी ज्वालाओं से परेशान हो उठे। कृष्ण ने उसे पहचान लिया कि वह काशी से चली हुई माहेश्वरी कृत्या है। कृष्ण ने उसपर सुदर्शन चक्र का प्रयोग किया। कृत्या का मुंह उससे टूट-फूट गया और वह काशी की ओर लौट गयी। चक्र भी उसके पीछे-पीछे काशी पहुंचा तथा उसने सुदक्षण (स्व० काशी नरेश पौंड्रक के बेटे) को भस्म कर दिया। सुदर्शन चक्र पुनः कृष्ण के पास लौट गया।

श्रीमद् भा०, १०।६६।-
हरि० वं० पु०, भविष्यपर्व, ६१-१०१।-
ब्र० पु०।२०७।-,
वि० पु०, ५।३४।-

पौरव पौरव अंगनरेश था। उसने अपने जीवनकाल में निरंतर धनराशि, कन्या, स्वर्ण, पशु इत्यादि का दान दिया। उसे लोग गुणवान् तथा संपूर्ण कामनाओं की सिद्धि करनेवाला मानते थे। समय आने पर उसका भी देहावसान हुआ।

म० भा०, द्रोणपर्व, अध्याय ५७

पौरिक पुरिका नगर में पौरिक नामक राजा राज्य करता था। वह क्रूरकर्मी और हिंसक था; अतः मृत्यु के उपरांत सियार की योनि में जन्मा। सियार के रूप में श्मशान-भूमि में जन्म लेकर वह अपने पूर्व कर्मों का पश्चात्ताप करते हुए अहिंसक तपस्वी की भांति रहने लगा। अन्य सियारों का कोई भी प्रलोभन उसे अपनी तपस्या से च्युत नहीं कर पाया। वनराज व्याघ्र ने उसकी कीर्ति सुनी तो वह उसके पास पहुंचा तथा उससे अपना मंत्रित्व ग्रहण करने का अनुरोध करने लगा। सियार ने बहुत सोच-विचारकर निम्नलिखित शर्तों पर मंत्रित्व ग्रहण किया—(१) वह उसके अन्य मंत्रियों से संपर्क नहीं रखेगा क्योंकि उनका उससे ईर्ष्या का भाव होना स्वाभाविक है, (२) वह मांस-भक्षण नहीं करेगा, (३) राजा के साथ उसकी गुप्त मंत्रणा होगी, (४) राजा किसी के बहकावे में आकर उसे नष्ट नहीं करेगा। वनराज व्याघ्र ने शर्तें स्वीकार कर लीं। कुछ समय तक वह मंत्रित्व का निर्वाह करता रहा। राजा की कीर्ति बढ़ने लगी। एक दिन अन्य समस्त राजकर्मचारियों ने उसका वध करवाने का षड्यंत्र रचा, क्योंकि उसके आने से सबकी कपट वृत्ति पर विराम लग गया था। कर्मचारियों ने राजा का मांसपूर्ण भोजन छिपाकर सियार के सिर चोरी लगा दी। व्याघ्र भूख और क्रोध से तिलमिला उठा तथा उसने सियार के लिए प्राणदंड की व्यवस्था दे दी। व्याघ्र की मां को पता चला तो उसने शांतिपूर्वक राजा को समझाया। राजा ने अपना अपराध स्वीकार किया, सियार की बहुत अनुनय-विनय की किंतु सियार भर्त्सना और भययुक्त पकवान की अपेक्षा निर्भय संतोषपूर्ण घास-फूस का भोजन ही अधिक पसंद करता था। वह पुनः अपने भूतपूर्व निवासस्थान पर चला गया। उसने उपवासपूर्वक अपनी देह का परित्याग कर स्वर्ग की प्राप्ति की।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय १११

प्रचेता प्रचेतागण धनुर्वेद में पारंगत थे। उन्होंने दस हजार वर्षों तक समुद्र के तल में घोर तपस्या की। पृथ्वी को असुरक्षित जानकर पेड़-पौधों ने उसे (पृथ्वी को) सब

ओर से ढक लिया। फलतः वायु के अभाव में प्राणियों का नाश होने लगा। प्रचेताओं ने जाना तो क्रुद्ध होकर उन्होंने वायु और अग्नि की सृष्टि की। वायु से पेड़ टूटकर सूख जाते थे तथा अग्नि उन्हें जला देती थी। जब थोड़े-से ही वृक्ष रह गये तब सोम ने उन्हें शांत किया। सोम की प्रेरणा से उन्होंने वृक्षों की कन्या मारिषा को पत्नी-रूप में ग्रहण किया। सोम ने कहा कि प्रचेताओं और सोम के आधे-आधे तेज से मारिषा दक्ष नामक प्रजापति को जन्म देगी। इस प्रकार दक्ष का जन्म हुआ। दक्ष ने दो पैरवाले, चार पैरवाले, तथा अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की सृष्टि की। उन्होंने अपनी दस कन्याएं धर्म को, तेरह कश्यप को तथा नक्षत्र-रूपी अवशिष्ट कन्याएं सोम को दीं। इस प्रकार एक ओर सोम दक्ष का पिता था, दूसरी ओर वह जामाता भी बन गया। उन कन्याओं से देव, पक्षी, गौ, नाग, गांधर्व, अप्सरा इत्यादि जातियों का जन्म हुआ। दक्ष ने यह देखकर कि अयोनिज सृष्टि का पर्याप्त वर्द्धन नहीं होता, स्त्रियों की रचना की थी। तभी से मैथुनी सृष्टि का श्रीगणेश हुआ।

ब्र० पु०, २।३३-५७

प्रतिविंध्य द्रौपदी-पुत्र प्रतिविंध्य ने युद्ध में राजा चित्र को मार डाला था। राजा चित्र कौरवों के वीर योद्धाओं में से एक था, जो शक्ति आदि के प्रयोग का ज्ञाता था।

म० भा०, कर्णपर्व, अध्याय १४, श्लोक १५-३४

प्रतर्दन मनु के पुत्र शर्याति के वंशजों में हैहय तथा तालजंघ दो प्रसिद्ध राजा हुए। हैहय वीतहव्य नाम से विख्यात हुए। उनके दस रानियां तथा सौ यशस्वी वीर बालक हुए। उन सौ पुत्रों की काशिनरेश हर्यश्व से ठन गयी। अतः युद्ध में उन्होंने काशिराज को मार डाला। तदुपरांत वीतहव्य के बेटों ने अनेक बार काशि पर आक्रमण किया, फलतः काशिराज के वंशज सुदेव आदि का नाश हो गया। उसी परंपरा के दिवोदास भी जब अपना समस्त धन-वैभव युद्ध में नष्ट कर चुके तो अपने पुरोहित भारद्वाज (बृहस्पति के पुत्र) की शरण में जंगल में चले गये। भारद्वाज ने उनके लिए पुत्रेष्ठि यज्ञ किया, जिसके फल से दिवोदास ने प्रतर्दन नामक वीर पुत्र की प्राप्ति की। वह जन्म लेते ही तेरह वर्ष की आयु जितना बड़ा हो गया। उसने वीतहव्य के पुत्रों से युद्ध कर उन्हें मार डाला। वीतहव्य अपना नगर छोड़कर भृगु की शरण में पहुंचे। प्रतर्दन भी उनका पीछा करता हुआ वनस्थ भृगु के आश्रम में पहुंचा तथा उसने भृगु से वीतहव्य के विषय में पूछा और कहा कि उसने काशिराज का कुल नष्ट कर दिया है, अतः उसे मारकर वह (प्रतर्दन) पितृऋण से उऋण हो जायेगा। भृगु ने शरणागत की रक्षा करते हुए कहा कि उनके आश्रम में जितने भी व्यक्ति हैं, सब ब्राह्मण हैं, यह सुनकर प्रतर्दन संतुष्ट होकर चला गया तथा वीतहव्य ने अनायास ही ब्राह्मणत्व प्राप्त किया।

म० भा०, दानधर्मपर्व, अध्याय ३०

प्रद्युम्न शिव के तीसरे नेत्र से कामदेव भस्म हो गया था। वही प्रद्युम्न के रूप में रुक्मिणी के उदर से जन्मा। उसको अपना भावी शत्रु जानकर शंबासुर ने सूतिकागृह से चुराकर समुद्र में फेंक दिया। उस समय प्रद्युम्न की अवस्था दस दिन की थी। समुद्र में एक मत्स्य ने उसे निगल लिया। दैवयोग से वही मत्स्य पकड़कर मछुओं ने शंबासुर को भेंटस्वरूप दिया। रसोइये ने उसे काटा तो उसके पेट में बालक निकला। रसोइये ने वह बालक शंबासुर की दासी मायावती को दे दिया। मायावती मूल रूप से रति (काम की पत्नी) थी। नारद ने प्रकट होकर उसे प्रद्युम्न के जन्म से पूर्वा पर समस्त कथा कह सुनायी। फलतः मायावती मां की तरह उसका लालन-पालन करते हुए भी पत्नी की भांति उसपर आसक्त रही। प्रद्युम्न बहुत शीघ्र ही युवक हो गया। मायावती ने उसे महा-माया नाम की विद्या सिखायी जिससे हर प्रकार की माया का परिहार हो सकता था। प्रद्युम्न ने शंबासुर से कटु वार्तालाप करके उसे युद्ध के लिए भड़काया तथा युद्ध में उसकी मायावी क्रीड़ाओं का परिहार करके उसे मार डाला। तदनंतर प्रद्युम्न तथा मायावती पति-पत्नीवत् आकाश में चलते हुए द्वारका पहुंचे। नारद ने प्रकट होकर उन दोनों का परिचय दिया। श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी आदि समस्त रानियों के साथ उन दोनों को ग्रहण कर लिया। रुक्मी (रुक्मिणी के भाई) का यद्यपि श्रीकृष्ण से द्वेष-भाव था, तथापि उसकी पुत्री ने प्रद्युम्न का वरण किया था। कृतवर्मा के पुत्र बली ने रुक्मिणी की कन्या चारुमती से विवाह किया था तथापि कृतवर्मा तथा रुक्मी का कृष्ण के प्रति वैर-भाव समाप्त नहीं हुआ।

श्रीमद् भा०, १०।५५।-,१०।६१।२२-२४।-
वि० पु०, ५।२७,
हरि०वं० पु०, विष्णुपर्व, ६१,१०४, १०८, ब्र० पु०, २००।-

प्रभास तीर्थ दक्ष प्रजापति की अनेक संतानें थीं। उनमें से २७ कन्याओं का विवाह उन्होंने सोम (चंद्रमा) से कर दिया। २६ कन्यायें नक्षत्र नाम से विख्यात थीं तथा एक रोहिणी कहलाती थी। चंद्र को सर्वाधिक प्रेम रोहिणी से था। शेष पत्नियां दक्ष प्रजापति की शरण ग्रहण करके तपस्या करने के लिए अपने पिता दक्ष के पास चली गयीं। दक्ष ने सोम (चंद्रमा) को बुलाकर समझाया कि सबके साथ एक-सा व्यवहार करे तथा समान समय व्यतीत करे किंतु चंद्रमा ने उनकी एक न सुनी। अतः उन्होंने चंद्रमा को क्षयग्रस्त होने का शाप दिया। क्षयपीड़ित सोम क्षीण होता गया। परिणामतः औषधि आदि की उपज कम होने लगी। देवता बहुत चिंतित होकर उसके पास पहुंचे। कारण जानकर वे दक्ष प्रजापति के पास गये तथा उनसे विनती की कि वे चंद्रमा से प्रसन्न होकर उसे शापमुक्त कर दें। दक्ष ने कहा कि शाप तो व्यर्थ नहीं जा सकता। अतः आधा मास वह क्षीण होता जायेगा। पश्चिम दिशा में समुद्र के तट पर जहां सरस्वती का सागर से संगम होता है, अर्थात् प्रभास तीर्थ पर जाकर महादेव की आराधना तथा सरस्वती में स्नान करे तो वह शेष आधे मास में पुनः अपनी कांति प्राप्त कर लेगा। उसे समस्त पत्नियों के प्रति समान भाव रखना होगा। चंद्रमा ने स्वीकार कर लिया। तब से प्रभा प्रदान करनेवाला वह तीर्थ प्रभास नाम से विख्यात है। चंद्रमा ने वहां अमावस्या के दिन गोता लगाया था, वही क्रम निरंतर चलता जा रहा है।

म० भा०, शल्यपर्व, अध्याय ३५, श्लोक ४५-८४

प्रमति इंद्र को जुए में हराकर राजा प्रमति ने उर्वशी को जीत लिया था। तदनंतर उसका मद इतना बढ़ गया कि रुष्ट होकर गंधर्व स्वामी विश्वावसु के पुत्र चित्रसेन ने प्रमति को जुए में हराकर कैद कर लिया। प्रमति के पुत्र सुमति ने मधुच्छंदा से जाना तो उपासना-रूपी उपाय से पिता को मुक्त करवाया।

ब्र० पु०, १७१।-

प्रलंबासुर गोपों की बालमंडली एक-दूसरे को कमर पर चढ़ाकर खेल रही थी। किसी निश्चित स्थान तक बच्चे अपनी कमर पर चढ़ाकर दूसरे बच्चों को ले जाते थे। ऐसे में अचानक उनका ध्यान गया कि ग्वाल बालक के वेश में कोई असुर बलराम को अपनी कमर पर बैठाकर ले गया और निश्चित स्थल से आगे बढ़कर आकाश में उड़ा ले चला। वह प्रलंबासुर था। बलराम ने उसके सिर पर घूंसा दे मारा। उसका मस्तक फट गया और वह मर गया।

श्रीमद् भा०, १०।१८
हरि० वं० पु०, वि० पर्व,१४।-
वि० पु०, ५।६,

प्रलय घोर कलियुग में पृथ्वी म्लेच्छों से भर जायेगी तब नारायण विष्णु यशा नामक ब्राह्मण के घर में पुत्रवत् जन्म लेकर हाथ में खड्ग ले घोड़े पर सवार होकर तीन रात्रि में पृथ्वी को म्लेच्छहीन करके अंतर्धान हो जायेंगे। पृथ्वी दस्युग्रस्त होकर स्थूलतावश जल में डूब जायेगी (प्रलय की स्थिति होगी), सब नष्ट हो जायेगा। तदुपरांत बारह सूर्य उदय होकर उसका पानी सुखा देंगे और सतयुग का पुनः श्रीगणेश होगा।

दे० भा०, ६।८।५३-५६

प्रवरा (प्रथम दे० सागर मंथन। जहां-जहां भिन्नता है, वहां के संदर्भ निम्नलिखित हैं:)
समुद्र-मंथन में से अमृत के निकलने के उपरांत देवताओं के पास अमृत छोड़कर सब लोग अपने-अपने आवास पर चले गये कि शुभ लग्न में देवता अमृत का वितरण कर देंगे। सबके चले जाने के उपरांत देवताओं ने परामर्श किया कि असुरों को अमृत नहीं देना चाहिए। बृहस्पति ने इस बात का समर्थन किया। वे सब लोग सोमपान के लिए बैठ गये। सिंहिका-सुत राहु को छोड़कर अन्य राक्षस देवताओं की मंत्रणा से परिचित नहीं थे। राहु ने मरुद्गणों के मध्य छुपकर अमृतपान कर लिया। आदित्य ने उसे पहचाना तो विष्णु ने अपने चक्र से उसका सिर धड़ से अलग कर दिया। कटने पर भी उसका सिर और धड़ (अमृतपान के कारण) अमर हो गये। धड़ पृथ्वी पर गिर पड़ा पर दोनों अमर थे। देवता भयभीत थे कि कभी सिर और धड़ परस्पर न जुड़ जायें। सिर (राहु) ने देवताओं को राय दी कि वे उसका धड़ चीरकर उससे विशेष रस निकाल लें। तदुपरांत वह शरीर क्षण-भर में भस्म हो जायेगा। देवताओं ने प्रसन्न होकर उसे नक्षत्रों में स्थान दिया। उसी प्रकार धड़ से अमृत निकालकर एक स्थान पर स्थापित किया गया, शेष धड़ को भद्रकाली (अंबिका) खा गयी। उसने रस का भी पान कर लिया। जो रस बह गया, उसने प्रवरा नामक नदी का रूप धारण किया।

ब्र० पु०, १०६।-

प्रवाहण शलावत का पुत्र शिलक, चिकितायन का पुत्र दालभ्य, तथा जीवल का पुत्र प्रवाहण—तीनों ही उद्गीथ विद्या में निपुण थे। एक बार तीनों ने उद्गीथ पर अपने-अपने विचार प्रकट किये। प्रवाहण राजा का पुत्र क्षत्रिय था, शेष दोनों ब्राह्मण। परिचर्चा के उपरांत प्रवाहण का मत ही मान्य रहा। उसने कहा कि समस्त इह लोक की गति आकाश (परमात्मा) है। इस तथ्य को जान लेने के उपरांत जीवन का उत्कर्ष होता है।

छा० उ०, अध्याय १, खंड ८, ६।१-२।-

प्रवीर पुरु की पत्नी का नाम कौशल्या था। उसने जनमेजय को जन्म दिया। उसने तीन अश्वमेघ यज्ञ किये तथा विश्वजित यज्ञ करके वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण किया। जनमेजय का दूसरा नाम प्रवीर भी था।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय ९५, श्लोक ११

प्रहस्त-वध लंका में वानर सेना से युद्ध करते हुए राक्षस प्रहस्त नील के द्वारा मारा गया था।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ५८, श्लोक ५१-६०

प्रह्लाद दैत्यराज प्रह्लाद के पुत्र का नाम विरोचन था। केशिनी नामक एक कन्या की प्राप्ति के लिए उसका अंगिरा के पुत्र सुधन्वा से विवाद छिड़ गया। दोनों ने प्रह्लाद से पूछा कि उनमें कौन श्रेष्ठ है। प्रह्लाद धर्म-संकट में पड़ गये, वे मौन रहे। उन्होंने कश्यप से जाकर पूछा। कश्यप ने कहा कि सत्य को जानते हुए मौन रहने से असत्य कहने का पाप लगता है, अतः प्रह्लाद ने व्यवस्था दी कि सुधन्वा श्रेष्ठ है। सुधन्वा ने इस बात से प्रसन्न होकर कि उन्होंने अपने पुत्र की परवाह नहीं की और सत्य कहा, उनके पुत्र को सौ वर्ष तक जीवित रहने का वरदान दिया।

प्रह्लाद ने शील का आश्रय लेकर त्रिलोक पर विजय प्राप्त की। इंद्र को विदित हुआ तो वे बृहस्पति के पास गये तथा उनसे कल्याण का उपाय पूछने लगे। बृहस्पति ने श्रेय का उपदेश देकर उन्हें अधिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए शुक्राचार्य के पास भेज दिया। शुक्राचार्य ने उपदेश देकर कहा कि इससे अधिक दैत्यराज प्रह्लाद बता सकते हैं। अतः उनसे जाकर मिलें। इंद्र ब्राह्मण का वेश धारण करके प्रह्लाद के पास पहुंचे तथा उनसे सदुपदेश लेने की इच्छा प्रकट की। प्रह्लाद त्रिलोकी की व्यवस्था में व्यस्त थे। अतः ब्राह्मणवेशी इंद्र ने कहा कि वे प्रतीक्षा करेंगे—जब सुविधा हो, वे उपदेश दें। इस उत्तर से प्रसन्न होकर प्रह्लाद ने सस्नेह उन्हें अनेक प्रकार का ज्ञान प्रदान किया तथा उनके विनीत भाव से प्रसन्न होकर इच्छित वर मांगने को कहा। ब्राह्मणवेशी इंद्र ने कहा कि उपदेश ग्रहण करके ही उनकी इच्छाएं पूरी हो गयीं। तदनंतर प्रह्लाद के बहुत आग्रह पर उन्होंने दैत्यराज का शील मांग लिया। दैत्यराज ने उन्हें यह वर तो दे दिया किंतु स्वयं बहुत चिंतातुर हो गये। इन्हें लगा कि ब्राह्मण कोई साधारण व्यक्ति नहीं था। तभी प्रह्लाद के शरीर से एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ। प्रह्लाद ने उसका परिचय पूछा तो उसने कहा कि वह 'शील' है और उनके शरीर का परित्याग कर ब्राह्मण के पास जा रहा है। तदनंतर एक के बाद एक ओजस्वी कांतिमान पुरुष उनके शरीर का परित्याग करके प्रकट हुए और शील के पीछे-पीछे ब्राह्मण के शरीर में प्रवेश करने के लिए चले गये। वे सब क्रमशः धर्म, सत्य, सदाचार और बल थे जिनका अस्तित्व शील के बिना निःशेष हो जाता है। सबसे अंत में सुंदरी नारी-रूपा लक्ष्मी ने प्रकट होकर प्रह्लाद का परित्याग कर दिया और इंद्र के पास चली गयी। प्रह्लाद के पूछने पर लक्ष्मी ने उन्हें बताया कि ब्राह्मण के वेश में इंद्र ही थे।

म० भा०, सभापर्व, ६८।६५ से ८७
शांतिपर्व, १२४।

हिरण्यकशिपु के वधोपरांत प्रह्लाद अभिषिक्त हुआ। नृसिंह ने उसे पाताल में स्थापित किया। भृगु के पुत्र च्यवन रेवा नदी में स्नान करने लगे। अचानक एक भयानक सर्प ने उन्हें ग्रहण कर लिया तथा पाताल में ले गया। विष्णु का स्मरण करने के कारण च्यवन पर उसके दंशन का कोई प्रभाव नहीं हुआ। सर्प ने उनके प्रभाव को जानकर शाप के भय से उन्हें छोड़ दिया। एक दिन प्रह्लाद ने उन्हें देखा तो आतिथ्य करके उनसे विभिन्न तीर्थों के विषय में पूछा। प्रह्लाद उनकी प्रेरणा से नैमिषारण्य गया। वहां तपस्यारत नर-नारायण से विवाद होने के कारण प्रह्लाद ने उनसे युद्ध किया। अंत में नारायण के दर्शन प्राप्त कर उनसे नर-नारायण के वास्तविक रूप को जाना। विष्णु ने उसे उन दोनों से विवाद न करने का आदेश दिया तथा बताया कि दोनों उन्हींके अंश हैं। प्रह्लाद अपने पिता के शत्रु देवताओं को पीड़ित करता रहता था यद्यपि वह विष्णुभक्त था। एक बार देवताओं से घोर युद्ध होने पर शोकग्रस्त प्रह्लाद ने राज्य-

भार बलि को सौंप दिया तथा स्वयं गंधमादन पर्वत पर तपस्या के निमित्त चला गया। दानव देवताओं से त्रस्त होकर अपने गुरु शुक्र की शरण में पहुंचे। शुक्र ने उनसे नीतिपूर्वक मैत्री बनाये रखने को कहा और स्वयं शिव की तपस्या करके देवताओं के विनाश के निमित्त मंत्र ग्रहण करने चले गये। प्रह्लाद के नेतृत्व में उन्होंने देवताओं के सम्मुख शांति का प्रस्ताव रखा।

दे० शुक्र

दे० भा०, ४।७ से ११ तक

प्राचीनबर्हि पृथु के पुत्र अंतर्धान का विवाह शिखंडिनी से हुआ। उनके पुत्र हविर्धा के घिषणा नामक पत्नी से प्राचीनबर्हि नामक प्रजापति का जन्म हुआ। प्राचीनबर्हि का विवाह समुद्र-कन्या सपर्णा से हुआ। उनके दस पुत्र हुए। सभी पुत्र प्रचेता कहलाए। पिता ने उन दसों को संतानोत्पत्ति के लिए कहा क्योंकि उन्हें ब्रह्मा ने सृष्टि-वर्धन की आज्ञा दी थी। ठीक उपाय न जानकर उन्होंने पिता की प्रेरणा से जल के भीतर दस हजार वर्ष तक विष्णु की तपस्या की। विष्णु ने जल के भीतर प्रकट होकर उन्हें अभीष्ट वर प्रदान किया। जल से बाहर निकलकर उन्होंने देखा कि गत वर्षों में समस्त पृथ्वी पेड़ों से ढक गयी, अतः वायु का प्रसारण भी संभव नहीं रहा। प्रचेताओं के श्वास से वायु तथा क्रोध से अग्नि का प्रादुर्भाव हुआ, अतः वृक्ष वायु की तीव्र गति से टूटकर अग्नि में जलने लगे। जब थोड़े-से पेड़ शेष रह गये तब उनके अधिपति ने प्रचेताओं का क्रोधशमन किया तथा पेड़ों की पुत्री 'मारिषा' से उनका विवाह कर दिया।

वि० पु०, १।१४

वि० पु०, १।१२।१-१०

प्रियमित्र हेमद्युति नामक नगर के राजा का नाम धनंजय था। उसकी रानी प्रभावती ने प्रियमित्र नामक पुत्र को जन्म दिया। उस बालक में प्रीतिंकर देव का जीव था (दे० हरिषेण)। प्रियमित्र के राज्य संभालने पर उसकी आयुधशाला में 'चक्ररत्न' प्रकट हुआ, अतः वह चक्रवर्ती कहलाने लगा। एक दिन दर्पण में अपना मुख देखते हुए उसने सफेद बाल देखे। वह मोक्षमार्ग की ओर उन्मुख हुआ। वह क्षेत्रंकर जिनेंद्र की शरण में गया। उन्होंने अलौकिक ध्वनि से पूरित वातावरण में उसे समझाया कि सम्यक् ज्ञान, दर्शन और चरित्र ही मोक्ष-मार्ग है। अजीव तत्त्व, आस्रव तत्त्व, बंध तत्त्व, संवर तत्त्व, निर्जरा तथा मोक्ष का विस्तृत विवेचन किया। प्रियमित्र ने अपने पुत्र 'अरिजय' को राज्य सौंपकर स्वयं दीक्षा ली। फलतः उसे 'सहस्रार स्वर्ग' में 'सूर्यप्रभ देव' की स्थिति प्राप्त हुई।

व० च०, सर्ग १४।-, १५।-

प्रियव्रत मनु अपने पुत्र प्रियव्रत को पृथ्वी का राज्य सौंपना चाहते थे किंतु प्रियव्रत अखंड समाधि योग द्वारा अपना सर्वस्व श्रीविष्णु को अर्पित कर चुके थे, अतः शासन करने के लिए इच्छुक नहीं थे। मनु तथा ब्रह्मा के समझाने पर अनिच्छा होते हुए भी उन्होंने राज्य ग्रहण किया। उनका विवाह विश्वकर्मा की पुत्री बर्हिष्मती से हुआ। उन्होंने दस पुत्रों तथा एक कन्या को जन्म दिया। दूसरी भार्या से पुनः तीन पुत्र प्राप्त किए। एक बार यह देखकर कि सूर्य पृथ्वी के आधे भाग को ही प्रकाशित कर पाता है, उन्होंने रात को भी दिन जैसा प्रकाशमान बनाने का निश्चय किया। एक ज्योतिर्मय रथ पर बैठकर उन्होंने पृथ्वी की सात परिक्रमाएं कर डालीं। रथ के पहियों से बनी सात लीक ही सात समुद्र बन गये तथा शेष स्थल सात द्वीपों के रूप में दिखलायी दिया। प्रियव्रत ने अपनी कन्या ऊर्जस्वती का विवाह शुक्राचार्य से किया जिसने देवयानी को जन्म दिया। तदनंतर प्रियव्रत को अचानक लगा कि यह स्त्री का क्रीड़ा मृग बना हुआ-सा भोगरत है, अतः राज्य अपने बेटों को सौंपकर वैराग्य धारण कर वह श्रीहरि के चिंतन में लग गया।

श्रीमद् भा०, पंचम स्कंध, अध्याय १

देवी भागवत में यही कथा इस अंतर के साथ दी गयी है—प्रियव्रत ने पृथ्वी की परिक्रमा की जिससे भूमि पर जो चिह्न बने, वे ही समुद्र हो गये। प्रियव्रत ने अपने सात बेटों को सात द्वीप प्रदान कर दिये। (शेष कथा श्रीमद् भागवत् जैसी है।)

दे० भा०, ८।४।-

□

फ

फेन शिव ने वृषभ रूप धारण करके मात्र वायु-भक्षण करते हुए नौ हजार वर्ष तक तपस्या की। वे केवल बायें पैर पर खड़े रहे। लार आदि के द्वारा फेन के रूप में परिणत हुई वायु को उन्होंने भीतर खींचकर मुंह से निकाला। इस प्रकार उद्‌गार वायु गोंद के समान नीचे गिर पड़ी। वह सूखी थी, न गीली। वायु का वह रूप फेन नाम से प्रसिद्ध हुआ।

हरि० वं० पु०, भविष्यपर्व, २७। ५-१४

□

ब

बक दल्भ के पुत्र बक ने उद्गीथ रीति से प्राण की उपासना की तथा अपनी मनोकामना पूर्ण करने में सफल रहा।

छा० उ०, अ० १, खंड २, मंत्र १३

बकासुर (क) पांचों पांडव तथा कुंती कौरवों से बचने के लिए एकचक्रा नामक नगरी में, छद्मवेश में एक ब्राह्मण के घर रहने लगे। वे लोग भिक्षा मांगकर अपना निर्वाह करते थे। उस नगरी के पास बक नामक एक असुर रहता था। एकचक्रा नगरी का शासक दुर्बल था, अतः वहां बकासुर का आतंक छा गया था। बकासुर शत्रुओं तथा हिंसक प्राणियों से नगरी की सुरक्षा करता था तथा फलस्वरूप नगरवासियों ने यह नियत कर दिया था कि वहां के निवासी गृहस्थ बारी-बारी से उसके एक दिन के भोजन का प्रबंध करेंगे। बकासुर नरभक्षी था। उसको प्रतिदिन बीस खारी अगहनी के चावल, दो भैंसे तथा एक मनुष्य की आवश्यकता होती थी। उस दिन पांडवों के आश्रयदाता ब्राह्मण की बारी थी। उसके परिवार में पति-पत्नी, एक पुत्र तथा एक पुत्री थे। वे लोग निश्चय नहीं कर पा रहे थे कि किसको बकासुर के पास भेजा जाय। कुंती की प्रेरणा से ब्राह्मण के स्थान पर खाद्य सामग्री लेकर भीमसेन बकासुर के पास गया। पहले तो वह बक को चिढ़ाकर उसके लिए आयी हुई खाद्य सामग्री खाता रहा, फिर उससे द्वंद्व युद्ध कर भीम ने उसे मार डाला। भीमसेन ने उसके परिवारजनों से कहा कि वे लोग नर-मांस का परित्याग कर देंगे तो भीम उनको नहीं मारेगा। उन्होंने स्वीकार कर लिया। पांडवों ने उस ब्राह्मण से प्रतिज्ञा ले ली कि वह किसी पर यह प्रकट नहीं होने देगा कि बकासुर को भीमसेन ने मारा है।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय १५६ से १६३ तक

(ख) बालसखाओं के साथ बलराम और कृष्ण जलाशय के तट पर पहुंचे। तट पर पर्वतवत् एक बड़ा बगुला बैठा था। वह कंस का मित्र था। उसने कृष्ण को निगल लिया। उसके तालू में कृष्ण ने ऐसी जलन उत्पन्न की कि उसने तुरंत उसे उगल भी दिया। फिर चोंच से कठिन प्रहार करना ही चाहता था कि कृष्ण ने चोंच पकड़कर उसे चीर डाला। उसका संसार से उद्धार हो गया। वह बक नामक असुर था जो बगुले का रूप धर कर वहां गया था।

श्रीमद् भा०, १०।११।४५-५६

बटुक दधीचि शिव के परम भक्त थे। उनके आदेश से उनका पुत्र शिवदर्शन प्रतिदिन शिवाराधना करता था। एक बार दधीचि कहीं बाहर गये तो पीछे शिवदर्शन अपनी पत्नी के भोग में लिप्त रहा, शिवपूजन करना भूल गया। शिवरात्रि पर भी बिना स्नान किये पूजन किया। शिव ने रुष्ट होकर शाप दिया कि वह जड़ हो जाय, केवल आंखों से देख पाये। दधीचि ने जाना तो उसकी पत्नी को घर से निकाल दिया तथा शिव-आराधना आरंभ कर दी। शिवदर्शन ने भी शिव तथा गिरिजा की तपस्या की, अतः प्रसन्न होकर शिव ने गांठ बांधकर उसे जनेऊ पहनाया, घी से स्नान करवाया तथा उसका नाम बटुक रखा। शिव ने वर दिया कि बटुक जिस ओर होगा, युद्ध में उसी ओर की विजय होगी तथा ब्रह्मभोज का समापन भी उसीसे होगा।

शि० पु०, ८।१८

बडवामुख बडवामुख नामक लोकहितकारी महर्षि ने तपस्या करते हुए समुद्र का आवाहन किया किंतु वह नहीं आया। उससे रुष्ट होकर महर्षि ने अपने शरीर की गर्मी से उसका जल चंचल कर दिया। साथ ही शाप दिया कि उसका पानी पसीने की तरह खारा ही रहेगा। जब तक बडवामुख द्वारा बार-बार नहीं पीया जायेगा, वह पीने योग्य नहीं होगा। इसी कारण से बडवामुख (अग्नि) निरंतर समुद्र से जल लेकर पीता है।

म० भा०, शांतिपर्व, ३४२।६०-६१

बलराम कृष्ण के बड़े भाई थे। उन्होंने तालवन निवासी धेनुक नामक दैत्य का संहार किया था। वह गधे के रूप में रहता था।

युद्ध से पूर्व जब पांडवों ने कुरुक्षेत्र में डेरा जमाया तब एक दिन उनके शिविर में बलराम गये। बलराम ने वृहत् नरसंहार की आशंका प्रकट की। उन्होंने कहा कि वे हमेशा कृष्ण से कहते थे कि कृष्ण को अपने सभी संबंधियों के साथ एक-सा व्यवहार करना चाहिए। बलराम यह कहकर कि वह उस नरसंहार को देखना नहीं चाहते, सरस्वती नदी के तट पर तीर्थों का भ्रमण करने चले गये।

म० भा०, सभापर्व, ३८
उद्योगपर्व, १५७।२२ से ३५ तक

गोमंत पर्वत की सुषमा देखते हुए बलराम एक कदंब के वृक्ष के पास पहुंचे। पिपासा से त्रस्त होने के कारण उन्होंने कदंब के कोटर से पानी निकालकर पिया। उसके पान के उपरांत बलराम को मोह (नशे) ने ग्रस लिया। कदंब के फूलों के केसर से युक्त कोटर का जल मदिरा बन चुका था। वह 'कांदबरी' कहलाया। उसके पान से वाणी लड़खड़ा गयी, शरीर अपने बस में नहीं रहा। यह सब देखकर तीन देवांगनाएं वहां पहुंचीं। एक अमृत की अधिष्ठात्री वारुणी थी, दूसरी चंद्रमा की प्रिया 'कांति' तथा तीसरी 'श्री' नामक सर्वश्रेष्ठ नारी थी। वे तीनों शेषनाग के अवतार बलराम की सेवा में विभिन्न उपहार प्रस्तुत करने पहुंची थीं। वारुणी ने कहा—"आपके अवतरण के उपरांत मैं फूलों में निवास कर छद्म रूप से आपको खोजती भटक रही थी। हे अनंत, अब मैं निरंतर आपके साथ ही रहूंगी।" कांति ने भी नित्य साहचर्य की कामना व्यक्त की। 'श्री' बलराम के वक्ष पर माला के रूप में प्रतिष्ठित हो गयी। श्री समुद्र से सूर्यवत् प्रभासित होनेवाला मुकुट भी ले आयी थी। अनंत के रूप में प्रयोग लाया गया कुंडल, नीले वस्त्र आदि भी श्री ने उन्हें समर्पित किये।

एक बार बलराम मथुरा से ब्रज गये। ब्रजवासी उनसे मिलकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने मधुपान किया। तदनंतर स्नान करने की इच्छा से जमुना को मूर्तिमती होकर पास आने को कहा। उसने ध्यान नहीं दिया तो बलराम ने अपने हल की नोक को उसके तट पर अटकाकर उसे वृंदावन की ओर खींच लिया। नारी का रूप धारण कर अनुनय-विनय करने पर यमुना को हलधर ने स्वेच्छा से चलने को कहा, साथ ही यह भी आज्ञा दी कि वह वृंदावन का सिंचन करे।

हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व, ४१,४६

महाभारत-युद्ध के समय बलराम कौरव और पांडव दोनों ही पक्षों से संबंधित होने के कारण किसी एक का साथ नहीं देना चाहते थे। कृष्ण का अर्जुन के प्रति विशेष झुकाव देखकर वे युद्धपर्यंत तीर्थाटन के लिए निकल गये। द्वारवती नगरी में उन्होंने ताड़ी का रस पीया, तदुपरांत वे रेवती सहित एक अत्युत्तम लता-गृह में पहुंचे, जहां सूत जी पुराण की कथा बांच रहे थे। बलराम मदमस्त थे। सूत जी के अतिरिक्त शेष सभीने उनका आदर किया। क्रोधवश उन्होंने सूत जी की हत्या कर दी। ब्रह्महत्या के कारण बलराम को जो पाप लगा, उससे छुटकारा पाने के लिए वे तीर्थयात्रा करने 'प्रतिलोमा-सरस्वती' गये।

मा० पु०, ६।

अत्यंत भार से पीड़ित होकर पृथ्वी ने देवताओं से प्रार्थना की कि वे उसे भार-मुक्त करें। वह दैत्यों से त्रस्त थी। देवताओं ने ब्रह्मा से तथा फिर सबने विष्णु से प्रार्थना की। विष्णु ने अपने सिर से उखाड़कर दो बाल (जिनमें से एक काला और एक सफेद था) देवताओं को दिये और कहा—"ये दोनों पृथ्वी पर अवतार लेकर लोककल्याण करेंगे। देवकी का आठवां गर्भ कंस का नाश करेगा। वसुदेव की दूसरी पत्नी के गर्भ से दूसरा अवतार प्रकट होगा।" परमेश्वर अंतर्धान हो गये। नारद ने कंस से जाकर कहा कि वसुदेव-पत्नी देवकी का आठवां गर्भ उसका नाश करेगा। फलत: वसुदेव को जेल में बंद कर दिया गया। परमेश्वर ने योगनिद्रा को बुलाकर कहा—"तुम हिरण्यकशिपु के छः गर्भावस्थित पुत्रों को देवकी

के गर्भ में क्रमशः स्थापित करती जाओ। सातवीं बार मेरा शेष संज्ञक अंश देवकी के पेट में होगा। प्रसव के समय उसे ग्रहण करके तुम वसुदेव की गोकुल-निवासिनी रोहिणी नामक पत्नी के गर्भ में उसे स्थित कर देना। इस प्रकार देवकी का गर्भपात माना जायेगा पर रोहिणी के उदर से वह जन्म लेगा। वह गर्भ खिंच जाने के कारण संकर्षण तथा बलवान होने के कारण बलराम कहलायेगा। देवकी के आठवें गर्भ से अष्टमी के दिन मैं जन्म लूंगा और नवमी के दिन यशोदा के गर्भ से तुम जन्म लेना। तदुपरांत मेरी प्रेरणा और शक्ति से वसुदेव मुझे तुमसे बदल लायेंगे।

ब्र० पु०, १८१।-

बलि इंद्र ने ब्रह्मा से पूछा कि बलि का निवासस्थान कहां है। ब्रह्मा ने उसके प्रश्न का अनौचित्य बताते हुए उससे कहा कि किसी शून्य घर में अश्व, गो, गर्दभ आदि में जो श्रेष्ठ जीव हो, वही बलि होगा। इंद्र ने पुनः पूछा कि एकांत में मिलने पर इंद्र उसका हनन करे अथवा नहीं। ब्रह्मा ने कहा—"नहीं।" इंद्र ने एक शून्य घर में गर्दभ योनि में बलि को देखा। इंद्र ने तरह-तरह से, व्यंग्यपूर्वक उससे पूछा कि इतने वैभव, शक्ति, छत्र, चंवर तथा ब्रह्मा की दी हुई माला के अधिपति रहने के उपरांत इस निरीह योनि में उन सब तत्त्वों से विहीन होकर उसे कैसा लग रहा है ? न वहां स्वर्णदंड था, न दिव्यमाला, न चंवर इत्यादि। बलि ने हंसकर कहा कि उसका प्रश्न अनुचित है तथा उसकी समस्त वैभव-संपन्न वस्तुएं एक गुफा में रखी हुई हैं। अच्छे दिन आने पर वह पुनः उन्हें ग्रहण कर लेगा। इंद्र का उसके बुरे दिनों में उसका परिहास करना उचित नहीं है। अस्थिर कालचक्र के परिणामस्वरूप कभी भी कुछ भी हो सकता है। तदनंतर इंद्र के देखते-देखते बलि के शरीर से एक सुंदरी निकली। इंद्र ने उसका परिचय पूछा तो जाना कि वह मूर्तिमती लक्ष्मी थी। वह सत्य, दान, व्रत, तपस्या, पराक्रम तथा धर्म में निवास करती थी। उस योनि को प्राप्त कर बलि इनमें से किसीका भी निर्वाह करने में समर्थ नहीं था। अतः उसके शरीर से वह निकल आयी थी। इंद्र ने कहा कि वह शारीरिक बल तथा मानसिक शक्ति के अनुसार उसे ग्रहण करेगा। साथ ही उसने ऐसा उपाय भी पूछा कि जिससे लक्ष्मी कभी उसका परित्याग न करें। यों कोई भी व्यक्ति (देवता या मनुष्य) अकेला, लक्ष्मी को धारण करने में समर्थ नहीं था। लक्ष्मी के कथनानुसार इंद्र ने लक्ष्मी के चारों पैरों को क्रमशः (१) पृथ्वी, (२) जल, (३) अग्नि तथा (४) सत्पुरुषों में प्रतिष्ठित कर दिया। इंद्र ने कहा कि जो कोई भी लक्ष्मी को कष्ट देगा, इंद्र के क्रोध तथा दंड का भागी होगा। तदनंतर परित्यक्त बलि ने कहा कि सूर्य जब अस्ताचल की ओर नहीं बढ़ेगा तथा मध्याह्न काल में स्थिर हो जायेगा तब वह (बलि) देवताओं को पराजित करेगा। इंद्र ने बताया कि ब्रह्मा की व्यवस्था के अधीन सूर्य दक्षिणायण तथा उत्तरायण तो होगा पर मध्याह्न में नहीं रुकेगा। इंद्र ने कहा—"बलि, तुम्हें जिधर इच्छा हो, चले जाओ। मैंने तुम्हारा वध मात्र इसलिए नहीं किया कि मैं ब्रह्मा से प्रतिज्ञा करके आया था।" तदुपरांत बलि ने दक्षिण की ओर तथा इंद्र ने उत्तर की ओर प्रस्थान किया।

(२२८ अध्याय में कहा गया है कि लक्ष्मी अपनी आठ सखियों—आशा, श्रद्धा, शांति, धृति, विजिति, संतति, क्षमा और जया—के साथ विष्णु के विमान पर बैठकर इंद्र के पास पहुंची क्योंकि दैत्यों में अनाचार आरंभ हो गया था। उस समय नारद भी इंद्र के पास थे)।

म० भा०, शांतिपर्व, २२३-२२८

बलि नामक दैत्य गुरुभक्त प्रतापी और वीर राजा था। देवता उसे नष्ट करने में असमर्थ थे। वह विष्णुभक्त था। देवता भी विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने कहा कि वह भी उनका भक्त है, फिर भी वे कोई युक्ति सोचेंगे। बलि ने अश्वमेध यज्ञ की योजना की। वहां अदिति पुत्र वामन (विष्णु) ब्राह्मण-वेश में पहुंचे। शुक्र ने उन्हें देखते ही बलि से कहा कि वे विष्णु हैं, बलि शुक्र से पूछे बिना कोई वस्तु उन्हें दान न करे, किंतु वामन के मांगने पर बलि ने उन्हें तीन पग भूमि देने का वादा कर लिया। वामन ने दो पग में समस्त भूमंडल नाप लिया—"तीसरा पग कहां रखूं ?" पूछने पर बलि ने मुस्कराकर कहा—"इसमें तो कमी आपके ही संसार बनाने की हुई—मैं क्या करूं ? मेरी पीठ प्रस्तुत है।" इस प्रकार विष्णु ने उसकी कमर पर तीसरा पग रखा। उसकी भक्ति से प्रसन्न होकर उसे रसातल के राजा होने का वर दिया।

ब्र० पु०, अ० ३, १-५६

बल्वल एक बार बलराम तीर्थों का पर्यटन करते हुए नैमिषारण्य क्षेत्र में पहुंचे। वहां अनेक ब्राह्मण नीचे बैठे

थे और ऊंचे आसन पर सूत जाति का रोमहर्षण बैठा था। उस प्रतिलोम जाति के व्यक्ति को ब्राह्मणों से ऊपर का आसन ग्रहण किये देखकर बलराम ने कुश की नोक से उस अशिष्ट पर प्रहार किया। वह तुरंत मर गया। एकत्र ब्राह्मण बहुत दुखी हुए। उन्होंने स्वेच्छा से उसे वह स्थान दिया था तथा सत्र की समाप्ति तक के लिए उसे शारीरिक कष्ट रहित आयु भी प्रदान कर रखी थी। उन्होंने बलराम से कहा कि वे दैत्य इल्वल के पुत्र बल्वल का हनन कर दें क्योंकि वह प्रत्येक सत्र में विघ्न उत्पन्न करता है। तदनंतर एक वर्ष तक भारत की परिक्रमा करते हुए विभिन्न तीर्थों का सेवन करके वे शुद्ध हो जायेंगे। पर्व के दिन बल्वल ने यज्ञ में व्याघात उत्पन्न करने का प्रयास किया। बलराम ने आकाशचारी बल्वल को अपने मूसल तथा हल के प्रहारों से मार डाला। उसके उपरांत वे तीर्थाटन के लिए चल पड़े।

श्रीमद् भा०, १०।७८।१७-४०।-
श्रीमद् भा०, ७६।-

बहेलिया एक भयंकर बहेलिया किसी वन में जाते हुए आंधी-तूफान में फंस गया। वर्षा और सर्दी के कारण वह अत्यंत त्रस्त था। तभी उसका ध्यान भूमि पर गिरी एक कबूतरी पर पड़ा। स्वयं इतने कष्ट में होने पर भी उसने कबूतरी को उठाकर अपने पिंजरे में बंद कर लिया तथा वन में स्थित एक विशाल वृक्ष के नीचे जाकर लेट गया। उस वृक्ष पर अनेक पक्षी थे। उस कबूतरी का पति भी वहां अपनी पत्नी के विरह में विलाप कर रहा था। बहेलिये के पिंजरे में कबूतरी ने कबूतर को आश्वस्त किया तथा बहेलिये का आतिथ्य करने के लिए कहा। कबूतर बहेलिये की सेवा में उपस्थित हुआ तो उसकी इच्छा जानकर सूखे पत्ते एकत्र कर उसने लोहार के यहां से लाकर आग प्रज्वलित कर दी। बहेलिये ने बताया कि वह बहुत भूखा है। कपोतवृत्ति संग्रहशील नहीं होती, अत: कोई भोज्य पदार्थ प्रस्तुत करने में वह असमर्थ था। उसने बहेलिये के सम्मुख आत्मसमर्पण कर आग में छलांग लगा दी। उसके आतिथ्य सत्कार से चमत्कृत हो बहेलिया अपनी कुवृत्ति से छुटकारा पाने के लिए छटपटाने लगा। उसने कपोती को मुक्त कर दिया तथा स्वयं निराहार रहकर वन में जीवन-यापन करने लगा। कपोती तुरंत अपने पति के पास आग में कूद गयी। बहेलियों के वन में भी दावाग्नि का प्रकोप हुआ। कपोत-कपोती ने आतिथ्य सेवा के कारण तथा बहेलिये ने दावाग्नि में जलकर पाप नष्ट करने के कारण स्वर्ग की प्राप्ति की।

म० भा०, शांतिपर्व, १४३-१४६।-

बाणासुर बलि के ज्येष्ठ पुत्र का नाम बाण था। बाण ने घोर तपस्या के फलस्वरूप शिव से अनेक दुर्लभ वर प्राप्त किये थे। अत: वह गर्वोन्मत्त हो उठा था। उसके एक सहस्र बांहें थीं। वह शोणितपुर पर राज्य करता था। उसकी एक सुंदरी कन्या थी, जिसका नाम उषा था। प्रद्युम्न का पुत्र अनिरुद्ध उस कन्या पर आसक्त हो गया तथा गुप्त रूप से उससे मिलता रहा। बाणासुर को विदित हुआ तो उसने दोनों को कारागार में डाल दिया। नारद ने श्रीकृष्ण से जाकर कहा—"आपके पौत्र अनिरुद्ध को बाणासुर विशेष कष्ट दे रहा है।" श्रीकृष्ण ने बलराम तथा प्रद्युम्न के साथ बाणासुर पर आक्रमण किया। महादेव बाणासुर की रक्षा के निमित्त वहां पहुंचे किंतु सबको परास्त कर तथा बाणासुर की समस्त बांहें काटकर और उसे मारकर श्रीकृष्ण, उषा और अनिरुद्ध को धन-धान्य सहित लेकर द्वारका पहुंचे।

म० भा०, सभापर्व, ३८।-

बाणासुर बलि के सौ पुत्रों में से ज्येष्ठ था। वह स्कंद को खेलता देख शिव की ओर आकृष्ट हुआ। उसने शिव को प्रसन्न करने के लिए घोर तपस्या की। शिव ने वर मांगने को कहा तो उसने ये वर मांगे—"(१) पार्वती उसे पुत्र-रूप में ग्रहण करें, वह स्कंद का छोटा भाई माना जाने लगा। (२) वह शिव से आरक्षित रहेगा। (३) उसे अपने समान वीर से युद्ध करने का अवसर मिले।" शिव ने कहा—"अपने स्थान पर स्थापित तुम्हारा ध्वज जब खंडित होकर गिर जायेगा तभी तुम्हें युद्ध का अवसर मिलेगा।" बाणासुर की एक सहस्र भुजाएं थीं। उसने अपने मंत्री कुंभांड को समस्त घटनाओं के विषय में बताया तो वह चिंतित हो उठा। तभी इंद्र के वज्र से उसकी ध्वजा टूटकर नीचे गिर गयी। बाणासुर की कन्या उषा ने वन में शिव-पार्वती को रमण करते देखा तो वह भी कामविमोहित होकर प्रिय-मिलन की इच्छा करने लगी। पार्वती ने उसे आशीर्वाद दिया कि वह अपने प्रिय के साथ पार्वती की भांति ही रमण कर पायेगी। स्वप्नदर्शन से वह अनिरुद्ध पर आसक्त हो गयी (दे० अनिरुद्ध)। चित्रलेखा ने अनिरुद्ध का अपहरण किया तथा उसीकी सहायता से उषा का अनिरुद्ध से

गांधर्व विवाह हो गया। बाणासुर को ज्ञात हुआ तो उसने अनिरुद्ध को नागपाश से आबद्ध कर लिया। आर्यादेवी की आराधना से अनिरुद्ध उन पाशों से मुक्त हो गया। इधर नारद से समस्त समाचार जानकर श्रीकृष्ण यादववंशियों सहित बाणासुर के नगर की ओर बढ़े। नगर को चारों ओर से अग्नि ने घेर रखा था। अंगिरा उसकी सुरक्षा में थे। गरुड़ ने हजारों मुख धारण करके गंगा से पानी लिया तथा अग्नि पर छिड़ककर उसे बुझा दिया। कृष्ण ने अंगिरा, त्रिशिरा, ज्वर आदि को परास्त कर दिया। कृष्ण तथा शिव का परस्पर युद्ध हुआ। कृष्ण ने शिव पर जृंभास्त्र का प्रयोग किया। शिव की जृंभा से ज्वाला निकलकर दिशाओं को दग्ध करने लगी। पृथ्वी भयभीत होकर ब्रह्मा की शरण में गयी। ब्रह्मा ने शिव से कहा—"विष्णु और तुम अभिन्न हो। एक ही के दो रूप हो। तुम्हारी सलाह से ही असुरों का नाश आरंभ किया गया था। अब तुम असुरों को प्रश्रय क्यों दे रहे हो?" शिव ने योग-बल से अपना और विष्णु का एकत्व जाना, अतः पृथ्वी पर विष्णु से युद्ध करने का निश्चय कर लिया। बाणासुर तथा कृष्ण का युद्ध हुआ। बाणासुर को बचाने के लिए पार्वती दोनों के मध्य जा खड़ी हुई। वे मात्र कृष्ण को नग्न रूप में दीख पड़ रही थीं, शेष सबके लिए अदृश्य थीं। कृष्ण ने आंखें मूंद लीं। देवी की प्रार्थना पर कृष्ण ने बाणासुर को जीवित रहने दिया किंतु उसके मद को नष्ट करने के लिए एक सहस्र हाथों में से दो को छोड़कर शेष काट डाले। शिव ने बीच-बचाव किया। पुत्रवत् बाणासुर को शिव ने चार वर प्रदान किये— (१) अजर-अमरत्व, (२) शिव-भक्ति में विभोर नाचनेवालों को पुत्र-प्राप्ति, (३) बांहें कटने के कष्ट से मुक्ति तथा (४) महाकाल नाम की ख्याति। अतः बाणासुर महाकाल कहलाने लगा।

ब्र० पु०, २०६।-
हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व, ११६-१२६

बालखिल्य कश्यप-पुत्र कामना से यज्ञ कर रहे थे। देवतागण भी उनके सहायक थे। कश्यप ने इंद्र तथा बालखिल्य मुनियों को समिधा लाने का कार्य सौंपा। इंद्र तो बलिष्ठ थे, उन्होंने समिधाओं का ढेर लगा दिया। बालखिल्य मुनिगण अंगूठे के बराबर आकार के थे तथा सब मिलकर पलाश की एक टहनी ला रहे थे। उन्हें देखकर इंद्र ने उनका परिहास किया। वे सब इंद्र से रुष्ट होकर किसी दूसरे इंद्र की उत्पत्ति की कामना से प्रतिदिन विधिपूर्वक आहुति देने लगे। उनकी आकांक्षा थी कि इंद्र से सौगुने अधिक शक्तिशाली और पराक्रमी दूसरे इंद्र की उत्पत्ति हो। इंद्र बहुत संतप्त होकर कश्यप के पास पहुंचे। कश्यप इंद्र के साथ बालखिल्य मुनियों के पास पहुंचे। इंद्र को भविष्य में घमंड न करने का आदेश देते हुए कश्यप ने उन सभी ऋषियों को समझाया-बुझाया। बालखिल्य मुनियों की तपस्या भी व्यर्थ नहीं जा सकती थी, अतः उन्होंने कहा—"हे कश्यप, तुम पुत्र के लिए तप कर रहे हो। तुम्हारा पुत्र ही वह पराक्रमी, शक्तिशाली प्राणी होगा, वह पक्षियों का इंद्र होगा।" वरदान के फलस्वरूप पक्षीराज गरुड़ का जन्म कश्यप के घर में हुआ।

म० भा, आदिपर्व, ३१।१५-३५

बावरी बावरी राजा प्रसेनजित के पुरोहित का विद्वान पुत्र था। पिता की मृत्यु के उपरांत उसे पुरोहित बनाया गया, किंतु वह सब छोड़कर गोदावरी के किनारे पर यज्ञ करने के लिए चला गया। उसका यज्ञ करवाने के लिए दूसरे ब्राह्मण ने उससे पांच सौ मुद्रा मांगीं। बावरी ने निर्धनता का आवाहन किया था। वह देने में असमर्थ था। ब्राह्मण ने कहा—"न देने से सातवें दिन उसका सिर सात टुकड़ों में विभक्त हो जायेगा।" बावरी दुखी रहने लगा। एक हितैषी देवता ने उसे समझाया कि शाप देनेवाला ब्राह्मण पाखंडी था, वह मूर्धा के विषय में नहीं जानता। उस देवता के माध्यम से बुद्ध के संपर्क में आकर बावरी ने प्रव्रज्या ग्रहण की।

बु० च०, ४।८।-

बाहुबली राजा भरत ने चक्रवर्ती पद प्राप्त किया था। उन दिनों तक्षशिला में महान बाहुबली रहता था। वह भरत की आज्ञाओं को स्वीकार नहीं करता था। भरत ने उसपर आक्रमण कर दिया। अनेक लोगों का वध होने पर बाहुबली ने भरत को द्वंद्व युद्ध तक सीमित रहने को कहा। भरत परास्त हो गया। उसने सुदर्शन चक्र का प्रयोग किया किंतु बाहुबली पर बिना कुछ प्रभाव किये वह लौट आया। विजयी होकर भी बाहुबली के मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसने अपने तपोबल से केवल ज्ञान प्राप्त किया। भरत अयोध्या लौट

गया। कालांतर में भरत ने भी राज्यलक्ष्मी का तृणवत् त्याग करके जिनवर के मार्ग का अनुसरण किया।

पउ० च०, ४।३६-५५

बिंबसार भगवान मगधराज श्रेणिक बिंबसार के राज्य में गये। राजा ने प्रव्रज्या ग्रहण की तथा अपना वेणुवन उनको रहने के लिए समर्पित किया। सारिपुत्र तथा मौद्गल्यायन ने उनकी कीर्ति सुनी तो वेणुवन में जाकर उनसे प्रव्रज्या ग्रहण की।

बु० च०, ११७-८

बुद्ध पूर्वकाल में देवासुर संग्राम हुआ। देवतागण पराजित होकर भगवान के पास पहुंचे। भगवान माया, मोह, भय-रूप धारण करके शुद्धोदन के पुत्र बुद्ध (सिद्धार्थ) हुए। उन्होंने दैत्यों को मोहित करके वैदिक धर्म से विमुख कर दिया। वे सब लोग पाप की ओर प्रवृत्त हुए। कलिकाल में जब पाप बहुत बढ़ जायेगा और पापी लोग धर्म की आड़ में पाप करेंगे तब भगवान कल्कि रूप में अवतरित होकर चारों वर्णों की मर्यादा को पुनः स्थापित करके अपने धाम को चले जायेंगे। विष्णु के आंशिक अवतार, (कल्कि) श्री विष्णुयशा के पुत्र-रूप में अवतरित होंगे।

अ० पु०, १६।-

बुद्ध-जन्म 'महापुरुष' ने कपिलवस्तु के राजा शुद्धोदन के यहां जन्म ग्रहण करने का निश्चय किया। एक रात शुद्धोदन की पत्नी महामाया ने स्वप्न देखा कि बोधिसत्त्व ने श्वेतवर्ण के हाथी के रूप में सूंड में श्वेत कमल लेकर उसकी तीन बार प्रदक्षिणा की, फिर दाहिनी बगल चीरकर कुक्षि में प्रविष्ट हो गये। रानी ने जागने पर ब्राह्मणों से स्वप्न दर्शन का संकेत पूछा तो उन्होंने कहा कि पुत्र-जन्म होगा, जो या तो चक्रवर्ती राजा होगा या फिर कपाट-खुला (ज्ञानी) परिव्राजक होगा। गर्भवती रानी ने अपने पीहर जाने की इच्छा व्यक्त की। राजा से अनुमति लेकर उसने प्रस्थान किया। मार्ग में शाल-वन पड़ता था। रानी वहां सैर करना चाहती थी। एक पेड़ के नीचे खड़ी वह साल-शाखा पकड़ने की इच्छा कर रही थी कि शाखा बेंत के समान मुड़कर उसके हाथ में आ गयी। शाखा पकड़कर खड़े-खड़े ही उसने शिशु को जन्म दिया। उस समय चारों शुद्धचित्त महाब्रह्मा हाथ में सोने का जाल लेकर वहां पहुंचे। जाल में बालक को ग्रहण करके उन्होंने 'मां' को अर्पित किया। तदनंतर उसे कोमल मृगचर्म में लिया गया। जिस समय उस बालक का जन्म हुआ, उसी समय राहुल-माता, काल-उदायी (अमात्य), कन्यक (अश्व), महाबोधि-वृक्ष और खजाने से भरे चार घड़े भी उत्पन्न हुए। कुलमान्य तापस 'कालदेवल' ने बालक को गोद में उठाया तो शिशु ने अपने पैरों से तापस की जटाओं का स्पर्श किया। तापस ने तुरंत शिशु को प्रणाम किया और कहा—"यह 'बुद्ध-अंकुर' है।"

काल देवल ने विचारा—"बुद्ध होने के उपरांत मैं इसे नहीं देख पाऊंगा। मेरा भांजा इसे देख पायेगा।" अतः उन्होंने अपने भांजे नालक को प्रव्रज्या दिलवा दी। बोधिसत्त्व जिस कुक्षि में वास करते हैं, वह किसी अन्य के वास के लिए प्रयुक्त नहीं होती। इस कारण से सिद्धार्थ जन्म के साथ एक सप्ताह बाद ही उनकी मां ने मरकर तुषितलोक में जन्म ग्रहण किया। एक बार खेत बोने के उत्सव में राजा हल जोत रहे थे। धायों सहित सिद्धार्थ-को भी अपने साथ ले गये थे। सिद्धार्थ के लिए जंबूवृक्ष के नीचे पलंग बिछा था। धायों को खाना तैयार करने में देर लगी। कनात के भीतर प्रवेश करके उन्होंने देखा कि सिद्धार्थ पलंग पर आसन मारे ध्यानमग्न थे। समयानुसार शेष समस्त पेड़ों की छाया लंबी हो गयी थी, किंतु जंबूवृक्ष की छाया गोलाकार में ही विद्यमान थी। चमत्कार से अभिभूत होकर पिता ने पुत्र का पुनः नमन किया।

बु० च०, बाल्य १।१।,

धर्मकाल में सौ वर्ष तक देवासुर संग्राम होता रहा। देवता पराजित होकर विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने देवताओं को 'माया-मोह' प्रदान करके कहा कि वे उसे दैत्यों तक पहुंचा दें। दैत्य उसमें लिप्त होकर नित्यकर्मो से विमुख हो जायेंगे तथा युद्ध में पराजित हो जायेंगे। विष्णु के कथनानुसार देवताओं ने माया-मोह दैत्यों तक पहुंचा दिया। 'माया-मोह' ने दैत्यों को वैदिक (वेदत्रयी) के मार्ग से हटाकर बुद्ध-धर्म (बुध्यत जानो, बुध्यध्वं समझो) की ओर प्रवृत्त कर दिया, अतः वे सब देवताओं से पराजित होकर मारे गये।

वि० पु०, ३।१७
वि० पु०, ३।१८।१-३५

बोधिसत्त्व बोध गया के प्रसिद्ध पीपल-वृक्ष (बोधिवृक्ष) के नीचे बैठे थे। श्रोत्रिय नामक घास काटनेवाले ने उन्हें

आठ मुट्ठी घास दी। उन्होंने कटी हुई घास के अग्र भाग को पकड़कर उसे हिलाया तो वह आसन बन गयी। उन्होंने निश्चय किया कि सम्यक् संबोधि को प्राप्त किये बिना उस आसन को नहीं छोड़ेंगे। 'मार' ने उन्हें अपने अधिकार से बाहर निकलते देखा तो ससैन्य आक्रमण करने का प्रयास किया किंतु ससेना वह पराजित हो गया। प्राकृतिक आक्रोश में भी वह बोधिसत्त्व को विचलित नहीं कर पाया। सूर्य के रहते-रहते वह परास्त होकर भाग गया। बोधिवृक्ष के टूसों (नोकीली कली) से मानो लाल मूंगों से पूजित होकर उन्होंने पूर्वापर जन्म का ज्ञान तथा दिव्य चक्षु प्राप्त किये। वे एक सप्ताह तक उसी वृक्ष के नीचे बैठे, जन्म, जरा, संसार, वैराग्य, अविद्या, नाश आदि जन्य विकार और उनको नष्ट करने के उपायों का ज्ञान प्राप्त करते रहे। उस पीपल के नीचे उन्होंने ज्ञान प्राप्त किया था, अतः वह बोधिवृक्ष कहलाया। एक सप्ताह उपरांत वे अजपाल नाम से विख्यात बरगद के पेड़ के नीचे जा बैठे। तदनंतर इसी प्रकार के भिन्न-भिन्न वृक्षों के नीचे बैठकर विचार करते रहे। एक बार अपने कुलगुरु की प्रेरणा से तपस्सु तथा मल्लिक दो बंजारों ने उन्हें लड्डू तथा मट्ठा समर्पित करते हुए कहा कि "वे धर्म की शरण में जाकर उन्हें भिक्षा समर्पित करना चाहते हैं," अतः वे दोनों ही उनके प्रथम शिष्य माने गये।

बु० च०, १।३।बुद्धत्व-प्राप्ति ४। बोधिवृक्ष के नीचे

बृहद्रथ बृहद्रथ बंगप्रदेश का राजा था। उसने बहुत बढ़-चढ़कर देवताओं, गंधर्वों के यज्ञों को भी मात देनेवाले सौ यज्ञ किये थे, जिनमें सोने के बने कमलों की मालाओं सहित अनेक पशु आदि दक्षिणा में दिये गये। उसके यज्ञ में सोमपान कर इंद्र मदमत्त हो उठे थे।

म० भा०, शांतिपर्व, २९।३२-३६

बृहस्पति एक बार जब पर्वत ने गौएं छिपा ली थीं तब बृहस्पति ने गौओं को मुक्त किया। शंबर को मारकर वे पर्वत में छिपी गायों के पास चले गये थे। उन्होंने मंत्रों से ही बल नामक दैत्य को भगा दिया था। बृहस्पति अपना समस्त कार्य वाण से ही करते हैं।

ऋ० २।२३।१८, २।२४।४, २।२४।८

पूर्वकाल में अवमर्शपूर्ण याज्ञिकों के दुष्ट कर्मों की प्रतिक्रिया यह हुई कि लोगों ने यज्ञ करने बंद कर दिये। अवमर्शपूर्वक यजन करने के कारण याज्ञिक पुरुष पापी हो गये तथा जो यज्ञ नहीं करते थे, वे कल्याण के भागी संपन्न पुरुष हो गये। अतः यज्ञ न करनेवाले लोग अधिक हो गये। देवताओं को हविष्य नहीं मिलता था, अतः उन्होंने बृहस्पति को मनुष्यों को यज्ञ के लिए प्रेरित करने के लिए भेजा। मनुष्यों ने कारण बताया तो बृहस्पति ने यज्ञ के समय वेदी का शोधन करने के लिए कहा।

श० प० ब्रा०, १।२।५।२४-२६

अभिमानी असुर यज्ञ करते हुए अपने ही मुंह में आहुति देने लगे। देव एक-दूसरे के मुंह में देते थे, अतः प्रजापति देवताओं के हो गये। यज्ञ किसका हो, विषय को लेकर परस्पर देवताओं में विवाद आरंभ हुआ। सविता की प्रेरणा से बृहस्पति ने वाजपेय यज्ञ जीत लिया।

श० प० ब्रा०, ५।१।१।१

प्राचीनकाल में प्रजापति के पुत्र देवता तथा असुर परस्पर युद्ध करने लगे। देवताओं ने सोचा, उद्‌गीथ का (उद्‌गीथ भक्ति से उपलक्षित औद्‌गात्र कर्म का) अनुष्ठान करने से असुरों का पराभव निश्चित रूप से हो जायेगा, अतः सर्वप्रथम उन्होंने नासिका स्थित प्राण की उद्‌गीथ रूप से उपासना की। असुरों ने नासिका को पाप से बिद्ध कर दिया, अतः घ्राणसंज्ञक प्राण सुगंध तथा दुर्गंध दोनों को ग्रहण करने लगे। इसी प्रकार देवताओं ने क्रमशः वाणी, चक्षु, श्रोत्र तथा मन की उद्‌गीथ उपासना की असुरों ने हर बार पाप से बेधन किया, फलतः वाणी, चक्षु, श्रोत्र तथा मन, अच्छा और बुरा कर्म समान रूप से करने लगे। अंत में देवताओं ने प्रसिद्ध-मुख्य-प्राण की उद्‌गीथ रूप से उपासना की। असुरगण जब विध्वंस के निमित्त वहां पहुंचे तो वे स्वयं ही ऐसे नष्ट हो गये जैसे पत्थर से टकराकर मिट्टी का ढेला नष्ट हो जाता है।

अंगिरा ऋषि, बृहस्पति तथा आयास्य ने इसकी उद्‌गीथ दृष्टि से उपासना की, अतः इस प्राण को आंगिरस, बृहस्पति तथा आयास्य भी कहा जाता है।

छा० उ०, अध्याय १, खंड २, मंत्र १-२०

बृहस्पति की पत्नी चांद्रमसी (तारा) नाम से विख्यात थी। उसने कुल छह पुत्रों (शंयु, निश्च्यवन, विश्वजित्, विश्वभुक्, उदान, स्विष्टकृत्) तथा एक कन्या (स्वाहा) को जन्म दिया।

म० भा०, वनपर्व, २१९।-

ब्रह्मा के पुत्र अंगिरस हुए, जिनके पुत्र का नाम बृहस्पति था। उन्होंने तपस्या के बल से शिव को प्रसन्न करके देवगुरु का स्थान प्राप्त किया तथा बुध के ऊपर बृहस्पति लोक की स्थापना हुई।

शि० पु०, ११।१४

बैजनाथ ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य (सप्तर्षियों में से एक) की तीन पत्नियां थीं। पहली से कुबेर, दूसरी से रावण और कुंभकर्ण तथा तीसरी से विभीषण का जन्म हुआ। रावण ने बल-प्राप्ति के निमित्त घोर तपस्या की। शिव ने प्रकट होकर रावण को शिवलिंग अपने नगर तक ले जाने की अनुमति दी। साथ ही कहा कि मार्ग में पृथ्वी पर रख देने पर लिंग वहीं स्थापित हो जायेगा। रावण शिव के दिये दो लिंग 'कांवरी' में लेकर चला। मार्ग में लघुशंका के कारण, उसने कांवरी किसी बैजू नामक चरवाहे को पकड़ा दी। शिवलिंग इतने भारी हो गये कि उन्हें वहीं पृथ्वी पर रख देना पड़ा। वे वहीं स्थापित हो गये। रावण उन्हें अपनी नगरी तक नहीं ले जा पाया। जो लिंग कांवरी के अगले भाग में था, चन्द्रभाल नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा जो पिछले भाग में था, वैद्यनाथ कहलाया। चरवाहा बैजू प्रतिदिन वैद्यनाथ की पूजा करने लगा। एक दिन उसके घर में उत्सव था। वह भोजन करने बैठा तभी स्मरण आया कि पूजा नहीं की है, सो वह वैद्यनाथ की पूजा के लिए गया। सब लोग उससे रुष्ट हो गये। शिव और गिरिजा ने प्रसन्न होकर उसकी इच्छानुसार वर दिया कि वह नित्य पूजा में लगा रहे तथा उसके नाम के आधार पर वह शिवलिंग भी बैजनाथ कहलाये। तदनंतर रावण निरंतर शिव-भक्ति करने लगा और देवपत्नियों का हरण भी उसका नियम बन गया। देवता विष्णु की शरण में गये। नारद ने रावण को समझाया कि शिव कुबेर के पास ही रहते हैं। उन्हें लाने का उपाय कैलास पर्वत उखाड़ लाना है। रावण के वैसा करने पर शिव ने उसे किसी मानव के हाथों हाथ कटवाने का शाप दिया क्योंकि अपने भूतपूर्व भक्त को वे स्वयं नष्ट नहीं कर सकते थे। विष्णु ने राम के रूप में अवतरित होकर रावण को मार डाला।

शि० पु०, ८।४३-४७

ब्रह्म एक बार देवताओं ने असुरों पर विजय प्राप्त की। वे यह भूल गये कि विजय प्राप्त करने की शक्ति ब्रह्म ही प्रदान करते हैं। देवताओं के मिथ्याभिमान को जानकर परब्रह्म ने सोचा कि यह अभिमान बना रहा तो देवताओं का पतन हो जायेगा, अतः उन्होंने एक दिव्य आकार यक्ष का रूप धारण किया तथा देवताओं के सम्मुख प्रकट हुए। देवतागण उनका परिचय प्राप्त करना चाहते थे। उन्होंने अग्नि देवता को उन्हें पहचानने के लिए भेजा। ब्रह्म ने उन्हें देखकर उनका परिचय पूछा। अग्नि देवता ने गर्वपूर्वक बताया—"मैं जातवेदा हूं, संपूर्ण पृथ्वी को भस्म करने में समर्थ हूं।" ब्रह्म ने एक तिनका उनके सामने डालकर उसे जलाने के लिए कहा। अग्नि देवता पूरा प्रयत्न करके भी नहीं जला पाये, क्योंकि ब्रह्म ने उनके शक्ति-स्रोत को रोक दिया था। वे लज्जित होकर लौट गये। तदुपरांत देवताओं ने वायुदेवता को भेजा। उन्होंने भी दिव्य यक्ष को सगर्व अपना परिचय दिया—"मैं मातरिश्वा हूं, संपूर्ण वस्तुओं को बिना आधार के ही उड़ाकर इधर-उधर ले जा सकता हूं।"

ब्रह्म ने वही तिनका उड़ाने के लिए कहा। पूरी शक्ति लगाकर भी वायु देवता उसे नहीं उड़ा पाये क्योंकि ब्रह्म ने उनके शक्ति-स्रोत को रोक दिया था। वे भी अत्यंत लज्जित अवस्था में लौट आये।

देवताओं ने इंद्र से उनका परिचय प्राप्त करने की प्रार्थना की। ब्रह्म जानते थे कि इंद्र शेष सभी देवताओं से अधिक अभिमानी हैं, अतः वे अंतर्धान हो गये। उन्होंने इंद्र को दर्शन ही नहीं दिये। उसी स्थान पर पर्वत-पुत्री उमा के दर्शन हुए। इंद्र के प्रश्न करने पर उमा ने उस दिव्य विशाल यक्ष का मूल परिचय दिया। ऐसा करने के लिए ब्रह्म ने ही उमा को प्रेरित किया था। देवताओं का मिथ्याभिमान नष्ट हो गया। देवताओं में अग्नि, वायु तथा इंद्र का विशेष महत्त्व माना जाता है क्योंकि अग्नि, वायु को ब्रह्म वार्तालाप करने का अवसर मिला, तथा इंद्र को सर्वप्रथम ब्रह्म के स्वरूप का ज्ञान हुआ।

केनोपनिषद्, तृतीय खंड (संपूर्ण)
चतुर्थ खंड, श्लोक १-३

देवासुर संग्राम में भुवनेश्वरी की कृपा से देवतागण विजयी हुए। विजय के प्रमाद से उनका अहंकार दीप्त हो गया, अतः देवी के प्रति कृतज्ञता का भाव समाप्त हो गया। उनपर अनुग्रह करने के लिए परमेश्वरी अत्यंत प्रकाशमान यक्ष के रूप में यज्ञ से प्रकट हुई।

(शेष कथा केनोपनिषद् के समान ही है)।

दे० भा०, १२।८

ब्रह्मतीर्थ देवताओं और असुरों के युद्ध में शिव ने भाग लिया। श्रम के कारण शिव के शरीर से पसीने की बूंदें भूमि पर जहां-जहां टपकी, वहां-वहां शिव के आकार की माताएं उत्पन्न होकर रसातल में छुपे राक्षसों को खा गयीं। माताओं के रसातल में प्रवेश करने के लिए जो भूमिस्थ बिल थे, वे सब पृथक्-पृथक् मातृतीर्थ कहलाये। उधर देवताओं के मध्य बैठे ब्रह्मा के रोकने पर भी गधे की आकृति का उनका पांचवां मुख बोला—मैं सब देवों को खा जाऊंगा।" विष्णु उसका छेदन कर सकते थे, हनन नहीं। पृथ्वी, समुद्र आदि कोई भी उसे धारण करने के लिए तत्पर नहीं था। देवता शिव की शरण में गये। शिव ने उसे धारण कर लिया। वह स्थान 'ब्रह्मतीर्थ' नाम से विख्यात है।

ब्र० पु०, ११२-११३।-

ब्रह्मदत्त (क) कांपिल्य नगर में ब्रह्मदत्त नामक एक राजा राज्य करता था। उसके महल में पूजनी नामक चिड़िया रहती थी। एक रात रानी और पूजनी ने एक-एक पुत्र को जन्म दिया। पूजनी का राजपरिवार से स्नेह था, अतः वह प्रतिदिन प्रातः समुद्र के किनारे से दो फल लाती थी। एक अपने बेटे के लिए, दूसरा राजकुमार के लिए। उस फल को खाकर राजकुमार बहुत बलिष्ठ होता जा रहा था। एक प्रातः जब वह फल लेने गयी तो राजकुमार ने उसके बेटे को मार डाला। लौटने पर यह देखकर पूजनी बहुत क्रुद्ध तथा दुखी हुई और उसने राजकुमार की दोनों आंखें फोड़ दीं। वह महल का परित्याग कर उड़ती हुई दूर जाने लगी। राजा ने उसे बहुत रोकना चाहा और कहा—"होनी बलवान होती है—सो जो हो गया, उसे भूलकर मित्रवत् यहीं रहो।" किंतु पूजनी ने उत्तर दिया—"जब तक किसी का अपराध न किया हो, तब तक मित्र-भाव रह सकता है। बदला लेने की भावना से भी यदि कोई अपराध कर दिया जाये तो वह निरंतर दुःख और शत्रुता का कारण बना रहता है।" इस प्रकार वहां रहने में अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए पूजनी चिड़िया आकाश में उड़ गयी।

म० भा०, शांतिपर्व, १३९।-

(ख) ब्रह्मदत्त वसुदेव के सहपाठी थे। उन्होंने षट्पुर में एक यज्ञ प्रारंभ किया जिसमें वसुदेव तथा देवकी भी गये थे। ब्रह्मदत्त की पांच सौ पत्नियों से एक-एक पुत्र और एक-एक कन्या का जन्म हुआ था। उनकी सुंदर कन्याएं अभी कुंवारी थीं जिनका वे मानसिक संकल्प से कन्यादान कर चुके थे। उनके सौंदर्य के विषय में सुनकर यज्ञ के दिनों में दैत्यों ने समस्त कन्याओं को हर लिया। कृष्ण के कहने से प्रद्युम्न ने माया के द्वारा उन कन्याओं का अपहरण कर लिया तथा दूसरी मायामयी कन्याएं दैत्यों के पास छोड़ दीं। दैत्य अपनी सफलता पर विशेष प्रसन्न थे। नारद ने उन्हें प्रेरित किया कि वे यादवेतर राजाओं के साथ धन-धान्य आदि का बंटवारा करके उन्हें अपनी ओर कर लें ताकि वे शेष कन्याओं को भी जीत पायें। सभी राजाओं ने दैत्यों का दिया धन ग्रहण किया किंतु नारद के कहने से पांडवों ने नहीं लिया। कौरवों तथा अन्य राजाओं की सेना शिशुपाल के नेतृत्व में दैत्यों की सहायता करने के लिए तैयार हो गयी। दैत्य निकुंभ ने स्तंभित करके अनाधृष्टि को षट्पुर नामवाली गुफा में बंद कर दिया। तदुपरांत उसके अनेक अन्य योद्धाओं को भी उसी गुफा में बंद कर आया। सैनिकों को ले जाते हुए उसकी देह दृष्टिगोचर नहीं होती थी। प्रद्युम्न ने शत्रुपक्ष के राजाओं को शिव के दिये भालों से आबद्ध कर दिया। पांडवों, जयंत, प्रद्युम्न, कृष्ण आदि ने दैत्यों को यज्ञभूमि के आसपास नहीं आने दिया। सभी दिशाओं में सुरक्षा होती रही। निकुंभ पर अर्जुन के समस्त प्रहार व्यर्थ हो गये। श्रीकृष्ण ने उसे सुदर्शन चक्र से मार डाला तथा समस्त बंदी राजाओं को छुड़ा लिया। उन्होंने षट्पुर नामक नगर ब्रह्मदत नामक ब्राह्मण को दे दिया (दे० निकुंभ)।

हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व, ८३-८५

ब्रह्मा देवताओं की सभा में प्रश्न उठा कि अजन्मा, अनंत सर्वशक्तिमान कौन है। ब्रह्मा और विष्णु अपने-अपने को सर्वश्रेष्ठ शक्तिमान मानते हुए विवादग्रस्त हो गये। शिव ने उनके मानमर्दन के निमित्त एक आठ अंगुल के लिंग का रूप धारण किया। उसमें से चार अंगुल धरती के नीचे और चार ऊपर थे। शिव ने कहा—"जो मेरे लिंग का स्पर्श कर लेगा, वही सर्वश्रेष्ठ है।" विष्णु शूकर का रूप धारण कर पृथ्वी के नीचे वाले लिंग का स्पर्श करने के प्रयास में हार गये। जितने पास पहुंचते, उतना ही लिंग तल की ओर बढ़ जाता। दूसरी ओर हंस का रूप

धारण कर ब्रह्मा ने ऊपर के लिंग का स्पर्श करने का असफल प्रयास किया। वे जितना उड़ते, लिंग ऊपर उठता जाता। मार्ग में उन्हें केतकी-पुष्प तथा सुरभि मिले। उन्होंने युक्ति सुझायी कि ब्रह्मा विष्णु के पास लौटकर कहें कि उन्होंने स्पर्श कर लिया है, केतकी और सुरभि गवाह हैं। ब्रह्मा ने ऐसा ही किया। तभी आकाशवाणी हुई। शिव ने कहा—"वे झूठ बोल रहे हैं।" केतकी का पुष्प शिव-पूजन में वर्जित कर दिया गया। बहुत अनुनय-विनय पर शिव ने ब्रह्मा और सुरभि को क्षमादान दिया।

शि० पु०, ८।७-६
शि० पु०, ६।१५-१७

सावित्री, गायत्री, श्रद्धा, मेधा और सरस्वती ब्रह्मा की कन्याएं हैं। इनमें से एक कन्या त्रिभुवन सुंदरी थी। ब्रह्मा स्वयं ही निर्माण करके उसपर आसक्त हो गये। वह मृगी के रूप में भाग गयी। ब्रह्मा ने मृग का रूप धारण करके उसका पीछा किया। शिव ने धर्मसंकट में देख मृगबधिक का रूप धारण करके ब्रह्मा को रोका। ब्रह्मा ने वह कन्या विवस्वत मनु को दे दी। पांचों कन्याएं डरकर महानदी गंगा में जा मिलीं।

ब्र० पु०, १०२।-

(निम्नलिखित अंत से इतर शिव पुराण जैसी ही कथा है।)

एक बार ब्रह्मा और विष्णु में विवाद छिड़ गया कि दोनों में से कौन बड़ा है। महादेव की ज्योतिर्मयी मूर्ति दोनों के मध्य प्रकट हुई, साथ ही आकाशवाणी हुई कि जो उस मूर्ति का अंत देखेगा, वही श्रेष्ठ माना जायेगा। विष्णु नीचे की चरम सीमा तथा ब्रह्मा ऊपर की अंतिम सीमा देखने के लिए बढ़े। विष्णु तो शीघ्र लौट आये। ब्रह्मा बहुत दूर तक शिव की मूर्ति का अंत देखने गये। उन्होंने लौटते समय सोचा कि अपने मुंह से झूठ नहीं बोलना चाहिए, अतः गदहे का एक मुंह (जो कि ब्रह्मा का पांचवां मुंह कहलाता है) बनाकर उससे बोले—"हे विष्णु! मैं तो शिव की सीमा देख आया।" तत्काल शिव और विष्णु के ज्योतिर्मय स्वरूप एक रूप हो गये। ब्रह्मा की झूठी वाणी, वाणी नामक नदी के रूप में प्रकट हुई। उन दोनों को आराधना से प्रसन्न करके वह नदी सरस्वती नदी के नाम से गंगा से जा मिली और तब वह शापमुक्त हुई।

ब्र० पु०, १३५।-

सृष्टि के पूर्व में संपूर्ण विश्व जलप्लावित था। श्रीनारायण शेषशैय्या पर निद्रालीन थे। उनके शरीर में संपूर्ण प्राणी सूक्ष्म रूप से विद्यमान थे। केवल कालशक्ति ही जागृत थी क्योंकि उसका कार्य जगाना था। कालशक्ति ने जब जीवों के कर्मों के लिए उन्हें प्रेरित किया तब उनका ध्यान लिंगशरीर आदि सूक्ष्म तत्त्व पर गया—वही कमल के रूप में उनकी नाभि से निकला। उसपर ब्रह्मा स्वयं प्रकट हुए। अतः स्वयंभू कहलाये। ब्रह्मा विचारमग्न हो गये कि वे कौन हैं, कहां से आये, कहां हैं, अतः कमल की नाल से होकर विष्णु की नाभि के निकट तक चक्कर लगाकर भी वे विष्णु को नहीं देख पाये। योगाभ्यास से ज्ञान प्राप्त होने पर उन्होंने शेषशायी विष्णु के दर्शन किये। विष्णु की प्रेरणा से उन्होंने तप करके, भगवत ज्ञान अनुष्ठान करके, सब लोकों को अपने अंतःकरण में स्पष्ट रूप से देखा। तदनंतर विष्णु अंतर्धान हो गये और ब्रह्मा ने सृष्टि की रचना की। सरस्वती उनके मुंह से उत्पन्न पुत्री थी, उसके प्रति काम-विमोहित हो, वे समागम के इच्छुक थे। प्रजापतियों की रोक-टोक से लज्जित होकर उन्होंने उस शरीर का त्याग कर दूसरा शरीर धारण किया। त्यक्त शरीर अंधकार अथवा कुहरे के रूप में दिशाओं में व्याप्त हो गया। उन्होंने अपने चार मुंह से चार वेदों को प्रकट किया। ब्रह्मा को 'क' कहते हैं—उन्हीं से विभक्त होने के कारण शरीर को काम कहते हैं। उन दोनों विभागों से स्त्री-पुरुष एक-एक जोड़ा प्रकट हुआ। पुरुष मनु तथा स्त्री शतरूपा कहलायी। उन दोनों की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि प्रजापतियों की सृष्टि का सुचारु विस्तार नहीं हो रहा था।

श्रीमद् भा०, तृतीय स्कंध, ८-१०,१२

भगवान् बुद्ध बोधिसत्त्व प्राप्त करके भी चिंताग्रस्त थे। वे सोचते थे कि उनके धर्मोपदेश को कोई मानेगा कि नहीं। साहपति ब्रह्मा ने यह ताड़ लिया। अतः वे 'ब्रह्मलोक' से अंतर्धान होकर भगवान के सामने प्रकट हुए तथा उन्हें धर्मोपदेश के लिए प्रेरित किया।

बु० च०, १।४।-

ब्रह्मांड आदित्य ब्रह्म का एक पाद माना जाता है। पहले वह असत था अर्थात्, उसका नाम-रूप नहीं था। जगत तथा सृष्टिक्रम से पूर्व एक अंकुर उदित हुआ, उत्तरोत्तर उसने एक अंडे का रूप धारण कर लिया।

वह अंडा वर्षपर्यंत वैसे ही बना रहा। तदनंतर वह फूटा। उसके बाह्य कलेवर के रजत तथा स्वर्ण खंड दो खंड हो गये। रजतखंड ही पृथ्वी है और स्वर्ण द्युलोक है। उस अंडे का स्थूल गर्भ-वेष्टन पर्वत बन गये तथा सूक्ष्म गर्भ-वेष्टन बादल तथा कुहरा बन गये। जो धमनियां थीं, वे नदियां हैं और जो वस्तिगत जल (मूत्र) था, वह समुद्र है। उस अंडे से जिसका जन्म हुआ, वही आदित्य है। उसके उत्पन्न होने पर दीर्घ शब्दघोष हुआ।

छा० उ०, अ० ३, खंड १६ संपूर्ण

सृष्टि के आरंभ में प्रकाश का कहीं नाम नहीं था। तब एक बहुत बड़ा अंड प्रकट हुआ, जो संपूर्ण सृष्टि का अविनाशी बीज था। उस ब्रह्मांड से ब्रह्मा, विष्णु, महेश, चारों प्रकार के जीव, पृथ्वी, जल, भूलोक, अंतरिक्ष, दिशाएं आदि उत्पन्न हुए। रवि तथा पृथ्वी के संभोग से देवसम्राट का जन्म हुआ। देवसम्राट के पुत्र सुभ्राट हुए। उत्तरोत्तर इनकी परंपरा में यादव-वंश, कुरु-वंश, पांडव-वंश आदि से संबद्ध विभिन्न लोगों का जन्म हुआ।

म० भा०, आदिपर्व, ११२६ से ५१ तक

ब्रह्मा से उत्पन्न होने के कारण अक्षय अविकारी सृष्टि मानसी कहलाती है। ब्रह्मा की व्युत्पत्ति को 'ब्राह्मण' नाम दिया गया। उत्तरोत्तर ब्राह्मण के स्वाध्याय, वेद-ज्ञान इत्यादि का परित्याग कर जो युद्धरत हो गये, क्षत्रिय कहलाए, व्यापारी वैश्य कहलाने लगे। शौच-सदाचार से भ्रष्ट लोग वेदाभ्यास के अधिकारी नहीं माने गये। वही शूद्र कहलाए।

म० भा०, शांतिपर्व, १८२ से १८६ तक

पहले संपूर्ण लोक प्रकाशरहित था। एक वृहत् अंड प्रकट हुआ। उसका भंजन करके उसमें से ब्रह्मा प्रकट हुए। प्रकाश के लिए उन्होंने सूर्य का आवाहन किया। ब्रह्मा के प्रथम मुख से ऋचाएं प्रकट हुईं। फिर यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद प्रकट हुए। प्रजापति ब्रह्मा से समस्त सृष्टि का निर्माण हुआ। ब्रह्मा ने अनेक प्रकार की प्रजा को उत्पन्न करने के हेतु अपने दाहिने अंगूठे से दक्ष को तथा बायें अंगूठे से उसकी पत्नी को प्रकट किया। दक्ष से अदिति नाम की कन्या का जन्म हुआ। उसका विवाह कश्यप से हुआ। विवस्वान् (सूर्य) ने उसके पुत्र के रूप में जन्म लिया। सूर्य के अतिशय तेज से त्रस्त प्रजा को देखकर ब्रह्मा ने सूर्य से अपना तेज-संवरण करने को कहा।

मा० पु०, ११

ब्राह्मण ऋषभदेव साकेत नगरी गये तो भरत ने उन्हें भोजन पर आमंत्रित किया। उन्होंने उत्तर में कहा—"यदि हमारे निमित्त भोजन बना है तो हम लोग उसे ग्रहण नहीं कर सकते।" यह सुनकर भरत ने गृहस्थ धर्म का पालन करनेवाले बहुत-से लोगों को आमंत्रित किया। वह नित्यप्रति भोज आदि के द्वारा उदारतापूर्वक दान करने लगा। जिन श्रावकों ने सबसे पहले उसके यहां भोजन-पान, आसन आदि आतिथ्य स्वरूप ग्रहण किये थे, वे घमंड से उन्मत्त हो गये। जिनवर ने कहलवाया कि वे लोग हिंसावादी होंगे और वेद का निर्माण करेंगे। भरत ने उन्हें अपने देश से निकाल दिया। भरत आदि उन्हें पत्थर मार रहे थे। वे लोग तीर्थंकर की शरण में गये। उन्होंने कहा—"मा हण (मत मारो)।" अतः वे लोग ब्राह्मण (माहण) कहलाने लगे।

पउ० च०, ६६-८६।-

□

भ

भंगास्वन राजा भंगास्वन ने पुत्र-कामना से अग्निष्टुत नामक यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ में इंद्र की प्रधानता नहीं थी, अतः इंद्र रुष्ट हो गया। राजा ने सौ पुत्र प्राप्त किये। वह एक बार शिकार खेलने निकला तो इंद्र ने उसे मोहित कर दिया। वह अपने घोड़ों के साथ शेष सबसे बिछड़ गया। घने जंगल के एक स्वच्छ तालाब में उसने घोड़े को पानी पिलाकर पेड़ से बांध दिया। स्वयं तालाब में स्नान करके निकला तो राजा स्त्री-रूप में परिणत हो गया। वह अत्यंत लज्जित भाव से घोड़े पर चढ़कर अपने नगर में गया। अपने सौ पुत्रों को समस्त घटना सुनाकर वह नारी रूपधारी राजा एक तापस के आश्रम में चला गया। उस तपस्वी से तापसी ने पुनः सौ पुत्र प्राप्त किये। तदनतंर वह मां अपने इन सौ पुत्रों को लेकर, राजा के रूप में उत्पन्न किये सौ पुत्रों के पास ले गयी तथा उन्हें प्रेमपूर्वक साथ-साथ राज्य-भोग करने के लिए छोड़ आयी। इंद्र ने उन सबमें फूट डलवा दी तथा परस्पर युद्ध में सभी मारे गये। तापसी बहुत दुखी हुई। इंद्र ब्राह्मण-वेश में उसके पास गया तथा उसके दुःख के विषय में पूछने लगा। तापसी ने पूर्वकथा यथावत कह डाली। इंद्र ने कहा कि यज्ञ में प्रधानता न होने के कारण रुष्ट होकर उसने ही उसे नारी-रूप प्रदान किया था। तापसी ने इंद्र के चरणों में प्रणाम कर क्षमा-याचना की। इंद्र ने प्रसन्न होकर पूछा कि वह पुरुष-रूप में प्राप्त सौ पुत्रों को जिलाना चाहती है या नारी-रूप में प्राप्त पुत्रों को? तापसी ने नारी-रूप में प्राप्त पुत्रों के प्रति अधिक ममता तथा वात्सल्य प्रकट करते हुए उन्हें पुनर्जीवन देने के लिए कहा। इंद्र ने सभी पुत्रों को जीवित कर दिया। फिर पूछा कि वह नारी-रूप में रहना चाहती है या पुरुष-रूप में, तो तापसी ने नारी-रूप में ही रहने की इच्छा प्रकट की क्योंकि रति सुख की प्राप्ति नारी-रूप में अधिक होती है।

म० भा०, अनुशासनपर्व, १२।-

भगदत्त भगदत्त इंद्र के मित्र थे। एक बार दिग्विजय करने की आकांक्षा से अर्जुन उत्तर दिशा के राज्यों पर विजय प्राप्त करने का निश्चय किया। इसी संदर्भ में अर्जुन का युद्ध भगदत्त के साथ हुआ। उसकी वीरता से प्रसन्न हो भगदत्त ने उसे कर देना स्वीकार कर लिया।

म० भा०, सभापर्व, अ० २६।८ से १६ तक

प्राग्ज्योतिषनरेश भगदत्त इंद्र का सखा था तथा उसके समान ही पराक्रमी था। उसके हाथी का नाम सुप्रतीक था। वह भी अत्यंत बलवान था। भगदत्त ने महाभारत युद्ध में कौरवों का साथ दिया था। 'सुप्रतीक' नामक हाथी ने अनेक योद्धाओं से टक्कर ली थी। अर्जुन से टक्कर लेते समय भगदत्त ने अपने हाथी की सूंड से अपरिमित पानी की वर्षा की थी, किंतु अर्जुन ने अपने वाणों से वृष्टि जल को छिन्न-भिन्न कर अपने तक पहुंचने ही नहीं दिया। भगदत्त ने अपने वाणों के प्रहार से अर्जुन का मुकुट उलट दिया। अर्जुन ने क्रुद्ध होकर कहा—"सारा संसार भली भांति देख लो।" तथा वाण-वर्षा प्रारंभ कर दी। भगदत्त ने अपने अस्त्र-शस्त्रों को खंडित हुआ देखकर अंकुश को अभिमंत्रित करके छोड़ा। कृष्ण ने द्रुतगति से अर्जुन को ओट में कर दिया तथा अपने वक्ष पर उसका प्रहार झेल लिया। श्रीकृष्ण के वक्ष पर

पहुंचकर वह अंकुश वैजयंती माला बन गया। अर्जुन ने कृष्ण के इस कृत्य पर आपत्ति की कि कृष्ण ने मात्र सारथी का काम करने की शपथ ली थी, फिर युद्ध-क्षेत्र में अर्जुन हल्का भी नहीं पड़ रहा था कि कृष्ण इस प्रकार से वार झेलने के लिए आगे बढ़ें। प्रत्युत्तर में कृष्ण ने कहा—"मैं चार रूपों में विद्यमान रहकर संसार की रक्षा करता हूं। मेरी एक मूर्ति भूमंडल में (बदरिकाश्रम में नर-नारायण के रूप में), दूसरी (परमात्मास्वरूपा) जगत् के शुभाशुभ को साक्षी रूप में देखती है। तीसरा स्वरूप (मैं स्वयं) नाना रूप धारण कर मनुष्य-लोक का आश्रय लेता है और मेरा चौथा रूप सहस्र युगों तक एकार्णव के जल में शयन करता है। सहस्र-युग के पश्चात् यह चौथा रूप योग-निद्रा से उठता है तथा योग्य भक्त को वर प्रदान करता है। ऐसे ही एक समय में पृथ्वी ने मुझसे अपने पुत्र नरकासुर को वैष्णवास्त्र से संपन्न करने का वर मांगा कि वह देव तथा असुरों के लिए अवध्य हो जाय, उसे वैष्णवास्त्र मिला, साथ ही मैंने यह भी बताया कि जब तक वह अस्त्र सुरक्षित रखा जायेगा, नरकासुर दुर्जय रहेगा। नरकासुर से वह अस्त्र भगदत्त को प्राप्त हुआ—उसे मैंने इस प्रकार से वापस ले लिया है। अब तुम भगदत्त को मार डालो। अवस्था में बहुत वृद्ध होने के कारण उसकी आंखें झपकी रहती हैं। उन्हें खोले रखने के लिए उसने पलकों को कपड़े की पट्टी से मस्तक पर बांध रखा है।" अर्जुन ने बाण से उसकी पट्टियों का उच्छेद कर डाला तथा फिर भगदत्त और उसके हाथी सुप्रतीक को भी सहज ही मार डाला।

म० भा०, द्रोणपर्व, २८।२२-३०।- द्रोणपर्व १२६।-

भगीरथ राजा सगर के बाद अंशुमान राजा हुए। उनके पुत्र का नाम दिलीप था। दिलीप को राज्य-भार सौंप, गंगा को पृथ्वी पर लाने की चिंता में ग्रस्त उन्होंने तपस्या करते हुए शरीर-त्याग किया। दिलीप के घर भगीरथ नामक पुत्र का जन्म हुआ। दिलीप गंगा को पृथ्वी पर लाने का कोई मार्ग न सोच पाये और बीमार होकर स्वर्ग सिधार गये। भगीरथ पुत्रहीन थे। उन्होंने राज्यभार अपने मंत्रियों को सौंपा और स्वयं गौकर्ण तीर्थ में जाकर घोर तपस्या करने लगे। ब्रह्मा के प्रसन्न होने पर उन्होंने दो वर मांगे—एक तो यह कि गंगा जल चढ़ाकर भस्मीभूत पितरों को स्वर्ग प्राप्त करवा पायें और दूसरा यह कि उनको कुल की सुरक्षा करने वाला पुत्र प्राप्त हो। ब्रह्मा ने उन्हें दोनों वर दिये, साथ ही यह भी कहा कि गंगा का वेग इतना अधिक है कि पृथ्वी उसे संभाल नहीं सकती। शंकर भगवान की सहायता लेनी होगी। ब्रह्मा के देवताओं सहित चले जाने के उपरांत भगीरथ ने पैर के अंगूठों पर खड़े होकर एक वर्ष तक तपस्या की। शंकर ने प्रसन्न होकर गंगा को अपने मस्तक पर धारण किया। गंगा को अपने वेग पर अभिमान था। उन्होंने सोचा था कि उनके वेग से शिव पाताल में पहुंच जायेंगे। शिव ने यह जानकर उन्हें अपनी जटाओं में से ऐसे समा लिया कि उन्हें वर्षों तक शिव-जटाओं से निकलने का मार्ग नहीं मिला। भगीरथ ने फिर से तपस्या की। शिव ने प्रसन्न होकर उसे बिंदुसर की ओर छोड़ा। वे सात धाराओं के रूप में प्रवाहित हुईं। ह्लादिनी, पावनी और नलिनी पूर्व दिशा की ओर; सुचक्षु, सीता और महानदी सिंधु पश्चिम की ओर बढ़ीं। सातवीं धारा राजा भगीरथ की अनुगामिनी हुई। राजा भगीरथ गंगा में स्नान करके पवित्र हुए और अपने दिव्य रथ पर चढ़कर चल दिये। गंगा उनके पीछे-पीछे चलीं। मार्ग में अभिमानिनी गंगा के जल से जह्नुमुनि की यज्ञशाला बह गयी। क्रुद्ध होकर मुनि ने संपूर्ण गंगाजल पी लिया। इसपर चिंतित समस्त देवताओं ने जह्नुमुनि का पूजन किया तथा गंगा को उनकी पुत्री कहकर क्षमा-याचना की। जह्नु ने कानों के मार्ग से गंगा को बाहर निकाला। तभी से गंगा जह्नुसुता जाह्नवी भी कहलाने लगीं। भगीरथ के पीछे-पीछे चलकर गंगा समुद्र तक पहुंच गयीं। भगीरथ उन्हें रसातल ले गये तथा पितरों की भस्म को गंगा से सिंचित कर उन्हें पाप-मुक्त कर दिया।

ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर कहा—"हे भगीरथ, जब तक समुद्र रहेगा, तुम्हारे पितर देववत् माने जायेंगे तथा गंगा तुम्हारी पुत्री कहलाकर भागीरथी नाम से विख्यात होगी। साथ ही वह तीन धाराओं में प्रवाहित होगी, इसलिए त्रिपथगा कहलायेगी।"

बा० रा०, बाल कांड, सर्ग ४२, श्लोक १-२५
सर्ग ४३, १-४३
सर्ग ४४, श्लोक १-६,

भगीरथ अंशुमान का पौत्र तथा दिलीप का पुत्र था। उसे जब विदित हुआ कि उसके पितरों को (सगर के

साठ हजार पुत्रों को) सद्गति तब मिलेगी जब वे गंगा-जल का स्पर्श प्राप्त कर लेंगे, तो अत्यंत अधीरता से अपना राज्य मंत्री को सौंपकर वह हिमालय पर चला गया। वहां तपस्या से उसने गंगा को प्रसन्न किया। गंगा ने कहा कि वह तो सहर्ष पृथ्वी पर अवतरित हो जायेगी, पर उसके पानी के वेग को शिव ही थाम सकते हैं, अन्य कोई नहीं। अतः भगीरथ ने पुनः तपस्या प्रारंभ की। शिव ने प्रसन्न होकर गंगा का वेग थामने की स्वीकृति दे दी। गंगा भूतल पर अवतरित होने से पूर्व हिमालय में शिव की जटाओं पर उतरी, वहां वेग शांत होने पर वह पृथ्वी पर अवतरित हुई तथा भगीरथ का अनुसरण करते हुए सूखे समुद्र तक पहुंची, जिसका जल अगस्त्य मुनि ने पी लिया था। उस समुद्र को भर-कर गंगा ने पाताल स्थित सगर के साठ हजार पुत्रों का उद्धार किया। गंगा स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल का स्पर्श करने के कारण त्रिपथगा कहलायी। गंगा को भगीरथ ने अपनी पुत्री बना लिया।

राजा भगीरथ ने सौ अश्वमेध यज्ञों का अनुष्ठान किया था। उनके महान यज्ञ में इंद्र सोमपान कर मदमस्त हो गये थे। भगीरथ ने गंगा के किनारे दो स्वर्ण घाट बन-वाये थे। उन्होंने रथ में बैठी अनेक सुंदर कन्याएं धन-धान्य सहित, ब्राह्मणों को दानस्वरूप दी थीं। गंगा उनकी पुत्री होने के कारण भागीरथी कहलायी। राजा भगीरथ के संकल्प कालिक जलप्रवाह से आक्रांत होकर गंगा राजा की गोद में जा बैठी। भगीरथ की पुत्री होने के नाते जो गंगा भागीरथी कहलायी थी, वही गंगा राजा के उरु (जंघा) पर बैठने के कारण उर्वशी नाम से विख्यात हुई।

म० भा०, वनपर्व, १०८, १०९।-
द्रोणपर्व, ६०।-

राजा सगर की दो रानियां थीं—सुमति तथा केशिनी। दोनों ने अर्जमुनि को प्रसन्न किया। सुमति ने साठ हजार पुत्र मांगे और केशिनी ने एक पुत्र मांगा। इस प्रकार केशिनी के पुत्र का नाम पंचजन्य (असमंजस) पड़ा। उससे क्रमशः अंशुमान, दिलीप, भगीरथ-पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र का जन्म हुआ। भगीरथ ने तप से गंगा को प्रसन्न किया। फिर तपस्या से सदाशिव को प्रसन्न किया कि वे पृथ्वी पर उतरती हुई गंगा का वेग ग्रहण कर लें। शिव की जटाओं में गंगा विलीन हो गयी। तपस्या से सदाशिव को प्रसन्न किया तो उन्होंने अपनी जटाओं को निचोड़ा जिससे तीन बूंद जल दिखलायी दिया। एक बूंद धारा बनकर पाताल की ओर चली गयी, दूसरी आकाश की ओर और तीसरी भागीरथी के रूप में भगी-रथ के पीछे-पीछे वहां पहुंची, जहां सगर के साठ सहस्र पुत्रों की भस्म थी। जल के स्पर्श से वे मुक्त हो गये। दिलीप भी गंगा को पृथ्वी पर लाना चाहते थे किंतु वे तपोभूमि में ही मृत्यु को प्राप्त हुए। उनकी आकांक्षा की पूर्ति उनके पुत्र भगीरथ ने की।

शि० पु०, ।११।२२

भद्रवर्गीय मित्र एक बार तीस भद्रवर्गीय मित्र अपनी-अपनी पत्नी को लेकर घूमने निकले। उनमें से एक की पत्नी नहीं थी, वह वेश्या लेकर उनके साथ गया। वे लोग शराब पीकर मदहोश हो गये। वेश्या जिसके साथ आयी थी, उसका समस्त सामान लेकर चली गयी। होश आने पर उसे ढूंढ़ने के संदर्भ में वे लोग बुद्ध से मिले। बुद्ध ने उनसे कहा—"उसे ढूंढ़ने की अपेक्षा अपने-आपको ढूंढ़ना अधिक आवश्यक है।" उन्होंने भगवान की बात को सुना और समझकर अपनी पत्नियों सहित बौद्ध-धर्म में दीक्षा ली।

बु० च०, १।६।-

भद्रायुष वज्रबाहु नामक राजा की अनेक रानियां थीं। बड़ी रानी गर्भवती हुई तो अन्य रानियों ने ईर्ष्यावश उसे विष दे दिया। वह रानी और उसका शिशु जीवित रहे, पर जन्म लेकर बालक निरंतर शारीरिक कष्ट भोगता रहा। राजा ने उन्हें पूर्व जन्म के पापी कहकर जंगल में छुड़वा दिया। राजा पद्माकर ने उन्हें मातृवत् आश्रय दिया। कालांतर में उसका पुत्र मर गया। शिवयोगी ऋष्य ने शिव की भस्म से बालक को पुनर्जन्म प्रदान किया तथा रानी का कष्ट दूर किया। बालक का नाम भद्रायुष् रखा गया। पद्माकर के उपरांत वह राजा हुआ।

शि० पु०, ६।१०

भरत (क) दुष्यंत के पुत्र का नाम भरत था। भरत बाल्यावस्था से ही अत्यंत बलशाली थे। वन में रहनेवाले शेर, बाघ इत्यादि के मध्य पलकर उन्होंने इतना बल संचित कर लिया था कि वे वन्य तथा पर्वतीय पशुओं को सहज ही परास्त कर अपने अधीन कर लेते थे। अपने जीवनकाल में उन्होंने यमुना, सरस्वती तथा गंगा के तटों पर क्रमशः सौ, तीन सौ तथा चार सौ अश्वमेध यज्ञ किये

थे। प्रवृत्ति से दानशील तथा वीर थे। उनकी तीन रानियां थीं, जिनसे उन्हें नौ पुत्रों की प्राप्ति हुई। भरत ने कहा—"ये पुत्र मेरे अनुरूप नहीं हैं।" अतः रानियों ने उन सबको मार डाला। तदुपरांत भरत ने बड़े-बड़े यज्ञों का अनुष्ठान किया तथा महर्षि भारद्वाज की कृपा से भूमन्यु नामक पुत्र प्राप्त किया। उन्होंने अपने जीवन में एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ तथा सौ राजसूय यज्ञ किये।

म० भा०, आदिपर्व, ६४।२० से २५ तक
द्रोणपर्व, ६८।-
शांतिपर्व, २६।४५-५०

भरत का विवाह विदर्भराज की तीन कन्याओं से हुआ था। तीनों के पुत्र हुए। भरत ने कहा कि एक पुत्र भी उनके अनुरूप नहीं है। भरत के शाप से डरकर उन तीनों ने अपने-अपने पुत्र का हनन कर दिया। तदनंतर वंश के बिखर जाने पर भरत ने 'मरुत्स्तोम' यज्ञ किया। मरुद्गणों ने भरत को भारद्वाज नामक पुत्र दिया। भारद्वाज के जन्म की विचित्र कथा है। बृहस्पति ने अपने भाई उतथ्य की गर्भवती पत्नी ममता का बलपूर्वक गर्भाधान किया। उसके गर्भ में 'दीर्घतमा' नामक संतान पहले से ही विद्यमान थी। बृहस्पति ने उससे कहा—"इसका पालन-पोषण (भर) कर। यह मेरा औरस और भाई का क्षेत्रज पुत्र होने के कारण दोनों का (द्वाज) पुत्र है।" किंतु ममता तथा बृहस्पति में से कोई भी उसका पालन-पोषण करने को तैयार नहीं था। अतः वे उस 'भरद्वाज' को वहीं छोड़कर चले गये। मरुद्गणों ने उसे ग्रहण किया तथा राजा भरत को दे दिया।

श्रीमद् भा०, ६।२०। २३-३९

(ख) (वाल्मीकि रामायण के पात्र भरत के लिए देखिए अन्योन्य संदर्भ अनुक्रमणिका।)

राम और सीता का विवाह देखकर भरत उदास रहने लगा। उसका विवाह जनक के भाई कनक की कन्या सुभद्रा से हुआ।

राम के दक्षिणापथ गमन के उपरांत भरत का राज्यकार्य अथवा गृहस्थ में मन नहीं लगता था। कैकेयी की प्रेरणा से वह राम, सीता और लक्ष्मण को वापस लौटाने के लिए गया किंतु वे लोग वापस नहीं आये। जैन मुनियों के उपदेशानुसार उसने निश्चय किया कि राम के वापस लौटने तक वह राज्य को संभालेगा तदुपरांत प्रव्रज्या ले लेगा। राम, लक्ष्मण और सीता आदि के पुनरागमन के उपरांत भरत तथा कैकेयी ने दीक्षा ली।

पउ० च०, २८, ३१।३२।, ८३-८४।-

(ग) ऋषभदेव के पुत्र भरत बहुत धार्मिक थे। उनका विवाह विश्वरूप की कन्या पंचजनी से हुआ था। भरत के समय से ही अजनाभवर्ष नामक प्रदेश भारत कहलाने लगा। राज्य-कार्य अपने पुत्रों को सौंपकर वे पुलहाश्रम में रहकर तपस्या करने लगे। एक दिन वे नदी में स्नान कर रहे थे। वहां एक गर्भवती हरिणी भी थी। शेर की दहाड़ सुनकर मृगी का नदी में गर्भपात हो गया और वह किसी गुफा में छिपकर मर गयी। भरत ने नदी में बहते असहाय मृगशावक को पालकर बड़ा किया। उसके मोह से वे इतने आवृत्त हो गये कि अगले जन्म में मृग ही बने। मृग के प्रेम ने उनके वैराग्य मार्ग में व्याघात उत्पन्न किया था, किंतु मृग के रूप में भी वे भगवत-भक्ति में लगे रहे तथा अपनी मां को छोड़कर पुलहाश्रम में पहुंच गये। भरत ने अगला जन्म एक ब्राह्मण के घर में लिया। उन्हें अपने भूतपूर्व जन्म निरंतर याद रहे। ब्राह्मण उन्हें पढ़ाने का प्रयत्न करते-करते मर गया किंतु भरत की अध्ययन में रुचि नहीं थी। पिता के न रहने पर भाई उसे मूर्ख समझकर उसकी उपेक्षा करते थे। एक बार एक डाकू भद्रकाली के सम्मुख मनुष्य-बलि देना चाहता था। उसके सेवक इस निरुद्देश्य घूमते ब्राह्मण-पुत्र भरत को पकड़कर ले गये। भद्रकाली ने इस अनाचार से कुपित होकर विकराल रूप धारण कर लिया। उसने अपनी खड्ग से उन सारे चोर-डाकुओं के सिर उड़ा दिये तथा उनके रुधिर का आसव की तरह पान करने लगी। तदनंतर उस वन में भरत अकेले रह गये। उधर से राजा रहूगण की सवारी निकली। राजा के पास कहारों की कमी थी। उसने भरत को कहार की तरह पालकी उठाने के लिए कहा। भरत पालकी उठाकर चलने लगे तो अनभ्यस्त होने के नाते तथा मार्ग भली भांति देखने के प्रयास में डोली के शेष कहारों का साथ दे पाना कठिन हो गया। राजा की पालकी में झटके लगने लगे। उसने कारण जानकर भरत को डांटा। भरत ने उसके उत्तर में अत्यंत शालीनता से राजा को उपदेश दिया। राजा ने ब्राह्मण-पुत्र के यथार्थ रूप को जाना तो अत्यंत लज्जित हुआ।

श्रीमद् भा०, पंचम स्कंध, ७-२६
वि० पु०, २।१३-१४।-

भानुमती एक बार यदुवंशियों ने सामूहिक रूप मे समुद्र में जलक्रीड़ा की योजना बनायी। उस क्रीड़ा में देवलोक की अप्सराएं भी भाग लेने पहुंची थीं। वहां अवसर पाकर निकुंभासुर ने अदृश्य भाव से 'भानु' की पुत्री भानुमती का अपहरण कर लिया। (प्रद्युम्न ने निकुंभ के भाई वज्रनाभ को मारकर उसकी कन्या प्रभावती का हरण कर लिया था, इसीसे वह अवसर ढूंढ़ता रहता था।) कन्यापुर (भानु की नगरी) में कोलाहल मच गया। अपहरण करके रोती हुई भानुमती को ले जाते हुए निकुंभ को अर्जुन, कृष्ण तथा प्रद्युम्न ने रोका, अत: उस दैत्य ने अपने तीन रूप बना लिये। ढाल की भांति भानुमती को आगे करके वह वार करता था। वे तीनों कन्या को बचाने के हेतु वार नही कर पाते थे। तदनंतर वह असुर अदृश्य होकर भानुमती को ले भागा। मार्ग में गोकर्ण पर्वत था, जो शिव से सुरक्षित था तथा उसका कोई व्यक्ति लंघन नहीं कर सकता था। वहां पहुंचकर वह असुर-कन्या सहित समुद्र के निकट ही गंगा-किनारे गिर गया। उन तीनों ने भानुमती को संभाल लिया। निकुंभ ने षट्पुर में शरण ली। प्रद्युम्न भानुमती को द्वारका पहुंचाकर षट्पुर पहुंचा। तीनों गुफा का द्वार रोककर बैठे रहे। निकुंभ ने अदृश्य भाव से अर्जुन तथा प्रद्युम्न को घायल कर दिया। कृष्ण के साथ निकुंभ का गदा-युद्ध हुआ। कृष्ण स्वेच्छा से मूर्च्छित होकर गिर गये। इंद्र ने आकाशगंगा के अमृतमय जल से कृष्ण का अभिषेक किया। तदनंतर कृष्ण ने सुदर्शन चक्र से प्रहार किया। निकुंभ अपना वह शरीर छोड़कर आकाश में उड़ गया। प्रद्युम्न ने निकुंभ की माया को पहचान लिया। प्रद्युम्न के यह कहते ही कि निकुंभ यहां नहीं है, उसका शरीर अदृश्य हो गया तथा सर्वत्र निकुंभ के अनेक रूप दिखायी देने लगे। वह अर्जुन को उठाकर आकाश में ले गया। अर्जुन के भी अनेक रूप दिखायी पड़ने लगे। तदनंतर कृष्ण ने दिव्य ज्ञान के द्वारा जानकर निकुंभ का सिर अपने चक्र से काट डाला। आकाश से गिरते हुए अर्जुन को प्रद्युम्न ने थाम लिया।

नारद मुनि ने भानु को आश्वासन दिया और बताया—"पूर्वकाल में बालक्रीड़ा से कभी भानुमती ने दुर्वासा को रुष्ट कर दिया था। तब दुर्वासा ने उसे शाप दिया था कि शत्रु उसका अपहरण करेगा। मेरे और देवताओं के कहने पर कि कन्या का कोई दोष नहीं, वह तो ब्रह्मचर्य का पालन करती है, दुर्वासा ने कहा था कि वह दुर्घटना को याद नहीं रखेगी, शत्रु उसे दूषित नहीं कर पायेगा तथा वह धर्म से पति, पुत्र और धन प्राप्त करेगी।" नारद की प्रेरणा से कृष्ण ने माद्री-पुत्र सहदेव को बुलाकर उससे भानुमती का विवाह करवा दिया।

हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व, ८९-९०।-

भानुसेन भानुसेन कर्ण का पुत्र था। महाभारत-युद्ध में भीम ने उसका वध किया था।

म० भा०, कर्णपर्व, ४८।२७

भामंडल भामंडल सीता के सौंदर्य पर मुग्ध था। यह जानकर कि वह राम की पत्नी हो गयी है, उसने राम पर आक्रमण करने का निश्चय किया। सेना सहित जाते हुए मार्ग में विदर्भ नगर देखकर उसे अपना पूर्व जन्म स्मरण हो आया। उसे याद आया कि पहले जन्म में वह कुंडलमंडित नामक राजा था। ब्राह्मण-भार्या का अपहरण करने के कारण उसे दुर्गति प्राप्त होनी चाहिए थी, किंतु श्रमण की कृपादृष्टि से ऐसा न होकर वह सीता के सहोदर के रूप में जन्मा था। उसे उसी सीता के प्रति जाग्रत् अपने मन के काम-भाव पर बहुत ग्लानि हुई। पूर्वजन्म में जिसकी भार्या का अपहरण किया था, उस जन्म में वही देव विदेही के पास से भामंडल का अपहरण कर लाया था। ये समस्त घटनाएं उसने अपने पिता को सुनायीं। पिता ने विरक्त होकर प्रव्रज्या ग्रहण की। तदनंतर भामंडल सीता, दशरथ आदि से मिला।

भामंडल अनेक स्त्रियों से घिरा सोचा करता था कि वृद्धावस्था में योग और ध्यान से अपने समस्त पापों का नाश कर देगा। इस दीर्घसूत्रता (आलस्य) में उसने कुछ भी नहीं किया और वृद्धावस्था में अचानक बिजली के गिरने से मारा गया।

पउ० च०, ३०।-, १०७।-

भारद्वाज राम; लक्ष्मण और सीता गंगा पार करने के उपरांत चलते-चलते गंगा-यमुना के संगमस्थल पर श्री भारद्वाज के आश्रम में पहुंचे। महर्षि भारद्वाज अपने शिष्यों से घिरे बैठे थे। राम ने अपना परिचय दिया। भारद्वाज ने उन तीनों का स्वागत किया। रात-भर वहां रहकर राम, सीता और लक्ष्मण ने श्री भारद्वाज के परामर्श के अनुसार चित्रकूट पर्वत की ओर प्रस्थान किया।

बा० रा०, अयोध्या कांड, सर्ग ५४, श्लोक १०-५४

राम से मिलने के लिए भरत अपनी सेना के साथ वन की

ओर चले। मार्ग में मुनि भारद्वाज के आश्रम में पहुंचे। पहले भारद्वाज ने शंका की कि कहीं वे राम के अहित की कामना से तो नहीं आये हैं। तदुपरांत उन्हें सेना समेत आतिथ्य स्वीकार करने को कहा। भारद्वाज अपनी अग्निशाला में गये। आचमन करने के उपरांत उन्होंने विश्वकर्मा का आह्वान किया और आतिथ्य में सहायता मांगी, इसी प्रकार इंद्र, यम, वरुण, कुबेर से भी उन्होंने सहायता मांगी। फलस्वरूप उन्होंने मदिरा, सुंदर अप्सराएं तथा सुंदर महल एवं उपवनों के अनायास आविर्भाव से उन सबको पूर्ण तृप्त किया।

बा० रा०, अयोध्या कांड, सर्ग ९१, श्लोक १२-८३

भिक्षुनाथ शिवभक्त राजा सत्यरथ को शाल्व ने परास्त कर मार डाला। सत्यरथ की गर्भवती पत्नी ने जंगल में एक पेड़ के नीचे धर्मगुप्त को जन्म दिया और तालाब से पानी पीते हुए ग्राह द्वारा मार डाली गयी। एक दरिद्र ब्राह्मणी ने (जिसकी गोद में एक साल का बच्चा था) धर्मगुप्त को उठा लिया और भिक्षुनाथ के रूप में अवतरित शिव की प्रेरणा से उसका लालन-पालन किया। दोनों बालक बड़े हुए तो धर्मगुप्त ने वन में गंधर्व की कन्या को देख उससे विवाह कर लिया। फलस्वरूप मिले राज्य का वह राजा हुआ। ब्राह्मणी राजमाता हुई। उसने अपने पुत्र का नाम शुचिव्रत रखा।

शि० पु०, ७।४८

भिल्ल तीर्थ सिंधु द्वीप नामक मुनि के भाई का नाम वेद था। वह प्रतिदिन आदिकेश (शिव) की पूजा करके आता था। उसके बाद एक व्याध मुंह में गंगाजल लेकर हाथ में कोई भी पत्ता तथा मरा हुआ जानवर लेकर आदिदेव की पूजा करता, मुंह में भरा पानी चढ़ाता और वेद की पूजा को नष्ट कर देता। शिव उसकी प्रतीक्षा करते। एक दिन वेद ने छुपकर देखा तो क्रुद्ध होकर आदिदेव पर प्रहार करने के लिए पत्थर उठाया। शिव ने उसे अगले दिन तक रुकने के लिए कहा। अगले दिन वह पूजा करने गया तो शिवलिंग के मस्तक से रुधिर की धारा बहती देखी। उसने कुश, जल आदि से उसे धोना आरंभ किया। तभी व्याध भी वहां पहुंचा। वह दृश्य देखकर उसने अपने बाणों से अपने ऊपर प्रहार करना आरंभ कर दिया कि उसके जीते-जी ऐसा हुआ। शिव ने वेद से कहा—"तुम पूजा का कर्मकांड करते हो, पर व्याध ने मुझे अपनी आत्मा अर्पित कर दी है।" तभी से वह स्थान भिल्ल तीर्थ नाम से विख्यात हुआ।

ब्र० पु०, १६९।-

भीम भीम के अपरिमित बल से त्रस्त तथा ईर्ष्यालु होकर दुर्योधन जलविहार के बहाने पांडवों को गंगा के तट पर ले गया। भोजन में कालकूट विष खिलाकर दुर्योधन ने भीमसेन को लताओं इत्यादि से बांधकर नदी में फेंक दिया। शेष पांडव थककर सो गये थे, अतः प्रातः भीम को वहां न देख समझे कि वह उनसे पहले ही घर वापस चला गया है। भीम जल में डूबकर नागलोक पहुंच गया। वहां नागों के दर्शन से उसका विष उतर गया और उसने नागों का नाश प्रारंभ कर दिया। घबराकर उन्होंने वासुकि से समस्त वृत्तांत कह सुनाया। वासुकि तथा नागराज आर्यक (भीम के नाना के नाना) ने भीम को पहचानकर गले से लगा लिया, साथ ही प्रसन्न होकर उसे उस कुंड का जल पीने का अवसर दिया जिसका पान करने से एक हजार हाथियों का बल प्राप्त होता है। भीम ने वैसे आठ कुंडों का रसपान करके विश्राम किया। तदनंतर आठ दिवस बाद वह सकुशल घर पहुंचा। दुर्योधन ने पुनः उसे कालकूट विष का पान करवाया था किंतु भीम के पेट में वृक नामक अग्नि थी जिससे विष पच जाता था तथा उसका कोई प्रभाव नहीं होता था। इसी कारण वह वृकोदर कहलाता था। दुर्योधन ने एक बार भीम की शैया पर सांप भी छोड़ा था। महाभारत के चौदहवें दिन की रात्रि में भी युद्ध होता रहा। उस रात पांडवों ने द्रोण पर आक्रमण किया था। युद्ध में भीम ने घूंसों तथा थप्पड़ों से ही कलिंग राजकुमार का, जयरात तथा धृतराष्ट्र-पुत्र दुष्कर्ण और दुर्मद का वध कर दिया। इसके अतिरिक्त भी बाह्लीक, दुर्योधन के दस भाइयों, शकुनी के पांच भाइयों तथा सात रथियों को भी उसने सहज ही मार डाला।

म० भा०, आदिपर्व,१२७, १२८।-
द्रोणपर्व, १५५।२०-४६, १५७

युद्ध के भयंकर कांड का समापन योद्धाओं की मां, बहन, पत्नियों के रुदन तथा मृत वीरों की अंत्येष्टि क्रिया से हुआ। इसी निमित्त हस्तिनापुर पहुंचने पर धृतराष्ट्र को रोती हुई द्रौपदी, पांडव, सात्यकि तथा श्रीकृष्ण भी मिले। यद्यपि व्यास तथा विदुर धृतराष्ट्र को पर्याप्त समझा चुके थे कि उनका पांडवों पर क्रोध अनावश्यक है। इस युद्ध के मूल में उनके प्रति अन्याय कृत्य ही था,

अत: जनसंहार अवश्यंभावी था तथापि युधिष्ठिर को गले लगाने के उपरांत धृतराष्ट्र अत्यंत क्रोध में भीम से मिलने के लिए आतुर हो उठे। श्रीकृष्ण उनकी मनोगत भावना जान गये, अत: उन्होंने भीम को पीछे हटा, उनके स्थान पर लोहे की आदमकद प्रतिमा धृतराष्ट्र के सम्मुख खड़ी कर दी। धृतराष्ट्र में दस हजार हाथियों का बल था। वे धर्म से विचलित हो भीम को मार डालना चाहते थे क्योंकि उसीने अधिकांश कौरवों का हनन किया था। अत: लौह प्रतिमा को भीम समझकर उन्होंने उसे दोनों बांहों में लपेटकर पीस डाला। प्रतिमा टूट गयी किंतु इस प्रक्रिया में उनकी छाती पर चोट लगी तथा मुंह से खून बहने लगा, फिर भीम को मरा जान उसे याद कर रोने भी लगे। सब अवाक् देखते रह गये। श्रीकृष्ण भी क्रोध से लाल-पीले हो उठे। बोले—"जैसे यम के पास कोई जीवत नहीं रहता, वैसे ही आपकी बांहों में भी भीम भला कैसे जीवित रह सकता था! आपका उद्देश्य जानकर ही मैंने आपके बेटे की बनायी भीम की लौह-प्रतिमा आपके सम्मुख प्रस्तुत की थी। भीम के लिए विलाप मत कीजिये, वह जीवित है।" तदनंतर धृतराष्ट्र का क्रोध शांत हो गया तथा उन्होंने सब पांडवों को बारी-बारी से गले लगा लिया।

म० भा०, स्त्रीपर्व, १२, १३।-

भीमशंकर कुंभकरण तथा कर्कटी के पुत्र का नाम भीम था। उसे ज्ञात हुआ कि शिव के भक्त होने के कारण राम ने रावण, कुंभकरण आदि का नाश कर दिया है। उसने वन में जाकर ब्रह्मा को प्रसन्न करने के लिए तप किया तथा अपने पिता के शत्रुओं को जीतने का वर प्राप्त किया। फलत: समस्त देवताओं को युद्ध में परास्त कर दिया। देवता शिव की शरण में पहुंचे। शिव की माया से भीम की दुर्बद्धि जागी और वह शिवभक्तों को त्रस्त करने लगा। शिव ने क्रुद्ध होकर उससे युद्ध करते हुए हुंकार दी, जिससे एक ज्वाला प्रकट हुई। उसमें वह सपरिवार भस्म हो गया। उस स्थान पर आज भी शिव, भीमशंकर नाम से विख्यात हैं तथा उनका ज्योतिर्लिंग स्थापित है।

शि० पु०, ८।२८-३१

भीष्म शांतनु ने गंगा के तट पर जाकर देखा कि उसकी धारा अत्यंत क्षीण है, क्योंकि कोई बालक दिव्यास्त्रों का अभ्यास कर रहा है। गंगा ने प्रकट होकर बताया कि वह शांतनु का ही पुत्र गंगादत्त अथवा देवव्रत है। शांतनु उस वीर बालक के साथ अपनी नगरी में पहुंचे तथा उसे युवराज घोषित कर दिया। कालांतर में राजा एक भील कन्या (सत्यवती) पर आसक्त हो गये। भील ने विवाह से पूर्व यह शर्त रखी कि सत्यवती का पुत्र ही भावी राजा होगा, अत: शांतनु न तो शर्त ही स्वीकार कर पाये और न उसे भुला ही पाये। देवव्रत (गंगादत्त) को जब ज्ञात हुआ तो वह तुरंत भील के पास पहुंचा। उसने प्रतिज्ञा की कि वह न विवाह करेगा और न राज्य ग्रहण करेगा। तभी से वह भीष्म भी कहलाया। उसके प्रयत्न से शांतनु का सत्यवती से विवाह हुआ। शांतनु ने प्रसन्न होकर भीष्म को स्वेच्छा मृत्यु का वरदान दिया अर्थात् भीष्म की आज्ञा प्राप्त करके ही मृत्यु उसपर अपना प्रभाव प्रकट कर पायेगी। सत्यवती के गर्भ से चित्रांगद तथा विचित्रवीर्य का जन्म हुआ। शांतनु की मृत्यु के उपरांत चित्रांगद एक गांधर्व से मारा गया तथा विचित्रवीर्य का राज्याभिषेक हुआ। शांतनु की मृत्यु के उपरांत भीष्म पिंडदान के लिए हरिद्वार गये। वहां शास्त्र-सम्मत रीति से दान करते समय कुशासन पर उनके पिता का हाथ प्रकट हुआ। तनिक विचार कर भीष्म ने शास्त्रोक्त विधि के अनुसार पिंडदान कुशा पर ही किया, हाथ पर नहीं। हाथ अंतर्धान हो गया। शांतनु ने स्वप्न में दर्शन देकर उनके शास्त्र-ज्ञान की प्रशंसा की। भीष्म ने समस्त कौरव-पांडवों को धनुर्विद्या सिखाई थी, अर्जुन उनके विशेष प्रिय शिष्य थे।

म० भा०, आदिपर्व, १००, १०१
दानधर्मपर्व, ८४

महाभारत-युद्ध के समय कौरवों ने भीष्म को सेनापति के रूप में प्रतिष्ठित किया। भीष्म के सेनापतित्व ग्रहण करने से पूर्व दो शर्तें रखीं:

(१) किसी पांडु-पुत्र को नहीं मारेंगे। शिखंडी को भी नहीं मारेंगे क्योंकि वह कन्या के रूप में पैदा हुआ था, बाद में पुरुष बन गया।

(२) जब तक वे लड़ेंगे, कर्ण युद्ध में सम्मिलित नहीं होगा क्योंकि वह भीष्म से प्रतिस्पर्धा का भाव रखता है। कौरव-पांडवों का युद्ध आरंभ होने पर अनेक बार ऐसी स्थिति आयी जब कौरव-सेना में भगदड़ मच गयी। ऐसे एक अवसर पर दुर्योधन ने भीष्म से कहा—"वे मन-ही-मन पांडवों के पक्षपाती होने के कारण कौरवों

की ओर से ठीक प्रकार युद्ध नहीं कर रहे हैं।" भीष्म क्रुद्ध होकर युद्ध में डट गए। नौ दिन तक भीष्म को मारने में असफल रहने पर कृष्ण तथा पांडवों ने मंत्रणा की तथा भीष्म से ही उनकी पराजय की विधि पूछने गये। भीष्म ने सहज ही बता दिया कि शिखंडी को आगे करके यदि पांडव भीष्म से लड़ेंगे तो उनका (भीष्म का) वध अनिवार्य है। दसवें दिन से भीष्म के सम्मुख शिखंडी को रखा जाने लगा तथा शिखंडी की आड़ से अर्जुन वाण तथा शक्ति का प्रयोग करने लगा। भीष्म ने शिखंडी के साथ युद्ध न करने का प्रण कर रखा था क्योंकि उसने अपने जीवन का प्रारंभ नारी शिखंडिनी के रूप में किया था तथा उसकी ध्वजा पर अशुभ चिह्न बना हुआ था। पांडवों ने शिखंडी को आगे करके युद्ध करना आरंभ किया। भीष्म ने उसे देख अपना तेजस्वी दिव्यास्त्र समेट लिया। अर्जुन ने तुरंत वार किया और भीष्म मूर्च्छित हो गये। शिखंडी की आड़ से युद्ध करते हुए अर्जुन ने भीष्म को सब ओर से बींध डाला। वे रथ से गिर गये, किंतु वाणों से बिंधे होने के कारण उन्होंने भूमि का स्पर्श नहीं किया। उन्हें पिता से वर प्राप्त था कि उन्हें रण में कोई नहीं मार पायेगा, वे स्वेच्छा से देह-त्याग करेंगे, अतः उस समय सूर्य को दक्षिणायण देखकर उसे मृत्यु के लिए उपयुक्त समय नही समझा और सूर्य के उत्तरायण होने की प्रतीक्षा करने लगे। उनकी मां गंगा को यह समाचार मिला तो उन्होंने हंस-रूपधारी महर्षियों को भीष्म के पास भेजा।

भीष्म को वाण-शैया पर सोता देख वे हंस उड़ते-उड़ते यह कह गये कि भला दक्षिणायण सूर्य के होते भीष्म मृत्यु का अंगीकरण क्यों करेंगे? भीष्म के विचारों को बल मिला तथा वे दृढ़ निश्चय से उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा करने लगे। कौरव-पांडव प्रणाम कर उनकी सेवा में प्रस्तुत हुए। भीष्म ने अपनी लटकी हुई गर्दन से उनका स्वागत किया तथा कहा कि सिर के नीचे सिरहाना चाहिए। कौरवगण रेशम के बने सिरहाने लेकर प्रस्तुत हुए, किंतु भीष्म ने अर्जुन की ओर देखकर कहा—"मुझे वीरोचित सिरहाना चाहिए बेटा! तुम्हीं मेरी इस शैया के अनुरूप तकिया प्रदान करने में समर्थ हो।" अर्जुन ने कंपित वाणी और गीले नेत्रों से भीष्म की आज्ञा को स्वीकार किया तथा तीन तीखे वाणों से उनके मस्तक को ऊंचा कर तकिया प्रदान किया। परम संतुष्ट होकर भीष्म ने उन सबसे कहा कि वे भीष्म के चारों ओर खाई खोद दें ताकि वे सूर्य की उपासना कर पावें। वैद्यों इत्यादि की सेवा लेने से इंकार करते हुए उन्होंने युद्ध समाप्त करके प्रेमपूर्वक रहने का अनुरोध किया। अगले दिन प्रातः से ही भीष्म के दर्शनों के लिए अनेकों राजा, पुरुष-नारी तथा बालक आ जुटे। वाणों की पीड़ा से उसांस भरते हुए भीष्म ने पानी मांगा। उन्होंने अर्जुन के हाथों दिव्य जल ग्रहण करने की इच्छा प्रकट की। अर्जुन ने मंत्रोच्चारणपूर्वक गांडीव से एक वाण छोड़ा जो कि भीष्म के दाहिने पार्श्व की भूमि को वेधकर जल की धारा निकालने में समर्थ रहा। वह जलधारा पृथ्वी से ऊपर उठकर भीष्म को तृप्त करने लगी। जब कर्ण भीष्म पितामह के दर्शन करने आये तब भीष्म ने वहां से अन्य सबको चले जाने का आदेश दिया। कर्ण को छाती से लगा प्यार कर आशीर्वाद दिया तथा कहा—"तुम पांडवों के सगे भाई हो, उनसे युद्ध मत करो। मैं तुम्हें सख्त बोलता रहता था, पर तुम अर्जुन तथा कृष्ण के समान वीर हो।" कर्ण ने विनयपूर्वक निवेदन किया कि वह कौरवों की ओर से युद्ध करने का वादा कर चुका है, उससे नहीं हटेगा। भीष्म ने कहा—"ऐसा है तो तुम मिथ्याभिमान का परित्याग कर स्वर्ग-प्राप्ति की इच्छा से युद्ध करो। मैं कौरवों को समझाकर हार गया कि वे पांडवों से संधि कर लें तथा उनका राज्य उन्हें लौटा दें।" कर्ण ने अपनी विगत कटूक्तियों के लिए क्षमा-याचना की और चला गया।

महाभारत-युद्ध में विजय प्राप्त करने के उपरांत पांडवों ने राजमहलों में प्रवेश किया। पांडवों के राज्याधिकार प्राप्त करने के उपरांत श्रीकृष्ण उन्हें लेकर मृत्यु-शैया पर पड़े भीष्म पितामह के दर्शन करने गये। श्रीकृष्ण से उनका वार्तालाप हुआ। श्रीकृष्ण ने उन्हें वर दिया कि भूख, प्यास तथा घाव की पीड़ा उन्हें कष्ट नहीं पहुंचायेगी। युधिष्ठिर भीष्म के सम्मुख पड़ने पर लज्जा का अनुभव करते थे। उन्हें शाप का भी भय था। श्रीकृष्ण से ऐसा जानकर भीष्म ने युधिष्ठिर से कहा कि यदि गुरुजन भी लाभवश किसी गलत व्यक्ति का साथ दें तो उनसे युद्ध करना क्षत्रिय का धर्म है। तदुपरांत उन्होंने युधिष्ठिर को राजधर्म का उपदेश दिया तथा अनेक दिनों तक वे विभिन्न राजाओं के उदाहरण देकर राजा के कर्तव्यों पर प्रकाश डालते रहे। उन्होंने शंपाक नामक ब्राह्मण के विषय में भी बताया जिसके अनुसार

अंकिचन और असंग्रहशील होकर मनुष्य बहुत प्रसन्न रह सकता है (शांतिपर्व, १७६)। तदुपरांत उन्होंने युधिष्ठिर को हस्तिनापुर जाने का आदेश दिया। सूर्य के उत्तरायण होने पर, अट्ठावन दिन शर-शैया पर सोने के उपरांत, भीष्म ने प्राण त्याग दिये। उनके प्राण जिस अंग का परित्याग करते थे, उस-उस अंग के बाण स्वयं निकल जाते थे तथा घाव भर जाते थे। अंत में ब्रह्मरंध्र फोड़कर प्राण उल्कावत् आकाश में चले गये। पुत्र-वियोग से गंगा अत्यंत दु:खी हुई। श्रीकृष्ण तथा व्यास ने गंगा को सांत्वना प्रदान की।

म० भा०, उद्योगपर्व, १५६, १७२।१६-२०
भीष्मवधपर्व, ५८।३१ से ४६ तक
भीष्मवधपर्व, ८८-, १०७-१२२।-
शांतिपर्व, ४६, ४७।-
दानधर्मपर्व, १६६-१६८।-
श्रीमद् भा०, प्रथम स्कंध, ६।-

भुवनालंकार 'भुवनालंकार' नामक हाथी ने भरत को देखा तो उसे पूर्वभव का स्मरण हो आया। पूर्वभव में वह और भरत प्रगाढ़ मित्र थे। जिनेश्वर के पास प्रव्रज्या लेकर पतित होने के कारण चंद्रोदय और सूर्योदय ने क्रमश: भरत तथा भुवनालंकार के रूप में जन्म लिया। पूर्वभव को स्मरण करके वह इतना क्षुब्ध हुआ कि हाथीशाला के लोहे का खंबा तोड़कर भरत के पास जा पहुंचा और अपनी सूंड़ धरती पर पटकने लगा। जिन मुनि के उपदेश से उसने सागर धर्म की दीक्षा ली। चार वर्ष तक घोर तपस्या करके उसने अपने पापों का नाश किया।

पउ० च०, ८२, ८४।-

भूतोत्पत्ति भूतों की उत्पत्ति का क्रम बड़ा विचित्र है। सबसे पहले कमल से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई, तमोगुण से मधु और कैटभ नामक दो दैत्यों की। ब्रह्मा के सात मानस पुत्र हुए: मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु तथा दक्ष प्रजापति। दक्ष प्रजापति सबसे पहले उत्पन्न हुए। छ: में सबसे बड़े मरीचि थे। उन्होंने कश्यप को जन्म दिया। दक्ष का जन्म ब्रह्मा के अंगूठे से हुआ था। दक्ष की तेरह कन्याएं हुईं, जिनमें सबसे बड़ी दिति थी। उन सबका विवाह कश्यप से हुआ। दक्ष की पुन: दस कन्याएं हुई जिनका विवाह धर्म से हुआ। प्रजापति की अन्य सत्ताइस कन्याओं का विवाह 'सोम' से हुआ। तदनंतर उत्पन्न कन्याओं का विवाह गंधर्वों, अश्वों, गौओं, मत्स्यों, किम्पुरुषों आदि से हुआ। यों सृष्टि की रचना पहले मनुष्य अपनी इच्छानुसार आयु प्राप्त करते थे। उन्हें मैथुन की इच्छा नहीं होती थी। संकल्प से ही वे लोग संतानोत्पत्ति करते थे। त्रेता युग में स्पर्श से संतान उत्पन्न होने लगी, द्वापर में मैथुन का सूत्रपात हुआ।

म० भा०, शांतिपर्व, २०७-

भूरिश्रवा महाभारत के युद्ध में सोमदत्त के पुत्र भूरिश्रवा की सात्यकि के साथ अनेक बार मुठभेड़ हुई। युद्ध के पांचवें दिन भूरिश्रवा ने सात्यकि के दस पुत्रों को मार डाला। युद्ध के चौदहवें दिन जयद्रथ को मारने के लिए गये हुए अर्जुन को ढूंढ़ता हुआ तथा कौरवों की सेना में उथल-पुथल मचाता हुआ सात्यकि भूरिश्रवा से पुन: जूझने लगा। सात्यकि का एक रथ खंडित हो गया था। वह मल्ल-युद्ध में व्यस्त था। सात्यकि प्रात:-काल से निरंतर युद्ध करने के कारण बहुत थक गया था। भूरिश्रवा ने उसे उठाकर धरती पर पटक दिया तथा उसकी चोटी पकड़कर तलवार निकाल ली। अर्जुन ने कृष्ण की प्रेरणा से भूरिश्रवा की बांह पर ऐसा प्रहार किया कि वह कटकर, तलवार सहित, अलग जा गिरी। भूरिश्रवा ने कहा कि यह न्यायसंगत नहीं था कि जब वह अर्जुन से नहीं लड़ रहा था, तब अर्जुन ने उसकी बांह काटी। अर्जुन ने प्रत्युत्तर में कहा कि भूरिश्रवा अकेला ही अनेक योद्धाओं से लड़ रहा था, न वह यह देख सकता था कि कौन उससे लड़ने के लिए उद्यत है और कौन नहीं, न अर्जुन ने ही ऐसा विचार किया। अपने मित्र का अहित करनेवाले सशस्त्र सैनिक पर वार करना न्यायसंगत है। अपने बायें हाथ से कटा हुआ दायां हाथ उठाकर अर्जुन की ओर भूरिश्रवा ने फेंका, पृथ्वी पर माथा टेक प्रणाम किया तथा युद्धक्षेत्र में ही समाधि लेकर आमरण अनशन की घोषणा कर दी। अर्जुन तथा कृष्ण ने उसे निर्मल लोकों में गरुड़ पर आरूढ़ होकर विचरने का आशीर्वाद दिया। वे दोनों ही भूरिश्रवा के वीरत्व तथा धर्मपरायणता के प्रशंसक थे। सात्यकि उसके पाश से छूटा तो अर्जुन तथा कृष्ण के मना करने पर भी उसका वध किये बिना न रह पाया। भूरिश्रवा को ऊर्ध्वलोक की प्राप्ति हुई। ध्वज पर यूप (चक्र अथवा गांठ) का चिह्न होने के कारण भूरिश्रवा 'यूपध्वज' भी कहलाता है। सात्यकि परमवीर योद्धा था। वह किसी भी प्रकार अर्जुन तथा कृष्ण से कम वीर

नहीं कहा जा सकता । भूरिश्रवा ने उसका अपमान करने की जो क्षमता प्राप्त की थी, उसकी अपूर्व कथा है। अतीत काल में महर्षि अत्रि के पुत्र सोम हुए, सोम के पुत्र बुध, बुध के पुरुरवा; पुरुरवा के आयु, आयु के नहुष, इसी प्रकार उस कुल की परंपरा पुरुरवा, आयु, नहुष, ययाति, यदु, देवमीढ़ शूर, वसुदेव, शिनि तक चलती चली गयी। देवक की पुत्री देवकी को शिनि ने वसुदेव के लिए जीतकर अपने रथ पर बैठा लिया। सोमदत्त ने वसुदेव को युद्ध के लिए ललकारा। शिनि ने सोमदत्त को पृथ्वी पर पटककर उसकी चोटी पकड़ ली, फिर दयापूर्वक उसे छोड़ दिया। सोमदत्त ने लज्जास्पद स्थिति का बदला लेने के लिए शिव की तपस्या की और वर मांगा कि उसे एक वीर पुत्र की प्राप्ति हो जो कि शिनि के पुत्र को सहस्रों राजाओं के बीच में अपमानित करके पृथ्वी पर गिरा दे तथा पैर से मारे। शिव ने कहा कि वह पहले ही शिनि के पुत्र को वरदान दे चुके हैं कि उसे त्रिलोक में कोई भी नहीं मार सकेगा। अतः सोमदत्त का पुत्र उसे मूर्च्छित भर कर पायेगा। उस वरदान के फलस्वरूप ही भूरिश्रवा (सोमदत्त का पुत्र) सात्यकि (शिनि पुत्र) को रणक्षेत्र में भूमि पर पटककर उसपर लात से प्रहार कर पाया। भूरिश्रवा के पिता सोमदत्त को उसके वध का ज्ञान हुआ तो वह अत्यंत रुष्ट होकर सात्यकि से युद्ध करने पहुंचा। हाथ कटे व्यक्ति को मारना उसके अनुसार अधर्म था। सात्यकि के सहायक श्रीकृष्ण तथा अर्जुन थे, अतः सोमदत्त बुरी तरह से पराजित हो गया।

म० भा०, भीष्मवधपर्व, ७४।•
द्रोणपर्व, १४२ से १४४ तक, १५६।-

भृगु · प्रजापति ने संतान की इच्छा से साध्यों और विश्वदेवों के साथ तीन वर्ष के यज्ञ-सत्र का आयोजन किया। दीक्षा के समय वाच् सशरीर प्रकट हुई। प्रजापति तथा वरुण ने जब उसका अनुपम सौंदर्य देखा, तब दोनों का शुक्र स्खलित हो गया। दोनों ने सलज्ज वायु की ओर देखा। वायु ने उन दोनों की अनुमति से स्खलित शुक्र अग्नि में डाल दिया। अग्नि की ज्वाला से ऋषि भृगु का तथा अंगारों से अंगिरस ऋषि का जन्म हुआ। दोनों वाच् (भारती) के पुत्र कहलाए, क्योंकि वही उनके जन्म का कारण थीं। भारती ने प्रजापति से कहा कि उन्हें एक और पुत्र की कामना है। प्रजापति ने कहा—"तुरंत मिलेगा।" मां भारती को वहीं अत्रि नामक पुत्र की उपलब्धि हुई। अत्रि ऋषि हुए जो सूर्य तथा अग्नि के समान तेजस्वी तथा मंत्रद्रष्टा थे।

ऋ०, ६।१।३०
यजु० वे०।१५।२६, ३।१५, १५।२८

नोट : अंगिरस के पुत्र का नाम बृहस्पति हुआ। उनके पुत्र भरद्वाज कहलाए। भरद्वाज विदथिन नाम से भी प्रसिद्ध हैं। भरद्वाज मरुतों के गुरु थे।

अंगिरस—अंगों के रस।

अत्रि—(अतति) अर्थात् भ्रमणशील तथा उद्धारक हुए।

भरद्वाज=भरत+वाज—अर्थात् अन्न के दानी।

प्रजापति का रेतस् दोषरहित कर दिया गया तथा उसके चारों ओर अग्नि रख दी गयी, जिससे कि रेतस् सरोवर का रूप धारण कर ले तथा सूख जाय। वैश्वानर अग्नि के प्रभाव से वह पिंड-रूप होता गया। पहले आदित्य, तदनंतर भृगु की उत्पत्ति हुई। तदनंतर अंगारों से अंगिराओं की उत्पत्ति हुई।

ऐ० ब्रा०, ३।३४

ब्रह्मा ने जलों का सर्जन करके उसमें अपना प्रतिबिंब देखा जिससे वीर्यपात हुआ। जलों में वह शांत, तप्त तथा संतप्त हो गया। इससे उसके दो भाग हो गये—एक, नमकीन अपेय तथा दूसरा, स्वादु पेय। जलों के परितप्त होने से वीर्य भी परिपक्व हो गया जिससे भृगु का जन्म हुआ। उसे वाक् ने अनेक नाम से पुकारा—दक्षिण दिशा में मातरिश्वा, पश्चिम में पवमान, उत्तर में वात तथा पूर्व में वायु कहकर पुकारा।

गो० ब्रा०, १।१।३

वेदज्ञ वरुण के पुत्र का नाम भृगु था। एक बार भृगु के मन में ब्रह्मज्ञान की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। उन्होंने पिता से पूछा कि ब्रह्म क्या है? वरुण ने अन्न, जीव, मन, वाणी आदि को ब्रह्म की उपलब्धि के द्वारा बताया और कहा कि जीव ब्रह्म से उत्पन्न होकर उसी में लीन हो जाता है। उसे तप से जाना जा सकता है। वरुण से प्रेरणा प्राप्त करके भृगु तपस्या करने लगे। कुछ समय बाद भृगु ने अनुभव किया कि "संभवतः 'अन्न' ही ब्रह्म है।" क्योंकि प्राणी अन्न से उत्पन्न होकर अन्न में लीन हो जाता है। पिता के सम्मुख शंका प्रस्तुत करने पर उन्हें अपने मत की सहमति नहीं मिली। वे पुनः तपस्या

करने लगे। इसी प्रकार उन्होंने क्रमश: प्राण, मन, विज्ञान-स्वरूप जीवात्मा को ब्रह्म माना किंतु हर बार पिता के सम्मुख पहुंचने पर उन्हें यही उपदेश मिला कि ब्रह्म को समझने का साधन तप है, अत: हर बार वे पुन: तप में लीन हो गये। अंततोगत्वा उन्हें परब्रह्म का ज्ञान हुआ कि वह आनंदस्वरूप है तथा उनके मन में अन्य किसी प्रकार की जिज्ञासा शेष नहीं रही।

तैत्तिरीयोपनिषद्, भृगुवल्ली, १ से ६ अनुवाक तक

दशरथ अपने पुरोहित वसिष्ठ से मिलने गये। वहां अत्रि-पुत्र (दुर्वासा) भी विराजमान थे। राजा दशरथ ने अपने कुल के विस्तार के विषय में जिज्ञासा प्रकट की। दुर्वासा ने बताया—"प्राचीनकाल में देवताओं और दैत्यों के युद्ध में दैत्य मार खाकर भृगु-पत्नी की शरण में चले गये। विष्णु ने अपने तीखे चक्र से भृगु-पत्नी का सिर काट डाला। इससे क्रुद्ध होकर भृगु ने विष्णु को शाप दिया कि वे मानव-देह धारण करके मृत्युलोक में जन्म लें और दीर्घकाल तक पत्नी का वियोग भोगें। शाप देने से भृगु का तप क्षीण हो गया किंतु विष्णु ने वह शाप स्वीकार किया; अत: रामचंद्र के रूप में दशरथ के घर में जन्म लिया।" दुर्वासा ने यह भी बताया कि राम दीर्घायु हैं। उनके पुत्रों का जन्म अयोध्या में नहीं होगा तथा अंत में राम अपने दोनों पुत्रों को प्राप्त करके उनका राज्याभिषेक करेंगे।

राम को जीवन में अपने भाइयों का वियोग भी सहना पड़ेगा।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग ५१,

भृगु की पत्नी का नाम ख्याति था। उसने धाता और विधाता नामक दो पुत्रों को जन्म दिया तथा लक्ष्मी नामक कन्या को जन्म दिया जो कि विष्णु की पत्नी हुई। धाता-विधाता के क्रमश: प्राण और भृकंडु नामक दो पुत्र हुए।

अ० पु०, २०

भैरव (काल भैरव) देवताओं में विवाद छिड़ा कि मूल प्रभु कौन है। ब्रह्मा ने अपने पांचवें मुंह से अपनी प्रभुता प्रकट की। विष्णु ने उनके मत का खंडन करके अपनी प्रतिष्ठा की क्योंकि उनकी नाभि से निकले कमल पर ब्रह्मा का जन्म हुआ था। वेदों ने शिव के प्रभुत्व की प्रतिष्ठा की। उसी समय ब्रह्मा और विष्णु के समक्ष एक ज्योति उत्पन्न हुई। उसमें एक पुरुष-रूप प्रतिभासित हुआ जिसने त्रिशूल, चंद्रमाल, सर्प आदि धारण कर रखे थे। ब्रह्मा ने कहा—"तुम तो वही हो जो हमारी भ्रू के मध्य से उपजे थे और रोने के कारण रुद्र कहलाये थे।" उस रूप को शिव ने अपने अंश से प्रकट किया था। उसका नाम कालभैरव रखा था। शिव ने अनु-शासनार्थ अपने उस अंश को प्रकट किया था, अत: उसने ब्रह्मा का पांचवां मुंह (जिससे ब्रह्मा ने उसकी अवमानना की थी) काट डाला। शिव ने कहा—"मैंने तुमसे कहा था, ब्राह्मण पर हाथ मत उठाना। ब्रह्महत्या से मुक्त होने के लिए तुम कटा हुआ सिर लेकर समस्त लोकों में भिक्षाटन करो (यह कायापाल व्रत कहलाता है)।" शिव ने ब्रह्महत्या नामक विशालकाय एक स्त्री प्रकट की। जहां-जहां भैरव जाते, वह पीछे-पीछे जाती। भैरव भिक्षा मांगते हुए अपने पाप को स्वीकारते। तीनों लोकों की परिक्रमा करके भैरव जब पुन: काशी पहुंचे तो ब्रह्महत्या चीत्कार करके पृथ्वी के नीचे चली गयी तथा भैरव के हाथ से सिर धरती पर गिर पड़ा।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध, ७।१३-१७।

भौत्य मनु (१४) अंगिरा मुनि के भूति नामक शिष्य अत्यंत क्रोधी थे। उनसे समस्त प्रकृति भी भयभीत रहती थी। उनका शांति नामक शिष्य था। एक दिन अपने भाई सुवर्चा के यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए जाते हुए भूति ने शांति को बुलाकर कहा कि वह उनकी अनु-पस्थिति में आश्रम में प्रज्वलित अग्नि का ध्यान रखे। गुरु की अनुपस्थिति में शिष्य पूरे मनोयोग से आश्रम का कार्यभार संभाल रहा था। एक दिन गुरु के लिए फल-मूल इत्यादि एकत्र करके जब वह आश्रम पहुंचा तो अग्नि बुझ चुकी थी। वह अत्यंत भयभीत हुआ। दुबारा अग्नि प्रज्वलित करने पर भी ज्ञानचक्षु से गुरु समझ लेंगे और उसे शाप दे देंगे। यह सब सोच-विचारकर उसने अग्निदेव की आराधना की। अग्निदेव ने साक्षात् दर्शन देकर उससे वर मांगने के लिए कहा। शांति ने कहा—"हे देव, मेरे गुरु के आश्रम लौटने पर अग्नि पूर्ववत् प्रज्वलित मिले। उन्हें एक सुयोग्य पुत्र की प्राप्ति हो। पुत्र के साथ-साथ गुरु का प्रेम समस्त प्राणियों के प्रति बढ़ जाये।" अग्निदेव अत्यंत प्रसन्न हुए कि उसने दो वर मांगे, दोनों ही गुरु के लिए थे, अपने लिए नहीं। दोनों वर प्रदान कर वे अंतर्धान हो गये। आश्रम लौटने पर भूति ने शिष्य से कहा—"न जाने क्यों जीवों के प्रति अनायास ही मेरा स्नेह बढ़ गया है।" शांति ने पूर्वघटित

घटना कह सुनायी। गुरु ने प्रसन्न होकर शांति को अंग-उपांगों सहित समस्त वेद का ज्ञान प्रदान किया। कालांतर में भूति का एक पुत्र हुआ। उसका नाम भौत्य रखा गया। वह चौदहवां मनु हुआ तथा भूति प्रजापति हुए।

भा० पु०, ६६-६७।-

भौमासुर (नरकासुर) नरकासुर धरती के भीतर पाताल-विवर में रहता था। वह भूमि का पुत्र होने के कारण भौमासुर कहलाता था। वह वरदान से उन्मत्त असुरों में से एक था। उसने हाथी का रूप धारण कर प्रजापति त्वष्टा की पुत्री कशेरु का अपहरण किया था। इसी प्रकार उसने देवताओं, मनुष्यों तथा गंधर्वों की अनेक कन्याओं का अपहरण किया था। उसने अप्सराओं के सात समुदायों का भी अपहरण किया था। उनके रहने के लिए उसने मणिपर्वत पर औदकी नामक स्थान पर अंत:पुर का निर्माण करवाया था। भौमासुर प्राग्ज्योतिष-पुर का राजा था। वह, मुर के दस पुत्र तथा अन्य प्रधान राक्षस अंत:पुर की सुरक्षा करते थे। हयग्रीव निशुंभ, मुर, आदि नामक युद्धोन्मत्त राक्षस उसकी राज्य-सीमा की रक्षा करते थे। एक बार उसने देवमाता अदिति से उनके कुंडल छीन लिये थे। इंद्र अन्य अनेक देवताओं के साथ कृष्ण के पास पहुंचे तथा उन्हें भौमासुर को मार डालने के लिए कहा। कृष्ण ने सहज ही मुर, निशुंभ, हयग्रीव तथा पंचजन नाम से प्रसिद्ध पांच भयानक राक्षसों को मार डाला। तदनंतर उन्होंने अपने चक्र से भौमासुर का सिर काट डाला। उसका शव भूमि पर गिरा। मां भूमि ने प्रकट होकर श्रीकृष्ण को अदिति के कुंडल दे दिये। देवताओं ने श्रीकृष्ण को वर दिया कि वे आकाश और जल में अप्रतिहत गति से विचरें तथा उनके शरीर पर किसी अस्त्र-शस्त्र का प्रभाव न हो। श्रीकृष्ण कुंडल लेकर देवलोक की ओर प्रस्थान करने से पूर्व मणिपर्वत पर गये। वहां औदकी-स्थित अंत:पुर में जितनी कन्याएं थीं, सब हाथ जोड़कर खड़ी हो गयीं और उन्होंने श्रीकृष्ण को सामूहिक रूप से पति-रूप में वरण करने की इच्छा प्रकट की। यह भी बताया कि नारद ने पहले ही उन्हें यह बताया था कि कृष्ण भौमासुर को मार देंगे और उन सबके पति होंगे। श्रीकृष्ण ने अपने गरुड़ पर पशु-पक्षियों तथा कन्याओं सहित वह मणिपर्वत चढ़ा लिया तथा स्वर्गलोक में अदिति को उनके कुंडल वापस करके वे द्वारकापुरी पहुंचे, जहां उन्होंने मणिपर्वत को प्रतिष्ठित किया। उस अवसर पर कृष्ण के स्वागतार्थ एकत्र समाज में यशोदा तथा उनकी पुत्री (बलराम तथा कृष्ण की बहन) एकानंगा भी थी।

म० भा०, सभापर्व, ३८।-
उद्योगपर्व, ४८।८६-८७

भौमासुर ने वरुण का छत्र, अदिति के कुंडल और देवताओं का मणिपर्वत नामक स्थान छीन लिया था। राजा इंद्र ने द्वारका जाकर कृष्ण को इस विषय में बताया। भौमासुर अपनी राजधानी में पर्वतों से तथा जलयुक्त खाइयों से घिरे और मुर नामक दैत्य आदि से सुरक्षित महल में रहता था। कृष्ण ने पहाड़ तोड़कर, मुर को तथा भौमासुर को मार डाला। उसकी मां, भूमि ने कृष्ण को वनमाला, अदिति के कुंडल, वरुण का छत्र तथा एक महामणि उपहारस्वरूप दी, साथ ही कृष्ण से अनुरोध कर भौमासुर के पुत्र भगदत्त के लिए अभयदान प्राप्त किया। कृष्ण ने अलग-अलग भवनों में अलग-अलग रूप धारण कर एक ही मुहूर्त में अनेक सुंदरियों से विवाह किया, जिन्हें भौमासुर ने कैद कर रखा था। तदनंतर वे सत्यभामा सहित इंद्र के महलों में गये। इंद्राणी के आतिथ्य से प्रसन्न होकर उन्होंने उसे अदिति के कुंडल उपहारस्वरूप दे दिये।

श्रीमद् भा०, १०।५६
हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व, ६३

शिव के ललाट से पसीना पृथ्वी पर गिरा। उससे एक बालक का प्रादुर्भाव हुआ। सती आत्मोत्सर्ग कर चुकी थी, अतः उस बालक का पालन पृथ्वी ने किया। शिव ने उसका नाम भौम रखा। वह शिव का अनन्य भक्त हुआ।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध, ३।७

जब सती ने दक्ष के यक्ष में अपनी अप्रतिष्ठा देखी तो उसने प्राण त्याग दिये। शिव ने समस्त यज्ञ का विध्वंस कर डाला तदनंतर वे अत्यंत उद्विग्न मन से बैठे थे कि उनके मस्तक से पसीने की एक बूंद पृथ्वी पर गिरी जिसने कुदरू के फल के समान लाल रंग वाले बालक का रूप धारण किया। पृथ्वी ने नारी का रूप धारण कर उसे दुग्धपान करवाया। उस बालक का नाम भौम पड़ा तथा शिव ने उसकी तपस्या से प्रसन्न हो, उसे बुध से ऊपर का लोक प्रदान किया।

शि० पु०, ११।१४

भ्रामरी देवी दैत्य अरुण ने पाताल स्थित होकर घोर तपस्या आरंभ की। उसके शरीर से अग्नि निसृत होकर जगत को भस्म करने लगी। वह ब्रह्मा का उपासक था। उसने ब्रह्मा से वर प्राप्त किया कि द्विपाये-चौपाये आदि से उसकी मृत्यु न हो। तदनंतर उसने अमरावती के देवताओं को युद्ध के लिए ललकारा। देवता ब्रह्मा की शरण में गये। वे सब चिंताग्रस्त थे। तभी आकाशवाणी सुनायी दी—"हे देवताओ, तुम ईशानी का भजन करो। अरुण गायत्री जाप करता है, उसका गायत्री जाप त्याग करवा दो।" मंत्रणा करके बृहस्पति अरुण के पास गया। दैत्यों ने अपने लोक में उसे देखकर पूछा—"हम लोग तुम्हारे शत्रु हैं, तुम्हारा यहां आगमन कैसे हुआ?" बृहस्पति ने कहा—"हम गायत्री-उपासक हैं, तुम भी उसी की उपासना करते हो, फिर विरोध कैसा?" असुरराज ने अभिमानवश गायत्री जाप बंद कर दिया। जाप-त्याग करते ही उसका तेज नष्ट हो गया। देवताओं ने देवी का स्तवन किया। देवी ने अनेक भ्रमर तथा भ्रमरियों को प्रकट किया। पृथ्वी पर अंधकार छा गया। भ्रमर और भ्रमरियों ने सब दैत्यों को नष्ट कर डाला।

दे० भा०, १०।१३।३६-१२७

□

मंकणक मुनि मुनि मंकणक वायु के औरस पुत्र थे। उनका जन्म सुकन्या के गर्भ से हुआ था। वे चिरकाल से ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए सरस्वती में स्नान किया करते थे। एक बार वहां उन्होंने स्नान करती हुई एक अनिंद्य सुंदरी को देखा जो कि नग्न थी। उसे देखकर उनका वीर्यपात हो गया। उन्होंने वीर्य को एक कलश में ले लिया। वहां वह वीर्य सात भागों में विभक्त हो गया। अतः उस कलश से सात ऋषि उत्पन्न हुए, जो मूलभूत ४९ मरुद्गणों के जन्मदाता थे। उनके नाम इस प्रकार हैं —(१) वायुवेग, (२) वायुबल, (३) वायुहा, (४) वायुमंडल, (५) वायुज्वाल, (६) वायुरेता, और (७) वायुचक्र।

पहले कभी मंकणक का हाथ किसी कुश के अग्रभाग पर लग गया था। उससे हाथ छिद गया तथा वहां से शाक का रस निसृत होने लगा। मंकणक मुनि प्रसन्नता के आवेग में नृत्य करने लगे। उनके तेज से प्रभावित समस्त स्थावर जंगम जगत् नृत्यरत हो गया। जगत् की अस्त-व्यस्तता लक्ष्य कर देवताओं आदि ने शिव से प्रार्थना की कि वे इस नृत्य को रोकें। शिव ने मंकणक के सम्मुख अपने अंगूठे के अग्रभाग से प्रहार किया जिससे अंगुलि के अग्रभाग में घाव हो गया तथा वहां से बर्फ के समान श्वेत भस्म झड़ने लगी। यह देखकर मुनि लज्जावश महादेव के चरणों में गिर पड़े तथा अपने मिथ्याभिमान के लिए क्षमा-याचना करने लगे। साथ ही उन्होंने शिव से वर प्राप्त किया कि उनके अहंकार और चापल्य के कारण उनकी पूर्वकृत तपस्या नष्ट न हो। उन्होंने उनके साथ उनके आश्रम में रहने की इच्छा प्रकट की वह स्थान सप्तसारस्वत नाम से विख्यात है।

म० भा०, शल्यपर्व, ३८।३४-५६
वनपर्व, ८३।११५-१३३।

मंकि मंकि नामक मुनि जीवन के अधिकांश काल में धन-संचय के लिए प्रयत्नशील रहे किंतु उनका धन निरंतर क्षीण होता चला गया। अंत में जो कुछ थोड़ा-बहुत धन बचा था, उससे उन्होंने दो बछड़े खरीदे। उन दोनों को जोतकर वे हल चलाने का अभ्यास करवाना चाह रहे थे—तभी वे दोनों दौड़ते हुए एक ऊंट के दोनों ओर से निकलने की चेष्टा करने लगे। ऊंट इस आकस्मिक हलचल को नहीं समझ पाया। अतः अपनी गर्दन पर अटके हुए जुए समेत उठकर ऊंचे-नीचे रास्ते में भाग खड़ा हुआ। दोनों बछड़े उसकी गर्दन के दोनों ओर लटक गये। गड्ढों में उछलते हुए ऊंट के साथ-साथ वे भी उछलते रहे। उनका दम घुटता रहा। उन दोनों को इस प्रकार मरता देख मंकि मुनि ने सोचा कि परमात्मा की इच्छा से अधिक धन प्राप्त करना मानवमात्र के लिए असंभव है। इस प्रकार वैराग्य जागृत होने के कारण उनकी कामनाएं नष्ट हो गयीं और उन्होंने संतोष प्राप्त किया।

म० भा०, शांतिपर्व, १७७।

मंगल चंडी भूमिपुत्र मंगल की अभीष्टदात्री जो चंडी है, वही मंगलचंडिका है। मनुवेश सप्त दीपका अधिपति मंगल की पूजा और अभीष्टदान के कारण वह मंगल-चंडिका कहलाती है। दैत्य त्रिपुर को मारने के लिए तथा मारने के बाद शंकर ने मंगलचंडी की आराधना की

थी। तदनंतर वे मंगलवार के दिन सर्वत्र पूजित हो गयीं।

दे० भा०, ६।४७।१-३५

मंदोदरी (क) दे० रावण।

(ख) राजा चंद्रसेन की भार्या का नाम गुणवती था। प्रथम गर्भ से उसने एक कन्या को जन्म दिया। उसका नाम मंदोदरी रखा गया। चंद्रसेन उसका विवाह सुधन्वा के पुत्र कंबुग्रीव से करना चाहता था, किंतु मंदोदरी का विचार चिरकुमारी रहने का था। यौवन-प्राप्ति पर एक दिन वह सखियों के साथ वन में विहार करने गयी। कौसलपति वीरसेन भी संयोगवश रास्ता भूलकर वहां पहुंचा। उसने मंदोदरी को देखा तो उसने उसकी दासी सौरंध्री के माध्यम से गंधर्व विवाह का प्रस्ताव मंदोदरी के सम्मुख रखा, किंतु वह कौमार्यव्रत में दृढ़ रही। कालांतर में उसकी छोटी बहन इंदुमती का स्वयंवर हुआ। वहां मंदोदरी मद्र के राजा पर आसक्त हो गयी। उसके पिता ने सहर्ष दोनों का विवाह कर दिया। वह पतित चरित्र का राजा निकला, अतः मंदोदरी ने वैराग्य ग्रहण किया।

दे० भा०, ७।१८

मणिकुंडल द्विज गौतम तथा वैश्य मणिकुंडल की परस्पर मित्रता थी। वैश्य अत्यंत धनी थी। गौतम धोखे से उसका धन ले लेना चाहता था। गौतम ने उसे बहकाकर भ्रमण के लिए तैयार किया। दोनों अपने परिवारों को बताए बिना घर से चले गये। मार्ग में 'धर्म में सुख है' ऐसा माननेवाले वैश्य का विरोध करते हुए गौतम ने संपूर्ण धन की शर्त लगायी। वैश्य हार गया। तदनंतर बार-बार शर्त लगाकर वह बांहें और आंख भी हार गया। गौतम उसकी बांह काटकर, आंख फोड़कर उसे छोड़कर चला गया किंतु मणिकुंडल की आस्था ज्यों की त्यों बनी रही। संयोग से विभीषण और उसका पुत्र गोदावरी में स्नान करने के हेतु वहां से निकले। वैश्य की दयनीय स्थिति देखकर पिता की प्रेरणा से पुत्र उस स्थान पर गया जहां हनुमान से संजीवनी बूटी गिर गयी थी। उसके प्रयोग से उसने मणिकुंडल को पूर्ववत् बना दिया। वैश्य शेष बूटी के साथ जा रहा था। मार्ग में राजा 'महाराज' की नगरी में पहुंचा। वहां की राजकुमारी अंधी थी। मणिकुंडल ने संजीवनी के स्पर्श से उसके नेत्र ठीक कर दिये, फलतः राजा ने उससे राजकुमारी का विवाह कर दिया।

ब्र० पु०, ।१७०।-

मणिभद्र (पार्श्वमौलि) अनेक यक्षों के युद्ध में काम आने के बाद कुबेर ने मणिभद्र नामक यक्ष को ससैन्य रावण से युद्ध करने के लिए भेजा। रावण ने मणिभद्र की चलायी तीन शक्तियों को सहन करके उसके मुकुट पर प्रहार किया। मुकुट उसके सिर समेत बगल में आ गया, अतः वह 'पार्श्वमौलि' भी कहलाया।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग १५,
श्लोक १-१५

मणिमान् एक बार गरुड़ के ऋद्धिमान नामक महानाग को झपटकर जलाशय में से निकाल लिया। उसकी इस क्रिया से समस्त पृथ्वी डावांडोल-सी हो उठी। उसके पंखों की हवा से अनेक दिव्य मालाएं तथा पुष्प पांडवों के वनस्थ निवासस्थान के पास आ बिखरे। द्रौपदी ने भीमसेन से वैसे ही अन्य पुष्प लाने का अनुरोध किया। भीमसेन उसी दिशा में चल पड़े, जिधर से फूल उड़कर आये थे। पर्वत के शिखर पर कुबेर का महल, वाटिका तथा उसकी स्वर्ण चारदीवारी थी। भीम ने वहां पहुंचकर शंख बजाया। उसकी आवाज सुनकर अनेक राक्षस, किन्नर आदि भीम से युद्ध करने के लिए एकत्र हो गये। वे मायावी युद्ध करते थे किंतु भीम के पराक्रम के सम्मुख कोई भी टिक नहीं पाया। अंत में भीम का युद्ध कुबेर के मित्र मणिमान् से हुआ जो भीम के हाथों मारा गया। कुबेर को मालूम पड़ा तो वे भी गंधमादन पर्वत पर पहुंचे। उनके पहुंचने से पूर्व शेष तीनों पांडव (अर्जुन इंद्र के पास गये हुए थे) द्रौपदी को आर्ष्टिषेण मुनि के आश्रम पर छोड़कर भीम को खोजते हुए वहां पहुंच चुके थे तथा युधिष्ठिर उसे डांट रहे थे कि इस प्रकार का कृत्य शोभा नहीं देता। कुबेर ने पांडवों के दर्शन किये तो अत्यंत प्रसन्न होकर बोले—"देवताओं की मंत्रणा सभा में भाग लेने के लिए मैं तीन सौ महापद्म यक्षों के साथ जा रहा था। यमुना के तट पर अगस्त्य मुनि घोर तपस्या में लगे थे। मेरे मित्र मणिमान् ने मूर्खता तथा घमंडवश मुनि पर थूक दिया। मुनि ने शाप दिया कि वह अपने समस्त सैनिकों के साथ किसी मनुष्य से मारा जायेगा तथा उस मनुष्य के दर्शन कर मैं शापमुक्त हो जाऊंगा। अतः आज भीम के दर्शनों से मैं

शाप मुक्त हो गया हूं।"

म० भा०, वनपर्व, १६०।१५-७७
वनपर्व, १६१।-

मतंग (क) (दो कथाएं मिलती हैं। अलग-अलग ग्रंथों में दी गयी कथाओं से यह ज्ञात नहीं होता कि वह एक ही व्यक्ति की हैं अथवा दो भिन्न व्यक्तियों की कथाएं हैं।) पंपासर में लगे फूल कभी मुरझाते नहीं थे, क्योंकि कहा जाता है कि इस सरोवर के निकट ऋषि मतंग के शिष्य रहा करते थे। गुरु के लिए जंगली वस्तुएं लाने के समय विशेष बोझ के कारण उनके शरीर से पसीने की बूंदें गिरी थीं, जो मुनियों की तपस्या के कारण फूल बन गयी अत: वहां के फूल कभी मुरझाते नहीं।

बा० रा०, अरण्य कांड, सर्ग ७३
श्लोक २३-२५

(ख) किसी ब्राह्मण का मतंग नामक पुत्र था। एक दिन ब्राह्मण ने उसे किसी यजमान के यहां यज्ञ कराने के लिए भेजा। वह गदहों की गाड़ी पर सवार जा रहा था। मार्ग में उसने गदहे को चाबुक से इतना पीटा कि उसकी नाक पर घाव हो गया। गदहे की मां ने बेटे से कहा—"तू दुखी मत हो, यह ब्राह्मणी के उदर से नाई की संतान है। इसी कारण चांडाल के समान व्यवहार कर रहा है।" मतंग घर लौट आया। पिता को उक्त घटना सुनाकर वह ब्राह्मणत्व की प्राप्ति के लिए तपस्या करने लगा। उसे इंद्र ने अनेक बार दर्शन देकर समझाया कि वह विधि के कृत्यों का परिहार नहीं कर सकता। शूद्र के द्वारा जन्म लेकर वह ब्राह्मणत्व प्राप्ति करने में असमर्थ है, अत: कोई अन्य वर मांग ले। अंततोगत्वा मतंग ने इंद्र से वर प्राप्त किया कि वह आकाशचारी देवता होगा, 'छंदोदेव' नाम से विख्यात वह स्त्रियों के लिए पूजनीय होगा।

म० भा०, दानधर्मपर्व, २७-२९।-

मत्तगयंदलिंग ब्रह्मा की इच्छा थी कि ऐसा यज्ञ किया जाये जिससे कलियुग के पाप का नाश और पुण्य का विस्तार हो। विष्णु की सलाह से उन्होंने चित्रकूट पर्वत पर मत्तगयंदलिंग की स्थापना की तथा एक नगरी भी बसायी। उस शिवलिंग के दर्शन से यात्रियों के पाप नष्ट हो जाते हैं। ब्रह्मा ने वह नगरी विष्णु के लिए बसायी थी तथा शिव ने मत्तगयंदलिंग में प्रवेश किया था।

शि० पु०, ।८।१-३

मत्स्यावतार पिछले कल्प के अंत में ब्रह्मा को नींद आ रही थी, अत: उनके मुंह से वेद निकल पड़े। पास ही रहनेवाले हयग्रीव ने उन वेदों को योग-बल से चुरा लिया तथा पाताल में चला गया। श्रीहरि ने उस दानव के कृत्य को जान लिया, अत: मत्स्य का रूप धारण किया। वर्तमान युग में जो वैवस्वत मनु के नाम से प्रसिद्ध हुए, वे पहले कल्प में सत्यव्रत कहलाते थे। सत्यव्रत कृतमाला नामक नदी में जल से तर्पण कर रहे थे। उनकी अंजलि के जल में एक छोटी-सी मछली आ गयी। वे उसे पुन: नदी में छोड़ने लगे तो मछली ने उनसे वहां न छोड़ने का आग्रह किया, क्योंकि वहां भयानक जलचर थे। सत्यव्रत ने उसे अपने कमंडलु में रख लिया। वह रात-भर में इतनी बड़ी हो गयी कि कमंडलु उसके लिए छोटा पड़ने लगा। सत्यव्रत ने उसे मटके में, फिर सरोवर में रखा, पर उसका आकार अत्यंत तीव्रता से विराट् मत्स्य जितना बड़ा हो गया। सरोवर भी उसके लिए छोटा पड़ने लगा। सत्यव्रत ने श्रीहरि को पहचानकर मत्स्य का रूप धारण करने का कारण पूछा। श्रीहरि ने सत्यव्रत से कहा कि वह उन्हें सागर में छोड़ दे। सातवें दिन जलप्रलय होगी तब अनायास ही एक नाव उसके पास पहुंचेगी। सत्यव्रत सप्तर्षियों तथा विभिन्न प्रकार के अनाज के बीजों सहित नौका पर सवार हो जाये। नौका डावांडोल होने पर वह वासुकि से नौका को मत्स्य के सींग (विशेष सींग जो कि मत्स्यावतार के मस्तक पर था) से बांध ले। यह सब बताकर मत्स्य-रूपी श्रीहरि अंतर्धान हो गये। सातवें दिन प्रलय आने पर उन्होंने जैसा कहा गया था, सत्यव्रत ने किया। ब्रह्मा की निद्रा के कारण प्रलय आयी थी। प्रलयकाल में मत्स्यावतार ने सत्यव्रत को कर्म, भक्ति तथा योगसम्मत उपदेश दिये। ब्रह्मा की नींद खुलने पर प्रलय का अंत हो गया। मत्स्यावतार ने हयग्रीव को मारकर वेद पुन: प्राप्त कर लिए तथा ब्रह्मा को समर्पित कर दिये।

श्रीमद् भा०, अष्टम स्कंध, २४

(कथा मत्स्यावतार श्रीमद्भागवत् से तथा वैवस्वत मनु म० भा० से थोड़ी बदली हुई है। जो अंतर है, वही यहां दिया गया है।)

मनु ने निरंतर बढ़ते हुए मत्स्य के आकार को देखकर यह जान लिया कि वह कोई दिव्य शक्ति था। पूछने पर जाना कि वह नारायण का अवतार था। मनु ने

समस्त समुद्र में फैले हुए मत्स्य से वर मांगा कि प्रलय होने पर वह स्थावर जंगम जगत् की रक्षा कर सके। मत्स्य ने मनु को देवताओं की बनायी हुई एक नौका दी और आदेश दिया कि वह समस्त वनस्पति के बीज, समस्त जीव आदि की रक्षा के निमित्त नौका में बैठा ले। नौका में मजबूत रस्सी बांध ले। प्रलयकाल में वह रस्सी का दूसरा सिरा मत्स्य के सींग से बांध दे तथा स्वयं भी नौका पर रहे। प्रलयकाल में रस्सी के समान एक सर्प मनु के पास पहुंचा। मनु ने उससे नौका को मत्स्य के सींग के साथ बांध दिया। प्रलयकाल के उपरांत पुनः सृष्टि का आरंभ हुआ।

दे० सृष्टि

मत्स्य पु०, १-२

मद ऋषियों के यज्ञ में देव तथा मनुष्यों ने सोमपान किया। भृगु-पुत्र च्यवन ने अश्विनीकुमारों तक सोम पहुंचाने के लिए 'ग्रह' को दिया। इंद्र ने उसे मार्ग में रोककर उसे चमस (सोमान्न) के विषय में पूछा जिसमें वह स्वयं तब तक अनभिज्ञ था। इंद्र के अनुरोध पर च्यवन रुष्ट हो गये। इंद्र के क्रोध का मर्दन करने के निमित्त ऋषियों ने 'मद' नामक असुर का आह्वान किया। अग्नि ने इंद्र के क्रोध को शांत किया तथा उसे समझाया कि ऋषियों को रुष्ट करना ठीक नहीं है। इंद्र देवताओं सहित यज्ञ में से भाग गया। उनकी अनुपस्थिति में ही यज्ञ हुआ। 'मद' ने भयातुर होकर ऋषियों से प्रार्थना की कि वे भविष्य में उसे न बुलायें। ऋषियों ने मद को असुर सुरा में स्थापित कर दिया, तभी से सुरा में मद होता है।

ऋ०, ८।१८।१-७
साम०, ४७५
जै० ब्रा०, ३।१५६-१६१

मदन विवाहोपरांत शिव ने अपने भवन में प्रवेश किया ही था कि कंदर्प (काम अथवा मदन) ने उन्हें कामवासना से विचलित करने का प्रयास किया। शिव ने रुष्ट होकर अपना तृतीय नेत्र खोला और काम भस्म हो गया। रति के विलाप से द्रवित होकर शिव ने वर दिया कि काम अशरीर होने पर भी रति का समस्त कार्य करेगा तथा जब विष्णु वसुदेव के पुत्र-रूप में जन्म लेंगे, तब उनके (विष्णु के पुत्र) रति के पति होंगे।

ब्र० पु०, ३८।१-११

मदालसा शत्रुजित नामक एक राजा था। उसके यज्ञों में सोमपान करके इंद्र उसपर विशेष प्रसन्न हो गये। शत्रुजित को एक तेजस्वी पुत्र की प्राप्ति हुई जिसका नाम ऋतुध्वज था। उस राजकुमार के विभिन्न वर्णों से संबंधित अनेक मित्र थे। सभी इकट्ठे खेलते थे। मित्रों के अश्वतर नागराज के दो पुत्र भी थे जो प्रतिदिन मनोविनोद, क्रीड़ा इत्यादि के निमित्त ऋतुध्वज के पास भूतल पर आते थे। राजकुमार के बिना रसातल में वे रात भर अत्यंत व्याकुल रहते। एक दिन नागराज ने उनसे पूछा कि वे दिन-भर कहां रहते हैं? उनके बताने पर उनकी प्रगाढ़ मित्रता से अवगत होकर नागराज ने फिर पूछा कि उनके मित्र के लिए वे क्या कर सकते हैं। दोनों पुत्रों ने कहा—"ऋतुध्वज अत्यंत संपन्न है किंतु उसका एक असाध्य कार्य अटका हुआ है। एक बार राजा शत्रुजित के पास गालव मुनि गये थे। उन्होंने राजा से कहा था कि एक दैत्य उनकी तपस्या में विघ्न प्रस्तुत करता है। उसको मारने के साधनस्वरूप यह कुवलय नामक घोड़ा आकाश से नीचे उतरा और आकाशवाणी हुई—'राजा का पुत्र ऋतुध्वज उस घोड़े पर जाकर दैत्य को मारेगा। यह घोड़ा बिना थके आकाश, जल, पृथ्वी पर समान गति से चल सकता है।' राजा ने हमारे मित्र ऋतुध्वज को गालव के साथ कर दिया। ऋतुध्वज उस घोड़े पर चढ़कर राक्षस का पीछा करने लगा। राक्षस सूअर के रूप में था। राजकुमार के बाणों से बिंधकर वह कभी झाड़ी के पीछे छुप जाता, कभी गढ़े में कूद जाता। ऐसे ही वह एक गढ़े में कूदा तो उसके पीछे-पीछे घोड़े सहित राजकुमार भी वहीं कूद गया। वहां सूअर तो दिखायी नहीं दिया किंतु एक सुनसान नगर दिखायी पड़ा। एक सुंदरी व्यस्तता में तेजी से चली आ रही थी। राजकुमार उसके पीछे हो लिया। उसका पीछा करता हुआ वह एक अनुपम सुंदर महल में पहुंचा। वहां सोने के पलंग पर एक राजकुमारी बैठी थी। जिस सुंदरी को उसने पहले देखा था, वह उसकी दासी कुंडला थी। राजकुमारी का नाम मदालसा था। कुंडला ने बताया—'मदालसा प्रसिद्ध गंधर्वराज विश्वावसु की कन्या है। व्रजकेतु दानव का पुत्र पातालकेतु उसे हरकर यहां ले आया है। मदालसा के दुखी होने पर कामधेनु ने प्रकट होकर आश्वासन दिया था कि जो राजकुमार उस दैत्य को अपने बाणों से बींध देगा, उसीसे इसका विवाह होगा।' ऋतुध्वज ने उस दानव को बींधा है, यह जानकर कुंडला ने अपने

कुलगुरु का आवाहन किया। कुलगुरु तुंबुरु ने प्रकट होकर उन दोनों का विवाह-संस्कार करवाया। कुंडला तपस्या के लिए चली गयी तथा राजकुमार मदालसा को लेकर चला तो दैत्यों ने उसपर आक्रमण कर दिया। पातालकेतु सहित सबको नष्ट करके वह अपने पिता के पास पहुंचा। निर्विघ्न रूप से समस्त पृथ्वी पर घोड़े से घूमने के कारण वह कुवलयाश्व (कु=भूमि, वलय=मंडल) तथा घोड़ा (अश्व) कुवलय नाम से प्रसिद्ध हुआ। पिता की आज्ञा से वह प्रतिदिन प्रातःकाल उसी घोड़े पर बैठकर ब्राह्मणों की रक्षा के लिए निकल जाया करता था। एक दिन वह इसी संदर्भ में एक आश्रम के निकट पहुंचा। वहां पातालकेतु का भाई तालकेतु ब्राह्मण-वेश में रह रहा था। भाई के द्वेष को स्मरण करके उसने यज्ञ में स्वर्णार्पण के निमित्त राजकुमार से उसका स्वर्णहार मांग लिया। तदनंतर उसे अपने लौटने तक आश्रम की रक्षा का भार सौंपकर उसने जल में डुबकी लगायी। जल के भीतर से ही वह राजकुमार के नगर में पहुंच गया। वहां उसने दैत्यों से युद्ध और राजकुमार की मृत्यु की झूठी खबर की पुष्टि हार दिखाकर की। ब्राह्मणों ने उनका अग्नि-संस्कार कर दिया। मदालसा ने भी अपने प्राण त्याग दिये। तालकेतु पुनः जल से निकलकर राजकुमार के पास पहुंचा और धन्यवाद कर उसने राजकुमार को विदा किया। घर आने पर ऋतुध्वज को समस्त समाचार विदित हुए, अतः मदालसा के चिरविरह से आतप्त वह शोकाकुल है। वह हम लोगों के साथ थोड़ा मन बहला लेता है।" पुत्रों की बात सुनकर उनके मित्र का हित करने की इच्छा से नागराज ने तपस्या से सरस्वती को प्रसन्न कर अपने तथा अपने भाई कंबल के लिए संगीतशास्त्र की निपुणता का वर प्राप्त किया। तदनंतर शिव को तपस्या से प्रसन्न करअपने फन से मदालसा के पुनर्जन्म का वर प्राप्त किया। अश्वतर के मध्य फन से मदालसा का जन्म हुआ। नागराज ने उसे गुप्त रूप से अपने रनिवास में छुपाकर रख दिया। तदनंतर अपने दोनों पुत्रों से ऋतुध्वज को आमंत्रित करवाया। ऋतुध्वज ने देखा कि दोनों ब्राह्मणवेशी मित्रों ने पाताललोक पहुंचकर अपना छद्मवेश त्याग दिया। उनका नागरूप तथा नागलोक का आकर्षक रूप देख वह अत्यंत चकित हुआ। आतिथ्योपरांत नागराज से उससे मनवांछित वस्तु मांगने के लिए कहा। ऋतुध्वज मौन रहा। नागराज ने मदालसा उसे समर्पित कर दी। उसने अत्यंत आभार तथा प्रसन्नता के साथ अश्वतर को प्रणाम किया तथा अपने घोड़े कुवलय का आवाहन कर वह मदालसा सहित अपने माता-पिता के पास पहुंचा। पिता की मृत्यु के उपरांत उसका राज्याभिषेक हुआ। मदालसा से उसे चार पुत्र प्राप्त हुए। पहले तीन पुत्रों के नाम क्रमशः विक्रांत, सुबाहु तथा अरिमर्दन रखा गया। मदालसा प्रत्येक बालक के नामकरण पर हंसती थी। राजा ने कारण पूछा तो वह बोली कि नामानुरूप गुण बालक में होने आवश्यक नहीं हैं। नाम तो मात्र चिह्न है। आत्मा का नाम भला कैसे रखा जा सकता है! चौथे बालक का नाम मदालसा ने 'अलर्क' रखा। मदालसा के अनुसार हर नाम उतना ही निरर्थक है जितना 'अलर्क'। उसके पहले तीनों बेटे विरक्तप्राय थे। राजा ने मदालसा से कहा कि इस प्रकार तो उसकी वंश-परंपरा ही नष्ट हो जायेगी। चौथे बालक को प्रवृत्ति मार्ग का उपदेश देना चाहिए। मदालसा ने अलर्क को धर्म, राजनीति, व्यवहार आदि अनेक क्षेत्रों की शिक्षा दी।

मा० पु०, १८-३२

मधु रावण के नाना सुमाली के बड़े भाई का नाम माल्यवान् था। माल्यवान् की पुत्री का नाम अनला और अनला की पुत्री का नाम कुंभीनसी था। एक बार मधु राक्षस कुंभीनसी को बलपूर्वक उठाकर ले गया। रावण उसे मारने तथा अपनी मौसेरी बहन कुंभीनसी को लेने गया। मधु सो रहा था। कुंभीनसी की प्रार्थना पर रावण ने उसे क्षमा कर दिया।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग २५,
श्लोक २१-५०,

मधु-कैटभ एकार्णव होने से तीनों भुवन लीन हो गये थे। विष्णु शेषशैया पर शयन कर रहे थे, तब उनके कान की मैल से मधु तथा कैटभ का जन्म हुआ। उन्होंने अपनी तपस्या से देवी को प्रसन्न करके स्वेच्छानुसार मृत्यु प्राप्त करने का वर प्राप्त किया। वे निर्भयता से जल में घूमते हुए ब्रह्मा के पास पहुंचे। उन्होंने ब्रह्मा को युद्ध के लिए ललकारा, अन्यथा 'कमल' का परित्याग करने को कहा। विष्णु को सोता देख ब्रह्मा ने योग-माया (महेश्वरी) की अर्चना की कि वे ब्रह्मा की रक्षा करें अथवा विष्णु को जगा दें। महामाया विष्णु को जागृत रूप में पहुंचाकर स्वयं आकाश में चली गयी। मधु-कैटभ को युद्ध में अत्यंत शक्तिमंत देखकर विष्णु ने महामाया का स्मरण किया। देवी

ने कामिनी रूप में प्रकट होकर मधु-कैटभ को कामग्रस्त कर दिया। वे युद्ध की ओर से शिथिल हो गये। विष्णु ने दोनों के युद्ध से प्रसन्न होकर उन्हें वर देने की इच्छा प्रकट की। मद के वशीभूत उन दोनों ने विष्णु को वर मांगने के लिए कहा। विष्णु ने कहा कि वे उनके लिए 'वध्य, हो जायें। मधु-कैटभ ने वर मांगा कि उनका वध सूखे स्थल पर किया जाये। वे अपना शरीर बढ़ाने लगे, विष्णु ने अपनी जंघा को बहुत विस्तृत रूप देकर उस-पर दोनों को स्थापित कर चक्र से मार डाला। तभी से पृथ्वी मेदिनी कहलाने लगी क्योंकि उन दोनों का मेद सब ओर फैल गया।

दे० भा०, स्कंध १, अ० ६-६।-
दे० भा०, स्कंध १०, अध्याय ११।-

शालिग्राम नामक गांव में नंदिवर्धन मुनि का दर्शन करने नर-नारी जा रहे थे। वहां सोमदेव नामक ब्राह्मण के अग्निभूति और वायुभूति नामक दो पुत्र थे। उन दोनों ने मुनि से कुतर्क प्रारंभ किया। मुनि ने कहा—"पंडित हो तो पूर्वभव के विषय में बताओ।" उनके मौन रहने पर मुनि ने बताया कि पूर्वभव में वे मांसाहारी सियार थे। इस बात से रुष्ट होकर वे रात के समय श्मशान में समाधि लगाये मुनि को मारने के लिए पहुंचे। यक्ष ने उन्हें स्तंभित कर दिया। प्रातःकाल सब लोग मुनि को प्रणाम करने पहुंचे, तो उनमें उन ब्राह्मण-पुत्रों के माता-पिता भी थे। उनके अनुनय-विनय करने से दोनों पुत्र पूर्ववत होकर जिन मुनि की शरण में पहुंचे। धर्म का निर्वाह करते हुए वे निरंतर दो भवों तक नियमपूर्वक जीवन व्यतीत करके तीसरे भव में मधु और कैटभ नाम के राजाओं के रूप में प्रसिद्ध हुए। मधु राजा वीरसेन की पत्नी चंद्राभा पर आसक्त हो गया। राजा ने उसे अपनी पटरानी बना लिया। तदनंतर कभी घर आने में बहुत देर होने पर चंद्राभा ने कारण पूछा तो उसने बताया कि किसी पुरुष को परस्त्री सेवन के कारण दंड देने में देर हो गयी। चंद्राभा ने कहा—"यथा राजा तथा प्रजा। तुम परस्त्री सेवन में किसी को कैसे दोषी बता सकते हो?" राजा मधु को आत्मग्लानि और विरक्ति हुई। उसने कैटभ सहित प्रव्रज्या ग्रहण की।

पउ० च०, १०५।-

राजा शर्याती दिग्विजय के निमित्त प्रस्थान करते हुए मधुच्छंदा नामक पुरोहित को साथ ले गया दिग्विजय के उपरांत लौटते हुए मधुच्छंदा की उदासीनता का कारण पत्नी-विरह जानकर उसे हास्यास्पद लगा। राजा ने उसकी पत्नी के प्रेम की परीक्षा के निमित्त यह समाचार भेजा कि राजा और पुरोहित मारे गये हैं। पंडितानी ने तुरंत प्राण त्याग दिये। राजा ने जाना तो बहुत दुखी हुआ। उसने अग्नि में प्रवेश किया तथा अपनी शेष आयु पुरोहित-पत्नी को प्रदान कर दी। मधुच्छंदा ने वस्तुस्थिति जानी तो सूर्योपासना से दोनों को पूर्ववत् प्राप्त किया।

ब्र० पु०, १३८।-

मनसादेवी मानवगण नागों से त्रस्त होकर कश्यप की शरण में गये। ब्रह्मा सहित कश्यप ने वैदिक विषहर मंत्रों की रचना की। उन मंत्रों की अधिष्ठात्री देवी को कश्यप ने मन से उत्पन्न किया, अतः वह मनसादेवी कहलायी। उसने आराधना से शिव को प्रसन्न किया। शिव ने उसे कल्पतरु नामक कृष्ण मंत्र, कवच इत्यादि वस्तुएं दी तथा आज्ञा दी कि वह पुष्कर तीर्थ में जाकर तप करे। कृष्ण से प्रसन्न होकर उसकी स्वयं पूजा की तथा दूसरों से करवायी। कश्यप ने पूजा करने के उप-रांत उसे जरत्कारु को भार्या-रूप में प्रदान किया। एक बार जरत्कारु उसकी जंघा पर सिर रखकर सो रहे थे। संध्या होने पर संध्योपासना का नियम न भंग हो जाये, इस भय से मनसा ने पति को जगा दिया। जरत्कारु ने रुष्ट होकर कहा कि ऐसी पत्नी चांडाली होती है, साथ ही सूर्य को भी शाप दिया। सूर्य ने तो ब्राह्मण को प्रसन्न कर लिया किंतु जरत्कारु ने पत्नी का परित्याग करने की घोषणा की। मनसा के स्मरण करने पर शिव, ब्रह्मा तथा कश्यप ने दर्शन देकर जरत्कारु से कहा कि पुत्र दिये बिना त्याग उचित नहीं है। जरत्कारु ने उसके गर्भ-वती होने पर उसका त्याग कर दिया। वह शिव की शरण में रहने लगी। वहीं उसने आस्तीक नामक मंगल-दायक पुत्र को जन्म दिया। कुछ समय उपरांत वह अपने पिता कश्यप के आश्रम में चली गयी और चिरकाल तक वहीं रही। शापित परीक्षित को तक्षक ने डंस लिया था। जनमेजय के सर्पसत्र यज्ञ से भयभीय होकर तक्षक इंद्र की शरण में गया। ब्राह्मणों ने इंद्र सहित तक्षक को नष्ट करने का निश्चय किया, यह जानकर इंद्र ने मनसा की आराधना से ही आत्मरक्षा की थी। मनसा बारह नामों से प्रसिद्ध जगद्गौरी, मनसा, सिद्ध

योगिनी, वैष्णवी, नागभगिनी, सैवी, नागेश्वरी, जरत्कारु प्रिया, आस्तीक माता, विषहारी तथा महाज्ञानवती।

दे० भा०, ६।४८

मनु स्यंदिका नदी पार करने के बाद राम ने सीता को कोसल देश की दक्षिणी सीमा दिखायी और कहा—"यह प्रदेश मनु ने इक्ष्वाकु को दिया था।"

बा० रा०, अयोध्या कांड, सर्ग ४६, श्लोक, १२, १३

मनु (स्वायंभुव) आपव नामक प्रजापति के धर्म से अयोनिज कन्या शतरूपा का जन्म हुआ। आपव (जो कि बाद में स्वायंभुव मनु कहलाये) ने प्रजा की रचना करने के उपरांत शतरूपा को अपनी पत्नी बना लिया। उसके पुत्र का नाम वीर हुआ। वीर ने प्रजापति कर्दम की कन्या काम्या से विवाह किया तथा दो पुत्रों को जन्म दिया—(१) प्रियव्रत तथा (२) उत्तानपाद। मनु की विस्तृत संतति में ही ध्रुव, वेन इत्यादि हुए। वेन से मुनिगण बहुत रुष्ट थे क्योंकि वह अनाचारी था। मुनियों ने उसके दाहिने हाथ का मंथन किया, जिससे राजा पृथु का जन्म हुआ। वे राजसूय यज्ञ करनेवाले राजाओं में सर्वप्रथम था। प्रजाओं को जीविका देने की इच्छा से उसने पृथ्वी से अन्न तथा दूध का दोहन आरंभ किया। उसके साथ-साथ राक्षस, पितर, देवता, अप्सरा, नाग इत्यादि सब इस कर्म में लग गये। कालांतर में उसके दो पुत्र हुए—अंतर्धान तथा पातिन। अंतर्धान से शिखंडिनी ने हविर्धान को जन्म दिया। अग्नि की पुत्री धिषणा से हविर्धान ने छह पुत्रों को जन्म दिया—प्राचीनवर्हिस्, शुक्र, गय, कृष्ण, व्रज और अजिन। प्राचीनवर्हिस् ने घोर तप करके समुद्र-कन्या सवर्णा से विवाह किया। उसके दस पुत्र हुए जो एक ही धर्म का पालन करते थे। वे प्रचेता नाम से विख्यात हुए।

ब्र० पु०, २।१-३३

ब्रह्मा चिंतातुर थे। "संभवतः देव ही नहीं चाहता कि सृष्टि का विस्तार हो, अन्यथा इतने प्रयत्न के उपरांत भी मैं सृष्टि का विस्तार नहीं कर पा रहा हूं।" उनके ऐसा सोचते ही उनका शरीर दो भागों में विभक्त हो गया। उनका शरीर 'क' कहलाता है। अतः दोनों भाग काय (शरीर) कहलाये। उनमें से एक मनु (पुरुष) था, दूसरी शतरूपा (स्त्री) थी। स्वायंभुव मनु ने शतरूपा से पांच संतान प्राप्त कीं: दो पुत्र—प्रियव्रत, उत्तानपाद तथा तीन कन्याएं—आकूति, देवहूति तथा प्रसूति। मनु ने ब्रह्मा से पूछा कि वह प्रजा के निवास के लिए कौन-सा स्थान ठीक समझते हैं? ब्रह्मा ने चिंतन आरंभ किया, अतः जल में डूबी हुई पृथ्वी को जल के ऊपर लाने का कार्य विष्णु (वाराह) ने किया।

श्रीमद् भा०, तृतीय स्कंध, १२।५२-५६।१३।-

मन्यु देवासुर संग्राम में देवताओं के पराजित होने पर शिव ने अपने तेज से मन्यु को निर्माण करके उसे देवताओं का अग्रणी बना दिया। तदनंतर देवता संग्राम में विजयी हो गये।

ब्र० पु०, १६२।-

मय प्राचीनकाल में मय नामक एक दानव था। उसने हजार वर्ष तक तपस्या करके सोने का उत्तम भवन बनाया था। उसने ब्रह्मा से वर प्राप्त कर शुक्राचार्य का सपूर्ण धन प्राप्त कर लिया था। एक बार वह हेमा नामक अप्सरा पर आसक्त हो गया। अतः रुष्ट होकर इंद्र ने उसे अपने वज्र से मार डाला। ब्रह्मा ने उसका समस्त उत्तम भवन हेमा को दे दिया। हेमा नृत्य और संगीत में निपुण थी। उसने रक्षार्थ अपनी समस्त संपत्ति अपनी सखी स्वयंप्रभा (मेरुसावर्णी की कन्या) को सौंप दी। दक्षिण प्रदेश स्थित उत्तम भवन की संरक्षिका स्वयंप्रभा ने हनुमान आदि वानरों को आश्रय दिया था, जब वे सीता को ढूंढ़ते-ढूंढ़ते थक गये थे। यद्यपि उसके रक्षित स्थान पर आया कोई व्यक्ति जीवित लौट नहीं सकता था तथापि शरण में आये इन वानरों को उसने न केवल छोड़ ही दिया था अपितु उनका मार्ग-निर्देशन भी किया था।

बा० रा०, किष्किंधा कांड, सर्ग ५२ श्लोक ८-१८
सर्ग ५४।१-१२।-

मयासुर नमुचि का भाई था। वह दानवेंद्र शिल्पियों में श्रेष्ठ था। उसका अधिवास खांडववन में था। जिस समय वन को जलाया जा रहा था, मयासुर अग्नि तथा कृष्ण के चक्र के मध्य में फंस गया था, अतः वह अर्जुन की शरण में चला गया। अर्जुन के अभयदान देने के कारण कृष्ण तथा अग्नि ने उसे छोड़ दिया। अर्जुन का आभार प्रदर्शन करते हुए मयासुर ने पांडवों के लिए एक अद्‌भुत सभाभवन का निर्माण किया था। वह मैनाक पर्वत से अपना ही पूर्वनिर्मित मणिमय भांड ले आया था। उसने राजा वृषपर्वा की गदा भीमसेन को अर्पित की। वह गदा अकेली ही लाख गदाओं के बराबर थी। उसका

वहन वृषपर्वा के बाद भीम ही कर सकते थे। मयासुर ने अर्जुन को भेंटस्वरूप देवदत्त नामक वरुणदेव का शंख भी दिया था, जिसका स्वर प्राणिमात्र को कंपा देता था।

म० भा०, आदिपर्व, २२७।३६ से ४५ तक
सभापर्व, ३।-, हरि वं० पु०, भविष्यपर्व,५५।२५।५२।-

मय नमुचि का भाई था। एक बार नमुचि रणक्षेत्र से भागते हुए इंद्र का पीछा करने लगा। इंद्र ऐरावत से उतरकर समुद्र की फेन में जा घुसा। फेन से ही उसने नमुचि पर प्रहार किया। नमुचि मारा गया। मय ने भाई के हत्यारों को नष्ट करने के लिए तपस्या की। इंद्र को वायु से यह ज्ञात हुआ तो वह ब्राह्मणवेश में उसके पास पहुंचा। उसने मैत्री की भिक्षा मांगी, अत: वचनबद्ध मय की इंद्र से मित्रता हो गयी। मय ने प्रेमपूर्वक अपनी माया-विद्या इंद्र को दे दी।

ब्र० पु०, १२४।३२-५०

मय दानव निर्मित महल मयदानव ने पांडवों के लिए एक महल की रचना की थी जिसमें स्थल के स्थान पर जल और जल के स्थान पर स्थल का भ्रम हो जाता था। दुर्योधन पांडवों के महल में आया तो स्थल को जल समझकर अपने कपड़े संभालता रहा और जल को स्थल समझकर गिर पड़ा। उसे गिरता देख पांडव और रानियां जोर-जोर से हंसने लगे। कृष्ण भी आनंद लेते रहे, पर युधिष्ठिर को अच्छा नहीं लग रहा था। दुर्योधन लज्जा और क्षोभ से तिलमिला उठा तथा राजभवन से निकल-कर हस्तिनापुर चला गया।

श्रीमद् भा०, १०।७५

मरुत (क) मरुत वीर योद्धा हैं। वे ऐश्वर्यसंपन्न तथा शत्रुओं का रक्षण करनेवाले हैं। विभिन्न शस्त्रों से सुसज्जित मरुतों ने अपने बल से वायु और विद्युत को प्रकट किया। मरुत रुद्र के आत्मज हैं। उनका निवास-स्थान द्युलोक है। मरुतगण अपने पराक्रम से भूमि स्थित जल को आकाश की ओर ले जाते हैं तथा मेघ को वक्रता प्रदान करते हैं। संग्रामभूमि में मरुत जब इंद्र की सहा-यता के लिए पहुंचे, तब उन्होंने यज्ञ के योग्य नाम धारण किये।

एक बार इंद्र तथा मरुद्गणों में विवाद उत्पन्न हुआ। इंद्र आत्मश्लाघा से ग्रस्त निरंतर अपने पराक्रम और यश की बातें कर रहे थे। मरुतों के बार-बार कहने पर भी कि वे सदैव इंद्र के सहायक रहे हैं, इंद्र उनका परिहास करते जा रहे थे। मरुतों ने जब विनीत भाव से इंद्र का यशोगान किया, तब इंद्र थोड़े सहज हो गये किंतु अपनी तुलना में मरुद्गणों की हीनता का आख्यान करने से नहीं रुके। तपस्वी अगस्त्य ने तप की सहायता से इंद्र और मरुतों का विवाद जान लिया। उन्होंने प्रकट होकर दोनों की वंदना की। अगस्त्य ने हविष्य का निर्माण किया। उन्होंने इंद्र और मरुतों को समान भाव से हवि प्रस्तुत की। पहले इंद्र क्रुद्ध हुए, किंतु अगस्त्य से सांत्वना प्राप्त करने के उपरांत वह प्रसन्न हो गये। इंद्र और मरुद्गणों का विवाद समाप्त हो गया।

ऋ०, १।६४।३-५, १।६५, १।८७, १।१६५-१७८

इंद्र ने जब वृत्र को मारा तब वृत्र के नाद से भयभीत होकर समस्त देवता इंद्र को छोड़कर भाग गये थे किंतु मरुत ने इंद्र का साथ नहीं छोड़ा था।

ऋ० २।३३।१
ऐ० ब्रा०, १।६, ३।१६, ३।२०

मरुत देवों में वैश्य हैं। एक बार प्रजापति यज्ञ कर रहे थे। मरुतों ने जाकर कहा कि वे यज्ञ से जो प्रजाएं उत्पन्न करेंगे, उन्हें मरुत मार डालेंगे। प्रजापति ने सोचा, कोरा विनाश हो जायेगा, अत: उन्होंने मरुतों के नाम से यज्ञ में भाग निकाल दिया। यह भाग सात कपालों में मरुतों के लिए पुरोडाश है।

श० प० ब्रा०, २।५।१।१२
श० प० ब्रा०, २।५।२।२४

प्रजापति का रेतस् जब गिरा तो देवों ने उसके चारों ओर वैश्वानर अग्नि जला दी तथा मरुतगण पंखा झलने लगे। रेतस् शुष्क नहीं हुआ, वह पिंडाकार होता गया तथा उससे क्रमश: आदित्य, भृगु, (अंगारों से) अंगिरा, बृहस्पति तथा पशु उत्पन्न हुए। मरुत यजमान की संतान का पाप दूर करते हैं।

यजु०, ३।४६
ऐ० ब्रा०, ३।३४
श० प० ब्रा०, ४।३।३।६

बल-वध, शंबर-वध इत्यादि समस्त अवसरों पर मरुतों ने इंद्र की सहायता की थी। वे इंद्र से यज्ञ का मरुत्वत्तीय भाग प्राप्त करना चाहते थे। वृत्र-वध पर इंद्र ने पुन: उनकी सहायता मांगी तो उन्होंने अपने लिए तीन भाग मांगे। वे भाग प्राप्त करके उन्होंने वृत्रवध में इंद्र की सहायता की।

ऐ० ब्रा०, ३।२०
श० प० ब्रा०, ४।३।३।६

शिव और ब्रह्मा से वर-प्राप्ति के उपरांत रावण अपने को अजेय मानने लगा था। वह मारी पृथ्वी की परिक्रमा करने लगा। मार्ग में जो भी वीर व्यक्ति मिलता, उसे वह युद्ध के लिए ललकारता अथवा कहता कि वह अपनी पराजय स्वीकर कर ले। घूमता हुआ वह उशीरबीज स्थान पर पहुंचा। वहां मरुत देवताओं सहित यज्ञ कर रहा था। रावण को देखकर सब देवता भयभीत हो गये तथा अपना रूप बदलकर बैठ गये। इंद्र—मयूर, धर्मराज—कौआ, कुबेर—गिरगिट और वरुण—हंस बन गये। शेष देवता भी पक्षी बनकर अदृश्य हो गये। रावण कुत्ते का रूप धारण करके वहां पहुंचा। उसका परिचय पाकर पहले तो मरुत क्रुद्ध होकर युद्ध करने के लिए तैयार हो गया किंतु सवर्त्तन नामक महर्षि के यह कहने पर कि वर-प्राप्त रावण अजेय है, युद्ध करने से मरुत का यज्ञ पूर्ण नहीं होगा तथा कुल नष्ट हो जायेगा, मरुत ने युद्ध नहीं किया। रावण उसे हारा हुआ मानकर अत्यंत पुलकित हुआ। उसके चले जाने पर मब देवता पूर्ववत् अपने रूप में आये। जिन जीवों के रूप में वे छिपे थे, उन जातियों को उन्होंने वर भी दिये। इंद्र ने मोर से कहा—"तुम्हें सांप नहीं खा सकेगा। तुम्हारी पूंछ पर हमारे हजारों नेत्र बने रहेंगे। तुम वृष्टिकाल में प्रसन्न होगे तथा तुम्हारी पूंछ अनेक रंगों की होगी।"

धर्मराज ने कौए से कहा—"तुम कभी बीमार नहीं होगे। तुम्हें खिलाए बिना कोई अपने पितरों को संतुष्ट नहीं कर पावेगा।"

वरुण ने हंस को वर दिया—"तुम चंद्रमा के समान उज्ज्वल वर्णवाले, पानी में रहकर सदैव प्रसन्न रहोगे।"

कुबेर ने गिरगिट को सदैव स्वर्ण वर्ण रहने का वर दिया।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग १८,

विष्णु ने इंद्र का पक्ष लेकर कश्यप और दिति के दोनों पुत्रों (हिरण्याक्ष तथा हिरण्यकशिपु) को मार डाला तो कश्यप को प्रसन्न कर दिति ने यह वर मांगा कि उसे इंद्र को मारनेवाला पुत्र प्राप्त हो। कश्यप ने उसे एक वर्ष तक पालन करने के लिए व्रत बताया और कहा कि यदि व्रत का ठीक से निर्वाह हुआ तो इंद्रद्वेषी अथवा इंद्र-प्रिय पुत्र की प्राप्ति होगी। दिति निष्ठापूर्वक व्रत का पालन करती रही। इंद्र ने दिति की इच्छा भांप ली, अत: वह दिति की सेवा करने लगा। एक रात दिति बिना हाथ-मुंह धोये और बिना आचमन किये सो गयी। सुअवसर पाकर इंद्र ने उसके गर्भस्थ शिशु के उनचास टुकड़े कर दिये। उन टुकड़ों ने इंद्र को उसके भाई होने का आश्वासन दिया तो इंद्र ने उन्हें जीवित छोड़ दिया। जागने पर उनचास शिशुओं को देखकर दिति बहुत चकित हुई। इंद्र ने अपनी मासी दिति से भूतपूर्व कृत्यों के लिए क्षमा-याचना की। दिति को उसने बताया कि गर्भ का प्रत्येक टुकड़ा बालक बनता गया—यह देवेच्छा थी। वे बाद में मरुद्गणों के नाम से प्रसिद्ध हुए।

दे० दिति

श्रीमद् भा०, षष्ठ स्कंध, अध्याय १८
वि० पु०, १।२१।-
शि० पु०, ३।३१

युद्ध में अपने दैत्य पुत्रों के मारे जाने पर दिति ने कश्यप को संपूजित करके प्रसन्न किया तथा यह वर मांगा कि उसके गर्भ से इंद्रघातक पुत्र का जन्म हो। कश्यप ने इंद्रहंता पुत्रोत्पत्ति के निमित्त अपने तेज को उसके गर्भ में स्थापित किया तथा स्वयं तपस्या के लिए चले गये। एक रात दिति बिना पैर धोये सोने के लिए चली गयी। इंद्र ने अवसर पाकर उसके गर्भ में स्थित वालक के वज्र से सात टुकड़े कर दिये। वह पीड़ा से रोया तो उसे न रोने का आदेश दिया तथा प्रत्येक टुकड़े के फिर से सात-सात टुकड़े कर दिये। वे उनचास टुकड़े वायु-देवता (मरुत) कहलाये। वे सब इंद्र के सहायक बन गये।

ब्र० पु०, ३।१०६-१२२

दिति ने अपने पुत्रों का नाश और अपनी सौत अदिति के पुत्रों का विकास देखा तो पति (कश्यप) से एक अत्यंत ओजस्वी पुत्र की कामना की। कश्यप ने उसकी तपस्या से संतुष्ट होकर उसे वैसे पुत्र का गर्भ प्रदान किया। इंद्र को अपने मित्र मय (दे० मय) से ज्ञात हुआ तो उसने उसके निवारण का उपाय पूछा। मय ने इंद्र को माया-विद्या देकर कहा कि वह अवसर पाकर दिति के गर्भ में प्रवेश करके गर्भस्थ शिशु को वज्र से काट डाले। इंद्र ने दिति के गर्भ में प्रवेश करके बच्चे पर प्रहार करना चाहा तो वह बोला—"मुझे बाहर निकलने दो, इस प्रकार प्रहार करना पाप है।" इंद्र नहीं माना। उसने वज्र से उसको खंड-खंड कर डाला। बालक मरा नहीं अपितु उनचास बच्चों का रूप धारण करके रोने लगा। इंद्र ने उससे कहा—'मारुत' (मत रो), तभी से वे मरुत कह-

लाये। गर्भस्थ होते हुए ही शिशुओं ने अगस्त्य मुनि से शिकायत की, अतः मुनि ने इंद्र को युद्ध-क्षेत्र में सदैव पीठ दिखाने का शाप दिया। दिति ने स्त्रियों से अपमानित होने का शाप दिया। कश्यप भी वहां पहुंच गये। उन्होंने इंद्र को गर्भ से बाहर निकलकर अपने कुकृत्य का कारण बताने के लिए कहा। उसे धिक्कारा, फिर ब्रह्मा से सलाह करके कश्यप ने सबको गौतमी स्नान तथा शिवाराधना से पाप-मुक्त होने को कहा। शिव ने प्रकट होकर दिति से कहा कि मरुत नामक उसके उनचास पुत्र होंगे, सभी यशस्वी होंगे। वे सब इंद्र से पूर्व यज्ञ भाग प्राप्त करेंगे। गौतमी स्नान का वह स्थल पुत्रतीर्थ कहलाया तथा शिव ने वहां का स्नान पुत्रदायी माना।

ब्र० पु०, १२४।-

(ख) अवीक्षित के पुत्र राजा मरुत जब पृथ्वी का शासन करते थे तब उनके राज्य में बिना जोते-बोए ही अन्न उपजता था। उनके यज्ञ में देवताओं, मनुष्यों और गंधर्वों से बढ़कर दक्षिणाएं दी गयी थीं तथा सोमरस का पान किया गया था। राजा मरुत करंधम के पौत्र तथा अवीक्षित के पुत्र थे। राजा करंधम (सुवर्चा) के युग में राज्य धन की दृष्टि से अत्यंत जर्जरित हो चुका था। अवीक्षित ने उसकी स्थिति संभाली थी कि मरुत ने उसका इतना विकास किया कि हिमालय पर्वत के उत्तर भाग में एक यज्ञशाला बनवायी जिसमें सोने के कुंड, बर्तन, चौकी इत्यादि की स्थापना करके अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञ में पर्याप्त व्यय करने के उपरांत भी राजा वहां धन का ढेर छोड़ गये। राजा मरुत को इंद्र से स्पृहा थी। अतः इंद्र की प्रेरणा से बृहस्पति ने यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि वे मनुष्य का कोई यज्ञ नहीं करायेंगे, अतः अपने पूर्व यजमान मरुत का यज्ञ भी उन्होंने नहीं करवाया। कातर भाव से लौटते हुए मरुत को मार्ग में नारद मिल गये। उन्होंने मरुत की निराशा का कारण जाना तो उन्हें वाराणसी जाने के लिए कहा। वहां जाकर वे विश्वनाथ मंदिर के द्वार पर एक मुर्दा रख दें। उस शव को देखकर जो पीछे की ओर मुड़ जाये, वही संवर्त होगा। नारद ने मरुत से इस संवर्त के पीछे-पीछे चलकर उनसे पुरोहित बनने की प्रार्थना करने को कहा। साथ ही यह भी कहा कि पूछने पर 'वे नारद प्रेषित हैं' इस तथ्य से भी अवगत करवा दें। वाराणसी में संवर्त को पहचानकर जब वे उसके पीछे-पीछे चले तो संवर्त ने धूल फेंकने से लेकर उनपर थूकने तक के अनेक अशोभनीय कार्य किये किंतु वे निर्विकार भाव से उससे पुरोहित बनने की प्रार्थना करते रहे। संवर्त तथा बृहस्पति की परस्पर ठनी हुई थी। अतः बृहस्पति को मरुत का विरोधी जानकर संवर्त ने यज्ञ करना स्वीकार कर लिया। पुरोहित की प्रेरणा से मरुत ने शिव की आराधना की तथा कुबेर से देवताओं से भी अधिक धन प्राप्त कर लिया। इंद्र इस सबसे घबरा गये। इंद्र ने पहले अग्नि तथा फिर गंधर्वराज धृतराष्ट्र (ख) को इस संदेश के साथ मरुत के पास भेजा कि वे बृहस्पति को अपना पुरोहित बना लें किंतु राजा मरुत नहीं माने। संवर्त ने अग्नि को पुनः संदेशवाहक के रूप में आने से मना कर दिया। इंद्र ने मरुत पर वज्र से प्रहार करने का निश्चय किया किंतु संवर्त ने उन्हें स्तंभित कर दिया। तदनंतर संवर्त के आवाहन पर इंद्र सहित समस्त देवताओं ने मरुत के यज्ञ में भाग लिया। अपरिमित धनराशि का दान करने के उपरांत भी जो बची, उसे राजा ने पुरोहित की सलाह से एक कोष-स्थान बनाकर उसमें जमा करवा दिया और अपनी राजधानी के लिए प्रस्थान किया।

म० भा०, शांतिपर्व, २६।१६-२३
अश्वमेधपर्व, ४।१७,२८, **अश्वमेधपर्व**, ५-१०।-

करंधम के उपरांत उसके पौत्र मरुत ने राज्य ग्रहण किया। करंधम अपनी पत्नी वीरा के साथ वन चले गये। मरुत बहुत पराक्रमी सत्यप्रिय राजा था। उसने अनेकों यज्ञ किये थे। एक बार उसकी पितामही ने उसके पास यह संदेश भेजा—"मरुत, तुम्हारा चरों का नियोजन व्यर्थ है, क्योंकि तुम्हें अपने राज्य का सुख-दुःख मालूम नहीं पड़ा। तुम्हारे पितामह नहीं रहे हैं। मैं और्व आश्रम में हूं। यहां नागों ने उपद्रव उत्पन्न कर रखा है। उन्होंने दस तपस्वियों का दंशन किया तथा जल भी दूषित कर दिया है।" मरुत समाचार पाकर तुरंत पितामही के पास पहुंचा। वहां वह दोषदर्शन करता रहा। तदनंतर अत्यंत क्रुद्ध होकर उसने नागों पर आक्रमण कर दिया। नाग त्रस्त होकर उसकी मां की शरण में गये। वैशालिनी ने अवीक्षित को भरत का क्रोध शांत करने के लिए प्रेरित किया। अवीक्षित शरणागतों के निमित्त युद्धक्षेत्र में शांति स्थापित करने का प्रयत्न करता रहा। मरुत के न मानने पर उसने अपने पुत्र पर छोड़ने के लिए कालास्त्र उठाया। मरुत ने कहा—

"राजा का धर्म प्रजापालन है, आप उसमें बाधा उत्पन्न कर रहे हैं।" पिता-पुत्र दोनों परस्पर जूझ रहे थे, तभी भार्गव आदि मुनियों ने प्रकट होकर दोनों को समझाया कि नाग दसों मृत तपस्वियों को जीवित करने के लिए तैयार हैं, अत: वे युद्ध समाप्त कर दें। वीरा ने भी वहां पहुंचकर अपनी सहमति प्रकट की। तदनंतर पिता ने पुत्र को गले से लगा लिया।

मा० पु०, १२५-१२६।

मलकक्ष मनु के दस पुत्रों में से सबसे बड़े का नाम इक्ष्वाकु था। इक्ष्वाकु के सौ पुत्र हुए जिनमें सबसे बड़ा मलकक्ष था। एक बार श्राद्ध के लिए मांस की आवश्यकता पड़ी। मलकक्ष एक शशा (खरगोश) को मारकर लाया किंतु मार्ग में उसने थोड़ा-सा मांस खा लिया था। इससे रुष्ट होकर इक्ष्वाकु शासन छोड़कर चला गया। वसिष्ठ ने मलकक्ष को उत्तम ज्ञान प्रदान करके राजा बनाया। वह शशाद नाम से विख्यात हुआ।

शि० पु०, ११।२०

मलद इंद्र ने जब वृत्रासुर को मारा तो वे मलाच्छन्न हो गये। उनके शरीर में ब्रह्महत्या का समावेश हो गया। जब देवताओं और तपोधन ऋषियों ने उन्हें मलिन देखा तब उन्होंने इसी स्थान पर कलश में पानी भर-भरकर इंद्र का मल छुड़ाया। स्वच्छ होकर इंद्र ने अत्यंत प्रसन्नतापूर्वक उस स्थान को प्रसिद्धि का वरदान दिया, अत: वे दोनों प्रदेश बहुत समय तक देवताओं के लिए पूज्य बने रहे। उन दोनों प्रदेशों का नाम मलद और करूष रख दिया गया। कुछ समय बाद सुंद दैत्य की भार्या, यक्षिणी ताड़का, पुत्र मारीच सहित उनके निकट ही रहने लगी। उसमें अनेक हाथियों के बराबर बल था। उस परिवार के त्रास से वे नगर पुन: उजड़ गये।

बा० रा०, बाल कांड, सर्ग २४, श्लोक १७-३२

महाकात्यायन महाकात्यायन वेदज्ञ पुरोहित थे। उनसे राजा चंडप्रद्योत ने कहा कि वे राज्य में भगवान को ला दें। वे सात अन्य व्यक्तियों के साथ बुद्ध की शरण में गये। उन्होंने प्रव्रज्या ग्रहण की। राज्य में चलने का आग्रह करने पर भगवान ने उन्हें ही राजा के पास जाने को कहा और बताया कि राजा उनके जाने से भी प्रसन्न होगा। वे आठों प्रव्रजित भिक्षु मार्ग में तेलप्पनाली नामक स्थान पर रुके। वे भिक्षाटन करने लगे। उस स्थान पर दो सेठ कन्याएं थीं। एक बहुत लंबे बालोंवाली सुंदरी थी, जिसके माता-पिता का स्वर्गवास हो चुका था। आर्थिक संकट झेलते हुए भी धाय उसका पालन कर रही थी। दूसरी बहुत कम बालोंवाली धनवान सेठ की कन्या थी जो अनेक बार दरिद्र सेठ-पुत्री को धन लेकर अपने बाल देने के लिए कह चुकी थी। उस निर्धन कन्या ने आठों प्रव्रजित भिक्षुओं को आमंत्रित करके अपने बाल काटकर सेठ-पुत्री के पास भेजे, किंतु बालों को कटा जानकर उसने आठ ही मुद्राएं दीं—शेष धनराशि देने से इंकार कर दिया। निर्धन कन्या ने एक-एक मुद्रा से एक-एक भिक्षुक के लिए भोज्य-सामग्री जुटायी। भोजन करने से पूर्व उन्होंने कन्या को देखने की इच्छा प्रकट की। उन्हें प्रणाम करते ही कन्या की केशराशि पूर्ववत् हो गयी। वे आठों परिव्राजक आकाश में उड़कर राजा चंडप्रद्योत के यहां पहुंचे। राजा ने उनका आतिथ्य किया तथा मार्ग का वृत्तांत सुनकर निर्धन सेठ-कन्या को अपनी पटरानी बना लिया। कालांतर में उसने गोपालकुमार नामक पुत्र को जन्म दिया। अत: वह 'गोपालमाता' नाम से विख्यात हुई।

बु० च०, १।१०

महाकाश्यप मगधदेशीय कपिल ब्राह्मण की प्रधान भार्या का पिप्ली नामक पुत्र था। वह बड़ा होकर प्रव्रजित होना चाहता था, किंतु उसकी मां उसके विवाह के लिए उत्सुक थी। उसने (पुत्र ने) सोने की एक सुंदर प्रतिमा बनवायी। उसे लाल साड़ी से सुसज्जित करके मां से कहा कि वह वैसी कन्या से विवाह करेगा। मां ने आठ ब्राह्मणों को वैसी कन्या ढूंढ़ने के लिए कहा और विवाह पक्का करने के निमित्त उस प्रतिमा को वधू के घर छोड़ आने को कहा। उसी प्रकार के रूप की कोई कन्या मिल सकती है, पिप्ली ने सोचा भी नहीं था, किंतु ब्राह्मणों ने कौशिक ब्राह्मण की वैसी ही रूपवती कन्या ढूंढ़ निकाली। इच्छा न होने पर भी पिप्ली को उससे विवाह करना पड़ा, किंतु वह ब्रह्मचर्य का पालन करता रहा। माता-पिता के स्वर्गवास के उपरांत उन दोनों (दंपति) ने अपना समस्त धन-वैभव छोड़कर प्रव्रज्या ग्रहण की तथा अलग-अलग मार्ग पर चल दिये।

बु० च०, १।६

महादेव महादेव कल्याणकारी होने के कारण शिव कहलाते हैं तथा रु (दु:ख) का नाश करने के कारण रुद्र नाम से अभिहित हैं। वे प्रसन्न भी शीघ्र होते हैं और रुष्ट भी। एक बार शिव दक्ष पर कुपित हो गये थे। उन्होंने

विधि-विधान से किये जानेवाले यज्ञ को तथा प्रकृति के समस्त मूल तत्त्वों को नष्ट कर डाला। पूषा (सूर्य, बारह आदित्यों में से एक) पर आक्रमण किया। वह पुरोडाश (यव, तंडुल) खा रहा था। शिव ने उसके समस्त दांत तोड़ डाले। देवताओं आदि ने भयभीत होकर शिव की शरण ग्रहण की, तब यज्ञ पूर्ण हो पाया।

पूर्वकाल में तीन असुरों ने आकाश में तीन नगरों का निर्माण किया : एक, लोहे का—विद्युन्माली के अधिकार में, दूसरा, चांदी का—तारकाक्ष के अधिकार में तथा तीसरा, सोने का—कमलाक्ष के अधिकार में था। इंद्र अनेक प्रयत्नों के उपरांत भी उनपर विजय प्राप्त न कर पाया, तो उसने शिव की शरण ग्रहण की। शिव ने गंधमादन और विंध्याचल को रथ की पार्श्ववर्ती दो ध्वजाओं के रूप में ग्रहण किया। पृथ्वी को रथ, शेष को रथ का धुरा, चंद्र-सूर्य को पहिये, एलपत्र के पुत्र और पुष्पदंत को जुए की कीलें बनाया, मलयाचल को यूप, तक्षक को जुआ बांधने की रस्सी, वेदों को घोड़े तथा उपवेदों को लगाम और गायत्री तथा सावित्री को प्रग्रह बना लिया। तदुपरांत ओंकार को चाबुक, ब्रह्मा को सारथी, मंदराचल को गांडीव, वासुकि नाग को प्रत्यंचा, विष्णु को उत्तम बाण, अग्नि को बाण का फल, वायु को उसके पंख तथा वैवस्वत यम को उसकी पूंछ बनाकर मेरुपर्वत को प्रधान ध्वजा का स्थान दिया। इस प्रकार घमासान युद्ध के लिए कटिबद्ध हो शिव ने त्रिपुर पर आक्रमण कर उन्हें विदीर्ण कर डाला। उसी समय पार्वती एक पांच शिखावाले बालक को गोद में लेकर देवताओं के सम्मुख आयीं और पूछने लगीं कि क्या वे लोग उस बालक को पहचानते हैं? इंद्र ने बालक पर वज्र से प्रहार करना चाहा, पर हंसकर शिव ने उनकी भुजा स्तंभित कर दी। इंद्र सहित समस्त देवता ब्रह्मा के पास पहुंचे। ब्रह्मा ने बताया कि पार्वती को प्रसन्न करने के निमित्त बालरूप में शिव ही थे। वे एक होकर भी अनेक रूपधारी हैं। उनकी आराधना करने से इंद्र की बांह पूर्ववत् ठीक हो पायी। शिव का व्यक्तित्व विशाल है, अनेक आयामों से देखकर उनके अनेक नाम रखे गये हैं :

(१) महेश्वर—महाभूतों के ईश्वर होने के कारण तथा संपूर्ण लोकों की महिमा से युक्त।
(२) बडवामुख—समुद्र में स्थित मुख जलमय हविष्य का पान करता है।
(३) अनंत रुद्र—यजुर्वेद में शतरुद्रिय नामक स्तुति है।
(४) विभु और प्रभु—विश्व व्यापक होने के कारण।
(५) पशुपति—सर्वपशुओं का पालन करने के कारण।
(६) बहुरूप—अनेक रूप होने के कारण।
(७) सर्वविश्वरूप—सब लोकों में समाविष्ट हैं।
(८) धूर्जटि—धूम्रवर्ण हैं।
(९) त्र्यंबक—आकाश, जल, पृथ्वी तीनों अंबास्वरूपा देवियों को अपनाते हैं।
(१०) शिव—कल्याणकारी, समृद्धि देनेवाले हैं।
(११) महादेव—महान् विश्व का पालन करते हैं।
(१२) स्थाणु—लिंगमय शरीर सदैव स्थिर रहता है।
(१३) व्योमकेश—सूर्य-चंद्रमा की किरणें जो कि आकाश में प्रकाशित होती हैं, उनके केश माने गये हैं।
(१४) भूतभव्यभवोद्भव—तीनों कालों में जगत् का विस्तार करनेवाले हैं।
(१५) वृषाकपि—कपि अर्थात् श्रेष्ठ, वृष धर्म का नाम है।
(१६) हर—सब देवताओं को काबू में करके उनका ऐश्वर्य हरनेवाले।
(१७) त्रिनेत्र—अपने ललाट पर बलपूर्वक तीसरा नेत्र उत्पन्न किया था।
(१८) रुद्र—रौद्र भाव के कारण।
(१९) (अ) सोम—जंघा से ऊपर का भाग सोममय है। वह देवताओं के काम आता है।
(ब) अग्नि—जंघा के नीचे का भाग अग्निवत् है। मनुष्य-लोक में अग्नि अथवा 'घोर' शरीर का उपयोग होता है।
(२०) श्रीकंठ—शिव की श्री प्राप्त करने की इच्छा से इंद्र ने वज्र का प्रहार किया था। वज्र शिव के कंठ को दग्ध कर गया था, अतः वे श्रीकंठ कहलाते हैं।

म० भा०, द्रोणपर्व, २०२।
दानधर्मपर्व, १४१।८

महापरिनिर्वाण भगवान बुद्ध अपने प्रिय शिष्य आनंद के साथ अनेक स्थलों का पर्यटन करते हुए कुसीनारा गये। वहां उनका महापरिनिर्वाण हुआ।

बु० च०, ५।१०

महाभारत (रचना) द्वैपायन ऋषि (व्यास) महाभारत

नामक ग्रंथ की मन-ही-मन रचना करके चिंतित थे कि किस भांति इसका प्रचार तथा प्रसार किया जाये कि एक दिन अचानक ब्रह्मा स्वयं उनके निवासस्थान पर पधारे। उन्होंने व्यास मुनि से कहा कि वे अपना ग्रंथ लिख पाने के लिए गणेश जी का स्मरण करें। स्मरण करते ही गणेश जी वहां आये। उन्होंने महाभारत ग्रंथ को लिपिवद्ध करना स्वीकार किया, किंतु इस शर्त पर कि क्षण भर के लिए भी उनकी लेखनी नहीं रुके। व्यास ने यह मान लिया, साथ ही गणेश जी से वचन लिया कि वे बिना अर्थ समझे एक भी श्लोक नहीं लिखेंगे। जब व्यास जी को कुछ विचारना होता, वे कोई कूट श्लोक बोल देते। जब तक गणेश जी उसका अर्थ समझते, वे अगला श्लोक रच लेते। इस प्रकार महाभारत लिखा गया।

म० भा०, आदिपर्व, १।५७ से ८३ तक

महाभिनिष्क्रमण एक बार सिद्धार्थ बगीचे में घूमने गये। देवताओं ने सोचा कि सिद्धार्थ का बुद्धत्व प्राप्त करने का समय निकट है, अतः उन्होंने एक देव-पुत्र को जर्जरित वृद्ध बनाकर मार्ग में छोड़ दिया। उसे देखकर सिद्धार्थ के मन में प्रश्न उठा कि जो जन्म लेता है, क्या उसके लिए यह जर्जरित अवस्था भुगतनी भी अनिवार्य है? इसी प्रकार देवताओं ने उन्हें कभी मृत व्यक्ति का शव और कभी संन्यासी का रूप दिखलाया। जरा-मरण से त्रस्त जगत् को देखकर संन्यासी की सी विरक्ति ने सिद्धार्थ को आप्लावित कर दिया। अपने पुत्र राहुल के जन्म पर भी आह्लाद के स्थान पर उनके मन में यह भाव जाग्रत् हुआ कि एक बंधन उत्पन्न हो गया। कृशा गौतमी के वचनों ने उनका मन मथ डाला था (दे० कृशा गौतमी)। रात में शैया पर एकांत मन वैराग्य से ओतप्रोत उन्हें महाभिनिष्क्रमण के लिए प्रेरित करता रहा। उन्होंने छंदक को जगाया और घोड़ा तैयार करने के लिए कहा। पत्नी कहीं जाग न जाय, इस आशंका ने उन्होंने पुत्र को भी नहीं उठाया। द्वार से ही दोनों को देख विदा ली। कंथक (घोड़े) पर सवार होकर वे वन की ओर चल दिये। सिद्धार्थ, कंथक और छंदक—तीनों मुख्य द्वार तक पहुंचे। वह बंद रहता था किंतु देवताओं ने उसे खोल दिया। वे बाहर निकल गये। उन्हें लौटाने के लिए आकाश में प्रकट होकर मार ने कहा —"मार्ष (हे देव), तुम लौट जाओ, सातवें दिन तुम्हारा चक्ररत्न (दिग्विजय का आयुध) प्रादुर्भूत होगा।" किंतु निर्वाणाकांक्षी सिद्धार्थ नहीं लौटे। मार ने उनका पीछा किया। सिद्धार्थ ने एक ही रात में तीन राज्यों (शाक्य, कौलीय और रामग्राम) को पार कर लिया। कंथक से अनोमा नदी पार करके उन्होंने छंदक को साग्रह, अपने आभूषणों तथा कंथक सहित घर चले जाने को कहा। उन्होंने अपनी तलवार से ही अपने बाल काट डाले। अपने कटे हुए जूड़े को आकाश की ओर उछालकर उन्होंने कहा—"यदि मैं बुद्ध होऊंगा तो यह आकाश में ही ठहर जाये।" इंद्र ने उसे दिव्य दृष्टि से देखकर स्वर्गलोक (त्रायस्त्रिंश) में चूड़ामणि चैत्य की स्थापना की, अतः वह पृथ्वी पर नहीं गिरा। उनसे विदा लेकर कंथक जीवित नहीं रह पाया। कंथक नामक देवपुत्र के रूप में उसका पुनर्जन्म हुआ। छंदक शोकाकुल स्वराज्य में पहुंच गया।

बु० च०, १।२।, यौवन-गृहत्याग

महाभिष (शांतनु) इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न महाभिष नामक राजा ने एक हजार अश्वमेध तथा सौ राजसूय यज्ञ किये। तदनंतर उन्हें स्वर्ग की प्राप्ति हुई। एक बार वे ब्रह्मा की सेवा में बैठे थे। वहां गंगा आयी। उसका वस्त्र थोड़ा ऊपर उठ गया। देवताओं ने तुरंत मुंह नीचे कर लिया किंतु महाभिष उनकी ओर देखते रहे। ब्रह्मा ने क्रुद्ध होकर महाभिष को शाप दिया कि वे मनुष्य-योनि में जन्म लेकर फिर से पुण्यलोक में आयें तथा गंगा उनके प्रतिकूल आचरण करे। जब वे गंगा पर क्रुद्ध होंगे तभी शाप से भी मुक्त हो जायेंगे। महाभिष ने महातेजस्वी राजा प्रतीप को अपना पिता बनने योग्य चुना।

वरुण के पुत्र का नाम वसिष्ठ अथवा आयव था। वे आश्रम में रहकर तपस्या करते थे। उनके संरक्षण में एक गौ भी अपने बछड़े के साथ रहती थी। वह गऊ दक्ष प्रजापति की कन्या सुरभि तथा कश्यप से उत्पन्न हुई थी। वह समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाली थी। उसका नाम नंदिनी था। एक बार पृथु, वसु तथा समस्त देवतागण अपनी पत्नियों के साथ उस आश्रम के निकट रमण कर रहे थे। द्यौ नामक वसु का ध्यान उस गाय की ओर गया। उसने अपनी पत्नी को बताया कि उस गाय का दूध पीने से मनुष्य जरा से बच जाता है। पत्नी ने उस गाय को अपनी भूनिवासिनी सखी के लिए प्राप्त करना चाहा। उसकी प्रेरणा से द्यौ तथा उसके भाइयों ने गाय का अपहरण कर लिया। वसिष्ठ को जब ज्ञात हुआ तो उन्होंने उन सबको मनुष्य-योनि में जन्म लेने का शाप दे

दिया। वे सब चिंतातुर होकर वसिष्ठ से अनुनय-विनय करने लगे। वसिष्ठ ने उन सबको क्रमशः एक-एक वर्ष के बाद शापमुक्त होने का वरदान दे दिया किंतु कहा कि सबके शाप का मूल कारण द्यौ है। वह दीर्घकाल तक पृथ्वी पर रहेगा, पराक्रमी होगा, पर संतानहीन ही मर जायेगा। वसु देवताओं ने नदियों में श्रेष्ठ गंगा से प्रार्थना की कि वे नारी-रूप धारण करके प्रतीप के पुत्र शांतनु से विवाह कर लें; उन्हें पुत्र-रूप में जन्म दें तथा जन्म होते ही उन्हें अपने जल में फेंक दें जिससे उनका उद्धार हो जाये। गंगा ने स्वीकार कर लिया। गंगा ने कहा—"किंतु ऐसा होने पर पुत्र-प्राप्ति के लिए जो राजा मुझसे संबंध स्थापित करेगा, उसे पुत्र की प्राप्ति कैसे होगी?" वसुगणों ने कहा—"हम सब अपने तेज का एक-एक अष्टमांश देंगे, जिससे उस राजा को इच्छा के अनुसार एक पुत्र प्राप्त हो सके। मर्त्यलोक में उस पुत्र की कोई संतान नही होगी।" राजा प्रतीप हरिद्वार गये। वहां वर्षों तक जप करते रहे। तभी एक दिन गंगा दिव्य नारी का रूप धारण करके उनकी दाहिनी जांघ पर जा बैठी। प्रतीप के पूछने पर उन्होंने बताया कि वह कामवश आयी हैं, किंतु राजा प्रतीप ने उनसे समागम नहीं किया, साथ ही कहा कि दाहिनी जांघ पुत्र, पुत्री अथवा पुत्रवधू का स्थान होती है। प्रतीप ने उसे पुत्रवधू बनाना स्वीकार कर लिया। तपस्या के फलस्वरूप प्रतीप को दिव्य पुत्र की प्राप्ति हुई, जिसका नाम शांतनु रखा गया। वास्तव में शांतनु के रूप में महाभिष का ही जन्म हुआ था। शांतनु का विवाह गंगा से हुआ। गंगा की शर्त थी कि उनका पति कभी उनके कृत्यों के विषय में विवाद नहीं करेगा, जिसे प्रतीप ने स्वीकार कर लिया था। शांतनु के संपर्क से गंगा के आठ पुत्र हुए। पहले सात तो उन्होंने तुरंत गंगाजल में फेंक दिये, किंतु आठवें पुत्र के उपरांत गंगा ने समस्त कथा सुनाकर शांतनु से विदा ली तथा अनुरोध किया कि उस पुत्र का नाम गंगादत्त रखा जाय। गंगा नवजात शिशु को अपने साथ ले गयी और कह गयीं कि बड़े होने पर वह पिता की सेवा में प्रस्तुत हो जायेगा तथा शांतनु के स्मरण करने पर गंगा भी तुरंत उपस्थित होंगी। गंगादत्त अथवा देवव्रत बालक के ही वास्तव में मानव-रूप में द्यौ नामक वसु जन्मा था। बाद में उसी का नाम भीष्म भी पड़ा।

म० भा०, आदिपर्व, ९६, ९७, ९८, ९९
दे० भा०, २।३-५।-

महावीर दक्षिण भारत में कुंडग्राम नामक नगर था। वहां सिद्धार्थ नामक पराक्रमी राजा राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम त्रिशला था। पूर्वजन्म पूर्ण होने पर 'जिन' उसके गर्भ में आये। इस तथ्य से अवगत होने पर देवतागण सिद्धार्थ के नगर में पहुंचे। वे जिन वरेंद्र को लेकर मेरुपर्वत के शिखर पर पहुंचे। उन्होंने जिनवर का अभिषेक किया। बालक ने खेल-खेल में अपने अंगूठे के प्रहार से मेरुपर्वत को हिला दिया, अतः बालक का नाम 'महावीर' रखा गया। तदुपरांत देवताओं ने महावीर को उनकी माता के पास पहुंचा दिया। इंद्रप्रदत्त आहार तथा अमृतमंडित अंगूठा चूसने के कारण बाल-भाव त्यागकर महावीर तीस वर्ष की अवस्था के हो गये। उन्होंने दीक्षा ली तथा कर्मों का क्षय कर केवल ज्ञान प्राप्त किया। शिष्यों के साथ विहार करते हुए वे विपुल नामक पर्वत पर पधारे, जहां उन्होंने उपस्थित देवताओं तथा अन्य लोगों को ज्ञान का उपदेश दिया।

पउ० च०, २।१-४३।-

महिषासुर देवासुर संग्राम में महिषासुर ने रुद्र के रथ का कूबर पकड़ लिया। रुद्र ने स्वयं युद्ध न करके कार्तिकेय का स्मरण किया। कार्तिकेय ने तुरंत वहां पहुंचकर महिषासुर पर शक्ति से प्रहार किया। उसका सिर धड़ से अलग हो गया। उसके अतिरिक्त अनेक अन्य असुरों का संहार कर कार्तिकेय ने विजय प्राप्त की।

म० भा०, वनपर्व, २३१।८६ से ११३ तक

रंभ तथा करंभ नामक दनु के दो पुत्र थे। वे 'दानव युगल-प्रख्यात हैं। पुत्र-कामना से वे दोनों तपस्या करने लगे। करंभ जल में निमग्न होकर तप कर रहा था तथा रंभ रसाल वट वृक्ष के अवलंबन से अग्नि की आराधना में रत था। इंद्र ने जाना तो मगरमच्छ के रूप में पानी में घुसकर करंभ को मार डाला। भाई की मृत्यु के शोक से आकुल रंभ अपने बाल पकड़कर मस्तक-छेदन के लिए उद्यत हुआ। अग्नि ने उसे आत्मघात करने से रोका तथा वर मांगने को कहा। उसने शत्रुविनाशक पुत्र की कामना प्रकट की। अग्नि से वरदान प्राप्त कर उसने एक महिषी से संपर्क स्थापित किया। उसके गर्भवती होने पर वह उसे लेकर पाताल में रहने लगा। एक दिन एक कामासक्त महिष ने उसकी पत्नी पर आक्रमण किया। दैत्य रंभ ने पत्नी की रक्षा करते हुए युद्ध आरंभ किया। उसकी पत्नी भागती हुई वटवृक्ष के समीप यक्षगणों की

शरण में पहुंची। महिष भी उसका पीछा करता हुआ वहां जा पहुंचा। यक्षों से आहत हो रंगभूमि पर गिर गया। रंभ की देह को शोधन के निमित्त अग्नि को समर्पित किया गया। मना करने पर भी महिषी ने भी अग्नि में प्रवेश कर प्राण त्याग दिये। महिषी का बलवान पुत्र उसका गर्भ त्याग अग्नि में प्रकट हुआ। रंभ भी अपने पुत्र के पति वात्सल्य के कारण रूपांतर धारण करके रक्तबीज नाम से प्रकट हुआ। दानवों ने महिष को राज्य पर अभिषिक्त किया। महिषासुर के महिपति होने पर देवासुर संग्राम हुआ। महिष ने सुमेरू पर्वत पर कठोर तपस्या करके ब्रह्मा को प्रसन्न किया तथा उनसे वर प्राप्त किया कि वह नारी से इतर किसी से वध्य नहीं होगा। मदोन्मत्त महिष ने इंद्र के पास दूत भेजा कि वह स्वर्ग छोड़कर अन्यत्र चला जाय अथवा महिष का सेवक बने। इंद्र ने युद्ध की चुनौती दी। महिषासुर देवताओं तथा पुरुषों से अवध्य था, अतः उसने सहर्ष चुनौती स्वीकार की। देवताओं ने युद्ध में महिष के सेनापति चिक्षुर तथा विडाल को घायल कर दिया किंतु महिष ने करोड़ों रूप धारण करके देवताओं को पराजित कर दिया। विष्णु ने उसकी माया को सुदर्शन चक्र से नष्ट कर दिया। कालांतर में विष्णु के घायल होने पर पराजित समस्त देवता कैलास पर्वत पर चले गये और महिषासुर ने इंद्रलोक पर आधिपत्य स्थापित कर लिया। ब्रह्मा सहित समस्त देवता शिव की शरण में पहुंचे। शिव ने कहा—"ब्रह्मा, आपने ही वरदान देकर उलझन उत्पन्न की है। कौन नारी है जो उससे युद्ध कर सके? शिव सहित वे सब विष्णु की शरण में पहुंचे। विष्णु ने समस्त देवताओं से कहा कि वे अपनी-अपनी स्त्री के संग मिलकर अपने तेजस अंश का संग्रह कर उससे नारी-रूप धारण करने की प्रार्थना करें। ऐसा करने पर अनेक भुजाओं से युक्त पराशक्ति प्रकट हुई। वह शेर पर बैठी गर्जना करने लगी। कर्णभेदी स्वर सुनकर महिष ने गर्जना करनेवाले व्यक्ति को पकड़ लाने के लिए दैत्यों को भेजा। उन्होंने लौटकर पराशक्ति के रूप का आख्यान किया। नारी को पकड़ लाने का प्रश्न ही नहीं उठता था। दैत्यों के यह कहने पर कि पराशक्ति को राजा ने बुलाया है, उसने अपना परिचय दिया—"मुझे देवताओं की जननी समझो, मैं महालक्ष्मी हूं, मैं अकेली महिषासुर का वध करने आयी हूं। उससे जाकर कहो कि यदि उसे जीवित रहने की कामना है तो वह स्वर्ग छोड़कर पाताल में चला जाय।" महिष ने प्रत्युत्तर में कहलाया कि वह उसकी पटरानी का स्थान ग्रहण करे। शक्ति ने कहा—"महिष और उसके अनुयायी पशुवत् हैं। क्लीव बुद्धि होने के कारण ही उसने कामिनी के हाथों मरने का वर प्राप्त किया था। शिव ही मेरे पति हैं अतः महिष का कामुक भाव अनुचित है।" तदुपरांत दैत्यों से हुए घोर संग्राम में देवी ने वाष्कल, दुर्मुख, ताम्र, चक्षुराख्य, असिलोमा, आदि को मार डाला। 'महिषासुर' को ज्ञात हुआ तो वह मानव का सा मोहक रूप धारण करके देवी के सम्मुख पहुंचकर उसने प्रत्यक्ष प्रणय-निवेदन किया। देवी ने उसका परिहास करते हुए कहा—"लौहवद्ध मनुष्य तो कभी छूट भी सकता है किंतु स्त्रीबद्ध कभी नहीं छूटता।" महिष ने क्रमशः सिंह, हाथी, पर्वत के रूप धारण करके देवी से युद्ध किया। देवी ने शूल से प्रहार करके उसे पृथ्वी पर गिरा दिया। पांव से रौंदकर चंडिका ने चक्र से उसका सिर काट डाला।

दे० भा०, ५।२।१८-
दे० भा०, १०-१२,

महेश शिव तथा गिरिजा भैरव को द्वार पर बैठाकर अंतःपुर में भोग में लीन हो गये। कालांतर में गिरिजा घर से बाहर निकली तो भैरव ने उसे कुदृष्टि से देखा और रोकने का प्रयास किया। गिरिजा ने अपने पुत्र भैरव की कुदृष्टि देखकर उसे शाप दिया कि वह पृथ्वी पर जन्म ले। भैरव ने कहा—"जो स्थिति मेरी हो, वही आप दोनों की भी हो।" अतः शिव ने महेश और गिरिजा ने शारदा के रूप में पृथ्वी पर अवतरण किया। उनके समस्त पुत्रों को भी अवतार धारण करना पड़ा।

शि० पु०, ७।३१

मांडकर्णि मांडकर्णि मुनि ने एक सरोवर की रचना की थी। वे दस हजार वर्ष तक उस सरोवर में, केवल वायुपान करके तपस्या में लीन रहे। उनका उग्र तप देवताओं की चिंता का कारण बन गया। देवताओं ने सोचा, वे जरूर किसी-न-किसी का स्थान छीनना चाहते हैं, अतः उनकी तपस्या में विघ्न डालना चाहिए। देवताओं ने उनके पास पांच अप्सराएं भेजीं, जिन्होंने मुनि मांडकर्णि को काम के वश में कर दिया तथा वे पांचों उनकी

पत्नियां बन गयीं। तपोबल से यौवन-प्राप्त मुनि और उनकी पांच पत्नियां उसी सरोवर में गुप्त रूप से घर बनाकर रहते थे तथा जब वे लोग क्रीड़ा करते थे तब उनके आभूषणों और वाद्यों का स्वर बाहर भी सुनायी देता था।

बा० रा०, अरण्य कांड, सर्ग ११, श्लोक ११-२०

मांडव्य (अणी मांडव्य) मांडव्य नामक ब्राह्मण अपने आश्रम के सामने हाथ ऊपर उठाकर खड़े-खड़े तपस्यारत थे। कुछ चोर चोरी का सामान लेकर वहां पहुंचे। वे सामान सहित आश्रम में छिप गये। सिपाही उनके पीछे-पीछे वहां पहुंचे। मांडव्य के मौन रहने पर उन्होंने आश्रम में से सबको खोज निकाला तथा मांडव्य को भी चोरों का साथी समझकर पकड़ लिया। राजा ने उन्हें शूली पर चढ़ा देने की आज्ञा दी। शूली का अग्रभाग (अणी) मुनि के शरीर में प्रवेश कर चुका था; किंतु वे वहीं बैठे तपस्या करते रहे। जब राजा को ज्ञात हुआ तो उन्होंने मुनि को प्रसन्न करने का प्रयास किया तथा शूली से उतारने का प्रयत्न किया। किंतु अणी (शूली का अग्र भाग) उनके शरीर से अलग नहीं हुआ, अत: शूली को वहां से काट दिया गया। तभी से वे अणी मांडव्य कहलाये। घोर तपस्या के बल से अणी मांडव्य ने पुण्य लोकों पर विजय प्राप्त की। वहां पहुंचकर उन्होंने धर्मराज से जानना चाहा कि ऐसा कौन-सा अपराध था जिसके फलस्वरूप उन्हें शूली पर चढ़ने का कष्ट उठाना पड़ा। धर्मराज ने बताया कि बारह वर्ष की आयु में उन्होंने फतिंगों के पुच्छभाग में सींक घुसेड़ दी थी। मुनि मांडव्य ने कहा कि चौदह वर्ष की आयु तक बालक को पाप नहीं लगता क्योंकि शास्त्रों के अनुसार उस आयु तक धर्मशास्त्र के आदेश का ज्ञाता होना संभव नहीं है। अत: अणी मांडल्य ने धर्मराज को शूद्र की योनि से जन्म लेने का शाप दिया। फलत: धर्मराज ने एक दासी के उदर से विदुर-रूप में जन्म लिया।

म० भा०, आदिपर्व, १०६, १०७

मांधाता इक्ष्वाकुवंशी मांधाता अयोध्या पर राज्य करते थे। संपूर्ण पृथ्वी को हस्तगत कर वे स्वर्ग जीतना चाहते थे। इंद्र सहित देवता बहुत घबरा गये। उन्होंने मांधाता को आधा देवराज्य देना चाहा, पर वे नहीं माने। वे संपूर्ण इंद्रलोक के इच्छुक थे। इंद्र ने कहा—"अभी तो सारी पृथ्वी ही तुम्हारे अधीन नहीं है, लवणासुर तुम्हारा कहा नहीं मानता।" मांधाता लज्जित होकर मृत्युलोक में लौट आये। उन्होंने लवण के पास दूत भेजा, जिसे उसने खा लिया। फिर दोनों ओर की सेनाओं का युद्ध हुआ। लवण ने अपने त्रिशूल से राजा मांधाता और उसकी सेना को भस्म कर दिया।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग ६७, श्लोक ५-२६

राजा युवनाश्व के कोई पुत्र नहीं था। वे इक्ष्वाकुवंशी राजा थे। युवनाश्व ने प्रचुर दक्षिणावाले यज्ञों का अनुष्ठान किया। संतान के अभाव से संतप्त वे वन में रहकर भगवत् चिंतन करने लगे। एक बार वे शिकार खेलते विचर रहे थे। उस रात वे भूखे-प्यासे पानी की खोज में च्यवन के आश्रम में पहुंचे। च्यवन उन्हींकी संतानोत्पत्ति के लिए घोर तपस्या से इष्ट कर, मंत्र-पूत जल का एक कलश रखकर सो गये थे। सब ऋषि-मुनि रात में देर तक जागने के कारण इतने थककर सोये थे कि राजा के बार-बार पुकारने पर भी किसी की नींद नहीं खुली। जब च्यवन की नींद खुली तब तक राजा युवनाश्व कलश का अधिकांश जल पीकर शेष पृथ्वी पर बहा चुके थे। मुनि ने जाना तो राजा से कहा कि अब उन्हींकी कोख से बालक जन्म लेगा। सौ वर्ष उपरांत अश्विनीकुमारों ने राजा की बायीं कोख फाड़कर बालक को निकाला। देवताओं के यह पूछने पर कि अब बालक क्या पीयेगा? इंद्र ने अपनी तर्जनी अंगुली उसे चुसाते हुए कहा—"माम् अयं धाता (यह मुझे ही पीयेगा)।" इसीसे बालक का नाम मांधाता पड़ा। अंगुली पीते-पीते वह तेरह बित्ता बढ़ गया। बालक ने चिंतनमात्र से धनुर्वेद सहित समस्त वेदों का ज्ञान प्राप्त कर लिया। इंद्र ने उसका राज्याभिषेक किया। मांधाता ने धर्म से तीनों लोकों को नाप लिया। बारह वर्ष की अनावृष्टि के समय इंद्र के देखते-देखते मांधाता ने स्वयं पानी की वर्षा की थी।

मांधाता ने समरांगण में अंगार, मरुत, असित, गय तथा बृहद्रथ को भी पराजित कर दिया था। सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक का समस्त प्रदेश मांधाता का ही कहलाता था। उन्होंने सौ अश्वमेध और सौ राजसूय यज्ञ करके दस योजन लंबे और एक योजन ऊंचे रोहित नामक सोने के मत्स्य बनवाकर ब्राह्मणों को दान दिये थे।

दीर्घकाल तक धर्मपूर्वक राज्य करने के उपरांत मांधाता ने विष्णु के दर्शनों के निमित्त तपस्या की। वे विष्णु से कर्म का उपदेश लेकर वनगमन के लिए उद्यत थे।

विष्णु ने इंद्र का रूप धारण करके उन्हें दर्शन दिये तथा क्षत्रियोचित कर्म का निर्वाह करने का उपदेश देकर मरुतों सहित अंतर्धान हो गये।

म० भा०, वनपर्व, १२६।-
द्रोणपर्व, ६२।-
शांतिपर्व, २६।८१-६३
शांतिपर्व, ६४-६५।-
दे० भा०, ७।६।-
वि० पु०, ४।२ -

मारिषा--पूर्वजन्म में 'मारिषा' एक बाल-विधवा महारानी थी। भक्ति से विष्णु को प्रसन्न करके उसने यह वर प्राप्त किया था कि भविष्य में वह दस कर्मवीर पतियों को तथा अनेक कुलों को चलानेवाले पुत्रों को प्राप्त करेगी। मृत्यु के उपरांत उसका जन्म 'मारिषा' के रूप में हुआ। पूर्वकाल में वेदवेत्ता कंडु को तपोभ्रष्ट करने के लिए इंद्र ने प्रम्लोचा नामक अप्सरा को नियुक्त किया। मुनि उसपर आसक्त हो गये। दीर्घकाल उपरांत उन्हें ध्यान आया कि वे अपना तप भंग कर रहे हैं। उन्होंने क्रुद्ध मन से अप्सरा को वापस जाने की अनुमति दी। मुनि के शाप के भय से उसका गर्भ पसीने के रूप में बाहर निकला। वह इंद्रलोक जाते हुए वृक्षों की कोंपलों से अपना पसीना पोंछती हुई चली गयी, अतः समस्त वृक्षों ने उस गर्भ को धारण किया, वायु ने एकत्र किया, सोम ने उसका पालन किया। वह 'मारिषा' नामक सुंदरी हुई जो वायु, सोम, वृक्ष, प्रम्लोचा तथा कंडु—सभीकी पुत्री कहलायी। उसका विवाह दस 'प्रचेताओं' से हुआ। दक्ष आदि भी हर युग में होते हैं। पूर्वकाल में दक्ष का जन्म ब्रह्मा के अंगूठे से हुआ था। दक्ष का पुनर्जन्म प्रेचताओं की पत्नी मारिषा से हुआ। दक्ष ने पुनः सृष्टि का विस्तार किया।

वि० पु०, १।१५।

मारीच एक बार अयोध्या में गाधि-पुत्र मुनिवर विश्वमित्र पधारे। उनका सुचारु आतिथ्य कर दशरथ ने अपेक्षित आज्ञा जानने की इच्छा प्रकट की। विश्वामित्र ने बतलाया कि उन्होंने एक व्रत की दीक्षा ली है। इससे पूर्व भी वे अनेक व्रतों की दीक्षा लेते रहे किंतु समाप्ति के अवसर पर उनकी यज्ञवेदी पर रुधिर, मांस इत्यादि फेंककर मारीच और सुबाहु नामक दो राक्षस विघ्न उत्पन्न करते हैं। व्रत के नियमानुसार वे किसी को शाप नहीं दे सकते, अतः उनका नाश करने के लिए वे दाशरथी राम को साथ ले जाना चाहते हैं। राम की आयु पंद्रह वर्ष थी। दशरथ के शंका करने पर कि वह अभी बालक ही हैं, विश्वामित्र ने उन्हें सुरक्षित रखने का आश्वासन दिया तथा राम और लक्ष्मण को साथ ले गये। मार्ग में उन्होंने राम को 'बला-अतिबला' नामक दो विद्याएं सिखायीं, जिनसे भूख, प्यास, थकान, रोग का अनुभव तथा असावधानता में शत्रु का वार इत्यादि नहीं हो पाता।

बा० रा०, बाल काड, सर्ग १८, ३६-५३,
सर्ग, १६ से २२ तक,
बा० रा०, बाल कांड, सर्ग ४०, श्लोक १-३०
बा० रा०, अरण्य कांड, सर्ग ३८, श्लोक १-२२

यज्ञ की निर्विघ्नता के लिए राम और लक्ष्मण ने छः दिन तक रात-दिन पहरा देने का निश्चय किया। विश्वामित्र का यज्ञ सिद्धाश्रम में चल रहा था। पांच दिन और रात बीतने के उपरांत अचानक उन्होंने देखा कि यज्ञवेदी पर सब ओर से आग जलने लगी है—पुरोहित भी जलने लगा है और रुधिर की वर्षा हो रही है। आकाश में मारीच और सुबाहु को देख राम-लक्ष्मण ने युद्ध आरंभ किया। मारीच के अतिरिक्त सभी राक्षस तथा उनके साथियों को मार डाला तथा राम ने मारीच को मानवास्त्र के द्वारा उड़ाकर सौ योजन दूर एक समुद्र में फेंक दिया, जहां वह छाती पर लगे मानवास्त्र के कारण बेहोश होकर जा गिरा। लक्ष्मण ने आग्नेयास्त्र से सुबाहु को घायल कर दिया तथा वायव्य अस्त्र से शेष राक्षसों को उड़ा दिया।

बा० रा०, बाल कांड, सर्ग २६, ३०,

राम के वनवास के दिनों में मारीच ने सीता को लुभाने के लिए इंद्रधनुषी रंग में एक अनुपम सुंदर मृग का रूप धारण कर लिया। उसके शरीर पर रुपहले बिंदु दिखलायी पड़ रहे थे। उसके सींग मणि के थे। उस सुनहरे-रुपहले मृग को देखकर सीता अत्यंत चमत्कृत हुईं। उन्होंने राम से अनुरोध किया कि वे मृग पकड़कर ला दें। लक्ष्मण ने कहा—"मुझे लगता है, यह कोई मायावी मृग है या मारीच है क्योंकि मारीच ने इस प्रकार से कई बार लोगों को ठगा है।" पर सीता नहीं मानीं। वे मृग को जीवित पकड़वाना चाहती थीं और वनवास की अवधि के बाद अयोध्या भी ले जाना चाहती थीं। राम ने लक्ष्मण से सीता का ध्यान रखने के लिए कहा और स्वयं मृग का

पीछा किया। वह कभी छुपता, कभी दीखता, अंत में राम ने ब्रह्मा द्वारा निर्मित बाण छोड़ा, जिसके लगने से वह हरिण मारा गया तथा उसका मायावी रूप नष्ट हो गया। मारीच ने मरने से पूर्व जोर से पुकारा—"हा लक्ष्मण! हा सीते!" सीता ने आवाज सुनी तो व्याकुल होकर लक्ष्मण को उधर जाने के लिए कहा। लक्ष्मण के यह कहने पर कि यह राम की आवाज नहीं है, सीता ने यहां तक भी कहा—"तू राम का नाश होने पर मुझे अपनी भार्या बनाना चाहता है, इसीलिए भरत ने तुझे अकेले हमारे साथ भेजा है।" लक्ष्मण को जाना पड़ा। उसके जाते ही रावण संन्यासी वेश में सीता के पास पहुंचा। सीता ने उसे ब्राह्मण जानकर सत्कार किया। रावण ने सीता से उसका परिचय प्राप्त किया तथा अपना परिचय देकर उसे पटरानी बनाने की इच्छा प्रकट की। सीता बहुत क्रुद्ध हुईं। सीता के अमित विरोध करने पर भी रावण ने जबरदस्ती उसे गोद में उठाकर अपने विमान में बैठाया और लंका की ओर उड़ चला। मार्ग में जटायु ने सीता को बचाने का प्रयास किया। उसने रावण का रथ, सारथी इत्यादि को नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। रावण भी घायल हुआ किंतु रावण ने उसके पंख और पैर काट डाले और उसे तड़पता हुआ छोड़कर आगे बढ़ा। सीता के विरोध करने पर रावण ने उसके बाल पकड़कर खींचे और गोद में उठाकर लंका की ओर उड़ चला। बिलखती हुई सीता ने मार्ग में पांच वानरों को बैठा देखा। उसने अपनी ओढ़नी में कुछ मांगलिक आभूषण बांधकर उनकी ओर फेंक दिये कि शायद वे ही राम तक उसका समाचार पहुंचा दें। रावण सीता को लेकर लंका पहुंचा। उसने एक वर्ष के लिए सीता को अशोक-वाटिका में राक्षसियों के निरीक्षण में रख दिया, जिससे वह राम को भुलाकर रावण से विवाह करने के लिए तैयार हो जाये।

बा० रा०, अरण्य कांड, सर्ग ४२ से ५६

मार्कंडेय भगवान ने एकार्णव की सृष्टि की। उनके उदर में ही मार्कंडेय जवान से बूढ़े हो गये। मार्कंडेय उनके उदर में ही तीर्थाटन करते रहे। उसी प्रसंग में एक बार वे मुंह से बाहर निकल आये तो सब जलमग्न अंधकाराच्छादित दिखायी दिया। उन्हें लगा कि वे स्वप्न देख रहे हैं। जल के मध्य पर्वताकार पुरुष को सोये हुए देखा। वे उत्सुकतावश ज्योंही उस विराट् पुरुष का परिचय जानने के लिए पास पहुंचे तो पुनः भगवान के उदर में पहुंचा दिये गये। उन्हें भगवान के उदर का अंत ही नहीं दीख पड़ता था। संयोग से एक बार फिर से वे मुह से बाहर निकलकर एकार्णव को देख चिंतित हो उठे। भगवान ने कहा—"मार्कंडेय बेटा, डरने की कोई बात नहीं है।" अपने लिए बेटा संबोधन सुनकर मार्कंडेय को बहुत आश्चर्य हुआ। उन्हें भगवान 'दीर्घायु' कहकर पुकारते थे। मार्कंडेय के क्रोध व्यक्त करने पर बालक रूप धारण किए हुए भगवान ने कहा—"तुम्हें जन्म देनेवाला मैं ही हृषिकेश हूं।" तदनंतर नमन कर वे बालक-रूपी भगवान के उदर में प्रवेश करके हंस-रूपी भगवान की आराधना की ओर प्रवृत्त हुए। नारायण की नाभि से एक कमल उद्भूत हुआ जिसमें समस्त लोकों की कल्पना की गयी है।

हरि० वं० पु०, भविष्यपर्व, १०-१२।-

भृगु का विवाह ख्याति से हुआ। उनके धाता और विधाता नाम के दो पुत्र हुए। उन दोनों का विवाह महात्मा मेरु की दो कन्याओं आयति और नियति से हुआ। आयति और धाता के पुत्र का नाम प्राण हुआ तथा नियति और विधाता के पुत्र का नाम मृकंडु रखा गया। वही मार्कडेय के पिता थे। मार्कडेय वेदादि शास्त्रों के प्रकांड विद्वान् हुए।

महर्षि वेदव्यास के शिष्य जैमिनी ने मार्कंडेय से महाभारत की अनेक शंकाओं का समाधान करने की प्रार्थना की। उन शंकित स्थलों पर प्रकाश डालने के लिए मार्कंडेय ने द्रोण के पुत्र, चार पक्षियों का पता बताया, जिनका नाम पिंगाक्ष, विबोध, सुपुत्र और सुमुख था। ऋषि ने स्वयं इस चर्चा का विस्तार करने के लिए संध्योपासना की वेला होने के कारण समयाभाव बतलाया। जैमिनी आश्चर्यचकित रह गये कि पक्षियों को वेद आदि का ज्ञान और उपदेश की निपुणता कैसे प्राप्त हो सकती है।

मा० पु०, १।४६।१४-१६

मृकंडु ऋषि के पुत्र का नाम मार्कंडेय था। वे वेद-विद्या में पारंगत थे तथा आजन्म ब्रह्मचारी रहने के इच्छुक भी थे। नियमित दिनचर्या से उन्होंने मृत्यु को भी जीत लिया था। इस प्रकार उन्होंने करोड़ों वर्षों तक भगवान की आराधना की। छह मन्वंतर बीतने पर इंद्र उनकी तपस्या से विचलित हो उठे। उन्होंने गंधर्व, अप्सरा, कामदेव

इत्यादि विभिन्न लोगों का सहारा लेकर मार्कंडेय की तपस्या भंग करनी चाही किंतु सब व्यर्थ । मार्कंडेय मुनि की ऐसी घोर तपस्या देखकर नर-नारायण ने उन्हें दर्शन दिए तथा वर मांगने के लिए कहा । उन्होंने नर-नारायण से अपनी माया दिखाने का वर मांगा । नर-नारायण ने स्वीकार किया तथा बदरीकाश्रम चले गये । कालांतर में एक दिन मार्कंडेय पुष्पभद्रा के तट पर तपस्या कर रहे थे कि उन्हें सब ओर से समुद्र बढ़ता हुआ-सा दिखायी पड़ा, फिर प्रलय में घिरकर पानी से जूझते हुए वे करोड़ों वर्षों तक रहे । फिर एक दिन उन्हें एक टीले पर बरगद का पेड़ दिखायी दिया । उसपर पत्तों का एक दोना-सा बना हुआ था, जिसपर एक बालक लेटा हुआ दिखायी दिया । बालक अपने दोनों हाथों से चरण को पकड़कर मुंह में चूस रहा था । मार्कंडेय की थकान दूर हुई । वे उस बालक की ओर खिसके तो उसके श्वास के साथ ही सीधे उसके शरीर के अंदर ही पहुंच गये । वहां उन्हें वही सृष्टि फिर से दिखायी देने लगी जो प्रलय से नष्ट हुई थी । बालक के श्वास के साथ ही वे पुन: बाहर आ गये । वे शिशु पर पूर्ण आकृष्ट हो नेत्रों से उसके हृदय में पहुंच गये । हाथों से शिशु का आलिंगन करना ही चाहते थे कि अचानक ही बरगद के पेड़ सहित वह शिशु तथा प्रलयकालीन दृश्य अंतर्धान हो गया । समस्त वातावरण पूर्ववत् दिखायी देने लगा । मार्कंडेय ने योग-माया-वैभव का अनुभव किया । वे तन्मयतापूर्वक भगवत्चिंतन करने लगे । तभी आकाश-मार्ग से जाते हुए शिव-पार्वती ने उन्हें देखा । पार्वती के अनुरोध पर शिव मुनि की ओर उन्मुख हुए । उन्होंने ध्यानस्थ मुनि के हृदय में प्रवेश किया । नेत्र खोलने पर मार्कंडेय मुनि ने साक्षात् शिव-पार्वती के दर्शन किए । उन्होंने चिरकाल तक त्रिदेव तथा उनके भक्तों में मन रमने का वर मांगा । मार्कंडेय मुनि ने अनेक कल्पों का अनुभव किया । विष्णु की कृपा से वे जन्म-मरण के बंधनों से मुक्त हैं तथा आज भी भक्तिभाव भरित हृदय के साथ पृथ्वी पर विचरण करते हैं ।

श्रीमद् भा० १२।८-१०।-

तपस्यारत मार्कंडेय ने नेत्र खोले तो प्रलय आ चुकी थी । वे सब ओर पानी से घिरे हुए थे । थोड़े भटकाव के उपरांत उन्हें वटवृक्ष पर सज्जित शैया पर बैठे बाल-कृष्ण दिखायी दिये । उन्होंने मार्कंडेय को प्रलय से बचने के लिए अपने मुंह से पेट में घुस जाने के लिए कहा । पहले तो मार्कंडेय ने मान-हानि अनुभव की, फिर कोई और मार्ग न देख वैसा ही किया । विष्णु के उदर में पहुंचकर उन्होंने वह समस्त भूमंडल ज्यों-का-त्यों विष्णु के उदर में देखा । उदर से बाहर निकल एक बार पुन: जलमग्न सृष्टि को देख वे पुन: उदर में पहुंच गये । उन्होंने विष्णु को पहचाना तथा उनकी भक्ति की । मार्कंडेय ने जाना कि समस्त प्रलयग्रस्त लोकों को बाल-रूपधारी कृष्ण ने उदरस्थ कर लिया है । कृष्ण के मुंह से उनके विभिन्न अवतारों का परिचय भी पाया । एक हजार वर्ष बाद विष्णु ने मार्कंडेय की भक्ति से प्रसन्न होकर उन्हें वर मांगने को कहा । मार्कंडेय ने आज्ञा मांगी कि वे पुरुषोत्तम तीर्थ में शिव का एक मंदिर बना पाये जिससे सबको स्पष्ट हो जाय कि शिव और विष्णु मूलत: एक ही हैं । विष्णु ने ऐसी अनुमति देकर कृतार्थ किया । विष्णु ने यह आज्ञा दी कि शिव-मंदिर के उत्तर भाग में 'मार्कंडेय' नाम से तीर्थस्थान की स्थापना भी की जाय ।

ब्र० पु०, ५३ से ५६ तक

माल्यवान रावण के नाना का नाम था । उसने रावण को राम से युद्ध न करने के लिए बहुत समझाया, किंतु वह नहीं माना ।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ३५,
श्लोक ७ से १५

मित्रविंदा अवंती देश के राजा विंद तथा अनुविंद की बहन का नाम मित्रविंदा था । उसके स्वयंवर में श्रीकृष्ण को अपना पति बनाना चाहा था, किंतु उसके भाइयों ने उसे रोक दिया था । वह कृष्ण की बूआ की लड़की थी । कृष्ण ने भरी सभा में उसका बलपूर्वक हरण कर लिया था ।

श्रीमद्० भा०, १०।५८।३०-३१

मुचकुंद मुचकुंद ने अपने बल की परीक्षा के लिए (वसिष्ठ मुनि को पुरोहित बनाकर) कुबेर से युद्ध किया । उसकी वीरता पर प्रसन्न होकर धनाध्यक्ष कुबेर ने उसे समस्त पृथ्वी देनी चाही किंतु मुचकुंद ने लेने से इंकार कर दिया तथा कहा कि वे अपने बाहुबल से उपार्जित राज्य का ही उपभोग करेंगे । तदनंतर मुचकुंद ने क्षत्रिय धर्मानुसार पृथ्वी को बाहुबल से प्राप्त किया तथा न्याय-पूर्वक शासन किया ।

म० भा०, उद्योगपर्व, १३२।९-११
शांतिपर्व, ७४।-

इक्ष्वाकुवंशी मांधाता के पुत्र का नाम मुचकुंद था। इंद्र आदि देवताओं ने असुरों के भय से मुचकुंद से अपनी सुरक्षा के लिए प्रार्थना की थी। बहुत दिन बाद जब कार्तिकेय उनके सेनापति हो गये तब उन्होंने मुचकुंद को देवताओं की रक्षा के भार से मुक्त करके वर मांगने के लिए कहा, तब मुचकुंद ने बहुत थके होने के कारण निद्रा का वर मांगा। देवताओं ने कहा कि जो उनकी नींद में व्याघात उत्पन्न करेगा, वह भस्म हो जायेगा। वे गुफा में जाकर सो गये। सोते हुए मुचकुंद को जगाने के कारण कालयवन भस्म हो गया था (दे० जरासंध)। उसके भस्म होने के उपरांत मुचकुंद ने श्रीकृष्ण के दर्शन किये। उनका परिचय जानकर उन्होंने उनके चरणों में प्रीति बनी रहने का वर मांगा। कृष्ण ने कहा कि अगले जन्म में वे ब्राह्मण होंगे तथा परमात्मा को प्राप्त करेंगे। उन्हें प्रणाम करके मुचकुंद गुफा से बाहर निकले तो उन्होंने देखा कि समस्त वनस्पति छोटी हो गयी है। वे समझ गये कि कलियुग प्रारंभ हो गया है। वे बदरिकाश्रम जाकर तपस्या करने लगे।

श्रीमद् भा०, १०।५१।१४-६४
श्रीमद् भा०, १०।५२।१-४
हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व, ५७।-
ब्र० पु०।१९६।-

मुर्चलिंद भगवान् बुद्ध मुर्चलिंद वृक्ष के नीचे बैठे थे। नागराज उन्हें अपनी देह से सात बार लपेटकर उनके सिर पर अपने फन को छत्रवत् तानकर खड़ा हो गया। इस प्रकार उसने शीत, उष्ण, मच्छर आदि से भगवान की रक्षा की। प्रकृति का स्वच्छ स्वरूप देखकर वह पुनः अपने घर चला गया।

बु० च०, १।४।-

मुद्गल मुद्गल एक अत्यंत दानी ब्राह्मण था। वह अपने पुत्र तथा अपनी पत्नी सहित पंद्रह दिन तक शिल (खेत कटने पर बिखरे हुए अनाज के दाने) तथा उच्छ (बाजार उठने पर बिखरा हुआ अन्न) चुनकर एक द्रोण (सोलह सेर) अन्न से इष्टीकृत यज्ञ का अनुष्ठान करके, प्रत्येक पक्ष में दर्श तथा पौर्णमास यज्ञ करते हुए अतिथियों को भोजन करवाकर शेष अन्न से जीवन-यापन करता था। एक बार दुर्वासा मुनि उसकी परीक्षा लेने के निमित्त वहां पहुंचे। उन्मत्त मुनि के वेश में उन्होंने मुद्गल का समस्त भोजन उदरस्थ करके जूठन अपने शरीर पर मल ली। इस प्रकार छः पर्व तक वे करते रहे। मुद्गल अपने परिवार सहित निर्विकार रूप से उनका आतिथ्य करता रहा। दुर्वासा उससे विशेष प्रसन्न हुए। तभी एक देवदूत हंस और सारस जुते हुए विमान के साथ मुद्गल को स्वर्ग ले जाने के लिए पहुंचा। मुदगल ने उससे स्वर्ग के गुण-दोषों का व्याख्यान करने के लिए कहा। सब सुनकर मुद्गल स्वर्ग जाने के लिए तैयार नहीं हुआ, क्योंकि स्वर्ग का सुख भोगते हुए मनुष्य अपना पुण्य-रूपी मूल धन गंवाता है। मुद्गल ब्रह्मलोक से भी उच्च स्थान पर स्थित विष्णुलोक का संधान करने के लिए उत्तम रीति से सत्कर्मों में लगा रहा।

म० भा०, वनपर्व, २६० से २६१ तक

मुद्गलानी भृमस्त्र के पुत्र का नाम मुद्गल था और उसकी ब्रह्मवादिनी पत्नी थी मुद्गलानी। एक बार उनकी समस्त गायों की चोरी हो गयी। उनके पास एकमात्र बूढ़ा बैल रह गया। मुद्गल अत्यंत निराश हो गये तथा चिंतातुर हो बैठे, किंतु उनकी पत्नी मुद्गलानी तनिक भी विचलित नहीं हुई। पत्नी से प्रेरणा पाकर उन्होंने रथ में बूढ़ा बैल जोता और दोनों चोरों की खोज में निकल पड़े। उनके पास शस्त्र के नाम पर केवल एक द्रुघण (हथौड़ा) था। अंत में चोरों को परास्त करके वे अपनी समस्त गायों को घर लौटा लाये।

ऋ० १०।१०२

मुष्टिक आंध्रप्रदेशीय मल्ल मुष्टिक कंस की आज्ञानुसार कृष्ण और बलराम को मारने के लिए उद्यत हुआ। बलराम ने उसे मल्ल युद्ध में परास्त करके मार डाला।

हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व, ३०।

बलराम ने मुष्टिक नामक मल्ल को द्वंद्व युद्ध में घूसों से पीटकर धरती पर पटककर मार डाला।

वि० पु०, ५।२०।६५-७८

मूसलकांड महाभारत-युद्ध में कुरुवंश-संहार के उपरांत गांधारी ने श्रीकृष्ण के वंश को नष्ट होने का शाप दिया था। तदनुसार युद्ध के छत्तीस वर्ष उपरांत तरह-तरह के अपशकुन दिखायी देने लगे। वृष्णिवंशियों में अनेक प्रकार के अन्याय तथा कलह उद्भूत हो गये। उन्हीं दिनों विश्वामित्र, कण्व और नारद द्वारका पहुंचे। वहां के नटखट बालक सांब (श्रीकृष्ण का एक पुत्र) को नारी-वेश में उन मुनियों के पास ले गये। उसका परिचय बभ्रु की पत्नी के रूप में देकर उन्होंने भावी संतान के लिए

आशीर्वाद मांगा। मुनियों को इस धोखे से अवमानना का अनुभव हुआ। अत: उन्होंने कहा—"इसके गर्भ से मूसल का जन्म होगा जो तुम्हारे समस्त वंश को नष्ट कर डालेगा। केवल कृष्ण और बलराम ही उससे बच पायेंगे।" अगले दिन सांब ने एक लोहे के मूसल को जन्म दिया। उग्रसेन ने उस मूसल का चूर्ण करवाकर समुद्र में बहा दिया तथा शाप से बचने के लिए प्रजा को मद्यपान निषेध का आदेश दिया। कुछ समय तक सब यथावत् रहे, तदुपरांत श्रीकृष्ण को गांधारी का शाप स्मरण हो आया। उन्हें यादव-वंश का नाश निकट ही प्रतीत हो रहा था। उन्होंने देशवासी समस्त नर-नारियों को तीर्थस्नान के लिए चलने को कहा। वे सब खाद्य-सामग्री लेकर प्रभास-क्षेत्र में जा ठहरे। वहां उद्धव ने अपने तेज सहित उन सबसे विदा ली। श्रीकृष्ण भावी जनसंहार से आशंकित थे। अत: उन्होंने उद्धव को नहीं रोका। उन यादवों ने ब्राह्मणों को जिमाने के लिए बनाये भोजन में मद्य इत्यादि का मिश्रण कर दिया। तदनंतर वे सब भोजन करके मदमस्त हो गये तथा परस्पर कृत्यों में छिद्रान्वेषण करने लगे। सब मारकाट में लग गये। सात्यकि तथा प्रद्युम्न के मारे जाने पर श्रीकृष्ण ने घास तोड़कर शेष लोगों पर दे मारी। घास टूटते ही लोहे के मूसलों में परिणत हो गयी। उनमें से जो भी घास तोड़ता, मूसल बनकर उसके हाथ की घास दूसरे व्यक्ति पर प्रहार करती। इस प्रकार परस्पर लड़कर बभ्रु, दारुक, कृष्ण और बलराम के अतिरिक्त सभी वहां समाप्त हो गये। श्रीकृष्ण ने दारुक को अर्जुन के पास संदेश देने भेजा तथा बभ्रु को द्वारका में स्त्रियों की सुरक्षा के लिए। बभ्रु के प्रस्थान करने से पूर्व ही ब्राह्मणों के शाप से उत्पन्न मूसल किसी व्याध के वाण से संलग्न हुआ बभ्रु को बींध गया। अंततोगत्वा श्रीकृष्ण को ही द्वारका जाना पड़ा। पिता आदि को दुर्घटना का संदेश देकर कृष्ण ने कहा कि अर्जुन आकर सब व्यवस्था करेगा। अर्जुन के द्वारका छोड़ते ही समुद्र उसे आप्लावित कर लेगा। कृष्ण बलराम के साथ तपस्या करने वन में चले गये। अर्जुन के द्वारकापुरी पहुंचने पर वसुदेव से उन्हें समस्त समाचार ज्ञात हुए। उन्होंने कहा—"श्रीकृष्ण गांधारी का शापमोचन करने के इच्छुक नहीं थे। अन्यथा वे परीक्षित के प्राण बचाने की तरह ही यहां भी शाप का निराकरण कर सकते थे।" वसुदेव ने देह त्याग दी। देवकी, भद्रा, रोहिणी और मंदिरा नामक उनकी चारों पत्नियां उनके साथ सती हो गयीं। अर्जुन ने भोज, वृष्णि तथा अंधक वंश की स्त्रियों, बूढ़ों और बच्चों को लेकर इंद्रप्रस्थ की ओर प्रस्थान किया। समुद्र ने द्वारका को डुबो दिया। मार्ग में डाकुओं ने उनपर आक्रमण किया। अर्जुन अपने अस्त्र-शस्त्रों का आवाहन नहीं कर पाये। उनके गांडीव ने भी जवाब दे दिया। कतिपय वीर जो उनके साथ थे, वे भी कुछ नहीं कर पाये। उनकी भुजाओं में बल ही नहीं रहा। उनके देखते-देखते आभूषणों सहित सुंदरियों का अपहरण अनेक म्लेच्छ लोगों ने कर लिया। स्त्रियां भी अपना बस चलता न देख उनकी अनुगामिनी हो गयीं। दैवेच्छा के सम्मुख अर्जुन की कुछ भी नहीं चली। इंद्रप्रस्थ पहुंचकर अर्जुन ने श्रीकृष्ण के पौत्र वज्र को स्थान तथा आंशिक राज्य प्रदान करके उन कुलनारियों का भार सौंप दिया। उनमें से कुछ वन में तपस्या के लिए चली गयीं—कुछ राज्य में रह गयीं और कुछ ने अग्नि में प्रवेश कर पति-लोक को प्राप्त किया। श्रीकृष्ण और बलराम ने भी वन में देह त्याग दिया (दे० श्रीकृष्ण, बलराम)। अर्जुन ने व्यास के आश्रम में जाकर सब कह सुनाया। दुखी अर्जुन को सांत्वना देते हुए व्यास ने बताया—"समस्त यदुवंशी देवताओं के अंश थे। उन्हें कृष्ण के साथ ही जाना था। अंधक तथा वृष्णिवंशी ब्राह्मणों के शाप से ग्रस्त थे। अपहृत नारियां पूर्वजन्म में अप्सराएं थीं तथा उन्होंने अष्टावक्र का परिहास किया था। उन्हें शाप मिला था कि वे मानवी होकर दस्युओं के हाथों पकड़ी जाकर शाप-मुक्त होंगी। अत: तुम्हारी देह स्तंभित हो गयी थी। तुम्हारे अस्त्र-शस्त्र का प्रयोजन भी समाप्त हो गया है। अत: वे सब प्रभावहीन हो गये। इसमें तुम्हारा भला ही है।" अर्जुन हस्तिनापुर चले गये।

म० भा०, मौसलपर्व।-

(प्रारंभिक कथा महाभारत के समान है।)
द्वारका की सुंदरियों को दस्युओं ने हर लिया तो अर्जुन दु:ख तथा (उन्हें न बचा पाने की) आत्मग्लानि से पीड़ित व्यास के पास पहुंचे। व्यास ने उन्हें बताया—"पूर्वकाल में अष्टावक्र जल में तपस्या कर रहे थे। गर्दन तक पानी में खड़े हुए थे। आकाशचारिणी अप्सराओं ने उन्हें वंदना आदि से प्रसन्न किया। रंभा, तिलोत्तमा आदि ने उनसे वर प्राप्त किया कि वे भगवान को पति-

रूप में प्राप्त कर पायें। तदनंतर अष्टावक्र जल से बाहर निकले। उनके आठ स्थान में मुड़े हुए भद्दे शरीर को देखकर उन हजारों अप्सराओं में से जो अपनी हंसी नहीं रोक पाईं, उन्हें अष्टावक्र ने शाप दिया था कि वे भगवान को पति-रूप में प्राप्त करके भी लुटेरों के हाथों पड़ेंगी, तदनंतर वे स्वर्ग प्राप्त करेंगी। श्रीकृष्ण के अवतरित होने पर वे समस्त अप्सराएं सुंदरियों के रूप में जन्मी थीं किंतु शापवश उन्हें लुटेरों के हाथों पड़ना पड़ा।"

वि० पु०, ५।३७-३८

मृत्यु ब्रह्मा ने सृष्टि का निर्माण किया। उन्होंने संहार की कोई व्यवस्था नहीं की थी, अतः कालांतर में समस्त जगत् मृत्युरहित प्राणियों से भर गया। क्रोधवश ब्रह्मा के नेत्र, नासिका तथा श्रवण इत्यादि इंद्रियों से अग्नि प्रकट हुई जो समस्त जगत् में व्याप्त हो गयी। बहुत-से प्राणी नष्ट हो गये। उनके दुःख से कातर शिव ब्रह्मा के पास पहुंचे। वे ब्रह्मा के मानसपुत्र हैं, अतः ब्रह्मा ने उनकी इच्छा जाननी चाही। शिव ने निरीह प्राणियों के त्रास की गाथा सुनाकर उनसे दया की कामना प्रकट की। ब्रह्मा ने कहा—"मैं भी वास्तव में इस प्रकार से प्रजाजनों का विनाश नहीं करना चाहता था।" ब्रह्मा की समस्त इंद्रियों से एक लाल तथा काले वर्ण की नारी प्रकट हुई जो कि दक्षिण दिशा में जा खड़ी हुई। मृत्यु उसी का नाम था। ब्रह्मा के क्रोध का शमन हो गया। उन्होंने मृत्यु को प्रजाओं का संहार करने का आदेश दिया। वह रो पड़ी और रोती ही गयी। उसके आंसू ब्रह्मा ने अपनी अंजुली में एकत्र कर लिए। मृत्यु ने कहा कि ऐसा करने से वह अपरिमित पाप की भागी हो जायेगी। वह संबंधियों को रोता-बिलखता देख मारने का काम कैसे कर पायेगी? ब्रह्मा ने कहा कि उसका निर्माण इसी निमित्त किया गया है तथा यह आदेश है। मृत्यु ब्रह्मा को प्रणाम कर धेनुकाश्रम चली गयी तथा तपस्या में लीन हो गयी। सब देवताओं से विमुख रह वह मात्र ब्रह्मा के ध्यान में लगी रहती थी। कालांतर में ब्रह्मा ने दर्शन दिये। मृत्यु ने इस कार्य से मुक्ति प्राप्त करनी चाही। ब्रह्मा ने कहा—"तुझे अधर्म नहीं लगेगा। तू चार श्रेणियों में विभक्त करके प्रजाओं का संहार कर।" मृत्यु ने कहा—"हे देव! मेरी प्रार्थना है कि लोभ, क्रोध, असूया, ईर्ष्या, द्रोह, मोह, निर्लज्जता और परस्पर बोली गयी कठोर वाणी ही देहधारियों की देह का भेदन करे।" ब्रह्मा ने वह प्रार्थना स्वीकार कर ली तथा कहा कि अंजुली में भरे मृत्यु के आंसू प्राणियों के शरीरों में व्याधियों तथा दुःख के रूप में प्रकट होंगे। किसीके वध का पाप मृत्यु को नहीं लगेगा। शाप के भय से मृत्यु ने इस कार्य को स्वीकार किया।

म० भा, द्रोणपर्व, ५२।३७ से ४५ तक
म० भा० द्रोणपर्व, ५३-५४।-
शांतिपर्व, २५७, २५८-

मेघनाद जब मेघनाद का जन्म हुआ तो वह मेघगर्जन के समान जोर से रोया, इसीसे उसका नाम मेघनाद रखा गया।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग १२, श्लोक २९-३२

रावण के पुत्र मेघनाद को इंद्रजित भी कहते हैं, क्योंकि एक बार उसने इंद्र को परास्त कर दिया था। कथा निम्न प्रकार है—

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ४४, श्लोक ३६
सर्ग ४५।२२

देवलोक पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से रावण ने देवताओं से युद्ध किया। उस भयानक युद्ध में देवताओं और राक्षसों के अनेक सैनिक मारे गये। अंत में मेघनाद ने अपनी माया से चारों ओर अंधकार फैलाकर इंद्र को बंदी बना लिया। मेघनाद इंद्र को लेकर लंकापुरी चला गया। इससे परेशान होकर सब देवता ब्रह्मा को लेकर मेघनाद के पास पहुंचे। ब्रह्मा ने इंद्र को छोड़ने के लिए कहा और बदले में मेघनाद को वर दिया कि (१) वह इंद्रजित कहलायेगा, (२) उसे अनेक सिद्धियां प्राप्त होंगी (३) युद्ध से पूर्व यज्ञ करने पर अग्नि से उसके लिए घोड़े सहित रथ निकलेगा, जिसपर बैठा वह अजेय रहेगा किंतु यदि कभी यज्ञ पूरा नहीं हो पाया तो वह युद्ध में मारा जायेगा।

ब्रह्मा की प्रेरणा से इंद्र ने वैष्णव यज्ञ किया, तभी वह देवलोक का अधिपति बनने का अधिकारी हुआ। देवतागण उसे लेकर देवलोक चले गये।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग २८-२९,
सर्ग ३०, १-१८

मेघनाद को ब्रह्मा के वरदान से 'ब्रह्मशिर' नाम का अस्त्र और इच्छानुसार चलनेवाले घोड़े प्राप्त थे। वह जिस सिद्धि को प्राप्त करने निकुंभिलादेवी के मंदिर में गया था, उसे सिद्ध करने के उपरांत देवताओं समेत इंद्र भी उसे जीतने में असमर्थ हो जाते। ब्रह्मा ने उससे कहा

था—"हे इंद्रजित, यदि तुम्हारा कोई शत्रु निकुंभिला में तुम्हारे यज्ञ समाप्त करने से पूर्व युद्ध करेगा तो तुम मार डाले जाओगे।"

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ८५, श्लोक ११-१५

सब वीर राक्षसों को नष्टप्राय देखकर रावण ने मेघनाद को युद्ध करने के लिए कहा। मेघनाद ने युद्ध में जाने से पूर्व अग्नि में राक्षसी हवन किया। लाल पगड़ी बांधकर कई हजार राक्षसियां इंद्रजित की रक्षा में व्यस्त हो गयीं। उस यज्ञ में सरपत के स्थान पर शस्त्र बिछाये गये थे। बहेड़े की लकड़ी, लाल वस्त्र और काले लोहे की स्रुवा लायी गयी थी। शरपत्रों से अग्नि प्रज्वलित करके एक जीवित काले बकरे का गला पकड़ा और अग्नि में छोड़ दिया। धूम्ररहित अग्नि ने प्रज्वलित होकर विजय की सूचना दी। सुवर्ण अग्नि ने स्वयं प्रकट होकर दाहिनी ओर बढ़कर इंद्रजित की दी हुई हवि को स्वीकार किया। हवन समाप्ति के उपरांत देवताओं, दानवों और राक्षसों को तृप्त किया गया।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ८०, श्लोक १-११

मायावी सीता को मरा जानकर हनुमान की आज्ञा से वानरों ने युद्ध बंद कर दिया। मेघनाद निकुंभिलादेवी के स्थान पर गया। वहां उसने हवन किया। मांस और रुधिर की आहुति से अग्नि प्रज्वलित हो गयी। मेघनाद को ब्रह्मा से वरदान प्राप्त था कि निकुंभिलादेवी के मंदिर में यज्ञ समाप्त करने के उपरांत समस्त देवता एवं इंद्र भी उसे पराजित नहीं कर पायेंगे—किंतु यदि किसी शत्रु ने यज्ञ में विघ्न डाला तो वह मारा जायेगा।

बा० रा०, युद्ध कांड, ८२।२४-२८।-
बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ८५, श्लोक ११-१५

मेघनाद विशाल भयानक वटवृक्ष के पास भूतों को बलि देकर युद्ध में जाता था, इसीसे वह अदृश्य होकर युद्ध कर पाता था।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ८७, श्लोक ४-५

(४) मेघनाद ने निकुंभिला के स्थान पर जाकर अग्निष्टोम, अश्वमेध आदि सात यज्ञ करके शिव से अनेक वर प्राप्त किये थे। सबसे अंतिम माहेश्वर यज्ञ रह गया था। उन यज्ञों के फलस्वरूप उसे तामसी नामक माया की प्राप्ति हुई थी, जो कभी भी अंधकार फैला सकती थी। साथ ही आकाशगामी दिव्य रथ भी प्राप्त हुआ था।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग २५, श्लोक ७-१०

विभीषण ने लक्ष्मण और राम को मेघनाद की मायावी शक्ति के साथ यह बताया कि ब्रह्मा ने अनेक वर देते हुए यह भी कहा था कि "यदि तुम्हारा कोई शत्रु निकुंभिला में तुम्हारे यज्ञ समाप्त करने से पूर्व युद्ध करेगा तो तुम मार डाले जाओगे।" अतः लक्ष्मण ने मेघनाद के यज्ञ में विघ्न डाला। ससैन्य लक्ष्मण को युद्धार्थ आया देखकर मेघनाद को यज्ञवेदी से उठना पड़ा। वह रणक्षेत्र में पहुंचा। विभीषण लक्ष्मण को लेकर एक भयानक वट-वृक्ष के पास पहुंचा और बोला कि मेघनाद इसी स्थान पर भूतों को बलि चढ़ाकर जाता है, इसीसे वह अदृश्य होकर युद्ध करने में समर्थ रहता है। लक्ष्मण वहां प्रतीक्षा करते रहे। जब मेघनाद आया तो दोनों में युद्ध छिड़ गया। भयंकर युद्ध के बाद लक्ष्मण ने उसके घोड़े और सारथी को मार डाला। मेघनाद लंकापुरी गया तथा दूसरा रथ लेकर फिर युद्ध-कामना के साथ लौटा। दोनों का युद्ध पुनः आरंभ हुआ। अंत में लक्ष्मण ने मेघनाद को मार डाला।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ८६ से ९१,

मेधावी (क) बालधि ने घोर तपस्या के परिणामस्वरूप देवताओं से मेधावी नामक पुत्र प्राप्त किया था। देवताओं ने कहा था कि वह अमर नहीं होगा, अतः बालधि ने यह वर मांगा कि जब तक यह पर्वत अक्षय भाव से खड़ा है, तब तक बालक भी रहे। बड़े होने पर बालक ने सब कुछ जाना तो बहुत घंमडी हो गया। वह ऋषि-मुनियों को सताने लगा। एक बार मुनि धनुषाक्ष ने क्रुद्ध होकर उसे भस्म होने का शाप दिया, किंतु वह भस्म नहीं हुआ। धनुषाक्ष ने जान लिया कि वह रोग तथा मृत्यु से परे है। उसने निमित्तभूत पर्वत को भैंसों द्वारा विदीर्ण कर दिया। निमित्त के नष्ट होते ही मुनिकुमार की सहसा मृत्यु हो गयी।

म० भा०, वनपर्व, १३५।४५ से ५५ तक

(ख) प्राचीनकाल में एक स्वाध्यायपरायण ब्राह्मण था। उसका मेधावी नामक पुत्र था। वह भी धर्म तथा स्वाध्यायपरायण था। एक बार पिता तथा पुत्र में मनुष्य के कर्तव्यों पर परिचर्चा हुई। पिता ने मेधावी को चारों आश्रमों का पालन करने का आदेश दिया और पुत्र ने धर्मसम्मत जीवन में धन-संचय तथा मोह की निरर्थकता सिद्ध की। अंततोगत्वा पिता ने पुत्र के मत को स्वीकार किया।

मा० भा०, शांतिपर्व, अध्याय १७५।३-३६
अध्याय २७७।-

मेनका पुष्कर तपोवन में विश्वामित्र के एक हजार वर्ष के तप के उपरांत प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उन्हें ऋषि-पद पर प्रतिष्ठित किया। विश्वामित्र पुन: तप में लीन हो गये। एक बार मेनका नामक अप्सरा पुष्कर क्षेत्र में स्नान करने आयी। उसके रूप पर मुग्ध होकर विश्वामित्र काम-पीड़ित हो उठे तथा उसे अपने आश्रम में रहने के लिए आमंत्रित किया। दस वर्ष उसके साथ बिताकर ऋषि प्रकृतिस्थ तथा लज्जित हुए। सद्बुद्धि जाग्रत् होने पर उन्होंने सोचा कि मेनका के माध्यम से उनका तप भंग करवाना देवताओं का ही काम है। उन्होंने मेनका को विदा कर दिया तथा स्वयं उत्तर दिशा में कौशिकी नदी के तट पर घोर तपस्या करने लगे। ब्रह्मा ने उन्हें महर्षि-पद प्रदान किया किंतु वे ब्रह्मर्षि-पद के इच्छुक थे। अत: उन्होंने फिर से घोर तपस्या आरंभ की।

बा० रा०, बाल कांड, सर्ग ६३, श्लोक १-२०

विश्वधर नामक वैश्य की ढलती आयु में उसका जवान पुत्र मर गया। उसके विलाप से द्रवित यम ने जीव-हनन कार्य छोड़कर गौतमी के तट पर घोर तपस्या करनी आरंभ कर दी। जीवों की बढ़ती संख्या का भार उठाना पृथ्वी के लिए असंभव हो गया। वह इंद्र की शरण में पहुंची। इंद्र ने सबसे उसकी तपस्या भंग करने के लिए कहा। सभी प्राणों के भय से आक्रांत थे। तपस्यारत यम के पास विष्णु ने अपना चक्र स्थापित कर दिया था। मेनका ने यम का तपोभंग किया। वह क्रोध से उसे नष्ट करे, इससे पूर्व ही वह नदी के रूप में गौतमी से जा मिली तथा उसके प्रभाव से स्वर्ग चली गयी। सूर्य की प्रेरणा से यम पुन: मृत्यु-वितरण के कार्य में लगा गया।

ब्र० पु०, ८६

मैंद वानरश्रेष्ठ मैंद तथा द्विविद ब्रह्मा के पौत्र थे। ब्रह्मा ने इन्हें किसीके भी हाथों से न मरने का वरदान दिया था। इन दोनों ने अमृतपान किया था।

बा० रा०, सुंदर कांड, सर्ग ५९, श्लोक १६-२१

ये दोनों अश्विनीकुमारों के पुत्र थे। अमृतपान के उपरांत इन्होंने देवसेना को परास्त कर दिया था।

बा० रा०, सुंदर कांड, सर्ग ६०, श्लोक १, २, ३

मैना दक्ष के अनेक पुत्र हुए। उनकी साठ कन्याओं में से स्वधा का विवाह पितरों से हुआ था। उसकी तीन कन्याएं हुईं। सबसे बड़ी का नाम मैना था, दूसरी धन्या तथा तीसरी कलावती थी। वे तीनों एक बार विष्णु की पूजा कर उनकी आज्ञा से बैठ गयीं। वह सनत्कुमार भी पहुंचे। वे तीनों उनके आदरार्थ नहीं उठीं, अत: रुष्ट होकर उन्होंने तीनों को स्वर्गच्युत कर मनुष्य होने का शाप दिया। उनके अनुनय-विनय से प्रसन्न होकर उन्होंने कहा कि पाप का फल पा लेने के उपरांत मैना का विवाह विष्णु के अंश हिमालय से होगा तथा वह शिव-रानी (पार्वती) को जन्म देगी। धन्या का विवाह त्रेता युग में जनक से होगा और वह सीता को जन्म देगी। द्वापर में कलावती वृषभान की पत्नी होकर राधा को जन्म देगी।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध, ३।१-२।

मैनाक सतयुग में पर्वतों के पंख थे। वे अपनी इच्छानुसार उड़कर कहीं भी जा सकते थे। पर्वतों को उड़ते देखकर देवता, मुनि, ऋषि आदि बहुत डरते थे, अत: इंद्र ने सैकड़ों पर्वतों के पंख काट डाले। जब क्रुद्ध होकर इंद्र मैनाक के पास पहुंचे तो उसे वायुदेव ने उड़ाकर समुद्र के मध्य आश्रय दिया। इस प्रकार उसके परों की रक्षा हो गयी।

बा० रा०, सुंदर कांड, सर्ग १, श्लोक १२२-१४३

हनुमान को लंका की ओर वेग से बढ़ता देख, समुद्र ने सोचा कि राम के पूर्वपुरुषों में से सगर नामक राजा ने मुझे बढ़ाया था, अत: मुझे उनके दूत हनुमान की सहायता करनी चाहिए। उसने समुद्र में बैठे मैनाक पर्वत से हनुमान को विश्राम देने का अनुरोध किया। वायुदेव (पवन) की कृपा से ही मैनाक के पंखों की रक्षा हुई थी। मैनाक के लिए पवन का वह उपकार चिरस्मरणीय था। उसने खड़े होकर हनुमान के रुकने का सुंदर स्थान बनाया पर हनुमान ने उसे बाधा समझकर अपनी छाती से धक्का दिया। पर्वत के बताने पर भी कि सागर उसकी सहायता करना चाहते हैं, हनुमान वहां रुके नहीं। उन दोनों के सम्मानार्थ हाथ से स्पर्श करके आगे बढ़ गये क्योंकि उन्होंने मार्ग में न ठहरने का प्रण किया था। पर्वत की इस सदिच्छा से प्रसन्न होकर इंद्र ने उसे कहीं भी जाने की आज्ञा दे दी, किंतु वह समुद्र में ही जाकर बैठ गया।

बा० रा०, सुंदर कांड, सर्ग १, श्लोक ८७ से १३५

मौद्गल्य मुद्गल ऋषि का पुत्र विष्णु-पूजक था। प्रतिदिन प्रात: विष्णु-लक्ष्मी उसे दर्शन देते और कथा सुनाते, तदुपरांत वह जो कुछ कमाता, उसे पत्नी के हाथ में थमाता

फिर विष्णु से सुनी कथा बच्चों को सुनाता। एक दिन पत्नी की प्रेरणा से उसने विष्णु से पूछा कि अनन्य भक्त होने पर भी उसके कष्ट समाप्त क्यों नहीं होते ? विष्णु ने कर्म-चक्र की व्याख्या तथा दान का महत्त्व कह सुनाया। मौद्गल्य ने कुछ अन्न के दाने विष्णु को भेंट किये। विष्णु ने उसे सांसारिक ऐश्वर्य प्रदान किया

ब्र० पु०, १३६।-

□

यक्षावतार समुद्र-मंथन के उपरांत असुरों को हराकर देवता अहंकारी हो गये तथा शिवाराधना को भुला बैठे। शिव ने यक्षावतार लिया। यक्ष के रूप में वे देवताओं के मध्य पहुंचे। उन्होंने उनके एकत्र होने का कारण पूछा तो सब देवता समुद्र-मंथन के संदर्भ में अपना-अपना पराक्रम सुनाने लगे। यक्षावतार ने एक तिनका उनके पास फेंका और उसे काटने को कहा। इंद्र ने वज्र, विष्णु ने चक्र, इसी प्रकार सभी देवताओं ने अपने अस्त्र का प्रयोग किया किंतु तिनके पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। शिव ने यक्षावतार के रूप में उनके अहंकार का नाश करके अपने दर्शन दिये।

शि० पु०, ७।२३।-

यतिनाथ अंबुदाचल पर एक भील तथा भीलनी रहते थे। एक बार शिव ने उनकी परीक्षा लेने के निमित्त यती का रूप धारण किया और रात-भर उनके घर रहने की इच्छा प्रकट की। घर में दो से अधिक व्यक्ति नहीं आ सकते थे, अतः भील रात-भर पहरा देता रहा, भीलनी और यती घर के अंदर सोते रहे। रात में सिंहों ने भील को मारकर उसका मांस खा लिया तथा हड्डियां छोड़ दीं। भीलनी को प्रातः ज्ञात हुआ तो वह यती पर रुष्ट न होकर अपने पति के भाग्य को सराहती रही तथा उसकी अस्थियों के साथ सती होने के लिए उद्यत हुई। शिव अपने रूप में प्रकट हुए और उन्होंने उन दोनों को नल-दमयंती के रूप में जन्म लेने का वरदान दिया तथा कहा कि हंस के रूप में वे उन दोनों के मिलन का निमित्त बनेंगे। शिव का वह रूप यतिनाथ के नाम से प्रसिद्ध है।

शि० पु०, ७।४६

यदु ययाति ने शुक्राचार्य के शाप से असमय ही वृद्धावस्था प्राप्त की किंतु उसकी भोगलिप्सा समाप्त नहीं हुई थी। ययाति ने अपनी रानी देवयानी के पुत्र यदु को कुछ समय के लिए वृद्धावस्था लेकर यौवन देने के लिए कहा। यदु नहीं माना तो ययाति ने अपने दूसरे पुत्र पुरु से यही बात कही। पुरु शर्मिष्ठा का पुत्र था। उसने सहज स्वीकार कर लिया। पर्याप्त भोग-तृप्ति के उपरांत पुनः पुरु से वृद्धावस्था प्राप्त कर राजा ने पुरु का राज्याभिषेक कर दिया तथा यदु को शाप दिया—"तुम्हारे वंश में यातुधान नामक राक्षस उत्पन्न होंगे। चंद्रवशियों में तुम्हारी गणना नहीं होगी। मैं तुम्हें राज्य से भी च्युत करता हूं।"

दे० ययाति

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग ५७-५८,

यदुवंश (संहार) (दे० मूसलकांड) मुनियों से शाप मिलने पर लड़कों ने सांब का पेट देखा तो उसमें लोहे का मूसल था। वे लोग पछताते हुए उग्रसेन के पास पहुंचे। उग्रसेन ने मूसल का चूरा करवाकर समुद्र में डलवा दिया, जिसमें से लोहे का एक टुकड़ा तो एक निगल गयी तथा चूरा समुद्र में बह गया। उस चूरे से बिना गांठ की एक घास समुद्र के किनारे-किनारे उग गयी। मछुओं ने जब मछलियां पकड़ीं तो संयोगवश वह मछली भी पकड़ी गयी। उसके पेट में लोहे का वही टुकड़ा निकला। जरा नामक व्याध ने उसे अपने वाण की नोक पर लगा लिया। श्रीकृष्ण चाहते तो इस शाप का शमन कर सकते थे, किंतु वे पृथ्वी को उद्धत यदुवंशियों के भार से भी मुक्त करना चाहते थे।

श्रीमद् भा०, ११।१

उन्हीं दिनों ब्रह्मा के साथ समस्त देवताओं ने कृष्ण के पास जाकर कहा कि पृथ्वी का भार हल्का करने के लिए उन्होंने कृष्ण से अवतरित होने की प्रार्थना की थी। अब वे पुन: वैकुंठ चलें। कृष्ण ने बताया कि वे स्वयं यही निश्चय कर चुके थे; किंतु अपने लोक जाने से पूर्व उद्धत यदुवंशियों की समाप्ति भी आवश्यक समझ रहे थे। उनके संहार के उपरांत वे निश्चय ही अपने लोक जायेंगे।

कृष्ण पर अनजाने में प्रहार करने के कारण जरा नामक व्याध बहुत दुखी हुआ, किंतु कृष्ण की कृपा से उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई (शेष कथा महाभारत की तरह है)।

अर्जुन श्रीकृष्ण का कुशल-क्षेम जानने के लिए द्वारका गये तो महीनों तक वापस नही आये। युधिष्ठिर चितातुर होकर भीम को द्वारका भेज रहे थे तभी अर्जुन वहां पहुंचे, और उन्होंने बताया कि ब्राह्मणों के शापवश द्वारकावासी समस्त लोग परस्पर लड़ मरे हैं। कृष्ण की विधवाओं को अर्जुन साथ ला रहे थे पर दुष्ट गोपों ने अर्जुन को सहज ही हरा दिया और वह उन अबलाओं की रक्षा भी नहीं कर पाये। श्रीकृष्ण के शरीर-त्याग के विषय में सुनकर कुंती ने संसार से मुंह मोड़ लिया। उधर प्रभास क्षेत्र में विदुर ने भी अपना शरीर त्याग दिया। पांडवों तथा द्रौपदी ने श्रीकृष्ण की भक्ति में मन लगाकर महाप्रयाण किया।

श्रीमद् भा०, ११।६

यम यम और यमी जुड़वां भाई-बहन थे। उनकी माता सरण्यू तथा पिता सूर्य थे। एक बार युवती यमी अत्यंत कामातुरा रूप में यम के पास पहुंची। एकांत उपवन में उसने यम के सम्मुख संभोग का प्रस्ताव रखा। यम को बहन की इस चंचलता पर बहुत क्रोध और ग्लानि की अनुभूति हुई। यम ने यमी को समझाया कि सगे भाई-बहनों का विवाह-संबंध पाप है तथा उसके कामातुर हृदय को शांत किया।

यम की आयु यमी से कुछ क्षण बड़ी थी। यम ने मृत्यु का अंगीकरण किया था, अत: उसका प्रशस्त पथ मृत्यु है। कपोत तथा उलूक उनके दूत माने जाते हैं। उनके दो कुत्ते हैं—एक चितकबरा और दूसरा काला। उनके अश्वों के स्वर्ण-नेत्र हैं तथा लौह-खुर। यम परलोक में पितरों के आवास का प्रबंध करते हैं।

ऋ०, १०।१०, १०।१५४, ३।३६
अथर्ववेद, कांड १८, सूक्त १।मंत्र १-१६।-

नारद ने रावण को सूर्य-पुत्र यम से युद्ध करने के लिए प्रेरित किया तथा यम को रावण से। दोनों का परस्पर युद्ध सात दिन और सात रात तक चलता रहा। रावण बहुत घायल हो गया। यम ने उसे मारने के लिए भयानक कालदंड निकाला। ब्रह्मा ने प्रकट होकर कहा—"हे यम ! इस कालदंड का प्रयोग कर तुम बहुतों का नाश कर दोगे। रावण ने हमसे वर प्राप्त किया है कि देवताओं, यक्षों आदि से कोई भय नहीं, अत: तुम इसका प्रयोग मत करो।" यम ने उनकी बात स्वीकार की तथा युद्धभूमि से अंतर्धान हो गया। रावण ने यम को पराजित हुआ मान लिया।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग २०, २१, २२

एक बार तपस्वी रूप में यमराज राम के दरबार में पहुंचे। राम से उन्होंने कहा कि एकांत में बात करेंगे। जो इस मध्य उन्हें देखेगा या उनकी बात सुनेगा, वह मारा जायेगा। राम ने इस शर्त को स्वीकार करके द्वार पर लक्ष्मण को खड़े होने की आज्ञा दी तथा सबको हटाकर मुनि से बात करने लगे। मुनि ने कहा—"मैं ब्रह्मा का दूत हूं। उन्होंने कहलाया है कि सृष्टि की उत्पत्ति मुझे सौंपकर पालन का कार्यभार आपने संभाला था। पहले एक बार वामन के रूप में पृथ्वी पर अवतरित हुए थे। अब आप राम के रूप में अवतरित हुए हैं। आपने समस्त दैत्यों का संहार करके अपना कार्य समाप्त कर दिया है। यदि आप उचित समझें तो ब्रह्मलोक में आकर देवताओं को निर्भय कीजिए।" राम ने अनुमति दे दी।

इधर इन दोनों की बातचीत चल रही थी, उधर दुर्वासा द्वार पर पहुंचे और उन्होंने राम से तुरंत मिलने की इच्छा प्रकट की। लक्ष्मण के सेवा पूछने तथा यह कहने पर कि राम किसी काम में व्यस्त हैं, उन्होंने कहा कि यदि तुरंत राम के दर्शन नहीं हुए तो वे समस्त रघुकुल को नष्ट होने का शाप दे देंगे। लक्ष्मण ने सोचा, एक मेरे प्राण समस्त कुल-नाश के समक्ष तुच्छ हैं, अत: लक्ष्मण ने काल के सामने ही राम को संदेश दिया। राम तुरंत बाहर आये। दुर्वासा भूखे थे, उन्हें राम ने भोजन से तृप्त किया। फिर भरी सभा में राम ने लक्ष्मण का परित्याग करते हुए कहा कि हत्या और परित्याग एक-दूसरे के समकक्ष हैं। लक्ष्मण ने सरयू के तट पर समाधि लगाकर इंद्रियों का मार्ग रोक दिया। इंद्र उन्हें सशरीर स्वर्ग ले गये। इस प्रकार विष्णु का चौथा भाग स्वर्ग में पहुंचा।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग १०३-१०६,

यमगीता यमराज ने नचिकेता को जो उपदेश दिया था, उसे अग्निपुराण में यमगीता कहा गया है। यम ने नचिकेता से कहा—"आत्मा को रथी, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथी तथा मन को लगाम समझना चाहिए। अविवेकी सारथी संसार-रूपी गर्त में गिर जाता है, परमपद परमात्मा को प्राप्त नहीं करता।"

अ० पु०, ३८२

यमतीर्थ (क) गौतमी के उत्तरी तट पर अनुह्लाद नामक कबूतर का घोंसला था। वह यमवंशी था तथा उसकी पत्नी का नाम हेति था। दक्षिणी तट पर अग्निवंशी उलूक-उलूकी रहते थे। दोनों की परस्पर शत्रुता थी। एक बार दोनों के युद्ध में हेति ने अग्नि की ज्वाला से घिरे पति और पुत्र को देखा तो वह अग्नि की शरण में गयी। दूसरी ओर उलूकी यम की शरण में गयी। दोनों अपने-अपने पति तथा पुत्र की रक्षा चाहती थीं। अग्नि तथा यम ने उन्हें अभयदान दिया तथा नदी के दोनों तटों पर दो तीर्थ बन गये जिनके नाम यम तथा अग्नि के नाम पर पड़े।

ब्र० पु०, १२५।-

(ख) सरमा नामक देव शुनि (देवताओं की कुतिया) उनकी गायों की रक्षा किया करती थी। एक बार असुरों ने उसे खिला-पिलाकर बहला लिया तथा धोखे से समस्त पशु एवं गउएं चुराकर अपने यज्ञ का पशु बनाने के लिए ले गये। सरमा ने इंद्र से जाकर कहा कि राक्षसों ने उसे मारा-पीटा, बांधा और पशु ले गये। देवताओं को पता चल गया कि वह झूठ बोल रही है। इंद्र ने उसे लात मारी तो उसके मुंह से दैत्यों का पिलाया दूध निकल पड़ा। इंद्र ने उसे शाप दिया कि वह मर्त्यलोक में अज्ञानी पापिनी कुतिया हो जाय। विष्णु शाङ्‌र्ग धनुष से असुरों का नाश करके पशुओं को ले आये। सरमा के दो वायु-भक्षी श्वान पुत्र थे। वे भी देवताओं का सदैव अनुसरण करनेवाले थे तथा यम के विशेष प्रिय पात्र थे। उन्होंने यम को सरमा के शाप के विषय में बताया। यम ने प्रार्थना से देवताओं को प्रसन्न करके उनके द्वारा विष्णु से प्रार्थना करवाकर सरमा को शाप-मुक्त करवा दिया। वह स्थान यमतीर्थ नाम से विख्यात है।

ब्र० पु०, १३१।-

यमलार्जुन कृष्ण को दूध पिलाते हुए यशोदा ने चूल्हे पर दूध उबलता देखा तो कृष्ण को छोड़ उधर बढ़ीं। कृष्ण ने रुष्ट होकर मक्खन, दही, दूध की मटकियां फोड़ डालीं। यशोदा ने नाराज होकर उन्हें ऊखल से बांधने का प्रयत्न किया। कृष्ण ने विराट रूप के दर्शन कराए। प्रत्येक रस्सी कृष्ण को बांधने में छोटी पड़ने लगी। अनेक रस्सियां जोड़कर भी उन्हें बांधना कठिन हो गया। फिर एकाएक यशोदा की भक्ति पर प्रसन्न हो कृष्ण लघुकाय होकर (प्रेम के) बंधन में बंध गये। यशोदा अपने कामों में व्यस्त हो गयीं और कृष्ण ऊखल सहित भाग खड़े हुए। उनकी ऊखल यमलार्जुन वृक्षों के बीच में फंस गयी। ऊखल खींचने की प्रक्रिया में दोनों पेड़ जड़ से उखड़ गये। उन दोनों ने दो दिव्य पुरुषों का रूप धारण कर लिया तथा अपनी मुक्ति के लिए कृष्ण के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन की। पूर्वजन्म में वे दोनों कुबेर के पुत्र थे। उनका नाम नलकूबर तथा मणिग्रीव था। उनकी गणना रुद्र के गणों में भी होने लगी, अतः वे मदांध हो गये। एक बार वे अप्सराओं के साथ जलक्रीड़ा कर रहे थे। उधर से नारद जा निकले। अप्सराओं ने लज्जावश तुरंत कपड़े धारण कर लिए किंतु वे दोनों ऋषि की ओर बिना ध्यान दिए क्रीड़ा में मग्न रहे। अतः नारद ने कहा—"मदांध दोनों जड़ वृक्षों की योनि में जन्म लें, तदनंतर श्रीकृष्ण के सान्निध्य से उनका उद्धार हो।" अतः वे दोनों वृक्षों के रूप में ब्रज में उत्पन्न हुए थे। श्रीकृष्ण के अनुग्रह से वे शापमुक्त हो गये।

श्रीमद् भा०, १०।६-१०।-
वि० पु०, ५।६।-
हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व, ८।-

ययाति नहुष के पुत्र का नाम ययाति था। उनकी दो रानियां थीं। उनमें से एक दिति की पौत्री और वृषपर्वा दैत्य की पुत्री शर्मिष्ठा थी। दूसरी का नाम देवयानी था। वह शुक्र की द्वितीय कन्या थी। ययाति का शर्मिष्ठा से अधिक प्रेम था। शर्मिष्ठा ने पुरु को और देवयानी ने यदु को जन्म दिया। यदु जब बड़ा हुआ तो उसने अपनी माता से कहा—"मां, पिता आपकी अपेक्षा दूसरी मां को अधिक प्यार करते हैं। या तो आप मेरे साथ अग्नि में कूदकर भस्म हो जायें या फिर मुझे ही आज्ञा दें।" मां ने व्याकुल होकर अपने पिता शुक्राचार्य से सब कह डाला। शुक्र ने क्रुद्ध होकर ययाति को शाप दिया कि वह वृद्ध हो जाय। ययाति जब वृद्ध हुआ तब भी उसकी कामेच्छा बनी हुई थी, अतः उसने यदु से कहा कि वह उसकी वृद्धावस्था धरोहर रूप में रख ले और यौवन राजा

को दे दे, क्योंकि राजा की भोग-लिप्सा समाप्त नहीं हुई थी। यदु ने नहीं माना तो राजा ने यही प्रस्ताव पुरु के सामने रखा। पुरु ने सहर्ष स्वीकार कर लिया। कुछ वर्ष बाद ययाति ने उससे अपनी वृद्धावस्था वापस ले ली, उसका यौवन उसे दे दिया, साथ ही पुरु को उत्तराधिकारी नियुक्त करते हुए यदु को राज्य से वंचित कर दिया। कालांतर में तप करते हुए ययाति ने अपना शरीर त्याग दिया।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग ५८-५६,

कुछ कन्याएं एक सरोवर में जलक्रीड़ा कर रही थीं। इंद्र वायु का रूप धारण करके वहां पहुंचे तथा किनारे पर रखे उनके वस्त्रों को उन्होंने अस्त-व्यस्त कर दिया। जब वे कपड़े पहनने लगीं तो देवयानी तथा दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा के कपड़े परस्पर बदल गये, अतः दोनों आपस में लड़ने लगीं। देवयानी को गुरुपुत्री होने का गर्व था और शर्मिष्ठा ने स्वयं राजकन्या होने के नाते शुक्राचार्य को भिखमंगा ब्राह्मण कहा तथा देवयानी को उसने एक अंधे कुएं में धकेल दिया। नहुष-पुत्र राजा ययाति उधर से जा रहे थे जिन्होंने उसका दाहिना हाथ पकड़कर कुएं से बाहर निकाला। देवयानी रो-बिलख रही थी। पिता के पूछने पर उसने सब वृत्तांत कह सुनाया। शुक्राचार्य ने राजा वृषपर्वा से कहा कि वे अपनी पुत्री को संतप्त करके वहां नहीं रहना चाहते तथा देवताओं के पास चले जायेंगे। वृषपर्वा ने अपना समस्त वैभव देवयानी को अर्पित कर दिया तथा उसके कहने पर शर्मिष्ठा को दासी के रूप में उसकी सेवा में छोड़ दिया। देवयानी ने राजा ययाति का वरण किया। शर्मिष्ठा दासी के रूप में उसके साथ गयी। देवयानी के दो पुत्र हुए—यदु तथा तुर्वसु। शर्मिष्ठा ने देवयानी की चोरी से राजा से संबंध स्थापित किया तथा उसके तीन पुत्र हुए—द्रुह्यु, अनु तथा पुरु। जब देवयानी को ज्ञात हुआ तो वह क्रुद्ध होकर अपने पिता के पास गयी। पिता ने ययाति को बूढ़े होने का शाप दिया तथा यह सुविधा भी दी कि यदि कोई उसकी वृद्धावस्था लेकर उसे अपना यौवन देगा तो उसकी संतान राज्याधिकारी होगी। ययाति की भोग-लिप्सा अभी समाप्त नहीं हुई थी, अतः उसने क्रमशः यदु, तुर्वसु, द्रुह्यु तथा अनु से उनका यौवन मांगा। उनके मना कर देने पर राजा ने उन्हें क्रमशः ये शाप दिये—(१) यदु की संतान राज्य-भोग न करे। (२) तुर्वसु चांडाल आदि श्रेणी के लोगों पर राज्य करे। (३) द्रुह्यु ऐसे प्रदेश में चला जायेगा, जहां घोड़े-हाथी की सुविधा नहीं होगी। उसे निरंतर नाव में घूमना पड़ेगा तथा उसकी संतान राजा न कहलाकर भोज कहलाएगी। (४) अनु को यौवन में ही वृद्धावस्था के सब दोष आ घेरेंगे तथा उसकी संतान यौवन में ही मर जायेगी। वह बूढ़े जैसा होकर अग्निहोत्र का भी त्याग कर देगा।

पुरु ने ययाति को अपना यौवन दे दिया, फलस्वरूप पिता ने आशीष दी कि उसकी सारी प्रजा समस्त कामनाओं से संपन्न होगी। एक हजार वर्ष पूर्ण होने पर राजा ययाति ने पुरु का यौवन उसे वापस कर दिया। पुरु का राज्याभिषेक कर दिया तथा स्वयं वनवास की दीक्षा ली।

वन में संयम से रहते हुए ययाति ने एक हजार वर्ष तक कभी जल, कभी वायु का आहार लेकर समय व्यतीत किया। तत्पश्चात् वे स्वर्ग चले गये। एक सहस्र वर्ष तक वहां रहने के उपरांत उन्होंने इंद्र से बात करते हुए कहा—"मेरा पुण्य समस्त देवताओं और मानवों से बढ़-चढ़कर है। कोई भी मेरी समानता नहीं कर सकता।" आत्मस्तुति तथा परतिरस्कार के कारण उनके पुण्य नष्ट हो गये और वे पतित होकर भूमि की ओर बढ़े। उनकी याचना पर इंद्र ने यह वर दिया कि उन्हें सज्जनों का संग प्राप्त होगा। मार्ग में उन्हें राजर्षि अष्टक मिले। अष्टक ने परिचय तथा पतन का कारण जाना। वसुमना, शिवि, अष्टक तथा प्रतर्दन ने अपने समस्त पुण्य ययाति को अर्पित करने का प्रयास किया जिससे कि वे भूमि की ओर पतित न हों किंतु ययाति ने सभी का प्रतिग्रह अस्वीकार कर दिया। तभी मृगव्रत का पालन करती हुई माधवी वहां आ पहुंची। ययाति उसके पिता थे तथा वसुमना आदि उसीके पुत्र थे। माधवी ने उनका परस्पर परिचय करवाया तथा अपने संपूर्ण पुण्यलोक भी उनको समर्पित करने चाहे। ययाति ने कहा—"मुझे मेरे दौहित्रों ने ही आज तारा है, अतः आज से पितृकर्म में दौहित्रों को परम पवित्र माना जायेगा।" तदनंतर आकाश में विद्यमान पांच रथों पर आरूढ़ होकर वे सभी पुण्य के बल से स्वर्ग की ओर बढ़े।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय ७६ से ६३ तक

राजा नहुष के पुत्र का नाम ययाति था। गालव ने ययाति की कन्या माधवी उन्हें लौटा दी तो वे माधवी के स्वयंवर

का विचार करके गंगा-यमुना के संगम पर बने आश्रम में जाकर रहने लगे। पुरु तथा यदु दोनों भाई स्वयंवर के निमित्त हाथ में हार लिए माधवी को रथ में लेकर आश्रम की ओर चले। मार्ग में अनेक नाग, गंधर्व राजा इत्यादि स्वयंवर में भाग लेने के लिए इकट्ठे थे किंतु माधवी ने तपोवन का वरण किया तथा राग-द्वेष रहित हो तपस्या में लग गयी। वह हरिणों के साथ उन्हींकी तरह घास चरते हुए रहने लगी। राजा ययाति की ऐहिक आयु समाप्त हुई तो वे परलोक में प्रतिष्ठित हुए। ययाति अपने स्वर्गीय वैभव से स्वयं चमत्कृत थे। धीरे-धीरे उनका मद बढ़ता गया और तेज नष्ट होता गया। अंततोगत्वा उनकी दिव्य पुष्पमाला इत्यादि मुरझा गयीं और वे स्वर्ग से नीचे गिरा दिये गये। पतित होते हुए उन्होंने तीन बार सत्पुरुषों के बीच गिरने की इच्छा प्रकट की, अत: वे वाजपेय यज्ञ करते हुए प्रतर्दन, वसुमना, शिवि तथा अष्टक के मध्य जाकर गिरे। उसी समय उन राजाओं की माता माधवी उधर आ निकली। यह जानकर कि ययाति के पुण्य क्षीण हो गये हैं, उन सबने अपने-अपने यज्ञों का फल और धर्म ययाति को समर्पित किया। गालव मुनि ने वहां पहुंचकर अपनी तपस्या का आठवां भाग समर्पित किया। इस प्रकार ययाति को पुन: स्वर्ग-लोक की प्राप्ति हुई। स्वर्ग में उन्होंने ब्रह्मा से अपने पतन का कारण पूछा तो ब्रह्मा ने कहा कि अभिमानपूर्ण बरताव के कारण ही उन्हें पतन सहना पड़ा था।

म० भा०, वनपर्व, १६५
उद्योगपर्व, १२०, १२१, १२३
द्रोणपर्व, ६३।-

नहुष के पुत्र का नाम ययाति था। जब इंद्राणी के प्रति कामातुर भाव होने के कारण नहुष अजगर बन गया तब ययाति ने राज्य संभाला। ययाति शिकार खेलने वन की ओर गया। उसी वन में देवयानी तथा शर्मिष्ठा भी अपनी सखियों के साथ गयी हुई थीं। शुक्राचार्य की कन्या का नाम देवयानी था तथा दैत्यराज वृषपर्वा की पुत्री का नाम शर्मिष्ठा था। वे दोनों अपनी सखियों समेत तालाब में जलक्रीड़ा कर रही थीं। शिव और पार्वती उधर जा निकले। वे सब पानी से बाहर निकल जल्दी-जल्दी वस्त्र पहनने लगीं तो गलती से देवयानी ने शर्मिष्ठा के वस्त्र पहन लिये। देवयानी गुरुपुत्री थी तथापि शर्मिष्ठा ने उसे बहुत बुरा-भला कहा कि नौकरानी होकर स्वामिनी के वस्त्र पहन लिये तथा उसे नग्न कर एक कुएं में धकेल दिया। संयोगवश राजा ययाति को प्यास लगी। कुएं के अंदर निर्वस्त्रा नारी को देख उसने अपना अंगवस्त्र उसे दिया और हाथ पकड़कर उसे बाहर निकाल लिया। देवयानी ने कातर भाव से उससे विवाह करने की इच्छा प्रकट की। साथ ही यह भी बताया कि बृहस्पति पुत्र ने उसे शाप दे रखा है कि कोई ब्राह्मण उससे विवाह नहीं करेगा। उधर पिता से मिलने पर देवयानी ने शर्मिष्ठा के दुर्व्यवहार के विषय में बताया तो शुक्राचार्य नगर छोड़कर अन्यत्र चलने के लिए उद्यत हो उठे। वृषपर्वा के अनुनय-विनय पर उन्होंने वहां रहने के लिए यह शर्त रखी कि देवयानी की ससुराल में दासी के रूप में शर्मिष्ठा को भेजा जाये। राजा ने मान लिया। ययाति के साथ देवयानी का विवाह होने पर शर्मिष्ठा उसके साथ दासी के रूप में गयी। ययाति ने दोनों से ही पुत्र प्राप्त किये। देवयानी को राजा और शर्मिष्ठा के संबंधों का ज्ञान हुआ तो वह शुक्राचार्य के पास गयी। शुक्र ने ययाति को तत्काल वृद्ध होने का शाप दिया तथा यह भी कहा कि यदि कोई स्वेच्छा से अपना यौवन देना चाहेगा तो ययाति बुढ़ापे से यौवन में बदल जायेगा। उसने अपने सभी बेटों से यौवन की याचना की, किंतु केवल पुरु ने अपना यौवन से उसका बुढ़ापा बदलना स्वीकार किया। ययाति अनेक वर्षों तक भोग-लिप्त रहा। तदनंतर अपने कृत्यों पर पश्चाताप कर उसने पुन: पुरु से अपना बुढ़ापा वापस लिया तथा विरक्त भाव से वन की ओर प्रस्थान किया।

श्रीमद् भा०, नवम स्कंध, ६।१८-१९
वि० पु०, ४।१०।-

नहुष के पुत्र ययाति की दो पत्नियां थीं। बड़ी पत्नी का नाम देवयानी था। वह शुक्र-कन्या थी। छोटी (वृषपर्वा की कन्या) शर्मिष्ठा तीन पुत्रों (द्रुह्यु, अनु, पुरु) की मां थी जबकि देवयानी के दो ही पुत्र (यदु और तुर्वसु) थे। देवयानी इसी कारण से रुष्ट होकर शुक्र के पास गयी। शुक्र ने उसकी बातों में आकर ययाति को जरा प्रदान कर दी। ययाति ने शुक्र को प्रसन्न करके वर मांगा कि वह अपने किसी भी पुत्र को अपनी जरा दे सके अथवा जरा ग्रहण न करनेवाले को शाप दे सके। तदनंतर समस्त पुत्रों में से मात्र पुरु ने जरा ग्रहण की, शेष पिता से शापित रहे। एक सहस्र वर्ष भोग के उपरांत

ययाति ने पुरु को यौवन लौटाना चाहा किंतु पुरु ने कहा कि जरा में वह वासनामुक्त हो चुका है, अतः यौवन की कामना उसे नहीं रही। पुरु की तपस्या के फलस्वरूप समस्त भाई शापमुक्त हुए तथा पिता की जरा का नाश हो गया।

ब्र० पु०, १२, १४६ -

यवक्रीत भारद्वाज तथा रैभ्य दोनों परस्पर मित्र थे। रैभ्य के अर्वावसु तथा परावसु नामक दो बेटे थे। पुत्रों सहित रैभ्य बहुत विद्वान थे। भारद्वाज तपस्वी मुनि थे। उनके बेटे का नाम यवक्रीत था। यवक्रीत ने स्पृहावश रैभ्य तथा उनके बेटों की विद्वत्ता से अधिक वेदों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए घोर तपस्या की। इंद्र ने प्रकट होकर उनकी तपस्या का उद्देश्य जानना चाहा। यवक्रीत ने बताया कि वह चाहता है कि प्रत्येक ब्राह्मण को बिना पढ़े ही वेदों का ज्ञान हो जाय। इंद्र ने कहा—"वे लोग स्वाध्याय से विद्वान् बने हैं, तुम तपस्या के माध्यम से समस्त ब्राह्मणों को वेदवेत्ता नहीं बना सकते। स्वाध्याय करो।" यवक्रीत नहीं माना; उसने फिर से तपस्या प्रारंभ कर दी और कहा कि वह अपने शरीर का एक अंग अग्नि में होम कर देगा। इंद्र ने एक युक्ति सोची और गंगा में जहां यवक्रीत स्नान करने जाता था, इंद्र एक वृद्ध पुरुष के रूप में जा बैठे। यवक्रीत ने देखा कि एक वृद्ध मुट्ठी में रेत भर-भरकर नदी में डाल रहा है। पूछने पर जाना कि वह इस प्रकार नदी पर पुल बनाने के लिए प्रयत्नशील है। यवक्रीत ने उसे बहुत समझाया कि उसका प्रयत्न व्यर्थ है, इस प्रकार पुल नहीं बन सकता। इंद्र अपने वास्तविक रूप में प्रकट होकर बोले—"इसी प्रकार तुम्हारा प्रयत्न भी व्यर्थ है। बिना पढ़े ब्राह्मणों को वेदों का ज्ञान नहीं मिल सकता।" यवक्रीत के आग्रह पर इंद्र ने यवक्रीत तथा उसके पिता भारद्वाज को वेदविषयक ज्ञान प्राप्त करने का वरदान दिया। यवक्रीत प्रसन्न होता हुआ अपने पिता के पास पहुंचा। भारद्वाज से उसने सब कुछ कह सुनाया तो भारद्वाज बोले—"बेटा, ऐसे वरदान से ज्ञान प्राप्त करने पर बालक अहंकारी हो जाते हैं और शनैः-शनैः नष्ट हो जाते हैं। रैभ्य तथा उसके दोनों पुत्र शक्तिशाली तथा विद्वान् हैं, तुम उनके आश्रम में मत जाना।" यवक्रीत ने स्वीकार कर लिया। कालांतर में वह रैभ्य के आश्रम में गया। वहां परावसु की पत्नी के अतिरिक्त और कोई नहीं था। यवक्रीत ने एकांत में उसके साथ रमण किया। रैभ्य जब आश्रम आये तो रोती हुई पुत्रवधू के समस्त समाचार जानकर क्रुद्ध हो उठे तथा यवक्रीत को मारने के निमित्त अपनी एक जटा उखाड़कर अग्नि में होम की। फलतः एक सुंदरी के रूप में कृत्या प्रकट हुई। पुनः एक और जटा को होम करके एक भयानक राक्षस को प्राप्त कर मुनि ने उन दोनों को आदेश दिया कि वे यवक्रीत को मार डालें। कृत्या ने अपने रूप पर आसक्त कर यवक्रीत के कमंडलु का हरण कर लिया। फिर अशुचि यवक्रीत के प्राणहनन के निमित्त राक्षस उसकी ओर अग्रसर हुआ। वह जान बचाने के लिए भटकने लगा। नदी या तालाब के किनारे पहुंचने पर उसे पता चलता कि वहां का पानी सूख गया है। अंत में दौड़ता हुआ वह पिता की यज्ञशाला तक पहुंच गया। वहां एक अंधा शूद्र जातीय रक्षक नियुक्त था। उसने अंदर घुसने के लिए प्रयत्नशील यवक्रीत को पकड़ लिया और राक्षस ने उसे शूल से मार डाला। आश्रम में लौटने पर अपने अंधे सेवक से सब समाचार जानकर भारद्वाज बहुत क्रुद्ध हुए तथा उन्होंने शाप दिया कि रैभ्य का हनन उनके बड़े बेटे के हाथों हो। वृहद्द्युम्न ने एक यज्ञ का अनुष्ठान प्रारंभ किया। उसने रैभ्य के दोनों बेटों को आमंत्रित किया। एक रात उनींदे परावसु ने काली मृगचर्म पहने हुए अपने पिता को गहन वन में आते देखा तो हिंसक पशु समझ उनको मार डाला। तदनंतर वह अपने भाई से बोला—"मुझसे ब्रह्महत्या हो गयी है। तुम ब्रह्महत्या-निवारण के हेतु व्रत करो तथा मैं राजा का यज्ञ संपादन कर दूंगा।" अर्वावसु ने उसकी बात मान ली। जब ब्रह्महत्या का दोषनिवारण कर वह राजा की यज्ञस्थली पर पहुंचा तो परावसु ने उसे ब्रह्महत्यारा बताकर वहां से निकलवा दिया। अर्वावसु बहुत दुखी होकर घर लौटा। उसने सूर्य की उपासना की। सूर्य ने प्रसन्न होकर उसे दर्शन दिये और वर मांगने के लिए कहा। अर्वावसु ने सूर्य से कहा कि उसके पिता, भारद्वाज तथा यवक्रीत—सभी जीवित हो जायें तथा भाई पिता की मृत्यु के दोष से मुक्त हो जाये, साथ ही यह भी भूल जाये कि उसने पिता की हत्या की थी। यवक्रीत अपने पिता के साथ पुनर्जीवित हो उठा तो उसने अग्नि आदि देवताओं से पूछा कि उसने वेदों का अध्ययन किया था, फिर मुनि रैभ्य उसे अनुचित ढंग

से कैसे मार सके? देवताओं ने बताया कि रैभ्य जैसा उत्तम ज्ञान उसे नहीं था, क्योंकि उसने विना गुरु के तथा विना कष्ट झेले वेद पढ़े थे, अत: ज्ञान की गहनता नहीं थी।

म० भा०, वनपर्व, १३५।१२ से ६० तक, १३६.१३७

यश वाराणसी में यश नामक श्रेष्ठीकुमार था। वह अत्यंत विलासपूर्ण जीवन यापन करता था। एक रात विलास से आपूरित उसके हृदय में अपने जीवन के प्रति घृणा का भाव उत्पन्न हुआ। वह भगवान बुद्ध की शरण में गया। उनका उपदेश सुनकर वह मलिनता रहित प्रव्रजित हो गया। तदनंतर उसकी मां, पिता, भूतपूर्व पत्नी तथा मित्रों ने भी प्रव्रज्या ग्रहण की। उसके मित्रों में मुख्यत: चार लोग थे: विमल, सुबाहु, पूर्णजित् तथा गवांपति।

बु० च०, १।५।-

यशोदा पूर्वकाल में एक श्रेष्ठ वसु थे। उनका नाम द्रोण था तथा उनकी पत्नी का नाम धरा था। उन्होंने ब्रह्मा के आदेशों का पालन कर उनसे वर मांगा कि जब पृथ्वी पर जन्म लें तब वे विष्णु के परम भक्त हों, अत: द्रोण और धरा ने नंद तथा यशोदा के रूप में ब्रज में जन्म लिया। श्रीकृष्ण उनके पुत्र हुए। वे दोनों कृष्ण के विराट् रूप के दर्शन पर पुलकित हो उठे। एक बार मिट्टी खाने पर उन्होंने बालक का मुंह खुलवाकर देखा तो वहां चर-अचर संपूर्ण जगत् के दर्शन हुए। वे लोग जान गये कि श्रीहरि का अवतरण हुआ है।

श्रीमद् भा०, १०।८।-

याज्ञवल्क्य मुनि याज्ञवल्क्य ने घोर तपस्या तथा सूर्य की आराधना की। सूर्य ने प्रसन्न होकर वर मांगने के लिए कहा। याज्ञवल्क्य ने यजुर्मंत्रों का ऐसा ज्ञान प्राप्त करने का वर मांगा जैसे पहले किसीको उपलब्ध न रहा हो। सूर्य ने मुनि को मुंह खोलने के लिए कहा। खुले मुंह से सरस्वती ने शरीर में प्रवेश किया। सरस्वती के तेज की तपन से घबराकर पहले तो मुनि पानी में घुस गये, फिर सूर्य के समझाने से वे बाहर निकल आये। सूर्य ने कहा—"कालांतर में तपन समाप्त हो जायेगी।" सरस्वती को स्मरण कर मुनि ने अनेक शास्त्रों का पारायण किया तथा सौ शिष्यों को शतपथ भी पढ़ाया। एक बार विश्वावसु नामक गंधर्व विचरते हुए उनके पास पहुंचे। उन्होंने वेद से संबद्ध चौबीस प्रश्न पूछे। याज्ञवल्क्य ने सरस्वती का आवाहन कर सभी प्रश्नों का उचित उत्तर दे दिया। उन्होंने यह भी बताया कि चारों वर्ण ब्रह्म से संबद्ध हैं। ब्रह्म के मुख से ब्राह्मणों, भुजाओं से क्षत्रियों, नाभि से वैश्यों तथा पैरों से शूद्रों का प्रादुर्भाव हुआ।

म० भा०, शांतिपर्व, ३१८।-

वैशंपायन ने अपने शिष्यों को यजुर्वेद की सत्ताईस शाखाओं की शिक्षा दी। ऋषिगणों ने यह नियम बनाया कि जो कोई महामेरू पर स्थित उनके समाज में सम्मिलित नहीं होगा, उसे सात रात्रियों के उपरांत ब्रह्महत्या का दोष लगेगा। उस नियम का केवल वैशंपायन ने ही उल्लंघन किया, अत: उनका चरण-स्पर्श करने पर उनके भानजे की मृत्यु हो गयी। उन्होंने अपने शिष्यों से अपनी ब्रह्महत्या दूर करने के लिए व्रत रखने को कहा। शिष्यों में याज्ञवल्क्य विशेष उत्साही थे। उन्होंने शेष ब्राह्मणों को निस्तेज बताकर अकेले ही व्रत करने की बात कही। वैशंपायन ने याज्ञवल्क्य के मुंह से अन्य ब्राह्मणों के प्रति अपमानजनक बात सुनकर उन्हें दी हुई विद्या वापस मांगी। याज्ञवल्क्य ने रुधिरमंडित यजुर्वेद का वमन कर दिया। अन्य शिष्यों ने 'तीतर' के रूप में उस वमित यजुर्वेद को ग्रहण किया, अत: वे सब 'तैत्तिरीय-यजु-शाखाध्यायी' कहलाये। याज्ञवल्क्य ने सूर्य की उपासना की तथा सूर्यदेव की कृपा से उन यजु-श्रुतियों को पढ़ा जिनसे वैशंपायन भी अपरिचित थे। सूर्य ने अश्व के रूप में प्रकट होकर यजुर्वेद की शिक्षा दी थी। उसकी विभिन्न शाखाओं को जिन ब्राह्मणों ने पढ़ा था, वे 'वाजि' कहलाए। शाखाओं का विभाजन याज्ञवल्क्य ने किया।

वि० पु०, ३।५

युक्ताश्व वसिष्ठ ऋषि इक्ष्वाकुवंशी पिजवन पुत्र सुदास का पुरोहित था। सुदास पिजवन ने वसिष्ठ ऋषि को अपनी स्त्रियों की रखवाली का काम सौंप दिया। वसिष्ठ कहीं सनिदान-सभा में जाने लगा तो उसने छोटे भाई युक्ताश्व से कहा कि इनकी भार्याओं का तू अध्यक्ष हो जा। उनके जो बच्चे पैदा हुए, उनमें जो श्रेष्ठ थे, वे तो युक्ताश्व ने अपने पास रख लिये और उन्हें अपने बच्चे कहने लगा और जो पापी व निकृष्ट थे, उन्हें राज-रानियों की संतान बता दिया। इस प्रकार वह उत्पन्न शिशुओं की अदला-बदली करता रहा। कालांतर में सौदासों को पता चला तो उन्होंने उसे आड़े हाथों लिया

और कहा 'स्तेनोऽस्त्यनृषि:' अर्थात् तू चोर है । ऋषि नहीं है ।

जै० ब्रा०, ३।२३

युधिष्ठिर राजसूय यज्ञ के बाद युधिष्ठिर ने सम्राट-पद प्राप्त किया । उन्हें बधाई देने के लिए द्वैपायन व्यास आये । बात-ही-बात में उन्होंने कहा कि प्रत्येक उत्पात का फल १३ वर्ष तक चलता है । अत: शिशुपाल-वध के फलस्वरूप युधिष्ठिर को निमित्त बनाकर एक युद्ध होगा जिसमें क्षत्रियों का विनाश होगा । इस भविष्यवाणी को सुनकर युधिष्ठिर स्वयं मरने का निश्चय करने के लिए उद्यत हो उठे किंतु अर्जुन ने उन्हें समझा-बुझाकर शांत किया ।

कौरवों से द्यूतक्रीड़ा में हारने के बाद पांडव तथा द्रौपदी काम्यक वन में चले गये । दिव्यास्त्रों की प्राप्ति के लिए अर्जुन तपस्या करने इंद्रकील पर्वत पर चले गये । शेष पांडव तथा द्रौपदी उनकी चिंता में रत थे । उन्हीं दिनों वृहदश्व मुनि ने युधिष्ठिर को भांति-भांति का उपदेश दिया । उन्होंने अश्वविद्या और द्यूतक्रीड़ा का रहस्य भी चारों पांडवों को बता दिया ।

म० भा०, सभापर्व, ४६, ८०

महाभारत-युद्ध प्रारंभ होने से पूर्व युधिष्ठिर क्रमश: भीष्म, द्रोण तथा कृपाचार्य के पास गये । उन्हें प्रणाम कर उनसे विजय-प्राप्ति का वरदान लिया तथा उनसे उन लोगों की मृत्यु का उपाय भी पूछा । भीष्म ने कहा कि वे बाद में बतायेंगे, क्योंकि अभी उनका मृत्युकाल भी नहीं आया है । द्रोण ने कहा—" 'अप्रिय समाचार' प्राप्त कर मेरे हाथ से शस्त्र गिर जाते हैं—ऐसे समय में कोई मेरा हनन कर सकता है ।" कृपाचार्य ने कहा कि युधिष्ठिर की विजय निश्चित है । तदुपरांत युधिष्ठिर ने शल्य को प्रणाम कर प्रार्थना की कि यदि वह कर्ण का सारथी बने तो उसे हतोत्साहित करता रहे । शल्य ने स्वीकार कर लिया ।

महाभारत-युद्ध में द्रोण की इच्छा युधिष्ठिर को बंदी बना लेने की थी । कृष्ण ने यह बात भांप ली थी । अत: वे युधिष्ठिर को द्रोण के पास नहीं जाने देते थे । घटोत्कच के वध के उपरांत युधिष्ठिर बहुत कातर हो उठे । घटोत्कच ने वनवासकाल से ही पांडवों का बहुत साथ दिया था । कृष्ण ने युधिष्ठिर को समझाया कि यदि कर्ण ने घटोत्कच पर शक्ति का प्रयोग न किया होता तो अर्जुन का वध निश्चित था । युद्ध के चौदहवें दिन व्यास मुनि ने प्रकट होकर बताया कि तब से पांचवें दिन पांडवगण विजयी हो जायेंगे तथा वसुधा पर उनका एकछत्र राज्य होगा । अगले दिन द्रोण ने महाभयंकर युद्ध का श्रीगणेश किया । जो रथी सामने आता, वही मारा जाता । श्रीकृष्ण ने पांडवों को समझा-बुझाकर तैयार कर लिया कि वे द्रोण तक अश्वत्थामा की मृत्यु का समाचार पहुंचा दें जिससे कि युद्ध में द्रोण की रुचि समाप्त हो जाय । भीम ने मालव नरेश इंद्रवर्मा के अश्वत्थामा नामक हाथी का वध कर दिया । उसने द्रोण को 'अश्वत्थामा मारा गया' समाचार दिया । द्रोण ने उसपर विश्वास न कर युधिष्ठिर से समाचार की सच्चाई जाननी चाही । युधिष्ठिर अपनी सत्यप्रियता के लिए विख्यात थे । श्रीकृष्ण के अनुरोध पर उन्होंने जोर से कहा—"अश्वत्थामा मारा गया है ।" और धीरे से यह भी जोड़ दिया कि "हाथी का वध हुआ है ।" द्रोण ने उत्तरांश नहीं सुना । अत: उनका समस्त उत्साह मंद पड़ गया । युधिष्ठिर इतने धर्मात्मा थे कि उनका रथ पृथ्वी से चार अंगुल ऊंचा रहता था किंतु उस दिन के असत्य भाषण के उपरांत उनके घोड़े पृथ्वी का स्पर्श करके चलने लगे ।

कर्ण-वध के उपरांत राजा शल्य ने कौरवों का सेनापतित्व ग्रहण किया । युद्ध में युधिष्ठिर ने चंद्रसेन तथा द्रुमसेन को मार डाला ।

महाभारत-युद्ध की समाप्ति पर बचे हुए कौरवपक्षीय नर-नारी, जिनमें धृतराष्ट्र तथा गांधारी प्रमुख थे, तथा श्रीकृष्ण, सात्यकि और पांडवों सहित द्रौपदी, कुंती तथा पांचाल विधवाएं कुरुक्षेत्र पहुंचे । वहां युधिष्ठिर ने मृत सैनिकों का (चाहे वे शत्रु वर्ग के हों अथवा मित्रवर्ग के) दाह-संस्कार एवं तर्पण किया । कर्ण को याद कर युधिष्ठिर बहुत विचलित हो उठे । मां से बार-बार कहते रहे—"काश, कि तुमने हमें पहले बता दिया होता कि कर्ण हमारे भाई हैं ।" अंत में हताश, निराश और दुखी होकर उन्होंने नारी-जाति को शाप दिया कि वे भविष्य में कभी भी कोई गुह्य रहस्य नहीं छिपा पायेंगी । युधिष्ठिर को राज्य, धन, वैभव से वैराग्य हो गया । वे वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करना चाहते थे किंतु समस्त भाइयों तथा द्रौपदी ने उन्हें तरह-तरह से समझाकर क्षात्रधर्म का पालन करने के लिए उद्यत किया ।

म० भा०, भीष्मवधपर्व, ।११२
द्रोणपर्व, १६२, १८३, १६०
स्त्रीपर्व, २६, २७
शांतिपर्व, राजधर्मानुशासनपर्व
१

युयुत्सु दुर्योधन की समस्त सेना के नष्ट होने पर राजधानी से राजमहिलाएं भी नगर की ओर दौड़ीं। उनके बूढ़े संरक्षक पांडवों के भय से तितर-वितर हो गये, तब धृतराष्ट्र की पत्नी वैश्यकुमारी सौबली के पुत्र युयुत्सु ने सोचा कि पांडवों की आज्ञा से ही नगर-प्रवेश करना चाहिए। उसने युधिष्ठिर तथा कृष्ण की आज्ञा मांगी तो युधिष्ठिर ने उसे गले से लगाकर नगर-प्रवेश की आज्ञा प्रदान की। वह राजकुल की स्त्रियों को अपने संरक्षण में राजधानी तक पहुंचाने गया। वहां विदुर से भेंट होने पर उसने समस्त समाचार कह सुनाया। विदुर ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की तथा उन सबको सानुरोध उस रात वहीं रोक लिया।

म० भा०, शल्यपर्व, २६।७६-१०५

□

रंतिदेव संस्कृति के पुत्र का नाम रंतिदेव था। वह अत्यंत दानी था। वह प्रत्येक पक्ष में ब्राह्मणों को हजारों सोने के बने निष्क दान किया करता था। जिस दिन उसके यहां अतिथि रहते थे, उस दिन इक्कीस हजार गौएं दान की जाती थीं। पशु अपने-आप यज्ञ के लिए उपस्थित हो जाते थे। भीगी चर्मराशि से जो जल बहता था, उससे एक विशाल नदी प्रकट हो गयी जो (चंबल) चर्मण्वती नाम से विख्यात हुई।

म० भा०, द्रोणपर्व, ६७।-
शांतिपर्व, २६।१२१-१२३

भरतवंशी रंतिदेव संग्रह-परिग्रह तथा ममतारहित होकर धैर्यपूर्वक अपने कुटुंब का पालन कर रहे थे। एक बार अड़तालीस दिन तक उन्हें भोजन-पानी नहीं प्राप्त हुआ। उन्तालीसवें दिन उन्हें घी, हलवा, जल इत्यादि की प्राप्ति हुई। वे सकुटुंब भोजन करना ही चाहते थे कि पहले एक ब्राह्मण, फिर शूद्र अतिथि, तदनंतर कुत्ते सहित एक और अतिथि आये। उन सबके तृप्त होकर जाने के बाद केवल जल ही बच गया। एक चांडाल जल की खोज में वहां पहुंचा तो रंतिदेव ने प्रसन्नता से वह जल भी उसे दे दिया। रंतिदेव ने भगवान को स्मरण कर कहा—"मेरी इच्छा दूसरों का कष्ट आत्मसात् कर लेने भर की है।" चांडाल के जाने के उपरांत ब्रह्मा, विष्णु, महेश ने प्रकट होकर उसे दर्शन दिये। रंतिदेव सपरिवार योगी बन गया।

श्रीमद् भा०, ६।२१।१-१८

रंभा विश्वामित्र की घोर तपस्या से विचलित होकर इंद्र ने मरुद्गण तथा रंभा को बुलाकर उनका तप भंग करने के लिए भेजा। विश्वामित्र के शाप से रंभा दस हजार वर्ष के लिए पाषाण प्रतिमा बन गयी। विश्वामित्र ने कहा कि कोई तपस्वी ब्राह्मण उसका उद्धार करेगा। विश्वामित्र ने पूर्व दिशा में जाकर एक हजार वर्ष तक निराहार रहकर तपस्या करने की दीक्षा ली। एक हजार वर्ष की घोर तपस्या के उपरांत जब उन्होंने भोजन के लिए अन्न परोसा, तब इंद्र ब्राह्मण के रूप में आये और उनसे भिक्षा मांगी। विश्वामित्र ने संपूर्ण भोजन उन्हें दे दिया और सांस रोककर एक हजार वर्ष तक पुनः तपस्या में लीन हो गये। उनके मस्तक से धुआं निकलने लगा जिससे ऋषि, गंधर्व, पन्नग सब त्रस्त होकर ब्रह्मा के पास पहुंचे कि कलुषहीन विश्वामित्र को मनचाहा वर नहीं मिला तो उनकी तपस्या से चराचर लोक भस्म हो जायेगा। सब लोग धर्म-कर्म भूलकर नास्तिक हुए जा रहे हैं। ब्रह्मा ने उन्हें ब्राह्मणत्व प्रदान किया। विश्वामित्र ने उनसे ब्रह्मज्ञान, वेद-वेदांग आदि की याचना की, साथ ही यह भी कि वसिष्ठ भी उन्हें 'ब्रह्मपुत्र' कहकर पुकारें। यह सब प्राप्त होने पर वसिष्ठ ने उनसे मैत्री की और कहा कि अब वे ब्राह्मणत्व के समस्त गुणों से विभूषित हैं। मुनि शतानंद के मुंह से यह गाथा सुनकर जनक अत्यंत प्रसन्न हुए।

बा० रा०, बाल कांड, सर्ग ६३, श्लोक २०-२७
सर्ग ६४, १-२०, सर्ग ६५, १-२८

रक्तबीज चंडमुंड के वधोपरांत शुंभ ने अन्य अनेक असुरों को युद्ध के लिए भेजा। असुर सेना ने चंडिकादेवी, काली-देवी तथा सिंह को सब ओर से घेर लिया। ब्रह्मा, शिव, कार्तिक, विष्णु, नृसिंह तथा इंद्र आदि देवताओं के शरीर से पृथक्-पृथक् शक्तियों ने निकलकर उन्हीं जैसी वेशभूषा धारण की तथा उन्हीं जैसे वाहनों पर बैठकर वे शक्तियां

असुरों से युद्ध करने के लिए वहां पहुंचीं। वे ब्राह्मणी, माहेश्वरी, गुह्यरूपिणी, कौमारी, वैष्णवी, नारसिंही तथा ऐंद्री आदि के नाम से विख्यात हुईं। चंडिका देवी ने शिव को अपना संदेशवाहक बनाकर असुरों के पास भेजा कि वे यदि जीवित रहना चाहते हैं तो देवताओं के स्थान छोड़कर पाताल चले जायें अन्यथा शिव के गण उन्हें नष्ट कर डालेंगे। असुरों ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया तथा कात्यायनी की ओर बढ़े। तदनंतर युद्ध में अनेकों असुरों का संहार हुआ। रक्तबीज नामक असुर के अंग-प्रत्यंग क्षत-विक्षत हो गये। किंतु उसके शरीर से जो भी रक्त की बूंद पृथ्वी पर गिरती थी, वही एक सशक्त असुर को जन्म दे देती थी, अतः चंडिका देवी ने काली से कहा कि वह असुरों के रुधिर का पान और शरीर का भक्षण आरंभ कर दे। जब रक्तबीज का रक्त क्षीण हो जायेगा तब वह स्वयं मर जायेगा। चामुंडा ने अपना मुंह खोलकर रक्तपान आरंभ किया। मुंह में रक्त गिरने से जो असुर उत्पन्न हुआ, उसे भी वह खाती गयी। चंडी ने रक्तबीज पर शूल, चक्र, वाण और तलवार से वार करके उसे मार डाला।

मा० पु०, ८५।-

रक्तबीज के शरीर से अस्त्र लगने के कारण जो भी रक्त की बूंद पृथ्वी पर गिरती थी, उससे उसी के समान शक्ति-संपन्न सशस्त्र दैत्य का जन्म होता था। इसलिए वह दुर्जेय और अवध्य हो गया। शुंभ-निशुंभ का नाश करने के लिए जब अंबिका पहुंची तो पहले रक्तबीज ने युद्ध किया। उसके घायल होने पर उसके रक्तबिंदुओं से अनेक दैत्य उत्पन्न होने लगे। शक्ति ने उसे चक्र से आहत किया था। उसके शरीर से गेरू की तरह लहू की धार बहने लगी। फलतः अनेकों रक्तबीज उत्पन्न हो गये। शक्ति ने काली से कहा—"मैं जब भी किसी रक्तबीज पर प्रहार करूं, तुम उससे गिरा रक्तपान करती जाओ, उसे भूमि पर मत गिरने दो।" तदुपरांत देवी ने रक्तबीज सहित उससे उत्पन्न अन्य दैत्यों को मार डाला।

दे० भा०, ५।२१।३५-३६, ५।२७।-

रघुवंश सबसे पहले ब्रह्मांड में जल ही जल था। जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। तदुपरांत इंद्रादि अधिष्ठाता देवताओं के साथ स्वयंभू ब्रह्मा का आविर्भाव हुआ। फिर परब्रह्म परमात्मा वराह का रूप धारण करके पाताल से पृथ्वी पर आये। उन्होंने अपने कर्मठ पुत्रों सहित सृष्टि की रचना की। आकाशस्वरूप ब्रह्म से अविनाशी ब्रह्मा का जन्म हुआ। ब्रह्मा से मारीचि, मारीचि से कश्यप, कश्यप से विवस्वान् मनु का जन्म हुआ। मनु सबसे पहले प्रजापति थे। मनु से इक्ष्वाकु का जन्म हुआ। मनु ने उन्हें धनधान्य से परिपूर्ण पृथ्वी प्रदान की। इक्ष्वाकु अयोध्या के प्रथम राजा थे। इक्ष्वाकु की वंश-परंपरा में क्रमशः विकुक्षि, वाण, अनरण्य, पृथु, त्रिशंकु, धुंधुमार, युवनाश्व, मांधाता, सुसंधि हुए। सुसंधि के दो पुत्र हुए—ध्रुवसंधि तथा प्रसेनजित्। ध्रुवसंधि के पुत्र भरत, भरत के पुत्र असित हुए। असित के हैहय, तालजंघ, सूर और शशबिंदु नाम के चार राजा शत्रु थे, जिन्हें सेना से घेरकर असित ने राज्य से निर्वासित कर दिया। वे चारों रमणीक पर्वत पर भगवान का स्मरण करते हुए रहने लगे। उनमें से दो की रानियां गर्भवती थीं। एक ने सुसंतान के लिए भृगुवंशी च्यवन मुनि की आराधना की, दूसरी ने ईर्ष्यावश उसे जहर (गर) दे दिया। पुत्र-जन्म के साथ गर पात होने के कारण पुत्र का नाम सगर पड़ा। कहा जाता है कि ये विख्यात सगर वही हैं जिन्होंने समुद्र खुदवाए थे। सगर के पुत्र असमंजस, अंशुमान, दिलीप, भगीरथ, काकुत्स्थ रघु, प्रवृद्ध (कल्माषपाद और सौदास नाम से विख्यात हुए), शंखण, सुदर्शन, अग्निवर्ण, शीघ्रग, मरु, प्रशुश्रुव, अंबरीष, नहुष, नाभाग के पुत्र अज और सुव्रत हुए। अज के धर्मात्मा पुत्र दशरथ और उनके ज्येष्ठ पुत्र का नाम राम था।

बा० रा०, अयोध्या कांड, सर्ग ११०, (संपूर्ण)

रजि देवासुर-संग्राम के आरंभ होने पर दोनों पक्षों के लोग ब्रह्मा के पास गये और पूछा कि युद्ध में कौन-सा पक्ष विजयी होगा। ब्रह्मा ने कहा कि जिस ओर से राजा रजि लड़ेंगे, वही पक्ष विजयी होगा। दैत्यों ने रजि से अपनी ओर आने के लिए कहा। रजि ने कहा—"युद्ध में विजयी होने पर इंद्रपद दो तो युद्ध करूंगा।" दैत्यों ने कहा—"हम असत्य भाषण नहीं करते। इंद्रपद तो प्रह्लाद के लिए निश्चित कर रखा है।" तदनंतर देवताओं ने भी रजि से सहायता मांगी। उन्होंने रजि की शर्त भी स्वीकार कर ली। युद्ध में विजय प्राप्त करने के उपरांत इंद्र ने रजि के पांव पकड़कर कहा—"आप तो मेरे पिता के समान हैं।" रजि ने बहस न करके परिस्थिति से समझौता कर लिया। रजि की मृत्यु के उपरांत उसके पुत्रों ने इंद्र के राज्य में अपना भाग मांगा क्योंकि शतक्रतु (इंद्र) रजि

को पिता बना चुका था। इंद्र के राज्य-भाग न देने पर रजि-पुत्रों ने युद्ध में उसे परास्त करके इंद्रपद का भोग किया। इंद्र ने बृहस्पति की शरण ली। बृहस्पति रजिपुत्रों के लिए अभिचार और इंद्र की तेजवृद्धि के लिए हवन करने लगे। रजिपुत्र वेद-विमुख, धर्मत्यागी होकर पतित हुए तथा तेजस्वी इंद्र ने उन्हें मारकर पुनः स्वर्ग पर अधिकार प्राप्त किया।

वि० पु०, ४।६

रजि आयु के पांच पुत्रों में से एक था। एक बार देवासुर संग्राम छिड़ गया। राक्षसों तथा देवताओं ने ब्रह्मा से पूछा कि कौन-सा पक्ष विजयी होगा? ब्रह्मा ने बताया कि जिस ओर से रजि लड़ेगा, वही पक्ष जीतेगा। दोनों ने रजि से संपर्क स्थापित किया। रजि ने शर्त रखी कि वह इंद्र-पद प्राप्त करना चाहेगा। देवता मान गये। राक्षस मदवश नहीं माने, अतः देवताओं की विजय हुई तथा रजि इंद्र बना दिया गया। उसके स्वर्ग गमन के उपरांत उसके पुत्रों ने अनेक बार युद्ध किया, किंतु अंततोगत्वा इंद्र को ही इंद्रत्व प्राप्त हुआ।

ब्र० पु०, ११।१-२६

राक्षसोत्पत्ति ब्रह्मा ने सर्वप्रथम आधी पृथ्वी और आधा जल उत्पन्न किया तदनंतर अनेक जीव उत्पन्न किये। पद्मयोनि ब्रह्मा से उत्पन्न उन जीवों ने भूख से पीड़ित होकर ब्रह्मा से पूछा—"हम क्या करें?" ब्रह्मा ने हंस-कर कहा—"तुम लोग मनुष्यों की रक्षा करो।" उनमें से जो भूखे नहीं थे, उन्होंने कहा— "रक्षाम।" जो भूखे थे, वे बोले—"यक्षाम।" अर्थात् भोजन करेंगे। जिन्होंने रक्षा करने की बात कही, वे 'राक्षस' बन गये और जिन्होंने भोजन की बात की, वे 'यक्ष' बन गये। राक्षसों में दो मुख्य राक्षस हुए—हेति तथा प्रहेति। प्रहेति बहुत धर्मात्मा था। वह तपस्या के लिए वन में चला गया। हेति ने काल की भयानक बहन भया से विवाह कर लिया। उनके पुत्र का नाम विद्युत्केश हुआ। जब वह बड़ा हुआ तब उसका विवाह संध्या की पुत्री सालकटंकटा से हो गया। सालकटंकटा ने मंदर पर्वत पर जाकर पुत्र को जन्म दिया और उसे वहीं छोड़कर विद्युत्केश के साथ विहार करने लगी। उधर शंकर-पार्वती ने पर्वत पर उस बालक को मुंह में मुट्ठी डालकर बैठे रोते देखा तो दयावश वरदान दिया कि राक्षस संतान जन्म के बाद शीघ्र ही अपनी मां की आयु की हो जाय। उस बालक को आकाश में चलनेवाला एक नगर तथा एक विमान भी दे दिया। पार्वती ने उस बालक को अमर भी कर दिया। उसका नाम सुकेश पड़ा। सुकेश की वर-प्राप्ति के विषय में जानकर ग्रामणी नामक गंधर्व ने अपनी पुत्री देववती का विवाह सुकेश से कर दिया। उसके तीन पुत्र हुए—माल्यवान, सुमाली और माली। ये तीनों उग्र तथा भयानक थे। उन तीनों ने भयानक तपस्या के फल-स्वरूप ब्रह्मा से यह वर प्राप्त किया कि (१) उनमें परस्पर प्रेमभाव बना रहेगा (२) वे तीनों अमर होकर शत्रुजयी हों तथा वैभवशाली बनें। तदनंतर निर्भय होकर उन्होंने देवता, दैत्यों और ऋषियों को त्रस्त करना प्रारंभ कर दिया। विश्वकर्मा की बनायी सोने की सुंदर लंका में वे रहने लगे।

नर्मदा नाम की एक गंधर्वी ने स्वेच्छा से जन्म लिया। उसकी तीन पुत्रियां हुईं, जिनमें से सुंदरी का विवाह माल्यवान से, केतुमती का विवाह सुमाली से तथा वसुधा का विवाह माली से हुआ।

माल्यवान और सुंदरी ने वज्रमुष्ठि, विरूपाक्ष, दुर्मुख, सुप्तघ्न, यज्ञकोप, मत्त और उन्मत्त को जन्म दिया।

सुमाली और केतुमती ने प्रहस्त, अकंपन, विकट, काल-कार्मुक, धूम्राक्ष, दंड, सुपार्श्व, संह्लादी, प्रघस और भास-कर्ण को जन्म दिया।

माली और वसुधा ने अनल, अनिल, हर और संपाती को जन्म दिया।

ये सब राक्षस मिलकर सबको तंग करने लगे। स्वर्ग से देवताओं को निकालकर वहां रहने लगे तथा अपने को इंद्र, वरुण, ब्रह्मा, विष्णु आदि कहने लगे। देवताओं ने जाकर शिव से उनके संहार की प्रार्थना की किंतु स्वयं सुकेशी को अमरत्व दान करने के कारण उन्होंने स्वीकार नहीं किया। तदनंतर देवताओं ने विष्णु से प्रार्थना की। विष्णु ने उनका संहार करने का भार अपने ऊपर लिया।

माल्यवान, सुमाली और माली के नेतृत्व में राक्षसों ने विष्णु से भयानक युद्ध किया। माली तो युद्ध में मारा गया। शेष दोनों भाई कई बार युद्धक्षेत्र से भागे, कई बार फिर से आये, अंत में भयभीत होकर पाताललोक में चले गये। वहां उन्होंने सुमाली को अपना राजा बना लिया। लंकापुरी खाली हो गयी। साक्षात् विष्णु ने माली को मारा था और उन्होंने रामचंद्र के रूप में जन्म लेकर शेष

राक्षसों का संहार किया।

बा० रा०, उत्तरकांड, सर्ग ४, श्लोक ६-३२

बा० रा०, उत्तर कांड, ५-८।-

राजा आदिकाल में राजा और प्रजा जैसी कोई व्यवस्था नहीं थी। सभी लोग धर्म के द्वारा परस्पर पालित-पोषित रहते थे। कालांतर में मोह के वशीभूत हो जाने पर धर्मसम्मत व्यवस्था कुछ कठिन जान पड़ी। मानव-समूह के धर्म का नाश हो गया। काम, लोभ तथा राग का प्रावल्य हो गया। देवताओं का तद्विषयक त्रास देखकर ब्रह्मा ने धर्म, अर्थ और काम का विस्तृत वर्णन करते हुए एक लाख अध्यायों से युक्त नीतिशास्त्र लिखा जो 'त्रिवर्ग' कहलाया। चौथा वर्ग मोक्ष का था। उसे तीनों गुणों की दृष्टि से दूसरे त्रिवर्ग के रूप में रचा। धीरे-धीरे मानव की आयु क्षीण होती गयी। अतः क्रमशः उस शास्त्र को भी विभिन्न देवताओं ने समय-समय पर संक्षिप्त रूप दे दिया। सबसे पहले शिव ने उसका संक्षेप 'वैशालाक्ष' नाम से किया, फिर इंद्र ने उसका संक्षिप्ततर रूप 'बहुदंतक' नाम से प्रस्तुत किया। तदनंतर बृहस्पति ने 'बार्हस्पत्य' और शुक्राचार्य ने उसका भी संक्षेप कर दिया। देवताओं ने विष्णु से कहा कि "हमें एक श्रेष्ठ पद प्राप्त करने योग्य मनुष्य की आवश्यकता है।" विष्णु ने 'विरजा' नामक मानसपुत्र को जन्म दिया। उसके पुत्र का नाम कीर्तिमान और कीर्तिमान के पुत्र का नाम 'कर्दम' हुआ। वे तीनों ही तपस्या और संन्यास में लीन रहे। 'कर्दम' का पुत्र 'अनंग' नीतिनिपुण था। उसका पुत्र अतिबल हुआ। वह शासक के अधिकार पाकर इंद्रियों का दास बन गया। इस प्रकार शनैः-शनैः राजा और राज्य की व्यवस्था का श्रीगणेश हुआ।

म० भा०, शांतिपर्व, ५६।१३-६२

राज्यवर्द्धन दम के पुत्र का नाम राज्यवर्द्धन था। उसकी पत्नी, मानिनी, दक्षिण देश के राजा विदूरथ की कन्या थी। एक दिन राजा के सिर में तेल लगाते हुए उसने एक सफेद बाल देखा, अतः वह रोने लगी। उसके रोने का कारण जानकर राजा वनवास और तपस्या करने का विचार करने लगा। वह अत्यंत लोकप्रिय राजा था, अतः उसके राज्य के ब्राह्मणों ने, सुदामा नामक गंधर्व के कथनानुसार, कामरूप पर्वत पर जाकर तपस्या की। सूर्य ने प्रसन्न होकर राजा को दस हजार वर्ष का यौवन तथा आयु प्रदान किये। राजा को ज्ञात हुआ तो वह बहुत चिंतित हुआ कि इतनी लंबी आयु भोगने में उसे अल्पायु वाले सुहृदों का वियोगजनित दुःख भोगना पड़ेगा। राजा भी कामरूप पर्वत पर जाकर तपस्या करने लगा। सूर्य ने प्रसन्न होकर उसे अपनी प्रजा, संबंधियों, मित्रों सहित दीर्घायु का वर प्रदान किया।

मा० पु०, १०६-१०७।-

राधा विष्णु ने कृष्ण का तथा लक्ष्मी ने राधा का रूप धारण किया। शिव ने अपनी गउओं को संभालने का काम विष्णु को सौंपा था। कालांतर में गोलोक ही कृष्णलोक कहलाया। वहां कृष्ण राधा के साथ विहार करते थे। एक बार राधा को दूर भेजकर कृष्ण विरजा नामक गोपी के साथ विहार करने लगे। राधा को पता चला तो वह विरजा के घर गयी, पर कृष्ण के मित्र सुदामा ने उसे घर में नहीं घुसने दिया। शोर सुनकर विष्णु अंतर्धान हो गये। विरजा नदी बन गयी। राधा बहुत रुष्ट हुई। उसने सुदामा को शाप दिया कि वह दैत्य होकर जन्म ले। सुदामा ने प्रत्युत्तर में कहा कि राधा मानवी बनकर रहे। कृष्ण ने प्रकट होकर कहा कि सुदामा ऐसा दैत्य होगा जिसे शिवेतर कोई न जीत सकेगा, न मार सकेगा। राधा और कृष्ण ने मानव-देह धारण करके अवतार लिया।

शि० पु०, ५।२७, पूर्वार्द्ध।

श्रीकृष्ण ने राधा की पूजा करके रासमंडल में उन्हें स्थित किया। देवगण भी राधा की पूजा करने लगे। सर्वप्रथम सरस्वती ने वीणा-यंत्र द्वारा गान प्रस्तुत किया। समस्त देवी-देवताओं ने सरस्वती को अनेक उपहार दिये। ब्रह्मा की प्रेरणा से शिव ने संगीत की लय छेड़ी तो सभी देवता भावविभोर हो उठे। चैतन्य होने पर उन्होंने देखा कि उनके मध्य राधा-कृष्ण नहीं हैं तथा सब जल से आप्लावित हैं। वह जल ही गोलोक में स्थित गंगा थी। सब लोग राधा-कृष्ण की स्तुति करने लगे कि वे दर्शन दें। कृष्ण का स्वर वातावरण में गूंज उठा—"मैं सर्वात्मा अर्थात् सर्वव्यापी हूं। शक्तिरूपिणी राधा भी सर्वव्यापिनी है। आप लोगों का हम दोनों की देह से ही वियोग है अन्यथा हम लोग सदैव आप सबके पास हैं। यदि साक्षात् दर्शन की इच्छा है तो शिव तंत्र-शास्त्र की रचना का प्रण करें।" शिव ने हाथ में गंगा-जल लेकर राधा-मंत्र से पूर्ण वेदसम्मत तंत्र का प्रणयन करने का प्रण किया। तब कृष्ण ने राधा सहित प्रकट

होकर दर्शन दिये। राधा-कृष्ण की आत्मस्वरूपिणी गंगा अतीव सुंदरी थी। एक दिन राजा ने देखा कि रूपवती गंगा श्रीकृष्ण के पार्श्व में बैठकर निर्निमेष दृष्टि से उन्हें निहार रही है। गंगा के हाव-भाव-हेला देखकर राधा रुष्ट हो गयी। राधा क्रुद्ध होकर कृष्ण के पार्श्व में बैठ गयी तथा उनसे गंगा का परिचय पूछने लगी, फिर बोली—"आप इसे लेकर तुरंत गोलोक से चले जाइए। पहले भी अनेक बार आप ऐसे ही कृत्य कर चुके हैं। एक बार चंदनवन में गोपांगना विरजा के साथ ऐसे ही दिखलायी पड़े थे। लज्जावश उसने देह त्याग करके नदी का रूप ग्रहण किया था। फिर शोभा के साथ संपर्क स्थापित किया। मेरी पदचाप सुनकर भाग गये थे। शोभा ने लज्जावश देह त्याग करके चन्द्रमंडल, सुवर्ण, रत्न, दूध इत्यादि में प्रस्थान किया। इसी प्रकार प्रभा को सूर्य में आश्रय लेना पड़ा था, फिर आपने उसके विभाग करके हुताशन, कीर्ति, देवता इत्यादि में स्थापित किया था। चौथी गोपिका शांतिनी थी। शांतिनी देह त्याग आपके शरीर में लीन हो गयी थी। आपने उसे विभक्त कर कुछ अंश ब्रह्मा को, कुछ मुझे, कुछ वनस्थल को दे दिया था, कुछ अंश अपने पास भी रखा था। एक दिन पुष्प-शय्या पर क्षमा के साथ ऐसे सोये थे कि मैंने कुंडल, वंशी आदि सब ले लिये थे। क्षमा ने पृथ्वी में शरण ली थी। आपने उसके अंश विष्णु, वैष्णवों, पंडितों, धार्मिकों, तपस्वियों आदि को प्रदान किये थे। अब यह आपके पार्श्व में न जाने कौन है ?" यह सुनकर लज्जित गंगा ने अंतर्धान होकर जल में आश्रय लिया। राधा योगबल से यह जानकर जल का पान करने को उद्यत हुई। गंगा ने श्रीकृष्ण के चरणों में आश्रय लिया। राधा को ज्ञात नहीं हो पाया, अतः राधा ने समस्त लोकों में झांका, कहीं भी गंगा को नहीं पाया। उधर जलहीन गोलोक में पशु, पक्षी, पेड़-पौधों की दुर्दशा हो गयी। सबने ब्रह्मा, विष्णु और महेश की शरण ली। ब्रह्मा, विष्णु और महेश को लेकर रासमंडल में कृष्ण के पास पहुंचे। कृष्ण ने ब्रह्मा को पूर्व घटना सुनाकर राधा से गंगा के लिए अभयदान लेने को कहा। ब्रह्मा ने राधा की स्तुति करके कहा—"हे मां, गंगा तुम्हारी पुत्री है। शंकर का संगीत सुनकर जब आप और कृष्ण आर्द्र हुए थे तभी गंगा का जन्म हुआ था।" राधा के अभयदान देने पर गंगा श्रीकृष्ण के पांव के अंगूठे के अग्रभाग से निकली।

दे० भा०, ९।-

राम राम के रूप में विष्णु का सातवां अवतरण हुआ। मूलतः राम प्रजापति ऋतुधामा नाम के वसु थे। राम तीनों लोकों को उत्पन्न करनेवाले आदिपुरुष हैं। आठवें रुद्र, पांचवें साध्य हैं। उनके दोनों कान अश्विनीकुमार हैं। चंद्रमा और सूर्य उनके दो नेत्र हैं। 'राम' सृष्टि के आदि, मध्य और अंत में विद्यमान रहते हैं। रामचंद्र चक्रधारी विभु नारायणदेव हैं। वह एक दांतवाले वराह भूत-भविष्य के विजेता हैं। वही अविनाशी और ब्रह्म हैं। राम तीनों लोकों को धारण करनेवाले हैं। उनके आंख खोलने से दिन और पलक झपकने से रात्रि हो जाती है। वेदों के उत्पत्तिकर्ता भी राम ही हैं। अग्नि उनका कोप है। पृथ्वी स्थिरता तथा चंद्रमा प्रसन्नता का द्योतक है। राम विष्णु और सीता लक्ष्मी हैं।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग १२०

राम का जन्म दशरथ की बड़ी पत्नी कौशल्या की कोख से हुआ (कारण के लिए दे० दशरथ)। वे चारों भाइयों में सबसे बड़े थे। उनका विवाह जनक की पुत्री सीता से हुआ। दशरथ राम का राज्याभिषेक करने की योजना बना रहे थे। मंथरा (दासी) की प्रेरणा से कैकेयी (राम की विमाता) ने दशरथ से दो वर मांगे। एक से भरत का राज्याभिषेक और दूसरे से राम को चौदह वर्ष का वनवास (दे० कैकेयी)। राम ने सीता और लक्ष्मण के साथ वन के लिए सहर्ष प्रस्थान किया। वन में सीता को रावण ने हर लिया (दे० सीता)। राम ने रावण से युद्ध करने की ठानी।

अगस्त्य मुनि ने प्रकट होकर राम से कहा कि वे एकाग्र-चित्त होकर सूर्य देवता की उपासना करें, तदुपरांत आदित्य हृदय स्तोत्र का पाठ करें तो उनकी विजय निश्चित है।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग १०७, श्लोक १५-२८

वानरों की सहायता से राम ने रावण को मार डाला और सीता को पुनः प्राप्त किया।

राक्षस-संहार से प्रसन्न होकर इंद्र ने राम को वरदान दिया कि युद्ध में जितने भी वानर काम आये हैं, सबमें पुनः प्राण-प्रतिष्ठा हो जायेगी। अकाल के दिनों में भी फल-फूलसेवी वानरों के लिए निर्मल जल की नदियों और फलों की न्यूनता नहीं होगी।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग १२३, श्लोक १-१५

सीता की पवित्रता की प्रतिष्ठा के निमित्त उसकी अग्नि-परीक्षा हुई। उस अवसर पर इंद्र, कुबेर, यम, पितर आदि ने राम के मूल रूप का स्मरण दिलाया।

विभीषण के राज्याभिषेक के उपरांत राम ने अयोध्या जाने का निश्चय किया, क्योंकि चौदह वर्ष की अवधि समाप्त हो चुकी थी। वानरों तथा विभीषण ने भी अयोध्या देखने की इच्छा व्यक्त की। सीता ने वानरों की पत्नियों को भी आमंत्रित किया। वे सब पुष्पक विमान पर चढ़कर अयोध्या की ओर बढ़े, मार्ग में मुनि भारद्वाज के आश्रम में पहुंचे। वहां ठहरकर उन्होंने मुनि से वर मांगा कि मार्ग के सब वृक्ष फूल-फल जायें तथा हनुमान को अयोध्या जाकर भरत तक यह संदेश पहुंचाने के लिए कहा कि राम पहुंचनेवाले हैं। भरत ने भाई के आगमन की सूचना पायी तो नगर सजाने की आज्ञा दी तथा अनेक प्रजाजनों के साथ राम के स्वागतार्थ नगरी से बाहर की ओर बढ़े। उन्होंने वल्कल धारण किये हुए थे तथा राम-लक्ष्मण ने पुष्पक विमान से उतरकर भरत का आलिंगन किया। वसिष्ठ की चरणधूलि ली और विमान को कुबेर के पास वापस जाने की आज्ञा दी। कुबेर ने पुष्पक को पुन: राम की सेवा के लिए भेज दिया, किंतु राम ने पुष्पक को स्वतंत्र करके छोड़ दिया कि जिस ओर जाने की इच्छा हो, यह चला जाय।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग ४१, श्लोक १-१५

अयोध्या लौटने पर भरत ने सोत्साह राम के राज्याभिषेक की तैयारी की। समारोह को देखकर वानर और विभीषण अपने निवासस्थानों पर लौट गये। राम का राज्य दस हजार वर्ष तक बना रहा। इस राज्य में न कोई दुखी था, न निर्धन। संतोष-सुख-समृद्धि की सर्वत्र व्याप्ति थी।

दे० सीता

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग १२४-१३१,

कालांतर में रामचंद्र के स्वर्गारोहण के दृढ़ निश्चय को जानकर नगरनिवासियों ने भी साथ चलने की आज्ञा मांगी। समस्त वानर एकत्र हो गये। विभीषण भी आये। राम ने विभीषण, जांबवान, मैंद, द्विविद और हनुमान को मृत्युलोक में रहने की आज्ञा दी। विभीषण से उन्होंने कहा—"तुम इक्ष्वाकुवंश के कुल-देवता जगन्नाथ जी की आराधना करते रहना।" फिर राम, भरत, शत्रुघ्न, सुग्रीव, अनेक प्रजाजन समस्त वानरों, भालुओं तथा अंत:पुर में निवास करनेवाली रानियों आदि और अनेक पशु-पक्षियों को साथ लेकर चले। प्रज्वलित अग्नि-होत्र और वाजपेय छत्र लेकर ब्राह्मणों के साथ वसिष्ठ आगे-आगे थे। उनके बाद रामचंद्र। रामचंद्र की दाहिनी ओर हाथ में कमल लिए लक्ष्मी और बायीं ओर महादेवी थीं। वे सब लोग सरयू के तट पर पहुंचे। वे सरयू के गोप्रतारक घाट पर पहुंचे। उसी समय लोकपिता ब्रह्मा सैकड़ों विमानों सहित वहां जा पहुंचे। राम के भक्त होने के कारण जो लोग भी उनके साथ गये थे, सबको संतानक लोक की प्राप्ति हुई। भविष्य में भी जो राम का नाम लेकर देह त्याग करेगा, उसे संतानक लोक की प्राप्ति होगी। वे सब सरयू में स्नान करके विमानों पर बैठ गये। ब्रह्मा ने कहा—"वानर और भालू जिन-जिन देवताओं से उत्पन्न हुए हैं, वे उनमें जाकर मिल जायेंगे।" यह कहते ही सुग्रीव ने सूर्यमंडल में प्रवेश किया। शेष वानर और भालुओं ने भी सरयू में अपना शरीर त्यागकर अपने-अपने अंगों में प्रवेश किया। राम ने साक्षात् विष्णु में प्रवेश कर सदेह अपने भाइयों के साथ बैकुंठ-धाम के लिए प्रस्थान किया।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग १०९, ११०,

नारायण ने अपने-आपको चार स्वरूपों में विभक्त करके दशरथ के घर में श्रीराम के रूप में जन्म लिया। उन्होंने विश्वामित्र के यज्ञ में विघ्न डालनेवाले सुबाहु, मारीच तथा देव-शत्रुओं का संहार किया। इस कार्य के लिए विश्वामित्र ने राम को ऐसे-ऐसे दिव्य अस्त्र प्रदान किये कि जो देव-दुर्लभ हैं। श्रीराम ने जनक के यहां शिव-धनुष को तोड़कर सीता को प्राप्त किया। विमाता कैकेयी की इच्छा से चौदह वर्ष के वनवास का अंगीकरण किया। वास्तव में वह वनवास असुर-हनन के लिए ही संपन्न हुआ, ऐसा जान पड़ता है। उन चौदह वर्षों में राम ने मारीच, खर, दूषण, त्रिशिरा आदि का वध किया तथा शूर्पणखा की नाक कटवा दी। उसके भाई रावण के षड्यंत्र से राम को पत्नी-वियोग सहना पड़ा। फिर हनुमान-सुग्रीव आदि से मैत्री स्थापित कर राम ने करोड़ों राक्षसों के साथ रावण को मार डाला। विभीषण का लंका में राज्याभिषेक कर वे अयोध्या लौटे। उन्होंने ग्यारह हजार वर्ष तक शासन किया। अपने तीनों भाइयों से अपरिमित प्रेम करते हुए, राम ने धर्मपराय संतोष और सुख से युक्त शासन की

स्थापना की ।

म० भा०, सभापर्व, ३८
द्रोणपर्व, ६०

इक्ष्वाकुवंशी राजा अज के पुत्र का नाम दशरथ था। उनकी तीन रानियां थीं। कौशल्या से राम, कैकेयी से भरत, सुमित्रा से लक्ष्मण और शत्रुघ्न नामक पुत्र हुए। शिव-धनुष तोड़कर राम ने विदेह देश के राजा जनक की पुत्री सीता से विवाह किया। रामचंद्र का राज्यतिलक होने का निश्चय होते ही मंथरा से प्रेरणा पाकर कैकेयी ने दशरथ से राम के लिए वनवास तथा भरत के लिए राज्य मांगा। दशरथ ने ये वर देकर, व्याकुल मन से प्राण त्याग दिये। राम के साथ सीता और लक्ष्मण भी वन गये। भरत को मालूम पड़ा तो वह भी दुखी हुआ। राम के पास वन गया, पर राम ने समझा-बुझाकर उसे वापस भेज दिया। वन में शूर्पणखा राम तथा लक्ष्मण से संपर्क स्थापित करना चाहती थी। लक्ष्मण ने उसकी नाक काट ली। वह जब घर लौटी तो रावण अपनी बहन की ऐसी दशा देख बदला लेने निकला। उसने मारीच को स्वर्ण मृग का रूप धारण करके राम के निकट जाने के लिए कहा। उसे देख उसका शिकार करने के लिए सीता के बल देने पर राम लक्ष्मण के निरीक्षण में पत्नी को छोड़कर मृग का पीछा करने गये। थोड़ी देर में राम जैसी 'हा लक्ष्मण' पुकार सुनकर सीता ने लक्ष्मण को भी उनके पीछे भेज दिया। लक्ष्मण की हिच-किचाहट देखकर सीता ने उसके चरित्र पर संदेह प्रकट किया। एकाकी सीता को ब्राह्मण भिक्षु के रूप में आकर रावण हर ले गया। राम-लक्ष्मण जब लौटे तो सीता को न पाकर बहुत दुखी हुए। खोजते हुए उनका साक्षात्कार जटायु (अरुण के पुत्र) से हुआ जो सीता को बचाने के संदर्भ में घायल हो गया था। उसने रावण गमन का मार्ग बताया। सीता अपने आभूषण उतार मार्ग में फेंकती जा रही थी। उसका अनुसरण कर वे पंपा सरोवर तक पहुंचे। फिर वानरों की सहायता प्राप्त हुई। हनुमान लंका में सीता के दर्शन करके आया। उसने लंका को जला दिया। राम ने वानरों की सहायता से लंका पर विजय प्राप्त की तथा रावण आदि मुख्य राक्षसों को मार-कर सीता की प्राप्ति की। लंका का राज्य विभीषण को सौंपकर रामचंद्र ने वहां से प्रस्थान किया। मलिनवसना सीता को देख उनके मन में शंका हुई कि कहीं पर-पुरुष ने उसका स्पर्श न किया हो। अनेक देवी-देवताओं ने तथा स्वर्गीय दशरथ ने वहां प्रस्तुत होकर राम के सम्मुख सीता के सतीत्व की प्रतिष्ठा की, तदुपरांत राम ने सीता को ग्रहण किया तथा समस्त देवताओं को प्रणाम कर दशरथ की आज्ञा से अयोध्या के लिए प्रस्थान किया। लक्ष्मण, सीता, सुग्रीव, विभीषण तथा हनुमान उनके साथ गये। राम ने राज्याभिषेक के उपरांत सबको विदा किया। नारायण ने अपने-आपको चार स्वरूपों में विभक्त करके दशरथ के घर में श्रीराम के रूप में जन्म लिया। उन्होंने विश्वामित्र के यज्ञ में विघ्न डालनेवाले सुबाहु मारीच आदि शत्रुओं का संहार किया। असुर-हनन के लिए विश्वामित्र ने राम को ऐसे-ऐसे दिव्यास्त्र प्रदान किये जो कि देव-दुर्लभ थे। चौदह वर्ष का वनवास भी वास्तव में असुर-हनन का निमित्त मात्र ही था।

म० भा०, वनपर्व, २७४।६-१
म० भा०, वनपर्व, २७५ से २९१ तक।-
सभापर्व, ३८।-
द्रोणपर्व, ६०।-

रामचंद्र ने अपने भक्तों के निमित्त अवतरित होकर लीला की। तदुपरांत ब्रह्मा ने कालपुरुष के द्वारा उन्हें पुन: बैकुंठ वापस आने का संदेश भेजा। कालपुरुष एक मुनि के रूप में रामचंद्र के पास पहुंचा और बोला कि उनकी वार्ता के मध्य जो कोई आये, रामचंद्र उसका परित्याग कर दें। राम ने लक्ष्मण को द्वार पर भेजा कि वह किसीको अंदर न आने दे। तभी दुर्वासा राम की परीक्षा लेने जा पहुंचे। लक्ष्मण ने सोच-विचारकर उन्हें रुष्ट करना उचित न जान राम तक उनका संदेश पहुंचाया। पूर्वनिश्चित शर्त के अनु-सार राम ने लक्ष्मण का परित्याग कर दिया तथा लक्ष्मण ने योगबल से सरयु के तट पर स्वशरीर त्याग किया। कालपुरुष अंतर्धान हो गया।

शि० पु०, ७।२६

दशरथ के बड़े पुत्र का नाम राम था। राम ने म्लेच्छों को पराजित कर राज्य की सुरक्षा की थी। उससे सीता का विवाह हुआ। दशरथ के भरत को राज्य देने के उप-रांत एक रात राम, सीता और लक्ष्मण सबको छोड़कर दक्षिणा पथ की ओर बढ़े।

सीता-हरण के उपरांत राम के सीता के प्रति संदेश तथा मुद्रिका सहित हनुमान ने लंका के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में उसने दो मुनियों को हाथ लटकाये तपस्या करते

देखा। उन मुनियों से चौथाई कोस दूरी पर तीन कन्याएं विद्या की साधना कर रही थीं। वे सब दावाग्नि से जल रहे थे। हनुमान ने विद्या के प्रभाव से वर्षा की। अग्नि शांत हो गयी। मुनियों का वंदन कर कन्याओं ने कृतज्ञता ज्ञापन किया तथा हनुमान को बताया कि वे दधिमुख के राजा गंधर्व की कन्याएं थीं। उनका नाम चंद्रलेखा, विद्युत्प्रभा और तरंगमाला था। उनके पिता ने विद्या से जाना था कि उन तीनों का विवाह उस व्यक्ति से होगा, जो 'साहसगति' को मारेगा। हनुमान ने उन्हें बताया कि राम ने साहसगति को मार दिया है, अतः उनके पिता ने तुरंत राम के समक्ष उन तीनों का समर्पण किया। रावण-वध के उपरांत राम ने सीता को प्राप्त किया। सीता ने कहा—"लक्ष्मण, तुम साक्षात् लक्ष्मी के पति हो तथा राम साक्षात् बलराम हैं। (इस ग्रंथ में राम 'बलराम', लक्ष्मण 'नारायण' तथा सीता 'लक्ष्मी' के रूप में अंकित की गयी हैं। वे तीनों जैन धर्म के अवलंबी हैं। तथा जिनेश्वर-प्रतिमा को प्रणाम करते हैं।)

सीता के निर्वासन के उपरांत राम बहुत व्याकुल रहने लगा। हनुमान आदि के प्रव्रज्या ग्रहण करने से राम सहमत नहीं हुआ। राम का कहना था कि यदि भोग्य-सामग्री उपलब्ध है तो उसका त्याग व्यर्थ है। इस प्रकार की जड़ बुद्धि के साथ राम ने इंद्र से भी कुतर्क किया किंतु लक्ष्मण के देह-त्याग और पुत्रों के प्रव्रज्या ग्रहण करने के उपरांत राम अत्यंत विकल हो गया। उसे समस्त इष्ट-मित्रों ने आश्वस्त करने का प्रयास किया किंतु अत्यंत विरक्त होकर उसने प्रव्रज्या ग्रहण की। इस प्रकार राम का महाभिनिष्क्रमण हुआ। उसको सुव्रत नामक चारण श्रमण ने दीक्षा दी। अनेक व्रतों का पालन करते हुए राम ने भिक्षाटन किया। उसने केवल ज्ञान का अर्जन किया। राम ने लक्ष्मण को नरकस्थ जाना। अग्नि-कुंड से निकालकर लक्ष्मण को पीटा जा रहा था। वह कभी गिड़गिड़ाता, कभी क्रोध करता, यही दशा रावण की भी थी। तभी एक देवदूत ने वहां पहुंचकर उन दोनों को बताया कि राम लक्ष्मण के प्रतिबोधन के लिए उद्यत है तथा देव उन दोनों को लेने पहुंचा है किंतु वे लोग नहीं गये क्योंकि कर्मजन्य दुःख भोगना उनके लिए आवश्यक था। सुरेंद्र के पूछने पर राम ने विभिन्न जीवों के नाना भवों के विषय में बताया। यह भी कहा कि लक्ष्मण भविष्य में तीर्थंकर बनेगा। राम ने जिनेश्वर की भक्ति का उपदेश दिया। तदनंतर राम ने निर्वाण प्राप्त किया।

पउ० च०, ३२।-
५१।-
७६।-
९६, १०९-११८।-

सीता को निमित्त बनाकर राम-रावण-युद्ध का संपादन हुआ। राम के साथ सुग्रीव, हनुमान आदि वानर तथा कुछ विद्याधर थे—रावण समस्त राक्षस समूह के साथ युद्ध में उपस्थित था। रावण ने लक्ष्मण पर शक्ति से प्रहार किया। वह मूर्च्छित हो गया। राम आदि ने कुंभकर्ण के साथ रावण-पुत्रों को बंदी बना लिया। चिंतातुर रावण ने दूत भेजा कि वे उनको मुक्त कर दें, सीता को रावण के दूत के साथ रहने की अनुमति दें तथा यथेच्छ धनलाभ करें। राम किसी भी शर्त पर सीता को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हुए। रावण ने जिनेश्वर की पूजा से अनेक प्रकार की विद्याएं भी प्राप्त कीं। वानरों ने पूजारत रावण को देखकर लंका की नारियों को भयातुर कर दिया।

लक्ष्मण से युद्ध होने पर रावण का सिर लाखों बार कटा किंतु हर बार फिर से आ जुड़ता था। तदनंतर रावण ने लक्ष्मण पर रत्नचक्र का प्रयोग किया। राम की सेना ने उसे रोकने के लिए अनेक प्रकार के आयुधों का प्रयोग किया। सब शस्त्रों को नष्ट करके प्रदक्षिणा करके महा-चक्र लक्ष्मण के हाथ में अधिष्ठित हो गया। लक्ष्मण ने कहा—"रावण, तुझको मारने के लिए मैं, नारायण, उत्पन्न हुआ हूं।" लक्ष्मण ने चक्र के प्रयोग से रावण को मार डाला। राम ने कुंभकर्ण आदि योद्धाओं को मुक्त कर दिया। उसी सायं अप्रमेयबल नाम के साधु छप्पन हजार मुनियों के साथ लंका पहुंचे। यदि वे पहले ही आ जाते तो लक्ष्मण से रावण की संधि हो जाती, क्योंकि 'केवलीमुनि' के आसपास सौ योजन तक कोई वैर-भाव स्थिर नहीं रहता। इंद्रजीत चंद्रनखा और धनवाहन ने अपने पूर्वजन्मों के विषय में सुनकर प्रव्रज्या ग्रहण की। राम अपने समस्त बंधु-बांधवों सहित साकेत पहुंचे। भरत ने उनका हार्दिक स्वागत किया।

पउ० च०, ४५-६५।७३, ७५

रामतीर्थ 'रामतीर्थ' नाम से विख्यात प्रदेश परशुराम की अनेक बार क्षत्रियों पर विजय का प्रतीक है। परशुराम ने पृथ्वी को जीतकर कश्यप को आचार्य धारण करके एक

सौ अश्वमेध यज्ञों द्वारा भगवान का पूजन किया तथा दक्षिणा के रूप में समुद्र तक फैली हुई समस्त पृथ्वी दे दी। परशुराम के यज्ञ होने के कारण ही वह स्थान रामतीर्थ कहलाने लगा।

म० भा०, शल्यपर्व, ४९।७-१२

रावण ब्रह्मा के पुत्र पुलस्त्य हुए। वे ब्रह्मा के समान तेजस्वी तथा सब लोकों में पूज्य थे। तपस्या की इच्छा से वे मेरु के पास तृणबिंदु के आश्रम में जाकर रहने लगे। उनका आश्रम बहुत सुंदर था। कन्याएं वहां आकर खेलती थीं, अतः तपस्या में विघ्न पडता था। एक बार पुलस्त्य ने कहा, "जो कन्या मेरे नेत्रों के सामने आयेगी, वह गर्भवती हो जायेगी।" सब सुंदरियों ने जाना बंद कर दिया किंतु मुनि तृणबिंदु की कन्या ने यह बात नहीं सुनी थी, अतः वह आश्रम में गयी और गर्भवती हो गयी। तृणबिंदु को जब समस्त घटना का ज्ञान हुआ तो वे वेदपाठ करते हुए पुलस्त्य मुनि के पास पहुंचे और उनकी स्वीकृति लेकर अपनी पुत्री को उनकी सेवा करने के लिए छोड़ आये। पुलस्त्य ने सेवा से प्रसन्न होकर कहा—"हे सुश्रोणि! तुम्हारी कोख से मेरे जैसा तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होगा जो पौलस्त्य कहलाएगा। तुमने वेदपाठ सुना है, अतः विश्रवा भी कहलाएगा। विश्रवा के गुणों पर रीझकर भारद्वाज ने देववर्णिनी नामक अपनी कन्या से उसका विवाह कर दिया। उसके पुत्र का नाम कुबेर (वैश्रवण) हुआ। उसने घोर तप से प्रसन्न करके ब्रह्मा से देवताओं का कोषाध्यक्ष बनने का वरदान प्राप्त किया। अतः वह इंद्र, वरुण, और यम के साथ चौथा लोकपाल हो गया। ब्रह्मा ने उसे पुष्पक विमान भी दिया। ब्रह्मा के चले जाने के बाद कुबेर ने अपने पिता विश्रवा से पूछा कि कोषाध्यक्ष तो बन गया हूं किंतु मुझे रहने के लिए कोई स्थान नहीं बताया गया। विश्रवा ने कहा—"ब्रह्मा के डर से धनधान्य से परिपूर्ण लंका के सब राक्षस पाताल में चले गये हैं, अतः तुम लंका पर आधिपत्य जमा लो। कुबेर वहीं जाकर रहने लगा। वह कभी-कभी अपने पिता विश्रवा से मिलने आया करता था।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग २, ३

राक्षसों के राजा सुमाली की एक पुत्री थी, जिसका नाम कैकसी था। वे अपनी कन्या के विवाह के लिए चिंतित थे। तपस्यारत विश्रवा को देखकर उन्होंने कैकसी का विवाह विश्रवा से करने का निश्चय किया। उनकी आज्ञानुसार कैकसी विश्रवा के पास पहुंची तथा एक पुत्र की कामना अभिव्यक्त की। विश्रवा ने कहा—"यह प्रदोष की दारुण वेला है, अतः इस समय धारण किये गर्भ से बहुत दारुण संतान का जन्म होता है जिनका आकार-प्रकार तथा कर्म सभी भयानक होते हैं। अतः तुम्हारे पुत्र भी ऐसे ही होंगे।" कैकसी ने धर्मात्मा पुत्र के लिए विनती की तो विश्रवा ने कहा कि सबसे छोटा पुत्र धर्मात्मा होगा। कैकसी का सबसे बड़ा पुत्र दशग्रीव (दशानन) अथवा रावण हुआ, दूसरा कुंभकर्ण, तीसरी कन्या शूर्पणखा और चौथा धर्मात्मा पुत्र विभीषण हुआ।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग ९, श्लोक १-३९
बा० रा०, सुंदर कांड, सर्ग २३, श्लोक ६-७

एक बार कुबेर अपने पिता से मिलने गया। कुबेर के ऐश्वर्य और विनय को देखकर कैकसी ने रावण को कुबेर जैसा बनने की प्रेरणा दी। रावण ने कहा—"मां, मैं शपथ लेता हूं कि इतना ही ऐश्वर्यशाली बनके दिखाऊंगा।" रावण अपने भाइयों सहित वन में तपस्या करने चला गया।

उसने दस हजार वर्ष तक निराहार रहकर तपस्या की। हर एक हजार वर्ष के उपरांत वह अपना एक सिर काटकर होम कर देता था। दस हजार वर्ष पूर्ण होने पर जब वह अपना दसवां सिर काटने लगा तभी ब्रह्मा ने प्रकट होकर उसे वरदान दिया कि गरुड़, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस और देवताओं में से कोई भी रावण को मार नहीं पायेगा। उसके होम किये सब सिर फिर से धड़ पर जा लगेंगे तथा रावण स्वेच्छा से अनेक रूप धारण कर पायेगा। ब्रह्मा ने कहा कि रावण को मनुष्य द्वारा भय बना रहेगा। अपने बल पर गर्व होने के कारण रावण ने मनुष्य द्वारा अवध्यत्व का वर मांगा ही नहीं।

बा० रा०, अरण्य कांड, सर्ग ३२, १३-१९
बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग ९, श्लोक ४०-४८
सर्ग १०।
बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ६०, ६३,

सुमाली को जब मालूम पड़ा कि रावण, कुंभकर्ण और विभीषण ने वर-प्राप्त किये हैं तब उसने रावण को लंका स्थित कुबेर से युद्ध करने के लिए प्रेरित किया। कुबेर रावण का सौतेला भाई था। रावण के भेजे प्रहस्त नामक दूत ने कुबेर से जाकर कहा कि रावण लंका को प्राप्त

करना चाहता है क्योंकि वहां मूलत: सुमाली आदि का राज्य था। कुबेर ने कहा—"रावण मेरा भाई है, उसे कहो कि सारी नगरी और धन उसी का है।" रावण के भय से कुबेर ने अपने पिता विश्रवा की आज्ञा ली और वह लंका का परित्याग कर कैलास पर्वत पर रहने लगा। इस प्रकार रावण ने लंका नगरी प्राप्त की। राक्षसों ने वहां पहुंचकर रावण का राज्यतिलक किया।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग ११

रावण ने कैलास पर चढ़ाई करके कुबेर को परास्त कर दिया तथा उसका पुष्पक विमान छीन लिया।

बा० रा०, अरण्य कांड, सर्ग ३२, १३-१६

एक बार रावण शिकार खेलता हुआ एक जंगल में पहुंचा। वहां उसे दिति का पुत्र मयदानव मिला। उसके साथ उसकी सुंदरी कन्या भी थी। रावण ने उसका परिचय जानना चाहा। मय ने बताया कि उसका विवाह हेमा नामक अप्सरा से हुआ था, जिससे उत्पन्न उस कन्या का नाम मंदोदरी था। रावण के भय से मयदानव ने अपनी पुत्री का विवाह रावण से कर दिया, साथ ही उसे एक अमोघ शक्ति भी दी। कालांतर में जिसका प्रयोग रावण ने लक्ष्मण पर किया था।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग १२, श्लोक १-२१

रावण ने मणिमयी पुरी में निवातकवच दैत्यों से युद्ध किया। दोनों पक्ष बराबर के योद्धा थे, अत: एक वर्ष तक न कोई हारा, न कोई जीता। ब्रह्मा ने प्रकट होकर निवातकवचों को रावण की वर-प्राप्ति के विषय में बतलाकर युद्ध न करने के लिए कहा। उन लोगों ने रावण से मैत्री करके उसका एक वर्ष तक आतिथ्य किया तथा उसको 'माया' सिखायी।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग २३, श्लोक ५-१५

एक बार रावण समुद्र में प्रवेश कर पाताललोक पहुंचा। वहां वासुकी नाग की राजधानी भोगवतीपुरी में उसने नागों को परास्त करके तक्षक की पत्नी को हर लाया।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग २३, श्लोक १-४

रावण पुष्पक विमान पर बैठकर एक मूंज के वन (सरपत वन) में गया। स्वेच्छा से चलनेवाला वह विमान वहां स्वयं ही रुक गया। तभी 'नंदी' ने वहां आकर रावण से कहा—"यह शंकर की क्रीड़ास्थली है। यहां गरुड़, नाग, गंधर्व, देवता, राक्षस और यक्ष आदि का आना वर्जित है। अत: तुम लौट जाओ।" रावण क्रुद्ध होकर शंकर के पास गया। शंकर के निकट ही नंदी त्रिशूल लिये खड़े रहे थे। उनका मुंह वानर जैसा था। रावण ने उनके मुंह का परिहास किया तो क्रुद्ध होकर उन्होंने शाप दिया—"हे दशग्रीव, हमारे वीर्य से उत्पन्न वानर ही तेरा नाश करेंगे।" रावण इस बात की उपेक्षा करता हुआ शिव के पास पहुंचा और बोला—"मेरे विमान की गति को इस पर्वत ने रोका है, अत: मैं इसे उखाड़ फेंकूंगा।" यह कहकर उसने अपने दोनों हाथों पर पर्वत उठा लिया। पर्वत हिलने लगा तो शिव ने अपने पांव के अंगूठे से उसे दबाया, अत: रावण की दोनों बांहें दब गयीं। वह पीड़ा से चिल्लाया। उसकी चिल्लाहट इतनी भयंकर थी कि तीनों लोक कांप गये। रावण ने मंत्रियों का सुझाव मानकर शिव की स्तुति प्रारंभ की। एक हजार वर्ष तक वह शिव-स्तुति में लगा रहा। तदनंतर शिव ने उससे कहा—"हम तुमसे प्रसन्न हैं। तुम्हारे नाद से प्रसन्न हैं—जिससे सब दहल गये थे, अत: अब तुम्हें सब 'रावण' कहा करेंगे। तुम अपनी इच्छानुसार किसी भी मार्ग से पुष्पक विमान ले जा सकते हो।" शिव से रावण ने चंद्रहास नामक एक तलवार भी प्राप्त की जिसके लिए शिव ने कहा कि तनिक भी तिरस्कार होने पर तलवार तुरंत शिव के पास चली जायेगी।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग १६

उत्तरोत्तर बढ़ती हुई शक्ति के कारण वह दुराचारी और अभिमानी होता गया। एक बार वह देवलोक जीतने जा रहा था। मार्ग में उसने सेना का पड़ाव डाला। सारी सेना सो रही थी, किंतु वह वहां की शोभा देख रहा था। उसने किसी उत्सव में जाती हुई रंभा को देखा। उसने रंभा का हाथ पकड़ लिया और अपने साथ विहार करने के लिए कहा। रंभा ने हाथ जोड़कर बतलाया कि वह कुबेर के पुत्र नलकवर की पत्नी होने के कारण रावण की पुत्रवधू है। रावण को उसकी रक्षा करनी चाहिए। उसे इस प्रकार की बात शोभा नहीं देती। रावण ने यह कहकर कि अप्सरा किसी एक की पत्नी नहीं होती, उसके साथ संभोग किया। रंभा अत्यंत त्रस्त एवं दुखी होती हुई नलकूबर के पास गयी तथा सब कह सुनाया। नलकूबर ने रावण को शाप दिया कि वह भविष्य में बलपूर्वक भोग करेगा तो उसके सिर के सौ टुकड़े हो जायेंगे।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग २६, श्लोक १-६०

एक बार पुंजिकस्थला नाम की अप्सरा आकाश-मार्ग से ब्रह्मलोक की ओर जा रही थी। रावण ने उसे नग्न करके बलपूर्वक उससे संभोग किया। तदुपरांत वह भीता कांपती हुई ब्रह्मलोक पहुंची। ब्रह्मा ने रुष्ट होकर शाप दिया कि भविष्य में रावण यदि किसी भी स्त्री के साथ बलपूर्वक संभोग करे तो उसके सिर के सौ टुकड़े हो जायेंगे।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग १३, श्लोक ११-१४

रावण के अत्याचारों से दुखी होकर देवताओं ने ब्रह्मा की आराधना की। ब्रह्मा ने उन्हें आश्वस्त किया कि "राक्षस और दानव उनके डर से तीनों लोकों में घूमते रहेंगे।" इससे देवताओं के भय का पूर्ण निवारण नहीं हुआ। अतः उन्होंने महादेव की आराधना की। महादेव ने कहा—"राक्षसों का नाश करनेवाली एक स्त्री प्रकट होगी। पहले जैसे देवताओं से प्रेरणा पाकर क्षुधा ने दानवों को खा लिया था, उसी तरह सीता रावण के साथ उन सबका नाश कर डालेगी।"

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ९५, श्लोक ३१-४१

राम ने रावण के हननार्थ ही पृथ्वी पर जन्म लिया। रावण के दस सिर थे। हर बार सिर कटने के बाद दूसरा सिर निकल आता था। इस प्रकार दस बार सिर काटकर राम ने रावण को मार डाला।

दे० अकंप

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग १११

राम-रावण युद्ध में अनेक राक्षसों का वध हुआ :

(१) देवांत-वध—हनुमान के द्वारा।
बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ७०, श्लोक २४-२६

(२) त्रिशिरा—हनुमान के द्वारा।
बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ७०, श्लोक ४१-४९

(३) महापार्श्व-वध—ऋषभ द्वारा हुआ।
बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ७०, श्लोक ५७-६३

(४) उन्मत्त-वध—गवाक्ष द्वारा।
बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ७०, श्लोक ६६-७०

(५) कंपन वध—अंगद के द्वारा।
बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ७६, श्लोक १-१०

(६) शोणिताक्ष-वध—द्विविद के द्वारा।
बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ७६, श्लोक ३०-३३

(७) प्रजंघ-वध—अंगद के द्वारा।
बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ७६, श्लोक २१-२६

(८) यूपाक्ष-वध—मैंद के द्वारा।
बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ७६, श्लोक ३४

(९) कुंभ-वध—सुग्रीव के द्वारा।
बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ७६, श्लोक ८७-९२

(१०) निकुंभ-वध—हनुमान द्वारा।
बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ७७, श्लोक १३-१४

(११) मकराक्ष-खर का पुत्र था। उसका वध राम के हाथों हुआ।
बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ७९

(१२) विरूपाक्ष-वध—सुग्रीव द्वारा।
बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ९७, श्लोक २७-३६,

(१३) महोदर-वध—सुग्रीव द्वारा।
बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ९८, श्लोक २२-२८

(१४) महापार्श्व-वध—अंगद द्वारा।
बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ९९,

रावण की राक्षस-सेना का हनन :

प्रजङ्घ—संपाति ने मारा।
जंबुमाली—हनुमान ने मारा।
मित्रघ्न—विभीषण ने मारा।
तपन—नील ने मारा।
निकुंभ—हनुमान ने मारा।
प्रघस राक्षस वानरों को ग्रस लेता था। प्रघस को गज ने मारा
प्रप्तध्न—राम ने मारा।
यज्ञकोप—राम ने मारा।
अशनिप्रभ—द्विविद ने मारा।
विद्युन्माली—सुषेण ने मारा।
वज्रमुष्ठि—मैंद ने मारा।
निकुंभ—नील ने मारा।
अग्निकेतु—राम ने मारा।
रश्मिकेतु—राम ने मारा।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ४३, श्लोक १७-४३

यमशत्रु, महापार्श्व, महादेर, वज्रदंष्ट्र, शुक तथा सारण को राम ने मारा।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ४४, श्लोक १७-२१

ब्रह्मा के मानसपुत्र पुलस्त्य थे। उन्हें गौ नामक पत्नी से वैश्रवण नामक पुत्र प्राप्त हुआ जो अपने पिता को छोड़कर पितामह ब्रह्मा के पास ही रहने लगा,

अत: पुलस्त्य ने क्रोधवश अपने-आपको ही दूसरे रूप में प्रकट कर लिया। वह रूप विश्रवा कहलाया। वह वैश्रवण से बदला लेना चाहता था। ब्रह्मा वैश्रवण पर प्रसन्न थे। उन्होंने उसे अमरत्व प्रदान किया। उसकी महादेव से मैत्री करवाकर धन का स्वामी (कुबेर) बना दिया। उसे नलकूवर नामक पुत्र तथा पुष्पक विमान प्रदान किया। वैश्रवण अपने पिता को प्रसन्न करने के लिए प्रयत्नशील था। उसने पुष्पोत्कटा, राका तथा मालिनी नामक तीन राक्षस-कन्याएं पिता की सेवा में भेजीं। पुष्पोत्कटा ने रावण तथा कुंभकर्ण, मालिनी ने विभीषण तथा राका ने खर (पुत्र) और शूर्पणखा (पुत्री) को जन्म दिया। कुबेर से डाह होने के कारण रावण, कुंभकर्ण तथा विभीषण ने ब्रह्मा को तपस्या से प्रसन्न किया। रावण ने अपने सिर काटकर आहुतियां दीं, फलस्वरूप ब्रह्मा ने रावण के समस्त सिर पुन: स्थापित कर इच्छानुसार रूप धारण कर पाने का तथा मानवेतर भय से मुक्त रहने का वर दिया। कुंभकर्ण को निद्रा का तथा विभीषण को शुद्ध चित्त तथा अमरत्व प्रदान किया। रावण ने वर प्राप्त करते ही कुबेर को लंका से मार भगाया। उसने शाप दिया कि रावण का क्षय शीघ्र ही होगा तथा वह पुष्पक विमान का प्रयोग नहीं कर पायेगा। विभीषण ने सदैव कुबेर के धर्मसम्मत मार्ग का अनुसरण किया। रावण ने समस्त लोकों को रुला दिया था, अत: वह रावण कहलाया। देवताओं ने ब्रह्मा से जाकर प्रार्थना की कि वे रावण के उत्पात को शांत करें। उनके वर के कारण वह मानवेतर के लिए अवध्य है। ब्रह्मा ने मानव-रूप में विष्णु (रामचंद्र) को उसके संहार के लिए भेजा तथा उन्हींके आदेश से इंद्र ने समस्त देवताओं को वानरों, रीछों आदि की संतानों के रूप में पृथ्वी प्रकट किया।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय २७४।११ से १७ तक, २७५, २७६।-

ब्रह्मा से शिवाराधना का मंत्र प्राप्त करने के लालच में रावण ने चंद्रमा के साथ युद्ध करना बंद कर दिया। मंत्र लेकर मदमस्त उसने लंका की ओर जाते हुए कैलास पर्वत को देखा। लंका में स्थापित करने के लिए वह पर्वत को उठाने का प्रयास करने लगा। शिव ने उसका मद देखा तो अपने अंगूठे से दबाकर उसे रसातल में घुसा दिया। रावण ने चिल्लाकर दया मांगी। शिव ने क्षमा कर दिया। वह गंगास्नान तथा शिवपूजन करके लंका लौटा।

ब्र० पु०, १४३।-

लंका में सुमाली की पत्नी प्रीतिमती के गर्भ से तीन पुत्रों का जन्म हुआ, जिनमें से रत्नश्रवा रूप और गुणों से युक्त था। उसका विवाह व्योमबिंदु की कन्या कैकसी से हुआ। एक रात कैकसी ने स्वप्न देखा कि उसके उदर में पहले एक सिंह ने, फिर सूर्य और चंद्रमा ने प्रवेश किया है। ज्योतिषियों ने इसका अर्थ यह बताया कि उसका पहला पुत्र सिंह के समान क्रूरकर्मा योद्धा होगा। तदुपरांत दो अन्य पुत्रों का जन्म होगा जो पुण्य की ओर ध्यान देंगे। कालांतर में उसका पुत्र हुआ, जिसका नाम रावण रखा गया। उसे राक्षसपति ने एक रत्नहार पहनाया, जो पूर्वकाल में मेघवाहन को दिया गया था। उस हार में प्रतिबिंबित नौ अन्य मुख दिखायी दिये, अत: बालक का नाम दशमुख पड़ा। उसके दो छोटे भाई भानुकर्ण तथा विभीषण हुए तथा एक बहन हुई, जिसका नाम चंद्रनखा रखा गया।

रावण, भानुकर्ण तथा विभीषण ने वन में जाकर घोर तप से अनेक सिद्धियां प्राप्त कीं। तप की समाप्ति के उपरांत सुमाली ने उन्हें बताया कि उनकी वंश-परंपरा मेघवाहन से निरंतर लंका पर शासन करती आयी थी। माली को राजा इंद्र ने मार डाला और उसे पाताल दुर्ग में प्रवेश कर अपनी रक्षा करनी पड़ी। उन लोगों का भोग्य राजा इंद्र भोग रहा है। ज्योतिषियों के अनुसार उसका पोता पुन: राज्य प्राप्त करेगा। तदनंतर रावण ने लंका में प्रवेश किया। राजा मय की कन्या मंदोदरी के साथ उसका विवाह हुआ। मय कन्या को लेकर आकाश-मार्ग से उसके पास पहुंचा था। मंदोदरी पटरानी थी। उसकी अनेक अन्य रानियां भी थीं। विभिन्न विद्याओं के प्रयोग से वह अनेक रूप धारण करके विभिन्न रानियों के साथ एक ही समय में विहार करता था। उसके दो पुत्र हुए जिनके नाम इंद्रजित और मेघवाहन रखे गये। रावण ने भुवनालंकार नामक हाथी को युद्ध में परास्त करके हस्तगत कर लिया था। यम नामक राजा को परास्त करके उसने किष्किंधा नगरी को प्राप्त किया। एक बार रावण ने साधु अनंतवीर्य से अपने मरण के विषय में पूछा तो उन्होंने बताया—"जो व्यक्ति 'कोटिशिला' को उठा लेगा, वही तुम्हारा मारक होगा।" सीताहरण के उपरांत विद्याधरों ने यह बताया कि लक्ष्मण ने वह शिला उठा ली है।

पउ० च०, ७।८६-६८, ८।-४८-

रासलीला शरत्पूर्णिमा की रात में कृष्ण ने वांसुरी वजायी। उसके स्वर से समस्त गोपीमंडल खिंचा चला आया। जिस समय वांसुरी का स्वर सुना—कोई गोपी उबटन मल रही थी, कोई भोजन वना रही थी, सभी अपना-अपना काम छोड़कर वन की ओर भागीं। लोक-लज्जा, मर्यादा, संबंधियों की बाधा इत्यादि सभी की उपेक्षा कर जब वे कृष्ण के निकट पहुंचीं तो कृष्ण ने उन्हें अपने-अपने घर वापस चले जाने को कहा। वे बोलीं—"तुम घट-घटवासी श्रीहरि हो। हमें संसार का कोई आकर्षण तुम्हारे प्रेम से विचलित नहीं कर सकता।" यमुना के पुलिन पर वे सब कृष्ण को घेरे खड़ी थीं कि कृष्ण अंतर्धान हो गये। गोपिकाएं व्याकुल मन से पेड़-पौधों, भाड़ियों से कृष्ण के विषय में पूछती रहीं। फिर कृष्ण के विरह से तप्त वे तत्संबंधित पूतना आदि की लीलाओं का अभिनय करने लगीं। कोई शिशु कृष्ण वन गयी तो कोई पूतना। तदनंतर उन्होंने रेत में ध्वजा, कमल, वज्र, अंकुश तथा जौ से युक्त श्रीकृष्ण के चरण-चिह्न देखे। उनके साथ-साथ एक नारी के चरण-चिह्न भी थे। गोपिकाएं उनके सहारे कृष्ण और अज्ञात प्रेमिका को ढूंढ़ने लगीं। वे कहने लगीं—"निश्चय ही कोई कृष्ण की 'आराधिका' होगी।" उधर कृष्ण ने उस गोपी से एकांत में प्रेमालाप किया, इसलिए उसे गर्व हो गया। कृष्ण उसके पास से भी अंतर्धान हो गये। वह व्याकुल मन से चांदनी और अंधेरे से युक्त तट पर कृष्ण को याद कर रही थी कि शेष गोपिकाएं भी उन्हें ढूंढ़ती हुई वहां पहुंच गयीं। गोपिकाएं भांति-भांति के प्रलाप कर कृष्ण की विभिन्न लीलाओं को याद करने लगीं। जितनी गोपिकाएं थीं, कृष्ण ने उतने ही रूप धर लिए। प्रत्येक गोपी के साथ कृष्ण रास करने लगे। महारास के उपरांत कृष्ण ने उन्हें उनके घर भेज दिया। कृष्ण की योगमाया से किसी भी गोप में दोषबुद्धि ने प्रवेश नहीं किया। तब तक यमुना के पुलिन पर रास होता रहा, उन्हें ऐसा ही लगता रहा कि उनकी पत्नियां उनके पास हैं।

श्रीमद् भा०, १०।२९-३३।-

रुक्मिणी महाराज भीष्मक की कन्या (विदर्भ देश की राजकुमारी) का नाम रुक्मिणी था। वह गुण-श्रवण के माध्यम से ही कृष्ण पर मुग्ध हो गयी थी किंतु उसका भाई रुक्मी कृष्ण का द्वेषी था, अतः वह रुक्मिणी का विवाह शिशुपाल से करना चाहता था। रुक्मिणी ने विवाह से दो दिन पूर्व श्रीकृष्ण के पास अपने प्रेम का संदेश भेजा, साथ ही कहलाया कि विवाह से एक दिन पूर्व वह गिरिजा के मंदिर में ले जाई जायेगी, वहीं से कृष्ण उसका अपहरण कर लें ताकि लड़ाई में संबंधियों का नाश न हो। संदेशवाहक ब्राह्मण को साथ ले श्रीकृष्ण रुक्मिणी का विवाह देखने के बहाने से विदर्भ देश पहुंचे। निश्चित मंदिर के पास ही उन्होंने उसका हरण कर उसे अपने रथ में बैठा लिया। शिशुपाल के साथी राजाओं तथा रुक्मी ने कृष्ण पर आक्रमण किया। रुक्मी ने कसम उठाई कि यदि कृष्ण को पराजित नहीं कर पायेगा तो अपनी राजधानी में नहीं घुसेगा। कृष्ण ने उन सबको पराजित कर दिया। रुक्मिणी अपने भाई का वध नहीं चाहती थी, अतः कृष्ण ने रुक्मी की दाढ़ी-मूंछ तथा केश मुंडवाकर उसे छोड़ दिया। रुक्मी शपथ ले चुका था कि कृष्ण को हराए बिना अपनी राजधानी कुंडिनपुर में प्रवेश नहीं करेगा, अतः कृष्ण से पराजित होने के बाद उसने 'भोजकट' नाम की एक नगरी बसायी और उसीमें रहने लगा।

श्रीमद् भा०, १०।५२-५४
हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व, ५९-६०
ब्र० पु०, १९९।-

कौरव-पांडवों के भावी युद्ध के विषय में जानकर रुक्मी अपनी सेना सहित पांडवों के शिविर में पहुंचा। कृष्ण का उससे पूर्व परिचय था। कृष्ण ने जब रुक्मिणी का अपहरण किया था, तब रुक्मी ने आत्म-वीरत्व-प्रशंसा करते हुए कृष्ण को ललकारा था। उसने प्रतिज्ञा की थी कि कृष्ण को मारे बिना राज्य में वापस नहीं आयेगा। कृष्ण से पराजित होकर वह अपने नगर में नहीं लौटा था तथा उसने अपने पराजय स्थल पर 'भोजकट' नामक नगर बसाया था। स्वभाववश वह पुनः अपने ओज तथा वीरत्व का बखान करने लगा। उसके यह पूछने पर कि पांडवों को उसकी सहायता की आवश्यकता है, क्या पांडवों ने मना कर दिया? तदनंतर वह दुर्योधन की सहायता के निमित्त उसके पास गया, पर उसने भी सहायता लेने से इंकार कर दिया। अतः महाभारत के युद्ध में बलराम तथा रुक्मी—ये दोनों राजा सम्मिलित नहीं हुए।

म० भा०, उद्योगपर्व, १५८।-

रुद्र दैत्यों के सम्मुख देवता टिक नहीं पाते थे। वे अपने पिता कश्यप की शरण में गये। कश्यप ने शिव को अपनी तपस्या से प्रसन्न करके वरदान प्राप्त किया कि शिव उनकी पत्नी वसुधा के गर्भ से अवतरित होकर दैत्यों को त्रस्त करेंगे। कालांतर में शिव ग्यारह रुद्रों के रूप में वसुधा के गर्भ से प्रकट हुए। उनके वे रूप कपाली, पिंगल, भीम, विलोहित, शस्त्रभृत, अभय, अजपाद, अहिबुध्न्य, शंभु, भव तथा विरुपाक्ष नाम ने विख्यात हैं। उन्होंने दैत्यों को मार भगाया तथा देवताओं ने अपना राज्य पुन: प्राप्त किया।

शि० पु०, ७।२४।-
वि० पु०, १।८।१-१५।-

रुद्राक्ष शिव ने संसार के उपकार के लिए दिव्य सहस्र वर्ष तप किया। तदनंतर नेत्र खोलने पर दो जलकण पृथ्वी पर गिरे जो रुद्राक्ष के वृक्ष बन गये। शूद्र को भी शुद्धता से रुद्राक्ष धारण करने का अधिकार प्राप्त है। एकमुखी रुद्राक्ष तथा पंचमुखी रुद्राक्ष शिवरूप हैं। उनके धारण करने से भक्ति तथा मुक्ति मिलती है। द्विमुखी रुद्राक्ष धारण करने से गोवध का पाप नष्ट हो जाता है। त्रिमुखी रुद्राक्ष से धन और विद्या की प्राप्ति होती है। चतुर्मुखी रुद्राक्ष ब्रह्मा का रूप है। षष्ठमुखी रुद्राक्ष दाहिनी बांह में धारण करना चाहिए। वह स्कंद के समान होता है। सप्तमुखी रुद्राक्ष से निर्धन भी राज्य प्राप्त कर लेता है। अष्टमुखी बटुक भैरव का रूप है। नवमुखी दुर्गा का स्वरूप, दशमुखी जनार्दन-स्वरूप, एकादशमुखी रुद्र-स्वरूप, द्वादशमुखी सूर्य-स्वरूप, त्रयोदशमुखी विश्वदेव-स्वरूप, चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष को मस्तक पर धारण करना चाहिए। उससे सब प्रकार का आनंद मिलता है। रुद्राक्ष कितनी संख्या में कहां धारण करने चाहिए, इसके भी नियम हैं(दे० शि० पु०, ८।१२-१४)।

शि० पु०, ८।११

रुरु गंधर्वराज विश्वावसु के संपर्क में आकर अप्सरा मेनका ने एक कन्या को जन्म दिया, जिसे वह स्थूलकेश नामक ऋषि के आश्रम के निकट छोड़ आयी। स्थूलकेश ने उसे पुत्रीवत् पाला। वह बुद्धि, रूप, गुण में अत्यंत निपुण थी, अत: उसे प्रभद्वरा नाम दिया। एक बार रुरु ने उसे देखा तथा उसीसे विवाह करने का निश्चय कर लिया। स्थूलकेश ने उसका वाग्दान कर दिया। एक दिन जगल में विहार करती हुई प्रभद्वरा को सांप ने डंस लिया। सब लोग विलाप कर रहे थे तभी रुरु से आकाशचारी देवदूत ने कहा कि प्रभद्वरा को पुनर्जीवन देने का एकमात्र उपाय यही है कि रुरु अपनी शेष आयु का आधा भाग उसे दे दे। रुरु तुरंत तैयार हो गया। धर्मराज की कृपा से रुरु की आधी आयु प्राप्त कर वह जी उठी।

म० भा०, आदिपर्व, ८।६।-
दे० भा०, २६।

रेणुका जमदग्नि ऋषि को धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर वाण छोड़ने में बड़ा आनंद आता था। उनकी सुंदरी पत्नी रेणुका वाण उठाकर लाती तथा वे बार-बार चलाते। एक बार भरी दोपहरी में उन्होंने रेणुका से वाण उठा लाने के लिए कहा। मार्ग में धूप से पांव तथा मस्तक जलने के कारण रेणुका को पेड़ों की छाया में रुकना पड़ा। वाण ले जाने पर जमदग्नि ने विलंब का कारण जाना तो सूर्य को लक्ष्य बनाकर धनुष पर वाण चढ़ा दिया। सूर्य भयभीत होकर ब्राह्मण-रूप में ऋषि की शरण में जा पहुंचा। ऋषि ने उसे पहचान लिया तथा शरणागत को रक्षा का आश्वासन दिया। उनके क्रोध का कारण जानकर सूर्य ने उन्हें एक छत्र तथा जूते अर्पित किये, जो उसके ताप से सुरक्षा करने में समर्थ थे।

म० भा०, दानधर्मपर्व, ६५।१-१६।-

रेवती (क) भारद्वाज की बहन रेवती अत्यंत कुरूपा थी। उसकी वाणी में भी दोष था। भारद्वाज उसके विवाह के विषय में विशेष चिंतित थे। उनके पास 'कठ' नामक ब्राह्मण विद्याभ्यास के लिए आया। अध्ययन पूरा करके जब उसने इच्छित गुरु-दक्षिणा के लिए पूछा तो उन्होंने रेवती से उसका विवाह करवा दिया। इस गुरु-दक्षिणा से वे प्रसन्न हो गये। शिवाराधना तथा गंगा-स्नान से रेवती ने अनुपम सौंदर्य प्राप्त किया।

ब्र० पु०, १२१।-

(ख) रेवत कुकुद्मी अपने सौ भाइयों में सबसे बड़ा था। उसकी पुत्री का नाम रेवती था। महाराज रेवत अपनी पुत्री रेवती को लेकर ब्रह्मा के पास गये। वह उसके योग्य वर की खोज में थे। उस समय हाहा, हूहू नामक दो गंधर्व गान प्रस्तुत कर रहे थे। गान समाप्त होने के उपरांत उन्होंने ब्रह्मा से इच्छित प्रश्न पूछा। ब्रह्मा ने कहा—"यह गान जो तुम्हें अल्पकालिक लगा, वह चतुर्युग तक चला। जिन वरों की तुम चर्चा कर रहे

हो, उनके पुत्र-पौत्र भी अब जीवित नहीं हैं। तुम विष्णु के साथ इसका पाणिग्रहण कर दो। वह बलराम के रूप में पृथ्वी पर अवतरित हैं।" राजा रेवती को लेकर पृथ्वी पर गये। विभिन्न नगर जैसे छोड़ गये थे, वैसे अब शेष नहीं थे। मनुष्यों की लंबाई बहुत कम हो गयी थी। बलराम ने रेवती से विवाह कर लिया। उसे लंबा देखकर हलधर (बलराम) ने अपने हल की नोक से दबाकर उसकी लंबाई कम कर दी। वह अन्य सामान्य नारियों के कद की हो गयी। (मा० पु० में रेवती रैवत की मां के रूप में अंकित है।)

वि० पु०, ४।१
दे० भा०, ७।८।४१

रैक्व जनश्रुति का प्रपौत्र जानश्रुति अपनी दानशीलता के लिए दूर-दूर तक विख्यात था। एक रात राजा जानश्रुति ने दो उड़ते हुए हंसों को परस्पर बात करते सुना। एक हंस ने कहा—"ओ मल्लाक्ष, देख, राजा जानश्रुति (जनश्रुति के प्रपौत्र) का तेज द्युलोक का स्पर्श कर रहा है। तुझे भस्म न कर डाले, जरा संभलकर उड़ना।"

मल्लाक्ष ने कहा—"क्या तू राजा जानश्रुति को गाड़ी वाले रैक्व के समान समझता है? रैक्व तो अत्यंत ज्ञानी है। जिस प्रकार द्यूतक्रीड़ा में कृत नामक पासा जीतने के उपरांत अपने से निम्न श्रेणी के समस्त अंक उस खिलाड़ी को मिल जाते हैं, वैसे ही कृतस्थानीय रैक्व को त्रेतादि स्थानीय समस्त सुकृतों का फल प्राप्त हो जाता है।"

यह सुनकर राजा ने अनेक प्रयत्नों से रैक्व को खोज निकाला। जब राजा का अनुचर उसके पास पहुंचा तो वह अपने छकड़े के नीचे पड़ा खुजला रहा था। राजा ने उसे अनेक गाय, धन, धान्य, गांव तथा अपनी कन्या सौंपकर उससे ज्ञान प्राप्त किया। जिस ग्राम में रैक्व रहता था, वह रैक्वपार्ण नाम से प्रसिद्ध हुआ।

छा० उ०, अध्याय ४, खंड १, २ (संपूर्ण)

रैवत मनु (५) ऋतवाक् नामक महर्षि के दीर्घकाल तक कोई पुत्र नहीं हुआ। जब पुत्र-जन्म हुआ तो रेवती नक्षत्र के अंतिम चरण में पहुंचा। अतः बालक अत्यंत उद्धव स्वभाव का था। उसके कारण माता-पिता परलोक-विमुख और दुखी हो गये। उसने एक मुनिकुमार की पत्नी का अपहरण कर लिया। ऋतवाक् ने अपने पुत्र की दुष्टता का कारण रेवती नक्षत्र को समझकर उसके पतन का शाप दे दिया। रेवती नक्षत्र तत्काल आकाश से नीचे गिर गया। उसकी कांति कमल मंडित सरोवर के रूप में प्रकट हुई। उस सरोवर से एक सुंदरी का प्रादुर्भाव हुआ। वह प्रमुचि मुनि के आश्रम के पास उत्पन्न हुई थी, अतः मुनि ने उसका नाम रेवती रख दिया तथा उसका लालन-पालन किया। एक बार राजा दुर्गम मुनि के आश्रम पर पहुंचे। मुनि ने उनका कुशल-क्षेम पूछकर अपनी कन्या रेवती का विवाह-प्रस्ताव उनके सम्मुख रखा। राजा मौन हो गये। पिता को अपने विवाह के लिए उत्सुक देखकर रेवती ने कहा कि उसका विवाह रेवती नक्षत्र में ही करें। मुनि ने स्वीकार कर लिया। अपनी तपस्या के बल से मुनि प्रमुचि ने रेवती नक्षत्र को पुनः आकाश में स्थापित कर दिया तथा रेवती नक्षत्र में ही कन्या का विवाह किया। तदनंतर उन्होंने राजा को ऐसा पुत्र प्राप्त करने का वर दिया जो मन्वंतर का स्वामी हो। राजा दुर्गम स्वायंभुव मनु के वंश में उत्पन्न हुए थे। उनके पुत्र का नाम रैवत पड़ा। रैवत पांचवें मनु थे।

देवी भागवत में राजा 'दुर्गम' के स्थान पर 'दुर्दम' नाम का प्रयोग है—शेष कथा मार्कंडेय पुराण जैसी ही है।

मा० पु०, ७२।-
दे० मा०, माहात्म्य, ४।-

रोहित (दे० शुनःशेप) त्रिशंकु का पुत्र हरिश्चंद्र पुत्रहीन था। उसने वरुण से पुत्र-कामना की तथा कहा कि वह पुत्र होने पर उसीसे वरुण का यजन करेगा। कालांतर में पुत्र हुआ। उसका नाम रोहित रखा गया। रोहित के जन्म के बाद अनेक बार प्रकट होकर वरुण ने अपना यज्ञ करने के लिए हरिश्चंद्र से कहा किंतु उसने बार-बार बहाना लगा दिया। कभी कहता कि बालक दस दिन का हो जाय, फिर उसके दांत निकल आयें, फिर कवच धारण करने लायक हो जाय, इत्यादि। वह अपने पुत्र पर इतना आसक्त था कि उसे बचाने का हर प्रयास करता रहा। रोहित को जब यह विदित हुआ कि उसके पिता ने वरुण के लिए उसका यजन करने का वचन दे रखा है तो वह वन में धनुष-बाण लेकर चला गया। वहीं उसे ज्ञात हुआ कि वरुण ने रुष्ट होकर उसके पिता पर आक्रमण किया था, फलस्वरूप पिता को महोदर का रोग हो गया है। वह बार-बार घर जाने के लिए तैयार हुआ किंतु हर बार इंद्र ने ब्राह्मण-वेश में प्रकट होकर उससे

कहा— "यज्ञपशु होकर मरने से तो तीर्थ-यात्रा करना ही अच्छा है।" तथा वह रुक गया। सातवें वर्ष वह अपने नगर लौटने लगा। मार्ग में अजीगर्त से उसका मंझला पुत्र, शुनः शेप (विश्वामित्र ने अपनी बहन तथा बहनोई अजीगर्त के मंझले बेटे शुनः शेप, जिसका नाम देवरात भी था, को गोद ले लिया था और अपने पुत्रों से कहा था कि वे उसे बड़ा भाई मानें) मोल ले लिया। घर जाकर उसने शुनः शेप को यज्ञपशु बनाने के लिए पिता को सौंप दिया। हरिश्चंद्र ने पुरुषमेध यज्ञ किया। वह महोदर रोग से मुक्त हो गया तथा इंद्र ने उसे एक स्वर्ण-रथ प्रदान किया।

श्रीमद् भा०, नवम स्कंध, ७'७-२७
श्रीमद् भा०, १६।३०-३१

राजा हरिश्चंद्र के कोई पुत्र नहीं हुआ तो उन्होंने नारद की प्रेरणा से वरुण के मंत्र का जाप किया तथा कहा कि पुत्र होने पर वह उसकी बलि देकर वरुण को प्रसन्न करेंगे। पुत्र रोहित के जन्म लेते ही वरुण ने उसकी बलि मांगी तो राजा ने कहा कि उसके दांत हैं, दांत न रहने पर बलि देंगे। वरुण के कहने से बार-बार दांत हट जाते और हरिश्चंद्र के कहने पर पुनः प्रकट होते। राजा ने कहा कि बालक के तरुण होने पर बलि देंगे। वरुण के लौटने पर राजा ने बालक को वन में भेज दिया, जहां से इंद्र ने उसे आने ही न दिया, तदनंतर राजा महोदर रोग से पीड़ित रहने लगा। राजा ने अजीगर्त के मंझले बेटे, सत्यपुहुप, को मोल लेकर बलि दी तथा देवताओं को प्रसन्न करके रोग से मुक्ति प्राप्त की।

शि० पु०, ११।२०

रौच्य मनु (१३) (रौच्य सावर्णि मनु) महात्मा रुचि अनासक्तिपूर्ण जीवन-यापन करते थे। न उनका कोई घर था, न अग्नि प्रज्वलित की थी। वे दिन में एक बार आहार लेकर संसार में घूमते थे। एक बार उनके पितरों ने प्रकट होकर उन्हें विवाह करने का आदेश दिया तथा कहा कि विवाह करके ही वे पितरों का कल्याण कर सकेंगे और स्वयं भी मोक्ष प्राप्त करेंगे। रुचि ने कहा कि बुढ़ापे में पत्नी प्राप्त करना भी कठिन है। पितृगण अंतर्धान हो गये। रुचि ने ब्रह्मा की आराधना की। ब्रह्मा ने कहा—"तुम प्रजापति होगे किंतु तुम्हें पत्नी तो पितरों की कृपा से ही मिल सकती है। उन्होंने पितरों की आराधना की। पितरों ने प्रकट होकर कहा कि उसे वहीं से (जहां वह आराधना कर रहा है) पत्नी मिलेगी। उसका पुत्र मनु होगा। फलतः निकटवर्ती नदी में से तत्काल ही अप्सरा 'प्रम्लोचना' प्रकट हुई। उसके साथ वरुण के पुत्र पुष्कर से उत्पन्न हुई, उसकी कन्या भी थी। उसने तपस्वी रुचि से अनुरोध किया कि वे उसे पत्नी-रूप में ग्रहण करें। कालांतर में प्रजापति रुचि ने प्रजा की सृष्टि की। उसी का पुत्र रौच्य सावर्णि तेरहवां मनु हुआ।

मा० पु०, ९२-९५।-

□

ल

लंका-दहन सुग्रीव ने जब देखा कि राक्षसों के अधिकांश वीर योद्धा युद्धक्षेत्र में मारे गये हैं, तब उसने सब फुर्तीले वानरों को मशाल लेकर लंका पर चढ़ाई करने का आदेश दिया। देखते-ही-देखते सोने की लंका जलकर खाक हो गयी। राक्षस घबराकर इधर-उधर भागने लगे तथा क्रुद्ध होकर वानर-सेना से युद्ध करने के लिए लंका से बाहर निकल आये।

दे० हनुमान

बा० रा०, युद्ध कांड, ७५ सर्ग (संपूर्ण)

लक्ष्मण (मूर्च्छा) (लक्ष्मण दशरथ तथा सुमित्रा का पुत्र था। वह राम का छोटा भाई था। राम के वनगमन के विषय में सुनकर वह भी राम के साथ चौदह वर्षों के लिए वन गया था। 'सीता-हरण' के संदर्भ में राम-रावण युद्ध हुआ।) लंका में युद्ध प्रारंभ हुआ तो राक्षसों से वानर-सेना अधिक शक्तिशाली जान पड़ती थी। तभी अचानक मेघनाद ने अंतर्धान होकर माया के प्रभाव से अपने को छिपा लिया और राम तथा लक्ष्मण को वाणों से बेध डाला। वे वाण राम और लक्ष्मण को लगकर सर्प बन जाते थे। वे दोनों शर-शैया पर मूर्च्छित होकर पड़े हुए थे तथा संपूर्ण वानर एवं विभीषण चिंतित-से उन्हें घेरे हुए थे तभी राम और लक्ष्मण को मरा हुआ जानकर मेघनाद ने यह सूचना रावण को दी। रावण ने दासी त्रिजटा के साथ विमान में सीता को भेजा। वह मूर्च्छित राम तथा लक्ष्मण को देखकर विलाप करने लगी। त्रिजटा उसे अशोकवाटिका में ले गयी तथा समझाने लगी कि यदि राम न रहे होते तो पुष्पक विमान हमें लेकर न उड़ता, क्योंकि यह विधवा स्त्रियों का वहन नहीं करता है, अत: वे मात्र अचेत होंगे।

उधर राम तो मूर्च्छा से जाग उठे, किन्तु लक्ष्मण की गहन मूर्च्छा को देखकर सब चिंतित एवं निराश होने लगे। विभीषण ने सबको सांत्वना दी। वे सब संजीवनी बूटी की खोज में हनुमान को भेज ही रहे थे कि विनतानंद पक्षिराज गरुड़ ने प्रकट होकर राम-लक्ष्मण का स्पर्श किया जिससे वे पूर्ण स्वस्थ हो गये। उन्होंने यह भी बताया कि मेघनाद के वाण वास्तव में कद्रु के पुत्र नाग हैं। उनको स्वस्थ देखकर आधी रात में ही वानरों ने बहुत शोर मचाया तथा गरुड़ ने विदा ली।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ४५ से ५० तक

पुन: युद्ध करते समय रावण ने लक्ष्मण पर शक्ति का प्रहार किया।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग १०१, श्लोक ३४-३६

लक्ष्मण मूर्च्छित हो गया। लक्ष्मण की ऐसी दशा देखकर राम विलाप करने लगे। सुषेण ने कहा—"लक्ष्मण के मुंह पर मृत्यु-चिह्न नहीं है।"

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग १०२, श्लोक १५-३९

सुषेण ने हनुमान से कहा कि वह औषधि पर्वत से विशल्य-करणी, सावर्ण्यकरणी, संजीवकरणी तथा संधानी औषधियों को ले आये। हनुमान तुरंत पवन वेग से उड़कर गया और औषधियों को न पहचान पाने के कारण पर्वत-शिखर ही उठा लाया। सुषेण ने औषधि पीसकर लक्ष्मण की नाक में डाली और वह तुरंत ठीक हो गया।

दे० राम

बा० रा०, युद्ध कांड, १०१।३४-३६।-

बा० रा०, युद्ध कांड, १०२।१५-३९।-

लक्ष्मण ने मध्यप्रदेश में क्षेत्रांजलिपुर के राजा के विषय में सुना कि जो उसकी शक्ति को सह लेगा, उसीसे वह अपनी कन्या का विवाह कर देगा। लक्ष्मण ने भाई की अनुज्ञा मानकर राजा से प्रहार करने को कहा। शक्ति सहकर उसने शत्रुदमन राजा की कन्या जितपद्मा को प्राप्त किया। जितपद्मा को समझा-बुझाकर राम, सीता तथा लक्ष्मण नगर से चले गये।

राम-रावण युद्ध में विभीषण को रावण से बचाने के कारण लक्ष्मण रावण के मुख्य शत्रु रूप में सामने आया। रावण ने शक्ति के प्रहार से उसे युद्ध-क्षेत्र में गिरा दिया। राम रावण से विशेष रुष्ट हो गया, किंतु भाई के निर्जीव शरीर को देखकर विलाप करने लगा। जांबवान ने कहा —"लक्ष्मण मृत नहीं हैं, उनके लिए शीघ्र उपाय करना होगा (दे० अमोघ विजया)।" लक्ष्मण नारायण का रूप था। रावण से युद्ध करते हुए उसे महाचक्र की प्राप्ति हुई थी। चक्र से ही उसने रावण को मारा था। तदुपरांत राम-लक्ष्मण सीता को प्राप्त करके लंका में छः वर्ष तक रहे। पूर्वसमर्पित तथा परिणीत समस्त कन्याओं को लक्ष्मण ने वहीं बुलवा लिया। लक्ष्मण का राज्याभिषेक हुआ। राम ने राज्याभिषेक करवाना स्वीकार नहीं किया।

एक बार रत्नचूल और मणिचूल नामक देवों ने राम-लक्ष्मण के पारस्परिक प्रेम की परीक्षा लेने के लिए राम के भवन में यह मायानिर्मित शब्द का प्रसार किया कि 'राम मर गये हैं।' इस शब्द को सुनकर शोकातुर लक्ष्मण ने प्राण त्याग दिये। दोनों देव अपने कृत्य में पापबोध करते हुए देवलोक चले गये।

पउ० च०, ३८।६१।६२। ७३।-७७। ११०।-

लक्ष्मी एक बार लक्ष्मी ने गौओं के समूह में प्रवेश किया। गौओं ने उस रूपवती का परिचय पूछा। लक्ष्मी ने बताया कि उसका सहवास सबके लिए सुखकर है तथा वह लक्ष्मी है और उसके साथ रहना चाहती है। गौओं ने पहले तो लक्ष्मी को ग्रहण करना स्वीकार नहीं किया, क्योंकि वह स्वभाव से ही चंचला मानी जाती है, फिर लक्ष्मी के बहुत अनुनय-विनय पर उन्होंने उसे अपने गोबर तथा मूत्र में रहने की आज्ञा प्रदान की।

दे० बलि

म० भा०, दानधर्मपर्व, ८२।-

सृष्टि के आदि में राधा और कृष्ण थे। राधा के वामांग से लक्ष्मी प्रकट हुई। कृष्ण ने भी दो रूप धारण किये—एक द्विभुज और एक चतुर्भुज। द्विभुज कृष्ण राधा के साथ गोलोक में तथा चतुर्भुज विष्णु महालक्ष्मी के साथ वैकुंठ चले गये। एक बार दुर्वासा के शाप से इंद्र (दे० इंद्र) श्रीभ्रष्ट हो गये। मृत्युलोक में देवगण एकत्र हुए। लक्ष्मी ने रुष्ट होकर स्वर्ग त्याग दिया तथा वह वैकुंठ में लीन हो गयी। देवतागण वैकुंठ पहुंचे तो पुराणपुरुष की आज्ञा से लक्ष्मी सागर-पुत्री होकर वहां चली गयी। देवताओं ने समुद्रमंथन में पुन: लक्ष्मी को प्राप्त किया। लक्ष्मी ने सागर से निकलते ही क्षीरसागरशायी विष्णु को वनमाला देकर प्रसन्न किया।

दे० भा०, ९।३९-४०

भृगु के द्वारा ख्याति ने धाता और विधाता नामक दो देवताओं को तथा लक्ष्मी को जन्म दिया। लक्ष्मी कालांतर में विष्णु की पत्नी हुई। लक्ष्मी नित्य, सर्वव्यापक है। पुरुषवाची भगवान हरि है और स्त्रीवाची लक्ष्मी, इनसे इतर और कोई नहीं है। एक बार शंकर के अंशावतार दुर्वासा को याचना करने पर एक विद्याधरी से संतानक पुष्पों की एक दिव्य माला उपलब्ध हुई। ऐरावत हाथी पर जाते हुए इंद्र को उन्होंने वह माला दे दी। तदुपरांत इंद्र ने अपने हाथी को पहना दी। हाथी ने पृथ्वी पर डाल दी। इस बात से रुष्ट होकर दुर्वासा ने इंद्र को श्रीहीन होने का शाप दिया। समस्त देवता तथा जगत के तत्त्व श्रीहीन हो गये तथा दानवों से परास्त हो गये। वे सब ब्रह्मा की शरण में गये। उन्होंने विष्णु के पास भेजा। विष्णु ने दानवों के सहयोग से समुद्रमंथन का संपादन किया। समुद्रमंथन में से लक्ष्मी (श्री) पुन: प्रकट हुई तथा विष्णु के वक्ष पर स्थित हो गयी। इंद्र की पूजा से प्रसन्न होकर उन्होंने वर दिया कि वह कभी पृथ्वी का त्याग नहीं करेंगी। जब भी विष्णु अवतरित होते हैं, 'श्री' सीता, रुक्मिणी आदि के रूप में प्रकट होती हैं।

वि० पु०, १।८।१५-३५ १।९।

ललिता सौवीरराज के यहां मैलेय नामक एक पुरोहित था। उसने देविका नदी के तट पर विष्णु का एक मंदिर बनाया। एक रात बिलाव के डर से भागती हुई एक चुहिया वहां पहुंची। पुरोहित ने दीपदान किया था। इधर-उधर दौड़ती चुहिया के मुख से टकराकर दीपक की

वत्ती थोड़ी ऊपर उठ गयी, अतः बुझता हुआ दीपक प्रज्वलित हो उठा। इस प्रकार अनजाने ही पुण्य कमाकर वह चुहिया अगले जन्म में विदर्भ की राजकुमारी ललिता तथा राजा चारुधर्मा की पटरानी बनी। उसके मुंह से उसके पूर्वजन्म की गाथा सुनकर अन्य ९९ रानियों ने भी दीपदान करना आरंभ किया।

अ० पु०, २००

लव लव और कुश राम तथा सीता के जुड़वां बेटे थे। उनका जन्म तथा पालन वाल्मीकि आश्रम में हुआ था। जब राम ने वानप्रस्थ लेने का निश्चय कर भरत का राज्याभिषेक करना चाहा तो भरत नहीं माने। अतः दक्षिण कोसल प्रदेश में कुश और उत्तर कोसल में लव का अभिषेक किया गया।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग १०७

लवणासुर राम के राज्य में एक बार तपस्वी समूह ने प्रवेश किया। राम से उन्होंने अपने कष्ट के निवारण की प्रार्थना की। वे लोग लवणासुर से त्रस्त थे। लवणासुर दैत्यराज मधु तथा उसकी पत्नी कुंभीनसी(माल्यवान की पुत्री अनला की पुत्री) का पुत्र था। मधु ने घोर तप के बाद शिव से एक त्रिशूल प्राप्त किया था, जिसके प्रहार से वह किसी को भी मारने में समर्थ था। त्रिशूलधारी मधु अजेय था। शिव से उसे यह वरदान भी प्राप्त हुआ था कि उसके पुत्र, लवण, के पास वह त्रिशूल रहेगा और वह भी त्रिशूल धारण किये हुए मारा नहीं जा सकेगा। लवण अनाचारी हो गया था, अतः मधु अपनी पत्नी के साथ समुद्र में रहने लगा था। राम की आज्ञा लेकर शत्रुघ्न लवणासुर के वध के लिए गये। राम ने शत्रुघ्न को समझाया कि लवण प्रतिदिन त्रिशूल की पूजा करके भोजन करने जाता है। वही ऐसा समय है, जब वह त्रिशूलधारी नहीं होता। अतः उसे उसी समय मारना चाहिए। राम ने शत्रुघ्न को एक वाण भी दिया जो विष्णु ने सृष्टि के आरंभ में मधु और कैटभ को मारने के लिए तैयार किया था। वह वाण अमोघ था।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग ६०-६४

शत्रुघ्न यात्रा समाप्त करके मधुपुर पहुंचे। लवण भोजन करके जब पुरी में वापस लौटा तो उसने शत्रुघ्न को युद्ध के लिए तैयार खड़े पाया। दोनों का परस्पर युद्ध हुआ। अवसर मिलने पर भी शत्रुघ्न को तुच्छ समझकर लवण अपना शूल लेने नहीं गया और शत्रुघ्न के वाण से मारा गया। वाण पुनः शत्रुघ्न के पास लौट आया। लवणासुर को मरा देखकर देवताओं ने शत्रुघ्न को दर्शन दिये तथा उसको वर मांगने के लिए कहा। शत्रुघ्न ने मधुपुरी के लिए धनधान्य मांगा। वह नगरी धन, नीरोगता, सज्जन पुरुषों, सेना आदि से पूरित हो गयी।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग ६८, ६९, ७०,

लाक्षागृह पांडवों के प्रति प्रजाजनों का पूज्य भाव देखकर दुर्योधन बहुत चिंतित हुआ। उसने जाकर धृतराष्ट्र से कहा कि वह किसी प्रकार पांडवों को यहां से (हस्तिनापुर) से हटाकर वारणावत भेज दें। प्रजाजनों को वह (दुर्योधन) जब अपने पक्ष में कर ले तब उन्हें फिर से बुलवा लें, अन्यथा प्रजाजन दुर्योधन को युवराज न बनाकर युधिष्ठिर को बनाना चाहते हैं। धृतराष्ट्र ने उसका सुझाव तुरंत स्वीकार कर लिया। उन लोगों ने वारणावत प्रदेश की प्राकृतिक सुषमा का बार-बार वर्णन करके पांडवों को प्रकृति-सौंदर्य देखने के लिए प्रेरित किया। दुर्योधन ने अपने मंत्री पुरोचन की सहायता से वारणावत में पांडवों के रहने के लिए एक महल बनवाया। वह अत्यंत सुंदर था किंतु उसका निर्माण लाख आदि शीघ्र प्रज्वलित होनेवाले पदार्थों से किया गया था। विदुर जी ने इस रहस्य को जाना तो तुरंत पांडवों को सावधान कर दिया। विदुर के भेजे हुए एक विश्वस्त व्यक्ति ने गुप्त रूप से लाक्षागृह में एक सुरंग खोदी। पुरोचन अत्यंत सावधान रहने पर भी इस भेद को नहीं जान पाया। पांडव दिन भर मृगया के बहाने से बाहर रहते थे और रात को घर तथा पुरोचन पर पहरा रखते। एक बार कुंती ने बहुत-से ब्राह्मणों को भोजन कराया तथा गरीबों को दान दिया। उस रात एक भीलनी अपने पांच बेटों के साथ उसी लाक्षागृह में सो गयी। आधी रात को पांडव तथा कुंती सुरंग के मार्ग से बाहर जंगल में भाग गये और भीमसेन ने भागने से पूर्व घर में आग लगा दी। लाक्षागृह में पुरोचन तथा अपने बेटों के साथ भीलनी जलकर मर गये। कुंती तथा पांडवों के लिए विदुर ने एक विश्वस्त आदमी को नौका सहित भेजा था। सुरंग जिस जंगल में खुलती थी, उसमें गंगा नदी थी। विदुर की भेजी हुई स्वचालित यांत्रिक नौका (Motor Boat) की सहायता से वे लोग गंगा के दूसरी पार पहुंच गये।

म० भा०, आदिपर्व, १४०, १४८

लिखित शंख और लिखित नाम के दो भाई थे। दोनों

ही तपस्या में लगे हुए थे। दोनों के आश्रम पास-पास ही थे। एक दिन शंख की अनुपस्थिति में लिखित ने उनके आश्रम में जाकर फल तोड़ लिये और खाने लगे। तभी शंख अपने आश्रम में पहुंचे। उन्हें आश्रम के फल तोड़कर खाते देखा तो वे बोले—"लिखित, मुझसे बिना पूछे यों फल तोड़कर खाना चोरी है। राजा से अपना अपराध बताकर दंड लो।"

लिखित राजा सुद्युम्न के पास पहुंचे। राजा ने उनका बहुत आदर-सत्कार किया। कारण जानकर उन्हें क्षमादान करना चाहा, पर वे बिना दंड लिये जाने को तैयार ही नहीं थे। अतः राजा ने उनके दोनों हाथ कटवा दिये। आश्रम जाकर उन्होंने अपने बड़े भाई शंख को दंड के विषय में सब कह सुनाया। शंख ने उनसे 'बाहुदा' नदी में स्नान करके पितरों का तर्पण करने के लिए कहा। वैसा करने पर उन्हें पुनः हाथ प्राप्त हो गये। वे अत्यंत उत्तेजित से शंख के पास पहुंचे। शंख ने बताया कि दंड पाकर वे पितरों सहित पवित्र हो गये तथा शंख ने अपने तप के बल से उनको पुनः हाथों की उपलब्धि करवा दी।

म० भा०, शांतिपर्व, २३।१७-४७

लुप्ताग्नि अग्नि इंद्र के पश्चात् द्वितीय स्थान पर आसीन थे तथापि एक बार देवताओं ने उन्हें छिन्न-भिन्न कर डाला। अग्नि क्रुद्ध होकर 'सौचीक' देवों के पास गये। वे लुप्त हो गये, अतः देवताओं का यज्ञ होना असंभव हो गया। असुरों की प्रबलता बढ़ने लगी। देवताओं में त्रास फैल गया। यम ने देवताओं और मर्त्यों के मध्य अग्नि को पहचान लिया। यम तथा वरुण ने अग्नि की स्तुति की पर वे रुष्ट थे। अग्नि ने इस शर्त पर कि वे पंचयज्ञ का 'होता' तथा यज्ञ की आहुतियों के स्वामी रहेंगे, पुनः देवताओं के पास जाना स्वीकार किया। देवताओं ने यह भी माना कि समस्त दिशाएं अग्नि के सम्मुख नत रहेंगी। अग्निदेव ने कहा कि उनका जो रूप जल तथा अन्य स्थानों में प्रवेश कर चुका है, उसका भार-वहन करने के लिए वे उद्यत नहीं हैं। इन सब शर्तों की स्वीकृति पाकर उन्होंने पुनः होता बनना स्वीकार कर लिया। अग्नि अमर्त्य हैं, उनका वनस्पतियों में भी प्रवेश है तथा देवताओं ने उनके आवास के लिए सूर्यमंडल में प्रबंध किया। वहां से वे पृथ्वी और अंतरिक्ष की रक्षा करते हैं तथा यज्ञों में उनका रथ सूर्य के रथ के साथ ही आता है। प्रकट अग्नि की अस्थियां देवदारु वृक्ष बन गयीं, मेद तथा मांस गुग्गुल बन गया। उनका शुक्र रजत और कंचन बन गया। उनके रोम काश बन गये। केश कुश बन गये। कर्म उनके नख बन गये। अंतड़ियां अवका (शैवाल) बन गयीं, मज्जा रेत तथा रक्त पित्त आदि विभिन्न धातुएं बन गयीं।

ऋ० ३।१०६, १०६, १०।५१-५३, १।१४३, १०।७६-८०, ३।१, १०।१४०-१४१, ८।१०३

लोक पृथ्वी से ऊपर का लोक सूर्य-लोक है। चंद्रमा की तपस्या से प्रसन्न होकर शिव ने उन्हें सूर्यलोक से एक लाख योजन ऊपर चंद्रलोक प्रदान किया। उससे तीन लाख योजन ऊपर नक्षत्र-लोक की स्थापना की। उसमें दक्ष प्रजापति की कन्याएं रहती थीं जो कि शिव को पति बनाना चाहती थी। शिव ने चंद्रमा (जो कि शिव के साठ रूपों में से एक है) को उनका पति बनाया। उससे दो लाख योजन ऊपर शुक्रलोक है। उसके ऊपर बुध-लोक की स्थापना की। चंद्रमा ने बृहस्पति की पत्नी तारा से जिस पुत्र को प्राप्त किया, उसका नाम बुध था। उसके ऊपर भौम तथा उसके ऊपर बृहस्पति (देवगुरु) का लोक है। शनीचर जो कि सूर्य और छाया का पुत्र है, उसका लोक बृहस्पति लोक के ऊपर स्थित है। शनैश्चर के ऊपर सप्तऋषिलोक तथा उसके ऊपर ध्रुवलोक की स्थापना की गयी। ध्रुव के ऊपर क्रमशः महलोक, जनलोक, तपलोक, सत्यलोक, आदि स्थित हैं।

शि० पु०, १०।१२-१६

लोपामुद्रा एक बार कामोद्दीप्त लोपामुद्रा अपने पति अगस्त्य के पास पहुंची। उनके मन में काम का जागरण हो चुका था तथा उसने अगस्त्य को स्मरण दिलाया कि उनका यौवन समाप्तप्राय है और उन्होंने गृहस्थ के परम प्राप्य फल को प्राप्त नहीं किया। अगस्त्य मुनि ने प्रिया की कामभावना को समझा तथा अनुमति प्रदान की। उनके एक शिष्य ने उनके संभोग-संलाप को सुन लिया था, अतः वह स्वपाप-स्वीकृति की मुद्रा में गुरु तथा गुरुपत्नी के सम्मुख पहुंचा। उसने कहा—"हे देव, मैंने ब्रह्मचर्य अवस्था में आपका संभोग-संलाप सुनकर जो पाप किया है, उसके लिए मुझे क्षमा कीजिए।" अगस्त्य तथा लोपामुद्रा ने शिष्य को क्षमा कर दिया।

ऋ० १।१७६-१६१, ७।३३।१३

वज्रकर्ण दक्षिणापथ की ओर बढ़ते हुए राम, सीता और लक्ष्मण एक निर्जन तथा धनहीन प्रदेश में पहुंचे। वहां एक शीघ्रगामी व्यक्ति भी मिला, जिसने बताया—"उस नगरी के राजा का नाम वज्रकर्ण है। सुव्रत, मुनि का उपदेश ग्रहण करके उसने निश्चय किया था कि जिन मुनियों के अतिरिक्त किसीके सम्मुख नमन नहीं करेगा। उसने अपने दाहिने अंगूठे में सुव्रत की दृष्टि से अंकित मुद्रिका धारण कर ली है। इस बात से रुष्ट होकर राजा सिंहोदर ने उसे मार डालने का निश्चय किया। सिंहोदर रात्रि में अपना निश्चय अपनी पत्नी को बता रहे थे। वहां चोरी करने के उद्देश्य से पहुंचे हुए विद्युदंग ने वार्तालाप सुन लिया। चोरी करना छोड़ वह दौड़ता वज्रकर्ण के पास गया तथा उसे सब समाचार दिये। वज्रकर्ण ने अपनी नगरी को घेर लेनेवाले सिंहोदर से कहा कि वह धन, ऐश्वर्य, सैनिक सब ले ले किंतु वह (वज्रकर्ण) जिनेश्वर के अतिरिक्त किसी को प्रणाम नहीं करेगा। तभी से वह प्रदेश जन तथा ऐश्वर्यशून्य हो गया है।" राम, लक्ष्मण और सीता ने जिन मंदिर में प्रवेश किया। वज्रकर्ण ने अपनी नगरी में आये तीनों अतिथियों का स्वागत किया, अत: प्रसन्न होकर लक्ष्मण राम की प्रेरणा से सिंहोदर के पास गया। उसे युद्ध में परास्त करके लक्ष्मण ने वज्रकर्ण से मैत्री स्थापित करवायी। वज्रकर्ण ने लक्ष्मण से अनुरोध किया कि वह सिंहोदर की हिंसा न करे।

पउ० च०, ३३।-

वज्रदंष्ट्र राम-रावण युद्ध में राक्षस वज्रदंष्ट्र का वध अंगद के हाथों हुआ था।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ५४, श्लोक ३१-३८

वज्रनाभ वज्रनाभ नामक असुर ने तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न करके यह वर प्राप्त किया था कि वह अवध्य होगा तथा वज्रपुर में प्रवेश कर पायेगा अन्यथा वज्रपुर में वायु का भी स्वच्छंद प्रवेश नहीं था। वर-प्राप्ति के मद से मस्त वज्रनाभ इंद्र के पास गया और त्रिलोकी का राज्य प्राप्त करने की इच्छा व्यक्त की। इंद्र ने कहा कि देवताओं के पिता कश्यप यज्ञ का अनुष्ठान कर चुके हैं, अत: यज्ञ समाप्ति के उपरांत वे कोई निर्णय ले पायेंगे। वज्रनाभ ने अपने पिता कश्यप से सब कह सुनाया। वसुदेव भी अश्वमेध यज्ञ में व्यस्त थे। उस अवसर पर इंद्र और कृष्ण ने प्रस्तुत उलझन के विषय में विचार-विमर्श किया तथा उनकी प्रेरणा पर सुंदर नृत्य करने के उपरांत भद्रनामा नामक नट ने मुनियों से वर मांगा कि वह त्रिलोकी में कहीं भी जा पाये, किसीका भी रूप धारण करने में समर्थ हो, रोग इत्यादि से सुरक्षित रहे तथा सबके लिए अवध्य हो। तदुपरांत इंद्र ने देवलोक के हंसों से कहा—"तुम सर्वत्र जा सकते हो, अत: वज्रनाभ की कन्या प्रभावती को प्रद्युम्न की ओर आकृष्ट कर दो। उन दोनों को परस्पर प्रेम-संदेश मिलता रहे ताकि प्रभावती स्वयंवर में उसीका वरण करे।" शुचिमुखी नामवाली हंसी ने प्रभावती को तरह-तरह की कथाएं सुनाकर प्रद्युम्न की ओर आकृष्ट किया तथा वज्रनाभ को भद्रनामा नट के कौशल के विषय में बताया। वज्रनाभ उस नट का कौशल देखने के लिए आतुर हो उठा। उसके आमंत्रित करने पर कृष्ण ने अनेक राजकुमारों सहित प्रद्युम्न को नटों की भूमिका का निर्वाह करने के लिए वज्रपुर भेजा। वे चिरकाल तक वहां रहे। हंसी ने प्रभा-

वती से प्रद्युम्न की भेंट करवा दी। पहली रात वह भ्रमर के रूप में रनिवास में पहुंचा। दोनों ने अग्नि को साक्षी करके गंधर्व-विवाह कर लिया। दोनों प्रति रात्रि केलि-क्रीड़ा में मग्न रहते। वज्रनाभ को इस सबका कुछ पता नहीं चला। कश्यप का यज्ञ चल रहा था, अतः देवासुर संग्राम भी प्रारंभ नहीं हुआ। कश्यप ने यज्ञ-समाप्ति के उपरांत वज्रनाभ को युद्ध न करने की सलाह दी। इंद्र तथा कृष्ण ने उसे युद्ध के लिए ललकारा। वज्रपुर में रहनेवाले यादवों ने कहलाया कि वज्रनाभ तथा उसके भाई की तीनों कन्याएं गर्भवती हो चुकी हैं, यादवों की भार्याएं हैं तथा प्रसव-काल शीघ्र ही आनेवाला है। कृष्ण और इंद्र ने उन्हें निश्चित रहने को कहा और कहा कि भावी पुत्र उत्पन्न होते ही सर्वज्ञाता, योद्धा युवक हो जायेंगे। प्रभावती, चंद्रावती ने दो पुत्रों को जन्म दिया। वज्रनाभ ने जन्म लेते ही युवकों के समान बालकों को देखा तो उन्हें अपने कुल का कलंक मानकर मारने के लिए ससैन्य दौड़ा। इसी निमित्त युद्ध हुआ। प्रद्युम्न मायावी युद्ध में निपुण था। वह हजारों रूप धारण करके आकाश और विभिन्न दिशाओं में प्रकट हुआ। अंततोगत्वा प्रद्युम्न ने वज्रनाभ का वध कर दिया। बृहस्पति की सलाह से उसकी नगरी चार भागों में विभक्त की गयी तथा जयंत, प्रद्युम्न, सांब और गद के पुत्रों में बराबर-बराबर बांट दी गयी।

हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व, ९१-९७

वज्रांग मरुद्गण के जन्म के संदर्भ में (दे० मरुद्गण) दिति इंद्र से रुष्ट हो गयी थी, अतः उसने कश्यप को सेवा से प्रसन्न करके ऐसा पुत्र प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की कि जो इंद्र को परास्त कर सके तथा शस्त्रों से अवध्य हो। फलतः दस सहस्र वर्षों के तपोपरांत उसे वज्रांग नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। वज्रांग ने लात और घूंसों से मार-मारकर इंद्र को घायल कर दिया। अधीनता स्वीकार करने पर इंद्र को उसने जीवित ही छोड़ दिया। ब्रह्मा और विष्णु ने उसे तप और योग की शिक्षा दी तथा वरांगी नामक कन्या से उसका विवाह कर दिया। वज्रांग ने समुद्र में तथा वरांगी ने तट पर बैठकर घोर तपस्या की। इंद्र ने उसे नष्ट करने का भरसक प्रयत्न किया। तप की समाप्ति अखंड रूप से हो गयी। वरांगी को इंद्र के गणों ने बहुत त्रस्त किया था, फलतः वह इंद्र से रुष्ट थी, किंतु वज्रांग देवताओं से शत्रुता स्थापित नहीं करना चाहता था।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध, ३।३१।-

वडवा तीर्थ ऋषियों ने मृत्यु को 'शमिता' बनाकर यज्ञ आरंभ किया। संसार से मृत्यु तिरोहित हो गयी। जन्म-मृत्यु के क्रम में भंग देखकर देवताओं ने यज्ञ का आधा भाग देने के लालच से राक्षसों को ऋषियज्ञ नष्ट करने के लिए भेजा। ऋषियों ने गौतमी के तट पर जाकर शिव की आराधना की। शिव ने यज्ञ की समाप्ति तक उन्हें अभयदान दिया। उन्होंने मृत्यु की पत्नी के रूप में वडवा का अभिषेक किया। अभिषेक के जल से 'वडवा नदी' प्रवाहित होने लगी तथा वह स्थान वडवा तीर्थ नाम से विख्यात हुआ।

ब्र० पु०, ११६।-

वत्सनाभ वत्सनाभ नामक महर्षि ने कठोर तपस्या का व्रत लिया। वे तपस्यारत थे। उनके सारे शरीर पर दीमक ने घर बना लिया। बांबी-रूपी वत्सनाभ तब भी तपस्या में लगे रहे। इंद्र ने भयानक वर्षा की, दीमक का घर बह गया तथा वर्षा का प्रहार ऋषि के शरीर को कष्ट पहुंचाने लगा। यह देखकर धर्म ने एक विशाल भैंसे का रूप धारण किया तथा तपस्या करते हुए ऋषि को अपने चारों पैरों के बीच में कर खड़े हो गये। वर्षा रुक गयी। भैंसे का रूप धारण किये धर्म दूर जा खड़े हुए। तपस्या की समाप्ति के उपरांत वत्सनाभ ने जल-प्लावित पृथ्वी को देखा, फिर भैंसे को देखकर सोचा, निश्चय ही उसने ऋषि की वर्षा से रक्षा की होगी। तदनंतर वे मन ही-मन यह सोचकर कि पशु-योनि में भी भैंसा धर्मवत्सल है तथा ऋषि स्वयं कितने कृतघ्न हैं कि न तो माता-पिता का भरण-पोषण किया और न गुरु-दक्षिणा ही दी। यह बात उनके मन में इतनी जम गयी कि आत्महनन के अतिरिक्त कोई मार्ग उन्हें नहीं सूझा। वे अनासक्त चित्त से मेरुपर्वत के शिखर पर प्राण-त्याग के लिए चले गये। धर्म ने उनका हाथ पकड़ लिया तथा कहा कि "तुम्हारी आयु बहुत लंबी है। प्रत्येक धर्मात्मा अपने कृत्यों पर ऐसे ही विचार तथा पश्चात्ताप करता है।"

म० भा०, दानधर्मपर्व,१२।-

वत्सासुर एक दिन श्याम और बलराम अपने मित्र ग्वालों के साथ जंगल में गाय चरा रहे थे। उधर एक बछड़ा उनको मारने की नीयत से पहुंचा। कृष्ण ने उसकी पूंछ तथा पिछली टांगें पकड़कर उसे हवा में उछाल

दिया। मरकर गिरते हुए उससे अनेक कैथ के वृक्ष भी टूट गये।

श्रीमद् भा०, १०।११।४१-४४

वनमाला महीधर नामक राजा की कन्या का नाम वनमाला था। उसने बाल्यावस्था से ही लक्ष्मण से विवाह करने का संकल्प कर रखा था। लक्ष्मण के राज्य से चले जाने के उपरांत महीधर ने उसका विवाह अन्यत्र करना चाहा, किंतु वह तैयार नहीं हुई। वह सखियों के साथ वनदेवता की पूजा करने गयी। बरगद के वृक्ष (जिसके नीचे पहले राम, सीता और लक्ष्मण रह चुके थे) के नीचे खड़े होकर उसने गले में फंदा डाल लिया। वह बोली कि लक्ष्मण को न पाकर उसका जीवन व्यर्थ है, अतः वह आत्महत्या करने के लिए तत्पर हो गयी। संयोग से उसी समय लक्ष्मण ने वहां पहुंचकर उसे बचाया तथा ग्रहण किया। उसने लक्ष्मण के साथ जाकर राम और सीता को प्रणाम किया। राजा महीधर ने उन सबका स्वागत किया। तभी एक दूत ने समाचार दिया कि राजा को अतिवीर्य ने युद्ध में सहायतार्थ आमंत्रित किया है। यह युद्ध भरत के विरुद्ध है, क्योंकि भरत अधीनता स्वीकार नहीं करता। उन लोगों ने विचार-विमर्श किया कि किस प्रकार भरत को विजयी किया जा सकता है। राजा महीधर को आश्वस्त करके वे लोग उसके पुत्रों तथा सेना को लेकर चले। पड़ाव पर उन्होंने जिनेश्वर के दर्शन किये। मंदिर में भवनपाली का दिव्य रूप था तथा हाथ में तलवार थी। वंदना के उपरांत राम-लक्ष्मण ने परस्पर विचार-विमर्श किया, फिर लक्ष्मण सहित पुरुषों का नारी-रूप में शृंगार करके वे लोग राजा अतिवीर्य के दरबार में पहुंचे। वहां नृत्य आदि का आनंद लेते हुए अचानक छद्मवेशी लक्ष्मण ने राजा को बालों से पकड़कर घसीट लिया तथा उसको भरत से संधि करने का आदेश दिया। हाथी पर विराजमान राम ने वहां पहुंचकर राजा को छुड़वाया। जिनेश्वर के मंदिर में उस सहित वंदना की। उसने भरत से मैत्री स्थापित कर तथा निःसंग हो प्रव्रज्या ग्रहण की।

प०च०, ३६, ३७।-

वपु एक बार नारद इंद्र के पास पहुंचे। इंद्र अनेक अप्सराओं से परिवेष्टित थे। नारद को देखकर उन्होंने सत्कार किया तथा पूछा कि क्या वे किसीका संगीत सुनना चाहेंगे? नारद ने कहा कि रूप, उदारता, नृत्यकला आदि सब गुणों में जो सर्वाधिक संपन्न हो, वे उसकी कला देखना चाहेंगे। अप्सराओं में विवाद छिड़ गया कि कौन सर्वाधिक गुणसंपन्ना है। नारद ने कसौटी रखी कि जो भी दुर्वासा की तपस्या भंग कर देगी, वही कला-संपन्ना मानी जा सकती है। सभी अप्सराएं इस कार्य में अपनी अशक्ति स्वीकार करने लगीं। अंततोगत्वा वपु नामक अप्सरा दुर्वासा के पास गयी। दुर्वासा का आश्रम अत्यंत शांत था। वह एक कोस की दूरी पर पुंस्कोकिल के समान गान करने लगी। दुर्वासा सुंदर स्वर सुनकर गायक की खोज में निकले। उसे देखकर दुर्वासा ने समझ लिया कि वह उनका तपोभंग करने की इच्छा से आयी है, अतः उन्होंने शाप दिया कि वह पक्षी-रूप धारण करे। उसके चार पक्षीपुत्र हों पर वह वात्सल्य से वंचित रहकर पुनः स्वर्ग चली जाय। दुर्वासा स्वयं पृथ्वी का त्याग कर आकाशगंगा की ओर चले गये।

मा० पु०, १।-

वपुष्टमा वपुष्टमा काशिराज की कन्या तथा जनमेजय की पत्नी थी। एक बार जनमेजय ने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया। यज्ञ में मारे गये अश्व के पास वपुष्टमा ने शास्त्रीय विधि से शयन किया। वपुष्टमा को प्राप्त करने के लिए इंद्र लालायित थे, अतः वे मृत अश्व में आविष्ट होकर रानी के साथ संयुक्त हुए। फलस्वरूप जनमेजय ने अपनी पत्नी का त्याग कर दिया तथा कहा—"आज से क्षत्रिय अश्वमेध से इंद्र का यजन नहीं करेंगे।" यह सुनकर गंधर्वराज विश्वावसु ने राजा से कहा—"तुम व्यर्थ में रानी का त्याग कर रहे हो। उस रात यज्ञशाला में रानी का रूप धरकर इंद्र द्वारा प्रेषित रंभा नामक अप्सरा थी। राजा ने अपनी रानी को पुनः ग्रहण कर लिया। इंद्र जनमेजय का अश्वमेध यज्ञ पूर्ण नहीं होने देना चाहते थे, क्योंकि उनके पूर्वकृत अनेकों यज्ञों से भयभीत थे। व्यास मुनि पहले ही जनमेजय को बता चुके थे—"जब-जब अश्वमेध यज्ञ हुआ है तब-तब भयंकर नरसंहार हुआ है, अतः जनमेजय का यज्ञ पूर्ण नहीं होगा तथा उसके उपरांत क्षत्रिय गण इस यज्ञ का परित्याग कर देंगे।"

हरि० व० पु०, भविष्यपर्व, २-५।

वराहावतार प्रथम सतयुग में यमराज का कार्य भी आदि-देव श्रीहरि कर रहे थे। अतः किसी प्राणी की मृत्यु नहीं होती थी और जन्म निरंतर हो रहे थे। पृथ्वी पर पशु-

पक्षी-मनुष्य, विशेष रूप से दानव आदि इतने अधिक हो गये कि भार से दबकर पृथ्वी सैकड़ों योजन नीचे चली गयी। उसने भगवान विष्णु से अपने त्राण के लिए प्रार्थना की। विष्णु ने वराह का रूप धारण किया। उनके मुख में एक ही दांत था। उस दांत से पृथ्वी को थामकर विष्णु ने सौ योजन ऊपर उठा दिया। वे वराह रूप में पृथ्वी के अंदर जा घुसे, जहां दानव समूह के साथ 'वराह' का युद्ध हुआ। शत्रुओं से घिरे वराहस्वरूप विष्णु ने घोर गर्जना की। शत्रुगण उनके तेज और स्वर से विमोहित हो मृतप्राय पृथ्वी पर जा गिरे। रसातल में जाकर भगवान वराह ने उनके मांस, मेदा और हड्डियों को खुरों से विदीर्ण कर दिया।

म० भा०, सभापर्व,३८।-
म० भा०, वनपर्व, १४२।२६ से ६३ तक
म० भा०, वनपर्व, २७२।५१-५५ तक
म० भा०, शांतिपर्व, २०६।-

सृष्टि के आवास के लिए क्या व्यवस्था की जाय—यह प्रश्न मनु तथा ब्रह्मा की चिंता का मुख्य कारण था। पृथ्वी जल में डूबी हुई थी। तभी ब्रह्मा की नाक से अंगूठे के आकार का तथा वराह के रूप का एक व्यक्ति प्रकट हुआ। देखते-ही-देखते उसका आकार बढ़कर पर्वत जितना हो गया। उसने समुद्र में घुसकर पृथ्वी को बाहर निकाला तथा समुद्र के जल को स्तंभित करके पृथ्वी को उसके ऊपर छोड़ दिया। जल के भीतर हिरण्याक्ष से उसका युद्ध हुआ, क्योंकि वह कार्य में बाधा डाल रहा था। हिरण्याक्ष वराह के हाथों मारा गया। पृथ्वी को जल पर स्थापित कर वराह अंतर्धान हो गया। वास्तव में यज्ञमूर्ति भगवान विष्णु ने ही वराह के रूप में अवतार लिया था।

श्रीमद् भा०, तृतीय स्कंध,१३।-

सिंधुसेन नामक राक्षस ने देवताओं को पराजित किया तथा यज्ञ को छीनकर रसातल में चला गया। पृथ्वी पर यज्ञ होना बंद हो गया। देवता विष्णु की शरण में पहुंचे। विष्णु ने वराह का रूप धारण करके गंगा के मार्ग में रसातल में प्रवेश किया। शत्रुओं का नाश करके यज्ञ को मुंह में दबाकर पृथ्वी पर ले आये। जिस स्थान पर गंगाजल से उन्होंने अपने हाथ-पांव का रक्त धोया, वह स्थान 'वराह कुंड' नाम से विख्यात है।

ब्र० पु०, ७६।-

ब्रह्मा के पुत्र स्वायंभुव मनु ने ब्रह्मा की प्रेरणा से देवी की आराधना की। देवी ने मनु को निर्विघ्न सृष्टि उत्पन्न करने का वर दिया। मनु ने ब्रह्मा से ऐसा स्थान देने को कहा, जहां सृष्टि उत्पन्न की जा सके। ब्रह्मा ने देखा कि पृथ्वी तो पानी में डूबती चली जा रही है। ब्रह्मा के ध्यान करते ही उनके नासापुट से एक अंगुल प्रमाण का एक वराह-रूपी बालक प्रकट हुआ। देखते-देखते ही वह पर्वत के समान बड़ा हो गया तथा उसने अपने दांतों पर पृथ्वी को उठा लिया। तदनंतर मनु ने सृष्टि का निर्माण किया।

दे० भा०, ८।१-३

वरुण रावण ने वरुण को युद्ध के लिए ललकारा। वरुण के पुत्र-पौत्रों की सेना युद्ध करने के लिए चल पड़ी। गऊ तथा पुष्कर उनके सेनापति थे। महोदर तथा रावण ने दोनों की सेना को नष्ट कर दिया। वरुण के मंत्री प्रभास ने कहा—"हे रावण, वरुण तो गाना सुनने ब्रह्मलोक गये हैं, अतः उनसे तुम्हारा युद्ध हो नहीं सकता। सेना को तुम नष्ट कर ही चुके हो।" यह सुनकर प्रसन्न मन रावण वरुणपुरी से लौट आया।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग २३, श्लोक २४-५४

पूर्वकल्प में देवताओं ने जाकर वरुण से कहा—"इंद्र भय से हमारा त्राण करते रहते हैं। आप जल का अधिपतित्व स्वीकार कर लीजिए ताकि आप भी हमारी रक्षा कर पायें। आपका निवासस्थल भी मकरालय समुद्र में है।" वरुण ने स्वीकार कर लिया। अतः वे समुद्र के साथ-साथ नदी, नाले, तालाब इत्यादि सभी का नियंत्रण करने लगे।

म० भा०, शल्यपर्व, ४७।१-१२

वर्गा वर्गा नामक अप्सरा कुबेर की नित्य प्रेयसी थी। एक बार वह अपनी चार सखियों (सौरमेयी, समीची, बुद्बुदा तथा लता) के साथ कुबेर के घर जा रही थी। मार्ग में एक तपस्वी ब्राह्मण को देख वे सब रुक गयीं तथा उसका तपोभंग करने का प्रयत्न करने लगीं। ब्राह्मण ने क्रुद्ध होकर उन्हें सौ वर्ष के लिए ग्राह रूप धारण कर तीर्थों में निवास करने का शाप दिया, साथ ही यह भी कहा कि उनकी मुक्ति तभी संभव होगी जब कोई श्रेष्ठ पुरुष उन्हें खींचकर जल से बाहर निकालेगा। नारद की प्रेरणा से वे पांचों अगस्त्य तीर्थ, सौभद्र तीर्थ, पौलोमतीर्थ, कारंधमतीर्थ, और भारद्वाज तीर्थ नामक

तीर्थ स्थानों पर जल में रहने लगीं। घड़ियालों से त्रस्त होकर ऋषिगणों ने उन तीर्थों का परित्याग कर दिया था। वनवासी अर्जुन सौभद्रतीर्थ में स्नान करने के लिए उतरे तो उनकी टांग किसी ग्राह ने पकड़ ली। अर्जुन उसे खींचकर जल से बाहर निकाल लाये। बाहर निकलते ही ग्राह पुन: वर्गा में परिणत हो गया। उसकी प्रेरणा से अर्जुन ने शेष चार अप्सराओं को भी शापमुक्त कर दिया।

म० भा०, आदिपर्व, २१५, २१६

वर्धमान भारत के कुंडपुर नामक नगर में राजा सिद्धार्थ अपनी पत्नी प्रियकारिणी के साथ निवास करते थे। इंद्र ने यह जानकर कि प्रियकारिणी के गर्भ से तीर्थंकर पुत्र का जन्म होनेवाला है, प्रियकारिणी की सेवा के लिए षट्कुमारिका देवियों को भेजा। प्रियकारिणी ने ऐरावत हाथी आदि के स्वप्न देखे, जिससे राजा सिद्धार्थ ने भी यही अनुमान लगाया कि तीर्थंकर का जन्म होगा। आषाढ़ शुक्ल षष्ठी के अवसर पर पुरुषोत्तर विमान से आकर प्राणतेंद्र ने प्रियकारिणी के गर्भ में प्रवेश किया। चैत्र शुक्ल त्रयोदशी सोमवार के दिन वर्धमान का जन्म हुआ। देवताओं को इसका पूर्वाभास था, अत: सबने विभिन्न प्रकार के उत्सव मनाये तथा बालक को विभिन्न नामों से विभूषित किया। सौधर्मेंद्र ने वर्धमान नाम रखा तो ऋद्धिधारी मुनियों ने सन्मति। संगमदेव ने उसके अपरिमित साहस की परीक्षा लेकर उसे महावीर नाम से अभिहित किया।

महावीर के तीस वर्ष सुख-संपदा में व्यतीत हुए। उनके मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ तो लोकांतक देवों ने उस भाव को विशेष प्रश्रय दिया। मार्गशीर्ष कृष्णपक्ष की दशमी के अवसर पर महावीर ने गृहत्याग कर दीक्षा ग्रहण की। उत्तरोत्तर अलौकिक उपलब्धियां बढ़ती गयीं। सबसे पहले उन्होंने सात ऋद्धियां प्राप्त कीं। एक श्मशान में रुद्र के उपसर्ग को धैर्यपूर्वक ग्रहण कर अविचल रहने के कारण वे महातिवीर कहलाए।

वैशाख शुक्ल दशमी के अवसर पर ऋजुकूला नदी के तट पर स्थित जृंभग्राम में उन्हें केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई। देवताओं ने तरह-तरह से अपने हर्ष का उद्घोष किया। इंद्र ने कुबेर को आज्ञा दी कि वह समवसरण की रचना करे। इंद्र स्वयं गौतम ग्राम,से इंद्रभूति ब्राह्मण को, उसके पांच सौ शिष्यों सहित लाया। उन सबने वर्धमान का शिष्यत्व ग्रहण किया। इस प्रकार महावीर ने लगभग तीस वर्ष तक धर्म का प्रसार किया। तदुपरांत कार्तिक कृष्ण चतुर्दशी के अंतिम मुहूर्त में उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।

व० च०, सर्ग १७-१८

वसिष्ठ यज्ञसत्र के अंतराल में वसिष्ठ का जन्म हुआ था। जिस समय जल लिया जा रहा था, वसिष्ठ कुंभ के जल में एक पुष्प पर विराजमान थे। देवताओं ने उन्हें ग्रहण किया। जल से बाहर निकलते ही वसिष्ठ तपस्यारत हो गये। इंद्र ने प्रसन्न होकर उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिये तथा सोम-भाग भी प्रदान किया। वसिष्ठ ने अपनी स्तुति से अग्नि (वैश्वानर), विश्वदेवों, जल, वरुण, आदित्य, द्यावापृथ्वी, मरुत, अश्विनी, उषा आदि की स्तुति की। एक बार पिता के दर्शन की इच्छा से द्युलोक पहुंचे। पिता (वरुण) का वहीं निवासस्थान था। उनका भवन स्वर्ण-निर्मित था, सहस्रों द्वारों से युक्त था। उसके उच्च आसन से वरुण सब ओर देख सकते थे। वायु में स्थित होकर वरुण अपनी गुह्य शक्ति द्वारा सूर्यरूपी माप से पृथ्वी मापते रहते हैं। सूर्य प्राणियों के कर्मों का लेखा-जोखा देने अपने स्थान से उदित होकर उनके निवासस्थान पर जाते थे। वैभवसंपन्न उस भवन के द्वार पर वरुण के कुत्ते ने वसिष्ठ को रोक लिया। वसिष्ठ ने कुत्ते को समझा-बुझाकर शांत किया तथा विश्राम करने का आदेश दिया। कुत्ता सो गया। मार्ग में अनेक दास-दासियों के साथ भी वसिष्ठ ने ऐसा ही किया। वरुण उषा को जन्म दे रहे थे। बिना पूछे भवन में प्रवेश करने के अपराध में वरुण ने वसिष्ठ को पाशबद्ध कर लिया। वसिष्ठ ने अत्यंत विनय के साथ वरुण की अनेक स्तुतियां कीं तथा कहा कि पिता के दर्शन पाने के लिए आतुर वसिष्ठ को विद्वानों ने बतलाया है कि उनके पिता उनसे रुष्ट हैं। अनजाने हुए अपराध के लिए क्षमा-याचना भी की। वरुण ने कहा—"वसिष्ठ, तुमने कर्म क्यों नहीं किया?" वसिष्ठ ने उत्तर दिया—"दरिद्रतावश मैं अनुष्ठानों को संपन्न नहीं कर पाया हूं। समुद्र में भी मैं तृषित रहता हूं, मुझे तृप्त कीजिए। मैं मिट्टी के घर में नहीं रहना चाहता।" वरुण ने प्रसन्न होकर वसिष्ठ की कल्याण-कामना की।

ऋ० ७।५५, ७।८६-८९, ७।३३।११-१४

वसिष्ठ उर्वशी के मानसपुत्र थे। यज्ञ में स्तुत्य मित्रावरुण

ने कुंभ में बीज डाला, उसीसे वसिष्ठ की उत्पत्ति कही जाती है।

ऋ०, मं० ७, सूक्त ३३।११-१४

राजा हरिश्चंद्र ने जब शुन:शेप के प्रसंग में राजसूय यज्ञ रचा, तब वसिष्ठ ने ब्रह्मा का आसन ग्रहण किया था।

जै० ब्रा०, ७।१६

वसिष्ठ ने अमावस्या में यज्ञ रचकर सत्र शक्ति से सुदासों का आविर्भाव किया क्योंकि उसके पुत्र मारे गये थे।

शा० ब्रा०, ४।८

वसिष्ठ ने इंद्र की इच्छा जानकर उसे विराट् की शिक्षा दी। उसे अग्निहोत्र से लेकर प्रायश्चित्त तक सब कुछ सिखा दिया। इंद्र ने वसिष्ठ को आदि स्तोत्र भाग बताया।

शा० प० ब्रा०, १२।६।१।३८-४१
ता० ब्रा०, १५।५।२४

राजा निमि इक्ष्वाकुवंश के बारहवें वंशज थे। उन्होंने गौतम ऋषि के आश्रम के निकट वैजयंत नामक एक सुंदर नगर बसाया था। उन्होंने अपने पिता को प्रसन्न करने के निमित्त एक यज्ञ करना आरंभ किया तथा ब्रह्मर्षि वसिष्ठ को यज्ञ के लिए बुलाया। वसिष्ठ ने कहा—"महाराज, मुझे पहले इंद्र ने बुला रखा है, अत: मैं पहले वहां जाता हूं। मेरी प्रतीक्षा करना।"

इंद्र ने पांच हजार वर्ष तक यज्ञ किया तदुपरांत वसिष्ठ लौटे। ब्रह्मर्षि वसिष्ठ ने अपने स्थान पर गौतम ऋषि को बैठे देखा, अत: उन्हें बहुत क्रोध आया। राजा निमि सो रहे थे। उन्होंने शाप दिया कि उनका निरादर करके दूसरे का वरण करने के कारण निमि का शरीर नष्ट हो जाये। जब राजा जागे और उन्हें पूरी घटना ज्ञात हुई तो उन्होंने शाप दिया कि जब वे सो रहे थे तब उनके अनजाने ही शाप देने के फलस्वरूप महर्षि वसिष्ठ को भी शरीर त्याग करना पड़े। इस प्रकार दोनों को परस्पर शाप के कारण अपने-अपने शरीर का त्याग करना पड़ा।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग ५५

पुन: शरीर-प्राप्ति की इच्छा से वसिष्ठ ब्रह्मा के पास पहुंचे। उनसे बोले—"हे देव! इस समय मैं वायु-रूप में हूं। मुझे शरीर-प्राप्ति का कोई मार्ग सुझाइए।" ब्रह्मा ने उन्हें मित्रावरुण के तेज (वीर्य) में प्रवेश करने के लिए कहा और कहा कि वहां वह अयोनिज रहेंगे। वसिष्ठ ने ऐसा ही किया। वरुण ने अपने तेज का परित्याग एक घड़े में कर दिया, जिसमें पहले से मित्र का तेज भी विद्यमान था। उसमें से दो ऋषिश्रेष्ठ उत्पन्न हुए। एक ने वरुण से कहा—"मैं तुम्हारा पुत्र नहीं हूं।" उसका नाम अगस्त्य मुनि था। दूसरे का जन्म मित्रावरुण के वीर्य से हुआ। वे वसिष्ठ थे। उनके उत्पन्न होते ही महाराज इक्ष्वाकु ने अपने कुल-कल्याणार्थ उन्हें अपना पुरोहित बना लिया।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग ५६, श्लोक १-८ सर्ग ५७,

वसिष्ठ ब्रह्मा के मानसपुत्र थे। काम और क्रोध-पराभूत होकर नित्य उनके पांव दबाते थे, क्योंकि इंद्रियां उनके वश में थीं, इसी से वे वसिष्ठ कहलाए। एक दिन आखेट से थके हुए गाधि-पुत्र विश्वामित्र उनके आश्रम में पहुंचे। वसिष्ठ के पास कामधेनु गाय थी, जो इच्छित पदार्थ प्रदान करने में समर्थ थी। विश्वामित्र ने वसिष्ठ से करोड़ गायों के बदले में नंदिनी नामक कामधेनु गाय मांगी। वसिष्ठ के न देने पर विश्वामित्र ने क्षात्र तेज से ब्रह्म तेज को परास्त करके गाय का अपहरण करना चाहा। गाय पर तरह-तरह से प्रहार भी किया। क्रुद्ध होकर नंदिनी ने पूंछ से पह्लवों की, थनों से द्रविड तथा शकों की, योनि देश से यवनों की, गोबर से शबरों की, पार्श्व में पौंड्र, किरात आदि की सृष्टि की। वसिष्ठ ब्राह्मण होने के नाते क्षमा में विश्वास रखते थे, अत: उन्होंने कोई प्रहार नहीं किया तथा विश्वामित्र के समस्त प्रहारों को बांस की छड़ी से बचाते रहे। अंत में विश्वामित्र परास्त हो गये। वे वसिष्ठ से बोले—"ब्रह्म-तेज के समकक्ष क्षत्रिय-बल तो नाममात्र की वस्तु है।" ऐसा कहकर वे अपना राज्य छोड़कर तपस्या में लग गये। कालांतर में विश्वामित्र ने तपस्या से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया तथा इंद्र के साथ सोमपान करने लगे।

म० भ०, आदिपर्व, १७३,१७४।-

वसुधा वसुधा की उत्पत्ति तथा नाश नहीं होता। वह नित्य है। प्रलय होने पर वह तिरोहित हो जाती है। फिर से आविर्भूत होने पर वह जल से बाहर निकल आती है। वराह कल्प में नारायण ने वराह का रूप धरकर वसुंधरा को जल के ऊपर स्थापित किया था तब वह धरा कहलायी। नारायण ने मनोहर रूप धारण कर वर्ष पर्यंत उसके साथ रमण किया। वह रति-सुख से

तृप्त होकर मूर्च्छित हो गयी। कालांतर में उसने मंगल नामक पुत्र को जन्म दिया। नारायण को भी अपने अनेक कर्तव्यों का ध्यान हो आया। पुन: वराह-रूप में उन्होंने पृथ्वी को सहारा दिया। वह वराहदेव की पत्नी है। देवताओं ने उसकी अर्चना की। वसुधा अनेक नामों से पुकारी जाती है--मधु-कैटभ के मेद से युक्त होने के कारण मेदिनी, विश्व को धारण करने के कारण विश्वंभरा, विस्तृत होने के कारण अनंता, पृथुराज की कन्या होने के कारण पृथ्वी, स्थिर-रूपा होने के कारण अचला, कश्यप की कन्या होने के कारण काश्यपी तथा वराहकल्प में प्रकट होने के कारण वाराही, आदि अनेक नामों से पुकारी जाती है।

दे० भा०, ९।९-१०।-

वसुमना ज्ञानी, धर्मात्मा तथा धैर्यवान राजा वसुमना को मुनि वामदेव ने राजधर्म का उपदेश दिया था।

म० भा०, शांतिपर्व, ९२-९४।-

वह्लिक सूर्य के दस पुत्र हुए जिनमें से वह्लिक दीर्घकाल तक गुरु से विद्या ग्रहण करता रहा। जब वह लौटा तब तक शेष नौ भाइयों ने पिता का समस्त धन परस्पर बांट लिया था और उसके हिस्से में केवल पिता को ही छोड़ा था। पिता ने उसे अंगिरस मुनि के यज्ञ का समापन करने के लिए भेजा क्योंकि यज्ञ की युक्ति वे भूल बैठे थे। समापन के उपरांत वह्लिक को समस्त धन देकर मुनि बैकुंठ चले गये, किंतु तुरंत कृष्णदर्शन के रूप में आकर शिव ने उसे धन ग्रहण करने से रोक दिया तथा धन को अपना प्राप्तव्य कहा। कृष्णदर्शन ने कहा—"तुम्हारा पिता धर्मपरायण है, उससे जाकर पूछो।" वह्लिक ने जाकर पिता से पूछा तो उन्होंने कहा कि यज्ञ-शेष सदाशिव का माना जाता है। वे वहीं होंगे। पिता-पुत्र ने जाकर शिव के अवतार कृष्णदर्शन की वंदना की। फलस्वरूप वह्लिक ने चक्रवर्ती राजा होकर शिवलोक प्राप्त किया।

शि० पु०, ७।४७

वाक्षी वाक्षी कंडु मुनि की पुत्री थी। तपस्या से पवित्र अंत:करणवाले दस प्रचेताओं से उसने विवाह किया था। उन दसों का नाम भी एक ही था।

म० भा०, आदिपर्व, १९५।१५

वातापी वातापी और इल्वल नाम के दो असुर भाई थे। इल्वल ब्राह्मण का रूप धारण करके ब्राह्मणों को श्राद्ध में निमंत्रित करता, फिर मेषरूप-धारी अपने भाई वातापी को मारकर उसका मांस पकाकर ब्राह्मणों को जिमाता था। भोजन करवाने के बाद इल्वल अपने भाई को आवाज देकर कहता—"वातापे! निकल आओ।" भाई की बात सुनकर वातापी ब्राह्मणों का पेट फाड़कर बाहर निकल आता। इस प्रकार वे दोनों नित्य हजारों ब्राह्मणों की हत्या करते थे। देवताओं ने ब्राह्मणों की रक्षा के लिए महामुनि अगस्त्य से प्रार्थना की। उस राक्षस के श्राद्ध-निमंत्रण पर मुनि अगस्त्य गये। भोजन करने के बाद हाथ में जल लेकर वे बोले—"सर्व सम्पन्नम्।" नित्य नियमानुसार जब इल्वल ने कहा—"हे वातापे, निकल आओ," तो अगस्त्य मुनि ने मुस्कराकर कहा—"अब कैसे निकलेगा, उनको तो मैंने हजम कर लिया और वह यमपुरी पहुंच गया।" क्रुद्ध इल्वल महामुनि अगस्त्य की ओर झपटा किंतु महामुनि के तेज से भस्म होकर वहीं समाप्त हो गया।

बा० रा०, अरण्य कांड, सर्ग ११, श्लोक ५०-६८

वानर जब विष्णु ने अवतरित होना स्वीकार कर लिया तब ब्रह्मा ने सब देवताओं को बुलाकर कहा कि विष्णु की सहायता के लिए वे सब मानव-लोक में वानर-जाति की सृष्टि करें। वे देवताओं की भांति ही यशस्वी और वीर हों, किंतु आकार-प्रकार में वानर का स्वरूप धारण किये हों। उनका जन्म अप्सराओं, गंधर्वियों, यक्षियों, नागपुत्रियों, किन्नरियों आदि के गर्भ से होना चाहिए। ब्रह्मा ने बताया कि एक वार जंभाई आने पर उनके मुंह से जांबवान का जन्म हुआ था। ब्रह्मा का आदेश पाकर देवताओं के प्रयत्न से एक करोड़ यूथपति वानरों का जन्म हुआ, जिनमें से मुख्य इस प्रकार थे—इंद्र का पुत्र बालि, सूर्य का सुग्रीव, बृहस्पति का तार, कुबेर का गांधमान, विश्वकर्मा का नल, अग्नि का नील, वायु का हनुमान आदि। वे सभी रावण-वध के लिए उद्यत थे।

बा० रा०, बाल कांड, सर्ग १७, श्लोक १-३७

वामदेव (क) वामदेव गौतम ऋषि के पुत्र कहे गये हैं। वे गौतम भी कहलाते हैं। ऋषि वामदेव अभी मां के गर्भ में ही थे जब उन्हें अपने पूर्वजन्म आदि का ज्ञान हो गया था। उन्होंने सोचा, मां की योनि से तो सभी जन्म लेते हैं और यह कष्टकर है, अत: मां का पेट फाड़कर बाहर निकलना चाहिए। उनकी मां को इसका आभास हो गया। अत: उसने अपने जीवन को संकट में

पड़ा जानकर देवी अदिति से रक्षा की कामना की। अदिति और इंद्र ने प्रकट होकर गर्भस्थित वामदेव को बहुत समझाया, किंतु वामदेव ने कहा—"इंद्र ! मैं जानता हूं कि पूर्वजन्म में मैं ही मनु तथा सूर्य रहा हूं। मैं ही ऋषि कक्षीवत् (कक्षीवान्) था। कवि उशना भी मैं ही था। मैं 'जन्मत्रयी' को भी जानता हूं। जीव का प्रथम जन्म तब होता है जब पिता के शुक्र कीट मां के शोणित द्रव्य से मिलते हैं। दूसरा जन्म योनि से बाहर निकलना है और तीसरा जन्म मृत्यूपरांत पुनर्जन्म है। यही प्राणी का अमरत्व भी है।" यह बतलाकर इंद्र को अपने समस्त ज्ञान का परिचय देकर वामदेव ने योग से श्येन पक्षी का रूप धारण किया तथा अपनी माता के उदर से बाहर निकल आये। इंद्र ने युद्ध के लिए उन्हें ललकारा। इंद्र उनके सम्मुख परास्त हो गये।

इंद्र के परास्त होने के बाद देवताओं की एक बैठक में वामदेव ने कहा कि यदि कोई इंद्र को लेना चाहता है तो उसे मुझे दस दुधारू गाय देनी होगी तथा यह शर्त भी रहेगी कि यदि इंद्र उसके शत्रुओं का नाश कर देगा तो वामदेव उन गायों को लौटा देंगे।

इंद्र क्रोध से तमतमा रहे थे किंतु पराजित थे। तदुपरांत वामदेव ने उनकी स्तुति करके उन्हें शांत कर दिया। समय बीतता गया। अचानक वामदेव पर दरिद्रता देवी ने कृपा की। वामदेव के मित्रों ने मुंह मोड़ लिया—कष्ट चारों ओर से घिर आये। ऋषि के तप, व्रत ने भी उसकी सहायता नहीं की। आश्रम के पेड़-पौधे फलविहीन हो गये। ऋषि-पत्नी पर वृद्धावस्था और जर्जरता का प्रकोप हुआ। पत्नी के अतिरिक्त सभी ने ऋषि का साथ छोड़ दिया था, किंतु ऋषि शांत और अडिग थे। क्षुधित ऋषि ने एक दिन यज्ञ-कुंड की अग्नि में कुत्ते की आंतें पकानी आरंभ कीं। खाने के लिए और कुछ भी नहीं था। तभी एक सूखे ठूंठ पर एक श्येन पक्षी बैठा दिखायी दिया। उसने पूछा—"जहां तुम हवि अर्पित करते थे, वहां कुत्ते की आंतें पका रहे हो—यह कौन-सा धर्म है?" ऋषि ने कहा—"यह आपद् धर्म है। चाहो तो तुम्हें भी इसीसे तुष्ट कर सकता हूं। मैंने अपने समस्त कर्म भी क्षुधा को अर्पित कर दिये हैं। आज जब सबसे उपेक्षित हूं, तो हे पक्षी, तुम्हारा कृतज्ञ हूं कि तुमने करुणा प्रदर्शित की।"

श्येन पक्षी उस ऋषि दंपति की करुण स्थिति को देखकर द्रवित हो उठा। इंद्र ने श्येन का रूप त्याग अपना स्वाभाविक रूप धारण किया तथा वामदेव को मधुर रस अर्पित किया। वामदेव का कंठ कृतज्ञता से अवरुद्ध हो हो गया।

ऋ०, मंडल ४।

(ख) वामदेव नामक योगी शिवजी के भक्त थे। उन्होंने अपने समस्त शरीर पर भस्म धारण कर रखी थी। एक बार एक व्यभिचारी पापी ब्रह्मराक्षस उन्हें खाने के लिए उनके पास पहुंचा। उसने ज्योंही वामदेव को पकड़ा, उसके शरीर से वामदेव के शरीर की भस्म लग गयी, अतः उसके पापों का शमन हो गया तथा उसे शिवलोक की प्राप्ति हो गयी। वामदेव के पूछने पर उसने बताया कि वह पच्चीस जन्म पूर्व दुर्जन नामक राजा था, अनाचारों के कारण मरने के बाद वह रुधिर कूप में डाल दिया गया। फिर चौबीस बार जन्म लेने के उपरांत वह ब्रह्मराक्षस बना।

शि० पु०, ३।७-८

वामन विरोचन का पुत्र बलि इंद्र तथा मरुद्गणों सहित समस्त देवताओं को जीतकर त्रिभुवन में विख्यात हो गया। दैत्यराज बलि ने एक बहुत बड़ा यज्ञ करने का निश्चय किया। यह जानकर यजमान भगवान विष्णु के पास गये तथा देवताओं के हित में उन्होंने बलि-यज्ञ पूर्ण न होने देने की प्रार्थना की। उन्हीं दिनों महामुनि कश्यप तथा उनकी पत्नी अदिति ने सहस्र वर्ष में पूर्ण होनेवाला महाव्रत समाप्त किया था तथा विष्णु की स्तुति की थी। विष्णु ने प्रसन्न होकर उन्हें वर दिया, जिसके फलस्वरूप भगवान विष्णु कश्यप और अदिति के पुत्र तथा इंद्र के छोटे भाई बनकर पृथ्वी पर अवतरित हुए। वे वामन का रूप धारण करके दानी बलि के पास पहुंचे तथा उनसे तीन पग पृथ्वी की याचना की। उन्होंने तीन पगों में समस्त लोकों को नापकर बलि को बांध लिया। तदनंतर समस्त राज्य उन्होंने इंद्र को सौंप दिया। जिस आश्रम में विष्णु ने तप किया था, वह सिद्धाश्रम कहलाया। कालांतर में विश्वामित्र ने भी वही तपस्या की।

बा० रा०, बाल कांड, सर्ग २९, श्लोक १-२:

त्रेतायुग में विरोचनकुमार बलि ने इंद्र को भी परास्त कर दिया था। देवताओं ने क्षीरसागर के किनारे जाकर नारायण का स्तवन किया। उन्होंने अदिति के पुत्र होकर

इंद्र के छोटे भाई विष्णु (उपेंद्र) का नाम प्राप्त किया। वे एक वामन-रूप धारण कर ब्राह्मण के वेश में बलि की सभा में पहुंचे। बलि अश्वमेध यज्ञ के अनुष्ठान की तैयारी में लगे थे। वामन-रूप में विष्णु ने उनसे तीन पग भूमि दक्षिणा में मांगी। बलि देने के लिए तैयार हो गये तो वामन ने विराट रूप धारण कर एक पग में पृथ्वी, दूसरे में आकाश और तीसरे पग में स्वर्ग नाप लिया। वामन ने बलि को यज्ञमंडप में ही बांध लिया और विरोचन के समस्त कुल को स्वर्ग से पाताल भेज दिया। जब वामन स्वर्गलोक से भी ऊपर पैर बढ़ाने लगे तब उनका पैर ब्रह्मांड कपाल तक पहुंच गया और उसके आघात से कपाल में छिद्र हो गया जिससे गंगा नदी प्रकट हुई जो नीचे उतरकर सागर में मिल गयी।

म० भा०, सभापर्व, ३८-

बलि ने इंद्र से युद्ध कर, उसे रणभूमि से भगा दिया। बलि से परास्त होकर देवताओं सहित इंद्र अदिति के पास गये तथा उनसे कहा कि वे कश्यप से पूछें कि बलि की मृत्यु का उपाय क्या हो सकता है? वे सब ब्रह्मा के पास गये। उन्होंने अदिति और कश्यप सहित समस्त देवताओं को क्षीरसागर के उत्तर में 'अमृत' नामक स्थान पर तपस्या करने के लिए कहा। तपस्या से प्रसन्न होकर विष्णु ने वर मांगने को कहा। कश्यप ने कहा—"अदिति के गर्भ से 'वामन' रूप में उत्पन्न होकर आप जन्म लें तथा शत्रु-मर्दन करें। (शेष कथा श्रीमद् भा० जैसी है)।

हरि० वं० पु०, भविष्यपर्व, ६४-७२

देवासुर संग्राम में देवता पराजित हो गये तथा राजा बलि ने स्वर्ग पर विजय प्राप्त कर ली। पराजित देवता बृहस्पति की शरण में गये। जब तक कालचक्र उनके अनुकूल न हो, बृहस्पति ने उन्हें स्वर्ग-लोक छोड़कर कहीं छिपकर रहने का आदेश दिया, देवताओं के छिप जाने पर असुरों ने निर्द्वंद्व भाव से स्वर्ग तथा पृथ्वी पर अधिकार जमा लिया तथा ब्राह्मणों की सेवा और यज्ञों से शक्ति का संचय करने लगे। असुर ब्रह्मवादी थे तथा शुक्राचार्य उनके गुरु थे। कश्यप समाधि में थे और अदिति उस दुर्घटना से बहुत चिंतित थी। कश्यप ने लौटने पर सब जाना तथा अदिति की अपने पुत्रों (देवताओं) विषयक आकुलता को देखा तो उसे विष्णु की आराधना करने के लिए कहा। अदिति की आराधना से प्रसन्न होकर विष्णु ने कहा कि वे कश्यप के वीर्य तथा अदिति के उदर से आंशिक अवतार के रूप में जन्म लेंगे। कालांतर में अदिति की कोख से वामन का जन्म हुआ। वामन ने, यज्ञ की योजना में व्यस्त, बलि की यज्ञशाला में जाकर उसका आतिथ्य ग्रहण किया। तदुपरांत ब्रह्मवादी बलि के 'योग्य सेवा' पूछने पर उन्होंने तीन पग भूमि मांगी। इतना सहज-सा वर देते हुए बलि को तनिक भी संकोच नहीं हुआ। शुक्राचार्य ने वामन को पहचान लिया था। अतः बलि को सावधान करने का प्रयास किया। किंतु एक बार वर देकर बलि मिथ्यावादी नहीं होना चाहता था। वामन ने विराट् रूप धारण करके एक पग से पृथ्वी और दूसरे पग से स्वर्ग को माप लिया। तीसरा पग कहां रखें—यह प्रश्न शेष रह गया। बलि ने प्रसन्नतापूर्वक अपना सिर सामने झुकाकर तीसरा पग रखने के लिए कहा। वामन विष्णुवादी देवताओं के संरक्षक थे। बलि ब्रह्मवादी था तथापि वामन ने उसकी सत्यप्रियता से प्रसन्न होकर उसे बंधन-मुक्त करके सुतललोक जाने का वर दिया जो लोक देवदुर्लभ माना गया है। विष्णु के प्रभाव से उसकी आसुरी वृत्ति का भी नाश हो गया।

श्रीमद् भा०, अष्टम स्कंध, १५-२३

वालि वालि और सुग्रीव को वानरश्रेष्ठ ऋक्ष राजा का पुत्र भी कहा जाता है तथा सुग्रीव को इंद्र-पुत्र भी कहा गया है।

बा० रा०, किष्किंधा कांड, सर्ग ५७, श्लोक ५

वालि (बाली) सुग्रीव का बड़ा भाई था। वह पिता और भाई का अत्यधिक प्रिय था। पिता की मृत्यु के बाद वालि ने राज्य सम्हाला। स्त्री के कारण से उसका दुंदुभी के पुत्र मायावी से बैर हो गया। एक बार अर्ध रात्रि में किष्किंधा के द्वार पर आकर मायावी ने युद्ध के लिए ललकारा। वालि तथा सुग्रीव उससे लड़ने के लिए गये। दोनों को आता देखकर वह वन की ओर भागा तथा एक बिल में छिप गया। वालि सुग्रीव को बिल के पास खड़ा करके स्वयं बिल में घुस गया। सुग्रीव ने एक वर्ष तक प्रतीक्षा की, तदुपरांत बिल से आती हुई लहू की धारा देखकर वह भाई को मरा जानकर बिल को पर्वत शिखर से ढंककर अपने नगर में लौट आया। मंत्रियों के आग्रह पर उसने राज्य संभाल लिया। उधर वालि ने मायावी को एक वर्ष में ढूंढ़ निकाला। कुटुंब

सहित उसे मारकर जब वह लौटा तो बिल पर रखे पर्वत-शिखर को देखकर उसने सुग्रीव को आवाज दी किंतु कोई उत्तर नहीं मिला। जैसे-तैसे शिखर हटाकर जब वह अपनी नगरी में पहुंचा तो सुग्रीव को राज्य करते देखा। उसे निश्चय हो गया कि वह राज्य के लोभ से वालि को बिल में बंद कर आया था, अत: उसने सुग्रीव को निर्वासित कर दिया तथा उसकी पत्नी रूमा को अपने पास रख लिया।

बा० रा०, किष्किंधा कांड, सर्ग ९,१०

पृथ्वी तल के समस्त वीर योद्धाओं को परास्त करता हुआ रावण वालि से युद्ध करने के लिए गया। उस समय वालि संध्या के लिए गया हुआ था। वह प्रतिदिन समस्त समुद्रों के तट पर जाकर संध्या करता था। वालि के मंत्री तार के बहुत समझाने पर भी रावण वालि से युद्ध करने की इच्छा से ग्रस्त रहा। वह संध्या में लीन वालि के पास जाकर अपने पुष्पक विमान से उतरा तथा पीछे से जाकर उसको पकड़ने की इच्छा से धीरे-धीरे आगे बढ़ा। वालि ने उसे देख लिया था किंतु उसने ऐसा नहीं जताया तथा संध्या करता रहा। रावण की पदचाप से जब उसने जान लिया कि वह निकट है तो तुरंत उसने रावण को पकड़कर बगल में दबा लिया और आकाश में उड़ने लगा। बारी-बारी में उसने सब समुद्रों के किनारे संध्या की। राक्षसों ने भी उसका पीछा किया। रावण ने स्थान-स्थान पर नोचा और काटा किंतु बालि ने उसे नहीं छोड़ा। संध्या समाप्त करके किष्किंधा के उपवन में उसने रावण को छोड़ा तथा उसके आने का प्रयोजन पूछा। रावण बहुत थक गया था किंतु उसे उठानेवाला वालि तनिक भी शिथिल नहीं था। उससे प्रभावित होकर रावण ने अग्नि को साक्षी बनाकर उससे मित्रता की।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग ३४,

सीता-हरण के पश्चात् राम से मित्रता होने पर भी सुग्रीव को राम की शक्ति पर इतना विश्वास नहीं था कि वह शक्तिशाली वानरराज वालि को मार सकेंगे, अत: राम ने सुग्रीव के कहने पर अपने बल की परीक्षा दी। एक बाण से राम ने एकसाथ ही सात सालवृक्षों को भेद दिया तथा अपने पांव के अंगूठे की एक ठोकर से दुंदुभी के सूखे कंकाल को दस योजन दूर फेंक दिखाया। सुग्रीव बहुत प्रसन्न हुआ तथा राम-लक्ष्मण समेत वालि से युद्ध करने गया। सुग्रीव के ललकारने पर वालि निकल आया तथा उसने सुग्रीव को मार भगाया। सुग्रीव ने बहुत दुखी होकर राम से पूछा कि उसने वालि को मारा क्यों नहीं। राम के यह बताने पर कि दोनों भाई एक-से लग रहे थे, अत: राम को यह भय रहा कि कहीं बाण सुग्रीव के न लग जाय। राम ने सुग्रीव का गजपूष्पी लता पहनकर फिर से युद्ध के लिए प्रेरित किया। वालि ने जब फिर से सुग्रीव की ललकार सुनी और लड़ने के लिए बाहर निकला तब तारा ने बहुत मना किया पर वह नहीं माना। युद्ध में जब सुग्रीव कुछ दुर्बल पड़ने लगा तो पेड़ों के झुरमुट में छिपे राम ने वालि को अपने बाण से मार डाला। मरते हुए वालि ने पहले तो राम को बहुत बुरा-भला कहा, क्योंकि इस प्रकार छिपकर मारना क्षत्रियों का धर्म नहीं है किंतु जब राम ने वालि को समझाया कि वालि ने सुग्रीव की पत्नी को हरकर अधर्म किया है तथा जिस प्रकार वनैले पशुओं को घेरकर छल से मारना अनुचित नहीं है, उसी प्रकार पापी व्यक्ति को दंड देना भी धर्मोचित है। वालि ने सुग्रीव और राम से यह वादा लेकर कि वह तारा तथा अंगद का ध्यान रखेंगे, सुखपूर्वक देह का त्याग किया।

बा० रा०, किष्किंधा कांड, सर्ग ११ से १८ तक

राम-लक्ष्मण सीता को ढूंढ़ते हुए ऋष्यमूक पर्वत पर पहुंचे। वहां पांच वानर बैठे हुए थे। उनमें सुग्रीव तथा हनुमान भी थे। राम की सुग्रीव से मैत्री हो गयी। राम ने सुग्रीव के भाई बाली का वध करने का प्रण किया तथा सुग्रीव ने राम का साथ देने का निश्चय किया। सुग्रीव तथा बाली का मल्लयुद्ध हो रहा था। हनुमान ने सुग्रीव की पहचान के लिए उसे माला पहना दी थी। राम ने छुपकर छाती पर बाण से प्रहार किया। वह मारा गया। सुग्रीव ने बाली की मृत्यु के उपरांत उसकी पत्नी तारा तथा किष्किंधापुरी को प्राप्त किया।

म० भा०, वनपर्व, २८० १ से ३९ तक

आदित्यराज के दो पुत्र थे। उनमें से बाली को राजा सुग्रीव को युवराज बनाकर आदित्यराज ने दीक्षा का अंगीकरण किया। रावण ने बाली के पास दूत भेजा कि वह अपनी बहन श्रीप्रभा का विवाह रावण से कर दे। बाली के न मानने पर रावण ने उसपर आक्रमण कर दिया। बाली ने अनुभव किया कि मात्र उसके कारण इतने लोगों का संहार होगा, अत: उसने राज्य सुग्रीव

को सौंप दिया तथा स्वयं प्रव्रज्या ग्रहण की। सुग्रीव ने श्रीप्रभा रावण को सौंप दी। युद्ध का शमन हो गया। बाली अष्टापद पर्वत पर घोर तपस्या करने लगा। एक बार रावण विमान में जा रहा था कि बाली के तपोबल से उसका विमान अष्टापद पर्वत के पास रुक गया। विमान के अवरोध का कारण जानकर रावण बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने समस्त पर्वत समुद्र में डुबा देने की इच्छा से उखाड़कर सिर पर रख लिया। बाली ने पांव के अंगूठे से जरा-सा दबाया कि रावण पर्वत के नीचे दबकर कराहने लगा। पांव का दबाव ढीला करके बाली ने उसे मुक्त कर दिया। तदनंतर अपने कुकर्म का प्रायश्चित्त करके रावण जिनेश्वर का भक्त बन गया।

पउ० च०, ६।-

वालिखिल्य एक बार राम, सीता और लक्ष्मण पानी की खोज में वन में भटक रहे थे। वहां के राजकुमार ने उन्हें अपने महल में आमंत्रित किया। प्रणाम इत्यादि के उपरांत राजकुमार ने अपना उत्तरीय हटाकर रख दिया। वास्तव में वह राजकुमारी थी। उसने बताया कि उसका पिता बालिखिल्य म्लेच्छों की कैद में है। कन्या-जन्म की बात उसकी पृथ्वी नामक मां तथा एक मंत्री से इतर कोई नहीं जानता। उसे बालपन से ही राजकुमार के रूप में पाला गया था। अब वह क्या करे? राम और सीता ने उसे आश्वस्त किया। म्लेच्छों को युद्ध में हराकर उन्होंने वालिखिल्य को मुक्त करवा दिया। म्लेच्छों के राजा रुद्रभूति ने वालिखिल्य से मैत्री कर ली।

पउ० च०, ३४।-

विंद महाभारत युद्ध में केकय राजकुमारों, विंद तथा अनुविंद के साथ सात्यकि का युद्ध हुआ था। सात्यकि ने अनुविंद का सिर क्षुरप्र से तथा विंद का सिर तलवार से काट डाला था।

म० भा०, कर्णपर्व, १३।११-२८

विंध्य पर्वत सूर्य को प्रतिदिन मेरु पर्वत की परिक्रमा करते देख विंध्य ने सूर्य से कहा कि वह उसी प्रकार विंध्याचल की परिक्रमा प्रात: से सायं तक किया करे। सूर्य का मार्ग विधाता ने निश्चित किया था, अत: उसके न मानने पर कुपित होकर विंध्य बढ़ने लगा जिससे सूर्य तथा चंद्र का मार्ग अवरुद्ध हो जाय। देवताओं की प्रार्थना पर भी उसने ध्यान नहीं दिया। देवताओं ने प्रभावशाली अगस्त्य मुनि से सब कह सुनाया। अगस्त्य ने उन्हें अभयदान दिया तथा अपनी पत्नी लोपामुद्रा के साथ विंध्य पर्वत के पास पहुंचे। उन्होंने विंध्य से कहा—"मैं दक्षिण की ओर जा रहा हूं, तुम मुझे मार्ग प्रदान कर दो। जब तक मैं वापस न आऊं, तुम मेरी प्रतीक्षा करना। मेरे वापस आने के उपरांत तुम इच्छानुसार बढ़ते रहना।" विंध्य ने स्वीकार कर लिया। तदुपरांत अगस्त्य मुनि आज तक दक्षिण से वापस नहीं आये, अत: उनके प्रभाव से पर्वत आगे नहीं बढ़ पाया।

म० भा०, वनपर्व, १०४।१ से १५ तक

विंध्याचल को अपनी शक्ति पर गर्व था, अत: उसके मानमर्दनार्थ नारद ने उससे कहा कि सुमेरु उसे अपने सामने कुछ भी नहीं मानता। विंध्याचल ने शिवाराधना के फलस्वरूप शिव को प्रसन्न कर उसने अपने ऊपर शिवलिंग की स्थापना करवायी जिसमें साक्षात् शिव ने प्रवेश किया। उसका नाम 'अमरेश्वर' अथवा 'परमेश्वर' है। तदनंतर उसने निश्चय किया कि इतना बढ़ेगा कि सूर्य-चंद्र जो कि सुमेरु की परिक्रमा करते हैं, उनका मार्ग अवरुद्ध हो जाय। इस प्रकार उनका मान-मर्दन हो जायेगा। विंध्याचल के बढ़ने के कारण सूर्य के घोड़े आगे बढ़ने से रुक गये। फलत: इंद्रलोक और कुबेरलोक में ताप की मात्रा बहुत अधिक बढ़ गयी तथा वरुण और यमराज की दिशा में अंधकार फैल गया। ब्रह्मा की प्रेरणा से उन सबने भी शिवाराधना की। शिव ने उन्हें अगस्त्य के पास जाने को कहा। अगस्त्य विंध्याचल के निकट गये। विंध्य ने नमित भाव से आज्ञा पूछी तो मुनि ने कहा—"जब तक मैं न आऊं, तुम इसी तरह बने रहना।" फिर वे दक्षिण की ओर चले गये, जहां से वे कभी नहीं लौटे, अत: विंध्य आज भी उनकी प्रतीक्षा में वैसे ही रुका हुआ है।

शि० पु०, ८।२५-२६

एक बार नारद ने विंध्याचल को बताया कि कैलास शिव का अधिवास होने के कारण, हिमालय शिव का श्वसुर होने के नाते, सुमेरु पर्वत नक्षत्रों से परिक्रमित होने के कारण इसी प्रकार विभिन्न कारणों से विभिन्न पर्वत गर्वित हैं। उनके गर्व का शमन करना चाहिए। विंध्याचल ने सोचा कि आकाश तक ऊंचाई बढ़ाकर वह सूर्य आदि नक्षत्रों का मार्ग अवरुद्ध कर लेगा। प्रात:काल सूर्य का मार्ग अवरुद्ध देखकर वरुण ने सूर्य को उसका कारण बताया। सूर्य को अवरुद्ध देखकर देवताओं ने शिव की

तथा फिर विष्णु की अराधना की। विष्णु ने कहा कि देवी भगवती के उपासक, काशीनिवासी अगस्त्य मुनि ही इस विषय में सहायक हो सकते हैं। देवता अगस्त्य मुनि की शरण में पहुंचे। मुनि ने उनके निमित्त काशी से दक्षिण के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में विंध्याचल ने मुनि के चरणों में प्रणाम किया। इस प्रक्रिया में वह नमित हो भूमिसात हो गया। मुनि ने आशीष देते हुए अपने लौटने तक उसे उसी स्थिति में बने रहने को कहा। पर्वत ने स्वीकार किया। मुनि उसके शिखरों का आरोहण-अवरोहण करते हुए अपनी पत्नी सहित मलयाचल पहुंचे। वे वहीं आश्रम बनाकर रहने लगे। देवी मुनि से पूजित होकर विंध्याचल पर आयी, इसीसे वह स्थल विंध्यवासिनी नाम से विख्यात हुआ।

दे० भा०, १०।२-७

विकुंठा विकुंठा असुर-कन्या तथा असुर-पत्नी थी। उसने इंद्र के समान देवपुत्र की कामना से तपस्या प्रारंभ की। अनेक वर प्राप्त करने के उपरांत उसने इंद्र के समान दैत्य-दानव-संहारी पुत्र प्राप्त करने का वर पाया। इंद्र ने स्वयं सुशिप्र के रूप में उसके गर्भ से जन्म लिया। जन्म लेते ही सोमपान आरंभ कर दिया। विकुंठा के पुत्र के रूप में इंद्र ने पृथ्वी तल पर कालकेय तथा पुलोम जाति के असुरों को नष्ट कर दिया तथा स्वर्ग में प्रह्लाद की दुष्ट संतानों का संहार किया। तदुपरांत वे दैत्यों के सिंहासन पर आरूढ़ हुए। धीरे-धीरे उनपर आसुरी प्रभाव पड़ने लगा और वे अपना वास्तविक उद्देश्य भूल बैठे। देवताओं ने खिन्न होकर सप्रगु से प्रार्थना की कि वे अपने मित्र इंद्र को समझाएं। सप्रगु ने इंद्र को समझाया। उन्हें पुनः पूर्वा का ज्ञान हुआ। दैत्यों का पुनः शमन हुआ।

ऋ० १०,४७, ४८, ४६, ५०

विचक्र विचक्र नामक असुर ने श्रीकृष्ण के साथ युद्ध किया। कृष्ण ने उसे आग्नेयास्त्र से भस्म कर डाला।

हरि० वं० पु०, भविष्यपर्व, १२३।

विचरव्नु राजा विचरव्नु न्यायसम्मत दयालु राजा थे। एक बार उन्होंने देखा—"गोशाला के प्रांगण में गायों की भीड़ थी क्योंकि वहां एक बैल की गरदन कटी हुई थी। गायें आर्तनाद कर रही थीं। राजा विचरव्नु अहिंसा का उपदेश देते हुए कहा कि इस प्रकार यज्ञशाला के बाहर हिंसापूर्वक बलि देना भी वेदसम्मत नहीं है। धर्मात्मा मनु ने भी समस्त कर्मों में अहिंसा का प्रतिपादन किया था। यह तो लोगों की स्वेच्छा-पूर्ति मात्र है।

म० भा०, शांतिपर्व, २६५।-

विचित्रवीर्य काशिराज की तीन कन्याओं के स्वयंवर का आयोजन था। भीष्म वहां पहुंच गये तथा बाहुबल से तीनों का हरण कर लाये। अनेक राजाओं से उन्हें युद्ध करना पड़ा, जिनमें प्रमुखतम राजा शाल्व था। घर आकर उन्होंने विचित्रवीर्य से उन तीनों का विवाह करना चाहा किंतु सबसे बड़ी लड़की ने बताया कि वह मन से ही शाल्व का वरण कर चुकी है, अतः उसे राजा शाल्व के पास भेजा दिया गया। शेष दोनों का विवाह विचित्रवीर्य से हुआ। उनका नाम अंबिका तथा अंबालिका था। विचित्रवीर्य इतना कामी हो गया था कि असमय में ही राजयक्ष्मा से पीड़ित होकर उसने प्राण त्याग दिये। मां सत्यवती अपने कुल की परंपरा को नष्ट होता देख बहुत दुखी हुई। उसने भीष्म को आज्ञा दी कि वह कुल की रक्षा के लिए दोनों बहुओं को संतान प्रदान करे किंतु उसने ब्रह्मचर्य व्रत लिया हुआ था, अतः ऐसा संभव नहीं हुआ। सत्यवती ने अपनी कुमारी अवस्था के पुत्र व्यास द्वैपायन को इस निमित्त बुलाया।

व्यास की कुरूपता को देखकर समागम के समय अंबिका ने अपने नेत्र मूंद लिये, अतः उसका पुत्र धृतराष्ट्र जन्मांध हुआ। अंबालिका उसकी कुरूपता से भयभीत होकर पीली पड़ गयी, अतः उसका पुत्र पीला हुआ जो पांडु कहलाया। सत्यवती ने एक और पुत्र की कामना से अंबिका को व्यास के समागम के लिए तैयार किया, किंतु उसने अपने स्थान पर अपनी दासी को भेज दिया। दासी ने विदुर को जन्म दिया। साक्षात् धर्मराज ने ही शाप के कारण से विदुर के रूप में जन्म लिया था।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय ११९४-९५
अध्याय १०१-१०४

कुल-परंपरा बनाये रखने के लिए व्यास से मैथुन करते समय उनके तेज को न संभाल पाने के कारण अंबिका ने नेत्र मूंद लिए, अतः उसका पुत्र धृतराष्ट्र अंधा हो गया। अंबालिका ने तेज से बचने के निमित्त शरीर पर चंदन का लेप कर लिया, अतः उसका पुत्र पीले वर्ण का पांडु हुआ। तीसरी बार सत्यवती के कहने पर उन दोनों ने अपनी दासी को भेज दिया, जिसका पुत्र विदुर हुआ (शेष कथा महाभारत की कथा के समान है)।

दे० भा०, स्कंध १, अध्याय १९-२०

विदुर महर्षि अणीमांडव्य चोर नहीं थे, फिर भी गलती से उन्हें शूली पर चढ़ाया गया था। उनके शाप से धर्मराज ने शूद्र की योनि में विदुर नाम से जन्म लिया। विचित्रवीर्य की दासी के उदर से उसका जन्म हुआ था (दे० विचित्रवीर्य)। वह अत्यंत शांतिप्रिय तथा न्याय बुद्धिवाला व्यक्ति था। उसने कौरव-पांडवों के युद्ध का निवारण करने का भरसक प्रयत्न किया किंतु धृतराष्ट्र मौन रहा और उसके राज्यलोलुप पुत्र युद्ध के लिए कटिबद्ध रहे।

म० भा०, आश्रमवासिकपर्व,२६।-
आदिपर्व, ६३।६३ से ६७ तक
उद्योगपर्व, ३३ से ४० तक।-

युधिष्ठिर ने जुए में समस्त राज्य हार दिया था। उससे पूर्व तथा उसके पश्चात् भी नेत्रहीन धृतराष्ट्र अपने बेटे दुर्योधन को अन्यायपूर्ण कार्यो से अलग नहीं कर पाये। विदुर ने उन्हें समझाने का प्रयास किया तो दुर्योधन ने उनकी युद्ध-विषयक आशंका पर कोई ध्यान नहीं दिया अपितु कहा—"तू दासी-पुत्र हमारे टुकड़ों पर पलकर शत्रुओं का हितचिंतक बनता है!" विदुर को यह बहुत अपमानजनक लगा। उन्होंने राजद्वार पर अपने शस्त्र आदि रख दिये तथा स्वयं हस्तिनापुर की सीमा के बाहर जंगलों में रहकर तपस्या करने लगे।

पांडवों के राज्य ग्रहण करने के उपरांत धृतराष्ट्र पंद्रह वर्ष तक उनके साथ रहे। तदुपरांत शरीर के क्षीण हो जाने पर उन्होंने गांधारी तथा कुंती सहित वन के लिए प्रस्थान किया। कुरुक्षेत्र में वे शतयूप के आश्रम में रहने लगे। विदुर उनकी सेवा में सदैव प्रस्तुत रहते थे। कुछ समय उपरांत पांडव उन सबके दर्शन करने वहां पहुंचे। युधिष्ठिर धृतराष्ट्र से बात कर रहे थे कि उन्होंने देखा कि विदुर नग्नावस्था में मुंह में पत्थर का एक टुकड़ा पकड़े वहां पहुंचे। उनका शरीर धूल से भरा मैला तथा जीर्णशीर्ण हो गया था। उन सबको देख विदुर तुरंत मुड़कर वन की ओर चल दिये। युधिष्ठिर भी उन्हें पुकारते हुए उनके पीछे-पीछे घनघोर जंगल में पहुंच गये। विदुर ने वहां एकांत में पहुंचकर युधिष्ठिर का आतिथ्य ग्रहण किया, फिर युधिष्ठिर की ओर निर्निमेष दृष्टि से देखते रहे। योगबल से उन्होंने अपने प्राणों तथा इंद्रियों को युधिष्ठिर के प्राणों तथा इंद्रियों में प्रविष्ट कर दिया। उनका शरीर जड़ हो गया। युधिष्ठिर उनका दाह-संस्कार करना चाहते थे किंतु तभी आकाशवाणी हुई—"विदुर नामक शरीर का दाह-संस्कार उचित नहीं होगा, वे संन्यास-धर्म का पालन करते थे। उन्हें सांतनिक लोकों की प्राप्ति होगी।" युधिष्ठिर को आभास हुआ कि उसके शरीर में विचित्र शक्ति और प्राणों में तेज का वर्द्धन हो गया है। उन्होंने अपने पुरातन स्वरूप का स्मरण किया कि वे और विदुर एक ही धर्म के अंश से प्रकट हुए थे। युधिष्ठिर ने आश्रम लौटकर सबको उनके विषय में बताया।

श्रीमद् भा०, तृतीय स्कंध, १।१-१६

विदुला विदुला प्रसिद्ध वीरांगना क्षत्राणी थी। एक बार उसका पुत्र सिंधुराज से पराजित होकर प्राण-रक्षा के निमित्त रणक्षेत्र से भागकर घर पहुंचा। विदुला को अपने पुत्र (संजय) का यह कृत्य अत्यंत लज्जास्पद लगा। उसने अनेक प्रकार से समझाकर तथा डांटकर पुत्र को पुनः उत्साहित कर युद्ध करने की प्रेरणा दी। विदुला ने कहा—"धुआं छोड़ती हुई निस्तेज आग से क्षणिक प्रज्वलित ज्वाला कहीं अधिक श्रेयस्कर है। ठीक वैसे ही कायरतापूर्वक भागने में युद्ध में मर जाना अधिक सम्मानजनक है।"

म० भा०, उद्योगपर्व,१३३ से १३६ तक।-

विदेह (जनक) एक बार राजा जनक ने अपनी यौगिक क्रियाओं से स्थूल शरीर का त्याग कर दिया। स्वर्गलोक से एक विमान उनकी आत्मा को लेने के लिए आया। देवलोक के रास्ते से जनक कालपुरी पंहुचे जहां बहुत-से पापी लोग विभिन्न नरकों में प्रताड़ित किये जा रहे थे। उन लोगों ने जब जनक को छूकर जाती हुई हवा में सांस ली तो उन्हें अपनी प्रताड़नाओं का शमन होता अनुभव हुआ और नरक की अग्नि का ताप शीतलता में बदलने लगा। जब जनक वहां से जाने लगे तब नरक के वासियों ने उनसे रुकने की प्रार्थना की। जनक सोचने लगे—'यदि ये नरकवासी मेरी उपस्थिति से कुछ आराम अनुभव करते हैं तो मैं इसी कालपुरी में रहूंगा—यही मेरा स्वर्ग होगा।' ऐसा सोचते हुए वे वहीं रुक गये तब काल विभिन्न प्रकार के पापियों को उनके कर्मानुसार दंड देने के विचार से वहां पहुंचे और जनक को वहां देखकर उन्होंने पूछा—"आप यहां नरक में क्या कर रहे हैं?" जनक ने अपने ठहरने का कारण बताते हुए कहा कि वे वहां से तभी प्रस्थान करेंगे जब काल उन सबको मुक्त

कर देगा। काल ने प्रत्येक पापी के विषय में बताया कि उसे क्यों प्रताड़ित किया जा रहा है। जनक ने काल से उनकी प्रताड़ना से मुक्ति की युक्ति पूछी। काल ने कहा—"तुम्हारे कुछ पुण्य इनको दे दें तो इनकी मुक्ति हो सकती है।" जनक ने अपने पुण्य उनके प्रति दे दिये। उनके मुक्त होने के बाद जनक ने काल से पूछा— "मैंने कौन-सा पाप किया था कि मुझे यहां आना पड़ा?" काल ने कहा—"हे राजन! संसार में किसी भी व्यक्ति के तुम्हारे जितने पुण्य नहीं हैं—पर एक छोटा-सा पाप तुमने किया था—एक बार एक गाय को घास खाने से रोकने के कारण तुम्हें यहां आना पड़ा। अब पाप का फल पा चुके—सो तुम स्वर्ग जा सकते हो।" विदेह (जनक) ने काल को प्रणाम कर स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया।

पद्म पुराण, ३०-३१।-

विद्युज्जिह्व रावण ने विद्युज्जिह्व राक्षस को बुलाया। वह स्वेच्छा से कोई भी रूप धारण कर सकता था। रावण उसे लेकर अशोकवाटिका में गया। पहले अकेले ही जाकर सीता को उसने यह समाचार दिया कि सोते हुए राम को विद्युज्जिह्व ने मार डाला है, साथ ही वानर सेना को भी नष्ट कर डाला है। विद्युज्जिह्व को बुलवाया जो मायावी कटा हुआ राम का सिर लेकर आया था। उसे देखकर सीता बहुत दुखी हुई तथा राम को स्मरण कर रोने लगी। तभी किसी राक्षस ने जाकर रावण से कहा कि किसी आवश्यक कार्य से उसे सभा में बुलाया गया है। रावण के जाने के साथ ही राम का कटा हुआ सिर भी लुप्त हो गया। सरमा नामक राक्षसी बहुत सरलहृदया थी तथा सीता की सखी बन गयी थी। उसने सीता का भ्रम-निवारण किया और यथार्थ वस्तुस्थिति सामने रखते हुए उसे बतलाया कि रावण घबराया हुआ इसीलिए गया है कि राम तथा वानर-सेना के साथ युद्ध की तैयारी करनी है। सीता को शेष समाचार जानने के लिए आकुल देखकर सरमा गुप्त रूप से रावण की सभा में गयी तथा लौटकर सब समाचार सीता को सुना दिये।

बा० रा०, युद्धकांड, सर्ग ३१ से ३४

विनशन तीर्थ शूद्रों और अमीरों के प्रति द्वेष होने के कारण सरस्वती नदी जहां विनष्ट (अदृश्य) हो गयी है, उस स्थान का नाम ऋषियों ने विनशन तीर्थ रखा है।

म० भा०, शल्यपर्व, ३७।१, २

विपश्चित राजा विपश्चित जनकवंशी था। उसकी पत्नी का नाम पीवरी था। वह संतान-कामना करती रही और राजा केकयकुमारी शोभना पर आसक्त रहा, अतः उसे इस पाप के कारण कुछ समय के लिए नरक भोगना पड़ा। इसके अतिरिक्त शेष कोई भी पाप उसने नहीं किया था। उसके नरक में पहुंचते ही वहां का पाप कम हो गया, शीतल पवन बहने लगी। उसके चलने का समय आया तो समस्त नरकवासी व्याकुल हो उठे, क्योंकि उसके जाते ही पुनः वही ताप और कष्ट प्रारंभ होना था। उनकी यह स्थिति देख राजा विपश्चित ने अपने समस्त पुण्य उन्हें अर्पित कर दिये। समस्त पापी यातना-मुक्त हो गये। धर्मराज, इंद्र तथा विष्णु राजा से प्रसन्न होकर उसे दिव्यधाम ले गये।

मा० पु०, १३-१५।-

विपुल देवशर्मा नामक ऋषि की पत्नी का नाम रुचि था। रुचि के सौंदर्य से देवता, दानव, गंधर्व, सभी आकृष्ट थे। देवशर्मा इस तथ्य को जानते थे। एक दिन वे यज्ञ करने गये तो अपनी पत्नी की रक्षा का भार अपने शिष्य भृगुवंशी विपुल को सौंप गये। उसे विशेष रूप से इंद्र की ओर से सचेत कर गये। इंद्र मायावी तथा दुर्धर्ष है, यह जानने के कारण विपुल अत्यंत चिंतित हो उठा। उसने निर्लिप्त भाव से योग-बल द्वारा गुरुपत्नी के शरीर में प्रवेश कर लिया। रुचि को इस तथ्य का ज्ञान भी नहीं हुआ। इंद्र ने अवसर पाकर आश्रम में प्रवेश किया। इंद्र ने देखा कि एक ओर विपुल का निश्चेष्ट शरीर पड़ा है, दूसरी ओर सुंदरी रुचि है। इंद्र ने अनेक प्रकार से रुचि को अपने निकट बुलाने का प्रयास किया किंतु उसमें प्रविष्ट विपुल ने योगबल से उसकी समस्त इंद्रियों को निर्विकार रूप में बांधे रखा। इंद्र ने उसके शरीर में स्थित विपुल को देख लिया। वह शाप से भयभीत हो उठा। विपुल ने शुचि का शरीर छोड़ अपने शरीर में प्रवेश किया तथा इंद्र को बहुत फटकारा। इंद्र लज्जित होकर चला गया। देवशर्मा घर वापस आये तो यह घटना सुनकर विपुल पर विशेष प्रसन्न हुए। विपुल ने उनसे धर्म में स्थिर रहने का वर प्राप्त किया। विपुल ने तपस्या और वर से शक्ति का संचय किया, तदनंतर एक दिन कोई दिव्यांगना आकाश-मार्ग से कहीं जा रही थी, उसके शरीर से दिव्य पुष्प गिरे। उनमें से कुछ पुष्पों को धारण कर रुचि अपनी बहन प्रभावती तथा बहनोई अंगराज के आमंत्रण पर गयी। प्रभावती ने भी वैसे ही

पुष्प धारण करने की इच्छा प्रकट की। गुरु की आज्ञा से विपुल वैसे पुष्प चुनने के लिए वन में गया। वह पुष्प चुनकर लौट रहा था। रास्ते में एक युगल परस्पर हाथ पकड़कर कुम्हार के चाक की तरह घूमता हुआ मिला। गति में समता न रख पाने के कारण दोनों में विवाद हो गया, यहां तक कि दोनों में शपथ खाने की नौबत आ गयी तो वे बोले—"जो झूठ बोल रहा हो, उसकी वही गति होगी जो परलोक में ब्राह्मण विपुल की होनेवाली है। विपुल ने सुना पर कुछ न समझता हुआ वह आगे बढ़ा। वहां छः लोग जुआ खेलते हुए लड़ पड़े और बोले—"जो बेईमानी करेगा, उसकी वही गति होगी जो परलोक में ब्राह्मण विपुल की होनेवाली है।" विपुल बहुत असमंजस में पड़ गया कि ऐसा कौन-सा पाप उसने अनजाने ही कर डाला कि परलोक में उसकी दुर्गति होगी। सोच-विचार में डूबा हुआ वह गुरु के पास पहुंचा। देवशर्मा को पुष्प अर्पित कर उसने मार्ग में मिलनेवाले लोगों के विषय में जिज्ञासा प्रकट की। देवशर्मा ने बताया—"वह युगल तो रात और दिन का था और जुआ खेलनेवाले लोग ऋतुएं थीं। उन्होंने जो कहा, उसका अभिप्राय यह था कि मेरी पत्नी के शरीर में प्रवेश करते समय तुम्हारा मुख उसके मुख से तथा लक्षणेंद्रिय उसकी लक्षणेंद्रिय से संयुक्त हो जाने से पाप हुआ। तुमने मुझे इस विषय में बताया भी नहीं किंतु तुम्हारे निर्विकार होने के कारण मैं तुमसे रुष्ट नहीं हूं। तुम्हारे पास उसकी रक्षा का कोई और चारा भी नहीं था।" तदुपरांत देवशर्मा रुचि तथा शिष्य विपुल के साथ स्वर्ग जाकर वहां का सुख भोगने लगे।

म० भा०, दानधर्मपर्व, ४१-४३।-

विप्रुष राक्षस यज्ञ की हव्य सामग्रियां खा जाते थे। उन प्रपंचियों को इंद्र ने नष्ट कर दिया। उन राक्षसों में मुख्य विप्रुष था। इंद्र ने उसका गढ़ तोड़कर ऋजिश्वान् की रक्षा की।

ऋ० १।५१।५

विभावसु विभावसु नाम के एक अत्यंत क्रोधी महर्षि थे। उनके छोटे भाई का नाम सुप्रतीक था। एक दिन विभावसु ने सुप्रतीक से कहा—"धन के लोभ में भाई परस्पर बंटवारा कर लेते हैं, किंतु यह शोभनीय नहीं है। तुम भी मुझसे संभल नहीं रहे हो, अतः तुम हाथी की योनि में जन्म लोगे।" सुप्रतीक ने भी उसे कछवा बनने का शाप दिया। वे दोनों ही हाथी और कछवे के रूप में उत्पन्न होकर अपने वैर-भाव को परिपुष्ट किए हुए एक ही सरोवर पर रहते तथा झगड़ते थे। गरुड़ भोजन की खोज में निकले तो उन दोनों को ले उड़े तथा एक निर्जन पर्वत की चोटी पर बैठकर उन्हें खा गये।

म० भा०, आदिपर्व, २९।१७-४४ तक
३०।१ से ३१ तक

विभीषण रावण का छोटा भाई था। दस हजार वर्ष की तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा के प्रकट होने पर विभीषण ने यह वर मांगा कि "विपत्ति में उसकी बुद्धि धर्म में लगी रहे। बिना सीखे ब्रह्मास्त्र का ज्ञान हो जाय तथा जिस किसी आश्रम अथवा अवस्था में भी वह हो, अपने धर्म से विचलित न हो पावे।" ब्रह्मा ने इसके साथ ही उसे अमर रहने का वर भी दिया।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग १०, श्लोक २८-३५

रावण-वध के उपरांत राम ने विभीषण का विधिवत् राज्याभिषेक किया था।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग ११५

ज्योतिप्रभ के राजा विशुद्धकमल की कन्या पंकजसदृशी के साथ विभीषण का विवाह हुआ था। नारद ने त्रिकूट शिखर पर किसी नैमित्तिक को यह कहते हुए सुना कि "सागर-मार्ग से आकर दशरथ का पुत्र, सीता के कारण, रावण को मारेगा।" यह सुनकर विभीषण ने कहा—"मैं दशरथ और जनक को मार डालूंगा।" उसने नारद से भी उन दोनों का पता पूछा। नारद ने उनके जन्म के विषय में अपनी अनभिज्ञता प्रदर्शित की तथा तुरंत उन दोनों को समस्त घटना की सूचना दे दी। दशरथ और जनक अपना-अपना नगर छोड़कर कहीं जा छिपे। उन दोनों के नगरों में उनकी प्रतिमाएं बनाकर प्रतिष्ठित कर दी गयीं—जो देखने से वास्तविक मनुष्य जैसी लगती थीं। विभीषण ने साकेतपुरी में पहुंचकर प्रतिभा का सिर तलवार से काट दिया। रात का समय था। प्रतिमाओं से लाक्षरस टपकता देखकर वह संतुष्ट हो गया।

सीताहरण के प्रसंग में रावण को समझाने का प्रयास करने पर विभीषण तथा रावण का परस्पर कलह हो गया। सभासदों, भानुकर्ण आदि ने बीच-बचाव करवाया। रावण ने उसे अपने राज्य से निष्कासित कर दिया। वह राम से जा मिला।

लक्ष्मण के राज्याभिषेक के उपरांत विभीषण को त्रिकूट-शिखर का राज्य सौंप दिया गया।

पउ० च०, ८।६१-६२।-
२३।-
५५।८५।-

विमार्षण किरात देश का राजा विमार्षण अत्यंत धीर, वीर तथा शिवभक्त था, किंतु वह अखाद्य खाता था। रानी ने इसका कारण पूछा तो उसने कहा कि पूर्वजन्म में वह कुत्ता था और खाद्य वस्तुओं के लोभ से शिवपूजकों के आसपास घूमता था। एक दिन मंदिर के पास उसे लोगों ने मार डाला। मरते हुए क्योंकि उसने शिव-प्रतिमा के दर्शन किये थे, अतः वह राजा हो गया। वह भूत, वर्तमान और भविष्यवेत्ता था तथा सदैव चतुर्दशी का पूजन करता था। उसने बताया कि उसकी पत्नी कुमुद-वती गत जीवन में कबूतरी थी। मरते समय उसने शिव-लिंग के दर्शन किये, अतः अगले सात जन्मों तक रानी रहेगी। तदनंतर शिवभक्ति करते हुए दोनों शिवलोक प्राप्त करेंगे।

शि० पु०, १०।८

विराट्नगर (मत्स्यदेश) तेरहवें वर्ष के प्रारंभ होने पर पांडव द्रौपदी के साथ विराट्नगर में अज्ञातवास के लिए गये। नगर में प्रवेश करने से पूर्व उन्होंने श्मशान में एक शमी के विशाल वृक्ष की कोटर में अपने समस्त अस्त्र-शस्त्र छिपा दिये तथा उस वृक्ष से एक बूढ़ी औरत का शव लटका दिया। समीपवर्ती ग्वालों से उन्होंने कहा कि वह उनकी एक सौ अस्सीवर्षीय माता का शव है, जिसे कुल-परंपरा के अनुसार वे वहां लटकाकर जा रहे हैं। उन्होंने अपने नाम क्रमशः जय, जयंत, विजय, जयत्सेन तथा जयद्बल निश्चित किये। तदुपरांत दुर्गादेवी की स्तुति करके, उससे अज्ञातवास की सफल पूर्णता का आशीष लेकर वे राजा विराट् की सभा में एक-एक करके पहुंचे। धर्म से प्राप्त वर के अनुसार उन्होंने इच्छा-नुसार रूप प्राप्त किया। उन्हें ज्ञात था कि राजा विराट् का पांडवों के प्रति श्रद्धा-भाव है।

युधिष्ठिर ब्राह्मण-वेश में जुए का पासा फेंकने में निपुण कंक नामक वैयाघ्रपद गोत्र के उत्पन्न व्यक्ति के रूप में पहुंचे। उन्होंने कहा कि वे युधिष्ठिर के सखा थे। राजा ने सहर्ष द्यूतक्रीड़ा में निपुण युधिष्ठिर के सखा कंक को अपने राज्य में स्थान दिया। कंक ने शर्त रखी कि कोई अब्राह्मण उससे विवाद नहीं करेगा, लोग हारा हुआ धन कंक से वापस नहीं लेंगे। इसी प्रकार भीम ने वल्लभ नामक रसोइये का, अर्जुन ने बृहन्नला नामक (नपुंसक) नृत्य शिक्षिका का, नकुल ने ग्रंथिक नामक अश्वों की देखरेख करनेवाले का, सहदेव ने अरिष्टनेमी नामक गोपालक का तथा द्रौपदी ने सैरंध्री नामक केश शृंगार करने वाली दासी का रूप धारण किया। सैरंध्री की नियुक्ति राजा विराट की रानी सुदेष्णा के रनिवास में हुई। बृहन्नला (अर्जुन) नारी-वेश में (अपना परिचय नपुंसक के रूप में देकर) राजकुमारियों के नृत्य तथा संगीत का शिक्षक बन गया। वल्लभ (भीम) राजा विराट् का रसोइया तथा मल्ल, ग्रंथिक (नकुल) राजा के घोड़ों का शिक्षक, तथा अरिष्टनेमी (सहदेव) राजा का गोपालक बन गया। उन सभीने अपना परिचय इसी रूप में पांडवों से संबद्ध होने का दिया था। वे छहों अपनी सेवा से राजा तथा रानी इत्यादि को प्रसन्न कर जो कुछ पुरस्कार के रूप में प्राप्त करते, उसे वैसे ही या बेचकर प्राप्त धन गुप्त रूप से आपस में बांट लेते थे।

म० भा०, विराटपर्व, १ से १२ तक।-
१३, १ से ११ तक।

विराध (तुंबरु) एक बार वन में विचरण करते हुए सीता, राम तथा लक्ष्मण को विराध नामक एक भयानक राक्षस मिला। उसने रुधिर और मांस से सना बाघ का चमड़ा पहना हुआ था तथा एक लोहे के बर्छे में सिंह, बाघ, भेड़िये, हाथी आदि के सिर पिरोकर घूम रहा था। उसने चीत्कार करते हुए अचानक सीता को अपनी गोद में उठा लिया और राम तथा लक्ष्मण से पूछा—"तुम तपस्वी-वेश में एक नारी को साथ लेकर क्यों चल रहे हो? यह जंगल मेरा दुर्ग है। मैं जव राक्षस का पुत्र विराध हूं। यह सुंदरी मेरी पत्नी होगी। तुम दोनों भला चाहते हो तो भाग जाओ। मुझे ऐसा वरदान प्राप्त है कि कोई शस्त्र से मुझे मार नहीं सकता।" राम-लक्ष्मण के बाण तथा तलवार से घायल होने पर भी वह मरा नहीं। उसने सीता को छोड़ उन दोनों को अपने कंधों पर उठा लिया। राम तथा लक्ष्मण ने उसका दाहिना और बायां हाथ काट डाला। कष्ट के कारण वह पृथ्वी पर गिर पड़ा तो राम ने अपने पैर से उसका गला दबाकर लक्ष्मण को गड्ढा खोदने का आदेश दिया। राक्षस विराध ने

राम को पहचान लिया और कहा—"हे राम ! मैं पहले 'तुंबरु' नामक गंधर्व था। रंभा अप्सरा पर आसक्त होने के कारण मुझे कुबेर ने शाप दिया था कि मैं राक्षस बन जाऊं। मेरे बहुत अनुनय-विनय करने के बाद उन्होंने यह भी कहा कि राम के हाथों मरने पर मैं फिर से स्वाभाविक स्थिति में पहुंच जाऊंगा।"

राम और लक्ष्मण ने उसके मृत शरीर को गड्ढे में धकेलकर प्रस्थान किया।

बा० रा०, अरण्य कांड, सर्ग २, ३, ४,

विविंश क्षुप और प्रमथा के पौत्र का नाम विविंश था। वह भी धर्मबुद्धि से राज्य करता हुआ युद्ध में मारा गया, अतः उसने मृत्यूपरांत इंद्रलोक प्राप्त किया। उसके पुत्र का नाम खनिनेत्र था।

मा०पु०, ११६।१३-१६।-

विशाखा धनंजय श्रेष्ठी की अग्रमहिषी सुमना की कन्या का नाम विशाखा था। जब वह सात वर्ष की थी, तब उसने चारिका करते हुए बुद्ध के दर्शन किये थे। बड़े होने पर उसका विवाह मृगारश्रेष्ठी के पुत्र पूर्णवर्द्धन से हुआ किंतु उसका मन बौद्ध धर्म में ही लगा रहा। उसने भगवान बुद्ध से आठ वर प्राप्त किये थे। एक बार वह अपनी दासी के साथ धर्मश्रवण के लिए भगवान के विहार में गयी। आते हुए उसने सुप्रिय (दासी) को अपने जेवर संभलवा दिये कि लौटने पर पहनेगी। धर्मोपदेश श्रवण के उपरांत वे दोनों विहार से बाहर आ गयीं, तब दासी को याद आया कि वह आभूषण भीतर ही भूल गयी है। आनंद ने वे उठाकर द्वार के निकट सीढ़ियों पर रख दिये थे। विशाखा ने आनंद का स्पर्श पाये आभूषण नहीं पहने तथा उन्हें बेचकर उसने भिक्षुओं के लिए दो तल्ले के 'विहार' का निर्माण करवाया।

बु० च०, २११
४।१-२।-

विश्वनाथ प्रलयोपरांत शिव निर्गुण निराकार रह गये। दाहिने भाग से उन्होंने विष्णु का निर्माण किया तथा उनसे तपस्या करने को कहा। विष्णु तपस्या करते-करते थक गये। उनका पसीना पानी की तरह ऐसा बहा कि वाराणसी उसमें डूब गयी। वे थककर उसी पानी में सो गये। उनकी नाभि से कमल उपजा जिसपर शिव ने ब्रह्मा का निर्माण किया। ब्रह्मा अपना उत्सस्थल खोजने का प्रयास करते रहे, अंत में शिव की शरण में गये। शिव ने ब्रह्मा को सृष्टि उपजाने के लिए और विष्णु को पालन करने के लिए कहा। शिव ने ज्ञान को भी उपजाया तथा ज्ञान के प्रसारणार्थ, अपने त्रिशूल में अटकाये हुए, काशी को पृथ्वी पर छोड़ दिया। यह भी सोच लिया कि प्रलय का श्रीगणेश करते समय वे अपने त्रिशूल पर काशी को उठा लेंगे।

शि० पु०, ८।३२-३४

विश्वभूति (पूर्वभव, दे० नंदन) मगध के राजा विश्वभूति की पत्नी का नाम जयनी था। उनका विश्वनंदी नामक पुत्र हुआ। द्वारपाल की वृद्धावस्था को देख राजा विरक्त हो गया। उसने अपने भाई विशाखभूति को राज्य तथा विश्वनंदी को युवराज-पद सौंप दिया। विशाखभूति की पत्नी का नाम लक्षणा तथा पुत्र का नाम विशाखनंदी था। बड़े होने पर विशाखनंदी ने विश्वनंदी का सुंदर उद्यान देखा तो उसे प्राप्त करने के लिए लालायित हो उठा। उसने माता से मंत्रणा करके पिता को उद्यान लेने के लिए मना लिया। विशाखभूति ने विश्वनंदी को किसी कार्यवश शहर से बाहर भेजकर उसके उद्यान पर अधिकार कर लिया। विश्वनंदी को ज्ञात हुआ तो लौटकर उसने अपना उद्यान पुनः छीन लिया। अपनी भूल को जानकर विशाखभूति ने तथा विरक्त होने के कारण विश्वनंदी ने दीक्षा धारण करके राज्य का परित्याग कर दिया। विशाखनंदी राज्य को संभालने में असमर्थ रहा। एक बार वह मथुरा में किसी वेश्या के कोठे पर बैठा देख रहा था। संन्यासी विश्वनंदन किसी गाय से टक्कर खाकर गिर गये। विशाखनंदी उनकी हंसी उड़ाता रहा और वे 'संन्यास मरण' कर महेंद्रकल्प में देव हुए।

व० च०, सर्ग ४।-

विश्वरूप (त्रिशिरा) त्वष्टा का पुत्र विश्वरूप था। उसके तीन सिर, छह आंख तथा तीन मुख थे, वह एक मुख से सोमपान, दूसरे से सुरापान तथा तीसरा मुख अन्न खाने के लिए प्रयोग में लाता था। देव पुरोहित होते हुए भी उसका असुरों से अधिक प्रेम था। इंद्र ने उसे मार डाला। सोमपानवाला मुख गिरकर कपिंजल, सुरापानवाला कलंविका चिड़िया तथा अन्न ग्रहण करनेवाला मुख तित्तिर बन गया। त्वष्टा को ज्ञात हुआ तो वह अभिचारण के लिए सोम लाया जिसमें इंद्र का भाग नहीं था। इंद्र ने बलात् उस सोम का पान कर लिया और समस्त दिशाओं में घूमने लगा। इंद्र का वीर्य चू पड़ा।

उसकी आंखों से तेज बहकर बकरा बन गया। इसी प्रकार पलकों से बहा तेज गेहूं, आंसुओं से कुबल (फल विशेष), नथुनों से भेड़, नाक के मल से बेर, मुख के वीर्य से गौ, फेन से जौ, थूक से कर्कंधु, कान के पस से घोड़ा, खच्चर तथा गधा, स्तनों से दूध, छाती के साहस से बाज पक्षी, नाभि से सीसा, मूत्र से ओज तथा भेड़िया, अंतड़ियों से व्याघ्र, खून से सिंह, लोम से बाजरा, त्वचा से अश्वत्थ, मांस से उदुंबर, हड्डियों से न्यग्रोध, मष्ठाओं से सोम का शर्बत, ब्रीहि चावल इत्यादि विश्व की विभिन्न वस्तुओं का निर्माण हुआ।

(दे० त्रिशिरा)

श० प० ब्रा०, १२।७।१, ५।५।४।२-४
तै० ब्रा०, ३।६।१३।१

विश्वामित्र विश्वामित्र राजा गाधि के पुत्र थे। उन्होंने कई हजार वर्ष राज्य किया और फिर पृथ्वी की परिक्रमा के लिए निकले। मार्ग में वशिष्ठ का आश्रम था। वसिष्ठ का आतिथ्य ग्रहण कर वे लोग चकित रह गये। वसिष्ठ के पास शबला नामक कामधेनु थी, जिसकी सहायता से उन्होंने अनेक प्रकार के व्यंजनों की व्यवस्था कर समस्त अक्षौहिणी सेना का अद्भुत सत्कार किया था। विश्वामित्र ने अनेक प्रलोभन देकर वसिष्ठ से शबला को मांगा, किंतु वसिष्ठ देने को तैयार न हुए। तब विश्वामित्र ने बलपूर्वक उस शबला को ले जाने का प्रयास किया। कामधेनु ने यह जानकर कि वसिष्ठ की इच्छा के बिना विश्वामित्र उन्हें अपने सैन्यबल के भय से ले जा रहे हैं, वसिष्ठ की आज्ञा से शक, यवन और कांबोज जाति के अनेक सैनिकों का बार-बार उत्पादन किया। विश्वामित्र के समस्त सैनिक मारे गये और वे स्वयं ही युद्ध करने के लिए उतरे। गौ की हुंकार के साथ उसके शरीर के विभिन्न अंग-प्रत्यंगों से अनेक प्रकार के सैनिक उत्पन्न हुए। विश्वामित्र के सौ पुत्र भी वसिष्ठ से युद्ध करने के लिए बढ़े पर वसिष्ठ ने उन्हें भस्म कर डाला। अत्यंत लज्जित होकर विश्वामित्र ने अपने एक पुत्र को राज्यभार सौंपा और स्वयं शिवजी की तपस्या में लीन हो गये। शिव के वरदान से उन्होंने वेद, उपनिषद् आदि समस्त विद्या तथा शस्त्र-ज्ञान प्राप्त किया। उन्होंने वसिष्ठ का आश्रम उजाड़ डाला। उनके शस्त्र-प्रयोग से रुष्ट हो वसिष्ठ ने अपना दंड उठाकर विश्वामित्र को चुनौती दी। उनके दंड के सम्मुख विश्वामित्र का क्षात्र बल परास्त हो गया और वे लज्जित होकर ब्राह्मणत्व की उपलब्धि के लिए तपस्या करने चले गये। उन्होंने अपनी पत्नी के साथ एक हजार वर्ष तक तपस्या की तथा ब्रह्मा ने प्रकट होकर कहा—"हे राजर्षि, तुमने अपने तप से सब लोक जीत लिये हैं।" ब्रह्मा के मुंह से 'राजर्षि' शब्द सुनकर उन्हें बहुत बुरा लगा और विश्वामित्र ने सोचा कि उनकी तपस्या में अभी भी कुछ कमी है।

बा० रा०, बाल कांड,
सर्ग ५२ १-२३, सर्ग ५३, १-२५, सर्ग ५४,
१-२३, सर्ग ५५, १-२८, सर्ग ५६, १-२४, सर्ग ५७ श्लोक १-६,

भरतवंश की परंपरा राजा अजमीढ़, जह्नु, सिंधुद्वीप, बलाश्व, बल्लभ, कुशिक से होती हुई गाधि तक पहुंची। गाधि दीर्घकाल तक पुत्रहीन रहे तथा अनेक पुण्यकर्म करने के उपरांत उन्हें सत्यवती नामक कन्या की प्राप्ति हुई। च्यवन के पुत्र भृगुवंशी ऋचीक ने सत्यवती की याचना की तो गाधि ने उसे दरिद्र समझकर शुल्क रूप में उससे एक सहस्र श्वेत वर्ण तथा एक ओर से काले कानों वाले एक सहस्र घोड़े मांगे। ऋचीक ने वरुणदेव की कृपा से शुल्क देकर सत्यवती से विवाह कर लिया। कालांतर में पत्नी से प्रसन्न होकर ऋचीक ने वर मांगने को कहा। सत्यवती ने अपनी मां की सलाह से मां के तथा अपने लिए एक-एक पुत्र की कामना की। ऋचीक ने सत्यवती को दोनों के खाने के लिए एक-एक मंत्रपूत चरु दिया तथा ऋतुस्नान के उपरांत मां को पीपल के वृक्ष का आलिंगन तथा सत्यवती को गूलर का आलिंगन करने को कहा। मां ने यह सोचकर कि अपने लिए निश्चय ही ऋचीक ने अधिक अच्छे बालक की योजना की होगी, बेटी पर अधिकार जमाकर चारु बदल लिए तथा स्वयं गूलर का और सत्यवती को पीपल का आलिंगन करवाया। गर्भवती सत्यवती को देखकर ऋचीक पर यह भेद खुल गया। उसने कहा—"सत्यवती, मैंने तुम्हारे लिए ब्राह्मण पुत्र तथा मां के लिए क्षत्रिय-पुत्र की योजना की थी।" सत्यवती यह जानकर बहुत दुखी हुई। उसने ऋचीक से प्रार्थना की कि उसका पौत्र भले ही क्षत्रिय हो जाय, पर पुत्र ब्राह्मण हो। अतः उसको जमदग्नि तथा गाधि नामक विख्यात राजा को विश्वामित्र नामक पुत्र की प्राप्ति हुई। गाधि ने अपने पुत्र का राज्याभिषेक कर अपने शरीर का त्याग कर दिया। प्रजा के मन में पहले से ही संशय था कि विश्वामित्र प्रजा की

रक्षा कर पायेंगे कि नहीं। कालांतर में स्पष्ट हो गया कि वे गाधि जितने समर्थ राजा नहीं हैं। प्रजा राक्षसों से भयभीत थी, अतः विश्वामित्र अपनी सेना लेकर निकले। वे वसिष्ठ के आश्रम के निकट पहुंचे। वसिष्ठ उनके सैनिकों को अन्याय आदि करते देख उनसे रुष्ट हो गये तथा अपनी गौ नंदिनी से उन्होंने भयानक पुरुषों की सृष्टि करने के लिए कहा। उन भयानक पुरुषों ने राज-सैनिकों को मार भगाया। अपनी पराजय देखकर विश्वामित्र ने तप को अधिक प्रबल मानकर तपस्या में अपना मन लगाया। वे ब्रह्माजी के सरोवर से उत्पन्न हुई सरस्वती नदी के तट पर चले गये। वहां उन्होंने अर्ष्टिषेण तीर्थ का सेवन कर ब्रह्मा से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया। कालांतर में तपस्या करते हुए उनको वसिष्ठ से स्पृहा तदनंतर वैर हो गया। सरस्वती के पूर्वी तट पर वसिष्ठ तथा पश्चिमी तट पर विश्वामित्र तपस्या में लगे थे। एक दिन उन्होंने सरस्वती को बुलाकर कहा कि वह वसिष्ठ को बहाकर उनके पास ले आये ताकि वे वसिष्ठ का वध कर पायें। सरस्वती दोनों में से किसी का भी अहित करने से शाप की संभावना का अनुभव कर रही थी, अतः उसने वसिष्ठ से जाकर सब कह सुनाया। उन्होंने उसे विश्वामित्र की आज्ञा का पालन करने के लिए कहा। सरस्वती ने पूर्वी तट को तोड़कर बहाया तथा उस तट को वसिष्ठ सहित विश्वामित्र के पास पहुंचा दिया। विश्वामित्र जप और होम कर रहे थे। वे वसिष्ठ को मारने के लिए कोई अस्त्र ढूंढ़ ही रहे थे कि सरस्वती ने पुनः बहाकर उन्हें दूसरे तट पर पहुंचा दिया। वसिष्ठ को फिर से पूर्वी तट पर देख विश्वामित्र सरस्वती से रुष्ट हो गये। उन्होंने शाप दिया कि वहां उसका जल रक्तमिश्रित हो जाये। उस स्थल पर सरस्वती का जल रक्त की धारा बन गया तथा उसका पान विभिन्न राक्षस इत्यादि करने लगे। कालांतर में कुछ मुनि तीर्थाटन करते हुए वहां पहुंचे। वहां रक्त देख तथा सरस्वती से समस्त घटना के विषय में जानकर उन लोगों ने शिव की उपासना की। उनकी कृपा से शापमुक्त होकर सरस्वती पुनः स्वच्छ जल-युक्त हो गयी। जो राक्षस निरंतर प्रवाहित रक्त का पान कर रहे थे, वे अतृप्त और भूखे होने के कारण मुनियों की शरण में गये। उन्होंने अपने पापों को मुक्त कंठ से स्वीकार किया तथा उनसे छुटकारा प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। उन्हें पापमुक्त करने की मुनियों की इच्छा जानकर सरस्वती अपनी ही स्वरूपभूता 'अरुणा' को ले आयी। उसके जल में स्नान करके राक्षस अपने शरीर का त्याग कर स्वर्ग चले गये। अरुणा ब्रह्महत्या का निवारण करनेवाली नदी है।

त्रेता और द्वापरयुग की संधि के समय बारह वर्ष तक अनावृष्टि रही। विश्वामित्र भूख से पीड़ित हो अपने परिवार को जनसमुदाय में छोड़कर भक्ष्य-अभक्ष्य ढूंढ़ने निकल पड़े। उन्हें एक चांडाल के घर में कुत्ते की जांघ का मांस दिखायी दिया। वे उसे चुराने की इच्छा से वहीं रह गये। रात्रि के समय यह सोचकर कि सब सो रहे हैं, वे घर में घुसे। चांडाल जगा हुआ था। अतः उसने पूछा, कौन है। परिचय पाकर तथा प्रयोजन जानकर उसने उन्हें इस कुकर्म से विरक्त होने के लिए कहा। यह भी कहा कि मुनि के लिए कुत्ते की जांघ का मांस अभक्ष्य है। विश्वामित्र ने आपत्धर्म मानकर वह मांस वहां से ले लिया तथा अपने परिवार के साथ भक्षण करने का विचार किया। मार्ग में उन्हें ध्यान आया कि इसमें से यज्ञादि के द्वारा देवताओं का भाग भी निकाल देना चाहिए। उनके यज्ञ करते-करते ही वर्षा प्रारंभ हो गयी तथा दुर्भिक्ष दूर हो गया।

म० भा०, शल्यपर्व, ४०।१३-३२।-
४२, ४३।१-३१
शांतिपर्व, १४१।-
दानधर्मपर्व, ४।-

विश्वामित्र ने अपने सातों लड़कों से रुष्ट होकर उन्हें अपने आश्रम से निकाल दिया तथा शाप दिया। वे गर्ग मुनि को गुरु बनाकर रहने लगे। मुनि के पास एक गाय थी। वह हर साल एक बच्चा देती थी। एक दिन उसे जंगल से लाने गये तो सातों ने सबसे छोटे की सलाह से पितरों का आवाहन करके श्राद्ध निमित्त उस गाय को मारकर खा लिया तथा मुनि से यह कह दिया कि सिंह उसे खा गया है। मुनि ने मान लिया। गाय मारते हुए पितरों का आवाहन करने के कारण वे ज्ञान से च्युत नहीं हुए। पाप कर्म के कारण वे मरकर व्याध के घर में पैदा हुए। इसी प्रकार वे क्रमशः हरिण, चकवा-चकवी, हंस हुए; तदनंतर उनमें से चार ब्राह्मण घर में उत्पन्न हुए और जो राजा बनने के लोभी थे, वे राजा ब्रह्मदत्त और उसके दो मंत्रियों के रूप में जन्मे। गोवध करते हुए भी

पितरों का आवाहन करने के कारण वे अपने पूर्वज्ञान को भूले नहीं। राजा ब्रह्मदत्त की पत्नी राजा से काम-संबंध स्थापित नहीं करती थी। उसे सब ज्ञात था और वह राजा को धर्म के मार्ग की ओर अग्रसर करना चाहती थी। संयोग से चार ब्राह्मण भाई तीर्थाटन के लिए उद्यत हुए तो उन्होंने अपने बूढ़े पिता के हाथ राजा और मंत्रियों को पूर्वजन्म का आख्यान लिख भेजा। राजा ने ब्राह्मण को धन देकर विदा किया तथा अपने पुत्रों को राज्य सौंपकर वह योग की ओर प्रवृत्त हुआ। मंत्रियों ने भी वही मार्ग अपनाकर मुक्ति प्राप्त की। इस प्रकार विश्वामित्र के सातों पुत्रों की इहलोक से मुक्ति हुई। इसका श्रेय पितरों की भक्ति को दिया गया है।

शि० पु०, ११।२५-२६

विश्वावसु राम और लक्ष्मण जब सीता को खोजने के लिए निकले तो मार्ग में एक राक्षस ने लक्ष्मण का हाथ पकड़ लिया। लक्ष्मण के लिए उससे मुक्त होना कठिन हो गया। राम ने उसकी बायीं बांह और लक्ष्मण ने दायीं बांह काट डाली तथा उसे मार डाला। उसकी देह से एक दिव्य पुरुष प्रकट हुआ। उसने बताया कि वह विश्वावसु नामक गंधर्व ब्राह्मण के शाप से राक्षस-योनि में आ गया था। उसने राम से कहा कि रावण ने सीता का हरण किया है। उसकी प्रेरणा से ही राम सुग्रीव के पास गये।

म० भा०, वनपर्व, २७६।३० से ४८ तक

विष्णु विष्णु ने यह संसार तीन पगों में जीत लिया था। विष्णु के पांव ज्ञानी जनों के हृदय में सदैव उपस्थित रहते हैं (ऋ०।१।२२।१६-२०)। विष्णु सृष्टि के पालक हैं। वह इंद्र, मित्र, अर्यमा, बृहस्पति के मित्र हैं। उन्हीं के सहारे पृथ्वी स्थिर है। जब असुरों ने जगत् को त्रस्त किया तब विष्णु ने प्रजापति मनु के निमित्त समस्त भूमंडल को अपनी कांति से आपूरित कर दिया।

ऋ० १।१५४, १।६०।५।, ६।४६ ६।६६, ७।६६, १००

प्रजापति की संतान देवासुर में परस्पर प्रतिस्पर्द्धा हुई। देवता पराजित हुए। असुरों ने समस्त भुवन को अपना मानकर परस्पर बांटना आरंभ किया। तभी विष्णु के नेतृत्व में देवताओं ने भी अपना भाग मांगना आरंभ किया। असुरों ने उन्हें यज्ञ के निमित्त विष्णु के तीन पग मात्र भूमि देनी स्वीकार की। विष्णु वामन-रूप में थे। उन्होंने तीन पगों में समस्त पृथ्वी हस्तगत कर ली, शत्रुओं को बाहर निकालकर गायत्री से पृथ्वी को स्वच्छ किया।

यजु वे०, १२।५
ऐ० ब्रा०, ६।१५, १।१-३०
श० ब्रा०, १।६।३६, ६।७।४।१-२, १२।१।३।४
गो० ब्रा०, १।४।८

आदिति के पुत्रों (देवताओं) ने दैत्यगणों को युद्ध में अनेक बार परास्त किया, अतः स्वर्ग के ऐश्वर्य से भ्रष्ट होकर वे पृथ्वी पर जन्म लेने लगे। पृथ्वी के लिए उनको वहन करना कठिन हो गया तो वह ब्रह्मा के पास गयी। उसने ब्रह्मा से दुर्वह भार से मुक्ति प्रदान करने की प्रार्थना की। ब्रह्मा ने समस्त देवताओं, गंधर्वों तथा अप्सराओं से कहा कि वे पृथ्वी पर अपने-अपने अंश से जन्म लें। इसी कारण से इंद्र की प्रार्थना पर विष्णु ने भी अंशावतरण के लिए स्वीकृति दे दी।

म० भा०, आदिपर्व, ६४।२८-५४ तक

विष्वकसेन विष्वकसेन नामक देवता से विरोचन का युद्ध हुआ, जिसमें विष्वकसेन पराजित हुआ।

हरि० वं० पु०, भविष्यपर्व, ५६।१-४१।-

वीरभद्र दक्ष प्रजापति ने कनखल नामक स्थान पर यज्ञ आरंभ किया। सती-शिव के अतिरिक्त शेष सभी देवताओं को आमंत्रित किया गया। सती अनामंत्रित भी वहां पहुंची। उसको शिव की अवमानना देखकर इतना दुःख हुआ कि उसने आत्मदाह कर लिया। दधीचि मुनि पहले ही कह गये थे कि यज्ञ पूरा नहीं होगा। शिव ने सती के दाह का समाचार सुना तो क्रोधावेश में उन्होंने अपनी जटा का बाल तोड़कर भूमि पर फेंका। उसके एक सिरे से शिव का अवतार 'वीरभद्र' अनेक गणों सहित प्रकट हुआ और दूसरे सिरे से काली का उद्भव हुआ। उन सबने कनखल पहुंचकर दक्ष प्रजापति का यज्ञ नष्ट-भ्रष्ट कर डाला। दक्ष का सिर काटकर अग्नि में डाल दिया। देवताओं से भी युद्ध किया। ब्रह्मा और विष्णु ने शिव की शरण ली। उन्होंने स्वीकार किया कि शिव की अवमानना करके दक्ष ने बहुत बड़ा अपराध किया है। उन्होंने भावी यज्ञों में शिव का भाग निश्चित कर दिया। शिव का क्रोध शांत हो गया। शिव ने अपने गणों को तथा वीरभद्र को शांत करके चले जाने का आदेश दिया। शिव की प्रसन्न दृष्टि पड़ने से परास्त एवं मृत व्यक्ति सजीव हो उठे। दक्ष का सिर भस्म हो चुका था, अतः

शिव की कृपा से भृगु के बकरे के मुंह पर दाढ़ी जम गयी तथा उसका सिर दक्ष प्रजापति के धड़ के साथ जुड़ गया। दक्ष ने विचित्र स्वर में शिव-स्तुति की।

शि० पु०, ७।१८-२०।-

दक्ष के यज्ञ में शिवेतर सभी देवता आमंत्रित थे। पार्वती ने शिव से कारण पूछा और दुःख प्रकट किया। शिव ने अपने मुंह से एक भूत उत्पन्न किया, जिसका नाम वीर-भद्र रखा गया। शिव ने उसे यज्ञ के नाश के निमित्त भेजा। पार्वती के क्रोध से उत्पन्न भद्रकाली भी यज्ञ का नाश करने के लिए भेजी गयी। समस्त उपकरणों को क्षत-विक्षत देख यज्ञ ने मृग का रूप धारण कर भागने का प्रयास किया किंतु वीरभद्र ने तीरकमान सहित उसका पीछा किया। गण नायक के मस्तक से पसीने की एक बूंद पृथ्वी पर गिरी जिसने भयानक महाजीव को जन्म दिया। उसने प्रकट होते ही यज्ञ को तृणवत् भस्म कर डाला। वह महाजीव ज्वर नाम से विख्यात हुआ। तदनंतर ब्रह्मा ने शिव की आराधना की और प्रत्येक यज्ञ में शिव का भाग रखने का निश्चय किया। ब्रह्मा की प्रार्थना पर शिव ने ज्वर को अनेक भागों में विभक्त करके पृथ्वी पर छोड़ा क्योंकि उसका विराट् रूप सह्य नहीं था, साथ ही दक्ष की क्षमा-याचना पर शिव ने उसकी नष्ट हुई सामग्री उनको पुनः प्रदान की। दक्ष की प्रार्थना से संतुष्ट होकर शिव ने पाशुपत व्रत का फल दक्ष को प्रदान किया।

ब्र० पु०, ३६।४०

वृंदा वृंदा जलंधर की पत्नी थी। उसके पातिव्रत धर्म के कारण जलंधर को देवता नहीं मार पाते थे। जलंधर को मारने के लिए उसकी पत्नी का पातिव्रत धर्म विष्णु ने नष्ट किया। विष्णु जलंधर का रूप धारण करके उसके पास गये थे। वृंदा ने जब जाना तो विष्णु को अपनी पत्नी के लिए भटकने का शाप दिया। इस कृत्य में दो बंदरों ने विष्णु की सहायता की थी, अतः वृंदा ने शाप दिया कि पत्नी के लिए भटकने पर बंदर ही उसकी सहायता करेंगे। वृंदा शिव का नाम लेकर सती हो गयी। विष्णु ने बहुत ग्लानि का अनुभव किया। उसकी भस्म अपने शरीर पर लगा ली। समस्त देवताओं ने विष्णु को उसके कृत्य के लिए धिक्कारा। जलंधर को ज्ञात हुआ तो उसने मायावी गिरिजा का निर्माण किया। शुंभ, निशुंभ उसकी ताड़ना करने लगे तथा जलंधर शिव को संबोधित करके उसकी पत्नी की दुर्दशा दिखाने का प्रयास करने लगा। शिव ने भयानक युद्ध किया। जलंधर की माया नष्ट हो गयी। शुंभ-निशुंभ युद्ध-क्षेत्र से भाग गये तथा शिव ने सुदर्शन चक्र से उसे मार डाला। जलंधर का तेज शिव के शरीर में समा गया।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध, ५।२१-२३।-

वृकासुर वृकासुर शकुनि का दुर्बुद्धि पुत्र था। एक बार उसने नारद से पूछा कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश में से कौन शीघ्र ही प्रसन्न होकर वर दे सकता है। नारद ने शिव का नाम बताया। वृकासुर ने तपस्या से शिव को प्रसन्न करने का प्रयत्न किया, असफल होने पर उसने नारद का उपदेश ग्रहण किया और अग्नि को शिव का मुंह मानकर अपना एक-एक अंग काटकर हवन करने लगा। जब उसने अपना सिर काटने के लिए हाथ उठाया तो शिव ने अग्नि से प्रकट होकर उसका हाथ थाम लिया तथा उसे वर मांगने को कहा। उसने वर मांगा कि वह जिसके भी सिर पर हाथ रखे, वही मर जाये, वह वर प्राप्त कर उसकी इच्छा पार्वती को हर लेने की हुई तथा उसने शिव के सिर पर हाथ रख वर की परीक्षा करनी चाही। शिव भयभीत होकर भागे। उनके पीछे-पीछे वृकासुर भी भागा। शिव ने बैकुंठधाम में शरण ली। विष्णु ने ब्रह्मचारी वेश धारण करके वृकासुर से उसके इस प्रकार दौड़ने का प्रयोजन पूछा। वृकासुर के बताने पर ब्रह्मचारी(विष्णु)ने कहा—"तुम उस शिव के वचन को सत्य मानते हो? वह तो दक्ष प्रजापति के शाप से पिशाचभाव को प्राप्त हो चुका है। तूने भला उसकी बात पर विश्वास ही कैसे किया? तुम अपने सिर पर हाथ रखकर ही देखो, कितनी गलत बात है!" उसने तुरंत अपने सिर पर हाथ रखा और वहीं ढेर हो गया।

श्रीमद् भा०, १०।८८।-

वृत्रासुर पूर्वकाल में त्वष्टा ने (विश्वकर्मा ने) एक शब्द-कारी वज्र का निर्माण किया तथा वह इंद्र को समर्पित किया। इंद्र ने उसकी सहायता से मेघों को नष्ट किया। सर्वप्रथम मेघ का नाम वृत्र था। वृत्रासुर घनघोर अंध-कार उत्पन्न करनेवाला मेघ था। इंद्र ने वृत्र को काटकर धराशायी कर दिया। वृत्र की माता उसकी रक्षा के लिए तिरछी होकर उसकी देह पर छा गयी, किंतु वह भी इंद्र के प्रहार से नहीं बच पायी। वृत्रासुर ने जल को रोका हुआ था। इंद्र ने उसका नाश कर जल के लिए मार्ग निर्विघ्न

कर दिया। रंभाती हुई गायों के सदृश शब्द करता हुआ जल समुद्र की ओर बढ़ चला (१।३२)। इंद्र ने जिस वज्र से वृत्रासुर को मारा था, वह दधीचि की अस्थियों से निर्मित हुआ था। इस युद्ध में मरुतों ने इंद्र की सहायता की थी।

ऋ०, १।८४।१३
यजु०, ३३।२६

वरुण ने अनेक युद्धों में इंद्र की सहायता की थी। वृत्र-हनन में भी उसने पूरा सहयोग दिया। सर्वप्रथम वरुण ने प्रजाओं को वरुणप्रकाश की आहुतियों द्वारा वरुण-पाश से छुड़ाया। देवों ने साकमेध (साथ-साथ मिलकर बढ़ना या संगति करना) आहुतियों से वृत्र का वध किया। वृत्र के वध की प्रक्रिया में अग्नि को तीक्ष्ण बाण बनाया। सोम की सहायता ली, सविता ने मारने के लिए तीक्ष्ण प्रेरणा दी, सरस्वती ने कहा—मारो, मारो। इस प्रकार हौसला बुलंद किया। पुष्टि के देवता पूषा ने वृत्र को कसकर पकड़ लिया। अग्नि की ब्रह्मशक्ति तथा इंद्र की क्षमशक्ति, दोनों ने मिलकर वृत्र पर प्रहार किया। इंद्र ने समझा कि वृत्र मरा नहीं है, अतः वह डर के मारे दूर भाग गया तथा अनुष्टुप में जा छुपा। देवताओं ने उसे खोजने का असफल प्रयास किया। यज्ञदिवस से पूर्व पितरों को पता चल गया कि इंद्र कहां है। देवताओं ने युक्ति निकाली। उन्होंने सोमाभिष किया। इंद्र सोमपान के लिए तुरंत जा पहुंचा। अग्नि और सोम ने इंद्र से कहा—"तुमने हमें निमित्त बनाकर वृत्र का हनन किया। अतः वृत्र-वध के निमित्त हम वर मांगते हैं कि 'श्वसुत्या' अर्थात् सोमभिषव में अग्नि षोत्रीय पशु हो।"

यजु० वे०, ३३।३६
ऐ० ब्रा०, १।२६, ३।१५
श० प० ब्रा०, २।५।३।१-३, २०, २।५।४

देवासुर संग्राम के समय वृत्र नामक एक दैत्य था। वह तीन सौ योजन लंबा और सौ योजन चौड़ा था। वह अत्यंत धार्मिक प्रवृत्ति का था। प्रजा उससे संतुष्ट थी। वह अपने पुत्र मधुरेश्वर को राज्य सौंपकर तपस्या करने लगा। इंद्र को भय हुआ कि वह सभी लोकों पर अधिकार प्राप्त कर लेगा। सब देवताओं ने मिलकर विष्णु से उसके वध की प्रार्थना की। विष्णु ने कहा कि वह उनकी आराधना कर रहा है, अतः उसका वध करना उचित नहीं है। फिर भी एक मार्ग सोच निकाला। विष्णु ने अपने को तीन भागों में विभक्त कर, एक अंश इंद्र के वज्र में, दूसरा वृत्रासुर और तीसरा पृथ्वी में स्थापित कर दिया। इंद्र ने तपोमग्न वृत्र का सिर अपने वज्र से काट डाला। तदनंतर अनुचित वध करने के कारण उन्हें ब्रह्महत्या का दोष लगा। वे लोकाचल (पर्वत) में छुप-कर रहने लगे। विष्णु की प्रेरणा से इंद्र और देवताओं ने अश्वमेध यज्ञ किया। फलस्वरूप ब्रह्महत्या नारी के रूप में इंद्र से अलग जा खड़ी हुई और बोली—"अब मैं अपने चार हिस्से करके संसार में व्याप्त हो जाऊंगी। पहला भाग वर्षा ऋतु में नदियों में रहेगा। नदियां स्वेच्छा से बहेंगी और उनका फेन ब्रह्महत्या का अंश होगा। दूसरा भाग पृथ्वी में रहेगा, पृथ्वी का ऊसर भाग ब्रह्म-हत्या का अंश होगा। तीसरा भाग नारी की योनि में प्रतिमास तीन दिन रहेगा, रक्तस्राव ब्रह्महत्या का तीसरा अंश होगा और चौथा भाग उन दुष्टों में निवास करेगा जो अकारण ब्राह्मणों की हत्या करते हैं।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग ८४-८६

सत्ययुग में दैत्यों ने एक दल का निर्माण किया, जिसका नेतृत्व वृत्र नामक असुर कर रहा था। उनसे त्रस्त होकर देवतागण ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने उनसे कहा—"तपस्वी दधीचि से जाकर एक वर मांगो। वरदान की प्रतिज्ञा करने पर उनसे उनके शरीर की समस्त हड्डियां मांग लो। उनसे एक षट्कोण वज्र का निर्माण करो।" देवताओं ने दधीचि से हड्डियां प्राप्त कीं तथा त्वष्टा प्रजापति से वज्र बनाने की प्रार्थना की। त्वष्टा प्रजापति ने वज्र निर्माण कर इंद्र को समर्पित कर दिया। शिव ने इंद्र को एक दिव्य कवच प्रदान किया था, जिसकी उत्पत्ति शिव के शरीर से ही हुई थी। कवच को धारण कर इंद्र ने देवताओं सहित वृत्रासुर पर आक्रमण कर दिया। उसकी सुरक्षा भयानक कालेय कर रहे थे। इंद्र और देवता जब विचलित हुए तो विष्णु तथा मुनियों ने उन्हें तेज प्रदान किया। विष्णु ने वज्र में प्रवेश किया तथा शिव का तेज रौद्र ज्वर रूप में वृत्र में समा गया। इंद्र ने वृत्रासुर पर वज्र छोड़ दिया। ज्वर के वशीभूत वृत्रासुर ने जंभाई ली तभी इंद्र के वज्र का प्रहार हुआ। वृत्रासुर के मर जाने पर भी इंद्र को विश्वास नहीं हो रहा था कि वह मर गया है तथा इंद्र एक तालाब में छिप जाने के लिए उद्यत थे। समाचार की पुष्टि होने पर देवताओं ने सामूहिक रूप से दैत्यों से युद्ध प्रारंभ किया। अनेक लोग मारे गये, अनेक कालेयों ने समुद्र में प्रवेश किया। वहां

उन्होंने मंत्रणा की कि पृथ्वीनिवासी जितने भी विद्वान और तपस्वी हैं, सबसे पहले उन्हें मार डालना चाहिए, फिर संसार का नाश सहज हो जायेगा। दिन-भर समुद्र में रहकर रात्रि के समय में वे अपनी योजना के अनुसार तपस्वियों तथा विद्वानों का संहार करने लगे। देवतागण विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने उन्हें प्रेरित किया कि वे अगस्त्य मुनि से समुद्र सुखाने के लिए कहें। उन्होंने अगस्त्य की शरण ग्रहण की। अगस्त्य मुनि ने सागर का समस्त जल पी लिया। सूखी स्थली पर दानव छिप नहीं सके, अत: देवताओं ने समस्त असुरों को मार डाला। तदुपरांत उन्होंने अगस्त्य मुनि का स्तवन कर उस समुद्र को पुन: जल से भरने की प्रार्थना की; परंतु अगस्त्य मुनि जल को पचा चुके थे। अत: समुद्र सूखा ही रह गया।

म० भा०, वनपर्व, १०० से १०३ तक।-
१०४।१५ से २४ तक
१०५।-

जिस वज्र से इंद्र ने वृत्रासुर को मारा था, वह वज्र उसके मस्तक से टकराकर सौ टुकड़ों में विभक्त हो गया। लोक में धन, यश आदि सब वस्तुएं वज्रस्वरूप हैं। देवतागण उसके प्रत्येक टुकड़े की उपासना करते हैं।

वृत्रासुर ने तो विष्णुधाम प्राप्त किया, क्योंकि वह विष्णु-भक्त था, किंतु उसके वध के उपरांत ब्रह्महत्या ने इंद्र को पकड़ लिया। इंद्र ब्रह्मा की शरण में गये। ब्रह्मा ने अपनी मीठी वाणी से ब्रह्महत्या को प्रसन्न कर लिया। ब्रह्महत्या ने अपने लिए निवासस्थान मांगा तो ब्रह्मा ने उसके चार भाग करके प्रथम भाग अग्नि, द्वितीय भाग पेड़, तिनके और औषधि, तीसरा भाग अप्सराओं और चौथा भाग जल को प्रदान किया। उन चारों ने ब्रह्महत्या से छूट जाने की अवधि पूछी तो ब्रह्मा ने कहा—"जो अग्नि को प्रज्वलित देखकर भी पूजन नहीं करेगा, जो अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रांति और ग्रहण के दिन पेड़, औषधि अथवा तिनकों का भेदन करेगा, जो रजस्वला नारी के साथ मैथुन करेगा अथवा जो जल में मल, मूल, खखार आदि छोड़ेगा—चारों की ब्रह्महत्या क्रमश: उनको लग जायेगी। इस प्रकार ब्रह्मा की कृपा से इंद्र ब्रह्महत्या के पाप से मुक्त हो गये। वध के फलस्वरूप खोयी हुई श्री प्राप्त करने के लिए इंद्र ने समंगा नदी में स्नान किया।

म० भा०, आदिपर्व, १६६।५०-५३
द्रोणपर्व ६४।४६-६५
वनपर्व, १३५।२
शांतिपर्व, २७६-२८२, २८३।५६-६१

त्वष्टा को जब त्रिशिरा के वध का समाचार मिला तो उसने इंद्र का वध करने के लिए अग्नि में आहुति देकर वृत्रासुर को उत्पन्न किया। उसका विशाल आकार आकाश को आक्रांत करनेवाला था। उसने इंद्र से युद्ध किया तथा उसे निगल लिया। देवताओं ने जंभाई (जृंभाशक्ति) की सृष्टि की। वृत्रासुर के जंभाई लेने पर इंद्र उसके मुंह से बाहर निकल पाया। समस्त देवता विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने उन्हें तत्काल वृत्रासुर से संधि करने का आदेश दिया तथा भविष्य में उसके वध का आश्वासन भी दिया। वृत्रासुर ने उनसे संधि करने के लिए यह शर्त रखी कि इंद्र तथा देवताओं में से कोई भी वृत्रासुर को सूखी अथवा गीली वस्तु से, पत्थर, लकड़ी अस्त्र-शस्त्र से दिन में अथवा रात को न मार सके। देवताओं ने यह मान लिया। इंद्र उसे मारने के लिए अत्यंत आकुल था। एक संध्या समुद्र के किनारे वृत्रासुर को देखकर उसने सोचा—"न दिन है, न रात है, सागर में फेन (जो न सूखी है, न गीली) का अंबार है, अभी इसे मार देना चाहिए।" अत: इंद्र ने फेन से उसपर प्रहार किया। फेन में इंद्र ने वज्रसहित प्रवेश कर वृत्रासुर को मार डाला। तदनंतर इंद्र तथा देवताओं ने विष्णु की स्तुति की। वृत्रासुर के मारे जाने पर विश्वासघात-रूपी असत्य से अभिभूत होकर तथा त्रिशिरा के वध के कारण हुई ब्रह्म-हत्या के कारण इंद्र लोकों की अंतिम सीमा पर पानी में छिपकर अचेत-सा रहने लगा।

म० भा०, उद्योगपर्व, ६।४४ से ६५
१०।-

विश्वरूप के पिता त्वष्टा ने यज्ञ के द्वारा एक भयानक तमोगुणी पुत्र को जन्म दिया। उसका नाम वृत्रासुर पड़ा। देवता श्रीहरि की शरण में गये। उन्होंने देवताओं को ऋषि दधीचि की अस्थियों से वज्र के निर्माण की सलाह दी, जिससे (नारायण कवच से रक्षित) इंद्र ने वृत्रासुर का हनन किया। वृत्रासुर की इच्छा योद्धा के रूप में मृत्यु प्राप्त करने की थी क्योंकि तभी वह भगवान को प्राप्त कर सकता था। स्वर्ग की अपेक्षा उसने भगवान को प्राप्त करना अधिक श्रेयस्कर समझा। वृत्रासुर भगवान में लीन हो गया। अश्वमेध यज्ञ करने के उपरांत इंद्र वृत्रासुर की हत्या के दोष से मुक्त हो पाया।

श्रीमद् भा०, षष्ठ स्कंध, ६।१३

वृत्रासुर विश्वकर्मा का पुत्र था (दे० त्रिशिरा, दे० भा०)। उसको अनेक प्रकार के आयुध देकर विश्वकर्मा ने इंद्र को

मारने के लिए प्रेरित किया। वह समस्त देवताओं से अवध्य हो इंद्र को मारने के लिए चल पड़ा। दूत से समाचार जानकर इंद्र तथा देवता त्रस्त हो उठे। बृहस्पति ने इंद्र से कहा कि उसने निर्दोष त्रिशिरा को मारकर ब्रह्महत्या की है। देवताओं से वृत्र का युद्ध हुआ। वह इंद्र का ऐरावत लेकर पिता के पास पहुंचा, क्योंकि इंद्र सहित सभी देवता युद्धक्षेत्र से भाग गये थे। भयभीत इंद्र को उसने नहीं मारा। विश्वकर्मा की प्रेरणा से उसने घोर तपस्या की। ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उसे वर दिया कि लोहे, काष्ठ, शस्त्र, सूखी या गीली वस्तु बांस आदि से उसे कोई नहीं मार सकेगा। पिता की प्रेरणा से उसने इंद्र को परास्त करके वस्त्र तथा कवच रहित कर अपने मुंह का ग्रास बना लिया। देवताओं ने बृहस्पति की प्रेरणा से जंभाई का आवाहन किया। वृत्रासुर के जंभाई लेने से सुरक्षित स्थिति में इंद्र वृत्र के मुंह से निकला आया। देवता शंकर की प्रेरणा से विष्णु की शरण में गये। विष्णु ने उन्हें पहले संधि करके बाद में शत्रु-हनन की सलाह दी तथा जगज्जननी की आराधना करने के लिए कहा। देवी को प्रसन्न करके देवताओं ने वृत्रासुर तथा इंद्र के मध्य मैत्री स्थापित करवायी। एक बार पिता के वचनों की अवहेलना करके वृत्र इंद्र के पास समुद्र-तट पर गया। इंद्र की प्रार्थना सुनकर देवी ने पानी के फेन में प्रवेश किया। इंद्र ने फेन में छिपाकर वज्र से वृत्रासुर को मार डाला। वृत्र को मारने के लिए देवी की माया तथा फेन में शक्ति का प्रयोग किया गया था, अतः वे भी 'वृत्रनिहंत्री' कहलायी।

दे० भा०, ६।२ से ६ तक

वृषदर्भ वृषदर्भ तथा सेदुक राजा नीतिनिपुण थे। वृषदर्भ का गुप्त व्रत था कि वह ब्राह्मण को स्वर्ण तथा रक्त के अतिरिक्त कुछ भी नहीं देगा। (इसी से जो व्यक्ति अन्यत्र किसी वस्तु की याचना करता था, उसे व्रतभंग करवाने वाला धन जानकर राजा दंडित करता था।) एक बार एक ब्राह्मण ने राजा सैदुक से एक हजार घोड़ों की याचना की। सैदुक वृषदर्भ के नियम को जानता था तथापि उसने ब्राह्मण को वृषदर्भ के पास भेज दिया। राजा ने उसकी याचना सुनकर क्रोधवश उसे कोड़ों से पिटवाया। यह जान लेने पर कि उसे सैदुक ने भेजा था, राजा ने अपनी एक दिन की (कर के द्वारा प्राप्त) आमदनी को ब्राह्मण को दे डाला जिसका मूल्य एक सहस्र घोड़ों से अधिक था।

म० भा०, वनपर्व, १९६

वृषसेन वृषसेन कर्ण का पुत्र था। युद्ध में अर्जुन ने मस्तक भंजन कर उसका वध कर दिया था।

म० भा०, कर्णपर्व, ८५।३६-३९

वृषेश्वर समुद्रमंथन से निकली अनेक वस्तुओं में से एक स्त्री-रत्न थी। उसको उसकी लड़कियों सहित पाताल में ठहराकर दैत्य देवताओं से युद्ध करने आये। देवताओं से परास्त होकर वे लोग पाताल भाग गये। विष्णु उनका पीछा करते हुए पाताल पहुंचे और स्त्रियों पर मुग्ध हो वहीं रहने लगे। उन स्त्रियों से विष्णु ने अनेक लड़कों को जन्म दिया जो कि देवताओं को बहुत तंग करते थे। शिव को पता चला तो उन्होंने वृष-रूप धारण करके उन लड़कों को मार डाला, फिर डांट-फटकारकर विष्णु को वहां से ले आये। विष्णु का चक्र भी पाताल में रह गया था, अतः शिव ने उन्हें एक और चक्र बनवाकर दिया, विष्णु ने देवताओं को अलग ले जाकर कहा कि "अमृत कणों से उत्पन्न पाताल स्थित सुंदरियां भोग के योग्य हैं। वे हर प्रकार के आनंद देनेवाली हैं।" शिव को ज्ञात हुआ तो यह शाप दिया कि पाताल में शांत मुनीश्वरों तथा मद्यप दैत्यों के अतिरिक्त जो कोई भी जायेगा, मर जायेगा।"

शि० पु०, ७।२९

बृहद्रथ बृहद्रथ, जरासंध के पिता थे। उन्होंने चैत्यक पर्वत पर ऋषभ नामक वृषभ-रूपधारी एक मांसभक्षी राक्षस को युद्ध में मारकर उसके चमड़े से मढ़कर तीन नगाड़े तैयार करवाये थे। वे नगर में रखवा दिये गये थे। वे जहां बजते थे, वहां दिव्य फूलों की वर्षा होती थी तथा एक बार उनके बजने पर एक माह तक आवाज होती रहती थी।

म० भा०, सभापर्व, २१।१६, १७

वेद आयोद धौम्य के एक शिष्य का नाम वेद था। उपाध्याय ने उसे अपने घर पर रहकर सेवा शुश्रूषा में लगे रहने की आज्ञा दी। उपाध्याय बहुत सख्त तबीयत के थे तथा वेद से बहुत काम लेते थे। किंतु वेद ने उन्हें रुष्ट होने का कोई अवसर नहीं दिया। तदनंतर गुरु की आज्ञा से समावर्तन संस्कार के बाद वेद अपने घर लौटा। उसकी सेवा से प्रसन्न होकर गुरु ने उसको श्रेय तथा सर्वज्ञता प्रदान की। घर लौटकर वेद ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया।

म० भा०, आदिपर्व, ३।७८-८१

वेदवती बृहस्पति के पुत्र कुशध्वज की कन्या का नाम वेदवती था। उसके पिता की इच्छा थी कि वह उसका विवाह विष्णु से करे, अतः कई देवताओं और गंधर्वों के मांगने पर भी उसने वेदवती का विवाह उनसे नहीं किया था। इस बात से क्रुद्ध होकर दैत्यराज शुंभ ने सोते हुए कुशध्वज को मार डाला। कुशध्वज की पत्नी अपने पति के साथ सती हो गयी। वेदवती विष्णु को पति-रूप में प्राप्त करने के लिए तपस्या करने लगी। हिमाचल के वन में घूमते हुए रावण ने तपस्विनी वेदवती को देखा तो उसकी तपस्या का कारण जानना चाहा। वेदवती के बताने के बाद उसने उसके सम्मुख विवाह का प्रस्ताव रखा और विष्णु को भला-बुरा कहा। उसके राजी न होने पर रावण ने उसके बाल पकड़कर खींचे। वेदवती ने अपने बाल काट डाले (उसके हाथ ने ही तलवार का रूप धारण कर लिया था) तथा चिता में जलकर भस्म हो गयी। चिता में प्रवेश करते हुए उसने रावण से कहा—"मैं तुझे शाप नहीं देती, क्योंकि मेरी तपस्या भंग हो जायेगी। पर यदि मैंने दान दिया है और यज्ञ किया है तो मैं अयोनिजा और पतिव्रता होकर किसी धर्मात्मा के घर जाऊंगी।" वही वेदवती सीता के रूप में अवतरित हुई और विष्णु के अवतार 'राम' से उसका विवाह हुआ।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग १७,

वेदव्यास प्रत्येक द्वापर युग में विष्णु व्यास के रूप में अवतरित होकर वेदों के विभाग प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार अट्ठाईस बार वेदों का विभाजन किया गया। पहले द्वापर में स्वयं ब्रह्मा वेदव्यास हुए, दूसरे में प्रजापति, तीसरे द्वापर में शुक्राचार्य, चौथे में बृहस्पति वेदव्यास हुए। इसी प्रकार सूर्य, मृत्यु, इंद्र, धनजंय, कृष्ण द्वैपायन अश्वत्थामा आदि अट्ठाईस वेदव्यास हुए। समय-समय पर वेदों का विभाजन किस प्रकार से हुआ, इसके लिए यह एक उदाहरण प्रस्तुत है। कृष्ण द्वैपायन वेदव्यास ने ब्रह्मा की प्रेरणा से चार शिष्यों को चार वेद पढ़ाये—(१) मुनि पैल को ऋग्वेद, (२) वैशंपायन को यजुर्वेद, (३) जैमिनि को सामवेद तथा (४) सुमंतु को अथर्ववेद पढ़ाया।

वि० पु०, ३।३

वेन ध्रुव के वंशजों में अंग का जन्म हुआ था। अंग ने अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान किया। देवताओं ने उसकी दी आहुतियां स्वीकार नहीं कीं। ऋत्विज गणों से अंग ने पूछा कि उसका ऐसा कौन-सा पाप है कि देवता उसका तिरस्कार करें? उन्होंने कहा—इस जन्म में वह भले ही धर्मात्मा है, किंतु पूर्वजन्म में संस्कारवश उसे संतान की प्राप्ति नहीं हुई। राजा ने उनकी सलाह से पुत्र-प्राप्ति की कामना से यज्ञ किया। चरु समर्पण करने पर अग्निकुंड से वस्त्राभूषण से सज्जित एक पुरुष प्रकट हुआ, जिसने खीर से भरा हुआ स्वर्णपात्र राजा को दिया। राजा-रानी ने उस खीर को खाया। कालांतर में उन्हें वेन नामक बालक की प्राप्ति हुई जो अधर्म के वंश में उत्पन्न अपने नाना का अनुगामी था। वह इतना क्रूर-कर्मी था कि प्रजा से लेकर वन्य पशु तक उसे देखकर छुप जाते थे। एक रात बहुत दुखी मन से राजा अंग ने गृह त्यागकर वन की ओर प्रस्थान किया। प्रजा को संभालने के लिए क्रूरकर्मी राजा वेन को ही शासक बनाना पड़ा। उसने राजा बनते ही भगवान की अव-हेलना करके स्वयं अपनी पूजा करवाने का प्रयास किया। मुनियों की हुंकार ने उसे जड़ कर दिया। राज्य में पुनः अराजकता फैल गयी। ऋषियों ने मृत वेन की भुजाओं का मंथन किया तो राजा पृथु का तथा जंघाओं का मंथन करके निषाद का आविर्भाव हुआ। निषाद ने समस्त पाप ओढ़ लिए। पृथु धर्मात्मा हुआ जिसने ध्रुव इत्यादि की परंपरा को बनाये रखा। निषाद देखने में बौना तथा भद्दा था। पाप-कर्मों की ओर प्रवृत्त निषाद जाति पर्वतों तथा वनों में रहने लगी।

श्रीमद् भा०, चतुर्थ स्कंध, १२-१४।-
वि० पु०, १।१३
हरि० वं० पु०, ५।१-२१।-

अत्रिवंशी अंग नामक प्रजापति ने मृत्यु की पुत्री सुनीथा से वेन को उत्पन्न किया। वह अत्यंत अमर्यादित तथा शक्तिशाली था। उसके अनुसार प्रजा का कर्तव्य उसके निमित्त हवन इत्यादि करना था। उसके अनाचार से ऋषि मुनिगण दुखी हो गये। अज्ञानी अहंकारी वेन की बायीं जंघा का मंथन कर देवताओं ने कृष्णवर्ण के छोटे-से पुरुष को जन्म दिया। वह पुरुष निषादवंश का कर्ता हुआ। इस प्रकार वेन के पाप से एक धीवर जन्मा। वेन के दाहिने हाथ का मंथन करके मुनियों ने जिस यशस्वी बालक को प्राप्त किया, वह पृथु नाम से विख्यात हुआ। पृथु जैसे यशस्वी, धर्मपरायण बालक को जन्म देने के

कारण वेन का नरक कट गया और वह स्वर्ग चला गया।

ब्र० पु०, ४।३६-५२
१४।१८-१२

वैवस्वत (मनु) विवस्वान् (सूर्य) के एक प्रतापी पुत्र हुआ, जिसका नाम मनु था। एक बार एक छोटे-से मत्स्य ने वैवस्वत् मनु से अपनी रक्षा की भीख मांगी। छोटे जलचरों को बड़े जलचर खा जाते हैं, इसी कारण वह लघु मत्स्य चिंतित था। मनु ने एक मटके में पानी भर-कर रख लिया। उत्तरोत्तर बड़े होने पर उसे तलाब, गंगा और समुद्र में ले जाकर छोड़ते रहे। मनु ने उसका पालन पुत्रवत् किया था। सागर में पहुंचते ही मत्स्य ने मनु को बताया कि जलप्रलय आनेवाली है, अतः मनु एक मजबूत नौका बनवा लें जिसपर सप्तर्षियों सहित बैठ जायें। ब्राह्मणों ने जो सब प्रकार के बीज बताए हैं, उनका भी सुरक्षित संग्रह कर लें। नौका में एक मजबूत रस्सा लगा हो। मत्स्य सिर पर सींग धारण करके वहां पहुंचेगा, तब उसके सींग में रस्सा बांध दिया जाय। जल-प्रलय से बचने का एकमात्र यही उपाय है। मनु ने वैसा ही किया। मत्स्य ने जलप्लावित पृथ्वी पर नौका खेकर हिमालय की सबसे ऊंची चोटी पर उसे पहुंचा दिया। 'नौकाबंधन' नामक शिखर पर उन सबको सुरक्षित पहुंचाकर मत्स्य ने बताया कि वह साक्षात् ब्रह्मा है। तदुपरांत सृष्टि के पुनर्निर्माण का आदेश देकर वह अंतर्धान हो गया।

म० भा०, वनपर्व,१८७।-

मनु (भानु) पांचजन्य के ४५ पुत्रों में से एक थे। वे बृहत्भानु भी कहलाते थे। मनु की तीन पत्नियां हुईं—सुप्रजा, बृहद्भासा तथा निशा। इन तीनों ने आठ पुत्रों तथा एक कन्या को जन्म दिया—बलद, क्रोध, धृतिमान, आग्रयाण, अग्रह, स्तुभ, अग्नि, सोम तथा रोहिणी (पुत्री)। इनके अतिरिक्त निशा ने पांच अन्य अग्निस्वरूप पुत्रों को भी जन्म दिया, जिनके नाम इस प्रकार हैं—वैश्वानर, विश्व-पति, सन्निहित, कपिल तथा अग्रणी।

प्राचीनकाल में राजाविहीन प्रजाओं में अनाचार तथा असंतोष फैल जाने पर प्रजा ब्रह्मा के पास पहुंची। प्रजा-जनों ने एक सुयोग्य शासक प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। ब्रह्मा ने मनु को उनका राजा होने का आदेश दिया। पहले तो मनु अधार्मिक प्रजा के शासक बनने के लिए तैयार नहीं हुए, फिर प्रजा के इस आश्वासन पर कि वे लोग मनु को पूरा सहयोग देंगे, उन्होंने शासन की बाग-डोर संभाल ली।

म० भा०,वनपर्व, १८७
म० भा०, वनपर्व, २२१। १ से १६ तक
शांतिपर्व, ६७।२१-३८

वैवस्वत मनु (७) विश्वकर्मा की पुत्री संज्ञा का विवाह विवस्वान् (सूर्य) से हुआ था। उसकी प्रथम संतान मनु थी जो वैवस्वत मनु कहलायी। सूर्य के तेज को सहन करने में कष्ट होता था, अतः सूर्य जब भी संज्ञा की ओर देखते तो वह नेत्र मूंद लेती थी। सूर्य ने रुष्ट होकर उसको शाप दिया कि उसके गर्भ से यम जन्म लेगा।। उसके नेत्र भय से चंचल हो उठे। सूर्य ने कहा—"तेरे गर्भ से चंचल लहरोंवाली नदी जन्म लेगी।" इसी प्रकार संज्ञा के गर्भ से यम तथा यमुना ने एकसाथ ही जन्म लिया। तदनंतर वह सूर्य के तेज से त्रस्त होकर, अपनी छाया को सूर्य की सेवा में छोड़कर स्वयं पिता विश्वकर्मा के पास चली गयी। विवस्वान् छाया को ही संज्ञा समझते रहे। उसके दो पुत्र और कन्या हुए। वह अपने बच्चों को प्यार करती थी—संज्ञा के बच्चों को नहीं। यम ने रुष्ट होकर अपना पैर उसे मारने के लिए उठाया किंतु फिर मारा नहीं। अतः छाया ने यम से रुष्ट होकर उसे शाप दिया कि उसका वह पांव पृथ्वी पर गिर जाये। यम पिता के पास पहुंचा। सूर्य और यम को संदेह हुआ कि छाया संज्ञा नहीं है अन्यथा अपने पुत्र को ऐसा शाप न देती। बहुत पूछने पर छाया ने अपना पूरा परिचय दे दिया। विवस्वान् विश्वकर्मा के पास पहुंचे। वे अपनी पत्नी को समझा-बुझाकर पति के घर के लिए विदा कर चुके थे। सूर्य ने ध्यान लगाकर देखा कि उसके तेज के भय से वह घर न आकर एक घोड़ी के रूप में उत्तर कुरु देश में तपस्या कर रही है। उसका उद्देश्य सूर्य के तेज को कम करना ही है। तदनंतर सूर्य ने विश्वकर्मा से कहकर अपना तेज छंटवा दिया। सूर्य के तेज का सोलहवां भाग मात्र विवस्वान् के पास रह गया। शेष पंद्रह भागों में से ऋग्वेदमय तेज से पृथ्वी, यजुर्वेदमय तेज से द्युलोक, सामवेदमय तेज से स्वर्गलोक और इसी प्रकार शंकर के त्रिशूल, विष्णु का चक्र, वसुओं का शंकु, अग्नि की शक्ति आदि का निर्माण हुआ। तेज का सोलहवां भाग शेष रहने के बाद उन्होंने अश्व का रूप धारण किया तथा तपस्यारत अश्वरूपिणी संज्ञा के पास गये। उनके मिलन

से तीन और पुत्र उत्पन्न हुए—नासत्य, दस्र तथा रैवंत। रैवंत का जन्म तलवार-ढाल से सुसज्जित घोड़े पर बैठे हुए योद्धा के रूप में हुआ था। अश्व-अश्वी अपने वास्तविक रूप में आ गये। उनका प्रथम पुत्र वैवस्वत मनु हुआ, दूसरा यम हुआ। यम न्यायप्रिय था, जिसके मन में अपने-पराये का भेद नहीं था। पिता ने उसके शापित पैर का निराकरण इस प्रकार किया कि कीड़े यम के पैर का मांस लेकर पृथ्वी पर गिर पड़े, फिर उसका पांव ठीक हो गया। छाया के गर्भ से सावर्णिक तथा शनैश्चर का जन्म हुआ था। इनमें से सावर्णिक अगले मनु हुए, शनैश्चर को सूर्य ने नक्षत्रों में स्थान दिया। छाया की कन्या तपती ने कुरु नामक पुत्र को जन्म दिया। संज्ञा की कन्या यमुना नदी-रूप में प्रवाहित होने लगी। नासत्य और दस्र अश्विनीकुमार देवताओं के वैद्य हुए तथा रैवंत गुह्यकाधिपति बना।

मा० पु०, ७४।-
७५।-
हरि वं० पु०, हरिवंशपर्व ६।-

ब्रह्मपुराण में मात्र नामों में अंतर है। 'संज्ञा' के स्थान पर 'उषा' का तथा 'मनु' के स्थान पर 'आदित्य' का प्रयोग किया गया है। 'विश्वकर्मा' को 'त्वष्टा' कहा गया है। उषा और आदित्य के मिलन-स्थान को अश्वतीर्थ की संज्ञा दी गयी है। शेष कथा मार्कंडेय पुराण में दी गयी कथा जैसी ही है।

ब्र० पु०, ६, ३२

वैश्यानाथ नंदी ग्राम में नंदा नामक वैश्या रहती थी। उसने एक बंदर और एक कुत्ता पाला हुआ था। वह शिव-भक्त थी। एक बार शिव वैश्यानाथ का रूप धारण करके उसकी परीक्षा लेने पहुंचे। उन्होंने एक सुंदर कंकण धारण कर रखा था। नंदा ने वह कंकण मांगा और उसके बदले में तीन रात तक उनकी पत्नी बनना स्वीकार किया। वैश्यानाथ ने उसे रत्नजटित लिंग भी प्रदान किया, जिसे उसने शिवमंदिर में स्थापित कर दिया। वैश्यानाथ ने रात को लीला से शिवमंदिर में अग्नि उपजायी, जिसमें लिंग भस्म हो गया। इस समाचार से दुखी होकर वैश्यानाथ अग्नि में जलकर प्राण त्यागने के लिए उद्यत हो गया। नंदा ने तीन दिन तक उसकी पत्नी रहने का प्रण लिया था, अत: वह भी सती होने की तैयारी करने लगी। प्रसन्न होकर शिव ने उसे दर्शन दिये तथा उसके पापों का मोचन करके उसे अपना लोक प्रदान किया। शिव का वह अवतार वैश्यानाथ नाम से विख्यात है।

शि० पु०, ७।४४

वैश्रमणकुमार इंद्र ने वैश्रमणकुमार को बुलाकर पांचवें लोकपाल-पद पर स्थापित किया तथा उसे लंकापुरी में जाकर राज्य करने की आज्ञा दी। रावण, कुंभकर्ण आदि भाइयों को सुमाली से ज्ञात हुआ कि किस प्रकार वैश्रमणकुमार राजा माली के राज्य का भोग कर रहा है तो रावण वैश्रमण के राज्य से धन, घोड़े, नारी इत्यादि लूट लाया। फलस्वरूप रावण तथा वैश्रमण का युद्ध हुआ। वैश्रमण मूर्च्छित हो गया। वैश्रमण रावण के प्रति विशेष आकृष्ट भी था, क्योंकि दोनों की माता परस्पर बहनें थीं। मूर्च्छा से ठीक होने के उपरांत उसने प्रव्रज्या ग्रहण की तथा उसका समस्त वैभव रावण ने ग्रहण कर लिया।

पउ० च०, ७।५३, ८।६६-१४२

व्युषिताश्व व्युषिताश्व कुरुवंशी राजा थे। उनकी पत्नी का नाम भद्रा था। वह कक्षीवान् की पुत्री थी। व्युषिताश्व राजयक्ष्मा के शिकार होकर असमय मारे गये। भद्रा को अपने वैधव्य तथा नि:संतानत्व पर विशेष खेद था। विलाप करती हुई भद्रा ने आकाशवाणी सुनी कि अष्टमी अथवा चतुर्दशी की रात्रि में इस शव के साथ सोकर वह अनेक पुत्र प्राप्त करेगी। ऐसा ही हुआ और उसने सात पुत्र प्राप्त किये। तीन शाल्व देश के और चार मद्र देश के शासक हुए।

म० भा०, आदिपर्व, १२०।७-३७

व्योमासुर गयासुर का पुत्र व्योमासुर ग्वाल का रूप रचकर खेलते हुए ग्वालबालों में घुस गया। वह बहुधा चोर बनता और खेल-खेल में भेड़ बने हुए बहुत-से बच्चों को पकड़कर पहाड़ की एक गुफा में डाल देता तथा उसका मुंह एक चट्टान से ढंक देता। धीरे-धीरे ग्वालों के चार-पांच बालक ही शेष रह गये। श्रीकृष्ण उसके कृत्य को जान गये। वह बच्चों को लेकर चला तो कृष्ण ने उसे दबोच लिया तथा गला घोंटकर उसे मार डाला। गुफा का द्वार खोलकर कृष्ण ने समस्त बालकों को निकाल लिया।

श्रीमद् भा०, १०।३७।-

□

श

शंकर शिवभक्त राजा सिंहकेतु शंकर नामक शबर आदि के साथ शिकार खेलने गया। शंकर ने वहां से एक शिवलिंग उठा लिया और विधिपूर्वक उसकी पूजा करने लगा। एक बार उसकी परीक्षा लेने के लिए शिव ने समस्त भस्म छिपा दी। शबरी (शबर पत्नी) ने चिता में प्रवेश कर पूजा के निमित्त भस्म उसे प्रदान की। पूजा के उपरांत प्रतिदिन वह प्रसाद बांटने लगा तो उसकी पत्नी पुनर्जीवित हो उठी। वह मात्र शिव की माया थी।

शि० पु०, ६।६

शंखचूड़ बलराम और कृष्ण स्वच्छंद विहार कर रहे थे। तभी एक शंखचूड़ नामक यक्ष कुछ गोपियों को लेकर उत्तर की ओर भागा। गोपियों ने शोर मचाया। बलराम और कृष्ण शाल वृक्ष लेकर उसके पीछे-पीछे भागे। उनको आता देख वह गोपियों को छोड़कर भागा। बलराम उनकी सुरक्षा के लिए वहां रह गये तथा कृष्ण ने उसका पीछा कर उसे पकड़ लिया। कृष्ण ने उसके सिर पर घूंसा मारा तो उसका सिर धड़ से अलग हो गया तथा उसके सिर में रहनेवाली चूड़ामणि कृष्ण को मिल गयी।

श्रीमद् भा०, १०।३४

कश्यप के चार पुत्र हुए। उनमें से विप्रचित्ति नामक पुत्र अत्यंत वीर था। उसके पुत्र दंभा ने तपस्या से विष्णु को प्रसन्न करके एक वीर पुत्र प्राप्त करने का वर मांगा। उसकी पत्नी के गर्भ से जिस बालक का जन्म हुआ, वह पूर्वजन्म में 'सुदामा' नामक कृष्ण का भक्त था (दे० राधा)। नवजात बालक का नाम शंखचूड़ रखा गया। ब्रह्मा ने उसकी आराधना से प्रसन्न होकर उसे त्रिलोक विजयी होने का वर प्रदान किया तथा कृष्ण-कवच देकर उसे प्रेरित किया कि वह बदरिकाश्रम में तप करनेवाली तुलसी से विवाह करे। उसके विवाह के उपरांत दंभासुर ने उसका राज्यतिलक कर दिया। असुरों ने इंद्रलोक पर आक्रमण किया। अंत में दैत्यों की विजय हुई, शंखचूड़ भूमंडल का अधिपति बना तथा इंद्र कहलाया। शंखचूड़ से त्राण प्राप्त करने के लिए देवताओं ने शिव से विनय की। शिव ने अपने भक्त पुष्पदंत को उसके पास इस संदेश के साथ भेजा कि वह देवताओं की समस्त वस्तुएं तथा राज्य वापस कर दे अन्यथा वह शिव के कोप का भागी होगा। शंखचूड़ ने शिव से युद्ध करना स्वीकार किया किंतु देवताओं को उनका राज्य वापस नहीं किया। काली ने युद्ध-क्षेत्र में अनेक दैत्यों को निगल लिया। शिव की प्रेरणा से विष्णु ने ब्राह्मण का रूप धर कर शंखचूड़ से कृष्ण-कवच मांग लिया तथा शंखचूड़ का रूप धारण करके उसी पत्नी तुलसी का पातिव्रत धर्म नष्ट कर डाला। तदुपरांत शिव ने त्रिशूल से उसे मार डाला।

शिव० पु०, ५।२५-३८

सुदामा श्रीकृष्ण का श्रेष्ठ पार्षद था। एक बार श्रीकृष्ण विरिजा के साथ विहार कर रहे थे। सुदामा भी उनके साथ था। राधा को ज्ञात हुआ तो रुष्ट होकर वहां पहुंची। उसने कृष्ण को बहुत फटकारा। लज्जावश विरिजा तो नदी बन गयी, किंतु सुदामा ने क्रुद्ध होकर राधा से बात की। राधा ने क्रोधवश उसे सभा से निकाल दिया और दानवी योनि में जन्म लेने का शाप दिया। क्षणिक आवेग जब समाप्त हुआ तो राधा ने दयावश शाप की अवधि गोलोक के आधे क्षण की कर दी जो कि मृत्यु-

लोक का एक मन्वंतर होता है। शापवश सुदामा शंखचूड़ नामक दानव हुआ। गोलोक में भी वह तुलसी पर आसक्त था, अतः भूलोक में भी उसने तुलसी को प्राप्त करने के लिए तपस्या की। उसके पास हरि का मंत्र और कवच भी थे। तुलसी से (दे० तुलसी) विवाह होने के उपरांत वह ऐश्वर्यपूर्वक रहने लगा। श्रीकृष्ण की प्रेरणा से शिव ने उसपर आक्रमण किया। शिव की अपरिमित सेना (जो कि देवताओं तथा भगवती से युक्त थी) के होते हुए भी शंखचूड़ परास्त नहीं हो रहा था। सबने विचारा कि जब तक उसके पास हरि का मंत्र तथा कवच है और उसकी पत्नी पतिव्रता है, तब तक उसे परास्त करना असंभव है। सौ वर्षों तक युद्ध होता रहा। शिव मृत देवताओं को पुनर्जीवन देते जा रहे थे। रणक्षेत्र में दानवेश्वर शंखचूड़ से एक वृद्ध ब्राह्मण भिक्षा मांगने आया। राजा ने इच्छित दक्षिणा मांगने को कहा तो ब्राह्मण ने उसका कवच मांगा। शंखचूड़ ने उसे कवच दे दिया। ब्राह्मण ने तुरंत शंखचूड़ का-सा रूप धारण कर कवच धारण किया तथा तुलसी के पास गया। उसने माया पूर्वक तुलसी में वीर्याधान किया। तत्काल शिव ने हरि के दिये शूल से शंखचूड़ को मार डाला। दानवेश्वर तो रथ सहित भस्म हो गया किंतु किशोर सुदामा ने गोलोक धाम में राधा-कृष्ण को प्रणाम किया। शूल भी शीघ्रता-पूर्वक कृष्ण के पास पहुंच गया। शंखचूड़ की अस्थियों से शंख जाति का उद्‌भव हुआ। शंख से सभी देवताओं को जल देते हैं किंतु शिव को उसका जल नहीं दिया जाता।

दे० भा०, ९।१९

शंखतीर्थ सरस्वती के तट पर 'महाशंख' नामक एक महान् वृक्ष है। वह मेरुपर्वत के समान ऊंचा तथा श्वेताचल के समान उजले वर्ण का है। वहां अनेक पिशाच, सिद्ध, राक्षस, ऋषि इत्यादि अदृश्य रूप से निवास करते हैं। वह वृक्ष नरव्याघ्र नाम से विश्वविख्यात है।

म० भा०, शल्यपर्व, ३७।१८-२७

शंडामर्क शंडामर्क को अपनी शक्ति पर बहुत गर्व था। वीरता के अहंकारी शंड और मर्क, दोनों को इंद्र ने सहज ही मार डाला था।

ऋ०२।३०।८

शंड और मर्क देवताओं के प्रत्येक कार्य में बाधा उत्पन्न करते थे। एक बार देवताओं ने उनके लिए दो ग्रह निश्चित किये। वे दोनों उन ग्रहों को प्राप्त करने के लिए बढ़े तो देवों ने उनका हनन कर दिया।

श० प० ब्रा० ४।२।१।५-६

शंबर इंद्र ने तुर्वश, यदु तथा तुर्वीति की रक्षा के निमित्त शंबर के निन्यानबे गढ़ नष्ट कर डाले।

ऋ० १।५४।६

इस प्रकार शंबर को मारकर देवों की रक्षा की।

तै० ब्रा०, २।८।३।८

शंबूक एक बार एक ब्राह्मण राम के द्वार पर पहुंचा। उसके हाथ में उसके पुत्र का शव था। वह रो-रोकर कह रहा था—"राम के राज्य में मेरा बेटा अकालमृत्यु को प्राप्त हुआ। निश्चय ही कोई पाप हो रहा है।" राम बहुत चिंतित थे। तभी नारद ने आकर बतलाया—"हे राम! सतयुग में केवल ब्राह्मण तपस्या करते थे। त्रेता युग में दृढ़ काया वाले क्षत्रिय भी तपस्या करने लगे। उस समय अधर्म ने अपना एक पांव पृथ्वी पर रखा था। सतयुग में लोगों की आयु अपरिमित थी, त्रेता युग में वह परिमित हो गयी। द्वापर में अधर्म ने अपना दूसरा पांव भी पृथ्वी पर रखा, इससे वैश्य भी तपस्या करने लगे। द्वापर में शूद्रों का यज्ञ करना वर्जित है। निश्चय ही इस समय कोई शूद्र तपस्या कर रहा है, अतः इस बालक की अकालमृत्यु हो गयी।" यह सुनकर शव की सुरक्षा का प्रबंध कर राम ने पुष्पक विमान को स्मरण किया फिर उसमें बैठकर वे चारों दिशाओं में तपस्यारत शूद्र को खोजने लगे। दक्षिण में शैवल नाम के एक पर्वत पर सरोवर के किनारे एक व्यक्ति उलटा लटककर तपस्या कर रहा था। राम ने उसका परिचय पूछा। उसका नाम शंबूक था। वह शूद्र योनि में जन्म लेकर भी देवलोक-प्राप्ति की इच्छा से तप कर रहा था। राम ने उसे मार डाला और ब्राह्मण-पुत्र जीवित हो गया।

बा० रा०, उत्तर कांड, ७३-७६

रावण के भानजे तथा खरदूषण के बेटों के नाम शंबूक तथा सुंद थे। शंबूक ने वन में रहकर, बारह वर्ष और सात दिन तक अध्यास करने का निश्चय किया था। साथ ही इस अवधि में किसी को भी वहां देखकर मार डालने की बात कही थी। बारह वर्ष और तीन दिन बाद लक्ष्मण उधर जा निकला। उसने धरती पर रखी हुई शंबूक की तलवार उठा ली। उस तलवार से उसने निकटवर्ती बांसों पर प्रहार किया। इतने में उसके सम्मुख

शंबूक का कटा हुआ सिर धरती पर आ पड़ा। लक्ष्मण ने यथावत् राम से कह सुनाया। शंबूक की मां (चंद्र-नखा) प्रतिदिन उससे मिलने जाती थी। उस दिन बेटे को मरा देख वह बहुत दुखी हुई। वह शत्रु को ढूंढ़ने के लिए आगे बढ़ी तो राम और लक्ष्मण के सौंदर्य पर मुग्ध होकर उनके संपर्क के लिए आतुर हो उठी। उसने एक सुंदरी का रूप धारण किया। राम और लक्ष्मण की उपेक्षा देखकर उसने अपने शरीर पर स्वयं ही नखक्षत अंकित कर लिये और पति से जाकर राम और लक्ष्मण की झूठी शिकायत लगायी तथा अपने पुत्र-हनन की बात भी बतायी। वह युद्ध के लिए तैयार होकर निकला। रावण को भी उसने यह समाचार भेज दिया।

पउ० च०, ४३, ४४।१-२४

शकट श्रीकृष्ण के करवट बदलने का उत्सव मनाया जा रहा था। यशोदा कृष्ण को एक छकड़े के नीचे सुलाकर स्वयं कार्य में व्यस्त थीं। कृष्ण ने भूख से रोना प्रारंभ किया। यशोदा के न आने पर उन्होंने अपने हाथ-पांव जोर से मारे तो पांव छकड़े से छुआ और वह दूध-घी आदि के बर्तनों से भरा हुआ उलट गया। सब लोग आश्चर्य करते रह गये। (भागवत के फुटनोट में संदर्भो-ल्लेख रहित यह कथा प्राप्त है: हिरण्याक्ष का पुत्र उत्कच था। एक बार आश्रम के वृक्षों को कुचल देने के कारण लोमश ऋषि से उसे शाप मिला था कि वह देहरहित हो जाये तथा श्रीकृष्ण के चरण-स्पर्श से पुनः शरीर प्राप्त कर पायेगा। वह देहरहित हुआ छकड़े पर बैठ गया। श्रीकृष्ण के चरणों का स्पर्श प्राप्त कर उसका उद्धार हो गया।)

श्रीमद० भा०, १०।७।१-२७
ब्रह्म० पु०, अध्याय १८४, वि० पु० ५।६,
हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व, ६।१-२२

शकुनि सुबल-पुत्र का नाम शकुनि था। युद्ध के अंतिम दिन वह विशेष सक्रिय रहा। तब तक सभी मुख्य योद्धा मारे जा चुके थे। शकुनि स्वभाव से धोखेबाज था, अतः युद्ध में वह पांडवों की सेना को, पीछे से आक्रमण करके नष्ट करना चाहता था, किंतु अपनी योजना में सफल नहीं हो पाया। महाभारत-कांड का सूत्रपात उसकी धोखे से खेली गयी द्यूतक्रीड़ा से हुआ था। उसका अंत भी लगभग वैसा ही हुआ। युद्ध-क्षेत्र में तरह-तरह की कपट-पूर्ण क्रियाओं के उपरांत वह सहदेव तथा भीम से घिर गया। उसका पुत्र उलूक उसे क्षत-विक्षत स्थिति में देख वहां पहुंचा तथा सहदेव के प्रहार से मारा गया। पुत्र-शोक से ग्रस्त शकुनि को भी सहदेव ने मार गिराया। सहदेव ने उसका मस्तक तथा दोनों भुजदंड काट फेंके।

म० भा० शल्यपर्व, अध्याय २३, २८

शकुंतला पुरुवंशी इलिल के पुत्र दुष्यंत शिकार खेलते हुए कण्वाश्रम में पहुंचे। उस समय ऋषि कण्व आश्रम में नहीं थे। शकुंतला ने उनका स्वागत किया। वे शकुंतला के रूप पर मुग्ध हो गये। परिचय के रूप में उन्होंने जाना कि एक बार विश्वामित्र तपस्या कर रहे थे। इंद्र भयभीत हो उठे कि कहीं वे इंद्रासन के लिए उत्सुक न हों। उन्होंने मेनका नामक अप्सरा को मुनि के तपोभंग के निमित्त वहां भेजा। मेनका ने वैसा ही किया। मेनका ने एक कन्या को जन्म दिया तथा मालिनी नदी के किनारे उसे छोड़कर स्वर्गलोग में चली गयी। कण्व के वहां पहुंचने तक शकुंत (पक्षीगण) ही उस कन्या की रक्षा कर रहे थे। अतः उसका नाम शकुंतला रखा गया। पक्षियों ने वह कन्या कण्वऋषि को अर्पित कर दी। उन्होंने ही उसका पालन-पोषण किया। दुष्यंत ने शकुंतला से गांधर्व विवाह कर लिया तथा उसे शीघ्र ही बुला लेने का आश्वासन देकर अपनी नगरी वापस चले गये। ऋषि के आने पर शकुंतला ने उन्हें सब वृत्तांत कह सुनाया। दुष्यंत को गये तीन वर्ष हो गये। तीन वर्ष बाद शकुंतला ने पुत्र को जन्म दिया। इंद्र ने कहा—"यह चक्रवर्ती सम्राट होगा।" बारह वर्ष की आयु तक वह सर्वदमन नामक बालक वहीं आश्रम में रहा तथा वेद-विद्या आदि सबमें निपुण हो गया। तदुपरांत कण्व ऋषि ने शकुंतला के साथ उसको राजा दुष्यंत के पास भेज दिया। पहले तो राजा ने उसे अस्वीकार कर दिया तथा न पहचानने का अभिनय किया। ऐसे विषम क्षणों में आकाशवाणी हुई कि शकुंतला दुष्यंत की ही पत्नी है और सर्वदमन उसका ही पुत्र है। तत्पश्चात् राजा दुष्यंत ने उन दोनों को ग्रहण किया और सभासदों के सम्मुख स्पष्ट कर दिया कि पूर्व अभिनय शकुंतला की पवित्रता को प्रमाणित करने के लिए ही किया गया था क्योंकि गंधर्व विवाह में कोई साक्षी नहीं होता। राजा दुष्यंत की मां, रथन्तर्या ने भी दोनों का अत्यंत प्रेम से स्वागत किया। उन सबने सर्वदमन का नाम भरत रख दिया।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय ६८-७४

आकाशवाणी ने दुष्यंत से भरण-पोषण के लिए कहा था, इसी कारण से बालक का नाम भरत रखा गया।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय ६५।३२

शक्ति सुदास के पुत्रों ने वसिष्ठ के पुत्र शक्ति को अग्नि में फेंक दिया। जब वह फेंका जा रहा था तो उसने इंद्र की स्तुति की। इतने में वसिष्ठ ऋषि पहुंच गये। वसिष्ठ ने पूछा—"अग्नि में फेंके जाते हुए मेरे पुत्र ने क्या कहा?" उन्हें बताया गया कि वह अमुक मंत्र का पूर्वार्द्ध बोला था। इस पर वसिष्ठ ने कहा—"यदि मेरा पुत्र इस अगली आधी ऋचा 'शिक्षाणोऽस्मिन् पुरुहूत यामनिजीवा ज्योतिरशीमहि' भी बोल देता तो अग्नि में न फेंका जाता।"

जै० ब्रा०, २।३६२

शतानीक शतानीक नकुल के पुत्र का नाम था। महाभारत-युद्ध में उसने सक्रिय भाग लिया था।

म० भा०, द्रोणपर्व, १६

शत्रुघ्न राम ने शत्रुघ्न से पूछा कि उसे पृथ्वी पर जो भी स्थान प्रिय हो, उसका शासन-कार्य संभाल ले। शत्रुघ्न ने मथुरानगरी मांगी। मथुरा पर मधु का राज्य था। वह रावण का जमाता था। चमरेंद्र ने उसे भयंकर त्रिशूल दिया था—जिसका प्रयोग अचूक था। राम ने विचार कर कहा कि वह उससे नीतिपूर्वक युद्ध करे। शत्रुघ्न ने गुप्तचरों से मालूम किया कि वह कुछ दिनों के लिए मथुरा के पूर्व में स्थित कुबेर नामक उद्यान में क्रीड़ा करने के लिए गया हुआ है। शेष कार्यों का त्याग किये वह छठा दिन है। शत्रुघ्न ने सुअवसर जानकर वहीं पर आक्रमण किया। वह त्रिशूल रहित मधु को पराजित करके मथुराधिपति बन गया। मधु के मित्र 'चमरेंद्र' को ज्ञात हुआ कि मधु मारा गया है तो उसने उपसर्ग का प्रसार किया। समस्त मथुरावासी रोगी हो गये। शत्रुघ्न अपने कुल देवता की प्रेरणा से साकेत गया। जिन मुनियों की कृपा से मथुराभूमि पुनः हरी-भरी हो गयी। उपसर्ग का शमन हो गया।

पउ० च०, ८६-८९।

शनीचर गिरिजा के बालक को देखने सभी देवता पहुंचे। शनी उसे आंख भरकर नहीं देख रहे थे। गिरिजा के कारण पूछने पर उन्होंने कहा कि पूर्वकाल में वे शिवाराधना में व्यस्त थे। उनकी पत्नी कामातुर थी। पत्नी के बार-बार बुलाने पर भी वे शिवाराधना में लगे रहे, अतः पत्नी ने शाप दिया कि जिसे भी आंख भरकर देखेंगे, वही जड़मूल सहित नष्ट हो जायेगा। बात सुनकर गिरिजा हंस पड़ी और बोली कि बालक का मुंह देखो, कुछ नहीं होगा। शनी ने बालक का मुंह देखा तो उसका (बालक का) सिर गायब हो गया। गिरिजा मूर्च्छित हो गयी। देवताओं की प्रेरणा से विष्णु किसी का सिर लेने गये। पुष्पभद्रा नदी के किनारे उत्तर की ओर सिर करके हाथी-हथिनी तथा उनके बच्चे सो रहे थे। विष्णु ने चक्र से हाथी का सिर काटकर ले लिया और रोती हुई हथिनी पर दया करके कोई और सिर उसके ऊपर लगा दिया। हाथी का सिर बालक गणेश की गर्दन पर जोड़ दिया गया तथा शिव ने उसमें पुनः प्राणों का संचार किया।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध, ४।१६-२१

शबरी सीता को ढूंढ़ते हुए राम शबरी के आश्रम में पहुंचे। शबरी ने उनका आतिथ्य-सत्कार किया तथा कहा—"मैं जिन ऋषियों की सेवा करती थी, आपके चित्रकूट पर्वत पर पहुंचते ही वे सब असाधारण विमानों पर आरूढ़ होकर स्वर्ग चले गये तथा कह गये कि आप यहां पर आयेंगे और मैं आप लोगों का सत्कार करके अविनाशी लोक प्राप्त करूंगी। अतः मैंने यहां उत्पन्न होनेवाले फल-फूल आपके लिए एकत्र कर रखे हैं।" राम से आज्ञा प्राप्त करके शबरी ने अग्निकुंड में प्रवेश कर अपनी काया होम कर दी तथा स्वर्गलोक के लिए प्रस्थान किया।

बा० रा०, अरण्य कांड, सर्ग ७४, ११-३५

शरणागत एक बार एक व्याध आखेट के लिए जंगल में गया। वहां एक बाघ को देखकर वह पेड़ पर चढ़ गया। उस वृक्ष पर एक रीछ था। बाघ ने रीछ से कहा कि वह उस व्याध को नीचे फेंक दे। रीछ ने उत्तर में बताया कि वह शरणागत को मौत के मुंह में नहीं फेंक सकता, यद्यपि व्याध होने के नाते वह बाघ और रीछ का समान शत्रु है। थोड़ी देर बाद रीछ को नींद आ गयी। बाघ ने व्याध से कहा—"तुम यदि रीछ को नीचे फेंक दो तो मैं तुम्हें नहीं खाऊंगा।" व्याध ने स्वीकार कर लिया। तभी रीछ की नींद खुल गयी। बाघ ने फिर रीछ से कहा—"देखो, व्याध तो तुम्हें नीचे फेंकने के लिए तैयार हो गया था।" रीछ ने उत्तर दिया—"वह मेरा अपराधी अवश्य है, किंतु मेरा शरणागत है, अतः उसे मैं मौत के

मुंह में नहीं धकेलूंगा।"

बा० रा०, युद्ध कांड, ११६।४१-४३

शरभ वानर सेना में शरभ तथा उसके अधीन विहार नाम के सेनापति थे। इनके अधीन एक लाख चालीस हज़ार वानरों की सेना थी।

बा० रा०, युद्ध कांड, २६।३८-४०

दिति के दो पुत्र हुए—बड़े का नाम कनककशिपु तथा छोटे का नाम कनकाक्ष था। दोनों देवताओं के शत्रु थे। कनककशिपु के चार पुत्र हुए जिसमें सबसे छोटा प्रह्लाद विष्णुभक्त था। वह अपने सहपाठियों और मित्रों को भी विष्णुभक्ति की महिमा समझाता था। देवशत्रु कनककशिपु ने क्रुद्ध होकर उसे धरती पर पटक दिया किंतु उसने विष्णु-पूजन नहीं छोड़ा तो पिता ने हाथ में तलवार उठाकर कहा—"कहां है तेरा विष्णु ?" प्रह्लाद ने उत्तर दिया—"वह तो सर्वत्र है।" "फिर इस खंबे में से क्यों नहीं निकलता ?" लोहे के खंबे पर तलवार से प्रहार करके कनककशिपु ने पूछा। खंबे से तुरंत ही नरहरि के रूप में विष्णु अवतरित हुए। उन्होंने कनककशिपु को उदर से चीरकर मार डाला किंतु उनका क्रोध शांत नहीं हुआ। सभी देवता थर्राने लगे। अंत में शिव ने अपने भक्त वीरभद्र को उनका क्रोध शांत करने के लिए भेजा। वीरभद्र ने और भी अधिक भयानक रूप धारण करके विष्णु का अहंकार तथा क्रोध नष्ट कर डाला। वीरभद्र ने नरहरि से कहा—"तुम प्रकृति तथा शिव-पुरुष हो। उन्होंने विष्णु में अपना वीर्य स्थापित किया था, इसीसे विष्णु की नाभि से कमल उत्पन्न हुआ जिसपर ब्रह्मा प्रकट हुए।" नरहरि ने उसे पकड़ना चाहा। वह आकाश में छिप गया। शिव आकाश में अग्नि के रूप में प्रकट हुए। तदनंतर शिव के 'शरभ' नामक अवतार के दर्शन हुए। शरभ का आधा शरीर सिंह का था। वे दो पंख, चोंच, सहस्र भुजा, शीश पर जटा, मस्तक पर चंद्र से युक्त थे। भयंकर दंत एवं नख ही उनके शस्त्र थे। शिव ने विष्णु को प्रेरित किया कि वह अन्य भक्तों की ओर ध्यान दे।

शि० पु०, ७।२१-२२।-

शरभंग राम, लक्ष्मण और सीता वन में घूमते हुए शरभंग के आश्रम में पहुंचे। वहां इंद्र आये हुए थे। राम को आया जानकर उन्होंने शरभंग से विदा ली और चले गये। राम, लक्ष्मण और सीता ने शरभंग को प्रणाम किया तथा उनसे जाना कि उन्होंने अपनी तपस्या के बल से ब्रह्मलोक और स्वर्गलोक जीत लिये हैं। इंद्र उन्हें ब्रह्मलोक ले चलने के लिए आये थे, किंतु राम के आगमन के विषय में जानकर शरभंग नहीं गये। शरभंग राम को अपने जीते दोनों लोक देना चाहते थे, किंतु राम ने स्वीकार नहीं किया। राम के सामने ही शरभंग ऋषि ने अग्निशाला में घी की आहुति दी और फिर योगबल से उनके शरीर के रोंये-रोंये से अग्नि प्रस्फुटित हो उठी तथा अग्नि के पुंज से वे एक कुमार के रूप में प्रकट हुए तथा उन्होंने ब्रह्मलोक में पहुंचकर ब्रह्मा के दर्शन किये।

बा० रा०, अरण्य कांड, ५।५-४४

शल्य शल्य, मद्रराज महारथी था। पांडवों ने माद्री के भाई, मामा शल्य को युद्ध में सहायतार्थ आमंत्रित किया। शल्य अपनी विशाल सेना के साथ पांडवों की ओर जा रहा था। मार्ग में दुर्योधन ने उन सबका अतिथि-सत्कार कर उन्हें प्रसन्न किया। शल्य ने महाभारत-युद्ध में सक्रिय भाग लिया।

कर्ण के सेनापतित्व ग्रहण करने के उपरांत उसकी सलाह से दुर्योधन ने शल्य से कर्ण का सारथी बनने की प्रार्थना की। उसे यह प्रस्ताव अपमानजनक लगा, अतः वह दुर्योधन की सभा से उठकर जाने लगा। दुर्योधन ने बहुत समझा-बुझाकर तथा उसे श्रीकृष्ण से भी श्रेयस्कर बताकर सारथी का कार्यभार उठाने के लिए तैयार कर लिया। शल्य ने यथावत् समाचार पांडवों को दिया तो युधिष्ठिर ने मामा शल्य से कहा—"कौरवों की ओर से कर्ण के युद्ध करने पर निश्चय ही आप सारथी होंगे। आप हमारा यही भला कर सकते हैं कि कर्ण का उत्साह भंग करते रहें।" शल्य ने यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। कर्ण का सारथी बनते समय शल्य ने यह शर्त दुर्योधन के सम्मुख रखी थी कि उसे स्वेच्छा से बोलने की छूट रहेगी, चाहे वह कर्ण को भला लगे या बुरा। दुर्योधन तथा कर्ण आदि ने शर्त स्वीकार कर ली। कर्ण स्वभाव से दंभी था। वह जब भी आत्मप्रशंसा करता, शल्य उसका परिहास करने लगता तथा पांडवों की प्रशंसा कर उसे हतोत्साहित करता रहता। शल्य ने एक कथा भी सुनायी कि एक बार वैश्य परिवार की जूठन पर पलनेवाला एक गर्वीला कौआ राजहंसों को अपने सम्मुख कुछ समझता ही नहीं था। एक बार एक हंस से उसने उड़ने की होड़ लगायी और बोला कि वह सौ प्रकार से उड़ना

जानता है। होड़ में लंबी उड़ान लेते हुए वह थककर महासागर में गिर गया। राजहंस ने प्राणों की भीख मांगते कौए को सागर से बाहर निकाल अपनी पीठ पर लादकर उसके देश तक पहुंचा दिया। शल्य बोला—"इसी प्रकार कर्ण, तुम भी कौरवों की भीख पर पलकर घंमडी होते जा रहे हो।" कर्ण बहुत रुष्ट हुआ, पर युद्ध पूर्ववत् चलता रहा। कर्ण-वध के उपरांत कौरवों ने अश्वत्थामा के कहने से शल्य को सेनापति बनाया। श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर को शल्य-वध के लिए उत्साहित करते हुए कहा कि इस समय यह बात भूल जानी चाहिए कि वह पांडवों का मामा है। कौरवों ने परस्पर विचार कर यह नियम बनाया कि कोई भी एक योद्धा अकेला पांडवों से युद्ध नहीं करेगा। शल्य का प्रत्येक पांडव से युद्ध हुआ। कभी वह पराजित हुआ, कभी पांडव गण। अंत में युधिष्ठिर ने उसपर शक्ति से प्रहार किया। उसके वधोपरांत उसका भाई, जो कि शल्य के समान ही तेजस्वी था, युधिष्ठिर से युद्ध करने आया और उन्हीं के हाथों मारा गया। दुर्योधन ने अपने योद्धाओं को बहुत कोसा कि जब यह निश्चित हो गया था कि कोई भी अकेला योद्धा शत्रुओं से लड़ने नहीं जायेगा, शल्य पांडवों की ओर क्यों बढ़ा ? इसी कारण दोनों भाई मारे गये।

म० भा०, उद्योगपर्व, ८।
म० भा०, कर्णपर्व, ३२।
म० भा०, शल्यपर्व, ५-८।११-१८

शशबिंदु राजा शशबिंदु की एक लाख स्त्रियां थीं। प्रत्येक ने एक-एक हजार पुत्रों को जन्म दिया था। राजा धर्मनिष्ठ तथा ब्राह्मण-भक्त था। उसने दस लाख यज्ञ करने का संकल्प किया था। उसने अश्वमेध यज्ञ करके अपने सभी पुत्र ब्राह्मणों को दान कर दिये थे। पुत्रों के साथ सुंदरियां, रथ, हाथी इत्यादि अनेक वस्तुओं का दान भी किया था।

म० भा०, द्रोणपर्व, ६५।

शांतनु राजा प्रतीप के देवापि, शांतनु तथा बाह्लीक नामक तीन पुत्र थे। इनमें से शांतनु जिसका स्पर्श कर देता था, वह युवावस्था प्राप्त कर लेता था। प्रतीप के उपरांत उसी ने राज्य संभाला। उसके राज्य में बारह वर्ष तक अनावृष्टि रही। ब्राह्मण से पूछने पर उसे ज्ञात हुआ कि बड़े भाई के रहते स्वयं राज्य करने के कारण ही यह सब हो रहा है। यह सुनकर शांतनु अपने बड़े भाई देवापि के पास गया और कहा कि वेदविहित यही है कि बड़ा भाई राज्य भोगे। देवापि ने वेद के विरुद्ध तर्क देने आरंभ कर दिये, अतः वह पतित हो गया। शांतनु पुनः राज्य में लौट आया क्योंकि बड़े भाई के पतित होने पर उससे छोटे भाई के राजा होने की व्यवस्था है। उसके राज्य में मेघ बरसने लगे। शांतनु की पत्नी गंगा ने भीष्म को जन्म दिया तथा सत्यवती ने चित्रांगद और विचित्रवीर्य को जन्म दिया।

वि० पु०, ४।२०।१-३८

शारदेव वैदर्भ नामक वीर की कन्या का नाम शारदा था। बारह वर्ष की आयु में उसका विवाह एक बूढ़े ब्राह्मण से हुआ जो उसी दिन सर्प-दंशन के कारण मर गया। शारदा अपने माता-पिता के यहां रहती थी। एक बार वैध्रुव नामक अंधे मुनि ने उससे प्रसन्न होकर उसे पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया। यह ज्ञात होने पर कि वह विधवा है, मुनि ने अपने वरदान को सत्य करने के निमित्त उमा महेश्वर व्रत किया। गिरिजा ने प्रसन्न होकर मुनि के नेत्र ठीक कर दिये तथा बताया कि शारदा पूर्वजन्म में अपनी सौत को बहुत तंग करती थी, इसीसे वह ५१ जन्मों में विधवा रहेगी किंतु मुनि के दिये वरदान को सत्य करने के निमित्त उसकी भेंट नित्य स्वप्न में पूर्व पति से होगी, उसी से उसे पुत्र की प्राप्ति होगी। कालांतर में उसका स्वप्नदर्शी पति (जिसने पांडवदेश में पुनः जन्म लिया था) उसे मिला। दोनों एक-दूसरे को स्वप्न में देखते थे, अतः उन्होंने परस्पर पहचान लिया। दोनों साथ ही रहने लगे। उसके साथ ही शारदा सती हो गयी। उसके पुत्र का नाम शारदेव हुआ।

शि० पु०, १०।२२-२४

शाङ्गंक मंदपाल नामक एक विद्वान महर्षि थे। उन्होंने आजन्म ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए (ऊर्ध्वरेता की स्थिति में) विकट तपस्या की थी; किंतु उन्हें तप तथा सुकर्मों का फल नहीं मिला। धर्मराज से पूछने पर उन्हें यह ज्ञात हुआ कि संतानवान् न होने के कारण वे फल के अधिकारी नहीं हैं, अतः उन्होंने शाङ्गंक नामक पक्षी के रूप में पुनर्जन्म लिया। उन्होंने जरिता शार्ङ्गिका से विवाह किया। जरिता ने चार अंडे दिये। जरिता तथा चारों अंडों में चारों मुनियों को छोड़, मंदपाल लपिता के साथ वन में विचरने लगा। उन्हीं दिनों अग्नि ने

खांडववन को जलाना प्रारंभ किया। मंदपाल को मालूम पड़ा तो उन्होंने अग्नि की स्तुति करके उसे प्रसन्न किया तथा उससे अपने चारों बालकों को सुरक्षित रखने का वचन लिया। यह सब सुनकर लपिता सौतिया डाह से त्रस्त हो मंदपाल का परित्याग करके चली गयी। उधर जरिता तथा उसके चारों बच्चों (जरितारि, सारिसिक्क, स्तंबमित्र तथा द्रोण) में विवाद होने लगा। वे चारों उड़ नहीं सकते थे, अतः वंश-परंपरा की रक्षा के लिए उनकी सम्मति में मां का जीवित रहना परम आवश्यक था। मां जरिता उन्हें असुरक्षित नहीं छोड़ना चाहती थी, पर बच्चों के हठ के सामने मां को झुकना पड़ा और वह अग्नि से बचने के लिए दूर उड़ गयी। बालकों ने अग्नि-देव की स्तुति की। वे प्रसन्न हो गये तथा उनके पिता को दिये वचन का स्मरण कर उन्होंने बालकों का स्पर्श नहीं किया। खांडववन-दाह के उपरांत जरिता तथा मंदपाल शार्ङ्गक भी उनके पास पहुंच गये तथा उनको कुशल देख गद्‌गद हो उठे।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय २२८-२३२

शार्दूल जब वानर-सेना का पड़ाव समुद्र के तट पर पड़ा हुआ था, उस समय रावण का भेजा हुआ शार्दूल नामक भेदिया गुप्त रूप से वहां गया तथा सैन्य बल और योजना के समस्त समाचार उसने लंकापति को जाकर दिये।

शुक नामक राक्षस को अपना दूत बनाकर एक पक्षी के रूप में रावण ने सुग्रीव के पास भेजा। उसने रावण का संदेश देते हुए सुग्रीव को रावण से मैत्री करने तथा राम का साथ छोड़ देने का सुझाव दिया। वानर-सेना ने शुक को बहुत पीटा और रावण का दूत न मानकर भेदिया जाना तथा उसे बंदी बना लिया। उसने राम से विनती की। राम ने दया कर उसे छोड़ दिया। साथ ही सुग्रीव ने कहला दिया कि वह रावण को न अपना मित्र समझता है, न हितैषी। अतः वह इस प्रकार के संदेश भेजने का प्रयत्न न करे।

बा० रा०, युद्ध कांड, २०।
बा० रा०, युद्ध कांड, २४।२३

शाल्मली लोहित सागर के पास शाल्मली (सेमल) का वृक्ष था। वहां विविध रत्नों से विभूषित गरुड़ का घर था। उसे विश्वकर्मा ने बनाया था। वह पर्वत के समान ऊंचा था तथा वहां मंदेहा नाम के राक्षस नित्य लटके रहते थे, जो अनेक प्रकार के रूपाकार धारण करने में समर्थ थे। प्रातः वे लोग कूदकर समुद्र में चले जाते थे। सूर्य का ताप पाकर फिर से जा लटकते थे।

बा० रा०, किष्किंधा कांड, ४०।३८-४२।

शाल्व कृष्ण के द्वारा शिशुपाल के मारे जाने पर उसके भाई शाल्व ने द्वारका पर आक्रमण कर दिया। श्रीकृष्ण उन दिनों पांडवों के पास इंद्रप्रस्थ गये हुए थे। उद्धव, प्रद्युम्न, चारुदेष्ण तथा सात्यकि आदि ने बहुत समय तक शाल्व से युद्ध किया। शाल्व मायावी प्रयोगों में चतुर था। प्रद्युम्न बहुत अच्छा योद्धा था। दोनों घायल होकर भी युद्ध में लगे रहे। प्रद्युम्न उसपर कोई विषाक्त बाण छोड़नेवाला था, तभी देवताओं के भेजे हुए वायुदेव ने प्रद्युम्न को संदेश दिया कि उसकी मृत्यु श्रीकृष्ण के हाथों होनी निश्चित है, अतः वह अपना बाण न छोड़े। प्रद्युम्न ने अपने बाण समेट लिये। शाल्व विमान में अपने नगर की ओर भाग गया। उसके पास आकाशचारी सोम विमान था जिसमें रहकर वह युद्ध करता था। श्रीकृष्ण जब द्वारका पहुंचे तब उन्हें समस्त घटना के विषय में विदित हुआ। उन्होंने शाल्व तथा सोम का नाश करने का निश्चय किया। उन्हें ज्ञात हुआ कि शाल्व समुद्र तट पर गया हुआ है। श्रीकृष्ण ने उसपर आक्रमण कर दिया। उसने माया से श्रीकृष्ण को वसुदेव के मृत शरीर के दर्शन भी करवाये, कुछ समय के लिए श्रीकृष्ण विचलित से भी जान पड़े, किंतु अंत में श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र से उसे मार डाला।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय १५-२२

शाल्व शिशुपाल के मित्रों में से था। शिशुपाल के वध के उपरांत उसने घोर तपस्या से शिव को प्रसन्न करके वर-दानस्वरूप ऐसा विमान प्राप्त किया था जो चालक की इच्छानुसार किसी भी स्थान पर पहुंचाने में समर्थ था तथा अंधकार की अधिकता के कारण किसी को दिखायी नहीं पड़ता था। वह यदुवंशियों के लिए त्रासक था। उस सोम विमान का निर्माण मयदानव ने लोहे से किया था। शाल्व ने उस विमान पर अनेक सैनिकों को सवार करके द्वारका पर चढ़ाई कर दी। वहां प्रद्युम्न से उसका घोर युद्ध हुआ। द्वारकावासी बहुत त्रस्त थे। उधर यज्ञ की समाप्ति पर अपशकुनों का अनुभव करते हुए कृष्ण और बलराम द्वारका पहुंचे। बलराम को नगर की रक्षा

का भार सौंपकर कृष्ण युद्धक्षेत्र में पहुंचे। उन्होंने शाल्व के सैनिकों को क्षत-विक्षत कर दिया। शाल्व घायल होकर अंतर्धान हो गया। एक अपरिचित व्यक्ति ने उसका दौत्य कर्म संपन्न करते हुए कृष्ण से कहा कि शाल्व ने उनके पिता को कैद कर लिया है। कुछ क्षण तो कृष्ण उदास रहे, फिर अचानक विमान पर शाल्व को वसुदेव के साथ देख वे समझ गये कि यह सब शाल्व नहीं, माया मात्र है। उन्होंने सुदर्शन चक्र से शाल्व को मार डाला। विमान चूर-चूर होकर समुद्र में गिर गया। शाल्व के वध और सोम विमान के नाश के उपरांत क्रमशः तदंवक्त्र तथा विदूरक भी कृष्ण के हाथों मारे गये।

श्रीमद् भा०, १०।७६-७७, १०।७८।१-१६

(ख) शाल्व म्लेच्छों का राजा था। शल्य के वधोपरांत शाल्व ने पांडवों से युद्ध किया था। उसका हाथी अत्यंत बलशाली था। धृष्टद्युम्न से युद्ध करते हुए पहले तो उसका हाथी थोड़ा पीछे हटा, फिर क्रुद्ध होकर उसने धृष्टद्युम्न के रथ को सारथि सहित कुचल डाला, फिर सूंड़ से उठाकर पटक दिया। उसका क्रोध देखकर ही धृष्टद्युम्न रथ से नीचे कूद गया तथा अपनी गदा उठाकर मारी, जिससे हाथी का मस्तक विदीर्ण हो गया, तभी सात्यकि ने एक तीखे भल्ल से शाल्व का सिर काट दिया।

म० भा०, शल्यपर्व, २०

शिखंडी काशीराज की तीन कन्याओं में अंबा सबसे बड़ी थी। भीष्म ने स्वयंवर में अपनी शक्ति से उन तीनों का अपहरण कर अपने छोटे भाई विचित्रवीर्य से विवाह के निमित्त माता सत्यवती को सौंपना चाहा, तब अंबा ने बताया कि वह शाल्वराज से विवाह करना चाहती है। उसे वयोवृद्ध ब्राह्मणों के साथ राजा शाल्व के पाज भेज दिया गया। शाल्व ने अंबा को ग्रहण नहीं किया। अतः उसने वन में तपस्वियों की शरण ग्रहण की। तपस्वियों के मध्य उसका साक्षात्कार अपने नाना महात्मा राजर्षि होत्रवाहन से हुआ। होत्रवाहन ने उसे पहचानकर गले से लगा लिया। संयोगवश वहां परशुराम के प्रिय सखा अकृतव्रण भी उपस्थित थे। उनसे सलाह कर नाना ने अंबा को परशुराम की शरण में भेज दिया। परशुराम ने समस्त कथा सुनकर पूछा कि वह किससे अधिक रुष्ट है—भीष्म से अथवा शाल्वराज से? अंबा ने कहा कि यदि भीष्म उसका अपहरण न करते तो उसे यह कष्ट नहीं उठाना पड़ता। अतः परशुराम भीष्म को मार डालें। परशुराम ने उसे अभयदान दिया तथा कुरुक्षेत्र में जाकर भीष्म को ललकारा। परशुराम भीष्म के गुरु रहे थे। आदरपूर्वक उन्हें प्रणाम कर दोनों का युद्ध प्रारंभ हुआ। कभी परशुराम मूर्च्छित हो जाते, कभी भीष्म। एक बार मूर्च्छा में भीष्म रथ से गिरने लगे तो उन्हें आठ ब्राह्मणों ने अधर में अपनी भुजाओं पर रोक लिया कि वे भूमि पर न गिरें। उनकी माता गंगा ने रथ को थाम लिया। ब्राह्मणों ने पानी के छींटे देकर उन्हें निर्भय रहने का आदेश दिया। उस रात आठों ब्राह्मणों (अष्ट वसुओं) ने स्वप्न में दर्शन देकर भीष्म से अभय रहने के लिए कहा तथा युद्ध में प्रयुक्त करने के लिए स्वाप नामक अस्त्र भी प्रदान किया। वसुओं ने कहा कि पूर्वजन्म में भीष्म उसकी प्रयोग-विधि जानते थे, अतः अनायास ही 'स्वाप' का प्रयोग कर लेंगे तथा परशुराम इससे अनभिज्ञ हैं। अगले दिन रणक्षेत्र में पहुंचकर गत अनेक दिवसों के क्रमानुसार दोनों का युद्ध प्रारंभ हुआ। भीष्म ने 'स्वाप' नामक अस्त्र का प्रयोग करना चाहा, किंतु नारद आदि देवताओं ने तथा माता गंगा ने बीच में पड़कर दोनों का युद्ध रुकवा दिया। उन्होंने कहा कि युद्ध व्यर्थ है, क्योंकि दोनों परस्पर अवध्य हैं। परशुराम ने अंबा से उसकी प्रथम इच्छा पूरी न कर पाने के कारण क्षमा-याचना की तथा दूसरी कोई इच्छा जाननी चाही। अंबा ने इस आकांक्षा से कि वह स्वयं ही भीष्म को मारने योग्य शक्ति संचय कर पाये, घोर तपस्या की। गंगा ने दर्शन देकर कहा—"तेरी यह इच्छा कभी पूर्ण नहीं होगी। यदि तू तपस्या करती हुई ही प्राण त्याग करेगी, तब भी तू मात्र बरसाती नदी बन पायेगी।" तीर्थ करने के निमित्त वह वत्स देश में भटकती रहती थी। अतः मृत्यु के उपरांत तपस्या के प्रभाव से उसके आधे अंग वत्सदेश स्थित अंबा नामक बरसाती नदी बन गये तथा शेष आधे अंग वत्सदेश की राजकन्या के रूप में प्रकट हुए। उस जन्म में भी उसने तपस्या करने की ठान ली। उसे नारी-रूप से विरक्ति हो गयी थी। वह पुरुष-रूप धारण कर भीष्म को मारना चाहती थी। शिव ने उसे दर्शन दिये। उन्होंने वरदान दिया कि वह द्रुपद के यहां कन्या-रूप में जन्म लेगी; कालांतर में युद्ध-क्षेत्र में जाने के लिए उसे पुरुषत्व प्राप्त हो जायेगा तथा वह भीष्म की हत्या करेगी। अंबा ने संतुष्ट होकर, भीष्म को मारने के संकल्प के साथ

चिता में प्रवेश कर आत्मदाह किया। उधर द्रुपद की पटरानी के कोई पुत्र नहीं था। कौरवों के वध के लिए पुत्र-प्राप्ति के हेतु द्रुपद ने घोर तपस्या की और शिव ने उन्हें भी दर्शन देकर कहा कि वे कन्या को प्राप्त करेंगे जो बाद में पुत्र में परिणत हो जायेगी। अतः जब शिखंडिनी का जन्म हुआ तब उसका लालन-पालन पुत्रवत् किया गया। उसका नाम शिखंडी बताकर सबपर उसका लड़का होना ही प्रकट किया गया। कालांतर में हिरण्यवर्मा की पुत्री से उसका विवाह कर दिया गया। पुत्री ने पिता के पास शिखंडी के नारी होने का समाचार भेजा तो वह अत्यंत क्रुद्ध हुआ तथा द्रुपद से युद्ध करने की तैयारी करने लगा। इधर सब लोग बहुत व्याकुल थे। शिखंडिनी ने वन में जाकर तपस्या की। यक्षस्थूलाकर्ण ने भावी युद्ध के संकट का विमोचन करने के निमित्त कुछ समय के लिए अपना पुरुषत्व उसके स्त्रीत्व से बदल लिया। शिखंडी ने यह समाचार माता-पिता को दिया। हिरण्यवर्मा को जब यह विदित हुआ कि शिखंडी पुरुष है—युद्ध-विद्या में द्रोणाचार्य का शिष्य है, तब उसने शिखंडी का निरीक्षण-परीक्षण कर द्रुपद के प्रति पुनः मित्रता का हाथ बढ़ाया तथा अपनी कन्या को मिथ्या वाचन के लिए डांटकर राजा द्रुपद के घर से ससम्मान प्रस्थान किया। इन्हीं दिनों स्थूलाकर्ण यक्ष के आवास पर कुबेर गये किंतु स्त्री-रूप में होने के कारण लज्जावश स्थूलाकर्ण ने प्रत्यक्ष उपस्थित होकर उनका सत्कार नहीं किया। अतः कुबेर ने कुपित होकर यज्ञ को शिखंडी के जीवित रहने तक स्त्री-रूप में रहने का शाप दिया। अतः शिखंडी जब पुरुषत्व लौटाने वहां पहुंचा तो स्थूलाकर्ण पुरुषत्व वापस नहीं ले पाया।

म० भा०, उद्योगपर्व, १७३-१९२

शिव महातपस्वी शंकर भगवान ने विवाह कर लिया और उमा के साथ रमण करने लगे तो देवताओं को बड़ी चिंता हुई। ब्रह्मा आदि देवता इसके लिए प्रयत्नशील हो उठे कि शिव जी का पुत्र तो हो किंतु वे अपना वीर्य न त्यागें, क्योंकि यदि उनके वीर्य से पुत्र उत्पन्न हुआ तो उसका तेज कोई भी सहन नहीं कर पायेगा। देवताओं ने शिव से जाकर प्रार्थना की। शिव ने पूछा कि यदि रमण के संदर्भ में उनका वीर्यपात हो गया तो कौन धारण करेगा? देवताओं ने कहा—"पृथ्वी धारण करेगी।" ऐसा ही हुआ और संपूर्ण पृथ्वी, वन, पर्वत उनके वीर्य के तेज से व्याप्त हो गये। देवताओं की प्रार्थना पर अग्नि और वायु ने शिव के वीर्य में प्रवेश किया। तदनुसार तेज श्वेत पर्वत में परिणत हो गया, उस पर मूंज (सरपत) का जंगल हो गया और वहां अग्नि से स्वामी कार्तिक (कार्तिकेय) उत्पन्न हुए। भवानी पार्वती ने रुष्ट होकर (कि देवताओं ने उन्हें शिव का वीर्य धारण नहीं करने दिया) समस्त देवताओं को अपनी पत्नियों से निःसंतान रहने का शाप दिया और पृथ्वी को बहुतों की भार्या बनने का शाप दिया। तदनंतर शिव और पार्वती उत्तर की तलहटी जाकर तप करने लगे।

वा० रा०, बाल कांड, ३६।५-२९

सृष्टि-रचना से पूर्व मात्र सदाशिव थे। उनकी इच्छा सृष्टि रचने की हुई। उन्होंने एक मनुष्य को उत्पन्न किया जो सर्वविद्या, सर्वशक्तिसंपन्न था। उसकी चार भुजाएं थीं। वह शंख, चक्र, गदा, मुकुट, वैजयंती माला, पीत वस्त्र तथा पद्म धारण किये थी। वे विष्णु कहलाये। शिव ने उन्हें योग-विद्या सिखाकर तप करने का आदेश दिया। तप की कठिनता के कारण विष्णु को इतना पसीना आया कि नदी बहने लगी। वे स्वयं मूर्च्छित होकर गिर पड़े। सदाशिव की इच्छा से उनकी नाभि से एक कमल उत्पन्न हुआ। शिव ने अपनी दाहिनी भुजा से ब्रह्मा को जन्म देकर कमल पर छोड़ दिया। कालांतर में विष्णु मूर्च्छाविहीन हो गये। उनमें और ब्रह्मा में अहंकारवश विवाद छिड़ गया। विष्णु ब्रह्मा को अपना पुत्र बताते थे क्योंकि उनकी नाभि से उत्पन्न हुए कमल पर ही ब्रह्मा का जन्म हुआ था। शिव ने बड़वाग्नि के समान ओजस्वी रूप में प्रकट होकर दोनों का विवाद शांत किया। सदाशिव ने ब्रह्मा को सृष्टि-रचना करने के लिए और विष्णु को पालन करने के लिए कहा। उन्होंने यह भी आदेश दिया कि संकट होने पर लोग लिंग की पूजा करें। सदाशिव जब अवतार लेंगे तब रुद्र कहलाएंगे। उनकी अर्द्धांगिनी उमा दो अंशों में प्रकट होंगी। लक्ष्मी तथा सुरा दोनों क्रमशः विष्णु तथा ब्रह्मा के साथ रहेंगी। उमा स्वयं प्रकट होकर शिव को अंगीकार करेगी।

शि० पु०, १।पूर्वार्द्ध, ५-८

शिव-धनुष राजा जनक के पूर्वजों में निमि के ज्येष्ठ पुत्र देवरात थे। शिव-धनुष उन्हींकी धरोहरस्वरूप राजा जनक के पास सुरक्षित था। दक्षयज्ञ विनष्ट होने

के अवसर पर रुष्टमना शिव ने इसी धनुष को टंकार कर कहा था कि देवताओं ने उन्हें यज्ञ में भाग नहीं दिया, इसलिए वे धनुष से सबका मस्तक काट लेंगे। देवताओं ने बहुत स्तुति की तो भोलानाथ ने प्रसन्न होकर यह धनुष उन्हीं देवताओं को दे दिया। देवताओं ने राजा जनक के पूर्वजों के पास वह धनुष धरोहरस्वरूप रखा था।

बा० रा०, बाल कांड, ६६।५-१२

एक बार राजा जनक ने एक यज्ञ किया। विश्वामित्र तथा मुनियों ने राम और लक्ष्मण को भी उस यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित किया। उन्होने कहा कि उन दोनों को शिव-धनुष के दर्शन करने का अवसर भी प्राप्त होगा।

बा० रा०, बाल कांड, ३१।५-१४

शिवलिंग आदिकाल में ब्रह्मा ने सबसे पहले महादेव जी से संपूर्ण भूतों की सृष्टि करने के लिए कहा। स्वीकृति देकर शिव भूतगणों के नाना दोषों को देख जल में मग्न हो गये तथा चिरकाल तक तप करते रहे। ब्रह्मा ने बहुत प्रतीक्षा के उपरांत भी उन्हें जल में ही पाया तथा सृष्टि का विकास नहीं देखा तो मानसिक बल से दूसरे भूतस्रष्टा को उत्पन्न किया। उस विराट पुरुष ने कहा—"यदि मुझसे ज्येष्ठ कोई नहीं हो तो मैं सृष्टि का निर्माण करूंगा।" ब्रह्मा ने यह बताकर कि उस 'विराट पुरुष' से ज्येष्ठ मात्र शिव हैं; वे जल में ही डूबे रहते हैं, अत: उससे सृष्टि उत्पन्न करने का आग्रह किया है। उसने चार प्रकार के प्राणियों का विस्तार किया। सृष्टि होते ही प्रजा भूख से पीड़ित हो प्रजापति को ही खाने की इच्छा से दौड़ी। तब आत्मरक्षा के निमित्त प्रजापति ने ब्रह्मा से प्रजा की आजीविका निर्माण का आग्रह किया। ब्रह्मा ने अन्न, औषधि, हिंसक पशु के लिए दुर्बल जंगल-प्राणियों आदि के आहार की व्यवस्था की। उत्तरोत्तर प्राणी समाज का विस्तार होता गया। शिव तपस्या समाप्त कर जल से निकले तो विविध प्राणियों को निर्मित देख क्रुद्ध हो उठे तथा उन्होंने अपना लिंग काटकर फेंक दिया जो कि भूमि पर जैसा पड़ा था, वैसा ही प्रतिष्ठित हो गया। ब्रह्मा ने पूछा—"इतना समय जल में रहकर आपने क्या किया, और लिंग उत्पन्न कर इस प्रकार क्यों फेंक दिया?"

शिव ने कहा—"पितामह, मैंने जल में तपस्या से अन्न तथा औषधियां प्राप्त की हैं। इस लिंग की अब कोई आवश्यकता नहीं रही, जबकि प्रजाओं का निर्माण हो चुका है।" ब्रह्मा उनके क्रोध को शांत नहीं कर पाये। सतयुग बीत जाने पर देवताओं ने भगवान का भजन करने के लिए यज्ञ की सृष्टि की। यज्ञ के लिए साधनों, हव्यों, द्रव्यों की कल्पना की। वे लोग रुद्र के वास्तविक रूप से परिचित नहीं थे, अत: उन्होंने शिव के भाग की कल्पना नहीं की। परिणामत: क्रुद्ध होकर शिव ने उनके दमन के लिए साधन जुटाने प्रारंभ कर दिये। यज्ञ पांच प्रकार के माने जाते हैं: लोक, क्रिया, सनातन गृह, पंचभूत तथा मनुष्य। रुद्र ने लोक यज्ञ तथा मनुष्य यज्ञों से पांच हाथ लंबा धनुष बनाया। वषट्कार (पुरोहित) ही उसकी प्रत्यंचा थी। यज्ञ के चारों अंग (स्नान, दान, होम और जप) शिव के कवच बने। उन्हें धनुष उठाए देख पृथ्वी भयभीत होकर कांपने लगी। देवताओं के यज्ञ में, वायु की गति के रुकने, समिधा आदि के प्रज्वलित न होने, सूर्य, चंद्र आदि के श्रीहीन होने से व्याघात उत्पन्न हो गया। देवता भयातुर हो उठे। रुद्र ने भयंकर वाण से यज्ञ का हृदय भेद दिया—वह मृग का रूप धारण कर वहां से भाग चला। रुद्र ने उसका पीछा किया—वह मृगशिरा नक्षत्र के रूप में आकाश में प्रकाशित होने लगा। रुद्र उसका पीछा करते हुए आर्द्रा नक्षत्र के रूप में प्रतिभासित हुए। यज्ञ के समस्त अवयव वहां से पलायन करने लगे। रुद्र ने सविता की दोनों बांहें काट डालीं तथा भग की आंखें और पूषा के दांत तोड़ डाले। भागते हुए देवताओं का उपहास करते हुए शिव ने धनुष की कोटि का सहारा ले सबको वहीं रोक दिया। तदनंतर देवताओं की प्रेरणा से वाणी ने महादेव के धनुष की प्रत्यंचा काट डाली, अत: धनुष उछलकर पृथ्वी पर जा गिरा। तब सब देवता मृग-रूपी यज्ञ को लेकर शिव की शरण में पहुंचे। शिव ने उन सबपर कृपा कर अपना कोप समुद्र में छोड़ दिया जो बड़वानल बनकर निरंतर उसका जल सोखता है। शिव ने पूषा को दांत, भग की आंखें तथा सविता को बांहें प्रदान कर दीं तथा जगत् एक बार फिर से सुस्थिर हो गया।

म० भा०, सौप्तिकपर्व, अध्याय १७-१८

सती की मृत्यु के उपरांत उनके वियोग में शिव नग्न रूप में भटकने लगे। वन में घूमते शिव को देख मुनि-पत्नियां आसक्त होकर उनसे चिपट गयीं। यह देखकर

मुनिगण रुष्ट हो उठे। उनके शाप से शिव का लिंग पृथ्वी पर गिर पड़ा। लिंग पाताल पहुंच गया। शिव क्रोधवश तरह-तरह की लीला करने लगे। पृथ्वी पर प्रलय के चिह्न दिखायी दिए। देवताओं ने शिव से प्रार्थना की कि वे लिंग धारण करें। वे उसकी पूजा का आदेश देकर अंतर्धान हो गये। कालांतर में प्रसन्न होकर उन्होंने लिंग धारण कर लिया तथा वहां पर प्रतिमा बनाकर पूजा करने का आदेश दिया।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध, ३।५-६

शिवव्रत शिवव्रत नामक विजयप्रेमी राजा ने गौतमी के तट पर यज्ञ आरंभ करवाया। हिरण्यक नामक राक्षस के आ जाने से सब देवता भयभीत हो गये। कुछ स्वर्ग भाग गये, कुछ जैसे अग्नि शमीवृक्ष में, विष्णु पीपल में, सूर्य अर्क (मदार) में, शिव वट में तथा सोम पलाश में छिप गये। अश्विनीकुमारों ने यज्ञाश्व में छिपकर अपनी रक्षा की। ब्रह्मा की आज्ञा से वसिष्ठ ने उस दैत्य को लाठी से भगा दिया। तदुपरांत यज्ञ का पुनः श्रीगणेश हुआ।

ब्र० पु०, १०३।

शिवि उशीनर का पुत्र शिवि तथा कुरुवंशी सुहोत्र परस्पर मित्र थे। एक बार वे सत्संग से लौट रहे थे। दोनों ही एक संकीर्ण मार्ग पर जा अटके क्योंकि मित्र होने के कारण दोनों बराबर थे। कौन किसको मार्ग दे, वे तय नहीं कर पा रहे थे। नारद ने वहां प्रकट होकर उनसे कहा कि विनय ही सबसे बड़ी वस्तु है। विनय से बराबर वाले को भी मार्ग प्रदान किया जा सकता है। यही उदारता है। सुहोत्र ने, यह सुनकर, शिवि को अपनी दायीं ओर से मार्ग दे दिया।

शिवि की दान विषयक प्रसिद्धि सुनकर देवताओं ने उसकी परीक्षा लेने की ठानी। अग्नि ने कबूतर का रूप धारण किया तथा इंद्र ने बाज का। कबूतर के रूप में अग्नि राजा शिव की शरण में जाकर बोला—"महाराज, मैं कबूतर नहीं, अपितु ऋषि हूं, अपनी इच्छा से ही यह रूप धरा है तथा इस बाज से प्राणों की रक्षा करने के लिए आपकी शरण में आया हूं।" बाज-रूपी इंद्र ने कहा--"महाराज, यह मेरा भोजन है—इसकी रक्षा करके आप मुझे अपने भोजन से वंचित कर रहे हैं।" राजा शिवि ने अनेक प्रकार के भोजन आदि का प्रबंध करने की बात कही, किंतु बाज को कुछ भी मान्य नहीं था। अंत में यह माना कि यदि कबूतर के बराबर दायीं जांघ का मांस राजा दे दे, तो वह कबूतर को प्राणदान दे सकता है। राजा ने स्वीकार कर लिया। तराजू के एक पलड़े में कबूतर तथा दूसरे में काट-काटकर राजा अपना मांस रखता गया किंतु कबूतर हर बार भारी बैठता था। अंत में, जब शिवि स्वयं पलड़े में जा बैठा, 'कबूतर की प्राण-रक्षा हो हो गयी' कहकर बाज-रूपी इंद्र अंतर्धान हो गया तथा अग्निदेव ने अपना परिचय देकर शिवि के शरीर को पूर्ववत् स्वस्थ कर दिया। शिवि के परीक्षोत्तीर्ण होने पर दोनों ही देवता प्रसन्नचित्त लौट गये।

एक बार विश्वामित्र के पुत्र अष्टक ने अश्वमेध यज्ञ किया। यज्ञ से स्वर्ग की ओर जाते हुए अष्टक, प्रतर्दन, वसुमना तथा शिवि को मार्ग में नारद मुनि मिले। उनके अनुरोध पर मुनि उनके रथ पर बैठ गये। उन लोगों ने पूछा कि हम सबमें से किस क्रम के लोग पृथ्वी पर पुनः जायेंगे और क्यों? नारद मुनि ने बताया—"आत्म-श्लाघा के कारण सर्वप्रथम अष्टक, तदुपरांत क्रमशः दान देकर भी ब्राह्मण की निंदा करने के हेतु प्रतर्दन, छलपूर्वक बात करके भी रथ-दान न देने के कारण वसुमना, राजा शिवि की अपेक्षा हलके व्यवहार वाले होने के कारण नारद तथा लोभ की लिप्सा से ग्रस्त न रहकर दान करने के कारण सबसे अंत में शिवि स्वर्ग से भूलोक पर उतरेंगे।

म० भा०, वनपर्व, अ० १९४, १९७, १९८
म० भा०, द्रोणपर्व, अ० ५८
म० भा०, शांतिपर्व, २९।३९-४४

शिशुपाल शिशुपाल कृष्ण की बूआ का लड़का था। दमघोष के कुल में जब शिशुपाल का जन्म हुआ तब उसके तीन नेत्र तथा चार भुजाएं थीं। वह गधे की तरह रो रहा था। माता-पिता त्रस्त होकर उसका परित्याग कर देना चाहते थे। तभी आकाशवाणी हुई कि बालक बहुत वीर होगा तथा उसकी मृत्यु का कारण वह व्यक्ति होगा जिसकी गोद में जाने पर बालक अपने भाल-स्थित नेत्र तथा दो भुजाओं का परित्याग कर देगा। उसके जन्म के विषय में जानकर अनेक राजा उसे देखने आये। शिशुपाल के पिता ने बारी-बारी से सभी की गोद में बालक दिया। अंत में शिशुपाल के ममेरे भाई श्रीकृष्ण की गोद में जाते ही उसकी दो भुजाएं पृथ्वी पर गिर गयीं तथा ललाटवर्ती नेत्र ललाट में विलीन हो गया। बालक की माता ने दुखी होकर श्रीकृष्ण से उसके प्राणों

की भीख मांगी। श्रीकृष्ण ने उसके सौ अपराध क्षमा करने का वचन दिया। कालांतर में शिशुपाल ने अनेक बार अपराध किये तथा गोविंद ने उसे क्षमा किया। युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के लिए आमंत्रण मिलने पर सभी राजा इंद्रप्रस्थ में इकट्ठा हुए। आमंत्रित अतिथियों में भीष्म की आज्ञा से युधिष्ठिर ने सर्वप्रथम श्रीकृष्ण को अर्घ्य समर्पित किया (श्रीकृष्ण की अग्रपूजा की)। यह देखकर शिशुपाल को बहुत क्रोध आया। उसने कहा कि कृष्ण वृष्णिवंशी हैं, कहीं के राजा नहीं। सर्वप्रथम उन्हें अर्घ्य अर्पित करने पर शेष सबका अपमान होता है। सबके समझाने पर भी शिशुपाल अपनी बात पर अड़ा रहा तथा कुछ राजाओं के साथ वहां से चले जाने की धमकी भी देने लगा। अंत में उसने कृष्ण को युद्ध के लिए ललकारा। कृष्ण ने सबके सम्मुख, यह स्पष्ट करते हुए कि वे शिशुपाल के सौ अपराध पहले ही क्षमा कर चुके हैं और यह उसका एक सौ एकवां अपराध है, उसे सुदर्शन चक्र से मार डाला। शिशुपाल के मृत शरीर का परित्याग कर एक प्रकाश-पुंज आकाश की ओर उठा। उस प्रकाश-पुंज ने श्रीकृष्ण को प्रणाम किया तथा फिर उन्हींमें विलीन हो गया। पांडवों ने शिशुपाल का अंत्येष्टि संस्कार किया तथा उसके पुत्र का राज्याभिषेक किया।

म० भा०, सभापर्व, ३६।२५-३२, ३७, ३६

शिशुपाल पूर्वजन्मों में हिरण्यकशिपु तथा रावण के रूप में जन्म ले चुका था। हिरण्यकशिपु के रूप में वह नृसिंह भगवान को नहीं पहचान पाया, अतः उसे मोक्ष की प्राप्ति नहीं हुई। रजोगुण प्रधान रहने के कारण वह अगले जन्म में भोग-संपत्तिप्राप्त रावण बना। जानकी के रूप पर आसक्त रहने के कारण 'नाम-महिमा' को न समझकर राम द्वारा मारा गया तथापि उसकी मनुष्य-बुद्धि बनी रही, अतः शिशुपाल के रूप में जन्म लिया। शिशुपाल, भले ही द्रोहवश, गाली देते हुए राम के विभिन्न स्वरूपों का स्मरण करता था, नामोच्चारण भी करता था, अतः तदुपरांत वह भगवान में ही लीन हो गया।

वि० पु०, ४।१५।१-१७

पांडवों के राजसूय यज्ञ में अग्रपूजा के लिए सहदेव ने श्रीकृष्ण का नाम प्रस्तुत किया तो शिशुपाल क्रोध से आग बबूला हो गया। उसने कहा—"कृष्ण का न उच्च कुल है, न जाति। ययाति से शापित, समुद्र में घर बनाकर रहनेवाला वह अग्रपूजा के योग्य नहीं है।" कृष्ण के पक्षपाती राजाओं ने शिशुपाल को युद्ध के लिए ललकारा। कृष्ण ने उन सबको शांत कर स्वयं शिशुपाल का सिर अपने चक्र से काट डाला। द्वेष की अतिशयता के कारण शिशुपाल का मन तन्मयतापूर्वक कृष्ण को स्मरण करता था, अतः मृत्यु के उपरांत वह कृष्ण का पार्षद हो गया।

श्रीमद् भा०, १०।७४

शुंभ शुंभ ने अपने भाई निशुंभ को चंडिका के हाथों मरता देखकर देवी पर आक्रमण किया। चंडिका तथा विभिन्न शक्तियों के साथ असुरों का भयानक संग्राम हुआ। अस्त्र-शस्त्रविहीन होने के उपरांत शुंभ घूंसा तानकर देवी की ओर बढ़ा। देवी ने त्रिशूल तथा शूल के प्रहारों से उसे मार डाला। कौमारी की शक्ति से अनेक असुर नष्ट हो गये। ब्रह्माणी के मंत्रपूत जल का स्पर्श पाते ही अनेक असुर नष्ट हो गये। शुंभ के वध के उपरांत प्रकृति स्वच्छ-निर्मल हो गयी। अग्निशाला की बुझी हुई आग अपने-आप प्रज्वलित हो उठी। देवताओं ने प्रसन्नचित्त होकर देवी की स्तुति की। देवी ने कहा—"वैवस्वत मन्वंतर के अट्ठाइसवें युग में शुंभ और निशुंभ नामक दो अन्य दैत्य जन्म लेंगे तब मैं नन्द और गोप के घर जन्म लेकर विंध्याचल जाकर रहूंगी और उन दोनों का नाश करूंगी। उनका रक्तपान करने के कारण मैं 'रक्त दंतिका' कहलाऊंगी। तदनंतर सौ वर्ष तक वर्षा न होने के कारण देवताओं को स्वप्न के फलस्वरूप अयोनिजा अवतरित होकर सौ नेत्रों से उन्हें देखूंगी, अतः लोग मुझे 'शताक्षी' कहेंगे। वर्षा न होने पर अपने शरीर से उत्पन्न हुए शाकों से सृष्टि का पालन करने के कारण 'शाकंभरी' कहलाऊंगी। उसी अवतार में दुर्गम नामक दैत्य का हनन करने के कारण मैं 'दुर्गा देवी' के नाम से अभिहित होऊंगी। भीम-रूप धारण करके राक्षसों का भक्षण करने के कारण मैं 'भीमा देवी' कहलाऊंगी। जब अरुण नामक दैत्य तीनों लोकों में उपद्रव मचाएगा तब छः पैरों वाले भ्रमरों के रूप में दैत्य का हनन करके 'भ्रामरी' नाम भी प्राप्त करूंगी। जब-जब दानवी बाधा आयेगी, मैं अवश्य अवतार लेकर बाधा का नाश करूंगी।" देवताओं को उपर्युक्त आश्वासन देकर देवी अंतर्धान हो गयी।

मा० पु०, ८७-८६।

शुंभ-निशुंभ दोनों दैत्य भाई थे। उन्होंने घोर तपस्या से

ब्रह्मा को प्रसन्न किया। ब्रह्मा ने वर मांगने को कहा तो उन्होंने कहा—"स्त्रियों से तो हमें भय नहीं है। त्रिभुवन में कोई भी पशु-पक्षी और पुरुष आदि जीव हमें न मार पायें।" ब्रह्मा ने उन्हें यह वर दे दिया। शुक्र ने जाना तो उनसे बड़े भाई शुंभ का राज्याभिषेक किया। रक्तबीज, चंड, मुंड इत्यादि पृथ्वीनिवासी समस्त असुर शुंभ-निशुंभ से जा मिले। निशुंभ इंद्रपुरी पर अधिकार करने गया। इंद्र के वज्र-प्रहार से वह अचेत हो गया। शुंभ ने युद्ध करके समस्त देवताओं के अधिकार, शस्त्र इत्यादि छीन लिये। वृहस्पति की प्रेरणा से देवताओं ने परादेवी अंबिका की स्तुति की। अंबिका ने साक्षात् रूप में दर्शन देकर स्मरण करने का कारण पूछा। शुंभ-निशुंभ का वध करने के लिए सिंहारूढ़ देवी ने शुंभ के नगर में प्रवेश किया। शुंभ-निशुंभ के अनुचर चंड और मुंड ने मार्ग में देवी के दर्शन किये—अंबिका देवी गान कर रही थी तथा कालिका देवी उसके सामने विराजमान थी। चंड-मुंड ने राजा को सूचित किया। उन्होंने उस सुंदरी से विवाह करने का सुझाव भी दिया। राजा ने दूत के द्वारा प्रस्ताव भेजा। देवी ने सहर्ष स्वीकार करके कहा—"इसी निमित्त तो यहां आयी हूं। मैंने प्रतिज्ञा की है कि जो कोई रण में मुझे पराजित करेगा, उसी से विवाह करूंगी।" रण-क्षेत्र में अकेली नारी से युद्ध करने किसे जाना चाहिए, इस विषय पर निशुंभ से परामर्श करके शुंभ ने धूम्रलोचन को भेजा। उससे यह भी कहा कि यदि नारी अकेली है तो हमसे विवाह करने के निमित्त उसे ले आओ। यदि उसके साथ मनुष्य, देवता आदि जो भी हों तो उन्हें वहीं मार डालना तथा सुंदरी को ले आना। धूम्रलोचन ने देवी से कहा कि वह उसकी आकांक्षा जान गया है, उसका अभिप्राय रतिसंग्राम से है। देवी ने उसे मार डाला तथा भयंकर गर्जना की। सेना ने भागकर शुंभ की शरण ली। सैनिकों के यह बताने पर कि 'धूम्रलोचन के हनन पर आकाश से फूलों की वर्षा हुई, अतः निश्चय देवतागण देवी के सहायक हैं,' शुंभ और निशुंभ ने मंत्रणा की तथा चंड और मुंड को युद्ध के लिए भेजा। भयानक युद्ध में काली चंड-मुंड को पकड़कर अंबिका के पास ले गयी। अंबिका ने रण-क्षेत्र में उनकी हिंसा करने को गर्जना की, अतः कालिका ने यूप (यज्ञ वेदी) पर देवताओं की कार्य-सिद्धि के निमित्त उन दोनों की बलि दे दी। अंबिका ने प्रसन्न होकर कालिका को वर दिया कि पृथ्वी स्थल पर चंड-मुंड की वलि देने के कारण वह (कालिका) चामुंडा देवी नाम से विख्यात होगी। तदनंतर रक्तबीज को मारकर देवी ने युद्ध के लिए उपस्थित अपरिमित सेना का भक्षण, उनपर पदाघात, शस्त्राघात इत्यादि करना आरंभ किया। देवताओं की शक्तियों, देवताओं के अनुरूप ही रूपाकार वाहन इत्यादि धारण करके युद्धक्षेत्र में पहुंच गयी। देवी ने निशुंभ को भी मार डाला, यह सुनकर शुंभ अत्यंत क्रुद्ध तथा विस्मित हुआ। वह सोचने लगा कि एक ओर इतना मादक रूप और दूसरी ओर इतना शौर्य! अंबिका देवी भी विचित्र है। यही उसने देवी से कहा भी। देवी ने हंसकर कहा—"मुझसे नहीं तो कुरूपा कालिका अथवा चामुंडा से युद्ध कर देख। मैं केवल दर्शिका रहूंगी।" कालिका ने पहले हाथ-पांव तथा फिर उसका मस्तक काट डाला।

दे० भा०, ५।२१-३१

शुक राम की वानर-सेना लंका के निकट पहुंच गयी तो रावण ने शुक और सारण को भेदिया बनाकर वहां भेजा। विभीषण ने उन दोनों को पहचान लिया। वानरों ने पीटकर उन्हें छोड़ दिया।

बा० रा०, युद्ध कांड, २५।१२-२५

शुकदेव व्यास मुनि अग्नि प्रकट करने के लिए अरणीकाष्ठ द्वय का मंथन कर रहे थे। तभी उधर घृताची नामक सुंदरी अप्सरा आयी। उसके सौंदर्य पर वे मुग्ध हो गये। अप्सरा ने शुकी का रूप धारण कर लिया किंतु व्यास मुनि अपनी काम-भावना का शमन नहीं कर पाये। अतः अरणियों पर उनका वीर्यपात हो गया तथापि वे अग्नि के हेतु उनका मंथन करते रहे। उन अरणियों से शुकदेव का जन्म हुआ। तत्काल गंगा ने प्रकट होकर बालक को तृप्त किया, आकाश से शुकदेव के लिए दंड और काला चर्म पृथ्वी पर गिरे, गंधर्व और अप्सरा आदि ने नृत्य गायन किया तथा शिव-पार्वती ने नवजात शिशु का उपनयन-संस्कार किया। कुशाग्र बुद्धि शुकदेव ने शीघ्र ही वेदशास्त्रों पर अधिकार प्राप्त कर लिया। वे मोक्ष-धर्म की ओर आकृष्ट थे। उन्हें शेष तीनों आश्रमों का कोई आकर्षण नहीं था। पिता की आज्ञा पाकर वे मोक्ष का परम आश्रय पूछने के लिए मिथिला की ओर चल दिये। पिता ने उन्हें साधारण मनुष्य की तरह जाने का आदेश दिया तथा आकाश-मार्ग से जाने के लिए मना कर दिया। अनेक प्राकृतिक बाधाएं सहकर शुकदेव जनक

के राज्य में पहुंचे। महल में पहुंचने पर वारांगनाओं ने उनका स्वागत किया। उन्होंने निर्लिप्त भाव से भजन, पूजन, ध्यान आदि करते हुए रात्रि व्यतीत की। तदुपरांत सपरिवार राजा ने उसकी सेवा में उपस्थित होकर प्रणाम किया। शुकदेव के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा कि प्रत्येक मनुष्य के लिए जीवन में चार आश्रमों का पालन बताया गया है किंतु जो ब्रह्मचर्यकाल में ही मोक्ष धर्म को समझ ले, उसके लिए शेष आश्रमों में प्रवेश करना आवश्यक नहीं है। शुकदेव अपने पिता के पास लौट गये। व्यास मुनि के चार और शिष्य थे। एक दिन उन चारों ने मुनि से वर मांगना चाहा कि उन चार तथा शुकदेव के इतर कोई छठा शिष्य उनकी अपेक्षा अधिक वेदाध्ययन न कर पाये किंतु व्यास ने यह स्वीकार नहीं किया। चारों शिष्यों की शिक्षा समाप्त होने पर उन्होंने उन चारों को अन्यत्र जाने की आज्ञा दे दी। उनके प्रस्थानोपरांत पिता-पुत्र दो ही व्यक्ति आश्रम में रह गये। आश्रम कोलाहलशून्य रहने लगा। उन्हीं दिनों नारद मुनि उनके आश्रम में पहुंचे और उन्होंने चितारत मौन पिता-पुत्र को वेद-पाठ के लिए प्रेरित किया। तदुपरांत उन्होंने शुकदेव को वैराग्य, सदाचार तथा अध्यात्म विषयक उपदेश दिये। नारद ने बताया कि कर्म-फल के सम्मुख मनुष्य का बस नहीं चलता। शुकदेव ने निश्चय किया—"मैं योग-बल से देह त्याग कर वायु-रूप होकर सूर्य मंडल में प्रवेश करूंगा।" चंद्रमा का अमृतपान करने की इच्छा शुकदेव की नहीं थी, क्योंकि घटने-बढ़नेवाले चंद्रमा के लोक में मोक्ष नहीं प्राप्त हो सकता। वे पिता की आज्ञा लेकर कैलास पर्वत चले गये। योग-बल से उन्होंने मोक्ष-मार्ग खोज लिया। वे आकाश में सूर्य की ओर बढ़ने लगे। मार्ग में उन्हें नग्न स्नान करती हुई अप्सराएं मिलीं, किंतु उनमें कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ। उन्होंने उनसे कहा—"यदि मेरे पिता मुझे आवाज दें तो तुम सब मेरी ओर से उन्हें उत्तर देना।" वे आगे बढ़ गये। उन्होंने परम पद प्राप्त कर लिया। व्यास शुकदेव को स्मरण कर रोते रहे। फिर जोर-जोर से आवाज देते रहे और अपनी ही आवाज का उत्तर भी सुनते रहे। अप्सराओं ने व्यास को देख अपने वस्त्र धारण कर लिये। शंकर ने उन्हें सांत्वना प्रदान की। शंकर ने कहा—"तुम्हारे पुत्र ने उत्तम गति प्राप्त की है और तुम शोक कर रहे हो ? मेरे प्रसाद से तुम अपने पुत्र-सदृश छाया का जग में निरंतर दर्शन करते रहोगे।"

[म० भा०, शांतिपर्व, ३२४-३३३।

सत्यवती-पुत्र व्यास ने पुत्रेच्छा से तपस्या की। शिव ने प्रसन्न होकर उन्हें तेजस्वी पुत्र पाने का वरदान दिया। तदुपरांत व्यास सोचने लगे कि विवाह करने से गृहस्थ आश्रम में स्थायी रूप से आबद्ध हो जायेंगे। निकटस्थ अप्सरा, घृताची से संबंध स्थापित करने पर लोगों के परिहास के भागी बनेंगे। व्यास अभी विचारमग्न ही थे कि अप्सरा ने शुकी का रूप धारण कर लिया। व्यास अरणी मंथन कर रहे थे। कामग्रस्त होने के कारण उनसे अनजाने में ही वीर्यपात हो गया। अरणी मंथन के साथ वीर्य का भी मंथन हुआ। अतः अरणी के गर्भ से शुक प्रकट हुए। व्यास ने उनका जातकर्म संस्कार किया। शुकी को देखकर काम-भावना जागृत हुई थी, अतः व्यास ने बालक का नाम 'शुक' रखा। बड़े होने पर उन्होंने पर्याप्त विद्याध्ययन किया, तदुपरांत व्यास ने उन्हें विवाह करने के लिए कहा किंतु जन्मजात विरक्त शुक गृहस्थ के बंधन, दुःख और उलझाव में फंसने को तैयार नहीं हुए। व्यास ने उन्हें राजा जनक के पास भेजा जो राजा होते हुए भी विदेह कहलाते थे। उनसे ज्ञान-चर्चा करने के उपरांत शुकदेव ने पिता का कहना मानकर पितरों की कन्या पीवरी से विवाह कर लिया। कालांतर में उनके चार पुत्र (कृष्ण, गौरप्रभ, भूरि तथा देवश्रुत) तथा एक कन्या (एककीर्ति नामक) हुई। एककीर्ति का विवाह विभ्राज के पुत्र अणुह से हुआ। उसका पुत्र ब्रह्मदत्त हुआ। शुक कन्या का पुत्र होने के कारण वह ब्रह्मज्ञानी हुआ। तदुपरांत शुकदेव कैलास पर्वत पर चले गये।

दे० भा०, स्कंध, १।१०-१९

शुक्र शुक्र कठिन तपस्या के उपरांत भी शिव से वर नहीं प्राप्त कर पाये। शुक्र अपनी एक टांग पर खड़े होकर तपस्या करने लगे। शिव ने प्रसन्न होकर नक्षत्र लोक के ऊपर शुक्र लोक की स्थापना की तथा मृत्युंजय मंत्र भी उन्हें दिया।

शि० पु०, ११।१४

देवताओं से पराजित होकर दैत्य शुक्र की शरण में पहुंचे। शुक्र ने कहा कि वे शिव को तपस्या से प्रसन्न करके देवताओं के नाश के लिए मंत्र प्राप्त करने जायेंगे। उनके लौटने तक दैत्य नीतिपूर्वक व्यवहार करें। शिव ने शुक्र को कठिन तपस्या बतायी कि वह पैर ऊपर, सिर नीचे

करके एक सहस्र वर्ष तक तुष का धुआं पान करते रहें। शुक्र ने तपस्या आरंभ कर दी। शुक्र के तप के विषय में देवताओं को ज्ञात हुआ तो उन्होंने निहत्थे दैत्यों पर आक्रमण किया। दैत्य शुक्राचार्य की मां (भृगु की पत्नी) की शरण में चले गये। उसने अपने तपोबल से देवताओं को निद्रित कर दिया। विष्णु ने अर्द्धनिद्रित इंद्र को अपने शरीर में प्रवेश करने के लिए कहा। इस प्रकार उसे बचाकर सुदर्शन चक्र से शुक्र की मां का सिर काट डाला। भृगु ने रुष्ट होकर विष्णु को बार-बार पृथ्वी पर जन्म लेने का शाप दिया। भृगु ने तपोबल से अपनी पत्नी को पुनर्जीवित कर लिया। इंद्र ने घर लौटकर अपनी पुत्री जयंती से कहा कि वह शुक्र को प्रसन्न करे। जयंती ने तपस्यारत शुक्र की अत्यधिक सेवा की। अभीष्ट प्राप्त करने के उपरांत शुक्र ने जयंती के कहने पर उसे पत्नी-रूप में स्वीकार कर लिया तथा दस वर्ष तक उसके साथ रमण करने का वर भी दिया। रमणासक्त होने के कारण उनका दैत्यों से मिलन नहीं हो पाया। इस मध्य इंद्र की प्रेरणा से बृहस्पति ने शुक्र का रूप धारण करके दैत्यों को बुलाया तथा उन्हें देवताओं से निर्भय होकर रहने का आदेश दिया। दस वर्ष की समाप्ति पर पुत्रों सहित जयंती को देवताओं के संरक्षण में छोड़कर शुक्र दैत्यों के पास पहुंचे तो पाया कि छद्मवेशी बृहस्पति उन्हें जैन धर्म सम्मत अहिंसा का उपदेश दे रहे हैं। तदनुसार आततायी लोगों को मारना भी उचित नहीं है। शुक्र ने प्रकट होकर दैत्यों को समझाने का प्रयास किया किंतु वे मायावी शुक्र को ही वास्तविक गुरु मानकर शुक्र की अवमानना करने लगे। फलतः रुष्ट होकर शुक्र ने उन्हें शाप दिया कि उनका शीघ्र ही पराभव तथा अवज्ञा हो। सुअवसर जानकर बृहस्पति ने इंद्र से युद्ध करने के लिए कहा। देवताओं के आक्रमण से दैत्यों को ज्ञात हुआ कि उनका गुरु मायावी शुक्र था। व्याकुल चित्त से प्रह्लाद को आगे करके वे शुक्र के पास पहुंचे। प्रह्लाद के बहुत अनुनय-विनय करने पर शुक्र ने कहा कि एक बार तो दैत्यों का पराभव अवश्यंभावी है, तदुपरांत शुक्र मंत्र-बल से उनकी सहायता करेंगे। उन्होंने बताया कि वामन के रूप में बलि को छलकर विष्णु ने वर दिया था कि आगामी सावर्णिक में बलि को पुनः राज्य की प्राप्ति होगी। बलि इस समय गर्दभ रूप धारण करके शून्यभवन में रहता है। प्रह्लाद के नेतृत्व में दैत्यों ने देवताओं को परास्तप्राय कर दिया। इंद्र ने महेश्वरी देवी का आवाहन किया। उन्हें प्रकट रूप में देखकर दैत्यों ने भी उनकी शरण ग्रहण की तथा समय-समय पर किये गये देवताओं के छल का स्मरण दिलाया। देवी ने युद्ध समाप्त करने के निमित्त दानवों को पाताल चले जाने को कहा। देवी अंतर्धान हो गयीं और देव तथा दानव वैर-भाव छोड़कर परस्पर सुव्यवहार करने लगे।

दे० भा०, ४।११-१६।-

शुक्रतीर्थ भार्गव तथा अंगिरा के क्रमशः कवि (शुक्र) तथा बृहस्पति नामक दो पुत्र थे। भार्गव तथा अंगिरा ने परस्पर निश्चय किया कि दोनों में से कोई एक पुत्रों को संभाले तथा दूसरा निश्चिंत होकर रहे। अंततोगत्वा अंगिरा ने अभिभावकत्व संभाल लिया तथा भार्गव अन्यत्र रहने लगे। अंगिरा का व्यवहार पक्षपातपूर्ण था। इससे रुष्ट होकर उनसे आज्ञा लेकर कवि (शुक्र) गुरु की खोज में निकले। शुक्र पूर्ण ज्ञाता होकर पिता के पास जाना चाहते थे। गौतम के आदेशानुसार वे शिव के शिष्य हुए। शिव ने अनेक विद्याओं के साथ उन्हें मृतसंजीवनी विद्या भी प्रदान की। इससे मरे हुए प्राणी को पुनः जीवित किया जा सकता था। कवि (शुक्र) दैत्यों के गुरु हुए। किसी कारणवश बृहस्पति के पुत्र कच ने कवि से मृतसंजीवनी विद्या प्राप्त की तथा बृहस्पति और तदुपरांत देवताओं को दी। जिस स्थान पर (गौतमी के तट पर) शिव से कवि ने विद्या प्राप्त की थी, वह स्थान शुक्रतीर्थ नाम से विख्यात है।

ब्र० पु०, ९५।

शुक्लतीर्थ ब्रह्मा के शाप से प्राचीनबर्हिस् का पुत्र काला हो गया था तथा सबके यज्ञ नष्ट करता था। ब्रह्मा ने कहा था, वह तब तक शापित रहेगा जब तक कोई अमृत से उसका अभिषेक नहीं करेगा। भरद्वाज की पत्नी पैठीनसी अग्निसोम के लिए चरु बना रही थी। वह शापित पुरुष उसका चरु खा गया। भरद्वाज ने समस्त कारण जाना तो गौतमी के जल से उसका अभिषेक करके उसे शापमुक्त कर दिया। जहां-जहां जल छिड़का, वहां-वहां की वस्तुओं तथा व्यक्तियों का शुक्ल वर्ण हो गया, अतः वह स्थान शुक्लतीर्थ नाम से विख्यात है।

ब्र० पु०, १३३।-

शुद्धोदन शुद्धोदन ने अपने पुत्र को महाभिनिष्क्रमण के उपरांत छः वर्ष तक नहीं देखा था। पुत्र की प्रसिद्धि के

विषय में सुनकर उन्होंने पुत्र को बुलाने की कामना से बारी-बारी से अनेक अमात्य भेजे किंतु प्रत्येक अमात्य ने भगवान के पास जाकर प्रव्रज्या ग्रहण की तथा शुद्धोदन का संदेश नहीं दिया। अंत में राजा ने कालउदायी को भेजा। कालउदायी का जन्म बोधिसत्त्व के साथ ही हुआ था तथा दोनों बाल्यकाल में साथ-साथ खेले थे। कालउदायी ने वहां जाकर प्रव्रज्या ली तथा भगवान बुद्ध को शुद्धोदन को दर्शन देने के लिए प्रेरित किया। बुद्ध अनेक भिक्षुओं सहित राज्य में पहुंचे। शुद्धोदन के साथ-साथ परिवार के सभी लोग उनके दर्शनों के लिए पहुंचे किंतु राहुल-माता नहीं आयी। उसने कहा—"यदि मुझमें गुण हैं तो वे यहीं आकर मुझे दर्शन देंगे।" बुद्ध ने उसे वहीं जाकर दर्शन दिये। बुद्ध ने जब काशाय वस्त्र पहनना प्रारंभ किया था, तभी राहुल-माता ने भी वैसे ही वस्त्र पहनने आरंभ कर दिये थे। भगवान की भांति ही वह दिन में एक बार भोजन करती, वैसे ही खटिया पर सोती थी। जिस दिन राजकुमार नंद का विवाह तथा राज्याभिषेक होनेवाला था, उसी दिन भगवान ने उसे प्रव्रजित किया। राहुल ने भी प्रव्रज्या ग्रहण की। शुद्धोदन परिवार के प्रत्येक व्यक्ति की प्रव्रज्या पर शोकाकुल होता था। उसने भगवान से जाकर कहा कि उन्हें माता-पिता की स्वीकृति के बिना किसीके पुत्र को प्रव्रजित नहीं करना चाहिए। बुद्ध ने इसे अपने संघ का नियम बना लिया।

बु० च०, १।१२

शुनः शेप यजमान ने शुन: शेप को बलि देने के निमित्त पकड़ लिया तथा यज्ञीय यूप (काठ के तीन खंबों) से उसको बांध दिया।

ऋ० १।२४।१२-१३

यज्ञ की बढ़ती हुई अग्नि को देखकर शुन: शेप कातर हो उठा। उसके जीवन का कोई भी क्षण अंतिम हो सकता था तथा पवित्र सामग्री के साथ वह किसी भी क्षण होम किया जा सकता था। चिंतातुर शुन: शेप ने मरुत, अनिल, इंद्र, अग्नि, अश्विनीकुमारों आदि की स्तुति की। इंद्र ने वहां प्रकट होकर उसे बंधनमुक्त कर दिया।

ऋ० १।२४-३०, ५।२।७, ६।३

इक्ष्वाकुवंशी राजा हरिश्चंद्र के १०० रानियां थीं, पर पुत्र किसीसे भी न हुआ। पुत्र-प्राप्ति के लिए उसने वरुण की स्तुति की। वरुण के प्रति पुत्र की बलि देने का वायदा किया। वरुण की कृपा से हरिश्चंद्र के रोहित नामक पुत्र हुआ। वरुण बलि लेने के लिए आया तब उसने कई बहाने बनाये। दो-एक बार तो वरुण को लौटाया, अंत में जब कोई बहाना न रहा, तब उसने रोहित को जंगल में भगा दिया। वहां उसे अजीगर्त नाम का ऋषि मिला। उसकी पत्नी तथा तीन पुत्र थे—शुन: पुच्छ, शुन: शेप तथा शुनोलांगूल। रोहित ने सोचा कि मेरे स्थान पर यदि ऋषि का एक पुत्र बलि के लिए मिल जाये तो बहुत अच्छा रहे। उसने ऋषि अजीगर्त से कहा कि "हे ऋषि, यदि आप एक पुत्र वरुण को बलि देने के लिए दे दें तो आपको १०० गौएं मिलेंगी।" अजीगर्त ने मध्यम पुत्र शुन: शेप की बलि देने की सहमति दे दी। रोहित नगर में जाकर अपने पिता से बोला कि मैं अपने स्थान पर वरुण को बलि देने के लिए ऋषि-पुत्र लाया हूं। हरिश्चंद्र ने राजसूय यज्ञ प्रारंभ किया। राजसूय के मध्य में अभिषेचनीय नामक एकाह सोमयाग में पुरुष पशु का आलंभन होता है। अब प्रश्न पैदा हुआ कि आलंभन कौन करे। अत: अजीगर्त से कहा कि सौ गौएं और देंगे, तू ही इसकी बलि चढ़ा। ऋषि इसके लिए भी तैयार हो गया। इस यज्ञ में ऋत्विज विश्वामित्र, जमदग्नि, वसिष्ठ तथा अयास्य थे। जब पिता ही अपने पुत्र की बलि देने के लिए तैयार हो गया तो शुन: शेप देवताओं के पास पहुंचा। वह क्रमश: प्रजापति, अग्नि, सविता, वरुण, अग्नि, विश्वदेव, इंद्र के पास गया तथा इसी क्रम से उसने देवताओं की स्तुति की। अग्नि देवता की दो बार स्तुति की। इंद्र ने प्रसन्न होकर उसे हिरण्यमय रथ दिया। फिर वह अश्विनीकुमारों के पास गया और उनकी स्तुति की। तदुपरांत ऊषा की स्तुति की। इस प्रकार नौ देवताओं की स्तुति होने पर शुन: शेप के बंधन खोल दिए गये। शुन: शेप ने यज्ञ कराया और विश्वामित्र को अपना पिता मानकर उसकी गोद में जा बैठा। अजीगर्त उसे बुलाता रहा, पर वह उसके पास नहीं गया।

ऐ० ब्रा०, ५।१३-१८

विश्वामित्र ने पश्चिम दिशा में जाकर पुष्कर नामक तपोवन में तप करना आरंभ किया। उन्हीं दिनों अयोध्यापति अंबरीष ने भी यज्ञ आरंभ किया। यजमान के पशु को इंद्र ही ले गये। अंबरीष हजारों गाएं बदले में देने का निश्चय कर यज्ञ-पशु को ढूंढ़ने निकले। पुरोहित ने कहा था, पशु न मिलने पर किसी मनुष्य को लाना होगा। ढूंढ़ते-ढूंढ़ते वे भृगुतुंग पर्वत पर पहुंचे जहां ऋचीक और

उनकी पत्नी थे। उन्होंने ऋचीक के पुत्र को क्रय करने की इच्छा प्रकट की। बड़ा पुत्र पिता को प्यारा था और छोटा मां को, इसलिए एक करोड़ स्वर्ण मोहरों और एक लाख गायों के बदले में मंझला बेटा शुन: शेप लेकर वह यज्ञशाला की ओर लौटे। मार्ग में पुष्करप्रदेश में उन लोगों ने विश्राम किया। वहां अपने मामा विश्वामित्र को पाकर शुन: शेप ने उनसे ऐसा उपाय जानना चाहा जिससे राजा का काम भी चल जाय और वह भी दीर्घजीवी रह पाये। विश्वामित्र ने अपने पुत्रों से यज्ञपशु बनने के लिए कहा, किंतु मधुच्छंदा आदि पुत्रों ने दूसरे के बेटे को बचाकर अपने बेटों की बलि देना कुत्ते के मांस-भोजन के समान बताया। इसपर क्रुद्ध होकर विश्वामित्र ने उन्हें शाप दिया कि वे वसिष्ठ के पुत्रों की तरह चांडाल बनकर एक हजार वर्ष तक पृथ्वी पर कुत्तों का मांस खायें। विश्वामित्र ने शुन: शेप को अग्नि की स्तुति तथा दो गाथाएं कंठस्थ करवाई, जिनसे बलि के समय उसकी प्राण-रक्षा हो जाये। लाल कपड़े पहनकर बलि के यूप से बंधे शुन: शेप ने अग्नि की स्तुति की, फिर इंद्र और विष्णु की गाथाओं से स्तुति करने लगा। इंद्र ने उसे दीर्घायु का वरदान दिया तथा राजा अंबरीष को उस यज्ञ का कई गुना फल मिला।

बा० रा०, बाल कांड, ६१।१-२४, ६२।१-२८

राजा हरिश्चंद्र ने तीनों ऋणों से मुक्ति प्राप्त करने के लिए पुत्र की कामना की। गौतमी के तट पर यज्ञ करके वरुण के आशीर्वाद से उसे पुत्र प्राप्त हुआ। वरुण ने इस शर्त पर पुत्र का आशीर्वाद दिया था कि राजा पुत्र से वरुण का यज्ञ करवायेगा। पुत्र का नाम रोहित रखा गया। वरुण ने राजा को बार-बार यज्ञ की याद दिलायी, पर राजा यह कहकर कि दांत निकल जायें, अभी दूध के निकले हैं, रोटी के निकल जायें, धनुर्विद्या सीख ले, इत्यादि यज्ञ टालता रहा। रोहित सोलह वर्ष का हो गया। उसके सामने यज्ञ की बात हुई तो उसने वरुण के सम्मुख ही पिता से कहा कि वह वरुण को यज्ञ-बलि बनाकर विष्णु का यज्ञ कराना चाहता है। वरुण ने क्रोध में शाप दिया और राजा जलोदर से पीड़ित हो गया। रोहित पांच वर्ष के लिए गौतमी तट पर गया हुआ था। पिता की बीमारी का समाचार सुना तो उसने निश्चय किया कि नरमेध यज्ञ करेगा। उन्हीं दिनों उसे एक अत्यंत निर्धन ब्राह्मण परिवार मिला। ब्राह्मण का नाम अजीगर्त था। उसके तीन पुत्र और एक पत्नी थे। भोजन प्राप्त करने के ⁝ उसने अपने मध्यम बेटे शुन: शेप को बलि बनाने के हेतु बेच दिया। बड़ा बेटा उसको तथा छोटा उसकी पत्नी को विशेष प्रिय थे। रोहित शुन: शेप सहित हरिश्चंद्र के पास पहुंचा। हरिश्चंद्र ने ब्राह्मण आहुति देने से मना कर दिया। तभी आकाशवाणी हुई कि बिना आहुति के भी यज्ञ संपन्न हो जायेगा। विश्वामित्र ने यज्ञ करवाया। शुन: शेप को आहुति बनाकर बैठाया गया। जिन देवताओं को उसकी हवि देनी थी, उन्होंने विशेष प्रसन्न होकर शुन: शेप के वध के बिना ही नरमेध यज्ञ का समापन कर दिया।

शुन: शेप के पिता को पुत्र बेचने के कारण घोर नरक भोगना पड़ा। अनेक योनियों में जन्म लेने के क्रम से वह एक बार पिशाच बनकर पृथ्वी पर आया। वह अपने पापों को याद करके दुखी हो रहा था। पास से जाते एक व्यक्ति ने उसके दु:ख का कारण पूछा। परिचय पाकर वह व्यक्ति बोला—"मैं ही शुन: शेप हूं। मेरे कुकर्म ऐसे थे कि आपको मुझे बेचना पड़ा। अब मैं आपके पापों का नाश करके आपको स्वर्ग पहुंचाऊंगा।" शुन: शेप ने गंगा-स्नान कर विष्णु के स्मरण के साथ पिता को जल दिया। पिशाच का उद्धार हो गया। पापों का नाश कर वह सम्मानपूर्वक विष्णुलोक चला गया।

ब्र० पु०, १५०।-
ब्र० पु०, १०४।-

राजा हरिश्चंद्र ने पुत्र-प्राप्ति के निमित्त वरुण के सम्मुख प्रार्थना की कि उसे पुत्र प्राप्त हुआ तो वह नरमेध यज्ञ में उसकी बलि दे देगा। पुत्र प्राप्त होने पर वरुण ने अनेक बार उसे प्रतिज्ञा याद दिलायी किंतु वह बार-बार टालता रहा। वरुण के शाप से वह जलोदर से पीड़ित हो गया। वसिष्ठ ने राजा को सलाह दी कि वह ब्राह्मण-पुत्र का क्रय करके उससे यज्ञ कर दे। राजा के स्वीकार करने पर अजीगर्त नामक एक दरिद्र ब्राह्मण को रुपया देकर उसका शुन: शेप नामक पुत्र ले लिया गया। यज्ञ के समय बलि के लिए बंधे हुए शुन: शेप को देखकर विश्वामित्र ने राजा से अनुरोध किया कि वह उसे छोड़ दे किंतु राजा ने नहीं माना। विश्वामित्र ने शुन: शेप को वरुण मंत्र दिया जिसके जपने से वरुण ने दर्शन दिये तथा शुन: शेप को मुक्त करके भी यज्ञ का समापन सुचारु रूप से करवा दिया। 'शुन: शेप अब किसका पुत्र होगा ?'—इस विषय पर विवाद चला। उसे राजा ने खरीदा, विश्वामित्र ने वरुण मंत्

दिया, वरुण ने बचाया। वसिष्ठ के कहने से वह विश्वामित्र का पुत्र मान लिया गया। वे सहर्ष उसे अपने साथ वन में ले गये। विश्वामित्र ने ब्राह्मण-वेश में राजा को छलकर उसका समस्त राज्य ले लिया। वसिष्ठ यजमान राजा के कष्ट से आतुर हो उठे तथा उन्होंने विश्वामित्र को बक पक्षी बनने का शाप दिया। विश्वामित्र के शाप से वे भी आडि पक्षी बन गये। दोनों परस्पर चीत्कार करते तथा चंचु-आक्रमण करते हुए रहते थे। कालांतर में ब्रह्मा ने दोनों को शापमुक्त कर दिया।

दे० भा०, ६।१२-१३,७।१६-१७

शुनः सख एक बार सप्तर्षिगण (कश्यप, अत्रि, वसिष्ठ, भरद्वाज, गौतम, विश्वामित्र, जमदग्नि,) अरुंधती तथा अपनी सेविका (गंडा) और उसके पति (पशु सख) के साथ तपस्या करते हुए पृथ्वी पर विचर रहे थे। पूर्वकाल में शैव्य ने यज्ञ-दक्षिणा रूप में ऋत्विजों को अपना एक पुत्र दिया था। उन दिनों दुर्भिक्ष के कारण उसकी मृत्यु हो गयी। सप्तर्षि उसे घेरे खड़े थे। राजा वृषादर्भि ने उसके मांस को अभक्ष्य बताकर उन्हें धन-दान लेने के लिए प्रेरित करने का प्रयास किया, किंतु वे लोग नहीं माने। उन्होंने जंगल की ओर प्रस्थान किया। राजा ने गूलरों में सोना भरकर मंत्रियों के हाथ उनकी सेवा में भेजा। गूलर के फल को अधिक भारी देखकर वे जान गये कि उसमें स्वर्ण है और उन्हें लेने से इंकार कर दिया। मंत्रियों ने राजा को जाकर बताया तो वह अपमान से तिलमिला उठा। उसने यज्ञ किया, जिससे एक भयानक कृत्या प्रकट हुई। राजा ने उसका नाम यातुधानी रखा तथा उससे कहा कि वह वनचारी सप्तर्षियों का उनके साथियों सहित नाम और परिचय पूछकर मार डाले। तदुपरांत वह कहीं भी चली जाय। यातुधानी जंगल में एक सुंदर तालाब की सुरक्षा करने लगी। सप्तर्षियों की मंडली का परिचय जंगल में एक अन्य साधु तथा उसके कुत्ते से हुआ जिसका नाम शुनः सख था। वे भी उनके साथ हो लिए। एक दिन वे यातुधानी के तालाब पर पहुंचे। भूख से पीड़ित वे वहां कमल तोड़ना चाहते थे। कृत्या ने उनसे अपना-अपना नाम-पता बताकर तालाब में उतरने को कहा। वे लोग उसका उद्देश्य जानकर भी बारी-बारी से तालाब में उतरने लगे। शुनः सख ने अपना नाम और परिचय दिया तो कृत्या समझ न पायी। उसने पुनः पूछा, अतः रुष्ट होकर शुनः सख ने उसके मस्तक पर त्रिदंड से प्रहार किया। वह वहीं मर गयी। शेष सब लोग कमल एकत्र कर तालाब के किनारे पर रखकर हाथमुंह धोने लगे। जल से तर्पण कर जब वे लोग लौटे तो देखा, सब कमल गायब हैं। वे परस्पर शंका करने लगे तथा अपनी निर्दोषता सिद्ध करने के लिए शपथ लेने लगे। अंत में शुनः सख ने कहा कि जिसने पुष्प लिये हों, वह यजुर्वेदी या सामवेदी व्रती ब्राह्मण को कन्यादान करे तथा स्वयं वेदपाठ एवं अध्ययन पूरा करके शीघ्र ही स्नातक बन जाये। ब्राह्मणों ने कहा—"शुनः सख! तुम्हारी शपथ तो ब्राह्मणों को अभीष्ट ही है। जान पड़ता है, तुमने ही मृणालों की चोरी की है।" तब शुनः सख ने बताया कि पुष्प उसने छिपा लिए थे—वह वास्तव में इंद्र था और यातुधानी के प्राकट्य के उद्देश्य को जानकर उन्हें बचाने ही वहां पहुंचा था।

इसी प्रकार एक बार पृथ्वी का पर्यटन करते हुए अनेक देवताओं के साथ अगस्त्य मुनि के एकत्र किए कमल भी शुनः सख-रूपी इंद्र ने छिपाकर यही शपथ ली थी और अपना प्राकट्य किया था।

म० भा०, दानधर्मपर्व, ९३।२१-१४५,९४।

शूर्पणखा शूर्पणखा रावण की बहन तथा दानवों के राजा कालका के पुत्र विद्युज्जिह्व की पत्नी थी। समस्त संसार पर विजय प्राप्त करने की इच्छा से रावण ने अनेक युद्ध किये, अनेक दैत्यों को मारा। उन्हीं दैत्यों में विद्युज्जिह्व भी मारा गया। शूर्पणखा बहुत दुखी हुई। रावण ने उसे आश्वस्त करते हुए अपने भाई खर के पास रहने के लिए भेज दिया। वह दंडकारण्य में रहने लगी। एक बार राम और सीता कुटिया में बैठे थे। अचानक शूर्पणखा (बूढ़ी कुरूप तथा डरावनी राक्षसी) ने वहां प्रवेश किया। वह राम को देखकर मुग्ध हो गयी तथा उनका परिचय जानकर उसने अपने विषय में इस प्रकार बतलाया—"मैं इस प्रदेश में स्वेच्छाचारिणी राक्षसी हूं। मुझसे सब भयभीत रहते हैं। विश्रवा का पुत्र बलवान रावण मेरा भाई है। मैं तुमसे विवाह करना चाहती हूं।" राम ने उसे बतलाया कि उसका विवाह हो चुका है तथा उसका छोटा भाई लक्ष्मण अविवाहित है, अतः वह उसके पास जाय। लक्ष्मण से उसे फिर राम के पास भेजा। शूर्पणखा ने राम से पुनः विवाह का प्रस्ताव रखते हुए कहा—"मैं सीता को अभी खाये लेती हूं—तब सौत न रहेगी और हम विवाह कर लेंगे।" जब वह सीता की

ओर झपटी तो राम के आदेशानुसार लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट लिए। वह क्रुद्ध होकर अपने भाई खर के पास गयी। खर ने चौदह राक्षसों को राम-हनन के निमित्त भेजा क्योंकि शूर्पणखा राम, लक्ष्मण और सीता का लहू पीना चाहती थी। राम ने उन चौदहों को मार डाला तो शूर्पणखा पुनः रोती हुई अपने भाई खर के पास गयी। खर ने क्रुद्ध होकर अपने सेनापति दूषण को चौदह हज़ार सैनिकों को तैयार करने का आदेश दिया। सेना तैयार होने पर खर तथा दूषण ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया। जब सेना राम के आश्रम में पहुंची तो राम ने लक्ष्मण को आदेश दिया कि वह सीता को लेकर किसी दुर्गम पर्वत कंदरा में चला जाय तथा स्वयं युद्ध के लिए तैयार हो गये। मुनि और गंधर्व भी यह युद्ध देखने गये। राम ने अकेले होने पर भी शत्रुदल के शस्त्रों को छिन्न-भिन्न करना प्रारंभ कर दिया। अनेकों राक्षस प्रभावशाली वाणों से मारे गये, शेष डरकर भाग गये। दूषण, त्रिशिरा तथा अनेक राक्षसों के मारे जाने पर खर स्वयं राम से युद्ध करने गया। युद्ध में राम का धनुष खंडित हो गया, कवच कटकर नीचे गिर गया। तदनंतर राम ने महर्षि अगस्त्य का दिया हुआ शत्रुनाशक धनुष धारण किया। इंद्र के दिये अमोघ वाण से राम ने खर को जलाकर नष्ट कर दिया। इस प्रकार केवल तीन मुहूर्त में राम ने खर, दूषण, त्रिशिरा तथा चौदह हज़ार राक्षसों को मार डाला।

दे० अकंपन

बा० रा०, अरण्य कांड, १७-३०।-
बा० रा०, उत्तर कांड, १२।१-२,
२४।२३-४२

शुष्ण इंद्र ने अपनी माया से मायावी शुष्ण पर विजय प्राप्त की थी तथा कुत्स को बचाया था।

ऋ० १।११।७, १।५१।६, १।५१।११

जब देवताओं ने असुर राक्षसों का हनन किया तब शुष्ण पीछे की ओर लौटा और मनुष्यों की आंखों में घुस गया। यह कनीनक ही शुष्ण है।

यजु०, ४।३
श० प० ब्रा० ३।१।३।११

शेष नाग स्वर्ण पर्वत पर रहते हैं। शेष नाग के हजार मस्तक हैं। वे नील वस्त्र धारण करते हैं तथा समस्त देवी-देवताओं से पूजित हैं। उस पर्वत पर तीन शाखाओंवाला सोने का एक ताल वृक्ष है जो महाप्रभु की ध्वजा का काम करता है।

बा० रा०, किष्किंधा कांड,
४०।५०-५३

कद्रू के बेटों में सबसे पराक्रमी शेष नाग था। उसने अपनी छली मां और भाइयों का साथ छोड़कर गंधमादन पर्वत पर तपस्या करनी आरंभ की। उसकी इच्छा थी कि वह इस शरीर का त्याग कर दे। भाइयों तथा मां का विमाता (विनता) तथा सौतेले भाइयों (अरुण और गरुड़) के प्रति द्वेष भाव ही उसकी सांसारिक विरक्ति का कारण था। उसकी तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उसे वरदान दिया कि उसकी बुद्धि सदैव धर्म में लगी रहे। साथ ही ब्रह्मा ने उसे आदेश दिया कि वह पृथ्वी को अपने फन पर संभालकर धारण करे, जिससे कि वह हिलना बंद कर दे तथा स्थिर रह सके। शेष नाग ने इस आदेश का पालन किया। उसके पृथ्वी के नीचे जाते ही सर्पों ने उसके छोटे भाई, वासुकी, का राज्यतिलक कर दिया।

म० भा०, आदिपर्व, अ० ३५, ३६

शेष तीर्थ शेष नाग को रसातल का राज्य प्राप्त था। दैत्यों ने उसे वहां से निकाल फेंका। उसने ब्रह्मा के कहने से गौतमी के तट पर शिव की आराधना की। शिव के दर्शन के लिए वह रसातल से शिव स्थान तक गया। वह मार्ग बिलवत् हो गया तथा वहां गौतमी गंगा की एक धारा बहने लगी। शिव ने उसे अपना शूल प्रदान किया, जिससे उसने शत्रुओं का संहार कर दिया।

ब्र० पु०, ११५।-

शैव्य एक बार महाराज शैव्य की उदारता के विषय में सुनकर इंद्र और अग्नि, श्येन (बाज) और कपोत बनकर उनकी परीक्षा लेने गये। कपोत (अग्नि) उनकी शरण में चला गया, जिसे उन्होंने अभयदान दे दिया। श्येन ने वहां पहुंचकर कपोत मांगा तो शैव्य ने देने से इंकार कर दिया। कपोत को बचाने के लिए राजा शैव्य ने अपने शरीर का समस्त मांस श्येन को खिला दिया। पुण्यबल से उन्होंने उत्तम गति प्राप्त की।

बा० रा०, अयोध्या कांड, सर्ग १२-१४

शैव्या राजा शतघ्नु की पत्नी का नाम शैव्या था। एक बार कार्तिकी पूर्णिमा का उपवास कर उन दोनों ने गंगा में एकसाथ ही स्नान किया। बाहर आने पर एक पाखंडी मिला। राजा उससे बात करने लगा किंतु शैव्या

मौन रही। उसने सोचा कि व्रत में व्याघात न उत्पन्न हो, अतः देखकर शैव्या ने सूर्य के दर्शन किये। कालांतर में पाखंडी से वार्तालाप करने के कारण व्रतभंग-राजा मरकर कुत्ते के रूप में जन्मा तथा शैव्या काशिराज की राजकुमारी हुई। उसने विवाह नहीं किया तथा दिव्य दृष्टि से श्वान (राजा) को पहचानकर उसके पास गयी और उसे पूर्वजन्म का स्मरण दिलाती रही। पूर्वजन्म को स्मरण कर वह श्वान मरकर शृगाल हुआ। इसी प्रकार उसने गृद्ध, कौए, मोर आदि के रूप में अनेक जन्म लिये। राजकुमारी ने हर रूप में उसे पूर्वजन्म की स्मृति दिलवायी। जनक ने अश्वमेध यज्ञ के 'अवभृत स्नान' में उस मयूर को स्नान करवाया। राजकुमारी ने भी स्नान करके उसे पुनः पूर्वजन्मों की याद दिलवायी। अपने जन्मों की शृंखला का स्मरण कर उसने प्राण त्याग दिये तथा राजा जनक के यहां जन्म लिया। राजकुमारी ने उससे विवाह कर लिया। तदुपरांत दोनों ने मरकर इंद्रलोक प्राप्त किया।

वि० पु०, ३।१८।५२-९३

शौन उद्गान प्राचीनकाल में दल्भ का पुत्र बक अथवा मित्रा का पुत्र ग्लाव गांव के बाहर एकांत स्थान में स्थित उद्धव्राज नामक जलाशय के समीप स्वाध्याय के निमित्त गया। वहां एक श्वेत कुत्ता प्रकट हुआ। उसके पास कुछ छोटे-छोटे कुत्तों ने आकर कहा—"महाराज! हम लोग बहुत भूखे हैं, हमारे लिए अन्न का आगान कीजिए।" सफेद कुत्ते ने कहा—"तुम लोग कल प्रातः आना।" वे कुत्ते घूमघामकर अगले दिन प्रातः वहां पहुंचे। बक अथवा ग्लाव भी प्रतीक्षा में वहीं ठहरा रहा। जिस प्रकार उद्गाता परस्पर मिलकर भ्रमण करते हैं, वैसे ही कुत्तों ने किया और फिर हिंकार करने लगे—"हम खाते हैं—हम पीते हैं। देवता, हमारे लिए अन्न लाओ," इत्यादि। अतः अन्न-प्राप्ति के लिए श्वानों द्वारा देखे गये उस उद्गीध को शौन-उद्गान-साम कहा जाता है।

छा० उ०, १।१२ (संपूर्ण)

श्यावाश्व राजा रथवीति ने यज्ञ करने की कामना से ऋषि अत्रि के आश्रम में प्रवेश किया। राजा के अनुरोध पर अत्रि-पुत्र अर्चनाना ने उनका ऋत्विज होना स्वीकार किया। यज्ञीय विधि-विधान में व्यस्त ऋषि अर्चनाना ने राजा रथवीति की पुत्री को देखा। वह अत्यंत सुंदरी थी। उनके मन में उसे पुत्रवधू बनाने की इच्छा जाग्रत् हुई। यज्ञ में अर्चनाना का पुत्र श्यावाश्व भी था। अचानक श्यावाश्व की दृष्टि भी उस कन्या पर पड़ी और वह उसपर आसक्त हो गया। श्यावाश्व ने राजा के सम्मुख अपनी कामना अभिव्यक्त की। राजा ने रानी से पूछा। रानी ने कहा कि श्यावाश्व मंत्रद्रष्टा नहीं है। रानी के पिता-पति सभी मंत्रद्रष्टा थे, अतः उसका विचार अपनी पुत्री का विवाह किसी मंत्रद्रष्टा ऋषि से करने का था। राजा ने ऋषि अर्चनाना से यह सब कह सुनाया और यह भी कहा कि यदि वह मंत्रद्रष्टा हो जायेगा तो उससे अपनी कन्या का विवाह कर देंगे। आश्रम की ओर लौटते समय मार्ग में राजा तरंत से भेंट हुई। वे राजा होते हुए भी ऋषि-पद प्राप्त कर चुके थे। वे श्यावाश्व को अपनी पत्नी शशीयसी के पास ले गये। शशीयसी ने श्यावाश्व का पथप्रदर्शन किया तथा दो तीव्रगामी लाल वर्ण के घोड़े प्रदान किये। घोड़ों की सहायता से श्यावाश्व और उनके पिता ज्ञानवान तेजस्वी पुरुपीठ के पास गये। वहां से लौटकर मंत्रद्रष्टा बनने की इच्छा से श्यावाश्व ने तपस्या प्रारंभ की। तपस्या के अंतराल में एक बार मरुतगणों ने दर्शन दिए तथा उसके आतिथ्य और स्तुति से प्रसन्न होकर एक रुक्म प्रदान किया। तप-रत श्यावाश्व मंत्रद्रष्टा बन गये तो निशा को दौत्य कर्म सौंपकर उन्होंने राजा रथवीति के समक्ष भेजा। राजा ने अपनी कन्या का विवाह सहर्ष श्यावाश्व के साथ कर दिया।

ऋ० ५।५२-८२, ऋ० १।११८३।५, ऋ० ८।३५-३८
जै० ब्रा०, १।१६३

श्रवण बाल्यकाल में शब्दभेदी वाण चलाने में नैपुण्य प्राप्त कर लेने के कारण राजा दशरथ को बहुत गर्व था। पावस ऋतु में सायंकाल वे धनुष-वाण लेकर सरयू के किनारे गये। उनका विचार रात के समय जल पीने के लिए आने वाले किसी वन्य पशु का शिकार करने का था। अचानक पानी की कुछ आवाज सुनकर उन्हें लगा कि हाथी चिंघाड़ रहा है। उन्होंने शिकार के लिए शब्दभेदी वाण का प्रयोग किया। आर्तनाद सुनकर उन्होंने जाना कि वाण किसी मनुष्य का प्राणघातक बना है। पास जाने पर उन्होंने एक तपस्वी को तड़पते देखा जिसने बतलाया कि वह ऋषि है जो सांसारिकता को त्याग कर अपने अंधे माता-पिता की सेवा में रत है तथा उन्हीं के लिए पानी लेने के निमित्त वहां आया था। ऋषि ने दशरथ को बतलाया कि वह वैश्य पिता तथा शूद्रा माता

का पुत्र था। उसने दशरथ से तीर निकालने के लिए कहा तथा अपने निवासस्थान का मार्ग बतलाकर माता-पिता के लिए पानी ले जाने के लिए कहा। तदुपरांत उसने प्राण त्याग दिये। मरने से पूर्व उसने यह भी बतलाया कि अपने अनजाने पाप की स्वयं स्वीकृति कर लेने पर उसके माता-पिता संभवत: दशरथ को शाप नहीं देंगे। दशरथ आश्रम में उसके माता-पिता के पास गये। उन्हें संपूर्ण घटना बतलाकर उन्होंने अपना अपराध स्वीकार किया। माता-पिता की इच्छानुसार दशरथ उन्हें घटनास्थल पर शव के पास ले गये। वहां उनके विलाप करने पर इंद्र के साथ उनके पुत्र (श्रवण) ने विमान पर आकर कहा कि वे भी शीघ्र ही पुत्र के निकट पहुंचेंगे। उसके (श्रवण के) चले जाने के बाद माता-पिता विलाप करने लगे तथा उन्होंने दशरथ को शाप दिया कि वह भी उन्हीं की तरह पुत्र-वियोग में मरेंगे। उन्होंने यह भी कहा कि आत्म-स्वीकृति के कारण ही वह जीवित हैं अन्यथा संपूर्ण कुल समेत कभी के नष्ट हो चुके होते। तदुपरांत उन दोनों ने एक चिता में प्रवेश कर प्राण त्याग दिये।

बा० रा०, अयोध्या कांड, ६३, ६४।१२-५३

नोट : वाल्मीकि रामायण में 'श्रवण' का नामोल्लेख नहीं मिलता। 'एक मुनि' के रूप में उसका वर्णन किया गया है।

श्रीकंठ श्रीकंठ की बहन का नाम देवी था। राजा पुष्पोत्तर अपने पुत्र से देवी का विवाह करना चाहता था किंतु श्रीकंठ ने देवी का विवाह कीर्तिधवल से किया। अत: दोनों में परस्पर वैमनस्य स्थापित हो गया। कुछ समय बाद श्रीकंठ ने उद्यान में एक सुंदर कन्या देखी। उसपर मुग्ध हो वह आकाश-मार्ग से उसे ले कीर्तिधवल की शरण में लंका पहुंचा। वह कन्या पुष्पोत्तर की थी। उसने श्रीकंठ का पीछा किया। कीर्तिधवल ने दोनों को समझाकर श्रीकंठ से उसका विवाह करवा दिया तथा नवविवाहित दम्पति को वानरद्वीप में जाकर बसने के लिए कहा ताकि पूर्व शत्रुओं से बचकर रह सकें। वे दोनों वहां जाकर बस गये तथा विभिन्न कार्यों में हाथ बंटाने के लिए उन्होंने अनेक वानरों को पकड़ लिया। वह द्वीप आकर्षक था। वहां पहले से ही देवों के अनुग्रह से भीम तथा अतिभीम रहते थे। एक दिन उसने आकाश-मार्ग से इंद्र आदि को नंदीश्वर द्वीप की ओर जाते देखा। उसे अपने पूर्वजन्मों की स्मृति हो आयी। वैराग्यवश उसने राज्य अपने पुत्र वज्रकंठ को सौंप दिया तथा स्वयं दीक्षा ली। अपने राज्यकाल में उसने किष्किंधि नामक वैभवपूर्ण नगरी का निर्माण किया।

पउ० च०, ६।१-५६।-

श्रुतकर्मा श्रुतकर्मा द्रौपदी का पुत्र था। उसने महाभारत संग्राम में अभिसार के राजा चित्रसेन का वध किया था।

म० भा०, कर्णपर्व, १४।१-१४

श्रुतायुध राजा श्रुतायुध वरुण के पुत्र थे। महानदी पर्णाशा उनकी माता थी। पर्णाशा ने वरुण से अपने पुत्र के लिए वर मांगा था कि वह शत्रुओं के लिए अवध्य रहे। वरुण ने कहा था—"जिसने जन्म लिया है, मृत्यु भी उसे अनिवार्य रूप से प्राप्त होगी ही, किंतु तुम्हारे पुत्र के लिए दिव्य अस्त्र (गदा) देता हूं—जिसके कारण वह युद्धक्षेत्र में दुर्धर्ष रहेगा।" गदा देकर वरुण ने श्रुतायुध को यह आदेश भी दिया था कि वह उस व्यक्ति पर गदा का प्रहार न करे, जो युद्ध नहीं कर रहा हो अन्यथा वह गदा स्वयं उसी पर आकर गिरेगी। अर्जुन से युद्ध करते हुए श्रुतायुध ने श्रीकृष्ण के कंधे पर अपनी गदा से प्रहार किया। पिता के आदेश का उल्लंघन करते ही गदा ने लौटकर उसपर प्रहार किया तथा वह तुरंत मारा गया।

म० भा०, द्रोणपर्व, ९२।४४-६०

श्रुतावती एक बार भारद्वाज ने घृताची अप्सरा को देखा तो उनका वीर्य स्खलित होकर पत्ते के दोने पर गिर गया। इस प्रकार भारद्वाज की कन्या का जन्म हुआ। उसका नाम श्रुतावती रखा गया। उसने ब्रह्मचर्यपूर्वक घोर तपस्या की। वह इंद्र को पति के रूप में प्राप्त करना चाहती थी। इंद्र ने वसिष्ठ का रूप धारण कर उसे दर्शन दिये। उसने उनका पर्याप्त आतिथ्य किया और कहा कि वह उनकी प्रत्येक इच्छा पूर्ण करने को उद्यत है, मात्र पाणिग्रहण कर अधिकार नहीं दे सकती, क्योंकि वह इंद्र से प्रेम करती है। वसिष्ठ (इंद्र) ने उसे पांच बेर दिये और कहा कि उन्हें पकाकर रखे, तब तक वे स्नान-ध्यान आदि करके लौटेंगे। उसने दीर्घकाल तक बेरों को पकाया किंतु वे पके ही नहीं और सारी ईंधन समाप्त हो गयी। संध्या का अंधेरा घिर आया। अतिथि-सत्कार में संलग्न उसने ईंधन के स्थान पर अपनी टांगें आग में रख दीं। जलने पर वह धीरे-धीरे उन्हें लकड़ी की तरह चूल्हे के अंदर खिसकाती गयी। उसके

मुख पर कष्ट की एक रेखा भी नहीं उभरी। यह देखकर स्नान-ध्यान से लौटे वसिष्ठ-रूपधारी इंद्र बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने वास्तविक रूप में प्रकट होकर श्रुतावती को वर दिया। तदनुसार वह शरीर का त्याग कर स्वर्ग में इंद्र के साथ रहने लगी। उसकी तपस्या का स्थान 'बदरपाचन तीर्थ' नाम से विख्यात हुआ। वह तीर्थ सब पापों का नाश करने वाला है।

म० भा०, शल्यपर्व, ४८।१-३२, ६३-६८

श्रेणिक मगध देश में श्रेणिक नाम का राजा राज्य करता था। विपुल पर्वत पर भगवान महावीर का उपदेश सुनने के उपरांत उसके मन में अनेक प्रकार के प्रश्न उठे। वह सोचने लगा कि ज्ञानी होने पर भी 'राक्षस वानरों के हाथों मारे गये' रामायण में जो इस प्रकार के उल्लेख मिलते हैं, वे सत्य हैं अथवा नहीं। वह अपनी समस्त शंकाएं लेकर गौतम गणधर के पास पहुंचा। वह राम-कथा का वास्तविक रूप जानना चाहता था। गौतम ने 'केवली' के मुंह से सुनी राम-कथा उसे सुनायी और कहा कि पूर्ववर्ती कुशास्त्रों में राम की कथा का अत्यंत भ्रामक रूप प्रस्तुत किया गया है।

प० च०, २, ३।१-१७

श्वेत एक बार अगस्त्य मुनि ने चार कोस तक विस्तृत सरोवर में किसी सुंदर पुरुष का शव तैरता हुआ देखा। तभी हंसयुक्त एक दिव्य विमान से स्वर्गीय प्राणी उतरा। उसने शव का भक्षण कर सरोवर का जल पिया और फिर अनेक सुंदरियों से युक्त विमान की ओर बढ़ा। अगस्त्य मुनि ने उसके निंदनीय आहार के प्रति जिज्ञासा व्यक्त की। उस सुंदर पुरुष ने कहा कि "विदर्भ के वीर राजा सुदेव के दो पुत्र हुए—श्वेत और सुरथ। श्वेत ने पर्याप्त समय तक राज्य-भोग किया, तदुपरांत अपने छोटे भाई सुरथ को राज्य संभलवाकर वह तपस्या में लीन हो गया। वह जिस प्रदेश में तप कर रहा था, वह पशु-पक्षी प्राणीशून्य था। उसने तप तो किया, पर दान नहीं किया, इसलिए स्वर्ग मिलने पर भी वह भूखा रहता था। ब्रह्मा ने कहा—'तुमने मात्र अपना शरीर पुष्ट किया है, दान नहीं किया, इसलिए तुम अपनी भूख मिटाने के लिए अपने ही शरीर के मांस का आहार करोगे और तुम्हारा उद्धार अगस्त्य मुनि के द्वारा होगा।' अत: मैं रोज अपने शव का भक्षण करता हूं, न मेरी भूख समाप्त होती है, न शव। हे मुनि, मेरा उद्धार कीजिए।" यह कहकर उसने अपने उत्तम आभरण उतारकर अगस्त्य मुनि को दिये और उसका शव नष्ट हो गया। वह दिव्य शरीर समेत ब्रह्मलोक चला गया।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग ७७-७८

श्वेत नामक राजा वीर, धर्मज्ञ और बुद्धिमान था। उसके राज्य में लोगों की आयु एक हजार वर्ष होती थी। एक बार कपाल गौतम नामक ऋषि अपने छोटे मृत शिशु को (जिसके अभी दांत भी नहीं निकले थे) लेकर राजा के पास पहुंचे। राजा ने सात दिन में उसे पुनर्जीवन देने का वायदा किया। शिव को घोर तपस्या से प्रसन्न कर राजा ने मांगा कि शिव यम से कहकर शिशु के प्राण लौटा दें। शिव ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। तदनंतर अपनी उपासना से प्रसन्न कर उसने परम वैष्णव-पद की कामना की, फलस्वरूप पवित्र गंगा श्वेत गंगा नाम से पुकारी जाने लगी।

ब्र० पु०, ५६।

श्वेतकि श्वेतकि नामक राजा अत्यंत पराक्रमी था तथा निरंतर यज्ञ करनेवाला था। उसके ऋत्विज यज्ञ करते-करते थक गये थे, अत: जब उसने सौ वर्षों तक चलनेवाला एक सत्र प्रारंभ करने की ठानी तो कोई भी ब्राह्मण ऋत्विज बनने के लिए तैयार नहीं हुआ। ब्राह्मणों ने उससे कहा कि वह रुद्र के पास जाय, वही उसका यज्ञ करायेंगे। श्वेतकि ने घोर तपस्या करके रुद्र को प्रसन्न किया। रुद्र ने उसे बारह वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए घृत की अविच्छिन्न धारा से अग्नि को तृप्त करने के लिए कहा। ऐसा करने के उपरांत रुद्र ने ब्राह्मण न होने के कारण ऋत्विज बनने की असमर्थता प्रकट करते हुए दुर्वासा को उसका यज्ञ संपन्न करने का आदेश दिया। दुर्वासा ने उसका यज्ञ यथाविधि संपन्न करवाया।

म० भा०, आदिपर्व, २२२।१७-६२ तक

श्वेतकेतु आरुण उद्दालक का पुत्र श्वेतकेतु था। पिता की प्रेरणा से वह बारह वर्ष की अवस्था में उपनयन करवाकर चौबीस वर्ष की अवस्था तक वेदों का अध्ययन करता रहा। तदुपरांत वह घर वापस आया। घर पहुंचने पर पिता ने कहा—"हे सौम्य! तू महामना पंडित है, पर अविनीत जान पड़ता है। क्या तूने गुरु से वह आदेश सुना है, जिससे अश्रुत श्रुत हो जाता है तथा अमत मत हो जाता है, अविज्ञात ज्ञात हो जाता है?" श्वेतकेतु के अनभिज्ञता प्रकट करने पर आरुण ने उसे सृष्टिक्रम,

ब्रह्म, सत् इत्यादि का विस्तृत उपदेश दिया।

छा० उ०, अध्याय ६ (संपूर्ण)

आरुणि का पुत्र श्वेतकेतु पांचालदेशीय सभा में गया। जीवल के पुत्र प्रवाहण ने उससे पूछा—"क्या तुझे तेरे पिता ने शिक्षा दी है?" उसके स्वीकार करने पर प्रवाहण ने उससे प्रजा के जीवन, मृत्यु, पंच अग्नि तथा हवन की पंचम आहुति विषयक अनेक प्रश्न पूछे किंतु श्वेतकेतु कुछ भी नहीं जानता था। उसने घर जाकर वे सब प्रश्न पिता से पूछे। उन्हें भी जब उत्तर नहीं आये तब दोनों राजा प्रवाहण के पास गये। प्रवाहण ने कहा—"यह विद्या अभी तक क्षत्रियों में ही प्रचारित रही है, अब मैं तुम्हें उपदेश देता हूं। और तुम्हारे माध्यम से यह ब्राह्मणों में फैलेगी—क्योंकि तुम ब्राह्मण हो।"

छा० उ०, ५।३-१० तक (संपूर्ण)

श्वेत तीर्थ श्वेत नामक ब्राह्मण गौतमी के तट पर आश्रम बनाकर रहता था तथा शिव का आराधक था। उसका जीवनकाल समाप्त होने पर यम के दूत, मृत्यु, यमराज आदि क्रमशः उसके निकट पहुंचे तो भक्ति के सम्मुख नतमस्तक हो गये। उसके प्राण लेने का प्रयत्न करने पर शिव के गणों के द्वारा मारे गये। देवताओं ने शिव से संसार पर नियंत्रण रखने की प्रार्थना करते हुए यम को पुनर्जीवन देने के लिए कहा। शिव ने इस शर्त पर यम को जीवित किया कि शिव अथवा विष्णुभक्त जो भी गौतमी के तट पर भक्ति करता होगा, उसके निकट मृत्यु नहीं पहुंचेगी। वह अमर रहेगा। वह स्थान, जहां श्वेत भक्ति कर रहा था, श्वेत तीर्थ नाम से विख्यात है।

ब्र० पु०, ९४।-

श्वेताश्वतर ऋषि श्वेताश्वतर नामक एक ऋषि थे। उन्होंने तप के प्रभाव से समस्त सुख-दुःखों का परित्याग कर दिया तथा परमेश्वर की कृपा से उनका स्वरूप जान लिया। तदनंतर उन्होंने आश्रम में ऋषि समुदाय के सम्मुख ब्रह्मतत्त्व का आख्यान किया।

श्वेताश्वतरोपनिषद्, ६।२१

□

ष

षड्गर्भ 'कंस ने देवकी के गर्भों का नाश करने का निश्चय किया है।' इस तथ्य को जानकर विष्णु विचारमग्न हो गये। सात गर्भों के नाश के उपरांत विष्णु को देवकी के गर्भ में प्रवेश करना था। सोच-विचारकर विष्णु पाताल गये। उन्हें स्मरण हो आया कि पूर्वकाल में ब्रह्मा को स्तुति से प्रसन्न करके षड्गर्भ ने वर प्राप्त किया था कि कोई भी देवता अथवा नाग उन्हें मार नहीं पायेगा। हिरण्यकशिपु को अपने पौत्र तथा कालनेमि के पुत्रों (षड्गर्भ) के विषय में यह ज्ञात हुआ कि उन्होंने ब्रह्मा की तपस्या की है तो इसको अपना द्रोह जानकर उसने उन्हें देवकी के गर्भ से जन्म लेकर कंस (कालनेमि का पुनर्जन्म) के द्वारा मरने का शाप दिया था। विष्णु ने जल के भीतर गर्भगृह में सोते हुए षड्गर्भ के शरीर में स्वप्न-रूप से प्रवेश करके उनके जीवों को खींचकर निद्रा की अधिष्ठात्री देवी को दे दिया और कहा कि वह क्रमशः उनका प्रवेश देवकी के गर्भ में करती जाय। सातवें गर्भ में विष्णु आंशिक रूप से अवतीर्ण होंगे, तब सातवें माह में वह उनका वहां से 'संकर्षण' करके रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर दे। लोग समझेंगे कि गर्भ रह गया है। आठवें में विष्णु स्वयं अवतरित होंगे, तब वह (निद्रा देवी) यशोदा की कोख से जन्म ले। दोनों के परस्पर बदल जाने के उपरांत कंस पांव पकड़कर उसे शिला पर पटकेगा किंतु वह (देवी) नित्य कुमारी रहने का व्रत लेकर स्वर्गलोक में निवास करेगी। वह कुशिक गोत्र से संबद्ध होने के कारण कौशकी कहलायेंगी।

हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व, २

षष्ठी मनु के पुत्र प्रियव्रत का पाणिग्रहण ब्रह्मा ने करवाया था। चिरकाल तक संतान न होने पर कश्यप ने उनसे पुत्रेष्टि यज्ञ करवाया। बारह वर्ष बाद मृत पुत्र के जन्म पर सभी शोकाकुल हो उठे। पिता पुत्र के मृत शरीर को न छोड़कर प्राण त्याग देने के लिए आतुर थे। तभी आकाश में विमानस्थित देवी ने दर्शन दिये। उन्होंने अपना परिचय दिया कि वे ब्रह्मा की चार मानसी कन्याओं (षष्ठी, मंगली, चंडी और मनसा) में से स्कंध की भार्या षष्ठी थीं। षष्ठांश होने के कारण वे षष्ठी कहलाती थीं। बालकों की रक्षा के निमित्त वे उनके पार्श्व में रहती थीं। प्रियव्रत ने उनको अपनी आराधना से प्रसन्न किया, फलतः उन्होंने उनके पुत्र को पुनर्जीवन प्रदान किया।

दे० भा०, ९।४६

□

स

संगीति भगवान बुद्ध के महानिर्वाण पर भिक्षुगण अत्यंत दुखी हुए। उनमें कुछ ऐसे भी थे, जिन्होंने कहा—"भगवान के न रहने पर अब हम अपनी इच्छानुसार कार्य कर पायेंगे।" उनकी बात सुनकर अन्य भिक्षुओं ने सोचा कि बौद्ध-धर्म में अधर्म प्रकट होने लगा है। अत: सबको एकत्र होकर संगायन करना चाहिए। इस प्रकार धर्म के पुनर्जागरण के निमित्त एक कम पांच सौ भिक्षुओं द्वारा महाकाश्यप के कहने से प्रथम संगीति की योजना ई० पू० ४८३ में की गयी। इस विनय-संगीति में पांच सौ भिक्षु थे अत: इसे 'पंचशतिका' भी कहा गया। सौ वर्ष उपरांत ई० पू० ३८३ में दूसरी संगीति आयोजित की गयी, उसमें सात सौ भिक्षुओं ने भाग लिया था। अत: वह 'शप्तशतिका' भी कहलाती है। ई० पू० २६९ में राजा अशोक का स्वर्गवास हुआ। बौद्ध-धर्म के विकास में यह बहुत बड़ा व्याघात था। अत: ई० पू० २८४ में तृतीय संगीति संपन्न की गयी। यह संगीति नौ मास में समाप्त हुई थी।

बु० च०, ५।११-१३

संजय संजय महर्षि व्यास के शिष्य थे तथा धृतराष्ट्र के पुरोहित। युद्ध की संभावना होने पर धृतराष्ट्र ने संजय को पांडवों के पास यह संदेश देकर भेजा था कि भले ही कौरवों ने उनका राज्य ले लिया है, किंतु कुरुवंशी क्षत्रियों के पक्ष में यही है कि पांडव कौरवों से युद्ध न करें। प्रत्युत्तर में पांडवों ने अपना अधिकार मांगा तथा कहा कि युद्ध की चुनौती कौरवों की ओर से है, पांडव तो मात्र क्षात्र-धर्म की रक्षा के निमित्त युद्ध के लिए तैयार हैं। संजय को दिव्य दृष्टि प्राप्त थी, अत: वे युद्ध-क्षेत्र का समस्त दृश्य महल में बैठे ही देख सकते थे। नेत्रहीन धृतराष्ट्र ने महाभारत-युद्ध का प्रत्येक अंश उनकी वाणी से सुना। धृतराष्ट्र को युद्ध का सजीव वर्णन सुनाने के लिए ही व्यास मुनि ने संजय को दिव्य दृष्टि प्रदान की थी। संजय यदाकदा युद्ध में भी सम्मिलित होते थे। एक बार युद्धरत संजय को सात्यकि ने पकड़कर बंदी बना लिया। धृष्टद्युम्न ने सात्यकि से कहा—"इसे (संजय को) कैद करने से क्या लाभ, इसके जीवित रहने से कोई काम नहीं बनता," तो सात्यकि ने तलवार उठा ली किंतु तभी व्यास मुनि ने प्रकट होकर संजय को वध के अयोग्य बताकर कैद से छुड़वा दिया। संजय कवच उतारकर अस्त्र-शस्त्र रहित होकर अपने आवास की ओर बढ़ा। युद्ध प्रारंभ होने से लेकर कौरव-पांडवों की सेनाओं का भयानक विनाश-कार्य होने तक उसने समस्त कांड धृतराष्ट्र को सुनाया। युद्ध की समाप्ति, दुर्योधन की मृत्यु तथा पांचालों के वध के उपरांत व्यास की दी हुई दिव्य दृष्टि भी नष्ट हो गयी।

म० भा०, उद्योगपर्व, अध्याय २०-३२
म० भा०, भीष्मपर्व, अध्याय २
म० भा०, शल्यपर्व, २५।५७, २८।३७-४१
म० भा०, सौप्तिकपर्व, ९।६१-६२

संजयंत एक बार विद्युतदंष्ट्र नाम का राजा घूमता हुआ उस स्थान पर पहुंचा जहां संयमी संजयंत तप कर रहे थे। राजा ने उन्हें उठाकर दूसरे स्थान पर रख दिया और खेचरों सहित उनपर पत्थरों से प्रहार करने लगा। मुनि ध्यान से विचलित नहीं हुआ। वहां धरणेंद्र नाम का देव आया। उसने विद्याधर राजा की

समस्त विद्याएं छीन लीं। उसे बलोन्मत्त होकर अपने बल का अतिक्रमण करने से रोका। सदुपदेश के साथ वे विद्याएं पुनः लौटा दीं। संजयंत मुनि ने अपने पूर्वजन्मों का वृत्तांत सुनाया। राजा ने उनसे प्रभावित होकर अपने पुत्र को राज्य सौंप दिया तथा स्वयं तप करके मोक्ष प्राप्त किया।

पउ० च०, ५।२०-४१

संध्या (सरस्वती) ब्रह्मा ने अपने मुख से अपूर्व सुंदरी को जन्म दिया, जिसका नाम संध्या रखा। वे उसके सौंदर्य पर मुग्ध थे। तभी उनकी सृष्टि में से एक व्यक्ति ने प्रणाम कर अपना नाम और काम जानना चाहा। ब्रह्मा ने कहा—"तुम कामदेव, मन्मथ आदि अनेक नामों से पुकारे जाओगे। तुम्हारे पांच वाण (हर्षण, रोचन, शोषण, मोहन, मारण) होंगे। सदाशिव तथा विष्णु सहित सभी तुम्हारे अधीन रहेंगे।" कामदेव ने कथ्य की सत्यता प्रमाणित करने के लिए ब्रह्मा पर ही बाण छोड़े। फलतः वे संध्या (सरस्वती) से संपर्क स्थापित करने के लिए आतुर हो उठे। सबने उन्हें रोका। शिव ने क्रोधवश डांटा और अनैतिकता से बचा लिया। काम-विमुक्त होकर ब्रह्मा को आत्मग्लानि हुई। उन्होंने शाप दिया कि मन्मथ शिव के नेत्र के तेज से भस्म हो जाये। उसके अनुनय-विनय करने पर ब्रह्मा ने कहा कि विवाह के उपरांत शिव तुम्हें पुनः तुम्हारा शरीर प्रदान करें।

शि० पु०, २।१-२ पूर्वार्द्ध

संपाती संपाती नामक गृध्र जटायु का बड़ा भाई था। वृत्तासुर-वध के उपरांत अत्यधिक गर्व हो जाने के कारण दोनों भाई आकाश में उड़कर सूर्य की ओर चले। उन दोनों का उद्देश्य सूर्य का विंध्याचल तक पीछा करना था। सूर्य के ताप से जटायु के पंख जलने लगे तो संपाती ने उसे अपने पंखों में छिपा लिया। अतः जटायु तो बच गया किंतु संपाती के पर जल गये और उड़ने की शक्ति समाप्त हो गयी। वह विंध्य पर्वत पर जा गिरा। जब सीता को ढूंढ़ने में असफल हनुमान, अंगद आदि उस पर्वत पर बातें कर रहे थे तब जटायु का नाम सुनकर संपाति ने सविस्तार जटायु के विषय में जानना चाहा। यह जानकर कि वह रावण द्वारा मारा गया है, उन्हें बताया कि पूर्वकाल में जब पंख जलने पर वह विंध्य पर्वत पर गिरा था तब वह छः दिन अचेत रहा, तदुपरांत वह निशाकर नाम के महामुनि की गुफा में गया। निशाकर का उन दोनों भाइयों से अपार प्रेम था। निशाकर ने संपाती से कहा कि वह बहुत जल गया है, भविष्य में उसके पंख और उसका सौंदर्य लौट आयेंगे किंतु अभी ठीक नहीं होगा क्योंकि बिना पंख के वहां पर्वत पर रहने से वह भविष्य में उत्पन्न होनेवाले दशरथ-पुत्र राम की खोयी हुई पत्नी का मार्ग बतायेगा तथा इसी प्रकार के अनेक अन्य उपकार भी कर पावेगा। संपाती ने दिव्य दृष्टि से सीता को रावण की नगरी में देखा तथा वानरों का पथ-निर्देशन किया, तभी देखते-देखते उसके दो लाल पंख निकल आये।

बा० रा०, किष्किंधा कांड,
सर्ग ५६-५८ तथा ६१, ६२, ६३

संपाती के पुत्र का नाम सुपार्श्व था। पंख जल जाने के कारण संपाती उड़ने में असमर्थ था, अतः सुपार्श्व उसके लिए भोजन जुटाया करता था। एक शाम सुपार्श्व बिना मांस लिये अपने पिता के पास पहुंचा तो भूखे संपाती को बहुत गुस्सा आया। उसने मांस न लाने का कारण पूछा तो सुपार्श्व ने बतलाया—"कोई काला राक्षस सुंदरी नारी को लिये चला जा रहा था। वह स्त्री 'हा राम, हा लक्ष्मण!' कहकर विलाप कर रही थी। यह देखने में मैं इतना उलझ गया कि मांस लाने का ध्यान नहीं रहा।"

बा० रा०, किष्किंधा कांड, सर्ग ५६

संपाति जटायु का भाई था। हनुमान जब सीता को ढूंढ़ने जा रहा था तब मार्ग में गरुड़ के समान विशाल पक्षी से उसका परिचय हुआ। उसका परिचय प्राप्त कर वानरों ने जटायु की दुःखद मृत्यु का समाचार उसे दिया। उसीने वानरों को लंकापुरी जाने के लिए उत्साहित किया था।

म० भा०, वनपर्व, २८२-४६-५७ तक

संशप्तक योद्धा युद्ध में अर्जुन ने कौरवों की ओर से लड़ने-वाले संशप्तक योद्धाओं को नागास्त्र के प्रयोग से जड़वत खड़ा कर दिया। उनके पैर नागपाश से बंध गये तथा अर्जुन ने उनका वध प्रारंभ कर दिया। महारथी सुशर्मा ने गरुड़ास्त्र के प्रयोग से उन्हें मुक्त किया। वे मैदान से भागे नहीं, युद्ध करते रहे, अंततोगत्वा अर्जुन ने उन योद्धाओं को परास्त कर दिया—अधिकांश को मार डाला।

म० भा०, कर्णपर्व, ५३।-

सगर राजा दशरथ के पूर्वजों में राजा सगर हुए थे।

सगर के पिता का नाम असित था। वे अत्यंत पराक्रमी थे। हैहय, तालजंघ, शूर और शशिबिंदु नामक राजा उनके शत्रु थे। उनसे युद्ध करते-करते राज्य त्यागकर उन्हें अपनी दो पत्नियों के साथ हिमालय भाग जाना पड़ा। वहां कुछ काल बाद उनकी मृत्यु हो गयी। उनकी दोनों पत्नियां गर्भवती थीं। उनमें से एक का नाम कालिंदी था। कालिंदी की संतान नष्ट करने के लिए उसकी सौत ने उसको विष दे दिया। कालिंदी अपनी संतान की रक्षा के निमित्त भृगुवंशी महर्षि च्यवन के पास गयी। महर्षि ने उसे आश्वासन दिया कि उसकी कोख से एक प्रतापी बालक विष के साथ (स+गर) जन्म लेगा। अत: उसके पुत्र का नाम सगर पड़ा।

बा० रा०, बालकांड, ७०।२७-३७

सगर अयोध्यानगरी के राजा हुए। वे संतान प्राप्त करने के इच्छुक थे। उनकी सबसे बड़ी रानी विदर्भ नरेश की पुत्री केशिनी थी। दूसरी रानी का नाम सुमति था। दोनों रानियों के साथ राजा सगर ने हिमवान् के प्रस्रवण गिरि पर तप किया। प्रसन्न होकर भृगु मुनि ने उन्हें वरदान दिया कि एक रानी को वंश चलानेवाले एक पुत्र की प्राप्ति होगी और दूसरी के साठ हजार वीर उत्साही पुत्र होंगे। बड़ी रानी के एक पुत्र और छोटी ने साठ हजार पुत्रों की कामना की। केशिनी का असमंजस नामक एक पुत्र हुआ और सुमति के गर्भ से एक तूंबा निकला जिसके फटने पर साठ हजार पुत्रों का जन्म हुआ। असमंजस बहुत दुष्ट प्रकृति का था। अयोध्या के बच्चों को सताकर प्रसन्न होता था। सगर ने उसे अपने देश से निकाल दिया। कालांतर में उसका पुत्र हुआ, जिसका नाम अंशुमान था। वह वीर, मधुरभाषी और पराक्रमी था।

बा० रा०, बाल कांड, ३८।१-२४

राजा सगर ने विंध्य और हिमालय के मध्य यज्ञ किया। सगर के पौत्र अंशुमान यज्ञ के घोड़े की रक्षा कर रहे थे। जब अश्ववध का समय आया तो इंद्र राक्षस का रूप धारण कर घोड़ा चुरा ले गये। सगर ने अपने साठ हजार पुत्रों को आज्ञा दी कि वे पृथ्वी खोद-खोदकर घोड़े को ढूंढ़ लायें। जब तक वे नहीं लौटेंगे, सगर और अंशुमान दीक्षा लिये यज्ञशाला में ही रहेंगे। सगर-पुत्रों ने पृथ्वी को बुरी तरह खोद डाला तथा जंतुओं का भी नाश किया। देवतागण ब्रह्मा के पास पहुंचे और बताया कि पृथ्वी और जीव-जंतु कैसे चिल्ला रहे हैं। ब्रह्मा ने कहा कि पृथ्वी विष्णु भगवान की स्त्री है। वे ही कपिल मुनि का रूप धारण कर पृथ्वी की रक्षा करेंगे। सगर-पुत्र निराश होकर पिता के पास पहुंचे। पिता ने रुष्ट होकर उन्हें फिर से अश्व खोजने के लिए भेजा। हजार योजन खोदकर उन्होंने पृथ्वी धारण करनेवाले विरूपाक्ष नामक दिग्गज को देखा। उसका सम्मान कर फिर वे आगे बढ़े। दक्षिण में महापद्म, उत्तर में श्वेतवर्ण भद्र दिग्गज तथा पश्चिम में सोमनस नामक दिग्गज को देखा। तदुपरांत उन्होंने कपिल मुनि को देखा तथा थोड़ी दूरी पर अश्व को चरते हुए पाया। उन्होंने कपिल मुनि का निरादर किया, फलस्वरूप मुनि के शाप से वे सब भस्म हो गये।

बहुत दिनों तक पुत्रों को लौटता न देख राजा सगर ने अंशुमान को अश्व ढूंढ़ने के लिए भेजा। वे ढूंढ़ते-ढूंढ़ते अश्व के पास पहुंचे जहां सब चाचाओं की भस्म का स्तूप पड़ा था। जलदान के लिए आसपास कोई जलाशय भी नहीं मिला। तभी पक्षीराज गरुड़ उड़ते हुए वहां पहुंचे और कहा कि "ये सब कपिल मुनि के शाप से हुआ है, अत: साधारण जलदान से कुछ न होगा। गंगा का तर्पण करना होगा। इस समय तुम अश्व लेकर जाओ और पिता का यज्ञ पूर्ण करो।" उन्होंने ऐसा ही किया।

बा० रा०, बाल कांड, ३९।१-२६, ४०।१-३०, ४१।१-२७

इक्ष्वाकुवंश में सगर नामक प्रसिद्ध राजा का जन्म हुआ था। उनकी दो रानियां थीं—वैदर्भी तथा शैव्या। वे दोनों अपने रूप तथा यौवन के कारण बहुत अभिमानिनी थीं। दीर्घकाल तक पुत्र-जन्म न होने पर राजा अपनी दोनों रानियों के साथ कैलास पर्वत पर जाकर पुत्र-कामना से तपस्या करने लगे। शिव ने उन्हें दर्शन देकर वर दिया कि एक रानी के साठ हजार अभिमानी शूरवीर पुत्र प्राप्त होंगे तथा दूसरी से एक वंशधर पराक्रमी पुत्र होगा। कालांतर में वैदर्भी ने एक तूंबी को जन्म दिया। राजा उसे फेंक देना चाहते थे किंतु तभी आकाशवाणी हुई कि इस तूंबी में साठ हजार बीज हैं। घी से भरे एक-एक मटके में एक-एक बीज सुरक्षित रखने पर कालांतर में साठ हजार पुत्र प्राप्त होंगे। इसे महादेव का विधान मानकर सगर ने उन्हें वैसे ही सुरक्षित रखा तथा उन्हें साठ हजार उद्धत पुत्रों की प्राप्ति हुई। वे क्रूरकर्मी बालक आकाश में भी विचर सकते थे तथा सब

को बहुत तंग करते थे। शैव्या ने असमंजस नामक पुत्र को जन्म दिया। वह पुरवासियों के दुर्बल बच्चों को गर्दन से पकड़कर मार डालता था। अतः राजा ने उसका परित्याग कर दिया। असमंजस के पुत्र का नाम अंशुमान था।

राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ की दीक्षा ली। उसके साठ हजार पुत्र घोड़े की सुरक्षा में लगे हुए थे तथापि वह घोड़ा सहसा अदृश्य हो गया। उसको ढूंढ़ते हुए वैदर्भी-पुत्रों ने पृथ्वी में एक दरार देखी। उन्होंने वहां खोदना प्रारंभ कर दिया। निकटवर्ती समुद्र को इससे बहुत पीड़ा का अनुभव हो रहा था। हजारों नाग, असुर आदि उस खुदाई में मारे गये। फिर उन्होंने समुद्र के पूर्ववर्ती प्रदेश को फोड़कर पाताल में प्रवेश किया जहां वह अश्व विचर रहा था और उसके पास ही कपिल मुनि तपस्या कर रहे थे। हर्ष के आवेग में उनसे मुनि का निरादर हो गया, अतः मुनि ने अपनी दृष्टि के तेज से उन्हें भस्म कर दिया। नारद ने यह कुसंवाद राजा सगर तक पहुंचाया। पुत्र-विछोह से दुखी राजा ने अंशुमान को बुलाकर अश्व को लाने के लिए कहा। अंशुमान ने कपिल मुनि को प्रणाम कर अपने शील के कारण उनसे दो वर प्राप्त किये। पहले वर के अनुसार उसे अश्व की प्राप्ति हो गयी तथा दूसरे वर से पितरों की पवित्रता मांगी। कपिल मुनि ने कहा—"तुम्हारे प्रताप से मेरे द्वारा भस्म किये गये तुम्हारे पितर स्वर्ग प्राप्त करेंगे। तुम्हारा पौत्र शिव को प्रसन्न कर सगर-पुत्रों की पवित्रता के लिए स्वर्ग से गंगा को पृथ्वी पर ले आयेगा।" अंशुमान के लौटने पर सगर ने अश्वमेध यज्ञ पूर्ण किया।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय १०६, १०७,

रोहित के कुल में बाहुक का जन्म हुआ। शत्रुओं ने उसका राज्य छीन लिया। वह अपनी पत्नी सहित वन चला गया। वन में बुढ़ापे के कारण उसकी मृत्यु हो गयी। उसके गुरु और्व ने उसकी पत्नी को सती नहीं होने दिया क्योंकि वह जानता था कि वह गर्भवती है। उसकी सौतों को ज्ञात हुआ तो उन्होंने उसे विष दे दिया। विष का गर्भ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बालक विष (गर) के साथ ही उत्पन्न हुआ, इसलिए 'सगर' कहलाया। बड़ा होने पर उसका विवाह दो रानियों से हुआ—सुमति तथा केशिनी। सगर ने अश्वमेध यज्ञ किया। इंद्र ने उसके यज्ञ का घोड़ा चुरा लिया तथा तपस्वी कपिल के पास ले जाकर खड़ा किया। उधर सगर ने सुमति के पुत्रों को घोड़ा ढूंढ़ने के लिए भेजा। साठ हजार राजकुमारों को कहीं घोड़ा नहीं मिला तो उन्होंने सब ओर से पृथ्वी खोद डाली। पूर्व-उत्तर दिशा में कपिल मुनि के पास घोड़ा देखकर उन्होंने शस्त्र उठाये और मुनि को बुरा-भला कहते हुए उधर बढ़े। फलस्वरूप उनके अपने ही शरीरों से आग निकली जिसने उन्हें भस्म कर दिया। केशिनी के पुत्र का नाम असमंजस तथा असमंजस के पुत्र का नाम अंशुमान था। असमंजस पूर्वजन्म में योगभ्रष्ट हो गया था, उसकी स्मृति खोयी नहीं थी, अतः वह सबसे विरक्त रह विचित्र कार्य करता रहा था। एक बार उसने बच्चों को सरयू में डाल दिया। पिता ने रुष्ट होकर उसे त्याग दिया। उसने अपने योगबल से बच्चों को जीवित कर दिया तथा स्वयं वन चला गया। यह देखकर सबको बहुत पश्चात्ताप हुआ। राजा सगर ने अपने पौत्र अंशुमान को घोड़ा खोजने भेजा। वह ढूंढ़ता-ढूंढ़ता कपिल मुनि के पास पहुंचा। उनके चरणों में प्रणाम कर उसने विनयपूर्वक स्तुति की। कपिल से प्रसन्न होकर उसे घोड़ा दे दिया तथा कहा कि भस्म हुए चाचाओं का उद्धार गंगाजल से होगा। अंशुमान ने जीवनपर्यंत तपस्या की किंतु वह गंगा को पृथ्वी पर नहीं ला पाया। तदनंतर उसके पुत्र दिलीप ने भी असफल तपस्या की। दिलीप के पुत्र भगीरथ के तप से प्रसन्न होकर गंगा ने पृथ्वी पर आना स्वीकार किया। गंगा के वेग को शिव ने अपनी जटाओं में संभाला। भगीरथ के पीछे-पीछे चलकर गंगा समुद्र तक पहुंची। समुद्र-संगम पर पहुंचकर उसने सगर के पुत्रों का उद्धार किया। सब लोग गंगा से अपने पाप धोते हैं। उन पापों के बोझ से भी गंगा मुक्त रहती है। विरक्त मनुष्यों में भगवान निवास करता है, अतः उनके स्नान करने से गंगाजल में घुले सब पाप नष्ट हो जाते हैं।

श्रीमद् भा०, नवम स्कंध, अध्याय ८
श्रीमद् भा०, नवम स्कंध, ६।१-१५
शि० पु०, ४।३।-

राजा बाहु दुर्व्यसनी था। हैहय तथा तालजंघ ने शक, पारद, यवन, कांबोज और पल्लव की सहायता से उसके राज्य का अपहरण कर लिया। बाहु ने वन में जाकर प्राण त्याग किये। उसकी गर्भवती पत्नी सती होना

चाहती थी। (गर्भवती पत्नी को उसकी सौत ने विष दे दिया था, किंतु उसकी मृत्यु नहीं हुई थी।) भृगुवंशी और्व ने दयावश उसे बचा लिया। मुनि के आश्रम में ही उसने विष के साथ ही पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम सगर पड़ा। और्व ने उसे शस्त्रास्त्र विद्या सिखायी तथा आग्नेयास्त्र भी दिया। सगर ने हैहय के सहायकों को पराजित करके नाश करना आरंभ कर दिया। वे वसिष्ठ की शरण में गये। वसिष्ठ ने सगर से उन्हें क्षमा करने के लिए कहा। सगर ने अपनी प्रतिज्ञा याद करके उनमें से किन्हीं का पूरा, किन्हीं का आधा सिर, किन्हीं की दाढ़ी आदि मुंडवाकर छोड़ दिया। सगर ने अश्वमेध यज्ञ किया। घोड़ा समुद्र के निकट अपहृत हो गया। सगर ने पुत्रों को समुद्र के निकट खोदने के लिए कहा। वे लोग खोदते हुए उस स्थान पर पहुंचे जहां विष्णु, कपिल आदि सो रहे थे। निद्रा भंग होने के कारण विष्णु की दृष्टि से सगर के चार छोड़कर सब पुत्र नष्ट हो गये। बर्हिकेतु, सुकेतु, धर्मरथ तथा पंचनद—इन चार पुत्रों के पिता सगर को नारायण ने वर दिया कि उसका वंश अक्षय रहेगा तथा समुद्र सगर का पुत्रत्व प्राप्त करेगा। समुद्र भी राजा सगर की वंदना करने लगा। पुत्र-भाव होने से ही वह सागर कहलाया।

ब्र० पु०, ८।३३-६१

राजा बाहु रात-दिन स्त्रियों के भोग-विलास में रहता था। एक बार हैहय, तालजंघ तथा शक राजाओं ने उस विलासी को परास्त कर राज्य छीन लिया। बाहु अर्ज मुनि के शरण में पहुंचा। उसकी बड़ी रानी गर्भवती हो गयी। सौतों ने उसे विष दे दिया। भगवान की कृपा से रानी तथा उसका गर्भस्थ शिशु तो बच गये किंतु अचानक राजा की मृत्यु हो गयी। गर्भवती रानी को मुनि ने सती नहीं होने दिया। उसने जिस बालक को जन्म दिया, वह सगर कहलाया क्योंकि वह विष से युक्त था। मां और मुनि की प्रेरणा से वह शिवभक्त बन गया। उसने अश्वमेध यज्ञ भी किया। उसका घोड़ा इंद्र ने छिपा लिया। उसके साठ सहस्र पुत्र घोड़ा ढूंढ़ते हुए कपिल मुनि के पास पहुंचे। वे तप कर रहे थे तथा घोड़ा वहां बंधा हुआ था। उन्होंने मुनि को चोर समझकर उनपर प्रहार करना चाहा। मुनि ने नेत्र खोले तो सब वहीं भस्म हो गये। दूसरी रानी से उत्पन्न पंचजन्य, जिसका दूसरा नाम 'असमंजस' था, शेष रह गया था। उसके पुत्र का नाम अंशुमान हुआ जिसने घोड़ा लाकर दिया और यज्ञ पूर्ण करवाया।

शि० पु०, ११।२१

त्रिदंशजय के दूसरे पोते का नाम सगर था। चक्रवाल नगर के अधिपति पूर्णधन के पुत्र का नाम मेघवाहन था। वह उसका विवाह सुलोचन की पुत्री से करना चाहता था। किंतु सुलोचन अपनी कन्या का विवाह सगर से कराना चाहता था। कन्या को निमित्त बनाकर पूर्णधन और सुलोचन का युद्ध हुआ। सुलोचन मारा गया किंतु उसके पुत्र सहस्रनयन अपनी बहन को साथ लेकर भाग गया। कालांतर में उसने राजा सगर को अपनी बहन अर्पित कर दी। पूर्णधन की मृत्यु के उपरांत मेघवाहन को लंका जाने के लिए प्रेरित किया। भीम ने मेघवाहन को लंका के अधिपति-पद पर प्रतिष्ठित किया। एक बार राजा सगर के साठ हजार पुत्र, अष्टापद पर्वत पर वंदन हेतु गये। वहां देवार्चन इत्यादि के उपरांत भरत निर्मित चैत्यभवन की रक्षा के हेतु उन्होंने दंडरत्न से गंगा के मध्य में प्रहार करके पर्वत के चारों ओर 'परिखा' तैयार की। नागेंद्र ने क्रोध-रूपी अग्नि से सगर-पुत्रों को भस्म कर दिया। उनमें से भीम और भगीरथ, दो पुत्र अपने धर्म की दृढ़ता के कारण से भस्म नहीं हो पाये। उन लोगों के लौटने पर सब समाचार जानकर चक्रवर्ती राजा सगर ने भगीरथ को राज्य सौंप दिया तथा स्वयं जिनवर से दीक्षा ग्रहण करके मोक्ष-पद प्राप्त किया।

प३० च०, ५।६२-२०२।-

सगर-पुत्र राजा सगर की दो पत्नियां थीं। बड़ी रानी विदर्भ की थी, उसका नाम केशिनी था। छोटी धर्मात्मा थी, वह अरिष्टनेमि की कन्या थी। और्व मुनि ने उन्हें वरदान दिया था कि दोनों में से एक के साठ हजार पुत्र होंगे और दूसरी का मात्र एक पुत्र होगा जो वंश चलायेगा। अत: एक रानी ने तुंबी (जो कि तिल के बराबर साठ हजार बीजों से युक्त थी) को जन्म दिया। उसके बीज घी के मटके में रखे गये। कालांतर में वे बालक के रूप में दिखलायी देने लगे। दूसरी रानी ने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम पंचजन था। उसकी वंश-परंपरा इस प्रकार चली: पंचजन का पुत्र अंशुमान हुआ। अंशुमान का दिलीप। फिर क्रमश: पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक-एक पुत्र होता गया जिनके नाम इस प्रकार हैं—भगीरथ, श्रुत, नाभाग, अंबरीष, सिंधुद्वीप आदि इसी

वंश में रघु, दशरथ और राम आदि का भी जन्म हुआ। (ब्रह्म पुराण में ७८वें अध्याय में पंचजन के स्थान पर 'असमंजस' नाम का प्रयोग किया गया है तथा कथा आगे इस प्रकार आगे बढ़ी है :)

राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ किया। उसका पुत्र असमंजस नगरवासियों को बहुत तंग करता था। बालकों को जल में फेंक देता था। उससे रुष्ट होकर राजा ने उसे देश से निकाल दिया। शेष साठ हजार पुत्र यज्ञ मे सम्मिलित थे। यज्ञाश्व के खो जाने पर साठ हजार पुत्र उसे ढूंढ़ने निकले। मायावी राक्षसों (इंद्र की प्रेरणा से) ने घोड़े को ले जाकर रसातल में बांध दिया। वहां कपिल मुनि सो रहे थे। वे देवताओं का कार्य कर थक गये थे और उन्हींकी प्रेरणा से रसातल में विश्राम करने गये थे। उन्होंने देवताओं से यह भी निश्चित किया था कि उनकी निद्रा भंग करनेवाला भस्म हो जायेगा। सगर-पुत्र घोड़ा ढूंढ़ते हुए वहां पहुंचे। उनकी शक्ति से इंद्र शंकित था। उसके भेजे मायावी राक्षस छुपकर देखते रहे। उन्होने कपिल मुनि को यज्ञाश्व का चोर जानकर लातों से मारा। निद्रा में विघ्न डालने के कारण वे सब भस्म हो गये। नारद ने समस्त घटना का विवरण राजा से कह सुनाया। राजा ने निर्वासित पुत्र असमंजस को ढूंढ़वाकर गद्दी पर बैठाया। उसका पुत्र अंशुमान कपिल मुनि को प्रसन्न करके यज्ञाश्व ले आया। इस प्रकार अश्वमेध यज्ञ संपन्न हुआ। अंशुमान का पुत्र दिलीप तथा पौत्र भगीरथ हुआ। भगीरथ ने समस्त घटना को जाना तो कपिल मुनि के पास गया। उनसे विनयपूर्वक सब सुनाकर पितरों के उद्धार का मार्ग पूछा। मुनि ने तपस्या से शिव को प्रसन्न करके उनकी जटाओं से बची हुई गंगा को प्राप्त करके रसातल तक लाने को कहा। भगीरथ ने वैसा ही किया। गंगाजल के पावन स्पर्श से सगर-पुत्रों का उद्धार हुआ।

ब्र० पु०, ८।६३-८६, ७८।-

सती दक्ष प्रजापति का विवाह वीरनी से हुआ था। दक्ष ने ब्रह्मा की प्रेरणा से आदिशक्ति भवानी को तपस्या से प्रसन्न करके वर प्राप्त किया था कि वे उसके घर में जन्म लेंगी। कालांतर में भवानी ने वीरनी के गर्भ से जन्म लिया। उसका नाम सती रखा गया। सती ने शिव की तपस्या की तथा उनकी पत्नी होने का वरदान प्राप्त किया। ब्रह्मा दक्ष के पास विवाह-प्रस्ताव लेकर गये। विवाह के समय सती के पांव देखकर ब्रह्मा उसका रूप देखने के लिए लालायित हो उठे। अतः उन्होंने एक गीली लकड़ी हवन में डाल दी। सब ओर धुआं फैल गया। शिव अपनी आंखें पोंछने लगे तो ब्रह्मा ने सती के घूंघट में झांककर देखा। कामवश उनका वीर्यपात हो गया। शिव उनसे रुष्ट हो उन्हें मार डालने के लिए उद्यत हुए किंतु दक्ष ने रोका। ब्रह्मा के अनुनय-विनय करने पर शिव प्रसन्न हुए, पर उन्होंने शाप दिया कि ब्रह्मा मनुष्य होकर लज्जा उठायेंगे। शिव के आंसू और ब्रह्मा के वीर्य के मिश्रण से चार मेघ उत्पन्न हुए। विवाह के उपरांत शिव सती सहित कैलास पर्वत पर चले गये।

दक्ष प्रजापति की अवमानना (दे० ज्वाला भवानी) से दुखी होकर सती ने अपना शरीर भस्म करने से पूर्व शिव को स्मरण करके वर मांगा था कि उसे सदा शिव के चरण प्राप्त हों। हिमालय और मैना ने ब्राह्मणों की प्रेरणा से जगदंबा की स्तुति की, अतः उन्हें सौ पुत्र और एक (सती) कन्या प्राप्त हुई। इस प्रकार सती दूसरे जन्म में मैना की कन्या होकर शिव से ब्याही गयी।

शि० पु०, २, पूर्वार्द्ध, ५-१५,३-१

पराशक्ति ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश को सरस्वती, लक्ष्मी, गौरी प्रदान की, तभी वे सृष्टि-कार्य-निर्वाह में समर्थ हुए। एक बार हला, हल नामक अनेक दैत्यों ने त्रैलोक्य को घेर लिया। विष्णु और महेश ने युद्ध करके अपनी शक्ति से उन्हें नष्ट कर डाला। अपने-अपने स्थान पर लौटकर वे लक्ष्मी और गौरी के सम्मुख आत्मस्तुति करने लगे। शक्तिस्वरूपा उन दोनों की महत्ता भूल गयीं। वे दोनों शिव और विष्णु का मिथ्याभिमान नष्ट करने के लिए अंतर्धान हो गयीं। शिव, विष्णु सृष्टिपरक कार्य करने में असमर्थ हो गये। ब्रह्मा को तीनों का कार्य संभालना पड़ा। शिव और विष्णु विक्षिप्त हो गये। कुछ समय उपरांत ब्रह्मा की प्रेरणा से मनु तथा सनकादि ने तपस्या से पराशक्ति को प्रसन्न किया। उन्होंने शक्ति से हरि और हर का स्वास्थ्य-लाभ तथा लक्ष्मी और गौरी के पुनराविर्भाव का वर प्राप्त किया। दक्ष ने देवी से वर मांगा—"हे देवि! आपका जन्म मेरे ही कुल में हो।" देवि ने कहा—"एक शक्ति तुम्हारे कुल में तथा दूसरी शक्ति क्षीरोदसागर में जन्म ग्रहण करेगी। इसके लिए तुम मायाबीज मंत्र का जाप करो।" दक्ष के घर में

दाक्षायनी देवी का जन्म हुआ, जो सती नाम से विख्यात हुई। वही शिव की भूतपूर्व शक्ति थी। दक्ष ने सती पुन: शिव को प्रदान की। दुर्वासा मुनि ने मायाबीज मंत्र के जाप से भगवती को प्रसन्न किया। देवी ने उन्हें प्रसादस्वरूप अपनी माला प्रदान की। दुर्वासा दक्ष के यहां गये। दक्ष के मांगने पर उन्होंने वह माला उसे दे दी। दक्ष ने सोते समय वह माला अपनी शैया पर रखी तथा रतिकर्म में लीन हो गये। इस पशुवत् कर्म के कारण उनके मन में शिव तथा सती के प्रति द्वेष का भाव जाग्रत् हुआ। पिता से पति के प्रति बुरे वचन सुनकर सती ने आत्मदाह कर लिया। शिव ने क्रोधावेश में वीरभद्र को जन्मा तथा दक्ष का यज्ञ नष्ट कर डाला। विष्णु ने वाण से सती के अंग-प्रत्यंग का छेदन किया। सती के अवयव पृथ्वी पर जहां भी गिरे, शिव ने वहां उसकी मूर्तियों की स्थापना की तथा कहा कि वे स्थान सिद्धपीठ रहेंगे।

दे० भा०, ७।२१।२२-४५,
७-३०।-

सत्य सत्य नामक ब्राह्मण अनेक यज्ञों तथा तपों में व्यस्त रहता था। उसकी पत्नी (पुष्कर धारिणी) उसके हिंसक यज्ञों से सहमत नहीं थी, तथापि उसके शाप के भय से यज्ञ पत्नी का स्थान ग्रहण करती थी। उसके पुरोहित का नाम पर्णाद था जो कि शुक्राचार्य का वंशज था। एक बार ब्राह्मण के मित्र तथा सहवासी मृग ने उससे कहा—"मंत्र तथा अंग से हीन यज्ञ दुष्कर्म होता है। तुम मुझे अपने होता को सौंप दो और स्वर्ग जाओ।" तदनंतर सावित्री ने प्रकट होकर ब्राह्मण से मृग की बलि देने के लिए कहा। ब्राह्मण तैयार नहीं हुआ। देवी सावित्री यज्ञाग्नि में प्रविष्ट होकर रसातल में चली गयी। हरिण ने ब्राह्मण को दिव्य दृष्टि प्रदान करके आकाश में दिव्य अप्सराओं आदि से युक्त लोक दिखाकर बताया कि मृग की आहुति देकर वह उस लोक को प्राप्त करेगा। ब्राह्मण मृग की बलि देने के लिए तैयार हो गया। अत: उसके समस्त पुण्य नष्ट हो गये। मृग वास्तव में धर्म थे। धर्म अपने रूप में प्रकट हुए और ब्राह्मण का यज्ञ संपन्न करवाकर उसे अहिंसा का उपदेश दे पुष्करधारिणी के इच्छित मार्ग पर ले आये।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय २७२

सत्यकाम जाबाला के पुत्र सत्यकाम ने गुरुकुल के लिए प्रस्थान करने से पूर्व जाबाला से अपना गोत्र पूछा। मां ने बताया कि वह अतिथि-सत्कार करनेवाली परिचारिणी थी, वहीं उसे पुत्र की प्राप्ति हुई थी—गोत्र क्या है, वह नहीं जानती। साथ ही मां ने कहा—"तुम मेरे पुत्र हो, अपना नाम 'सत्यकाम जाबाल' बताना। सत्यकाम हारिद्रुमत गौतम के आश्रम में पहुंचा। आचार्य गौतम के पूछने पर उसने मां की कही बात ज्यों की त्यों दोहरा दी। आचार्य ने कहा—"इतना स्पष्टवादी बालक ब्राह्मण के अतिरिक्त और कौन हो सकता है?" तथा उसका उपनयन करवाकर उसे ४०० दुर्बल गौवें चराने के लिए सौंप दीं। सत्यकाम ने कहा—"मैं तभी वापस आऊंगा जब इनकी संख्या एक सहस्र हो जायेगी।" सत्यकाम बहुत समय तक जंगल में रहा। उसकी सत्यनिष्ठा, तप और श्रद्धा से प्रसन्न होकर दिग्व्यापी वायुदेवता ने सांड़ का रूप धारण किया और उससे कहा कि गौवों की संख्या एक सहस्र हो गयी है, अत: वह आश्रम जाय। मार्ग में उसने (सांड़ ने) सत्यकाम को ब्रह्म के 'प्रकाशवान' नामक चार कलाओंवाले पाद के विषय में बताया। मार्ग में अग्नि ने 'अनंतवान', हंस ने 'ज्योतिष्मान्' और मद्गु ने 'आयतनवान्' नामक चतुष्कल पदों के आदेश दिये। आश्रम में पहुंचने पर गौतम को वह ब्रह्मज्ञानी जान पड़ा। गौतम ने उसे विभिन्न ऋषियों से दिए गये उपदेश का परिवर्द्धन कर उसके ज्ञान को पूर्ण कर दिया। ब्रह्म के चार-चार कलाओं से युक्त चार पद माने गए हैं—

१. प्रकाशवान्—पूर्वदिक्कला, पश्चिम दिक्कला, दक्षिण दिक्कला, उत्तर दिक्कला।
२. अनतवान्—पृथ्वीकला, अंतरिक्षकला, द्युलोककला, समुद्रकला।
३. ज्योतिष्मान्—सूर्यककला, चंद्रककला, विद्युत कला, अग्निकला।
४. आयतनवान्—प्राणकला, चक्षुकला, श्रोत्रकला, मनकला।

छा० उ०, अ० ४, खंड ४, ५, ६, ७, ८, ९ (संपूर्ण)

सत्यभामा सत्राजित सूर्य का भक्त था। उसे सूर्य ने स्यमंतक मणि प्रदान की थी। मणि अत्यंत चमकीली तथा प्रतिदिन आठ भार (तोल माप) स्वर्ण प्रदान करती थी। कृष्ण ने सत्राजित से कहा कि वह मणि उग्रसेन को प्रदान कर दे, किंतु वह नहीं माना। एक दिन सत्राजित का

भाई प्रसेन उस मणि को धारण कर शिकार खेलने चला गया। दीर्घकाल तक उसके वापस न आने पर सत्राजित को लगा कि कृष्ण ने उसे मारकर मणि हस्तगत कर ली होगी। ऐसी कानाफूसी सुनकर कृष्ण को बहुत बुरा लगा। वे प्रसेन को ढूंढ़ने स्वयं जंगल गये। प्रसेन और घोड़े को मरा देख तथा उसके पास ही सिंह के पैरों के निशान देखकर उन लोगों ने अनुमान लगाया कि उसे शेर ने मार डाला है। तदनंतर सिंह के पैरों के निशानों का अनुगमन कर ऐसे स्थान पर पहुंचे जहां शेर मरा पड़ा था तथा रीछ के पांव के निशान थे। वे निशान उन्हें एक अंधेरी गुफा तक ले गये। वह ऋक्षराज जांबवान की गुफा थी। कृष्ण अकेले ही उसमें घुसे तो देखा कि एक बालक स्यमंतक मणि से खेल रहा है। अनजान व्यक्ति को देखकर बालक की धाय ने शोर मचाया। जांबवान ने वहां पहुंचकर कृष्ण से युद्ध आरंभ कर दिया। कालांतर में कृष्ण को पहचानकर जांबवान वह मणि तो उन्हें भेंट कर ही दी, साथ-ही-साथ अपनी कन्या जांबवती का विवाह भी कृष्ण से कर दिया। उग्रसेन की सभा में पहुंचकर कृष्ण ने सत्राजित को बुलवाकर मणि लौटा दी, साथ ही उसे प्राप्त करने में घटित समस्त घटनाएं भी सुना दीं। सत्राजित अत्यंत लज्जित हो गया। उसने अपनी पुत्री सत्यभामा का विवाह कृष्ण से कर दिया, साथ ही वह मणि भी देनी चाही। कृष्ण ने कहा कि सत्राजित सूर्य का मित्र है तथा वह मित्र की भेंट है। अतः वही उस मणि को अपने पास रखे, किंतु उससे उत्पन्न हुआ स्वर्ण उग्रसेन को दे दिया करे।

श्रीमद् भा०, १०।५६,

सत्यवती शांतनु ने भगीरथी गंगा की कोख से देवव्रत नामक पुत्र को जन्म दिया था। वे भीष्म भी कहलाए। भीष्म ने अपने पिता की इच्छा जानकर उनका विवाह सत्यवती से करवाया, जिसने कन्यावस्था में महर्षि पराशर से द्वैपायन को जन्म दिया। सरस्वती के संपर्क से शांतनु ने विचित्रवीर्य तथा चित्रांगद को जन्म दिया। चित्रांगद किशोरावस्था में ही मारे गये। विचित्रवीर्य का विवाह अंबिका तथा अंबालिका नामक काशी की राजकुमारियों से हुआ। उनके भी निःसंतान मारे जाने पर सत्यवती को दुष्यंत के कुल की समाप्ति का कष्ट सालने लगा। अतः उन्होंने द्वैपायन को बुलाकर वंश की रक्षा के लिए प्रेरित किया। व्यास (द्वैपायन) ने धृतराष्ट्र, पांडु तथा विदुर को उत्पन्न किया। धृतराष्ट्र ने व्यास के वरदान के प्रभाव से गांधारी की कोख से सौ पुत्रों को जन्म दिया। पांडु ने कुंतिभोज की कन्या पृथा और माद्री से विवाह किया।

म० भा०, आदिपर्व, ९५।४७-५८

सत्यवान् प्राचीनकाल में एक शांत प्रकृति के सत्यवान् मुनि थे। वे तपस्या में रत थे। उनकी तपस्या भंग करने के निमित्त इंद्र एक सैनिक के रूप में उनके आश्रम में गये। इंद्र ने मुनि को धरोहरस्वरूप एक खड्ग अर्पित की। मुनि का ध्यान निरंतर खड्ग की चिंता में रत रहने लगा। उनका तप क्षीण होने लगा और क्रोध बुद्धि जागने लगी। धीरे-धीरे वह एक क्रोधी क्रूर व्यक्ति के रूप में नरक के अधिकारी बने।

बा० रा०, अरण्य कांड, ९।१६-२२

सत्यव्रत कौशलदेशीय ब्राह्मण देवदत्त ने पुत्र-प्राप्ति के लिए यज्ञ किया। श्वास लेने के कारण गोभिल नामक मुनि का स्वर भंग हो गया। अतः देवदत्त ने रुष्ट होकर उसे भला-बुरा कहा। गोभिल ने क्रुद्ध होकर उससे कहा कि उसका पुत्र मूर्ख होगा। देवदत्त अपने कहे पर पश्चात्ताप करने लगा। उसके अनुनय-विनय करने पर गोभिल मुनि ने कहा कि मूर्ख होने पर भी कालांतर में वह विद्वान हो जायेगा। देवदत्त-पुत्र वज्रमूर्ख निकला। सबसे तिरस्कृत होकर वह वन में रहने लगा। वह सत्य पर अटल रहता था। एक बार एक शिकारी ने सूअर को घायल कर दिया जो देवदत्त के पुत्र (उतथ्य) के आश्रम से होता हुआ जंगल में जा छिपा। घायल सूअर को देखकर उतथ्य के मुंह से 'ऐं-ऐं' निकला ('ऐं-ऐं' देवी का बीजमंत्र है)। फलस्वरूप उसे अनायास ही बुद्धि और विद्या की प्राप्ति होने लगी। शिकारी सूअर के विषय में पूछता हुआ उतथ्य के पास पहुंचा तो सूअर को बचाने तथा झूठ न बोलने की इच्छा से उसने एक श्लोक बोला कि "जो जिह्वा बोलती है, वह देखती नहीं, जो आंख देखती है, वह बोलती नहीं।" शिकारी वापस चला गया। मुनि धीरे-धीरे प्रसिद्ध विद्वान हो गया। सत्यवादी होने के कारण वह सत्यव्रत नाम से विख्यात हुआ।

दे० भा०, ३।१०-११

सत्यसेन सत्यसेन कौरवों की ओर से युद्ध कर रहा था। उसके प्रहार से श्रीकृष्ण घायल हो गये तथा उनके हाथ से बागडोर और चाबुक छूट गयी। अर्जुन ने यह देखा

तो क्रोध से बिलबिला उठा तथा उसने अनेक वाणों से सत्यसेन का वध कर दिया। तदुपरांत मित्रवर्मा, वत्सदंत, मित्रदेव आदि अनेक वीर योद्धाओं को मार डाला।

म० भा०, कर्णपर्व, २७।१४-२६

सत्या कौशल नरेश नग्नजित की कन्या का नाम सत्या था। उसके विवाह के लिए राजा ने यह शर्त रखी थी कि जो उनके सात बैलों को परास्त कर देगा, उसीसे उस कन्या का विवाह होगा। अनेक राजा पराजित हो चुके थे। कृष्ण ने अपने सात रूप प्रकट किये तथा सातों बैलों को नथकर हांकना प्रारंभ कर दिया। राजा ने प्रसन्न होकर उनसे सत्या का विवाह कर दिया।

श्रीमद् भा०, १०।५८।३२-५२

सनत्कुमार नारद सनत्कुमार के पास जाकर बोले—"हे भगवन्! आप मुझे उपदेश दीजिए।" सनत्कुमार ने नारद से पूछा कि वे क्या-क्या जानते हैं। नारदजी ने बताया कि वे चारों वेद, गणित, नक्षत्रविद्या, नृत्य, संगीत आदि के मंत्रवेता हैं, किंतु आत्मवेत्ता नहीं हैं। सनत्कुमार ने उन्हें उपदेश दिया तथा नारद को अज्ञानांधकार के पार दिखा दिया।

छा० उ०, अध्याय ७ (संपूर्ण)

एक बार बहुत-से भवितात्मा मुनियों का परस्पर विवाद हो गया। कुछ मुनिगण जगत् को अटल तथा ईश्वर सहित मानते थे। कुछ ईश्वर की सत्ता में विश्वास नहीं रखते थे तथा जगत् की उत्पत्ति अपने-आप हुई, ऐसा मानते थे। उन सबने मिलकर वसिष्ठ से इस विवाद का हल करने के लिए कहा। वसिष्ठ ने अपनी असमर्थता बताकर उन्हें नारद के पास भेजा। नारद भी गुत्थी सुलझाने में समर्थ नहीं थे। तभी किसी अदृश्य सत्ता ने उन्हें सनत्कुमार के पास जाने के लिए कहा। वे लोग सनत्कुमार के आश्रम पर गये। उन्होंने ब्रह्म जीव जगत् के वास्तविक रूप का विवेचन कर उनकी समस्त शंकाओं का समाधान किया।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय २२२

सनाज्जात धृतव्रत के पुत्र का नाम सनाज्जात था। वह शिशु ही था कि पिता की मृत्यु हो गयी। बाल-विधवा मही नामक मां उसे गालब मुनि के आश्रम में छोड़कर स्वयं वेश्यावृत्ति की ओर प्रवृत्त हो गयी। सनाज्जात वेदों का ज्ञाता होकर भी मां के संस्कारों से मुक्त नहीं हुआ। संयोग से वेश्यागमन की वृत्ति का निर्वाह करते हुए वह अपनी मां के पास ही रात बिताने लगा। प्रतिदिन प्रातः वह बीमार कोढ़ी लगता था। गंगा में स्नान कर पुनः सुंदर रूप धारण कर लेता था। गालव ऋषि प्रतिदिन इस ओर ध्यान देते थे। एक दिन उन्होंने सनाज्जात से उसके माता-पिता और भार्या का परिचय पूछा। अगले दिन उत्तर देने की बात कहकर वह वेश्या (मही) के पास पहुंचा। चर्चा चलने पर दोनों ने जाना कि वे मां और पुत्र हैं। विगत पाप के प्रायश्चित्त से संतप्त दोनों गालब के पास पहुंचे। उनके आदेश से गंगास्नान करके दोनों पाप-मुक्त हो गये।

ब्र० पु०, ९२।-

सप्तवध्रि (भरतवंशी राजा अश्वमेध ने पुत्र की कामना से सप्तवध्रि ऋषि की सात बार सहायता ली, किंतु पुत्र-प्राप्ति नहीं हुई। आठवीं बार की सहायता भी जब विफल रही तब राजा ने क्रुद्ध होकर ऋषि को वृक्षद्रोणी में रखकर एक गर्त में फेंक दिया।)

नोट—उपरिलिखित अंश ऋगवेद में नहीं मिलता।

ऋषि ने गर्त में पड़े-पड़े अश्विनीकुमारों की स्तुति की और कहा कि "जिस प्रकार नौ मास तक मां के उदर में रहकर बालक योनि से सुरक्षित बाहर निकल आता है, वैसे ही हे कुमारो! तुम मेरी रक्षा करो।" अश्विनीकुमारों ने प्रसन्न होकर उसे मुक्त कर दिया।

ऋ० ५।७३-७८

सप्तसारस्वत तीर्थ पुष्कर तीर्थ में ब्रह्मा ने यज्ञ की दीक्षा ली थी। उनके यज्ञ करते समय धर्म और अर्थ में कुशल मनुष्य, मन में जिस किसी वस्तु की कामना करें, वे तत्काल उपस्थित हो जाती थीं। उस यज्ञ से देवता, मनुष्य, गंधर्व, अप्सराएं—सभी संतुष्ट थे। ऋषियों ने ब्रह्मा से कहा—"यहां श्रेष्ठ कोटि की सरस्वती नदी नहीं दिखलायी पड़ती, अतः वह सर्वगुणसंपन्न नहीं हैं।" ब्रह्मा ने सरस्वती देवी की आराधना की तथा उसका आवाहन किया। वहां सरस्वती 'सुप्रभा' नाम से प्रकट हुई। इसी प्रकार नैमिषारण्य में यज्ञ करते हुए मुनियों के स्मरण करने पर सरस्वती 'कांचनाक्षी' नाम से प्रकट हुई। गय ने एक महान यज्ञ का अनुष्ठान किया जिसमें आवाहन करने पर सरस्वती 'विशाला' नाम से प्रकट हुई। कोसल प्रांत में उद्दालक ऋषि के यज्ञ में आवाहन करने पर वह 'मनोरमा' नाम से आयी। कुरुक्षेत्र में यज्ञ करते हुए राजर्षियों के आवाहन करने पर आई हुई सरस्वती

'सुरेणु' नाम से विख्यात हुई तथा वसिष्ठ ने भी कुरुक्षेत्र में ही उसका आवाहन किया जहां वह ओघावती नाम से प्रकट हुई। ब्रह्मा ने एक बार हिमालय पर यज्ञ करते हुए उसका आवाहन किया। वहां पर प्रकट हुआ उसका रूप 'विमलोदका' नाम से प्रसिद्ध है। तदनंतर सातों सरस्वतियां एकत्र होकर उस तीर्थ में गयीं। अतः वह 'सप्तसारस्वत तीर्थ' के नाम से विख्यात हुआ।

म० भा०, शल्यपर्व, ३८।१-३२

समंग नारद ने एक बार समंग से पूछा—"आप सदैव प्रसन्नचित्त तथा सिर झुकाकर प्रणाम न कर हृदय से प्रणाम करते दिखलायी पड़ते हैं। आप उद्वेग से भी बहुत दूर हैं। इसका क्या कारण है?" समंग ने नारद को चिर परिवर्तनशील संसार की क्षण-भंगुरता तथा ज्ञान का उपदेश दिया।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय २८६

सरण्यू त्वष्टा की पुत्री का नाम था। उसका विवाह विवस्वत से हुआ। उसने यम-यमी नामक जुड़वां भाई-बहन को जन्म दिया था। यम यमी की अपेक्षा बड़ा था। युवती सरण्यू ने सूर्य के तेज को सहज ही ग्रहण कर लिया था किंतु यौवन ढलने पर वह सूर्य के सहवास से घबराने लगी। एक दिन अपने जैसी ही छाया सरण्यू का निर्माण कर वे अश्वी का रूप धारण करके भूमंडल में विचरण करने लगी। सूर्य ने छाया को सरण्यू समझा। कालांतर में छाया ने 'मनु' को जन्म दिया। मनु के प्रति छाया का पक्षपातपूर्ण व्यवहार धीरे-धीरे सबको खलने लगा। सूर्य ने छाया से कहा—"तुम सरण्यू नहीं हो सकतीं।" सरण्यू घबराकर रोने लगी और सब कुछ कह सुनाया। सूर्य अश्व का रूप धारण कर अश्वी सरण्यू की खोज में निकल पड़ा। एक उपवन में दोनों का साक्षात्कार हुआ। कामातुर अश्वरूपी विवस्वत का पृथ्वी पर वीर्यस्खलन हो गया। अश्वी सरण्यू ने उसे सूंघा तो दो पुत्रों को जन्म दिया जो अश्वकुमार नाम से विख्यात हैं। सरण्यू प्रसन्न थी कि प्रथम मृत्युदेव यम को जन्म देकर उसने सुप्रसिद्ध वैद्यराज अश्विनीकुमारों को भी जन्म दिया। छाया सरण्यू ने मरणधर्मियों के प्रथम राजा मनु को जन्म दिया। अतः लोक-परलोक दोनों सरण्यू से संबद्ध हो गये।

दे० वैवस्वत

ऋ० १०।१७

सरमा एक बार पणियों ने बृहस्पति की गाएं चुरा लीं। देवताओं को आश्चर्य हुआ, लज्जा तथा चिंता भी। इंद्र को ज्ञात हुआ तो उन्होंने सरमा को दूती के रूप में पणियों के पास भेजा। सरमा अत्यंत मेधाविनी थी। उसने पणियों के समस्त भेद का पता चला लिया किंतु अपने रहस्य को छिपाकर रखा। पणियों ने सरमा को लालच दिया कि वह उनकी भगिनी के समान उसी नगरी में रहने लगे। किंतु वह नहीं मानी। इंद्र और देवताओं ने पणियों के गुह्य रहस्यों को जानकर उनसे युद्ध किया तथा उन्हें परास्त करके पुनः बृहस्पति की गाएं प्राप्त कीं। सफल दौत्य कर्म के कारण सरमा को अन्न-धन आदि की प्राप्ति हुई।

दे० पणि

ऋ० १।६२।२, ऋ० ४।१६।६, ऋ० १।७२।८,
ऋ० मं० ७।६,९ (सू०), ऋ० मं० १०।६७,१०८(सू०)
जै० ब्रा० २।४४०-४४२

देवताओं की कुतिया का नाम सरमा था। उसका पिल्ला सारमेय कहलाता था। एक बार परीक्षित ने अपने तीनों भाइयों—श्रुतसेन, उग्रसेन तथा भीमसेन—के साथ एक यज्ञ का अनुष्ठान किया। वे लोग यज्ञ कर रहे थे, तभी सारमेय उधर जा पहुंचा। परीक्षित के भाइयों ने उसे मार भगाया। वह रोता हुआ अपनी मां के पास पहुंचा। मां ने कहा—"तूने, यज्ञ में कोई शरारत की होगी—तभी उन्होंने मारा।"

वह बोला—"मैंने कुछ भी नहीं किया था, न हविष्य की ओर देखा और न उसे चाटा, फिर भी उन्होंने मुझे मारा।" सरमा ने जनमेजय से जाकर शिकायत की तो किसी ने कोई उत्तर ही नहीं दिया। सरमा ने क्रुद्ध होकर शाप दिया कि निरपराधी सारमेय को मारने के कारण उनपर अकस्मात् ही कोई विपत्ति आयेगी। देवताओं की कुतिया के शाप से जनमेजय बहुत घबराया। वह शापमुक्ति प्रदान करवाने में समर्थ पुरोहित की खोज में लग गया। एक बार शिकार खेलता हुआ वह महर्षि श्रुतश्रवा के आश्रम में पहुंचा। उसने उनके पुत्र सोमश्रवा को अपना पुरोहित बनाने की इच्छा प्रकट की। श्रुतश्रवा ने उसे बताया—"मेरा पुत्र सर्पिणी की संतान है, क्योंकि एक सर्पिणी ने मेरा वीर्यपान कर लिया था। वह राजा को संकट-मुक्त करवाने में समर्थ भी है किंतु जब कोई ब्राह्मण उससे याचना करेगा तो वह उसको अभीष्ट वस्तु अवश्य देगा।" राजा ने शर्त स्वीकार कर

ली। जनमेजय ने पुरोहित सोमश्रवा का अपने भाइयों से परिचय करवाया तथा भाइयों को पुरोहित की आज्ञा का पालन करने का आदेश देकर वह तक्षशिला जीतने के लिए चला गया।

म० भा०, आदिपर्व ३।१-२१

(ख) शैलूष (नाग-गंधर्वराज) की कन्या, सरमा का विवाह विभीषण के साथ हुआ। सरमा का जन्म मानसरोवर के किनारे हुआ था। वर्षा ऋतु में सरोवर का जल बढ़ने लगा। उसकी मां रोती हुई बोली—"सरः मा वर्द्धस्व।" इसी से उसकी पुत्री का नाम 'सरमा' पड़ गया।

बा० रा०, उत्तर कांड, १२।२६-२७

सरस्वती सरस्वती का जन्म ब्रह्मा के मुंह से हुआ था। वह वाणी की अधिष्ठात्री देवी है। ब्रह्मा अपनी पुत्री सरस्वती पर ही आसक्त हो गये। वे उसके पास गमन के लिए तत्पर हुए। सभी प्रजापतियों ने अपने पिता ब्रह्मा को न केवल समझाया, अपितु उनके विचार की हीनता की ओर भी संकेत किया। ब्रह्मा ने लज्जावश वह शरीर त्याग दिया, जो कुहरा अथवा अंधकार के रूप में दिशाओं में व्याप्त हो गया।

श्रीमद् भा०, तृतीय स्कंध, १२।२८-३३

वेदज्ञ पुरुरवा ने ब्रह्मा के निकट हास करती हुई सरस्वती को देखा। उर्वशी के द्वारा उसने सरस्वती को अपने पास बुलाया। तदनंतर दोनों परस्पर मिलते रहे। सरस्वती ने 'सरस्वान्' नामक पुत्र को जन्म दिया। कालांतर में ब्रह्मा को पता चला तो उन्होंने सरस्वती को महानदी होने का शाप दिया। भयभीता सरस्वती गंगा मां की शरण में जा पहुंची। गंगा के कहने पर ब्रह्मा ने सरस्वती को शाप-मुक्त कर दिया। शापवश ही वह मृत्युलोक में कहीं दृश्य और कहीं अदृश्य रूप में रहने लगी।

(सोम तथा सरस्वती के विषय में भी एक कथा मिलती है :)

सोम की प्राप्ति पहले गंधर्वों को हुई। देवताओं ने जाना तो सोम प्राप्त करने के उपाय सोचने लगे। सरस्वती ने कहा—"गंधर्व स्त्री-प्रेमी हैं, उनसे मेरे विनिमय में सोम ले लो। मैं फिर चतुराई से तुम्हारे पास आ जाऊंगी।" देवगिरि पर यज्ञ करके देवताओं ने वैसा ही किया। गंधर्वों के पास न तो सोम ही रहा, न सरस्वती।

ब्र० पु०, १०१।-

ब्र० पु०, १०५।-

श्रीकृष्ण ने भारतवर्ष में सर्वप्रथम सरस्वती की पूजा का प्रसार किया। सरस्वती ने राधा के जिह्वाग्र भाग से आविर्भूत होकर कामवश श्रीकृष्ण को पति बनाना चाहा। कृष्ण ने सरस्वती मे कहा—"मेरे अंश से उत्पन्न चतुर्भुज नारायण मेरे ही समान हैं—वे नारी के हृदय की विलक्षण वासना से परिचित हैं, अतः तुम उनके पास वैकुंठ में जाओ। मैं सर्वशक्तिसंपन्न होते हुए भी राधा के बिना कुछ नहीं हूं। राधा के साथ-साथ तुम्हें रखना मेरे लिए संभव नहीं। नारायण लक्ष्मी के साथ तुम्हें भी रख पायेंगे। लक्ष्मी और तुम समान सुंदर तथा ईर्ष्या के भाव से मुक्त हो। माघ मास की शुक्ल पंचमी पर तुम्हारा पूजन चिरंतन काल तक होता रहेगा तथा वह विद्यारंभ का दिवस माना जायेगा। वाल्मीकि, बृहस्पति, भृगु, इत्यादि को क्रमशः नारायण, मरीचि तथा ब्रह्मा आदि ने सरस्वती-पूजन का बीजमंत्र दिया था।

लक्ष्मी, सरस्वती और गंगा नारायण के निकट निवास करती थीं। एक बार गंगा ने नारायण के प्रति अनेक कटाक्ष किये। नारायण तो बाहर चले गये किंतु इससे सरस्वती रुष्ट हो गयी। सरस्वती को लगता था कि नारायण गंगा और लक्ष्मी से अधिक प्रेम करते हैं। लक्ष्मी ने दोनों का बीच-बचाव करने का प्रयत्न किया। सरस्वती ने लक्ष्मी को निर्विकार जड़वत् मौन देखा तो जड़ वृक्ष अथवा सरिता होने का शाप दिया। सरस्वती को गंगा की निर्लज्जता तथा लक्ष्मी के मौन रहने पर क्रोध था। उसने गंगा को पापी जगत् का पाप समेटने वाली नदी बनने का शाप दिया। गंगा ने भी सरस्वती को मृत्युलोक में नदी बनकर जनसमुदाय का पाप प्राक्षालन करने का शाप दिया। तभी नारायण भी वापस आ पहुंचे। उन्होंने सरस्वती का आलिंगन कर उसे शांत किया तथा कहा—"एक पुरुष अनेक नारियों के साथ निर्वाह नहीं कर सकता। परस्पर शाप के कारण तीनों को अंश रूप में वृक्ष अथवा सरिता बनकर मृत्युलोक में प्रकट होना पड़ेगा। लक्ष्मी! तुम एक अंश से पृथ्वी पर धर्मध्वज राजा के घर अयोनिसंभवा कन्या का रूप धारण करोगी, भाग्य-दोष से तुम्हें वृक्षत्व की प्राप्ति होगी। मेरे अंश से जन्मे असुरेंद्र शंखचूड़ से तुम्हारा पाणिग्रहण होगा। भारत में तुम 'तुलसी' नामक पौधे तथा पद्मावती नामक नदी के रूप में अवतरित होगी। किंतु पुनः यहां आकर मेरी ही पत्नी रहोगी। गंगा, तुम सरस्वती के

शाप से भारतवासियों का पाप नाश करनेवाली नदी का रूप धारण करके अंश रूप से अवतरित होगी। तुम्हारे अवतरण के मूल में भगीरथ की तपस्या होगी, अत: तुम भागीरथी कहलाओगी। मेरे अंश से उत्पन्न राजा शांतनु तुम्हारे पति होंगे। अब तुम पूर्ण रूप से शिव के समीप जाओ। तुम उन्हींकी पत्नी होगी। सरस्वती, तुम भी पापनाशिनी सरिता के रूप में पृथ्वी पर अवतरित होगी। तुम्हारा पूर्ण रूप ब्रह्मा की पत्नी के रूप में रहेगा। तुम उन्हींके पास जाओ।" उन तीनों ने अपने कृत्य पर क्षोभ प्रकट करते हुए शाप की अवधि जाननी चाही। कृष्ण ने कहा—"कलि के दस हजार वर्ष बीतने के उपरांत ही तुम सब शाप-मुक्त हो सकोगी।" सरस्वती ब्रह्मा की प्रिया होने के कारण ब्राह्मी नाम से विख्यात हुई।

दे० भा०, ६।४-७

ब्रह्मा ने लोक-रचना करने के निमित्त सावित्री का ध्यान कर तपस्या आरंभ की। ब्रह्मा का शरीर दो भागों में विभक्त हो गया : आधा पुरुष-रूप (मनु) तथा शेष स्त्री-रूप (शतरूपा सरस्वती)। कालांतर में ब्रह्मा अपनी देहजा सरस्वती पर आसक्त हो गये। देवताओं के मना करने पर भी उनकी आसक्ति समाप्त नहीं हुई। सरस्वती 'पिता' को प्रणाम करके उनकी प्रदक्षिणा कर रही थी। ब्रह्मा के मुख के दाहिनी ओर दूसरा लज्जा से पीतवर्ण वाला मुख प्रादुर्भूत हुआ, फिर पीछे की ओर तीसरा और बायीं ओर चौथा मुख आविर्भूत हुआ। सरस्वती स्वर्ग की ओर जाने के लिए उद्यत हुई तो ब्रह्मा के सिर पर पांचवां मुख भी उत्पन्न हुआ जो कि जटाओं से ढका रहता है। ब्रह्मा ने मनु को सृष्टि-रचना के लिए पृथ्वी पर भेजकर शतरूपा (सरस्वती) से पाणि-ग्रहण किया, फिर समुद्र में विहार करते रहे। ब्रह्मा को इस कुकृत्य का दोष नहीं लगा, क्योंकि सरस्वती उनका अपना अंग थी। वेदों में ब्रह्मा और सरस्वती का अमूर्त निवास रहता है। दोनों की सर्वत्र अमूर्त उपस्थिति की अनिवार्यता पर ध्यान देकर तथा यह देखकर कि वह ब्रह्मा का अनिवार्य अंग है—ब्रह्मा को दोषी नहीं ठहराया गया।

मत्स्य०पु०, ३-४

सर्वार्थसिद्ध एक बार राम के दरबार में एक कुत्ता न्याय की मांग करता हुआ पहुंचा। कुत्ते का सिर फूटा हुआ था। वह कुत्ता सर्वार्थसिद्ध नामक एक क्रोधी ब्राह्मण का था। ब्राह्मण को बुलाया गया। उसने अपना अपराध स्वीकार किया। अब प्रश्न उठा कि ब्राह्मण को क्या दंड दिया जाये। कुत्ते ने कहा—"महाराज, इन ब्राह्मणदेव को कालंजर का महंत बना दीजिए।" राम ने ऐसा ही किया। उपस्थित ऋषि एवं मंत्रियों ने शंका उठायी कि यह दंड हुआ या पुरस्कार। सबका समाधान करते हुए कुत्ते ने कहा—"यह ब्राह्मण क्रोधी, रूखा और अनेक अन्य दुर्गुणों से युक्त है। अत: महंत बनने के उपरांत यह अपनी माता तथा अपने पिता के कुलों की सात पीढ़ियों को नर्क में डालेगा।"

बा० रा०, उत्तरकांड, अ०२४, क्षेपक खंड १-२।

सहस्रकिरण एक बार राजा सहस्रकिरण अपनी रानियों के साथ जलक्रीड़ा कर रहा था। उसने जलयंत्र लगाकर पानी रोका हुआ था। उसी नदी के तट पर रावण जिनेश्वर-देव की प्रतिमाओं की स्वर्ण सिंहासन पर प्रतिष्ठा करके पूजा कर रहा था। क्रीड़ा के उपरांत सहस्रकिरण ने यंत्रों से रोका हुआ जल छोड़ दिया तो किनारे पर बाढ़-सी आ गयी, जिससे रावण की पूजा में व्यवधान पड़ा। अत: उसने क्रुद्ध होकर राजा से युद्ध किया और उसे पाशबद्ध कर लिया। उसी समय सहस्रकिरण के पिता शतबाहु वहां पहुंचे। उन्होंने राज्य पुत्र को सौंप स्वयं प्रव्रज्या ले ली। उनके अनुरोध पर रावण ने सहस्रकिरण को मुक्त कर दिया। वह भी अपना राज्य अपने पुत्र को सौंप स्वयं दीक्षा लेकर पिता के साथ चला गया।

पउ० च०, १०।३४-८८

सहस्रपाद रुरु अपनी पत्नी के डंसे जाने के बाद से प्रत्येक सर्प की हत्या कर डालता था। एक बार उसे एक डुंडभ जाति का सर्प मिला। इससे पूर्व कि वह सर्प को मार डाले, सर्प मनुष्यों की बोली में बोला। रुरु ने पूछा कि वह इस विकृत योनि में कौन है? सर्प ने बताया कि वह सहस्रपाद नामक ऋषि था। उसका खगम नामक ब्राह्मण मित्र था। एक बार सहस्रपाद ने परिहास में तिनकों का सर्प बनाकर मित्र खगम को डरा दिया था। फलस्वरूप उसने सहस्रपाद को सर्प बनने का शाप दिया। उसके बहुत अनुनय-विनय के उपरांत खगम ने कहा कि रुरु के दर्शन के उपरांत वह शाप-मुक्त हो जायेगा। ऐसा ही हुआ। उसने रुरु से कहा—"ब्राह्मण का धर्म अहिंसा है—क्षत्रिय का धर्म दंड देना।"

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय १०,११

सांब जांबवती (कृष्ण की पत्नी) के बेटे का नाम सांब था। उसने स्वयंवर के समय दुर्योधन की कन्या लक्ष्मणा को हर लिया था। फलतः कौरवों ने उससे युद्ध किया और दोनों को पकड़ लिया। नारद मुनि के माध्यम से यह समाचार द्वारका पहुंचा। बलराम अकेले ही हस्तिनापुर के निकट एक उपवन में जा ठहरे और उद्धव को संदेशवाहक के रूप में कौरवों के पास भेजा। कौरवों ने बलराम की आवभगत की किंतु बलराम के यह कहने पर कि एकाकी सांब को घेरकर उन्होंने अन्याय किया था, अतः उन्हें सांब और लक्ष्मणा को उन्हें सौंप देना चाहिए। कौरवों ने उनकी अवमानना की तथा कहा कि वे तो शासक न होने के कारण उनके पैरों की धूल भी नहीं हैं। बलराम क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने अपने हल से हस्तिनापुर पर प्रहार किया, फिर उसकी नोक में अटकाकर उसे खींचकर ले चले कि वह (हस्तिनापुर) गंगा में डुबो दें। आत्मरक्षा के निमित्त कौरवों ने लक्ष्मण को आगे कर सांब को विदा किया। तभी से हस्तिनापुर दक्षिण की ओर ऊंचा तथा गंगा की ओर झुका हुआ है।

श्रीमद् भा०, १०।६८
वि०पु०, ५।३५,
हरि० वं० पु०, विष्णुपर्व,६२

सागर-मंथन सतयुग में दिति के पुत्र दैत्य और अदिति के पुत्र देवताओं ने अजर-अमर होने के निमित्त सागर-मंथन करने का विचार किया। वासुकी नाग को मंथन की डोरी, मंदराचल को मथानी बनाकर मंथन आरंभ किया। यह सहस्र वर्ष तक चलता रहा और वासुकी नाग के मुंह से विष निकलकर पर्वत की चट्टानों और समस्त विश्व को जलाने लगा तो देवता शिव की शरण में पहुंचे। विष्णु ने प्रकट होकर कहा—"हे शिव ! समुद्र-मंथन में सबसे पहले विष निकला है और देवताओं के अग्रणी होने के नाते आप ही उसका पान करें।" शिव ने हलाहल का पान किया। पुनः मथना आरंभ करने पर मंदराचल पाताल में धंसने लगा। देवताओं का आर्तनाद सुनकर विष्णु ने कमठ (कच्छप) का रूप धारण कर पर्वत को पीठ पर टिका लिया। एक हजार वर्ष के मथन के बाद दंड-कमंडलधारी आयुर्वेद का मूर्तिमान स्वरूप एक पुरुष निकला। उसके बाद अप्सराएं निकलीं। पानी से उत्पन्न होने के कारण ही ये अप्सराएं कहलायी। वरुण की पुत्री वारुणी निकली, जो उत्पन्न होते ही वर खोजने लगी। देवताओं ने उसका वरण किया। वारुणी को ग्रहण करने के कारण अदिति के पुत्र सुर और न करने के कारण दिति के पुत्र असुर कहलाए। तदुपरांत हयश्रेष्ठ उच्चैश्रवा तथा कौस्तुभ मणि निकले। कालांतर में अमृत निकलने पर दैत्य और देवताओं में परस्पर युद्ध आरंभ हुआ। दैत्य निर्बल थे, अतः राक्षसों से जा मिले। घोर युद्ध में सबकी शक्ति क्षीण हो रही थी। विष्णु ने मोहिनी रूप धारण कर अमृत उठा लिया। दिति के पुत्रों को मारकर देवताओं ने इंद्र के राज्य की स्थापना की। इंद्र स्वर्गलोक का पालन करने लगे।

बा० रा०, बाल कांड, ४५।१-४४

दानव तथा देवताओं ने अमृत पाने की कामना से सागर मंथन करने का निश्चय किया। सागर ने इस शर्त पर मंथन की स्वीकृति दे दी कि उसमें सागर का अंश भी होगा। मंदराचल को मथानी, नागराज वासुकी (शेषनाग का छोटा भाई) को रस्सी तथा कच्छप को आधार बनाया गया। वासुकि के मुख मात्र को असुरों ने तथा पूंछ को देवताओं ने पकड़ा। सागर मथने की प्रक्रिया में वासुकि के मुख से ज्वाला निकलती रही जो आकाश में बादल बनकर पानी बरसाती रही। मंथन से क्रमशः चंद्रमा, लक्ष्मी, कौस्तुभ मणि, पारिजात वृक्ष, सुरभि गौ, उच्चैश्रवा (घोड़ा), अमृतकलश सहित धन्वंतरि देव तथा ऐरावत की प्राप्ति हुई। अंत में काल कूट महाविष उत्पन्न हुआ। त्रिलोकी की रक्षा के निमित्त महेश ने विष को अपने कंठ में स्थान दिया। अमृत-प्राप्ति की लालसा से देवता और दानव परस्पर झगड़ने लगे तो विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण करके अमृत-कलश थाम लिया। सब लोग उनके रूप में उलझे रहे और वे मात्र देवताओं में अमृत का वितरण करने लगे। तभी राहु नामक दानव ने छद्मवेश में देवताओं की पंगत में घुसकर अमृत प्राप्त किया। सूर्य तथा चंद्र ने यह तथ्य विष्णु को बताया तो विष्णु ने उसका सिर चक्र से काट डाला, इसीलिए वह चंद्र और सूर्य का बैरी बन गया। अमृत अभी उसके कंठ तक ही पहुंचा था, अतः उसका अमर सिर राहु बनकर गगन स्थित सूर्य-चंद्र का बैरी बन गया और धड़ पृथ्वी पर तड़पने लगा। देवासुर संग्राम हुआ जिसमें देवताओं की विजय हुई।

म० भा०, आदिपर्व, अध्याय १७, १८, १९,
१४।१६-१७-

असुरों ने अपने शस्त्रों से देवताओं को पराजित कर दिया था क्योंकि दुर्वासा के शाप के कारण इंद्र तथा तीनों लोक श्रीहीन हो चुके थे। ब्रह्मा देवताओं को लेकर बैकुंठ-धाम पहुंचे। उन सबने श्रीहरि की स्तुति की। विष्णु ने उन सबसे कहा कि जब तक उनका कार्य सिद्ध नहीं होता, वे सब दैत्यों से संधि कर लें। देवताओं ने असुरों से मित्रता कर ली। वे सब मिलकर अमृत मंथन के लिए उद्योग-शील हो उठे। मंदराचल को उखाड़कर वे क्षीर सागर की ओर चले। मार्ग में थककर उन्होंने पर्वत को पटक दिया, जिसके नीचे दबकर अनेक असुर तथा देवता विकलांग हो गये अथवा मर गये। गरुड़ारूढ़ विष्णु ने अपनी अमृतमयी दृष्टि से उन्हें पूर्ववत् कर दिया। देवता और असुरों ने वासुकि को अमृत का लालच देकर अपनी ओर मिला लिया। मंदराचल ने मथानी तथा वासुकि ने उसकी डोरी का कार्य किया। असुरों ने देवताओं को वासुकि के मुंह की ओर खड़ा देखकर आग्रहपूर्वक वही स्थान प्राप्त किया तथा देवता उसकी पूंछ की ओर से खींचने में लग गये। पर्वत नीचे की ओर धंस न जाय इसलिए श्रीहरि ने विचित्र कच्छप का रूप धारण कर उसे आधार प्रदान किया। मथानी (मंदराचल) कच्छप की कमर पर घूमने लगी। वासुकि के मुखों से धुआं और आग निकलने लगी और असुर बहुत निस्तेज हो गये। देवता भी उस प्रकोप से बच नहीं पाये। मंथन में सर्वप्रथम हलाहल निकला। उसकी ज्वाला के कारण देवताओं की आकुलता का निवारण करने के लिए शिव ने कालकूट का पान कर लिया। असुर बड़े प्रसन्न हो गये। शिव के हाथ से जो विष गिरा, उसे सांप-बिच्छू आदि जीवों ने ग्रहण कर लिया। शिव ने विष को अपने कंठ में थाम लिया। अतः वे नीलकंठ कहलाए। तत्पश्चात् कामधेनु (गाय, जो कि ब्रह्मवादी ऋषियों ने ली), उच्चैश्रवा (घोड़ा बलि ने लिया), ऐरावत (इंद्र का हाथी), कौस्तुभ मणि (विष्णु ने ली), अप्सराएं, लक्ष्मी (विष्णु का वरण किया), वारुणी (दैत्यों ने ली), धन्वंतरि (विष्णु के अंशावतार, आयुर्वेद के प्रवर्तक) तथा अमृत का कलश आदि वस्तुएं निकलीं। अमृत को असुरों ने छीन लिया। असुरों में 'पहले मैं, पहले मैं' कह-कहकर छीना-झपटी हो रही थी, तब विष्णु ने सुंदरी का रूप धारण कर अमृत का कलश हाथ में ले लिया। उसने दो पंक्तियों में बैठे हुए असुर और देवताओं को अमृत बांटने का कार्य संभाल लिया। उस मोहिनी रूप में विष्णु केवल देवताओं को ही अमृत पिलाना चाहते थे, किंतु देवताओं का वेष बनाकर राहु ने देवताओं के साथ अमृतपान कर लिया। सूर्य तथा चंद्रमा ने उसकी पोल खोल दी। विष्णु ने अपने चक्र से उसका सिर काट दिया। अमृत का संसर्ग न होने के कारण धड़ नीचे गिर गया। ब्रह्मा ने उन्हें राहु तथा केतु नामक ग्रह बना दिया। देवताओं के उस राहु ग्रह ने बदला लेने की भावना से सूर्य तथा चंद्र पर आक्रमण कर दिया। देवताओं के अमृतपान के उपरांत विष्णु गरुड़ पर सवार होकर तथा मंदराचल को लेकर चल दिये तो असुरों को बहुत बुरा लगा। उन्होंने आक्रमण कर दिया। देवासुर संग्राम हुआ जिसमें इंद्र ने असुर नमुचि का सिर समुद्र की फेन से काट डाला। नारद ने युद्ध को शांत किया। शुक्राचार्य ने युद्ध में विकलांग हुए दैत्यों को तथा मृत बलि को संजीवनी विद्या और अपने स्पर्श से ठीक कर दिया।

श्रीमद् भा०, अष्टम स्कंध, अध्याय ५-११
वि० पु०, १।९।-

सात्यकि शिनिप्रवर (शिनि के पौत्र) का नाम सात्यकि था। वह अर्जुन का परम स्नेही मित्र था। अभिमन्यु के निधन के उपरांत जब अर्जुन ने अगले दिन जयद्रथ को मारने की अथवा आत्मदाह की प्रतिज्ञा की थी, तब वह युद्ध के लिए चलने से पूर्व सात्यकि को युधिष्ठिर की रक्षा का भार सौंप गया था। सात्यकि तेजस्वी वीर था। उसने कौरवों के अनेक उच्चकोटि के योद्धाओं को मार डाला जिनमें से प्रमुख जलसंधि, त्रिगर्तों की गजसेना, सुदर्शन, पाषाणयोधी म्लेच्छों की सेना, भूरि, कर्णपुत्र प्रसेन थे।

म० भा०, द्रोणपर्व, १११-१२३, १२६,
१४०-१४४, १४७।४१-९२
१५६।१-३१, १६२।१-३३

सात्यकि ने अपने अमित तेज तथा रणकौशल के बल से द्रोण, कौरवसेना, कृतवर्मा, कंबोजों, यवन सेना, दुःशासन आदि योद्धाओं को पराजित कर दिया। दुःशासन ने पर्वतीय योद्धाओं को पत्थरों द्वारा युद्ध करने की आज्ञा दी, क्योंकि सात्यकि इस युद्ध में निपुण नहीं था। सात्यकि ने क्षिप्र गति से छोड़े बाणों से पत्थरों को चूर-चूर कर डाला तथा उनके गिरने से सारी सेनाएं आहत होने

लगीं। सात्यकि ने सभी पाषाण युद्ध करनेवाले योद्धाओं को मार डाला। दुःशासन सहित समस्त योद्धा द्रोण के पास पहुंचे। द्रोणाचार्य ने जुए का स्मरण दिलाकर कायर दुःशासन को बहुत फटकारा। भूरिश्रवा ने सात्यकि का रथ खंडित कर दिया। सात्यकि को भूमि पर पटक दिया। भूरिश्रवा ने उसके बालों की चोटी एक हाथ में पकड़ ली तथा दूसरे से तलवार उठायी। तभी अर्जुन के प्रहार से उसका दाहिना हाथ कट गया। वह पहले तो इस बात पर रुष्ट हुआ कि अर्जुन बीच में क्यों कूद पड़ा, फिर युद्ध की स्थिति समझकर मौन हो गया। उसने युद्धक्षेत्र में ही आमरण अनशन की घोषणा कर दी। अर्जुन तथा कृष्ण उसकी वीरता के प्रशंसक थे तथा उन्होंने उसे ऊर्ध्वलोक प्रदान किया। सात्यकि ने रोष के आवेग में सबके रोकने की अवहेलना करते हुए उसे (भूरिश्रवा को) मार डाला। श्रीकृष्ण को पहले से ही आभास था कि भूरिश्रवा सात्यकि को परास्त करेगा। श्रीकृष्ण ने दारुक से अपना रथ तैयार करने के लिए कह रखा था। श्रीकृष्ण ने ऋषभस्वर से अपना शंख बजाया—दारुक संकेत समझ, तुरंत रथ लेकर वहां पहुंच गया तथा सात्यकि उस रथ पर चढ़कर कर्ण से युद्ध करने लगा। सात्यकि का भूरिश्रवा के हाथों जो अपमान हुआ था, उसका भी एक कारण था (दे० भूरिश्रवा)। सात्यकि ने अनेक बार कर्ण को पराजित किया, रथहीन भी किया, किंतु कर्ण को मारने की जो प्रतिज्ञा अर्जुन ने कर रखी थी, उसे स्मरण कर, उसने कर्ण का वध नहीं किया। भूरिश्रवा का पिता सोमदत्त भूरिश्रवा के वध के विषय में जानकर बहुत रुष्ट हुआ। उसके अनुसार हाथ कटे व्यक्ति को इस प्रकार से मारना अधर्म था। उसने सात्यकि को युद्ध के लिए ललकारा किंतु श्रीकृष्ण तथा अर्जुन के सहायक होने के कारण सात्यकि ने सहज ही उसे पराजित कर दिया तथा कालांतर में मार डाला।

म० भा०, द्रोणपर्व, १६६।१-१३
म० भा०, कर्णपर्व, ८२।६

सामवान् देवमित्र तथा सारस्वत नामक दो ब्राह्मणों में परस्पर मैत्री थी। दोनों का एक-एक पुत्र था। उनका नाम क्रमशः सामवान् और सुमेधा था। दोनों ने एक ही गुरु से विद्याध्ययन किया। एक बार धनार्जन के निमित्त उन दोनों ने रानी सीमंतिनी के पास जाने का निश्चय किया। विदर्भ देश के राजा ने उन्हें प्रेरित किया कि उनमें से कोई एक, नारी का रूप धरकर जाये अतः सामवान् नारी का रूप धरकर गया।
सीमंतिनी ने समस्त स्त्रियों को गौरी और पुरुषों को शंकर का रूप मानकर पूजन किया, उन्हें भोजन करवाया तथा धन-धान्य देकर विदा किया। सामवान् ने नारी-रूप धरा था। वह वास्तव में नारी ही बन गया। उसने सुमेधा के सम्मुख पत्नीवत् समर्पण कर दिया। गिरिजा को प्रार्थना से प्रसन्न करने पर भी उसे पुरुष-रूप प्राप्त नहीं हो पाया। गिरिजा ने सारस्वत ब्राह्मण (सामवान् के पिता) को एक और पुत्र प्राप्त होने का आशीर्वाद दिया।

शि० पु०, १०।२१

सारस्वत ब्रह्मा के पुत्र भृगु ने तपस्या से युक्त लोक-मंगलकारी दधीचि को उत्पन्न किया था। मुनि दधीचि की घोर तपस्या से इंद्र भयभीत हो उठे। अतः उन्होंने अनेक फलों-फूलों इत्यादि से मुनि को रिझाने के असफल प्रयास किये। अंत में इंद्र ने 'अलंबुषा' नाम की एक अप्सरा को दधीचि का तपोभंग करने के लिए भेजा। वे देवताओं का तर्पण कर रहे थे। सुंदरी अप्सरा को वहां देख उनका वीर्य स्खलित हो गया। सरस्वती नदी ने उसे अपनी कुक्षी में धारण किया तथा एक पुत्र के रूप में जन्म दिया जो कि सारस्वत कहलाया। पुत्र को लेकर वह दधीचि के पास गयी तथा पूर्वघटित सब याद दिलाया। दधीचि ने प्रसन्नतापूर्वक अपने पुत्र का माथा सूंघा और सरस्वती को वर दिया कि अनावृष्टि के बारह वर्ष में वही देवताओं, पितृगणों, अप्सराओं और गंधर्वों को तृप्त करेगी। नदी अपने पुत्र को लेकर पुनः चली गयी। कालांतर में देवासुर संग्राम में इंद्र को शत्रु-विनाशक शस्त्र बनाने के लिए दधीचि की अस्थियों की आवश्यकता पड़ी। दधीचि ने प्रसन्नतापूर्वक अपनी अस्थियों का समर्पण कर दिया। फलतः देह त्याग वे अक्षय लोकों में चले गये। अस्थि-निर्मित अस्त्रों के प्रयोग के कारण बारह वर्ष तक देश में अनावृष्टि रही। सब लोग इधर-उधर भागकर भोजन प्राप्त करने का प्रयास करते रहे। सारस्वत एक मात्र ऐसे मुनि बालक थे जो भोजन की ओर से निश्चिंत रहे। सरस्वती नदी न केवल जल प्रदान करती थी अपितु भोजनार्थ मछलियां भी प्रदान करती रहती थी। सारस्वत का कार्य वेदपाठ इत्यादि था। अनावृष्टि की समाप्ति के उपरांत मालूम पड़ा कि नित्य वेदपाठ न

करने के कारण ब्राह्मण उस विद्या को पूरी तरह नहीं जानते। अतः सब लोगों ने मिलकर धर्म की रक्षा के निमित्त बालक सारस्वत को गुरु धारण किया तथा उनसे विधिपूर्वक वेदों का उपदेश पाकर धर्म का पुनः अनुष्ठान किया।

दे० दधीचि

म० भा०, शल्यपर्व, ५१।१-५३

सार्वणि मनु (८) छाया संज्ञा की कोख से सूर्य के पुत्र ने जन्म लिया था जिसका नाम सार्वणि था। वे आठवें मनु थे। सार्वणि के जन्म तथा मनु बनने की कथा इस प्रकार है। पूर्वकाल में राजा सुरथ को उसके शत्रु राजा ने हरा दिया। वह दुखी होकर वन में चला गया। वहां मेधा मुनि के आश्रम में कुछ समय तक विश्राम किया। कालांतर में उसे अपने राज्य तथा प्रजा की चिंता सताने लगी। उन्हीं दिनों उसे आश्रम के पास एक निर्धन वैश्य मिला, जिसका समस्त धन आदि स्त्री-पुत्रों ने छीनकर उसे घर से निकाल दिया था। उसका नाम समाधि था। वह अपने दुष्ट परिवार-जनों की चिंता से ग्रस्त था। वे दोनों अपनी-अपनी व्यथा लेकर मेधा मुनि के पास पहुंचे। उन्होंने कहा कि भगवती महामाया ज्ञानियों के चित्त को भी मोह में डाल देती है। तपस्या से प्रसन्न होकर वही देवी मुक्ति के लिए भी वरदान देती है। उन दोनों ने तीन वर्ष तक तपस्या करके देवी को प्रसन्न किया। देवी ने प्रकट होकर उनकी मनोकामना पूछी। राजा ने उस जन्म में अपने शत्रुओं का नाश तथा अगले जन्म में नष्ट न होनेवाला राज्य मांगा। वैश्य ने अनासक्ति प्रदान करनेवाला ज्ञान मांगा। देवी ने राजा सुरथ को तत्कालीन शत्रुओं की पराजय तथा अगले जन्म में सूर्य (विवस्वान्) के अंश से जन्म लेकर सार्वणि मनु होने का तथा वैश्य को मोक्ष-ज्ञान प्राप्त होने का वर दिया।
उपर्युक्त सार्वणि से संबद्ध प्रथम सार्वणिक मन्वंतर हुआ।

मा० पु०, ७७।९०।

विवस्वान् पुत्र सार्वणि आठवें मनु थे। उनसे संबद्ध सार्वणिक मन्वंतर प्रथम माना गया। द्वितीय सार्वणिक मन्वंतर में दक्ष के पुत्र सार्वणि हुए। वे नवें मनु थे। दसवां मन्वंतर ब्रह्मा के पुत्र सार्वणि के आधिपत्य में माना गया। ग्यारहवें मनु धर्मसार्वणि हुए। वे धर्म के पुत्र थे। बारहवें मनु रुद्र के पुत्र थे। तेरहवें मनु रौच्य कहलाए।

मा० पु०, ९१।

सावित्री मद्रदेश का राजा अश्वपति था। वह संतान की इच्छा से अठारह वर्ष तक गायत्री-मंत्र से एक लाख आहुति देता रहा। सावित्री देवी ने प्रसन्न होकर उससे वर मांगने को कहा। उसने वंश-परंपरा को बनाए रखने के लिए अनेक पुत्रों की कामना प्रकट की, पर उसे सावित्री के अनुरोध पर ब्रह्मा की कृपा से एक तेजस्वी कन्या प्राप्त हुई जिसका नाम सावित्री रखा गया। उसके वयस्क होने पर भी किसी ने उसके वरण की याचना नहीं की तो पिता के आदेश से वह मंत्रियों के साथ अपना पति खोजने के लिए यात्रा पर गयी। जब वह लौटी तब राजा के पास नारद मुनि बैठे थे। पिता के पूछने पर उसने बताया कि शाल्वदेश में द्युमत्सेन नाम के राजा थे। वे अंधे हो गये। अतः उनके शत्रु ने उनकी संपत्ति तथा राज्य का हरण कर लिया। अतः वे वन में चले गये। उनके पुत्र का नाम सत्यवान था और सावित्री मन में उसीका वरण कर चुकी थी। नारद ने कहा—वह सर्वगुण संपन्न होकर भी कुल एक वर्ष और जीवित रहेगा, अतः अन्य वर की खोज की जाय, पर सावित्री तैयार नहीं हुई। अतः उसका विवाह सत्यवान से कर दिया गया। वह वर्ष भर के दिनों की गणना करती रही तथा सास-ससुर और ब्राह्मणों की सेवा में लगी रही। वर्ष पूरा होने में तीन दिन पूर्व से वह निराहार रहकर व्रत में लगी रही। वर्ष के अंतिम दिन सत्यवान के साथ वन में गयी—वहां समिधा के लिए लकड़ी काटते हुए सत्यवान के सिर में पीड़ा आरंभ हुई। वह भूमि पर लेट गया। सत्यवान अत्यंत गुणवान व्यक्ति था। अतः तत्काल यमराज स्वयं एक पाश लेकर वहां पहुंचा। पाश से अंगुष्ठमात्र जीव को बांधकर उसने सत्यवान के शरीर से निकाल लिया। वह मृत सत्यवान को छोड़कर दक्षिण दिशा की ओर चल पड़ा—सावित्री भी उसके पीछे-पीछे चल दी। यमराज ने उसे अनेक प्रकार से लौटने के लिए कहा किंतु उसके तर्क और युक्तियां इतनी सुंदर थीं कि यमराज ने उसे पति-प्राण से इतर कोई वर मांगने के लिए कहा। सत्यवती ने पहले वर से श्वसुर की आंखें, दूसरे से श्वसुर का छिना हुआ राज्य तथा धर्म में अटलता मांगी। तीसरे वर से पिता की कुल-परंपरा चलानेवाले सौ औरसपुत्र तथा चौथे वर से अपने सौ पुत्र मांगे। यम ने ये सब वर दे दिये तो सावित्री ने कहा—"सत्यवान के साथ दाम्पत्य जीवन व्यतीत करते हुए ही तो यह संभव है,

अत: सत्यवान को पुनर्जीवन दीजिए।" यमराज ने सत्यवान को पुनर्जीवन प्रदान किया तथा चार सौ वर्ष तक जीवित रहने की आशीष दी। उस समय तक रात हो चली थी। सत्यवान को जीवित होकर लगा कि वह दु:स्वप्न देख रहा था। वे दोनों जब आश्रम पहुंचे तब तक राजा द्युमत्सेन तथा उनकी पत्नी शैव्या अत्यंत व्याकुल चित्त से उनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। राजा की आंखें लौट आयी थीं। लौटने पर सावित्री ने समस्त वृत्तांत कह सुनाया। राजा का शत्रु उसके मंत्री के हाथों मारा गया। वे लोग शाल्वदेश में चले गये। कालांतर में सत्यवती को सौ भाई तथा सौ पुत्रों की प्राप्ति हुई।

म० भा०, वनपर्व, २९२।५-४१
२९३-२९९।-

राजा अश्वपति नि:संतान था। उसको ज्ञात हुआ कि कृष्ण ने गोलोक में ब्रह्मा को गायत्री प्रदान की थी किंतु वह ब्रह्मलोक जाने के लिए तैयार नहीं हुई। ब्रह्मा ने वेद माता को प्रसन्न करके सावित्री को प्राप्त किया था, अत: अश्वपति ने भी गायत्री मंत्र के जाप से सावित्री को प्रसन्न करके संतान-प्राप्ति का वर प्राप्त किया। कालांतर में प्राप्त कन्या का नाम भी उसने सावित्री ही रखा। उसने सत्यवान का वरण किया (शेष कथा महा० भा० में दी गयी सावित्री की कथा के समान है, यहां मात्र अंतर दिये गये हैं।) (क) पिता की आज्ञा से वह सावित्री समेत वन में लकड़ी और फल लेने गया। वृक्ष से गिरने के कारण उसका देहावसान हो गया। (ख) यमराज ने सावित्री से प्रसन्न होकर उसे शक्ति के कीर्तन की महत्ता बतायी तथा मूल शक्ति का महामंत्र दिया।

शेष दे० म० भा०
दे० भा०, ९।२६-३८

सिद्धार्थ बोधिसत्त्व के सोलहवर्षीय हो जाने पर राजा ने उनके लिए समस्त सुविधाएं जुटा दीं। उन्हें भोगों में लिप्त जानकर तथा विभिन्न प्रासादों में राहुल-माता (पटरानी) के साथ विचरण करते देखकर जाति के लोगों ने राजा से कहा कि वे सिद्धार्थ को युद्ध-कला आदि में निपुणता प्राप्त करवाने का प्रयत्न करें। राजा ने सिद्धार्थ को बताया तो उन्होंने अपनी जन्मजात दक्षता का प्रदर्शन किया। सब दर्शक चमत्कृत रह गये।

बु० च०, १।२।-, यौवन

सीता (पूर्वजन्म के लिए देखिए वेदवती) मिथिलाप्रदेश के राजा जनक के राज्य में एक बार अकाल पड़ने लगा। वे स्वयं हल जोतने लगे। तभी पृथ्वी को फोड़कर सीता निकल आयी। जब राजा बीज बो रहे थे तब सीता को धूल में पड़ी पाकर उन्होंने उठा लिया। उन्होंने आकाशवाणी सुनी—"यह तुम्हारी धर्मकन्या है।" तब तक राजा की कोई संतान नहीं थी। उन्होंने उसे पुत्री-वत् पाला और अपनी बड़ी रानी को सौंप दिया। किशोरी सीता के लिए योग्य वर प्राप्त करना कठिन हो गया, क्योंकि सीता ने मानव-योनि से जन्म नहीं लिया था। अंत में राजा जनक ने सीता का स्वयंवर रचा। एक बार दक्षयज्ञ के अवसर पर वरुणदेव ने जनक को एक धनुष और बाणों से आपूरित दो तरकश दिये थे। वह धनुष अनेक लोग मिलकर भी हिला नहीं पाते थे। जनक ने घोषणा की कि जो मनुष्य धनुष को उठा-कर उसकी प्रत्यंचा चढ़ा देगा, उससे वे सीता का विवाह कर देंगे।

बा० रा०, अयोध्या कांड, ११८।२६-११८

राजा इस कसौटी पर असफल रहे तो उन्होंने अपना अपमान जानकर जनकपुरी को तहस-नहस कर डाला। राजा जनक ने तपस्या से देवताओं को प्रसन्न किया तथा उनकी चतुरंगिणी सेना से उन राजाओं को परास्त किया। राजा जनक से यह वृत्तांत जानकर विश्वामित्र ने राम-लक्ष्मण को वह धनुष दिखलाने की इच्छा प्रकट की। जनक की आज्ञा से आठ पहियोंवाले संदूक में बंद उस धनुष को पांच हजार वीर ठेलकर लाये। जनक ने कहा कि जिस धनुष को उठाने, प्रत्यंचा चढ़ाने और टंकार करने में देवता, दानव, दैत्य, राक्षस, गंधर्व और किन्नर भी समर्थ नहीं हैं, उसे मनुष्य भला कैसे उठा सकता है! संदूक खोलकर, राजा जनक की अनुमति से, राम ने अत्यंत सहजता से वह धनुष उठाकर चढ़ाया और मध्य से तोड़ डाला। राम, लक्ष्मण, विश्वामित्र और जनक के अतिरिक्त शेष समस्त उपस्थित गण तत्काल बेहोश हो गये। जनक ने प्रसन्नचित्त सीता का विवाह राम से करने की ठानी और राजा दशरथ को सादर लाने के लिए मंत्रियों को अयोध्या भेजा। राजा दशरथ ने वसिष्ठ, वामदेव तथा अपने मंत्रियों से सलाह की और विदेह के नगर की ओर प्रस्थान किया। राजा जनक ने अपने भाई कुशध्वज को भी सांकाश्या नगरी से बुला भेजा। राजा दशरथ और जनक ने अपनी वंशावली का

पूर्ण परिचय देकर सीता और उर्मिला का विवाह राम और लक्ष्मण से तय कर दिया तथा विश्वामित्र के प्रस्ताव से कुशध्वज की दो सुंदरी कन्याओं (मांडवी-श्रुतकीर्ति) का विवाह भरत तथा शत्रुघ्न के साथ निश्चित कर दिया। उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र में चारों भाइयों का विवाह हो गया।

कालांतर में कैकेयी के वर मांग लेने पर (दे० राम, कैकेयी) सीता और लक्ष्मण सहित राम चौदह वर्ष के वनवास के लिए चले गये। वन में रावण ने सीता का हरण किया। फलस्वरूप राम-रावण युद्ध हुआ।

बा० रा०, बाल कांड, ६६।१२-२६
६७।१-२७, ६८, ६६, ७०, ७१, ७२,
७३, ७५, ७६, ७७ (संपूर्ण)

रणक्षेत्र में वानर-सेना तथा राम-लक्ष्मण को व्यग्र करने के निमित्त मेघनाद ने माया का विस्तार किया। एक मायावी सीता की रचना की, जो सीता की भांति ही कृशकाय तथा अस्त-व्यस्त वेशभूषा धारण किये थी। मेघनाथ ने उस मायावी सीता को अपने रथ के सामने बैठाकर रणक्षेत्र में घूमना प्रारंभ किया। वानरों ने उसे सीता समझकर प्रहार नहीं किया। मेघनाद ने मायावी सीता के बाल पकड़कर खींचे तथा उसके दो टुकड़े करके मार डाला। चारों ओर फैला खून देखकर सब लोग शोकाकुल हो उठे। हनुमान ने सीता को मरा जानकर वानरों को युद्ध न करने की व्यवस्था दी क्योंकि जिस सीता के लिए युद्ध कर रहे थे, वही नहीं रही तो युद्ध करना व्यर्थ है। यह देखकर मेघनाद निकुंभिला देवी के स्थान पर जाकर हवन करने लगा। राम ने सीता के निधन के विषय में जाना तो अचेत हो गये।

जब राम की चेतना लौटी तो लक्ष्मण ने अनेक प्रकार से उनको समझाया तथा विभीषण ने कहा कि "रावण कभी भी सीता को मारने की आज्ञा नहीं दे सकता, अतः यह निश्चय ही माया का प्रदर्शन किया गया होगा।"

बा० रा०, युद्ध कांड, ८१-८४।-

लंका-विजय के उपरांत राम ने सीता से कहा—"तुम रावण के पास बहुत रही हो, अतः मुझे तुम्हारे चरित्र पर संदेह है। तुम स्वेच्छा से लक्ष्मण, भरत अथवा विभीषण किसी के भी पास जाकर रहो, मैं तुम्हें ग्रहण नहीं करूंगा।" सीता ने ग्लानि, अपमान और दुःख से विगलित होकर चिता तैयार करने की आज्ञा दी। लक्ष्मण ने चिता तैयार की। सीता ने यह कहा—"यदि मन-वचन-कर्म से मैंने सदैव राम का ही स्मरण किया है तथा रावण जिस शरीर को उठाकर ले गया था, वह अवश था, तब अग्निदेव मेरी रक्षा करें।" और जलती हुई चिता में प्रवेश किया। अग्निदेव ने प्रत्यक्ष रूप धारण करके सीता को गोद में उठाकर राम के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए कहा कि वह हर प्रकार से पवित्र हैं। तदुपरांत राम ने प्रसन्न भाव से सीता को ग्रहण किया और उपस्थित समुदाय को बतलाया कि उन्होंने लोकनिंदा के भय से सीता को ग्रहण नहीं किया था।

बा० रा०, युद्ध कांड, ११८-१२१।-

कुछ समय बाद मंत्रियों के मुंह से राम ने जाना कि प्रजाजन सीता की पवित्रता के विषय में संदिग्ध हैं। अतः सीता और राम को लेकर अनेक बातें कहते हैं। सीता गर्भवती थीं और उन्होंने राम से एक बार तपोवन की शोभा देखने की इच्छा प्रकट की थी। रघुवंश को कलंक से बचाने के लिए राम ने सीता को तपोवन की शोभा देखने के बहाने से लक्ष्मण के साथ भेजा। लक्ष्मण को अलग बुलाकर राम ने कहा कि वह सीता को वहीं छोड़ आये। लक्ष्मण ने तपोवन में पहुंचकर अत्यंत उद्विग्न मन से सीता से सब कुछ कह सुनाया और लौट आया। सीता का रुदन सुनकर वाल्मीकि ने दिव्य दृष्टि से सब बातें जान लीं तथा सीता को अपने आश्रम में स्थान दिया। उसी आश्रम में सीता ने लव और कुश नामक पुत्रों को जन्म दिया। बालकों का लालन-पालन भी आश्रम में ही हुआ। राम इस सबके विषय में कुछ नहीं जानते थे।

बा० रा०, उत्तर कांड, ४५-४६।-

जब राम ने अश्वमेध यज्ञ किया, उस समय लव और कुश नामक शिष्यों को वाल्मीकि ने रामायण सुनाने के लिए भेजा। राम ने मोदभाव से वह चरित्र सुना। प्रतिदिन वे दोनों बीस सर्ग सुनाते थे। उत्तर कांड तक पहुंचने पर राम ने जाना कि वे दोनों राम के ही बालक हैं। राम ने सीता को कहलाया कि यदि वे निष्पाप हैं तो सभा में आकर अपनी पवित्रता प्रकट करें। वाल्मीकि सीता को लेकर गये।

वसिष्ठ ने कहा—"हे राम, मैं वरुण का दसवां पुत्र हूं। जीवन में मैंने कभी झूठ नहीं बोला। ये दोनों तुम्हारे पुत्र हैं। यदि मैंने झूठ बोला हो तो मेरी तपस्या का फल

मुझे न मिले। मैंने दिव्य-दृष्टि से उसकी पवित्रता देख ली है।"

सीता हाथ जोड़कर नीचे मुख करके बोली—"हे धरती मां, यदि मैंने मन में भी कभी राम के अतिरिक्त किसी की चिंता की हो तो धरती फट जाय और मैं उसमें समा जाऊं।" जब सीता ने यह कहा तब नागों पर रखा एक सिंहासन पृथ्वी फाड़कर बाहर निकला। सिंहासन पर पृथ्वी देवी बैठी थीं। उन्होंने सीता को गोद में बिठा लिया। सीता के बैठते ही वह सिंहासन धरती में धंसने लगा।

बा० रा०, उत्तर कांड, ९३-९७।-

राम ने अग्नि-परीक्षा के उपरांत सीता को ग्रहण किया। इस बात का हनुमान और अंगद ने विरोध किया। उनके अनुसार समस्त कुटुंब और प्रजाजनों के सम्मुख सीता की पवित्रता प्रमाणित करके ही उसे ग्रहण करना चाहिए। राम-लक्ष्मण नहीं माने। राज्य में पहुंचकर कुछ समय बाद लोकापवाद सुनकर राम ने पुन: सीता को निर्वासित कर दिया। अश्वमेध यज्ञ के समय अंगद और हनुमान को ज्ञात हुआ तो वे रुष्ट और दुखी होकर गंगा-स्नान से पापों का शमन करने गये।

ब्र० पु०, १५४।-

जनक की पटरानी का नाम विदेही था। उसके गर्भिणी होने पर प्रभावशाली देव (जो पूर्वजन्म में पिंगल साधु था) ने अपने पूर्वजन्म का स्मरण किया तथा जाना कि उसके उदर से एक अन्य जीव के साथ उसका भूतपूर्व शत्रु भी जन्म ले रहा है। एक जुड़वां पुत्र और कन्या का जन्म होने पर उस देव ने पुत्र का अपहरण कर लिया। वह उसे शिला पर पटककर मार डालना चाहता था किंतु उसे अपने पुण्यों का नाश करने की इच्छा नहीं हुई। अत: उसने उद्यान में ही बालक को रख दिया। गवाक्ष से चंद्रगति खेचर ने उसे देखा तो उठाकर अपनी पत्नी अंशुमता के पास लिटा दिया। वे दोनों पुत्रहीन थे। उसे पुत्र मानकर उन्होंने लालन-पालन किया। उसका नाम भामंडल रखा गया। लोग उसको ही पुत्र का जनक समझे। विदेही अपना पुत्र खोकर बहुत दुखी हुई। बहुत ढूंढ़ने पर भी वह नहीं मिला। कन्या का नाम सीता रखा गया। बड़े होने पर एक दिन पृथ्वी पर घूमते हुए नारद ने सीता के विषय में सुना तो वह आकाशमार्ग से उसे देखने गया। नारद के भयंकर रूप को देखकर वह भयातुरा महल के अंदर चली गयी। नारद को द्वारपालों ने रोक लिया। नारद वहां से तो चला गया, पर सीता से वैर ठान लिया। उसने रथनूपुर नगर में पट पर सीता का चित्र खींचा, जिसे देखकर भामंडल उसपर मुग्ध हो गया। नारद ने प्रकट होकर उसका परिचय दिया और स्वयं आकाश-मार्ग से चला गया। पुत्र की इच्छा जानकर चंद्रगति ने कहा—"हम लोग आकाश में रहनेवाले विद्याधर हैं। मनुष्यों के पास हमारा जाना शोभा नहीं देता।" उसने चपलगति नामक एक दूत को पृथ्वी पर भेजा कि वह जनक को ले आये। चपलगति अश्व का रूप धारण करके जनक के पास गया। नये अश्व को देख जनक ने उसे अश्वशाला में बांध लिया। एक दिन राजा उस घोड़े पर बैठा तो वह तुरंत राजा सहित उड़कर वृक्ष की एक शाखा से जा लगा। अश्व अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुआ। चंद्रगति ने अपने पुत्र के लिए सीता को मांगा। जनक ने कहा कि वह पहले ही राम को समर्पित करने का निश्चय कर चुका है। चंद्रगति ने विद्याधरों के हाथ जनक के साथ एक महाधनुष भेजा और कहा—"यदि राम इस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ा देंगे तो वह सीता को प्राप्त कर ले। यदि वह ऐसा न कर पाया तो भामंडल उसका अपहरण कर लेगा।" राम ने धनुष उठाकर प्रत्यंचा चढ़ा दी। अत: उसने सीता को प्राप्त कर लिया। तदनंतर लक्ष्मण ने धनुष मोड़कर चंद्राकार कर दिया। भरत सोचने लगा—"उसी पिता का पुत्र होकर मैं अभागा रह गया।"

राम-लक्ष्मण के साथ सीता ने भी राज्य का परित्याग कर वन की ओर प्रस्थान किया (दे० सीता-हरण)। दुर्भाग्य से रावण ने उसे हर लिया। रावण पूर्वसंकल्प के कारण परनारी की इच्छा के बिना उसका उपभोग नहीं कर रहा था किंतु राम से बिछुड़कर सीता निराहार रहने लगी। उसे रावण ने अनेक प्रकार से मायावी कृत्यों द्वारा डराया भी किंतु उसका मन राम में ही रमा रहा।

सीता को प्राप्त करके राम साकेत पहुंचा। लक्ष्मण का राज्याभिषेक हुआ तथा सीता के गर्भ की घोषणा हुई। सीता गर्भकाल में जिन मंदिरों के दर्शन करना चाहती थी। राम ने राज्य में सीता के चरित्र-विषयक अपवाद सुने, क्योंकि उसे रावण ने हरा था। राम ने लोकापवाद

से बचने के लिए निरपराधिनी सीता को जैन-मंदिरों के दर्शन करवाने के बहाने से जंगल में भेज दिया। भयानक जंगल में उसे छोड़ते हुए सेनापति कृतांतवदन का दिल भी दहल उठा। रथ लौटाते हुए उसने सीता को उसके निर्वासन और उसका कारण भी बता दिया। संयोग से उस दिन हाथियों को पकड़ने के लिए राजा वज्रजंघ भी उसी जंगल में गया था। उसने सीता की बात सुनी तो उसे आश्वासन प्रदान करके अपने राज्य में शरण दी। कालांतर में उसने दो पुत्रों को जन्म दिया, जिनके नाम अनंगलवण तथा मदनांकुश थे।

पउ० च०, २६।-, २८।-, ४५-४६।-, ६२-६५।-, ६७।-

(दे० शंबूक) रावण ने खरदूषण और सेना के साथ दंडकारण्य में पहुंचकर पुष्पक विमान से ही सीता को देखा तो मुग्ध हो गया। लक्ष्मण ने राम और सीता को ठहरने के लिए कहा और स्वयं युद्ध के लिए प्रस्थान किया। थोड़े समय उपरांत रावण ने लक्ष्मण जैसी आवाज में जोर से सिंहनाद किया। राम उस आवाज को सुनकर आकुल हो गये। वे सीता को जटायु के संरक्षण में छोड़कर युद्ध के लिए चले गये। सुअवसर जानकर रावण ने विमान नीचा किया तथा सीता को बलात् उसमें बैठा लिया। जटायु के रोकने पर उसे घायल करके पृथ्वी पर धकेल दिया और सीता सहित विमान में उड़ चला। सीता रोने लगी। रावण ने सोचा, जब तक वह स्वेच्छा से उसके निकट नहीं आयेगी, वह उसका उपभोग नहीं करेगा। उधर राम लक्ष्मण के पास पहुंचे तो वह ठीक था और उसने अनुरोधपूर्वक राम को वापस भेज दिया। लौटने पर सीता नहीं मिली। घायल जटायु ने समस्त वृत्तांत कह सुनाया। भरत राजा विराधित की सहायता से उन सबको परास्त करके लौटा तो देखा कि सीता का अपहरण हो चुका है। राजा विराधित की सहायता करते हुए लक्ष्मण ने खरदूषण को मार डाला था, अत: सीता को खोजने के लिए विराधित ने अपने समस्त सेवकों का प्रयोग किया।

पउ० च०, ४४-४५।-

अनंगलवण तथा मदनांकुश से राम-लक्ष्मण का युद्ध होने के उपरांत सीता अनेक नारियों से घिरी हुई राम के पास पहुंची। अपवाद के शमन के लिए उसने अग्नि-परीक्षा का अंगीकरण किया। सीता ने कहा—"हे अग्नि! यदि मेरे मन में कभी भी राम से इतर कोई पुरुष नहीं आया है तो तू मुझे न जलाना।" जिस गढ़े में लकड़ियां लगाकर अग्नि प्रज्वलित की गयी थी, वह सीता के प्रवेश करते ही पानी की बावड़ी के रूप में परिणत हो गया। धीरे-धीरे जल बढ़ता गया—लोग डूबने लगे। सीता का स्पर्श पाकर जल पुन: सीमित हो गया। राम ने सीता से क्षमा-याचना की। सीता ने उसे अपना कर्मजन्य प्रारब्ध ही माना। उसने अपने बाल उखाड़ डाले तथा दीक्षा ले ली। सकलभूषण मुनि ने राम के पूर्वभव के विषय में बताया। सीता ने प्रव्रज्या ग्रहण की।

दे० सीता (अग्नि-परीक्षा)

पउ० च०, १०१।२१-६३, १०२-१०३

सुंद पूर्वकाल में सुंद तथा उपसुंद नामक दो दैत्य भाई थे। वे दोनों परस्पर अत्यत स्नेहशील थे। घोर तपस्या के फलस्वरूप उन्हें ब्रह्मा से वरदान मिला कि वे त्रिलोक पर आधिपत्य जमा लेंगे तथा उनकी मृत्यु का कारण भी वे ही परस्पर होंगे। कोई अन्य उन्हें नहीं मार पायेगा। शक्तिशाली अधिपति होने के उपरांत उन्होंने देवताओं तथा मानवों पर अत्याचार करने प्रारंभ कर दिये, अत: ब्रह्मा जी ने उनकी मृत्यु के लिए एक युक्ति सोची। ब्रह्मा ने विश्वकर्मा से एक अद्वितीय सुंदरी तिलोत्तमा की अनुपम देह का निर्माण करवाया। उन्होंने तिलोत्तमा को सुंद तथा उपसुंद में फूट डलवाने का कार्य सौंपा। चलते समय जब वह देवताओं की परिक्रमा करने लगी तब उसके अनुपम रूप को देखने के लिए महादेव के चार मुख प्रकट हुए तथा इंद्र के पार्श्व भाग में सहस्र नेत्र उत्पन्न हो गये। पर्वत पर विहार करते सुंद तथा उपसुंद में तिलोत्तमा को प्राप्त करने के लिए प्रतिस्पर्द्धा आरंभ हुई तथा उन्होंने एक-दूसरे को मार डाला। ब्रह्मा ने तिलोत्तमा के कार्य से प्रसन्न होकर उसे वरदान दिया कि वह इच्छानुसार सभी लोकों में विचरण कर पायेगी तथा उसमें अनुपम तेज होगा, अत: उसे आंख भर देखने में भी सब असमर्थ रहेंगे।

म० भा०, आदिपर्व, २०८-२११।-

सुकन्या मनु के नौ पुत्र हुए। उनमें सबसे बड़े नाभाग थे। नाभाग का पुत्र अंबरीष क्षत्रिय होकर ब्राह्मण के गुणों से युक्त था। दूसरे पुत्र शर्याति के आनर्त नामक पुत्र तथा सुकन्या नामक पुत्री का जन्म हुआ। एक बार

सुकन्या घूमती हुई च्यवन ऋषि के वल्मीक के निकट पहुंची। तपस्यारत ऋषि के शरीर पर सब ओर वल्मी (दीमक) दिखलायी पड़ती थी। केवल दो आंखें जुगनू की तरह चमक रही थीं। सुकन्या ने खेल-खेल में अन-जाने ही कांटा लेकर दीमक के मध्य चमकती आंखों को कुरेदा जिससे च्यवन ऋषि अंधे हो गये। नेत्र-छेदन होने पर उन्होंने जोर से कहा—"हाय, मैं मरा," किंतु सुकन्या बिना कुछ समझे घर चली गयी। मुनि के त्रस्त होने के फलस्वरूप पशु-पक्षी, सैनिक आदि सभी के मल-मूत्र रुक गये। राजा शर्याति बहुत चिंतित हुए। सुकन्या से उक्त घटना के विषय में जानकर वे तुरंत वल्मी के पास गये। उन्होंने मुनि से क्षमा-याचना की तथा अपनी कन्या की ओर से भी क्षमा मांगी। च्यवन ने राजा से उसकी कन्या की याचना की कि वह नित्य च्यवन की सेवा करे। राजा को चिंतित देखकर सुकन्या ने मुनि का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया। वह मृगचर्म पहनकर मुनि की सेवा करने लगी। पशु-पक्षी तथा सैनिक पूर्वकथित कष्ट से मुक्त हो गये। एक बार सूर्य-पुत्र अश्विनीकुमार च्यवन के आश्रम पर पहुंचे तो सुकन्या के रूप पर मुग्ध हो गये। उन्होंने उसके सम्मुख प्रस्ताव रखा कि वह उन दोनों में से किसी एक का वरण कर ले—बूढ़े मुनि के योग्य वह नहीं जान पड़ती। सुकन्या ने रुष्ट होकर कहा—"आप देवता होकर अधर्म की बातें करते हैं!" अश्विनीकुमारों ने उसकी और अधिक परीक्षा लेने के निमित्त च्यवन को अपने जैसा रूप और आंखें प्रदान करके सुकन्या से समान रूप से तीनों व्यक्तियों में से एक किसी का वरण करने के लिए कहा। शिवा की कृपा से सुकन्या ने मुनि का ही वरण किया। प्रसन्नचित्त च्यवन ने अश्विनीकुमारों को उनका मनवांछित वर दिया कि वे शर्याति के यज्ञ में सोमपायी हो सकेंगे। कालांतर में पत्नी की प्रेरणा से शर्याति सुकन्या से मिलने आश्रम में पहुंचे तो समस्त घटनाचक्र के विषय में जानकर बहुत प्रसन्न हुए तथा च्यवन के दिए वचन को भी उन्होंने पूर्ण किया।

दे० भा०, ७।२-६

सुकृष-पुत्र गरुड़ की वंश-परंपरा में प्रलोलुप का जन्म हुआ। उसके दो पुत्र हुए—कंक तथा कंधर। एक दिन कंक कैलास पर्वत पर गया। वहां विद्युद्रूप (कुबेर के अनुचर) नामक राक्षस को अपनी पत्नी मदनिका (मेनका की कन्या) के साथ रति-विलास में मग्न देखा। विद्युद्रूप ने कंक को वहां से चले जाने के लिए कहा। कंक नहीं गया तो उसने उसे मार डाला। भाई के वध पर कंधर बहुत क्रुद्ध हुआ। उसने उस निशाचर को द्वंद्व युद्ध में मार डाला। मदनिका ने पति की मृत्यु के उपरांत कंधर को पति-रूप में वर लिया। उसमें इच्छानुसार रूप धारण करने की शक्ति थी। अतः उसने पक्षिणी का रूप धारण कर लिया। उसी पक्षिणी की कोख से दुर्वासा के शापवश वपु ने जन्म लिया, जिसका नाम तार्क्षी रखा गया। कंधर ने तार्क्षी का विवाह ब्राह्मण-पुत्र के साथ कर दिया। कालांतर में वह गर्भवती हुई। वह कुरुक्षेत्र गयी हुई थी। कौरव-पांडवों का युद्ध चल रहा था। तभी पार्थ के बाण से अचानक उसकी कुक्षि विदीर्ण हो गयी। उसके चार अंडे भूमि पर गिरे। दैवयोग से उनमें से कोई टूटा नहीं। तभी भगदत्त के सुप्रतीक नामक गज के गले का घंटा बाण से छिन्न-बंधन होकर उन्हीं चार अंडों पर गिरा। वह इस प्रकार गिरा कि चारों अंडे उससे ढककर सुरक्षित हो गये। युद्ध की समाप्ति के उपरांत युधिष्ठिर मृत्युशैया पर लेटे भीष्म से धर्मोपदेश ग्रहण करनेवाले थे। उन्हीं दिनों वहां से जाते हुए शमीक मुनि ने पक्षी शावकों का चहकना सुना। घंटा उठाया तो चारों पक्षी पूर्ण सुर-क्षित विद्यमान थे। वे उन शावकों को लेकर अपने आश्रम चले गये। उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि जिसकी रक्षा भगवान करता है, उसे कोई नष्ट नहीं कर सकता। तद-नंतर मुनि के आश्रम में रहकर वे चारों पक्षी वेदवेदांगों में निपुण हो गये। उन्होंने संस्कृत श्लोक में मुनि से कहा—"हम लोग आपकी कृपा से आकाश-चारण में पूर्ण समर्थ हो चुके हैं। अतः आप हमारे योग्य सेवा बताएं और हमें जाने की आज्ञा दें।" मुनि विस्मित हो गये। शमीक ने उनके त्रियंक् योनि में जन्म लेने पर भी मनुष्य की भाषा बोलने में समर्थ होने का कारण पूछा। पक्षीगण बोले—"पूर्वजन्म में हम सुकृष मुनि के चार पुत्र थे। एक बार इंद्र एक वृद्ध जर्जरित पक्षी का रूप धारण कर मुनि सुकृष की परीक्षा लेने पहुंचे। उन्होंने कहा कि वे भूखे हैं, अतः मनुष्य का मांस-भक्षण करेंगे। मुनि ने हम बच्चों को अपना मांस-भक्षण करवाने को कहा। हमारे मना करने पर उन्होंने अपना शरीर अर्पित कर दिया तथा हमें त्रियंक योनि में जन्म लेने का शाप दिया। इंद्र उनके आतिथ्य-सत्कार से प्रसन्न होकर अपने वास्तविक रूप में

प्रकट हुए तथा उन्हें धर्म में निर्विघ्न लगे रहने का वर देकर अंतर्धान हो गये। हम लोगों ने पिता से बहुत क्षमा मांगी तो उन्होंने कहा कि हमारे तिर्यक् योनि में रहने पर भी सरस्वती और स्मृति हमारा साथ नहीं छोड़ेंगी।" वे चारों पक्षी 'धर्मपक्षी' नाम से विख्यात हुए। उन्होंने जैमिनी की धर्म और ज्ञान-संबंधी अनेक शंकाओं का समाधान किया।

मा० पु०, २-३।-

सुग्रीव सुग्रीव ऋक्षराज नामक वानर का पुत्र था। वह सूर्य का औरस पुत्र तथा बाली का भाई था। बाली से शत्रुता होने पर वह दुखी होकर भय के कारण पंपासर के निकट रहने लगा था।

एक दिन सीता को ढूंढ़ते हुए राम और लक्ष्मण पंपासर के निकट पहुंचे।

बा० रा०, अरण्य कांड, ७२।२०-२३

उन्हें मुनिवेश में आता देखकर सुग्रीव भयभीत हो गया क्योंकि उसे संदेह हुआ कि बाली ने उसे मारने के लिए किसी को छद्मवेश में भेजा है; किंतु वायु-पुत्र हनुमान ने उसको समझा-बुझाकर शांत किया। वह (हनुमान) मुनि-वेश धारण करके सुग्रीव का मैत्री संदेश लेकर राम-लक्ष्मण के पास गया। राम और सुग्रीव की मैत्री होने पर सुग्रीव ने सीता-हरण के विषय में राम को बताया कि यह कुकृत्य रावण ने किया है। उसने सीता का उत्तरीय तथा आभूषण भी राम-लक्ष्मण को दिखाए, जिन्हें सीता ने उतारकर फेंका था। राम ने वे सब पहचान लिए। लक्ष्मण ने भी पायजेब पहचाने क्योंकि वह प्रति-दिन सीता के चरणों में प्रणाम करता था। सुग्रीव ने उन्हें सीता को ढूंढ़ने का वचन दिया तथा राम ने बाली को मार डालने का आश्वासन दिया। इस प्रकार सुग्रीव का छिना हुआ राज्य (किष्किधा) तथा पत्नी उसे फिर से प्राप्त हुए। वह अपनी संपूर्ण वानर-सेना के साथ राम की सहायता में लग गया।

बा० रा०, किष्किधा कांड, २-८

सुग्रीव ने सीता को ढूंढ़ने के लिए चारों दिशाओं में वानर-सेना भेजी। चारों ओर की सेना का संचालन करने के लिए विनत (पूर्व) अपने ससुर, शतबलि (उत्तर), सुषेण (पश्चिम) तथा हनुमान और अंगद (दक्षिण) आदि को भेजा। उन सबको एक माह का समय दिया कि वे सीता को खोज निकालें।

राम के साथ सुग्रीव ने पूरे मनोयोग से रावण पर आक्रमण किया। युद्ध के अंत में रावण मारा गया। सुग्रीव ने राम के आयोजित अश्वमेध यज्ञ में भी भाग लिया, तदुपरांत वह किष्किधा नगरी लौट गया था।

बा० रा०, किष्किधा कांड, ४०।१६-१७, ४१।-

सुग्रीव ने सुना कि राम-लक्ष्मण ने खर-दूषण वध कर दिया है तो वह उनसे मैत्री करने उनके पास पहुंचा। वह भी पत्नी-विरह से तप्त था। एक मायावी सुग्रीव (जिसने सुग्रीव जैसा रूप धारण किया था) ने उसकी नगरी में उथल-पुथल मचा रखी थी। दोनों सुग्रीव तारा (सुग्रीव की पत्नी) से मिलने के लिए आकुल थे। कौन वास्तविक सुग्रीव है, यह जानने में असमर्थ मंत्रिगण कुछ निश्चय नहीं कर पा रहे थे। युद्ध में सुग्रीव कृत्रिम सुग्रीव से पराजित हो गया। वह राम की शरण में पहुंचा। राम ने उसकी सहायता की। सुग्रीव ने राम की प्रेरणा से नकली सुग्रीव को ललकारा। राम के सम्मुख पड़ने पर कृत्रिम सुग्रीव की वैताली महाविद्या बाहर निकल गयी। वह अपने वास्तविक रूप में प्रकट हुआ। उसका नाम साहसगति था। राम ने उसे मार डाला। तारा को प्राप्त कर प्रसन्नचित्त सुग्रीव ने राम-लक्ष्मण का यथोचित आतिथ्य किया। तदुपरांत लक्ष्मण के 'कोटि-शिला' उठा लेने पर (दे० रावण) विद्याधरों को निश्चय हो गया कि राम-लक्ष्मण रावण को मार डालेंगे। उन्होंने भी सुग्रीव, हनुमान आदि के साथ उनकी सहायता करना स्वीकार किया। युद्ध में विजयोपरांत सुग्रीव को किष्किधिपुरी प्रदान की गयी।

पउ० च०, ४७।-४८।- ८५।-

सुजाता सिद्धार्थ ने आलार कालाम तथा उद्धक रामपुत्र से समाधि (समापत्ति) सीखी किंतु उन्हें लगा कि मुक्ति प्राप्ति का यह मार्ग नहीं है। उन्होंने उरुवेला नामक स्थान में पहुंचकर तप आरंभ किया। उनके जन्म के समय जिस कौंडिल्य ने यह 'सगुन' बताया था कि वे प्रव्रजित होंगे, वे अपने चारों अनुगामियों सहित उनके साथ आश्रम में रहने लगे। छः वर्ष की घोर तपस्या के उपरांत सिद्धार्थ अत्यंत काले, कृशकाय और शक्तिहीन हो गये, पर 'बुद्ध' नहीं हुए। उन्होंने सोचा, यह मार्ग भी उचित नहीं है। वे भिक्षा प्राप्त करने नगर में गये। 'पंचवर्गीय' (दे० कौंडिल्य) ने उनके प्रयास को निर-र्थक और उन्हें लालची तथा मार्गभ्रष्ट जानकर उनका

साथ छोड़ दिया तथा पात्र चीवर (सारनाथ) चले गये।

सिद्धार्थ उरुवेला के सेनानी नामक कस्बे में स्थित एक पीपल के वृक्ष के नीचे तपस्या करने लगे। एक रात उन्होंने पांच महास्वप्न देखे कि वे बुद्ध बनेंगे। प्रात:काल वे भिक्षा की वेला की प्रतीक्षा कर रहे थे। उसी कस्बे में एक बड़े किसान की कन्या का नाम सुजाता था। उसने बरगद के उसी वृक्ष से प्रार्थना की थी कि यदि उसे पहले गर्भ में पुत्र प्राप्त होगा तो वह प्रतिवर्ष उस वृक्ष की पूजा करेगी। प्रार्थना पूरी होने पर उसने आठ गायों को अन्य गायों के दुग्ध का निरंतर पान करवाकर कालांतर में खूब गाढ़ा दूध प्राप्त किया। उसकी खीर बनाकर उसने अपनी दासी 'पूर्णा' को पूजास्थल (पेड़ के नीचे का स्थान) साफ करने के लिए भेजा। वहां सिद्धार्थ को बैठे देख पूर्णा ने सोचा कि संभवत: वृक्ष के देवता स्वयं अवतरित होकर पूजा ग्रहण कर रहे हैं। उसके मुंह से यह सुनकर सुजाता ने हर्षातिरेक में उसे अपनी पुत्री दान कर अनेक आभूषण दिये तथा स्वर्णपात्र में खीर परोसकर सिद्धार्थ को सपात्र समर्पित की। सुजाता ने कहा—"हे देव, जैसे मेरी मनोकामना पूर्ण हुई है, आपकी भी हो।" सिद्धार्थ ने निलांजन नदी में स्नान करके उनचास दिन तक उसी खीर के उनचास भाग करके खाये तथा सोने की थाली को नदी में फेंक दिया।

बु० च०, १।३ तप

सुतीक्ष्ण राम, लक्ष्मण और सीता ने एक रात के लिए मुनि सुतीक्ष्ण के आश्रम में निवास किया। सुतीक्ष्ण ने अपने योगबल से चारों लोक जीत रखे थे। वे उन्होंने राम को अर्पित करने चाहे—किंतु राम ने स्वीकार नहीं किया।

बा० रा०, अरण्य कांड, सर्ग ७, ८, ९,

सुदर्शन (क) अग्निदेव की पत्नी सुदर्शना ने जिस पुत्र को जन्म दिया, वह सुदर्शन नाम से विख्यात हुआ। उसे बाल्यावस्था से ही परमब्रह्म का ज्ञान था। उस समय राजा नृग के पितामह ओघवान् पृथ्वी पर राज्य करते थे। उनकी पुत्री ओघवती से सुदर्शन का विवाह हुआ। वे दोनों कुरुक्षेत्र में रहने लगे। सुदर्शन ने प्रण किया कि वह गृहस्थाश्रम का पालन करता हुआ मृत्यु पर विजय प्राप्त करेगा। उसने अपनी पत्नी को अतिथि-सेवा का आदेश देते हुए कहा कि यदि अतिथि-सेवा के निमित्त अपना शरीर भी देना पड़े, तो उसे उद्यत रहना चाहिए। एक दिन जब वह समिधाएं एकत्र करने गया हुआ था, ब्राह्मण के वेश में धर्म ने उसकी कुटिया में प्रवेश किया तथा ओघवती से आतिथ्यस्वरूप उसके शरीर की याचना की। पति की आज्ञा का स्मरण कर उसने अपना शरीर उसे समर्पित कर दिया। घर लौटने पर सुदर्शन ने ब्राह्मण (धर्म) के मुख से सब सुना तो पत्नी के अतिथि-सत्कार से प्रसन्न ही हुआ। उसे न ईर्ष्या त्रस्त कर पायी, न क्रोध, न विमर्ष। इस घटना के मूल में धर्म को मृत्यु की प्रेरणा प्राप्त थी। ब्राह्मण पृथ्वी और आकाश के मध्य वायुवत् व्याप्त हो गया। मृत्यु दंड लेकर सुदर्शन के पीछे खड़ी थी। वह उसका कोई-न-कोई छिद्र ढूंढ़ निकालना चाहती थी। उसे निर्विकार देखकर मृत्यु वहां से भाग गयी। धर्म ने कहा—"तुमने अपने धैर्य से मृत्यु को जीत लिया है। तुम्हारी पतिव्रता नारी आधे शरीर से तुम्हारी सेवा करेगी तथा आधे शरीर से ओघवती नामक नदी होगी। तुम दोनों दिव्य लोकों को प्राप्त करोगे।" तदनंतर श्वेत वर्ण के हजारों घोड़ों से जुते हुए उत्तम रथ को लेकर इंद्र उसके दर्शन करने गये।

म० भा०, दानधर्मपर्व, २।३५-९९।-

(ख) रघुवंशी कोशलनरेश ध्रुवसंधि की दो पत्नियां थीं—मनोरमा तथा लीलावती। मनोरमा का पुत्र सुदर्शन लीलावती के पुत्र शत्रुजित से बड़ा था। शिकार खेलते हुए ध्रुवसंधि शेर के हाथों मारा गया। पिता की मृत्यु पर राज्य के संदर्भ में दोनों रानियों के पिता परस्पर युद्ध करने लगे। दोनों ही अपने-अपने धेवते को राज्य प्रदान करना चाहते थे। अंततोगत्वा सुदर्शन का नाना वीरसेन शत्रुजित के नाना युधाजित के हाथों मारा गया। युधाजित मदांध हो उठा। मनोरमा ने मंत्री विदल्ल के कहने पर मृत पिता के दर्शनों के बहाने से वह नगरी छोड़ दी। वह विदल्ल तथा एक धाय को साथ लेकर सुदर्शन सहित वन में भारद्वाज मुनि के आश्रम में रहने लगी। सुदर्शन ने अनजाने ही देवी का कामबीज मंत्र जपना आरंभ कर दिया। कालांतर में देवी उसपर प्रसन्न हो गयीं। देवी ने स्वप्न में काशी की राजकुमारी शशिकला को दर्शन देकर सुदर्शन का वरण करने की प्रेरणा

दी। स्वयंवर से पूर्व उसने अपनी सखी के द्वारा गुप्त रूप से सुदर्शन को आमंत्रित किया। अनेक धनीमानी राजाओं के रहते हुए भी शशिकला ने हठपूर्वक उससे विवाह किया। अन्य राजाओं ने उसे युद्ध के लिए ललकारा। उन राजाओं में प्रमुख युधाजित तथा शत्रुजित थे। युद्ध के समय अंबिकादेवी ने प्रकट होकर शत्रुओं का नाश किया। शत्रुजित तथा उसके नाना के निधन के उपरांत सुदर्शन कौशल नरेश हुआ।

दे० भा०, ३।१२-२५।-

(ग) विद्याधर सुदर्शन को अपने रूप और धन पर अत्यधिक गर्व था। अतः उसने कुरूप अंगिराओं का परिहास किया। अंगिराओं के शाप से वह अजगर होकर अंबिकावन में रहने लगा। एक बार शिवरात्रि के अवसर पर नंदसुनंद आदि गोपों ने अंबिकावन की यात्रा की। वे लोग सरस्वती नदी के तट पर सो रहे थे। तभी उस अजगर ने नंद को पकड़ लिया। गोप अधजली लकड़ी से उसपर प्रहार करते रहे, पर उसने नंद को नहीं छोड़ा। तदनंतर कृष्ण के पैरों का स्पर्श पाकर वह पाप-मुक्त होकर पुनः विद्याधर सुदर्शन बन गया।

श्रीमद् भा० १०।३४

सुदर्शन चक्र दैत्यों के अनाचार से दुखी होकर देवता विष्णु की शरण में पहुंचे। विष्णु ने शिव को प्रसन्न करने के लिए घोर तपस्या की। शिव ने परीक्षा के निमित्त विष्णु के पूजा के एक सहस्र कमलों में से एक उठा लिया। विष्णु को ज्ञात हुआ तो वे विशेष चिंतित हुए। फिर यह याद करके कि उनके नेत्र कमलवत् थे, उन्होंने अपना एक नेत्र पुष्पों के साथ चढ़ा दिया। प्रसन्न होकर शिव ने उन्हें सुदर्शन चक्र प्रदान किया और कहा कि वे विषम स्थिति में ही उसका प्रयोग करें। चक्र ब्राह्मणेतर समस्त प्राणियों का हनन करने में समर्थ था।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध, ५।२४।-

सुदामा (क) मथुरा पहुंचने के बाद कंस के उत्सव में भाग लेने से पूर्व कृष्ण तथा बलराम नगर का सौंदर्य देखते रहे। बाल-गोपालों सहित वे 'सुदामा' नामक माली के घर गये। सुदामा से अनेक मालाएं लेकर उन्होंने अपनी साज-सज्जा की तथा उसे वर दिया कि उसकी लक्ष्मी, बल, वायु और कीर्ति का निरंतर विकास हो।

श्रीमद् भा०, १०।४१

(ख) श्रीकृष्ण और बलराम जब गुरुकुल में रहकर गुरु संदीपनि से विद्याध्ययन कर रहे थे, उन दिनों उनके साथ सुदामा नामक ब्राह्मण भी पढ़ता था। वह नितांत दरिद्र था। कालांतर में कृष्ण की कीर्ति सब ओर फैल गयी तो सुदामा की पत्नी ने सुदामा को कह-सुनकर कृष्ण के पास जाने के लिए तैयार किया। उसके मन में यह इच्छा भी थी कि कृष्ण के पास जाने से दारिद्र्य से मुक्ति मिल जायेगी। सुदामा अत्यंत संकोच के साथ घर से चला। उनकी पत्नी ने कृष्ण को भेंटस्वरूप देने के लिए आस-पास के ब्राह्मणों से दो मुट्ठी चिवड़ा मांगा। सुदामा पहुंचा तो कृष्ण ने उसकी पूर्ण तन्मयता से आव-भगत की। कृष्ण के ऐश्वर्य को देखकर सुदामा चिवड़े की भेंट नहीं दे पाया। रात को कृष्ण ने उससे बलपूर्वक पोटली छीन ली और चिवड़ा खाकर प्रसन्न हुए। उसे सुंदर शय्या पर सुलाया किंतु उसके चलने पर उसे कुछ भी नहीं दिया। सुदामा सोचता जा रहा था कि उसे इसी कारण से धन नहीं दिया गया होगा कि कहीं वह मदमत्त न हो जाय। विचारमग्न ब्राह्मण घर पहुंचा तो देखा, उसकी कुटिया के स्थान पर वैभवमंडित महल है। उसकी पत्नी स्वर्णाभूषणों से लदी हुई तथा सेविकाओं से घिरी हुई है। कृष्ण की कृपा से अभिभूत होकर सुदामा अपनी पत्नी सहित उनकी भक्ति में लग गया।

श्रीमद् भा०, १०।८०-८१।-

सुदास अश्विनीकुमारों ने अपने रथ में भरकर सुदास नामक राजा के पास धन तथा अन्न पहुंचाया था। सुदास के लिए इंद्र ने शत्रुओं को कुशा के समान काट डाला।

ऋ० १।४६।६, ऋ० १।६३।६, ऐ० ब्रा०, १।२।१, ५।२।४

क्षत्रिय यजमान को यज्ञ के अवसर पर क्या भक्षण करना चाहिए, इसका ज्ञान वसिष्ठ ने सुदास को दिया था।

ऐ० ब्रा०,८।२।१।-

इंद्र-संबंधी महाभिषेक द्वारा वसिष्ठ ने पिजवन पुत्र सुदास का अभिषेक किया। इससे सुदास महाबली बन समुद्र पर्यंत पृथ्वी को जीतता हुआ परिभ्रमण करने लगा और उसने अश्वमेध यज्ञ किया।

दे० युक्ताश्व

ऐ० ब्रा०, ७।३४

सुदिन्न सुदिन्न नामक सेठ-पुत्र दीक्षा लेना चाहता था किंतु बुद्ध ने निश्चय कर लिया था कि माता-पिता की आज्ञा न मिलने तक दीक्षा नहीं देंगे, अतः जब तक

वह अपने माता-पिता से आज्ञा नहीं ले पाया, बुद्ध ने उसे प्रव्रजित नहीं होने दिया। उसके प्रव्रजित होने के उपरांत एक बार माता-पिता ने उसे भोजन पर आमंत्रित किया तथा अनेक प्रकार से पुनः गृहस्थ बनने को कहा। वह नहीं माना तो उन्होंने आग्रह किया कि वह एक बार अपनी भूतपूर्व पत्नी से संबंध स्थापित करके वंशधर को जन्म दे। उसने स्वीकार कर लिया। फलतः उसकी पत्नी ने जिस पुत्र को जन्म दिया, उसका नाम जीवक रखा गया। उक्त घटना के विषय में जानकर भगवान बुद्ध सहित भिक्षुगण बहुत रुष्ट हुए। "बिना वासना के भी यदि कोई पशु से भी मैथुन करे तो वह पाराजिक (भिक्षुओं के संघ में रहने के अयोग्य) हो जाता है।" ऐसा बुद्ध ने कहा।

बु० च०,२१६, ३।१५।-

सुद्युम्न वैवस्वत मनु संतानहीन थे। वसिष्ठ से उन्होंने संतान-प्राप्ति के लिए मित्रावरुण यज्ञ कराया। उनकी पत्नी श्रद्धा ने यज्ञ प्रारंभ होने से पूर्व ही होता से कहा कि यदि पुत्री मिलेगी, तब भी वे प्रसन्न होंगी। यज्ञ के उपरांत उन्हें 'इला' नामक पुत्री मिली। मनु को बहुत बुरा लगा। वे पुत्र प्राप्त करना चाहते थे। वसिष्ठ ने अपने तप के प्रभाव से इला को ही 'सुद्युम्न' नामक पुत्र बना दिया। एक बार सुद्युम्न अपने साथियों सहित हरिणों का शिकार खेलता हुआ मेरुपर्वत की तलहटी में जा पहुंचा। वहां पहुंचते ही वे सब लोग स्त्री बन गये, तथा उनके घोड़े, घोड़ी बन गये। वह शिव-पार्वती की क्रीड़ा-स्थली थी। पूर्वकाल में क्रीड़ारत नग्न अंबा को संकट का सामना करना पड़ा था जबकि तपस्वी अचानक ही प्रकाश फैलाते वहां पहुंच गये थे। लज्जित अंबा ने तुरंत कपड़े पहने थे। तभी से शिव की व्यवस्था थी कि वहां शिव से इतर कोई पुरुष नहीं रहेगा। बुध ने अपने आश्रम के पास उन सब स्त्रियों को विचरते देखा तो वे सुंदरी सुद्युम्न पर आसक्त हो गये। उन दोनों ने पति-पत्नी के रूप में पुरुरवा नामक पुत्र को जन्म दिया। मनु को इस घटना का ज्ञान हुआ तो वे पुनः वसिष्ठ की शरण में पहुंचे। वसिष्ठ के योग-बल से सुद्युम्न को एक माह पुरुष तथा एक माह नारी-रूप में रहने की व्यवस्था कर दी। उसके तीन पुत्र भी हुए किंतु प्रजा उसके प्रति विशेष आदर-भाव नहीं रखती थी। अपना राज्य पुत्रों को सौंप, वह तपस्या करने चला गया। तदनंतर वैवस्वत मनु ने तप के बल से दस अन्य पुत्र प्राप्त किये। उनमें से वृषध शूद्र हुआ, कवि ने बहुत छोटी आयु में ही परम पद प्राप्त किया, करूष ने क्षत्रिय उत्पन्न किये, दिष्ट का पुत्र नाभाग वैश्य हो गया। इस प्रकार संततिवर्धन हुआ।

श्रीमद् भा०, नवम स्कंध, १।
वि० पु०, ४।१
देवी० भा०, स्कंध १, अ० १२

श्राद्धदेव मुनि ने पुत्र की कामना से वसिष्ठ मुनि की सहायता से वरुण यज्ञ किया। उनकी पत्नी ने मुनि से कन्या-प्राप्ति की इच्छा प्रकट की। अतः यज्ञ के उपरांत इला नामक कन्या का जन्म हुआ। राजा बहुत रुष्ट हुए। इला ने मित्रावरुण से पिता की इच्छा पूर्ण करने की प्रार्थना की। वसिष्ठ ने शिव से यह प्रार्थना की कि इला लड़का हो जाय। शिव के वर से वह सुद्युम्न नामक लड़का बन गयी। एक बार सुद्युम्न लड़कों के साथ शिकार खेलने सुरगिरि के नीचे जा पहुंचा जहां शिव और गिरिजा विहार करते थे। वह तुरंत लड़की हो गया (पूर्वकाल में ऐसे ही एक बार देवतागण शिव से मिलने गये थे, वहां दोनों को विहार-रत देख लौट गये थे। तब गिरिजा ने लज्जावश यह वर प्राप्त किया था कि जो भी उस स्थान पर पहुंचेगा, लड़की हो जायेगा। इस प्रकार लोगों का वहां जाना लगभग बंद हो गया था।) बुध ने मुग्ध हो उसके साथ विहार किया। इस प्रकार पुरुरवा का जन्म हुआ। वसिष्ठ ने पुनः सदाशिव को प्रसन्न करके सुद्युम्न को पुरुष बनाने की प्रार्थना की। शिव ने उसे एक मास स्त्री और दूसरे मास पुरुष होने का वर दिया। कालांतर में उसके उत्कल, गय और विमल नामक तीन पुत्र हुए।

शि० पु०, ११।१९

(कथा श्रीमद् भागवत जैसी ही है। जो अंतर है, वह यहां प्रस्तुत है:)
इला से पुनः सुद्युम्न का रूप प्राप्त करने के लिए उसने देवी की आराधना की है।

दे० भा०, माहात्म्य, ३।१-५५

सुबंधु सुबंधु रथप्रोष्ठवंश के एक असमाति (इक्ष्वाकु) राजा के पुरोहित का नाम था। उस राजा के समस्त पुरोहित अत्रि गोत्रीय थे। एक बार राजा तथा पुरोहितों में कलह उत्पन्न हो गयी। अतः राजा ने पुरोहितों को निलंबित कर दिया तथा उनके स्थान पर दो मायावी असुरों को नियुक्त कर दिया। उन असुर पुरोहितों के

नाम किरात तथा आकुली थे। सुबंधु गोपायनों में से था। सुबंधु को पौरोहित्य कार्य से निकल जाना अपमानजनक लगा, अतः उसने राजा के विरुद्ध तंत्र-मंत्र का प्रयोग किया। किरात तथा आकुली ने यह देखा तो कपोत का रूप धारण करके सुबंधु पर आक्रमण किया। उनके प्रहार से वह मूर्च्छित हो गया तो उन दोनों ने उसके प्राण नोच लिए तथा राजा के पास चले गये।

गोपायनों ने जब सुबंधु को मृत देखा तो उसको पुनः जीवन प्रदान करवाने के निमित्त इंद्र, सोम, रौदसी, असमाति राजा तथा अग्नि की स्तुति की। अग्नि ने कहा कि उसके प्राण अंतरिक्ष में व्याप्त हैं। अग्नि ने संबंधु को जीवनदानकर प्रसन्नवदन स्वर्ग की ओर प्रस्थान किया। सुबंधु का शरीर प्राणमय हो गया तथा असुर पुरोहितों को पौरोहित्य का त्याग करना पड़ा।

ऋ० ५।२४, १०।५७, ५८, ५६, ६०.
तै० ब्रा०, २।८।५।४, जै० ब्रा०, १६०

सुबाहु शत्रुघ्न ने राम के स्वर्गारोहण और भरत के देह-त्याग की बात जानकर अपने दोनों पुत्रों को बुलाया। सुबाहु को मथुरा नगरी और शत्रुघाती को विदिशा नगरी दी। इस प्रकार उनका राज्याभिषेक करके शत्रुघ्न राम के पास गये।

बा० रा०, उत्तर कांड, १०८।१-१३

सुभद्रा प्रभास तीर्थ में बनवासी अर्जुन की कृष्ण से भेंट हुई, जो उसे अपने साथ द्वारकापुरी ले आये। अर्जुन कृष्ण की बहन सुभद्रा पर कामासक्त हो गये। कृष्ण ने जाना तो कहा कि स्वयंवर में वह किसका वरण करे नहीं मालूम, अतः अर्जुन बलपूर्वक उसका हरण कर ले। अर्जुन ने शीघ्रगामी पुरुषों के माध्यम से युधिष्ठिर की आज्ञा प्राप्त की तथा रैवतक पर्वत के उत्सव में सुभद्रा का हरण कर लिया। बलराम को ज्ञात हुआ तो वे पुरवासियों सहित कुपित हो बैठे किंतु कृष्ण ने उन्हें समझा-बुझाकर शांत कर दिया तथा अर्जुन को सुभद्रा सहित आमंत्रित कर, विवाह-बंधन में आबद्ध कर दिया। बनवास के बारह वर्ष समाप्त होने के उपरांत श्रीकृष्ण, बलराम, सुभद्रा तथा दहेज के साथ अर्जुन इंद्रप्रस्थ वापस चले गये। कालांतर में सुभद्रा की कोख से अभिमन्यु का जन्म हुआ।

म० भा०, आदिपर्व, अ० २१७-२२०

अर्जुन तीर्थ-यात्रा करता हुआ प्रभास-क्षेत्र पहुंचा। वहां उसने सुना कि बलराम अपनी बहन सुभद्रा का विवाह दुर्योधन से करना चाहता है किंतु कृष्ण, वसुदेव तथा देवकी सहमत नहीं हैं। अर्जुन एक त्रिदंडी वैष्णव का रूप धारण करके द्वारका पहुंचा। बलराम ने उसका विशेष स्वागत किया। भोजन करते समय उसने और सुभद्रा ने एक-दूसरे को देखा तथा परस्पर विवाह करने के लिए इच्छुक हो उठे। एक बार सुभद्रा देव-दर्शन के लिए रथ पर सवार होकर द्वारका दुर्ग से बाहर निकली। सुअवसर देखकर अर्जुन ने उसका हरण कर लिया। उसे कृष्ण, वसुदेव तथा देवकी की सहमति पहले से ही प्राप्त थी। बलराम को उनके संबंधियों ने बाद में समझा-बुझाकर शांत कर दिया।

श्रीमद् भा०, १०।८६।१-१२

सुभूमिक सुभूमिक तीर्थ विनशन तीर्थ के पास ही है। वहां अनेक अप्सराएं जलक्रीड़ा तथा मनोरंजन करती हैं। गंधर्व तथा देवता भी वहां प्रतिमास जाते हैं।

म० भा०, शल्यपर्व, ३७।३-१२

सुमति पूर्वकाल में एक भृगुवंशी ब्राह्मण था। उसके पुत्र का नाम सुमति था। सुमति जड़वत् रहता था। पिता उसे अनेक प्रकार के आदेश देते किंतु वह मौन रहता। एक बार पिता का उपदेश सुनकर वह हंसकर बोला—"पिता जी, आप जो कुछ बता रहे हैं, मैं अनेक बार भोग चुका हूं। मुझे अपने दस हजार जन्मों की स्मृति है।" पिता आश्चर्यचकित उससे प्रश्न करते रहे। वह अनेक ज्ञानमंडित वृत्तांत सुनाता रहा। उसकी प्रेरणा से पिता ने पहले वानप्रस्थ तदुपरांत संन्यास ग्रहण किया और वे ब्रह्म-प्राप्ति के मार्ग की ओर प्रवृत्त हुए।

म० पु०, १०-४१।-

(ख) एक ब्राह्मणी, जिसका नाम कैकेयी था, विधवा होने पर व्यभिचारिणी हो गयी। वन में एक शूद्र मिला। वह उसीके साथ रहने लगी। एक रात मद्यपान कर उसे मांस खाने की इच्छा हुई। उसने अंधेरे में एक बछड़े को मार डाला। उसका मांस खाकर उसने सबसे कहा कि शेर ने उसे मारा है। इस बीच उसने दो बार 'शिव-शिव' भी कहा। दूसरे जन्म में वह अंधी कोढ़ी हुई तथा उसका जन्म चांडाल के यहां हुआ। उसका नाम सुमति था। वह भिक्षा पर जीवन-निर्वाह करती थी। वह सदाशिव के मेले में गयी। सारा दिन भिक्षा में कुछ न मिलने के कारण भूखी रही। भूखी होने के कारण उसे नींद नही आयी। एक व्यक्ति ने उसे बेलपत्र दिये। उसने उन्हें उठाकर फेंका

तो वे शिवलिंग पर जा पड़े। अतः उसके पाप नष्ट हो गये, क्योंकि उसने भूखे रहकर व्रत रखने का तथा जागकर जागरण का कर्म किया था तथा बेलपत्र शिवलिंग पर चढ़ाये थे।
(यही कथा सोमणि' नामक ब्राह्मणी के नाम से दी गयी है।)

शि० पु०, ६।२-३, १०।६

सुमाली सुमाली रावण का नाना था। वह रावण के साथ देवलोक पर विजय प्राप्त करने गया था। युद्ध में सावित्र ने अपनी प्रज्वलित गदा से प्रहार करके सुमाली को भस्म कर दिया था।

वा० रा०, उत्तर कांड, २७।४०-५२

सुमित्र दीर्घजिह्वी नामक आसुरी यज्ञ में सोम चाट जाती थी। उत्तर-दक्षिण, पूर्व-पश्चिम में जो सोम समुद्र है, वहीं से वह सोम चाट लेती थी। इंद्र उसे पकड़ना चाहते हुए भी पकड़ न सका। उसे सुमित्र कौत्स मिला। उसने उससे कहा—"सौमित्र कौत्स! तू सुंदर है, दर्शनीय है। जो सुंदर होता है, उससे स्त्रियां सुलापा होती हैं, तू इस दीर्घजिह्वी को बातों में ले ले।" वह दीर्घजिह्वी के पास पहुंचा और बोला—"मुझसे प्रेम कर।" वह बोली—"तेरे तो एक ही लिंग है। मेरे तो अंग-अंग में योनि है। यह कैसे हो सकता है!" सुमित्र ने इंद्र को सारी स्थिति बता दी। इंद्र की इच्छा से उसके भी अंग-अंग में लिंग हो गये! वह लौटकर दीर्घजिह्वी के पास गया और बोला—"मेरे भी अंग-अंग में लिंग हो गए हैं।" दीर्घजिह्वी ने कहा—"ठीक है, तेरा नाम क्या है?","मेरा नाम सुमित्र है।", "नाम भी सुंदर है।" तदुपरांत दोनों संभोग में प्रवृत्त हो गये। तभी कौत्स ने दीर्घजिह्वी को इंद्र के प्रयोजन के लिए पकड़ लिया। वह बोली—"तू तो सुमित्र है।" उसने कहा—"मैं सुमित्रों के लिए सुमित्र व दुर्मित्रों के लिए दुर्मित्र हूं।" उसने इंद्र का आह्वान किया। इंद्र अनुष्टुप वज्र लेकर दौड़े आये और उस राक्षसी को मार डाला।

जै० ब्रा०,१।१६१-१६२।-
ता० ब्रा०,१३।६।६

(ख) सुमित्र हैहयवंशी राजा था। एक दिन शिकार खेलते हुए उसने एक मृग को घायल कर दिया, किंतु मृग द्रुतगति से दौड़ता चला गया। राजा थककर एक आश्रम में रुका। वहां ऋषभ नामक ऋषि से उसने अपनी शिकार-यात्रा का वृत्तांत सुनाकर कहा कि अब भी उसे मृग को खोज पाने की आशा है। उसने ऋषि से पूछा—"आशा से बढ़कर संसार में क्या है?" ऋषि ने उसे एक कथा सुनायी:

'एक बार वीरद्युम्न नामक राजा सपरिवार वन की ओर गया। वहां उसका बालक खो गया। वह रानी सहित भटकता हुआ तनु मुनि के आश्रम में पहुंचा। तनु मुनि साधारण व्यक्ति से आठ गुना लंबे तथा कनिष्ठिका अंगुली जितने पतले थे। वे देखने में डरावने थे। राजा का दुःख सुनकर वे विचारमग्न हो गये। राजा ने कहा कि पुत्र-दर्शन की आशा इतनी बलवती है कि वह अपना शरीर उत्सर्ग करने के लिए भी उद्यत है। मुनि ने राजा को बताया कि उसके पुत्र ने एक पूजनीय महर्षि का अपमान किया था। मुनि एक स्वर्णकलश तथा वल्कल मांग रहे थे—राजकुमार ने उन्हें खिन्न तथा निराश कर दिया था। मुनि ने बताया कि आशा केवल मूर्ख व्यक्ति को ही उद्यमशील बनाती है। राजा-रानी उसके चरणों में नत हो गये किंतु पुत्र-मिलन की तीव्र इच्छा प्रकट की, यद्यपि वे मुनि के उपदेश को बहुत युक्तियुक्त समझ रहे थे। मुनि ने पुनः कहा कि मनुष्य को आशा का सूत्र पकड़कर अपने शरीर का क्षय नहीं करना चाहिए। आशा उनके (तनु मुनि के) शरीर से भी अधिक क्षीण होती है। तदनंतर वीरद्युम्न तथा रानी की आकुलता लक्ष्य पर मुनि ने अपने योग-बल से उनके पुत्र को वहां प्रस्तुत कर दिया तथा स्वयं निकटवर्ती जंगल में चले गये।"

ऋषभ ऋषि से यह आख्यान सुनकर राजा सुमित्र ने मृग का शिकार करने की आशा का परित्याग कर दिया।

म० भा०, शांतिपर्व, अ० १२५-१२८।-

सुरथ सुरथ नामक राजा के निर्विघ्न राज्य पर पर्वतीय म्लेच्छों ने आक्रमण किया। राजा के मंत्रिगण भी उनसे मिले हुए थे। राजा को ज्ञात हुआ तो वह राज्य को छोड़ जंगल में चला गया। सुमेधा ऋषि के आश्रम में पहुंच उसने अपनी व्यथा की गाथा सुनायी। ऋषि ने उसे निरामिष भोजन करते हुए आश्रम में रहने की अनुमति दे दी। कुछ समय बाद वहां एक वैश्य भी आया। वह एक धनवान व्यक्ति था, उसे कंजूस कहकर पुत्र तथा कलत्र आदि ने घर से निकाल दिया था। सुरथ और वैश्य की मैत्री हो गयी। एक दिन दोनों ऋषि के पास गये तथा मनःशांति का उपाय पूछने लगे। सुमेधा ने उन्हें आद्यादेवी

की आराधना करने के लिए कहा। उनकी तीन वर्ष की कठिन आराधना से प्रसन्न होकर देवी ने दर्शन दिये और वर मांगने को कहा। राजा ने पुन: राज्य-प्राप्ति तथा वैश्य ने मोक्ष की कामना प्रकट की। देवी की कृपा से दोनों को अभीष्ट प्राप्त हुआ।

दे० भा०, ५।३२ ३५

सुरभि वरुण की नगरी में सुरभि भी रहती है। उस गाय के थन से बहते हुए दूध से ही क्षीर सागर का निर्माण हुआ था।

बा० रा०, उत्तर कांड, २३।१९-२१

पृथ्वी के सातवें तल, रसातल में गोमाता सुरभि का निवास है। पृथ्वी के सात रसों से युक्त सुरभि का प्रादुर्भाव अमृतपान से तृप्त ब्रह्मा के मुंह से निकले सार के अंश से हुआ था। सुरभि का क्षीर निरंतर पृथ्वी पर गिरता है जिससे क्षीर सागर का निर्माण हुआ। क्षीर सागर में उत्पन्न फेन पुष्प के समान जान पड़ता है। उस फेन का पान करनेवाले अनेक मुनिश्रेष्ठ रसातल में निवास करते हैं जो कि फेनप कहलाते हैं। उनसे देवता भी भयभीत रहते हैं। सुरभि की पुत्री-स्वरूप चार अन्य धेनु हैं जिनमें से प्रत्येक किसी एक दिशा को धारण तथा उसका पोषण करती है। इस प्रकार सुरूपा—पूर्व को, हंसिका—दक्षिण, सुभद्रा पश्चिम तथा सर्वकामदुधा—उत्तर दिशा का धारण तथा पोषण करती है।

म० भा०, उद्योगपर्व, १०२

एक बार गोमाता सुरभि स्वर्गलोक में जाकर फूट-फूट-कर रोने लगी। दया से आर्द्र होकर इंद्र ने उसके रोने का कारण पूछा। वह बोली कि किसान उसके एक बेटे को बहुत बुरी तरह से पीट रहा है जबकि वह विश्राम करना चाहता है। इंद्र ने कहा—"इस प्रकार तो उसके अनेकों बेटे (वृषभ) हैं, वह एक के लिए ही आतुर क्यों है?" सुरभि ने कहा—"बच्चों में जो सबसे अधिक निरीह होता है, उसके प्रति कृपा होनी ही चाहिए, यद्यपि ममता तो सभी से होती है।" इंद्र ने उसके उत्तर से संतुष्ट हो, किसान के कार्य में बाधा डालने के लिए सहसा वर्षा कर दी।

म० भा०, वनपर्व, ९।७-१९

सुरभि गोलोकवासिनी थी। एक बार श्रीकृष्ण वृंदावन में एकांत विहार कर रहे थे। उन्हें दूध पीने की इच्छा हुई। अत: अपनी बायीं ओर से उन्होंने एक दुधारू गाय की सृष्टि की। वही सुरभि का वृंदावन में आविर्भाव माना जाता है। उसके साथ मनोरथ नामक बछड़ा भी था। गऊ का नाम सुरभि था। उसका दूध मृत्यु तथा जरा को हरने वाला था। बलराम ने नये बर्तन में दूध दुहा, कृष्ण ने पीया। पात्र टूटने से जो दूध पृथ्वी पर गिरा, उसने क्षीर सरोवर नामक कुंड की रचना की। वहां जितने गोप थे, सुरभि ने अपने रोम-रोम से उतनी गौओं की सृष्टि कर दी। तभी से दीवाली के अगले दिन गौओं की पूजा की जाती है। वराह कल्प में एक बार सुरभि ने त्रिलोक का क्षीर ग्रहण कर लिया था। इंद्र ने वंदना से सुरभि को प्रसन्न किया तभी विश्व में पुन: दूध का आविर्भाव हुआ।

दे० भा०, ९।४९

सुरसा जब देवता, गंधर्व तथा सिद्धों ने हनुमान को वेग से लंका की ओर जाते देखा तब उसकी शक्ति की परीक्षा लेने के लिए उन्होंने सर्पों की माता सुरसा से प्रार्थना की। सुरसा एक भयानक राक्षसी का रूप धारण करके समुद्र में खड़ी हो गयी और हनुमान से बोली—"देवताओं ने आज तुम्हें मेरे भोजन के लिए निश्चित किया है।" पहले तो हनुमान ने उस समय सीता का पता लगाने की आज्ञा मांगी और कहा कि लौटते हुए उसके मुंह में जरूर घुसेगा। जब सुरसा नहीं मानी तो हनुमान ने अपना आकार चालीस कोस का बना लिया, सुरसा ने भी अपना मुंह अस्सी कोस तक फैलाकर एक ओर आकाश और दूसरी ओर पाताल में लगाकर कहा कि उसे ब्रह्मा का वरदान प्राप्त है कि कोई उसके मुंह में प्रवेश किये बिना नहीं जा सकता। अत: हनुमान को एक बार उसके मुंह में घुसकर ही जाना पड़ेगा। कोई उपाय न देखकर हनुमान ने एक अंगूठे के बराबर आकार ग्रहण कर उसके मुंह में प्रवेश किया, फिर तुरंत मन के समान तेज गति से निकलकर आकाश में उड़ने लगा और यह कहते हुए कि 'उसके मुंह में हो आया है' नमस्कार करके आगे बढ़ गया।

बा० रा०, सुंदर कांड, १।१४४-१७०

सुलभा सुलभा नाम की संन्यासिनी ने योगधर्म के अनुष्ठान से सिद्धि प्राप्त की थी। उसने राजा जनक की मोक्षतत्त्व-विषयक कीर्ति सुनी तो योग-बल से एक सुंदर रूप धारण कर मिथिलापुरी में पहुंची। वहां वह राजा से भिक्षा मांगने गयी। राजा ने उसका स्वागत किया तथा उस सुंदरी के विषय में जानने के लिए उत्सुक

हो उठे। राजचिह्नों से रहित हुए राजा तथा त्रिदंडरूप संन्यास-चिह्न से अयुक्त सुलभा एक ही शरीर में रहकर बात करने लगे। राजा ने उसका परिचय पूछा, फिर कहा कि गेरुआ वस्त्र धारण करना, सिर मुंडाना इत्यादि तो मात्र संन्यास-चिह्न हैं—इससे मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती। राजा ने पर्याप्त रुष्ट होकर सुलभा से कहा कि इस प्रकार उसका राजा के हृदय में प्रवेश करना अनैतिक है—वास्तव में प्रमादवश वह राजा ही नहीं, उसकी सभा को भी पराजित करना चाहती है। सुलभा ने बड़ी सहजता से सब सुना तथा कहा—"मैं आपकी कीर्ति सुनकर ही यहां आयी थी। आप व्यर्थ में ही विदेहराज कहलाते हैं। यदि आसक्ति इत्यादि के विषय में इतने जागरूक हैं तो मैंने बुद्धि के द्वारा आपके भीतर प्रवेश करके कोई अनुचित कार्य नहीं किया है। जिस प्रकार शून्य घर में कोई संन्यासिनी रात बिता देती है, उसी प्रकार मैं भी रात्रि-भर आपके शरीर-रूपी घर में सोकर प्रातः चली जाऊंगी।" राजा निरुत्तर हो गये।

म० भा०, शांतिपर्व, अ० ३२०

सुवर्चला महर्षि देवल की कन्या का नाम सुवर्चला था। वह वेदशास्त्रों में पारंगत थी। उसके विवाह का समय उपस्थित होने पर महर्षि ने अनेक वेदवेदांग पारंगत विद्वान ब्राह्मणों को बुलाकर स्वयंवर की रचना की। सुवर्चला ने ब्राह्मणों से कहा कि वह उसी से विवाह करेगी जो अंधा होते हुए भी देखने में समर्थ हो। सब ब्राह्मण देवल से रुष्ट होकर लौट गये। उसकी कसौटी सुनकर श्वेतकेतु वहां पहुंचे और उससे विवाह की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने कहा कि वे सांसारिक इंद्रियगत चक्षुओं से अयुक्त तथा ज्ञान-चक्षुओं से युक्त हैं। सुवर्चला ने उनके साथ सहर्ष विवाह कर लिया। उस युगल ने अनेक पुत्रों को जन्म दिया तथा संयम और ज्ञान के साथ जीवन व्यतीत करते हुए दोनों ने ही परम गति प्राप्त की।

म० भा०, शांतिपर्व, अध्याय २२०

सुशर्मा सुशर्मा त्रिगर्तराज था। वह कौरवों का सहयोगी था। उसने महाभारत में अर्जुन का शौर्य देख शपथ ली थी कि या तो अर्जुन ही जीवित रह पायेगा अथवा वह अपने पांचों बेटों—सत्यरथ, सत्यवर्मा, सत्यव्रत, सत्येषु तथा सत्यकर्मा—समेत युद्ध में समाप्त हो जायेगा। यदि अर्जुन जीवित रहा तो त्रिगर्त का एक व्यक्ति भी जीवित नहीं रहेगा। युद्ध-क्षेत्र में त्रिगर्तों का सामना अर्जुन से हुआ। आरंभ में ही सुधन्वा मारा गया किंतु वे लोग युद्ध में डटे रहे।

म० भा०, द्रोणपर्व, १७।१६-२२

सुश्रवा इंद्र ने अनेक राजाओं पर सुश्रवा का प्रभुत्व स्थापित किया था। इंद्र की कृपा से कुत्स, अतिथिग्व, आयु आदि सुश्रवा के अधीन हो गये।

ऋ० १।५३।१०

सुषेण वानर-सेना में सुषेण एक वैद्य था। उसने मेघनाद-वध के संदर्भ में घायल लक्ष्मण की चिकित्सा की थी।

दे० लक्ष्मण

बा० रा०, युद्धकांड, ९२।१५-२६

(ख) सुषेण कर्ण का बेटा था, जिसका वध उत्तमौजा के हाथों हुआ। उत्तमौजा ने उसका मस्तक काट डाला था।

म० भा०, कर्णपर्व, ७५।१३

सुहोत्र सुहोत्र अपने युग का अद्वितीय वीर राजा माना जाता था। वह ऋत्विजों तथा ब्राह्मणों के परामर्श के अनुसार ही अपना जीवन व्यतीत करता था, साथ ही वह कर्म के द्वारा धन प्राप्त करने का इच्छुक था। उसके लिए मेघ ने अनेक वर्ष तक स्वर्ण की वर्षा की। उसके राज्य में स्वर्ण-द्रव्य से भरी नदियां बहती थीं तथा उनमें जलचर भी सुवर्णमय रहते थे। राज्य में, एक-एक कोस दूर तक फैली हुई सुवर्णमयी बावड़ियां थीं। राजा ने कुरुजांगल देश में अपना अनंत स्वर्ण ब्राह्मणों में वितरित कर दिया। जीवनकाल में उसने एक हजार अश्वमेध, सौ राजसूय यज्ञ तथा अनेक अन्य अनुष्ठान किये। ऐसे पुण्यात्मा राजा को भी कालांतर में इहलीला से हाथ धोना पड़ा।

म० भा०, द्रोणपर्व, अध्याय ५६

राजा सुहोत्र आतिथ्य-प्रेमी थे। उनके कारण पृथ्वी का नाम वसुमति सार्थक हुआ था। उनके राज्यकाल में इंद्र ने एक वर्ष तक सोने की वर्षा की थी। अनेक जलचरों समेत नदियों का जल भी स्वर्ण हो गया था। सुहोत्र ने यज्ञ करके समस्त स्वर्ण-राशि ब्राह्मणों में वितरित कर दी थी।

म० भा०, शांतिपर्व, २९।२५-२९

सूर्य ब्रह्मा के पौत्र कश्यप (मरीचि के पुत्र) की अदिति नामक रानी से सूर्य ने जन्म लिया। सूर्य ने शिव को तपस्या से प्रसन्न कर लिया। शिव ने उन्हें भूलोक से

ऊपर का लोक प्रदान करके अत्यंत आलोकित रूप दिया तथा वरदान दिया कि वे निरंतर लोकों का भ्रमण करते रहें।

शि० पु०, ११।१२

सृंजय शैव्य के पुत्र का नाम सृंजय था। एक बार 'पर्वत' तथा 'नारद' दोनों मित्र उसके यहां जाकर ठहरे। सृंजय ने उनका सुंदर आतिथ्य किया। उन दोनों ने सृंजय की सुंदरी कन्या को देखा। पर्वत ने उसका परिचय जानना चाहा। राजा के यह कहने पर कि वह उसकी पुत्री है, नारद ने पत्नी-रूप में उसे प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की। राजा ने स्वीकार कर लिया। पर्वत भी उसपर मुग्ध था। उसने कहा—"नारद, मैंने मन में ही, पत्नी-रूप में उसका वरण कर लिया था। तदुपरांत तुमने पत्नी-रूप में उसे मांगा। अत: मेरी मनोनीता सुंदरी से विवाह करने के कारण तुम स्वर्ग से च्युत हो जाओगे।" नारद ने कहा--"पाणि-ग्रहण तथा कन्यादान संस्कार से पूर्व कोई किसी की पत्नी नहीं बन सकती। तुमने मुझे शाप दिया है, अत: मेरे बिना तुम भी स्वर्ग नहीं प्राप्त कर पाओगे।" सृंजय मनोयोग से आतिथ्य में व्यस्त रहा। अंततोगत्वा प्रसन्न होकर नारद ने उसकी इच्छानुसार उसे पुत्र-प्राप्ति का वरदान दिया। राजा ने इच्छा प्रकट की कि उसका भावी पुत्र सद्गुणी, वीर, साहसी, धर्मपरायण, तेजस्वी हो तथा आंसू, मलमूत्र तथा पसीने के रूप में भी स्वर्ण निसृत करे। मुनि ने वैसा ही बालक उसे प्रदान किया जिसका नाम सुवर्णष्ठीवी रखा गया। स्वर्ण की अधिक वृद्धि होने पर लुटेरों ने उसके यहां लूटपाट आरंभ कर दी तथा स्वर्ण के मूल कारण उस स्वर्णदायी बालक को उठाकर ले गये। जंगल में जाकर उन लोगों ने बालक के टुकड़े-टुकड़े कर दिये किंतु उन्हें उसके शरीर से स्वर्ण की प्राप्ति नहीं हुई। तदुपरांत परस्पर लड़ाई में वे सभी लुटेरे मारे गये। राजा सृंजय अपने बालक सुवर्णष्ठीवी को खोकर बहुत दुखी हुआ। नारद ने राजा को दुखी देखा तो वहां पहुंचकर उनको समझाया कि मृत्यु अवश्यंभावी है। किसी-न-किसी दिन सृंजय, जो कि समस्त भोगों से लिप्त जीवन यापन कर रहा है—इस शरीर का त्याग करेगा। नारद ने राजा को सांत्वना देकर उससे पूछा कि उसे शांति प्राप्त हुई भी है कि नहीं। राजा ने स्वीकार किया कि वह शोकमुक्त हो गया है। नारद ने राजा से प्रसन्न होकर उसे अभीष्ट वर मांगने के लिए कहा। राजा ने जब कुछ नहीं मांगा, तब नारद ने कहा—"सुवर्णष्ठीवी की अकालमृत्यु थी—अभी उसका विवाह आदि कोई संस्कार भी नहीं हुआ था, अत: वह संतानहीन था। इसलिए मैं फिर से तुम्हें तुम्हारा बालक लौटाता हूं।"

म० भा०, द्रोणपर्व ५५।-७१।१-१०

सृष्टि आरंभ में आकाश, पर्वत, नक्षत्र, लक्ष्मी—सब विष्णु के उदरस्थ थे। विष्णु वर्षों तक समुद्र में सोये, अत: सब कुछ समुद्र के भीतर था। सोये हुए भगवान विष्णु के पेट में ब्रह्मा ने प्रवेश किया। विष्णु की नाभि से एक स्वर्णकमल उत्पन्न हुआ, जिसपर स्वेच्छा से ब्रह्मा प्रकट हुए। उन्होंने पृथ्वी, वायु, पर्वत, वृक्ष, मनुष्य, सर्प और अंडज सब जीवधारियों की सृष्टि की। उन्हीं के कान में मैल से 'मधु' और 'कैटभ' नामक दो दैत्य उत्पन्न हुए। वे ब्रह्मा को ही खाने के लिए दौड़े। ब्रह्मा के शोर मचाने पर विष्णु ने वहां जाकर उन दोनों को मार डाला। उनकी चर्बी से संपूर्ण पृथ्वी तर हो गयी। विष्णु ने पृथ्वी का शोधन किया। पृथ्वी में चर्बी की दुर्गंध आने लगी थी, इसलिए वह मेदिनी भी कहलायी—तदुपरांत जीवों की सृष्टि हुई।

बा० रा०, उत्तर कांड, क्षेपक ३।४१-५३

सर्वप्रथम दक्ष प्रजापति की ६० यशस्विनी कन्याएं थीं, जिनमें से आठ कन्याओं को कश्यप ने पत्नी-रूप में स्वीकार किया था। उनके नाम हैं—अदिति, दिति, दनु, कालिका, ताम्रा, क्रोधवशा, मनु और अनला। कश्यप ने प्रसन्न होकर उनसे कहा कि वे सब त्रिलोकी का पालन करनेवाले पुत्रों का जन्म दें। अदिति ने तैंतीस देवता अर्थात् द्वादश सूर्य, अष्टवसु, एकादश रुद्र और दो अश्विनीकुमारों को जन्म दिया। दिति ने यशस्वी दैत्यों को जन्म दिया। दनु ने अश्वग्रीव नामक पुत्र को जन्म दिया। कालिका ने नरक और कालक नामक दो पुत्रों को जन्म दिया। ताम्रा की पांच कन्याएं भी हुईं—क्रौंची, भासी, श्येनी, धृतराष्ट्री तथा शुकी। क्रौंची ने उलूकों को, भासी ने भास नाम के पक्षी को, श्येनी ने श्येन तथा गृध्रपक्षियों को, धृतराष्ट्री ने हंस, कलहंस और चक्रवाकों को, शुकी ने नता नामक कन्या को जन्म दिया।

कश्यप की शेष पत्नियों में से क्रोधवशा ने मृगी (जिससे

मृग हुए), मृगमंदा (जिससे ऋक्ष हुए), हरी (जिससे सिंह और वानर हुए), भद्रमदा (जिससे इरावती और इरावती से ऐरावत हाथी हुआ), शार्द्वली (व्याघ्रों की जन्मदातृ), श्वेता (दिग्गजों की मां), सुरभि (रोहिणी और गंधर्वी कन्याओं की मां। इनमें से रोहिणी ने गौओं को और गंधर्वी ने घोड़ों को जन्म दिया, सुरसा ने बड़े नागों को जन्म दिया, कद्रु ने शेषनाग को जन्म दिया) नामक दस कन्याओं को जन्म दिया। शुकी-पुत्री नता की पुत्री का नाम विनता था। विनता के गरुड़ और अरुण नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए। अरुण का पुत्र जटायु के नाम से विख्यात है।

बा० रा०, अरण्य कांड, १४।१०-३३

शिव वरुण का रूप धारण करके उसके साम्राज्य पर प्रतिष्ठित थे। उनके यज्ञ में समस्त देवी-देवता आये। सुंदरी देवांगनाओं को देखकर ब्रह्मा का वीर्यपात हो गया। ब्रह्मा ने उसे स्रुवा में लेकर मंत्र पढ़ते हुए घी की भांति होम कर दिया। अग्नि से तीन विराट् पुरुषों का जन्म हुआ। अग्नि की ज्वाला से भृगु, अंगारों से अंगिरा तथा अंगारों के आश्रित स्वल्प ज्वाला से कवि का जन्म हुआ। उन तीनों को लेकर विवाद खड़ा हो गया। यज्ञ में गृहस्थ यजमान होने के नाते शिव उन्हें अपनी संतान मान रहे थे। स्ववीर्य को कारण मान ब्रह्मा उन्हें अपना पुत्र कहते थे और अग्नि तो जन्म का साक्षात् कारण था ही। विवाद की शांति इस समझौते पर हुई कि भृगु शिव के, अंगिरा अग्नि के तथा कवि ब्रह्मा के पुत्र माने जायें। भृगु के सात तथा शेष दोनों के आठ-आठ पुत्र हुए। अग्नि के अश्रुओं से दो अश्विनीकुमार, लोमकूपों से ऋषि, पसीने से छंद और वीर्य से मन की उत्पत्ति हुई। उत्तरोत्तर जनसंख्या बढ़ती गयी तथा सृष्टि का निर्माण हुआ।

म० भा०, दानधर्मपर्व, ८५।८८-१४४

प्राचेतस दक्ष योगबल से स्त्री-शरीर को प्राप्त हो गये। तदनंतर देहार्घ-संयोग से दक्ष ने उस स्त्री के गर्भ से अनेक कन्याओं को जन्म दिया। तदनंतर स्त्री-रूप का परित्याग करके वे पुन: पुरुष-रूप में स्थित हो गये। उन कन्याओं का कश्यप, सोम आदि से विवाह कर दिया गया (शेष कथा श्रीमद् भा० जैसी है)।

हरि० वं० पु०, भविष्यपर्व।२२

जल के तल में डूबी हुई पृथ्वी ने ब्रह्मा से कहा—"मूल रूप से ब्रह्मा ही सृष्टि आदि के लिए समय-समय पर ब्रह्मा, विष्णु और महेश का रूप धारण करते हैं। आप मेरा उद्धार कीजिए।" ब्रह्मा ने वराह का रूप धारण करके अपनी दाढ़ों पर पृथ्वी को उठाकर जल के ऊपर स्थापित किया। तदुपरांत ब्रह्मा ने क्रमश: नौ सर्गों की रचना की। प्रथम सर्ग महत्तत्त्व है। द्वितीय सर्ग तन्मात्राओं का (भूतसर्ग), तृतीय वैकारिक (ऐंद्रियिक), चतुर्थ मुख्य सर्ग (पर्वत, वृक्ष इत्यादि), पंचम तिर्यक स्रोत (कीट-पतंग आदि) तथा छठा सर्ग ऊर्ध्व स्रोताओं का है जो देव सर्ग भी कहलाता है। सातवां सर्ग मनुष्यों से सबद्ध अर्वाक् स्रोताओं का कहलाया तथा आठवां अनुग्रह सर्ग (सात्त्विक तथा तामसिक) हुआ। इनमें से प्रथम तीन प्राकृत सर्ग तथा अंतिम पांच वैकृत (विकारी) सर्ग हैं। नवां कौमार सर्ग प्राकृत और वैकृत दोनों से युक्त है। प्रजापति से सृष्टि न बढ़ने पर ब्रह्मा ने नौ मानसपुत्रों को जन्म दिया, फिर नौ कन्याओं को उत्पन्न करके मानसपुत्रों को पत्नियों के रूप में सौंप दिया। वे सभी विरक्त तथा उदासीन थे, अत: सृष्टि का वर्द्धन नहीं हो पाया। ब्रह्मा के क्रोध की भयंकर ज्वाला ने अर्धनारीश्वर (रुद्र) का रूप धारण किया। शरीर का विभाग करने का आदेश देकर वे अंतर्धान हो गये। रुद्र ने पुरुष-रूप को ग्यारह रूपों में विभक्त किया तथा नारी को भी गोरी, काली, सौम्य, क्रूर आदि अनेक रूपों में विभक्त कर दिया। ब्रह्मा ने स्वयं ही उत्पन्न किए अपने एक रूप को स्वायंभुव मनु बनाया जिसने अपने साथ ही उत्पन्न शतरूपा से विवाह किया (शेष कथा महाभारत तथा मा० पु० जैसी ही है)।

वि० पु०, १।४-७

ब्रह्मा ने अपने जन्मस्थान कमल पर बैठकर सृष्टि रचने की इच्छा की। जिस ज्ञानदृष्टि से सृष्टि की रचना हो सकती थी, वह उन्हें प्राप्त नहीं हुई। इसी चिंता में बैठे हुए ब्रह्मा ने 'त', 'प' अक्षर सुने, पर वक्ता को नहीं देख पाये। उन्होंने यह समझकर कि 'तप' करना ही भगवान की प्रेरणा है—तपस्या आरंभ की। तपस्या के माध्यम से वे भगवान विष्णु के साकार और निराकार दोनों ही रूपों को समझ पाये तथा पूर्वकल्प के समान सृष्टि की सर्जना की। पहले उनके मारीच, अत्रि आदि दस पुत्र उत्पन्न हुए। दसवें नारद थे। नारद गोद से, दक्ष अंगूठे से, वसिष्ठ प्राण से, भृगु त्वचा से, क्रतु हाथ से, पुलह नाभि से, पुलस्त्य कानों से, अंगिरा मुख से, अत्रि नेत्रों

से और मरीचि मन से उत्पन्न हुए। दायें स्तन से धर्म, धर्म की पत्नी मूर्ति से नारायण अवतीर्ण हुए तथा उनकी पीठ से अधर्म जन्मा। ब्रह्मा के हृदय से काम, भौंहों से क्रोध, अधर से लोभ, मुंह से वाणी की अधिष्ठात्री सरस्वती, लिंग से समुद्र, गुदा से निःऋति (पाप का निवासस्थान), छाया से कर्मद का जन्म हुआ। अधर्म की पत्नी का नाम मृषा था। मृषा के दंभ नामक पुत्र तथा माया नामक कन्या हुई। उन दोनों से लोभ और निकृति (शठता) का जन्म हुआ। उनसे क्रोध, हिंसा तथा कलह और उनकी बहन दुरक्ति (गाली) उत्पन्न हुई। दुरक्ति से भय तथा मृत्यु जन्मे। उनके संयोग से नरक का जन्म हुआ। इस प्रकार ससार के विभिन्न तत्त्वों का जन्म हुआ।

श्रीमद् भा०, प्रथम स्कंध १२।१-२७
श्रीमद् भा०, प्रथम स्कंध ६।-
चतुर्थ स्कंध ८।१-६,
शि० पु०, ।२।६-१३।-

सर्वप्रथम भगवान ने जल की सृष्टि की। उसमें बीज डाला। जल में सोए हुए विष्णु की नाभि से एक 'अंडा' उत्पन्न हुआ। उससे ब्रह्मा उत्पन्न हुए। भगवान ने अंडे को दो भागों में विभक्त किया—एक जल में डूबी हुई पृथ्वी बना, दूसरा भाग स्वर्ग बना, मध्य भाग में आकाश का निर्माण हुआ। परमात्मा ने क्रोध से रुद्र की तथा सृष्टि की इच्छा से सप्तर्षियों (मरीचि, अत्रि, अंगिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु और वसिष्ठ) की रचना की। इसी प्रकार सनत्कुमार इत्यादि की मानसी सृष्टि की। देवताओं की भी उत्पत्ति की, तदुपरांत छोटे-छोटे प्राणी ब्रह्मा के अंग से उत्पन्न हुए। ब्रह्मा ने अपनी देह के आधे भाग से पुरुष और आधे से नारी बनायी, फिर अनेक प्रकार की प्रजा की रचना की। यह समस्त रचना अयोनिज थी। विष्णु ने 'विराट्' की रचना की। 'विराट्' ने 'पुरुष' को उत्पन्न किया जो कि मनु कहलाया।

ब्र० पु०, १।३७-५६।१८१

जल-प्रलय के उपरांत एकार्णव में खिले कमल से ब्रह्मा का जन्म हुआ। ब्रह्मा यह जानने के लिए आतुर थे कि मूल रचयिता कौन है? विचारमग्न ब्रह्मा ने आदेश सुना—"तप करो, रचना करो।" ब्रह्मा ने एक सहस्र वर्ष तक तप किया, तदुपरांत युद्ध हेतु आये मधु-कैटभ से भयभीत होकर वे कमल की नाल के तल तक पहुंच गये। वहां विष्णु शेष-शैया पर सो रहे थे। ब्रह्मा की प्रार्थना पर निद्रा-निरूपिणी देवी विष्णु का त्याग कर चली गयी। जागकर विष्णु ने मधु-कैटभ को मार डाला। रुद्र भी वहीं पहुंच गये। विश्वेश्वरी देवी ने आकाश में दर्शन देकर प्रजा उत्पन्न करने का आदेश दिया। त्रिदेव के असमर्थता तथा भूमि के अभाव को व्यक्त करने पर देवी ने उनके पास एक दिव्य विमान भेजा। उसमें बैठकर उन्होंने सभी लोकों में पर्यटन किया। किसी लोक में ब्रह्मा-स्वरूपी दूसरे ब्रह्मा को और किसी लोक में विष्णु जैसे ही दूसरे विष्णु तथा शिव जैसे ही दूसरे शिव को कार्यरत देख वे देवी के चरणों के निकट जा बैठे। तत्काल तीनों देवता नारी-रूप में परिणत हो गये। कालांतर में देवी ने उन्हें बताया कि सब कार्यशक्ति पर आधारित हैं। जन्म से मृत्यु तक सब शक्ति (देवी) के अधीन हैं। वह समस्त देवताओं की जननी है तथा संसार-रूपी वृक्ष की मूल है। उन तीनों को नानाविध उपदेश देकर देवी ने उन्हें प्रजा की रचना करने को कहा। उन्होंने ब्रह्मा को महासरस्वती (नारी-रूपा शक्ति) तथा भजने के लिए नवाक्षर बीज मंत्र दिया, विष्णु को महालक्ष्मी (नारी-रूपा शक्ति) तथा शिव को महाकाली (नारी-रूपा शक्ति) प्रदान करते हुए उन्होंने तीनों देवताओं को पुरुष-रूप प्रदान किया तथा बताया कि वे सब उसी के अंश हैं और देवी में ही लीन हो जायेंगे। "वे (देवी) स्वयं निर्गुण रहती हैं, पर स्मरण करते ही दर्शन देंगी," ऐसा आश्वासन देकर उन्होंने त्रिदेव तथा त्रिगुण शक्ति को विदा किया।

दे० भा०, ३।१-६

सर्वप्रथम निर्गुण के अतिरिक्त कोई नहीं था। विष्णु ने प्रकृति में प्रवेश करके उसे विकृत किया। फलतः प्रकृति से महतत्त्व और उससे अहंकार उत्पन्न हुआ। अहंकार तीन प्रकार का है: वैकारिक (सात्विक), तेजस (राजस) और भूतादि रूप (तामस)। तामस अहंकार से शब्द तन्मात्रा वाला आकाश, उससे स्पर्श तन्मात्रा वाला वायु, उससे रूप तन्मात्रा वाला अग्नि तत्त्व, उससे रस तन्मात्रा वाला जल तथा उससे गंध तन्मात्रा की भूमि का प्रादुर्भाव हुआ। दस इंद्रियों के अधिष्ठाता दस देवता हैं (शेष कथा ब्रह्म पु० की कथा के समान है)।

अ० पु० १७

सेतुबंध विभीषण के सुझाव के अनुसार रामचंद्र ने समुद्र के किनारे कुशासन बिछाकर तीन दिन, तीन रात तक वर के निमित्त प्रार्थना की, किंतु समुद्र प्रकट न हुआ। राम क्रुद्ध हो गये और वाणों से जलचरों को नष्ट करने लगे तथा उन्होंने ब्रह्मास्त्र के मंत्रों से पूजित एक अमोघ वाण समुद्र को सोखने के लिए धनुष पर चढ़ाया तो समुद्र ने प्रकट होकर कहा—"हे राम, मैं मर्यादा का पालन करता हुआ अपरिमित और अथाह हूं, पर आप जो चाहेंगे, करूंगा। आपकी वानर सेना में विश्वकर्मा का पुत्र नील है, वह मुझपर पुल बना सकता है, उस सेतु को मैं धारण करूंगा।" राम ने कहा—"यह अमोघ अस्त्र चढ़ाने के बाद मैं लौटा नहीं सकता, फिर इसका क्या करूं?" तब समुद्र ने राम को उत्तर दिशा में 'द्रुमकुल्य' नामक स्थान पर वह वाण छोड़ने के लिए कहा क्योंकि वहां के निवासी अत्यंत दुष्ट थे। राम ने ऐसा ही किया। उस वाण के गिरने से वहां एक कुआं-सा बन गया, शेष पानी सूख गया तथा वह स्थान मरुकांतार अथवा मरुदेश के नाम से प्रसिद्ध हुआ तथा उस कुएं का नाम व्रण पड़ गया।

नील के निरीक्षण में वानर सेना ने पांच दिन में तेईस योजन लंबा पुल बनाकर तैयार कर दिया जिससे वे सब लोग लंका-स्थित सुवेल पर्वत पर पहुंच गये।

बा० रा०, युद्ध कांड, सर्ग २१,२२

सेमल वृक्ष हिमालय पर्वत पर एक विशाल सेमल वृक्ष था। वह अनेक पक्षियों का आश्रय स्थल था। एक बार नारद ने उस वृक्ष से पूछा कि क्या वायु देवता से उसकी बहुत मैत्री है, क्योंकि उससे छोटे-बड़े सभी वृक्ष वायु से क्षत-विक्षत होते रहते हैं, किंतु सेमल ज्यों-का-त्यों दिखायी देता है। सेमल ने गर्व से फूलकर वायु को अपने बल के सम्मुख हीन बताया। नारद ने वायु से जाकर समस्त वार्तालाप कह सुनाया। अत: वायुदेव ने क्रुद्ध होकर सेमल के वृक्ष को धमकाया तथा यह भी बताया कि वायु को उसकी सुरक्षा का ध्यान सदैव बना रहा है, क्योंकि उसे ज्ञात था कि सृष्टि की रचना करते समय ब्रह्मा ने उसकी छाया में विश्राम किया था। भविष्य में उसके गर्व का मर्दन करने की भी वायु ने ठान ली। उसके जाने के बाद पेड़ बहुत चिंतित हो उठा। वायु अगले दिन आक्रमण करने वाला था। अत: सेमल ने उसके आविर्भाव से पूर्व ही अपने समस्त फूल, पत्ते, त्याग दिये तथा डालियां झुका दीं और सोचने लगा कि बलवान शत्रु से भी नीतिपूर्वक युद्ध करना चाहिए। वायु ने वहां पहुंचकर उदास श्रीहीन सेमल को देखा और कहा—"तुम्हें मैं जिस रूप में पहुंचाना चाहता था, तुम स्वयं ही पहुंच गये। तुम्हारे पश्चात्ताप को देखकर मैं तुम्हें छोड़ता हूं।"

म० भा०, शांतिपर्व, १५४-१५७।-

सोम वृत्र की क्रूरता से भयभीत होकर सोम ने देवताओं का साथ छोड़कर अंशुमती नदी के किनारे रहना आरंभ किया। यह नदी कुरुप्रदेश में स्थित है। सोम और बृहस्पति साथ-साथ थे। इंद्र को सोम विशेष प्रिय था। वे सोम को ढूढ़ते हुए नदी के किनारे पहुंचे। सोम ने समझा कि वृत्र मायावी शक्ति से इंद्र का रूप धारण करके वहां पहुंचा है, वह युद्ध के लिए तैयार हो गया। बृहस्पति के परिचय करवाने पर भी सोम उन्हें मायावी इंद्र समझता रहा तथा देवताओं के पास जाना स्वीकार नहीं किया। इंद्र उसे बलपूर्वक ले गये और देवताओं ने उसका पान किया।

ऋ० ८।९४।१००

लोकों में देवासुर संग्राम हुआ। पूर्व तथा दक्षिण दिशा में असुर जीत गये। उत्तर-पूर्व (ईशान) में देवता जीते। देवताओं ने समझा कि योग्य राजा की कमी से ही वे हारते हैं, अतः उन्होंने 'सोम' को राजा बना दिया।

ऐ० ब्रा० ३।१४, १।१३, १।१९।१४-

राजाओं के साथ आनंद मनाते हुए सोम ने इच्छा की कि देवताओं के राज्यों के लिए सुत हो जाऊं। उसने 'सोमसाम' के दर्शन और स्तुति की। वह साम देवों से तिरोहित हो गया। सब देवता उसे ढूंढ़ने निकले। उन्होंने उसे चंद्रमा में छिपे हुए देखा। सबने घेरकर शोर मचाया कि "देख लिया! देख लिया!"

जै० ब्रा०, ३।१५

सोम ने अपने शरीर पर भस्म आच्छादित करके आठ हजार वर्षों तक पुष्कर में तपस्या की। तेज प्राप्त करके वह आकाश के मध्य भाग में प्रकाशित हुआ तथा स्वर्ग और पृथ्वी के मध्य अंतरिक्ष में स्थित रह वह योग संपत्ति से नाना प्रकार के रस-रूपस्वरूप धारण करता रहा।

हरि० व० पु०, भविष्यपर्व, २७।४-७।

सोमक सहदेव के पुत्र सोमक ने दोनों घोड़े वामदेव को देने का संकल्प प्रकट किया, अत: वामदेव उनसे दोनों

घोड़े ले आये। वामदेव ने उन दोनों घोड़ों से कहा—"हे अश्विनीकुमारो। सहदेव के पुत्र सोमक ने तुम्हें तृप्त किया है, अतः तुम उन्हें दीर्घ आयु प्रदान करो।"

ऋ० ४।१५।६-१०

सोमक नामक धर्मात्मा राजा की सौ रानियां थीं, किंतु अनेक प्रयत्नों के फलस्वरूप वृद्धावस्था में उसे केवल एक पुत्र प्राप्त हुआ। सभी रानियां उस जंतु नामक पुत्र को बहुत प्यार करती थीं तथा उसके तनिक से दुःख पर आर्तनाद करने लगती थीं। राजा ने अपने पुरोहित से दुखी होकर कहा कि 'एक पुत्र' का पिता होना बहुत कष्टकर है, अतः किसी प्रकार सौ पुत्र होने का उपाय करें। पुरोहित ने कहा कि यदि इम पुत्र की आहुति देकर यज्ञ किया जाय तो सौ पुत्र हो सकते हैं। राजा की सहमति से पुरोहित ने वह यज्ञ संपन्न किया। माताओं से छीनकर जंतु के टुकड़े कर डाले और उसकी आहुति यज्ञ में दे दी। उसकी चर्बी की गंध से सब रानियां गर्भवती हो गयीं। पुरोहित ने कहा कि जंतु पुनः अपनी माता के गर्भ से जन्म लेगा तथा उसकी बायीं पसली में एक सुनहरा दाग होगा। दस माह बाद सभी रानियों ने एक-एक पुत्र को जन्म दिया। जंतु पुनः अपनी मां की कोख से उत्पन्न हुआ। उसकी बायीं पसली पर सुनहरा चिह्न था। कालांतर में पुरोहित तथा राजा की मृत्यु हो गयी। पुरोहित को नरकाग्नि में संतप्त किया जा रहा था क्योंकि उसने जंतु की आहुति दी थी। राजा ने धर्मराज से प्रार्थना की कि वह भी पुरोहित के साथ नरकाग्नि का दाह सहेगा क्योंकि पुरोहित ने पाप उसी के निमित्त किया था। दोनों ने नरक में पाप-कर्मों का फल भोगने के उपरांत उत्तम गति प्राप्त की।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय १२७, १२८

सौगंधिक कमल घटोत्कच की सहायता से समस्त पांडव तथा द्रौपदी जब गंधमादन पर्वत पर पहुंच गये, तब एक दिन ईशानकोण की ओर से चलने वाले पवन से उड़कर आया हुआ सौगंधिक कमल द्रौपदी को मिला। द्रौपदी के अनुरोध पर भीम वैसे ही अन्य पुष्पों की खोज में चल पड़ा। जब वह कदली वन में पहुंचा, तब उसे हनुमान (अपने बड़े भाई, वायुपुत्र होने के नाते) के दर्शन हुए। हनुमान स्वर्ग का मार्ग रोककर बैठे हुए थे। उन्होंने भीम को संक्षेप में रामचरित सुनाया, अपने विराट् दर्शन करवाये, सदैव रक्षा करने का वचन दिया तथा उसे सौगंधिक वन का मार्ग बताकर अंतर्धान हो गये। वह वन-कुबेर की रमणस्थली थी तथा क्रोधवश नामक राक्षसों से रक्षित थी। भीमसेन निर्भीकतापूर्वक वहां पर्वतीय झरनों से बने जलाशय में पहुंच गया। जलाशय में भर पेट पानी पीकर जब वह पुष्प तोड़ने के लिए उद्यत हुआ तो क्रोधवश नामक राक्षसों ने भीम पर आक्रमण किया किंतु युद्ध में उससे परास्त हो गये, कुछ राक्षस मारे भी गये। कुबेर को जब समाचार विदित हुआ तो उन्होंने राक्षसों से मुस्कराते हुए कहा—"मैं जानता हूं कि वह भीम है, उसे यथेच्छ पुष्प तोड़ने दो।" उधर युद्ध के अनुभावस्वरूप प्रकृति में जो विकार उत्पन्न हुए, उनसे भावी की आशंका से आक्रांत हो युधिष्ठिर अपने सहयात्रियों के साथ भीम की खोज में निकल पड़े। घटोत्कच की सहायता से वे लोग सौगंधिक वन में जा पहुंचे जहां वे सब कुछ काल तक कुबेर की जानकारी में अर्जुन के वहां पहुंचने की प्रतीक्षा में टिके रहे।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय १४६-१५५

सौदास इक्ष्वाकुवंश में एक सौदास नामक राजा हुए। उनके पुत्र का नाम वीर्यसह था जो बहुत धर्मात्मा था। एक बार सौदास ने वन में दो राक्षसों को देखा। वे सिंह का वेश धारण करने अनेक मृगों को खा जाते थे। सौदास ने अपने बाण से एक राक्षस को मार डाला। उसके मर जाने पर संतुष्ट होकर राजा ने दूसरे पर ध्यान नहीं दिया। दूसरे राक्षस ने अकारण ही अपने साथी को मरा देखकर बदला लेने का निश्चय किया। कालांतर में सौदास ने अपना राज्य मित्रसह (वीर्यसह) को दे दिया। मित्रसह ने अश्वमेध महायज्ञ किया। वसिष्ठ उस यज्ञ की रक्षा करते थे। यज्ञ की समाप्ति पर उस राक्षस ने बदला लेने के विचार से वसिष्ठ का रूप धारण कर राजा से कहा—"तुम्हारा यज्ञ पूरा हुआ, मुझे मांस सहित भोजन दो।" राजा ने उसकी रुचि पूछकर रसोइयों को बुलाकर भोजन बनाने की आज्ञा दी। तब उस राक्षस ने रसोइये का रूप धारण कर मनुष्य के मांस का भोजन बनाया। राजा ने जब वसिष्ठ को भोजन परोसा तो मनुष्य का मांस देखकर वे क्रुद्ध हो गये और शाप दिया—"जैसा भोजन तू हमारे लिए लाया है, वैसा खाने वाला राक्षस हो जा।" राजा को भी क्रोध आया, उसने वसिष्ठ को शाप देने के लिए हाथ में जल लिया, पर रानी ने शाप नहीं देने दिया। तदनंतर वसिष्ठ ने

यह जानकर कि यह सब राक्षस ने किया था, राजन से कहा—"यह शाप बारह वर्ष बाद समाप्त हो जायेगा।"

वा० रा०, उत्तर कांड, ६५

राजा सुदास के पुत्र का नाम सौदास था। एक बार शिकार खेलते हुए उसने एक राक्षस का हनन कर दिया। उसका भाई बच गया। भ्रातृहत्या का बदला लेने के लिए राक्षस ने रसोइये का रूप धारण कर सौदास के यहां नौकरी कर ली। वसिष्ठ राजा के यहां भोजन करने आये तो रसोइये ने नर-मांस बनाकर रखा था। मुनि ने अत्यंत क्रुद्ध होकर राजा को राक्षस बनने का शाप दिया। राजा ने भी क्रोधवश मुनि को शाप देने के लिए अंजली में पानी लिया, फिर अनौचित्य पर ध्यान दे, संपूर्ण जगत् को जीवमय जानकर जल अपने पैरों पर छोड़ दिया। अत: वह 'मित्रसह' कहलाया। जल से उसके पांव काले हो गये, इसलिए उसे 'कल्माशपाद' का नाम भी दिया जाता है। वसिष्ठ को जब ज्ञात हुआ कि राक्षस ने रसोइये के रूप में बदला लेना चाहा था तो आजन्म शाप को बारह वर्ष की अवधि तक सीमित कर दिया। सौदास राक्षसवत् व्यवहार करता हुआ ऐसे स्थल पर पहुंचा जहां एक ब्राह्मण युगल संभोगरत था। ब्राह्मण के गर्भाधान नहीं हुआ था। राजा ने बलात् ब्राह्मण को पकड़कर खा लिया। ब्राह्मणी ने उसे शाप दिया कि वह जब भी सहवास करेगा, मृत्युगामी हो जायेगा। ब्राह्मणी अपने पति के साथ सती हो गयी। बारह वर्ष की समाप्ति के उपरांत भी राजा अपनी पत्नी मदयंती का सहवास-सुख प्राप्त नहीं कर पाया। अपने कुल को बनाये रखने के लिए उसने वसिष्ठ से प्रार्थना की। उनकी कृपा से जो गर्भाधान हुआ, वह सात वर्ष तक ज्यों-का-त्यों बना रहा। अंत में वसिष्ठ ने अश्म (पत्थर) मारकर बालक को जन्म दिया। अत: वह अश्मक कहलाया। अश्मक का बेटा कुल को मूलत: बचानेवाला माना गया। अत: मूलक कहलाया तथा परशुराम जब पृथ्वी को क्षत्रियशून्य कर रहे थे, तब माता ने उसे छिपाकर रखा। अत: वह नारी कवच भी कहलाया।

श्रीमद् भा०, नवम स्कंध, अध्याय ९
वि० पु० ४।४।१-७४।-

सौभरि सौभरि कण्व के वंशज मंत्रद्रष्टा ऋषि थे। (पुरुकुत्स के पुत्र पुरुषों के राजा) राजा त्रसदस्यु जिनका राज्य सरस्वती नदी के तट पर था, वे सौभरि के पास गये तथा अपनी पचास कन्याओं का दान उन्हें कर आये। आश्रम की ओर लौटते हुए सौभरि ने इंद्र का साक्षात्कार किया। अपने प्रति स्तुतिवाचन सुनकर इंद्र प्रसन्न हो गये। उन्होंने ऋषि को वर देने की कामना प्रकट की। सौभरि ने अपनी पचास पत्नियों से एकसाथ रमण करने का वर मांगा। फिर अक्षय यौवन, पचासों पत्नियों में वैमनस्य का अभाव तथा उनके लिए विश्वकर्मा-निर्मित पचास महल मांगे।

कण्वपुत्र सौभरि ने कुरुक्षेत्र में यज्ञ का आयोजन किया। यज्ञ की सामग्री चूहे खा जाते थे। सौभरि ने चूहों के राजा चित्र की स्तुति की। चित्र ने कहा—"राजन्, मैं तो पशु-योनि में उत्पन्न हुआ हूं, आपकी स्तुति के योग्य नहीं।" सौभारि ने इंद्र और अश्विनी की भी स्तुति की। सौभरि का यज्ञ चूहों के आतंक से मुक्त हुआ। चित्र ने प्रसन्न होकर सौभरि को धनधान्य और गउएं दीं। सरस्वती के तट पर सौभरि का यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ।

ऋ० ८।१।२६, ८।१०।२-३, ८।२२, २, १५

सौभरि नामक महर्षि ने बारह वर्ष तक जल में निवास किया था। उस जल में संभद नामक मत्स्यराज भी रहता था। उसके अनेक संतानें थीं जिनके प्रेम में वह नित्य डूबा रहता था। सौभरि को उसका प्रेममय जीवन बहुत प्रिय था। वे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के निमित्त राजा मांधाता से उनकी पचास में से एक कन्या की याचना करने गये। मांधाता अपने कुल से भिन्न उन मुनि की वृद्धजर्जर काया देखकर विचारमग्न हो गये। पुनराग्रह करने पर राजा ने उन्हें अंत:पुर में जाने की अनुमति दे दी और कहा—"यदि कोई कन्या उन्हें पसंद करेगी तो मांधाता को कोई आपत्ति नहीं होगी।" मुनि राजा के मन की बात जान गये। अत: सुंदर गंधर्व का रूप धारण करके वे अंत:पुर में गये। वहां समस्त (पचासों) कन्याओं ने उनका वरण कर लिया। सौभरि एक ही समय में पचास रूप धारण करके पचासों पत्नियों का उपभोग करते थे। कालांतर में अनेक पुत्र-पौत्रों को प्राप्त करने के उपरांत मुनि ने नि:संग से प्रेरित होकर समस्त पत्नियों सहित वन के लिए प्रस्थान किया।

वि० पु०, ४।२।६९-१३३

सौभरि ऋषि यमुना में स्नान कर रहे थे। वहां उन्होंने

एक मत्स्य को अपनी पत्नियों के साथ क्रीड़ा करते देखा। अत: उनकी विवाहेच्छा जाग्रत् हो गयी। उन्होंने राजा मांधाता से उनकी पचास कन्याओं में से एक की याचना की। राजा ने कहा, जो स्वयंवर में उन्हें चुन ले, उससे विवाह कर लें। सौभरि ने सोचा कि उनकी वृद्धावस्था देखकर ही राजा ने रूखा जवाब दिया है, अत: उन्होंने प्रयत्नपूर्वक अपने-आपको सुंदर रूप प्रदान किया। जब वे अंत:पुर में पहुंचे तो मांधाता की पचासों कन्याओं ने उन्हें पति-रूप में ग्रहण किया। कुछ काल तक भोग में लिप्त रहने के उपरांत उन्हें ध्यान आया कि एक साधारण से मत्स्य के कारण उनकी समस्त तपस्या नष्ट हो गयी, अत: वे संन्यास लेकर वन की ओर चल दिये। उनकी पचासों पत्नियां भी वन चली गयीं। सौभरि ने तप से परमगति प्राप्त की।

श्रीमद् भा०, नवम स्कंध, ६।३६-५५

सौमनस विष्णु ने वामन के रूप में सबसे पहले स्वर्ण के बने सोमनस नामक शिखर पर अपना पग रखा था, दूसरा पग उसने सुमेरु के शिखर पर रखा था।

बा० रा०, किष्किंधा कांड ४०।५७-५८

स्कंद पार्वती और शिव विवाह के उपरांत चिरकाल तक अंत:पुर में रहे। तदनंतर देवतागण तारक-वध के निमित्त उनसे पुत्रोत्पत्ति का आग्रह करने के लिए उनके पास पहुंचे। अंत:पुर से बाहर आते ही शिव का वीर्यपात हो गया, जिसे विष्णु के संकेत से अग्नि ने ग्रहण किया। अग्निदेव कबूतर के रूप में थे, वे उड़कर चले गये। पार्वती ने विलंब के कारण रुष्ट होकर उनकी पत्नियों को बांझ रहने का शाप दिया। देवताओं ने स्वयं ही गर्भाधान किया। अत: लज्जावश वे लोग पुन: शिव की शरण में पहुंचे। शिव ने उनसे वीर्य-वमन करने को कहा। उन सबके वमन से एक सुनहरा पहाड़ बन गया। अनल को वहन करने की आज्ञा दी गयी थी, अत: वे वीर्य के तेज को वहन करते थक गये। शिव ने उनसे कहा कि वीर्य का तेज उन स्त्रियों को प्रदान करें जोकि माघ माह में आग तापती हैं। माघ माह में अरुंधती के मना करने पर भी कुछ स्त्रियों ने आग तापी और वे सब ही गर्भवती हो गयीं। अग्निदेव हल्के पड़ गये। वे नारियां चिड़िया बनकर उड़ीं और तथा गंगा नदी में उन्होंने वीर्य का प्रवाह कर दिया। उससे एक सुंदर बालक का जन्म हुआ। उसने अनल की दी शक्ति से श्वेतगिरि पर प्रहार किया। इंद्र ने त्रस्त होकर उसके दायें-बायें तथा हृदय पर वज्र से प्रहार किये। फलत: क्रमशः साष्य, विमाष्य तथा नैगमेय नामक तीन पुरुष प्रकट हुए। तीनों गणों सहित धावा बोलकर बालक ने इंद्र को परास्त कर दिया। वह बालक स्कंद सेनानी, गंगासुत, शरजन्मा, षण्मुख आदि अनेक नामों से विख्यात हुआ। स्कंद शिव का ही रूप था। स्कंद ने अपनी सांग से तारक दैत्य को मार डाला। उसके बाद उसने अनेक अन्य दैत्यों का हनन किया जिनमें से मुख्यत: क्रौंच पर्वत का शत्रु-वाण तथा कुमुद के शत्रु प्रलंब उल्लेखनीय हैं।

शि० पु०, ४। पूर्वार्द्ध २-५।-
शि० पु०, ४।१०-१२।-

स्थूलशिरा मेरुपर्वत के पूर्वभाग में स्थूलशिरा तपस्या कर रहे थे। उनकी तपस्या के समय सुगंधवाहिनी वायु बहने लगी। उसका कोमल स्पर्श उन्हें प्रिय लगा। तभी समीपवर्ती वृक्षों के झड़ते हुए फूलों को देखकर उन्होंने क्रोधवश वृक्षों को शाप दिया कि वे सदैव फूलों से लदे नहीं रहेंगे।

म० भा०, शांतिपर्व, ३४२।५६

स्यमंतक मणि पांडवों के साथ घटित लाक्षागृह की दुर्घटना को सुनकर कृष्ण और बलराम हस्तिनापुर गये। अक्रूर तथा कृतवर्मा ने अच्छा अवसर देखकर शतधन्वा को प्रेरित किया कि वह सत्राजित को मारकर स्यमंतक मणि प्राप्त कर ले। शतधन्वा ने ऐसा ही किया। सत्यभामा को अपने पिता के वध का समाचार मिला तो वह उसके शव को तेल के कड़ाहे में रखकर रोती-पीटती कृष्ण के पास गयी। उससे संपूर्ण समाचार जानकर कृष्ण और बलराम द्वारका पहुंचे। शतधन्वा ने उनके आगमन का उद्देश्य जाना तो मणि अक्रूर के पास रखवाकर भाग खड़ा हुआ। कृष्ण और बलराम ने उसे पकड़कर मार डाला किंतु उसके वस्त्रों में मणि नहीं मिल पायी। उधर अक्रूर और कृतवर्मा द्वारका से भाग खड़े हुए। कृष्ण को संदेह था कि वह मणि अक्रूर के पास रखवा गया है, अत: कृष्ण ने चरों के द्वारा अक्रूर को ढुंढ़वाया तथा उन्हें मीठी बातों से फुसलाकर मणि निकलवाकर अपने संबंधियों को दिखाकर पुनः उन्हें लौटा दी।

श्रीमद् भा०, १०।५७,
वि० पु०, ४।१३

प्रसेन तथा सत्राजित दोनों भाई द्वारकापुरी में रहने लगे। सत्राजित सूर्य की आराधना करता था। सूर्य ने प्रसन्न होकर उसके मांगने पर उसे स्यमंतक मणि दे दी। वह सूर्य के समान ही चमकती थी। घर आकर सत्राजित ने बड़े प्रेम से वह मणि अपने भाई प्रसेन को दे दी। वृष्णि अंधक कुल वालों के घर में उस मणि से सोना झड़ता था। उसके रहते द्वारका में कभी अनावृष्टि, व्याधि, भय इत्यादि का प्रकोप भी नहीं हुआ। एक बार प्रसेन मणि से सज्जित होकर शेर का शिकार करने गया। शेर ने उसे मार डाला। शेर को जांबबान (ऋक्षराज) ने मार डाला और मणि लेकर अपनी गुफा में चला गया। कृष्ण मणि प्राप्त करने के इच्छुक थे, अत: सब लोगों ने समझा कि उन्होंने प्रसेन को मारकर मणि प्राप्त कर ली है। कृष्ण अपने आरोप का निराकरण करने के निमित्त वन गये। वहां प्रसेन तथा सिंह के शव तथा जांबवान के पैरों के निशान देखकर वे उसकी गुफा तक पहुंचे, जहां आया बालक को बहलाते हुए कह रही थी—"यह मणि अब तेरी है; सिंह ने प्रसेन को और जांबवान ने सिंह को मारकर मणि प्राप्त की है।" कृष्ण ने २४ दिन के युद्ध में जांबवान को परास्त करके, उसकी कन्या जांबवती से विवाह किया तथा दहेज में मणि प्राप्त करके द्वारका पहुंचे और मणि सत्राजित को दे दी। सत्राजित के दस पत्नियां, सौ पुत्र तथा तीन कन्याएं थीं। उसने तीनों कन्याओं (सत्यभामा, दृढ़व्रता तथा प्रस्वापिनी) का विवाह कृष्ण से कर दिया। कालांतर में भोजवंशी शतधन्वा ने वह मणि चुरा ली तथा सत्राजित को मार डाला। अक्रूर भी मणि-प्राप्ति के इच्छुक थे। शतधन्वा ने किसी को न बताने का वचन दे और लेकर मणि अक्रूर के पास रखवा दी। कृष्ण ने शतधन्वा पर आक्रमण किया। कृष्ण ने उसे मार डाला किंतु मणि उसके पास भी नहीं निकली। बलराम को कृष्ण पर विश्वास नहीं हुआ तथा वह रुष्ट होकर चला गया। कृष्ण को संदेह था कि उसने अक्रूर के पास मणि रखवा दी होगी। अक्रूर भी उस नगरी से चला गया था। कृष्ण ने एक बार सभा में अक्रूर से अनुरोध करके वह मणि ली तथा समस्त संबंधियों को दिखाकर उसे पुन: वापस कर दी। इस प्रकार कृष्ण पर आरोपित दोष का शमन हुआ।

दे० भा०, माहात्म्य।२।-
ब्र० पु०, १६-१७।-

स्वधा एक समय में पितर ब्राह्मणों के दिये अन्न नहीं खाते थे। वे क्षुधित होकर ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा ने एक मानसी कन्या प्रकट की जिसका नाम स्वधा था। ब्रह्मा ने पितरों को स्वधा प्रदान की तथा ब्राह्मणों को आदेश दिया कि वे स्वधा रूप मंत्र के उच्चारण के साथ पितरों के निमित्त दक्षिणा दें।

दे० भा०, ६।४४

स्वर (ओ३म) एक बार मृत्यु से भयभीत होकर समस्त देवताओं ने त्रयीविद्या में प्रवेश किया अर्थात् वेदविहित कार्यों में पूरी तरह लीन हो गये। वेद के छंदों से आच्छादित होकर वे पूर्ण सुरक्षा का अनुभव करने लगे। तभी मृत्यु ने उन्हें ढूंढ़ निकाला। देवताओं को यह ज्ञात हुआ तो वे तुरंत स्वर में (ओ३म्) प्रविष्ट हुए, अत: उन्हें अमरत्व प्राप्त हो गया।

छा० उ०, १।४।२-५

स्वारोचिष् मनु (२) वरुणा नदी के तट पर एक अत्यंत सुंदर ब्राह्मण रहता था। उसकी देश-देशांतर घूमने की इच्छा थी। संयोगवश एक दिन अतिथि-रूप में एक और ब्राह्मण आये। वे अनेक औषधियों के ज्ञाता थे तथा अनेक स्थानों का भ्रमण करते रहते थे। आगंतुक ने ब्राह्मण को एक लेप दिया। पैरों के तलवे में उस मंत्रपूत लेप का प्रयोग कर मनुष्य आधे दिन में ही जितना चाहे घूमकर वापस आ सकता था। उसके प्रयोग से थकान भी नहीं होती थी। ब्राह्मण ने उसका प्रयोग कर हिमालय का पर्यटन करने का विचार किया। वहां की वनश्री का आनंद लेते हुए उसे हिम पर चलना पड़ा, अत: पांव से लेप उतर गया। उसके हवन इत्यादि का समय होनेवाला था। लेपविहीन पैरों से वह घर नहीं पहुंच सकता था। तभी उसने वन में एक सुंदर अप्सरा को देखा। उसका नाम वरूकिनी था। ब्राह्मण ने उससे घर तक पहुंचने की कोई युक्ति जाननी चाही, किंतु वह ब्राह्मण पर आसक्त हो गयी। अत: कामुक वार्तालाप करने लगी। ब्राह्मण ने नेत्र मूंदकर अग्नि का स्मरण किया। उसके शरीर में गार्हपत्य अग्नि ने प्रवेश किया तथा वह तुरंत घर पहुंच गया। अप्सरा उसके विरह में व्याकुल रहने लगी। पूर्वकाल में कलि नामक गंधर्व उसपर आसक्त था किंतु अप्सरा ने उसका प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया था। उसे इस घटना का ज्ञान हुआ तो वह ब्राह्मण का रूप धारण करके अप्सरा के साथ विहार करने लगा। ब्राह्मणवेशी गंधर्व के संसर्ग

से उसने एक तेजस्वी पुत्र को जन्म दिया। वह बालक स्वारोचिष् (अपनी ही किरणों से सुशोभित) कहलाया। एक दिन वन में विचरण करते हुए उसे एक कन्या मिली, वह किसी दैत्य के भय से भाग रही थी। उस कन्या का नाम मनोरमा था। वह इंदीवराक्ष विद्याधर की कन्या थी। मनोरमा अपनी सखी विभावरी (मंदार विद्याधर की पुत्री) तथा कलावती (पारमुनि की पुत्री) के साथ वन में गयी थी। वहां एक कृपकाय तपस्वी ब्राह्मण का परिहास करने के कारण उसकी एक सखी के शरीर में कोढ़ और दूसरी का शरीर क्षयग्रस्त हो गया तथा मनोरमा के पीछे वह दैत्य पड़ गया। मनोरमा ने अपने पिता से अस्त्र-शस्त्रों की विद्या सीखी थी, वह उसने स्वारोचिष् को प्रदान की। तब तक दैत्य भी वहां पहुंच गया। स्वारोचिष् ने उसकी ओर आग्नेय दृष्टि से देखा भर था कि वह दिव्य रूप धारण करके इंदीवराक्ष विद्याधर के रूप में प्रकट हुआ। उसने बताया कि उसका दैत्य रूप शापजनित था। पूर्वकाल में वह ब्रह्ममित्र मुनि से आयुर्वेद पढ़ना चाहता था, किंतु उन्होंने नहीं पढ़ाया। वे जब अन्य विद्यार्थियों को पढ़ाया करते थे तब इंदीवराक्ष भी छुपकर ज्ञान का अर्जन करता था। जब उसने समस्त आयुर्वेद का ज्ञान प्राप्त कर लिया और ब्रह्ममित्र को पता चला तो उन्होंने उसे राक्षस होकर अपनी ही पुत्री को खाने का प्रयास करने का शाप दिया। फलस्वरूप वह अपनी स्मरणशक्ति खो बैठा था। ब्रह्ममित्र ने कहा था कि वह कालांतर में अपना पूर्व रूप प्राप्त करेगा, अतः स्वारोचिष् की कृपा से उसने अपना पूर्व रूप प्राप्त किया। इंदीवराक्ष ने अपनी कन्या मनोरमा का विवाह स्वारोचिष् से कर दिया तथा अपनी आयुर्वेद विद्या भी उसे प्रदान कर दी। स्वारोचिष् ने मनोरमा की दोनों सखियों को रोगमुक्त कर दिया। उन दोनों ने स्वारोचिष् से ही विवाह किया। कलावती पारमुनि तथा पुंजिकस्थला नामक अप्सरा की कन्या थी। उसकी मां उसे धरती पर सुलाकर चली गयी थी। उसका लालन-पालन एक गंधर्व ने किया था। अलि नामक राक्षस ने उस गंधर्व को मार डाला, क्योंकि उसने अलि के साथ कलावती का विवाह नहीं किया। शंकर तथा सती ने प्रकट होकर कलावती से कहा था कि उसका पति स्वारोचिष् होगा तथा पुत्र मनु होगा स्वारोचिष् के तीन पुत्र हुए। मनोरमा से विजय, विभावरी से मेरुनंद तथा कलावती से प्रभाव का जन्म हुआ। एक बार एक हरिणी ने स्वारोचिष् के सम्मुख प्रेम प्रकट किया तथा उसे आलिंगन करने के लिए कहा। वैसा करने पर हरिणी एक सुंदरी में परिणत हो गयी। वह वहां की वनदेवी थी। उसने तत्काल एक पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम द्युतिमान् रखा गया। वह स्वारोचिष् नाम से विख्यात हुआ। तदनंतर स्वारोचिष् ने अपनी चारों पत्नियों के साथ तपस्या करके पुण्य लोकों को प्राप्त किया।

मा० पु०, ५८-६३।-

स्वायंभुव मनु (१) ब्रह्मा ने नौ मानस पुत्रों को जन्म दिया। तदनंतर क्रोधात्मक रुद्र को जन्म दिया, फिर संकल्प और धर्म को जन्म दिया। वे सभी वीतराग थे। उन्हें सृष्टिनिरपेक्ष देखकर ब्रह्मा अत्यंत क्रुद्ध हुए। उनके उसी क्रोध से एक भयंकर पुरुष का जन्म हुआ जिसका आधा शरीर नारी का तथा आधा पुरुष का था। उसको यह आज्ञा देकर कि वह अपनी देह को दो भागों में विभक्त करे, ब्रह्मा अतर्धान हो गये। उस पुरुष को ब्रह्मा ने स्वायंभुव मनु की संज्ञा दी। वे प्रथम मनु थे। उनका जन्म प्रजाजनों की रक्षा के लिए हुआ था। मनु ने शतरूपा से विवाह किया। उनके दो पुत्र हुए—प्रियव्रत और उत्तानपाद तथा आकूति और प्रसूति नामक दो कन्याएं हुई। आकूति का विवाह रुचि प्रजापति से तथा प्रसूति का विवाह दक्ष से किया (कुछ पुराणों में तीसरी कन्या के रूप में देवहूति का नाम भी है। शेष समस्त कथा महाभारत में दी गयी वैवस्वत मनु कथा की तरह है)।

मा० पु०, ४७।१-१६

स्वाहा देवी ब्राह्मणों और क्षत्रियों के यज्ञों की हवि देवताओं तक नही पहुंचती थी, अतः वे सब ब्रह्मा के पास गये। ब्रह्मा उनके साथ श्रीकृष्ण की शरण में पहुंचे। कृष्ण ने उन्हें प्रकृति की पूजा करने के लिए कहा। प्रकृति की कला ने प्रकट होकर उनसे वर मांगने को कहा। उन्होंने वरस्वरूप सदैव हवि प्राप्त करते रहने की इच्छा प्रकट की। उसने देवताओं को हवि मिलने के लिए आश्वस्त किया। वह स्वयं कृष्ण की आराधिका थी। प्रकृति की उस कला से कृष्ण ने कहा कि वह अग्नि की पत्नी स्वाहा होगी। उसी के माध्यम से देवता तृप्त हो जायेंगे। अग्नि ने वहां उपस्थित होकर उसका पाणिग्रहण किया।

दे० भा०, ९।४३

□

हंस राजा ब्रह्मदत्त की दो पत्नियां थीं। ब्रह्मदत्त ने शिव की आराधना से दोनों पत्नियों से दो पुत्र प्राप्त किये, जिनके नाम हंस और डिभक रखे गये। उन दोनों ने शिव को प्रसन्न करके यह वर प्राप्त किया कि युद्ध-क्षेत्र में उन्हें देवता और दानव भी न जीत पायें तथा दो-दो 'भूत' उनका संरक्षण करें। शिव ने भृंगि, रिटि, कुंडोदर तथा विरूपाक्ष नामक भूतेश्वरों से कहा कि युद्ध के अवसर पर वे चारों उन दोनों की रक्षा करें। ब्रह्मदत्त के मित्र ब्राह्मण मित्रसह ने विष्णु की कृपा से जनार्दन नामक पुत्र प्राप्त किया। तीनों परस्पर मित्र थे। एक बार वे लोग शिकार के लिए गये। वन में उन्हें वैष्णवसत्र में व्यस्त कश्यप मिले। हंस ने उन्हें भावी राजसूय यज्ञ के लिए आमंत्रित किया। उसकी बातों में मद की गंध आती थी। शिवप्रदत्त वरदान के कारण मदमस्त राजकुमारों ने दुर्वासा आदि की अवमानना कर दी। जनार्दन के बहुत समझाने और रुष्ट होने पर भी उन्होंने अपनी गलती को नहीं समझा। जनार्दन ने दुर्वासा से क्षमा-याचना की। दुर्वासा ने हंस और डिभ को शाप दिया कि वे दोनों कृष्ण द्वारा दलित होंगे तथा जनार्दन को वर दिया कि भगवान के साथ शीघ्र ही उसका समागम हो। दोनों राजकुमारों ने क्रोधवश संन्यासियों के कमंडलु इत्यादि तोड़ डाले तथा वहीं मांस पकाकर खाया। दुर्वासा सहित संन्यासी कृष्ण की शरण में गये। दुर्वासा का क्रोध प्रसिद्ध था। कृष्ण इत्यादि ने उनका आतिथ्य किया। उनके कष्ट को जानकर कृष्ण ने दोनों के वध की शपथ ली। उधर दोनों राजकुमारों ने जनार्दन ब्राह्मण को बाधित किया कि वह कृष्ण के पास उनका संदेश ले जाए—"कृष्ण ! तुम यज्ञ के लिए विपुल सामग्री तथा कर के रूप में अपना सारा धन दे दो, साथ ही बहुत-सा नमक इकट्ठा करके लाओ।" राजकुमारों का दूत बनना उसे प्रिय नहीं था, किंतु कृष्ण-दर्शन का अवसर नहीं चूकना चाहता था। उसने कृष्ण तक संदेश पहुंचाया किंतु उसका व्यक्तिगत भक्तिभाव भी अव्यक्त नहीं रह पाया। कृष्ण ने उसके साथ सात्यकि को अपना दूत बनाकर भेजा। हंस ने जनार्दन से उसकी यात्रा का वृत्तांत सुना। जनार्दन ने उसे राजसूय यज्ञ करने से रोकने का प्रयास किया। हंस ने कृष्ण और बलराम को पुष्कर में युद्ध करने के लिए पहुंचने का संदेश भेजा। युद्ध में कृष्ण ने भूतेश्वरों को पराजित कर दिया। हंस लड़ता हुआ यमुना में स्थित पातालपर्यंत गहरे ह्रद की ओर भागा। कृष्ण ने ह्रद में ही उसका वध कर दिया। कुछ लोगों की मान्यता है कि कृष्ण के चरणों के प्रहार से वह पाताल में धंस गया। डिभक ने ह्रद में कूदकर उसे ढूंढ़ने का प्रयास किया। उसके न मिलने पर उसने वहीं आत्महत्या कर ली।

हरि० वं० पु०,
भविष्यपर्व, १०४-१२६

हनुमान अप्सरा पुंजिकस्थली (अंजनी नाम से प्रसिद्ध) केसरी नामक वानर की पत्नी थी। वह अत्यंत सुंदरी थी तथा आभूषणों से सुसज्जित पर्वत शिखर पर खड़ी थी। उसके सौंदर्य पर मुग्ध वायुदेव ने उसका आलिंगन किया। व्रतधारिणी अंजनी बहुत घबरा गयी किंतु वायुदेव के वरदान से उसकी कोख से हनुमान ने जन्म लिया।

बा० रा०, किष्किंधा कांड, ६६।८-४०

जन्म लेने के बाद हनुमान ने आकाश में चमकते हुए सूर्य को फल समझा और उड़कर लेने के लिए आकाश-मार्ग में गये। मार्ग में उनकी टक्कर राहु से हो गयी। राहु घबराया हुआ इंद्र के पास पहुंचा और बोला—"हे इंद्र, तुमने मुझे अपनी क्षुधा के समाधान के लिए सूर्य और चंद्रमा दिए थे। आज अमावस्या है, अत: मैं सूर्य को ग्रसने गया था, किंतु वहां तो कोई और ही जा रहा है।" इंद्र क्रुद्ध होकर ऐरावत पर बैठकर चल पड़े। राहु उनसे भी पहले घटनास्थल पर गया। हनुमान ने उसे भी फल समझा तथा उसकी ओर झपटे। उसने इंद्र को आवाज दी। तभी हनुमान ने ऐरावत को देखा। उसे और भी बड़ा फल जानकर वे पकड़ने के लिए बढ़े। इंद्र ने क्रुद्ध होकर अपने वज्र से प्रहार किया, जिसने हनुमान की बायीं ठोड़ी टूट गयी और वे नीचे गिरे। यह देखकर पवनदेव हनुमान को उठाकर एक गुफा में चले गये। संसार-भर की वायु उन्होंने रोक ली। लोग वायु के अभाव से पीड़ित होकर मरने लगे। मनुष्य-रूपी प्रजा ब्रह्मा के पास गयी। ब्रह्मा विभिन्न देवताओं को लेकर पवनदेव के पास पहुंचे। उनके स्पर्शमात्र से हनुमान ठीक हो गये। साथ आए देवताओं से ब्रह्मा ने कहा—"यह बालक भविष्य में तुम्हारे लिए हितकर होगा। अत: इसे अनेक वरदानों से विभूषित करो।"

(१) इंद्र ने प्रसन्नता से स्वर्ण के कमल की माला देकर कहा—"मेरे वज्र से इसकी हनु टूटी है, अत: यह हनुमान कहलायेगा। मेरे वज्र से यह नहीं मरेगा।"
(२) सूर्य ने अपना सौंवा भाग हनुमान को दे दिया और भविष्य में सब शास्त्र पढ़ाने का उत्तरदायित्व लिया।
(३) यम ने उसे अपने दंड से अभय कर दिया कि वह यम के प्रकोप से नहीं मर पायेगा।
(४) वरुण ने दस लाख वर्ष तक वर्षादि में नहीं मरने का वर दिया।
(५) कुबेर ने अपने अस्त्र-शस्त्रों से निर्भय कर दिया।
(६) महादेव ने किसी भी अस्त्र से न मरने का वर दिया।
(७) ब्रह्मा ने हनुमान को दीर्घायु बताया और ब्रह्मास्त्र से न मरने का वर दिया। साथ ही यह वर भी प्रदान किया कि वह इच्छानुसार रूप धारण करने में समर्थ होगा।
(८) विश्वकर्मा ने अपने बनाये अस्त्र-शस्त्रों से उसे निर्भय कर दिया।

बा० रा०, उत्तर कांड, ३५।१४-३४।-
३६।१-२७।-

वर-प्राप्ति के उपरांत हनुमान उद्धत भाव से घूमने लगे। यज्ञ करते हुए मुनियों की सामग्री बिखेर देते या उन्हें तंग करते। पिता वायु और केसरी के रोकने पर भी वे रुकते नहीं थे। अंगिरा और भृगुवंश में उत्पन्न ऋषियों ने क्रुद्ध होकर उन्हें शाप दिया कि वे अपने बल को भूल जायें। जब कोई उन्हें फिर से याद दिलाए तब उनका बल बढ़े।

बा० रा०, उत्तर कांड, ३६।२८-३७

सीता-हरण के उपरांत राम रावण से युद्ध करने की तैयारी में लग गये। सुग्रीव की वानर सेना ने राम का पूरा साथ दिया। रामचंद्र ने हनुमान को अपना दूत बनाकर लंका नगरी में रावण के पास भेजा।

लंका के निकट पहुंचकर हनुमान ने बहुत छोटा रूप धारण किया तथा रात्रि के अंधकार में उसमें प्रवेश किया। लंका एक भयंकर नारी का रूप धारण करके हनुमान के पास पहुंची और बोली—"मैं इस नगरी की रक्षा करती हूं, तुम मुझे परास्त किये बिना इसमें प्रवेश नहीं पा सकते।" साथ ही लंका ने हनुमान के मुंह पर एक चपत लगायी। हनुमान ने उसे नारी जानकर एक हल्का-सा घूंसा मारा किंतु वह गिर पड़ी और परास्त हो गयी। तदनंतर अत्यंत मुदित भाव से बोली—"मुझे ब्रह्मा ने वरदान दिया था कि जब कोई वानर आकर तुम्हें परास्त कर देगा तब समझ लेना, राक्षसों का नाश हो जायेगा। रावण ने सीता-हरण के द्वारा राक्षसों के नाश को आमंत्रित किया है। तुम सीता को जाकर ढूंढ़ो।"

हनुमान ने अशोकवाटिका में सीता को राम का संदेश दिया तथा लंका नगरी में उत्पात खड़ा कर दिया।

बा० रा०, सुंदर कांड, ३।१६-५१

अनेक राक्षसों को परास्त करके हनुमान ने अपनी वीरता का प्रदर्शन किया। अंत में रावण ने मेघनाद को भेजा। मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र का प्रयोग करके हनुमान को बांध लिया तथा उसे रावण के पास ले गया। रावण ने पहले तो उसे मृत्युदंड देने का विचार किया किंतु विभीषण के

यह सुझाने पर कि किसी के दूत को मारना उचित नहीं है, रावण ने उसकी पूंछ जलवाकर उसे छोड़ दिया। जलती हुई पूंछ से हनुमान ने समस्त लंका जला डाली, फिर सीता को प्रणाम करके, समुद्र पार करके अंगद के पास पहुंचा।

राम-रावण के प्रत्यक्ष युद्ध में भी हनुमान का अद्वितीय योगदान था। युद्धक्षेत्र में शत्रुओं के नाश और मित्रों की परिचर्या में वह समान रूप से दत्तचित्त रहता था।

बा० रा०, सुंदर कांड, सर्ग ४८-५७।-

एक बार युद्ध करते समय मेघनाद ने युद्धस्थल में ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। उससे अधिकांश वानर सेना तथा राम-लक्ष्मण मूर्च्छित होकर गिर गये। मेघनाद प्रसन्नतापूर्वक लंका में लौट गया। विभीषण और हनुमान जांबवान को ढूंढ़ने लगे। घायल जांबवान ने विभीषण को देखते ही हनुमान का कुशल-क्षेम पूछा। विभीषण के यह पूछने पर कि आपने राम-लक्ष्मण, सेना आदि सबको छोड़कर हनुमान के विषय में ही क्यों पूछा तो जांबवान ने उत्तर दिया कि हनुमान ही एक मात्र ऐसे व्यक्ति हैं जो हिमालय से औषधि ला सकते हैं, जो सबके जीवन की रक्षा करने में समर्थ हैं। तदनंतर जांबवान ने औषधि-पर्वत का मार्ग तथा औषधियों की पहचान बतलायी। उसने मृत संजीवनी, विशल्यकरणी, सावर्ण्यकरणी तथा संधानकरणी नामक चार औषधियां लाने के लिए कहा। हनुमान ने अविलंब प्रस्थान किया। औषधि पर्वत पर पहुंचकर हनुमान ने देखा कि औषधियां विलुप्त हो गयीं, अतः दिखनी बंद हो गयीं। उसने क्रुद्ध होकर औषधि पर्वत का शिखर उठा लिया और उड़ते हुए वानर सेना तथा राम-लक्ष्मण के निकट पहुंचा। पर्वत से ऐसी सुंगध आ रही थी कि राम और लक्ष्मण उठ बैठे। युद्ध के कारण जितने भी वानर मृतप्राय पड़े थे, वे सभी उस गंध से उठ बैठे, किंतु राक्षसों को उनसे कोई लाभ नहीं हुआ क्योंकि मृतकों के सम्मानार्थ उन सभी राक्षसों को समुद्र में फेंक दिया गया था जो युद्ध में मारे गये थे। तदनंतर हनुमान उस पर्वत-शृंग को पुनः पर्वत पर रख आया।

बा० रा०, युद्ध कांड ७३।६८-७४, ७४।-

शिव ने मोहिनी रूप को देखा तो मोहित हो गये। धरती पर उनका वीर्यपात हुआ। उसे नाग मुनि (हिमालय) ने शिव का संकेत जानकर रख लिया। एक दिन अंजनी एक पर्वत-शृंग पर खड़ी थी। पवन देवता प्रभंजन उसके सौंदर्य पर मुग्ध हो गया। उसने शिव के वीर्य को उसके शरीर में स्थापित कर दिया। अंजनी को अपने पति से भिन्न स्पर्श का आभास मिला तो क्रोध-वश उसने पर-पुरुष को भस्म कर देने की बात कही। प्रभंजन ने प्रकट होकर कहा कि उसने कोई अन्यथा काम नहीं किया है। केवल शिव के अंश को उसके गर्भ में स्थापित किया है। उसका पातिव्रत धर्म इससे नष्ट नहीं होगा। शिव की इच्छा से उसका अवतार उत्पन्न होगा। फलस्वरूप अंजनी से हनुमान का जन्म हुआ। शिव तथा उनके समस्त गण हनुमान तथा वानरों के रूप में अवतरित हुए। उन्होंने रामचद्र की सहायता की। रावण शिव-भक्त थे किंतु राम ने शिव की आज्ञा ग्रहण करके ही रावण का नाश किया। शिव की भक्ति से मदमस्त होकर रावण ने एक बार कैलास पर्वत को उखाड़ लिया था, फलतः रुष्ट होकर शिव ने शाप दिया था—"कोई मनुष्य तुम्हारा नाश करेगा।" इसी कारण रावण कुमार्गगामी हो गया था।

अंजनी ने हनुमान नामक पुत्र वानर-रूप में देखा तो उसे शिव के रूप से भिन्न जानकर वह पवन से रुष्ट हो गयी। उसने हनुमान को शिखर से नीचे फेंक दिया। उसके गिरने से पर्वत चूर-चूर हो गया। धरती कांपी, सब व्याकुल हो गये। हनुमान ने पृथ्वी पर गिरकर आकाश में सूर्य उगता देख उसे निगलना चाहा। राहु भाग गया। हनुमान इंद्र की ओर भी झपटा। इंद्र ने उस पर प्रहार किया। शिव ने आकाशवाणी में बताया कि वह उनका पुत्र है, उसे समस्त देवताओं के वर प्राप्त हैं। पवन ने अंजनी को सब कह सुनाया और बालक थमा दिया। हनुमान ने सूर्य से विद्या सीखी और गुरु-दक्षिणास्वरूप यह वचन दिया कि वह सूर्य-पुत्र सुग्रीव का साथ देगा।

शि० पु०, ७।३३-४३

अंजन पर्वत पर केसरी रहता था। उसकी दो पथभ्रष्टा पत्नियां थीं—अंजना तथा अद्रिका। इंद्र के शाप से दोनों मुंह विकृत होकर क्रमशः वानर और बिल्ली जैसी हो गयी थीं। दोनों ने सेवा से अगस्त्य मुनि को प्रसन्न करके एक-एक वीर पुत्र प्राप्त करने का वर पाया। फलतः अंजना ने वायु से हनुमान तथा अद्रिका ने निऋति से अद्रिना पिशाचराज नामक पुत्र प्राप्त किये। दोनों को पुनः सुंदर बनाने का उपाय जानकर वे अपनी-अपनी

विमाता को गौतमी में स्नान करवा लाये।

ब्र० पु० ८४

वरुण से रावण के युद्ध में रावण की ओर से हनुमान ने युद्ध किया तथा उसके समस्त पुत्रों को बंदी बना लिया। वरुण ने अपनी पुत्री सत्यवती का तथा रावण ने अपनी दुहिता अनंगकुसुमा का विवाह हनुमान से कर दिया। सीता-हरण के संदर्भ में खरदूषण-वध का समाचार लेकर राक्षस-दूत हनुमान की सभा में पहुंचा। अंतःपुर में शोक छा गया—अनंगकुसुमा मूर्च्छित हो गयी। तभी सुग्रीव के दूत ने वहां पहुंचकर कृत्रिम सुग्रीव (साहसगति) के वध का समाचार दिया तथा कहा कि सुग्रीव ने हनुमान को बुलाया है। हनुमान ने राम के पास पहुंचकर कृतज्ञता-ज्ञापन किया तथा कृतज्ञतावश राम का साथ देने का निश्चय किया। वह राक्षस समुदाय को शांत करके सीता को राम से मिलाने के लिए चल पड़ा। मार्ग में महेंद्र आदि को राम की सहायतार्थ पहुंचने के लिए कहता गया।

ससैन्य हनुमान ने लंका में पहुंचकर विभीषण को प्रेरित किया कि वह रावण को पर-नारी संग से बचने के लिए कहे। विभीषण पहले भी प्रयत्न कर चुका था तथापि उसने फिर से रावण से बात करने की ठानी। हनुमान ने रामप्रदत्त मुद्रिका सीता को दी। राम की विरहजन्य व्यथा बताकर तथा सीता को न घबराने का संदेश देकर हनुमान ने सीता का दिया उत्तरीय तथा चूड़ामणि संभाल लिए। हनुमान ने सीता को राम का कुशल-क्षेम सुनाकर भोजन करने के लिए तैयार किया। हनुमान की कुल-कन्याओं ने भोजन प्रस्तुत किया। तदनंतर हनुमान ने सीता से कहा—"आप मेरे कंधे पर चढ़ जाइये, मैं आपको रात तक पहुंचा देता हूं।" सीता ने पर-पुरुष का स्पर्श करना उचित न समझकर ऐसा नहीं किया और राम तक यह संदेश पहुंचाने के लिए कहा कि वे अपने पूर्व वीर कृत्यों का स्मरण कर सीता को छुड़ा ले जायें। रावण को हनुमान के नंदन वन में पहुंचकर सीता से बात करने का समाचार मिला तो उसने उसे पकड़ लाने के लिए सेवकों को भेजा। हनुमान ने नंदन वन के वृक्ष तोड़-ताड़कर उन्हें मारा-पीटा। लंका को तहस-नहस करके वह रावण के पास पहुंचा। रावण के कहने से उसे जंजीरों से बांध दिया गया। हनुमान उन बंधनों को तोड़कर किष्किंधापुरी की ओर चल दिया। राम-लक्ष्मण को सीता का संदेश देकर पवन-पुत्र ने अपने सहयोगियों को एकत्र किया तथा राम ने भामंडल को संदेश भेजा।

पउ० च०, १६।-, ४६-५०।-
५२-५५।-

हयग्रीव हयग्रीव अत्यंत त्यागी, सत्यप्रिय, प्रजापालक, लोकप्रिय राजा थे। वे प्रजाजनों की रक्षा करने के लिए युद्ध कर रहे थे। युद्ध ही मानो उनका यज्ञ था। वे वीरता से शत्रुओं का दमन कर रहे थे। तभी डाकुओं ने उनके अस्त्र-शस्त्र छिन्न-भिन्न करके उन्हें मार डाला। मृत्यु के बाद उन्हें स्वर्गलोक की प्राप्ति हुई, क्योंकि वे क्षत्रिय धर्म का पालन करते हुए युद्धभूमि में मारे गये थे।

महाभारत शांतिपर्व के ३४७वें अध्याय में हयग्रीव को विष्णु का अवतार माना गया है। उनके साथ यह कथा जुड़ी हुई है: नारायण की प्रेरणा से पानी की दो बूंदें पड़ीं जो क्रमशः रज तथा तम स्वरूप थीं—उनसे मधु और कैटभ नामक दो दैत्य प्रकट हुए। दोनों वेदों को चुराकर रसातल में चले गये। ब्रह्मा ने श्रीहरि की स्तुति की कि वे किसी प्रकार उनके वेदों को पुनः प्राप्त करवा दें, अतः श्रीहरि ने हयग्रीव का रूप धारण किया। घोड़े के समान मुख तथा गर्दन से युक्त उनके शरीर का निर्माण जगत् के दिव्य तत्त्वों से हुआ था। वे रसातल में जा पहुंचे। वहां उन्होंने सामवेद का गान प्रारंभ किया। हयग्रीव वेदों को रसातल में नीचे की ओर फेंककर स्वर का अनुसरण करते हुए श्रीहरि के पास पहुंचे। हयग्रीव ने वेदों को उठा लिया। मधु-कैटभ को कोई नहीं मिला, तो वे पुनः वहां गये जहां वेद डालकर गये थे—किंतु वहां वेद भी नहीं थे। जल के ऊपरी तल पर फिर से आने पर उन्होंने शेष-शैया पर सोते श्रीहरि को देखा। हयग्रीव का रूप छोड़, वे पुनः नारायण-रूप में थे। उन्होंने ही वेद लिये होंगे—ऐसा सोचकर मधु-कैटभ ने उन्हें युद्ध के लिए ललकारा, अतः नारायण के हाथों दोनों मारे गये।

म० भा०, शांतिपर्व, २४।२४-३४
३४७।-

एक बार विष्णु दस सहस्र वर्षों तक भयानक युद्ध करने के उपरांत खड़े-खड़े ही धनुष की कोटि पर भार देकर सो गये। देवतागण यज्ञ करना चाहते थे। विष्णु को सोया हुआ पाकर उन्होंने सोचा कि जो भी जायेगा, उससे विष्णु रुष्ट हो जायेंगे, अतः बृहस्पति के सुझाव पर उन्होंने

दीमक से कहा कि वह विष्णु के धनुष की प्रत्यंचा को काट दे तो वे लोग यज्ञ में उसे भी भाग देंगे। दीमक ने द्रुत गति से प्रत्यंचा को काट डाला। फलतः धनुष की कोटि ने मुक्त होकर सोते हुए विष्णु के सिर को काट-कर समुद्र तक पहुंचा दिया। देवतागण अपनी मूर्खता पर क्षुब्ध हो उठे। वेदों सहित उन सबने महेश्वरी की स्तुति की। प्रसन्न होकर महेश्वरी ने विष्णु का सिर कटने के दो कारण बताए, एक तो यह कि उन्होंने परिहास करके लक्ष्मी को रुष्ट कर दिया था। लक्ष्मी के मुह से अनायास ही निकल गया था कि उनका सिर पतित हो जाये। दूसरा कारण यह कि महेश्वरी से हयग्रीव नामक राक्षस को वरदान प्राप्त था कि उसे कोई दूसरा हयग्रीव ही मार पायेगा, अतः त्वष्टा विष्णु के कटे सिर के स्थान पर हय का सिर लगा दें। देवी के कथनानुसार त्वष्टा ने तुरंत हय का सिर काटकर विष्णु के धड़ पर लगा दिया। हयग्रीव-रूप में विष्णु ने हयग्रीव नामक राक्षस का वध किया।

दे० भा०, प्रथम स्कंध, अ० ५

हरिकेश पूर्णभद्र ने शिव की कृपा से हरिकेश नामक पुत्र प्राप्त किया। वह बाल्यावस्था से ही शिवभक्ति में लीन रहा। माता-पिता के यह समझाने पर कि उसे गृहस्थ धर्म का पालन करना चाहिए, वह घर से भाग कर काशी पहुंच गया। उसने सपरिवार मुक्ति प्राप्त की।

शि० पु०, पूर्वार्द्ध ६।३ ४-

हरिश्चंद्र इक्ष्वाकुवंश में त्रिशंकु नामक राजा तथा उनकी पत्नी सत्यवती के पुत्र का नाम हरिश्चंद्र था। हरिश्चंद्र ने समस्त पृथ्वी को जीतकर राजसूय यज्ञ किया।

म० भा०, सभापर्व, १२।१०-१६

राजा हरिश्चंद्र धार्मिक, सत्यप्रिय तथा न्यायी थे। एक बार उन्होंने स्त्रियों का आर्त्तनाद सुना। वे रक्षा के लिए पुकार रही थीं। हरिश्चंद्र ने उनकी रक्षा के निमित्त पग पढ़ाया तो उसके हृदय में विघ्नराज (संपूर्ण कार्यों में बाधा स्वरूप) ने प्रवेश किया, क्योंकि वह आर्त्त-नाद उन विधाओं का ही था, जिनका विश्वामित्र अध्य-यन करते थे। मौन और आत्मसंयम से जिन विधाओं को वे पहले सिद्ध नहीं कर पाये थे, वह नारी-रूप में उनके भय से पीड़ित होकर रो रही थीं। रुद्रकुमार विघ्न-राज ने उनकी सहायता के निमित्त ही राजा के हृदय में प्रवेश किया था। हरिश्चंद्र ने अभिमानपूर्वक कहा—"वह कौन पापात्मा है जो हमारे राज्य में किसी को सता रहा है?" विश्वामित्र ने उसके अभिमान से रुष्ट होकर उससे पूछा—"दान किसे देना चाहिए? किसकी रक्षा करनी चाहिए और किससे युद्ध करना चाहिए?" राजा ने तीनों प्रश्नों के उत्तर क्रमशः ये दिए—(१) ब्राह्मण अथवा आजीविकाविहीन को, (२) भयभीत प्राणी को, तथा (३) शत्रु से। विश्वामित्र ने ब्राह्मण होने के नाते राजा से उसका समस्त राज्य दानस्वरूप ले लिया। तदनंतर उसे उस राज्य की सीमाएं छोड़कर चले जाने को कहा और यह भी कहा कि एक माह के उपरांत हरिश्चंद्र उनके राजसूय यज्ञ के लिए दीक्षास्वरूप धन भी प्रदान करे। राजा अपनी पत्नी शैव्या तथा पुत्र रोहिताश्व को साथ ले पैदल ही काशी की ओर चल दिया। शैव्या धीरे-धीरे चल रही थी, अतः क्रुद्ध मुनि ने उसपर डंडे से प्रहार किया। कालांतर में वे लोग काशी पहुंचे। वहां विश्वामित्र दक्षिणा लेने के निमित्त पहले से ही विद्यमान थे। मास समाप्त होने में अभी आधा दिन शेष था। कोई और मार्ग न देख राजा ने शैव्या और रोहिताश्व को एक ब्राह्मण के हाथों बेच दिया। दक्षिणा के लिए धन पर्याप्त न होने के कारण स्वयं चांडाल के हाथों बिक गया। वास्तव में धर्म ने ही चांडाल का रूप धारण कर रखा था। हरिश्चंद्र का कार्य शवों के वस्त्र आदि एकत्र करना था। उसे श्मशानभूमि में ही रहना भी पड़ता था। कुछ समय उपरांत किसी सर्प ने रोहिताश्व का दंशन कर लिया। उसका शव लेकर शैव्या श्मशान पहुंची। हरिश्चंद्र और शैव्या ने परस्पर पहचाना तो अपने-अपने कष्ट की गाथा कह सुनायी। तदनंतर चिता तैयार करके बालक रोहिताश्व के साथ ही हरिश्चंद्र और शैव्या ने आत्मदाह का निश्चय किया। धर्म ने प्रकट होकर उन्हें प्राण त्यागने से रोका। इंद्र ने प्रकट होकर प्रसन्नतापूर्वक उन्हें स्वर्ग-लोक चलने के लिए कहा किंतु चांडाल की आज्ञा के बिना हरिश्चंद्र कहीं भी जाने के लिए तैयार नहीं था। रोहिताश्व चिता से जीता-जागता उठ खड़ा हुआ। धर्म ने बताया कि उसी ने चांडाल का रूप धारण किया था। तदुपरांत विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर रोहिताश्व को अयोध्या का राजा घोषित कर उसका राज्य-तिलक किया। राजा हरिश्चंद्र ने शैव्या तथा अपने राज्य के अन्य अनेक व्यक्तियों सहित स्वर्ग के लिए प्रस्थान किया। हरिश्चंद्र के पुरोहित वसिष्ठ थे।

वे बारह वर्ष तक जल में रहने के बाद बाहर निकले तो हरिश्चंद्र के ऐहिक कष्ट तथा स्वर्ग गमन के विषय में सुनकर बहुत क्रुद्ध हुए। उन्होंने विश्वामित्र को तिर्यक-योनि प्राप्त करने का शाप दिया। विश्वामित्र ने भी वसिष्ठ को वही शाप दिया, अत: वसिष्ठ और विश्वामित्र ने क्रमश: चील और बगुले का रूप प्राप्त किया। वे दोनों परस्पर लड़ने लगे, जिससे समस्त पृथ्वी तहस-नहस होने लगी। ब्रह्मा ने दोनों का पक्षी-रूप वापस ले लिया और उन्हें शांत कर फिर से मित्रता के सूत्र से आबद्ध किया।

म० पु०, ७-६।-

एक बार इंद्रलोक में विश्वामित्र वसिष्ठ से मिले। विश्वामित्र ने उनसे पूछा कि उन्हें इंद्रलोक तक पहुंचने का पुण्य कैसे प्राप्त हुआ। वसिष्ठ ने कहा—"हरिश्चंद्र अत्यंत सत्यवादी हैं—उन्हीं के पुण्यों से इंद्रलोक की प्राप्ति हुई है।" विश्वामित्र ने शुन: शेप की घटना को स्मरण करके हरिश्चंद्र को मिथ्यावादी कहा। घर लौटकर उन्होंने अपना कथन सिद्ध करने का निश्चय किया। एक दिन राजा मृगया के लिए वन गये, वहां एक सुंदरी रो रही थी। उससे ज्ञात हुआ कि वह सिद्धिरुपिणी थी। उसे प्राप्त करने के लिए विश्वामित्र घोर तप कर रहे थे, अत: वह क्लेश पा रही थी। राजा ने उसका दु:ख हरने के लिए विश्वामित्र को तपस्या छोड़ने के लिए कहा। विश्वामित्र तपस्या भंग होने से क्रुद्ध हो उठे। उन्होंने एक भयंकर दानव को शूकर का रूप देकर राजा के राज्य में भेजा। प्रजा के त्रास की निवृत्ति के लिए राजा धनुष-बाण लेकर उसका पीछा करते हुए जंगल में गंगातटीय एक तीर्थ स्थान पर पहुंच गये। नगर का मार्ग पूछते हुए राजा को विश्वामित्र ने तीर्थस्नान करने के लिए प्रेरित किया। तदनंतर दक्षिणास्वरूप अपने मायावी पुत्र के विवाह में राजा ने समस्त राज्य देने को कहा। राजा दान देने के लिए प्रतिज्ञाबद्ध थे। अत: उन्होंने राज्य प्रदान किया। विश्वामित्र ने ब्राह्मण के रूप में ही फिर ढाई भार स्वर्ण की दक्षिणा मांगी। राजा ने दक्षिणा देने का वायदा तो कर लिया किंतु उसके पास स्वर्ण अथवा मुद्रा नहीं थी। अत: उसने पत्नी के कहने पर उसे बेचने का निश्चय किया। विश्वामित्र ने एक बूढ़े ब्राह्मण का रूप धरकर उसकी पत्नी तथा बालक (रोहिताश्व) को खरीद लिया तथा एक चांडाल के हाथों राजा को बेचकर पर्याप्त मुद्रा प्राप्त कर ली। चांडाल का नाम वीरबाहु था। उसने राजा को श्मशान में मृत व्यक्तियों के वस्त्र लेने के लिए नियुक्त कर दिया। एक दिन रोहिताश्व बच्चों के साथ खेल रहा था। सांप के डंस लेने से उसका निधन हो गया। मां अत्यंत दीनहीन स्थिति में विलाप करने लगी। नगर के लोग एकत्र हो गये। उनके परिचय पूछने पर उसने कोई उत्तर नहीं दिया, अत: सबने उसे मायावी राक्षसी जानकर चांडाल से कहा कि उसका वध कर दे। चांडाल ने पाशबद्ध करके हरिश्चंद्र को वध करने के निमित्त बुलाया। शैव्या ने अपने पुत्र का दाह-संस्कार करने तक उसे रुकने के लिए कहा। रोहिताश्व को देखने के उपरांत राजा ने रानी को तथा शैव्या ने चांडालवेशी राजा को पहचाना। दोनों ने विलाप करते हुए बालक का शव चिता पर रखा। तभी इंद्र, विष्णु तथा विश्वामित्र सहित समस्त देवताओं ने वहां प्रकट होकर उन दोनों की सहनशीलता की सराहना की। धर्म ने हरिश्चंद्र को स्वर्ग प्रदान किया। राजा चांडाल से आज्ञा लेना नहीं भूले। धर्म ने कहा—"वास्तव में तुम्हारी परीक्षा लेने के लिए मैंने ही ब्राह्मण, चांडाल तथा सर्प का रूप धारण किया था।" उनके आशीर्वाद से रोहिताश्व भी पुनर्जीवित हो उठा। राजा के कहने से उसकी समस्त प्रजा को भी स्वर्ग की प्राप्ति हुई।

दे० भा०, ७।१७-२७

हरिषेण सिंहध्वज नाम के राजा की दो रानियां थीं। पटरानी प्रभा के हरिषेण नामक पुत्र हुआ। लक्ष्मी नामक रानी जिनधर्म की विरोधी थी। लक्ष्मी चाहती थी कि साप्ताहिक महोत्सव में आगे ब्रह्मरथ तथा पीछे जिनरथ घूमें। प्रभा को इस बात से बहुत दु:ख हुआ। दोनों के झगड़े से विरक्त होकर हरिषेण वन में चला गया। उन्हीं दिनों राजा जनमेजय को काल राजा ने घेर लिया। दोनों का युद्ध चल रहा था। जनमेजय की पत्नी और कन्या एक गुप्त सुरंग से जंगल में भाग गयी। हरिषेण तापसों के आश्रम में रह रहा था। उस राज्य-कन्या के प्रति उसका आकर्षण देखकर तापसों ने उसे आश्रम से निकाल दिया। उसने निश्चय किया कि यदि जनमेजय की कन्या मदनावली से उसका विवाह हो गया तो वह पर्वतों, नगरों आदि में अनेक जिन मंदिर बनवाएगा। चिंतामग्न वह इधर-उधर भटकता हुआ

एक नगर में पहुंचा जहां एक बिगड़े हुए हाथी से सब लोग बहुत परेशान थे। हरिषेण ने उस हाथी पर चढ़कर उस नगर में प्रवेश किया। उस नगर के राजा ने सौ कन्याओं के साथ उसका विवाह कर दिया, तथापि वह मदनावली को नहीं भूला। एक रात वेदवती नामक विद्याधर युवती ने उसका अपहरण किया तथा सूर्योदय नगर की राजकुमारी जयचंद्रा से उसका विवाह करवा दिया। जयचंद्रा ने प्रण किया था कि वह हरिषेण से विवाह करेगी अथवा आत्मदाह कर लेगी। तदनंतर जनमेजय ने भी प्रसन्न होकर अपनी कन्या का विवाह उसके साथ कर दिया।

पउ० च०, ८।१४३-२१०।-

(ख) अवंती देशस्थ उज्जयिनी नगरी के राजा वज्रसेन तथा रानी सुशीला के पुत्र का नाम हरिषेण रखा गया। उस बालक के रूप में देवानंद नामक जीव ने जन्म लिया। जीवन की अंतिम वेला में दीक्षा लेकर वह तपस्यारत हुआ। फलतः जीवनोपरांत वह महाशुक्र स्वर्ग में प्रीतिकर देव के रूप में प्रतिष्ठित हुआ।

व० च०, सर्ग १३।-

हर्षण सूर्य की पुत्री विष्टि का विवाह त्वष्टा-पुत्र विश्वरूप के साथ हुआ। दोनों समान कुरूप थे। उनके सात पुत्र हुए जिनमें हर्षण सबसे छोटा था। एक बार पति-पत्नी में मनमुटाव होने पर हर्षण ने अपने मामा (यम) से माता-पिता और भाइयों के उद्धार का मार्ग पूछा। उनके कथनानुसार स्नान-पूजा-पाठ से उसने माता-पिता और भाइयों की विषमता को दूर किया।

ब्र० पु०, १६५।-

हिंडिब हिंडिब नामक असुर ने अनेक वृष्णी और यादववंशी सैनिकों को युद्ध-क्षेत्र में खा लिया। उसका वसुदेव और उग्रसेन से भी युद्ध हुआ। अंत में वह बलराम के द्वारा मारा गया।

हरि० वं० पु०, भविष्यपर्व, १२६।

हिंडिबा पांडवों के साथ कुंती ने एक गहन वन में प्रवेश किया। थकान के कारण भीमसेन के अतिरिक्त शेष सभी सो गये। पास ही एक वृक्ष के नीचे हिंडिब नामक राक्षस रहता था। वह मानव-भक्षी था। उसने अपनी बहन हिंडिबा को उन सबको मार डालने के लिए भेजा। हिंडिबा ने वहां पहुंचकर भीमसेन को जागा हुआ पाया। वह उसपर मुग्ध हो गयी तथा उसने भीम को अपने भाई के मंतव्य से अवगत करा दिया। भीमसेन ने राक्षस हिंडिब को मार डाला, उसी की बांहों से उसे बांधकर उसकी कमर तोड़ डाली तथा कुंती और युधिष्ठिर की आज्ञा के कारण हिंडिबा से गांधर्व विवाह कर लिया। कुंती ने हिंडिबा के सम्मुख स्पष्ट कर दिया था कि वह भीम के साथ तभी तक विहार करेगी तब तक पुत्र की प्राप्ति नहीं होगी। हिंडिबा आकाश में उड़ सकती थी, सभी को उठाकर तेजी से चलने में समर्थ थी तथा भूत और भविष्य देख सकती थी। वह उन सबको शालिहोत्र मुनि के आश्रम में ले गयी। उसने बताया कि भविष्य में वहां व्यास आयेंगे और उनसे मिलने के बाद वे सब कष्टों से मुक्त हो जायेंगे। राक्षसी गर्भ धारण करते ही शिशु को जन्म देने में समर्थ थी। कालांतर में भीम से हिंडिबा को गर्भ हुआ तथा बालक का जन्म हुआ जिसका नाम घटोत्कच रखा गया क्योंकि उसके सिर पर बहुत कम बाल थे। वह अत्यंत शक्तिसंपन्न था। पांडवों तथा कुंती को प्रणाम करके यह कहकर कि कभी भी याद करने पर वे उपस्थित हो जायेंगे, उन दोनों ने विदा ली। इंद्र ने कर्ण की शक्ति का आघात सहने के लिए घटोत्कच की सृष्टि की थी।

म० भा, आदिपर्व, अ० १५१-१५४

हिमवान हिमवान की दो सुंदर कन्याएं थीं। उनकी माता सुमेरु की पुत्री मैना थी। बड़ी कन्या का नाम गंगा और छोटी का नाम उमा था। देवताओं ने देवकार्य साधन के लिए बड़ी कन्या गंगा को मांगा। हिमालय ने दे दिया। दूसरी कन्या उमा ने एक उग्र व्रत ले लिया और तप करने लगी। उसका विवाह शिवजी से हुआ।

बा० रा०, बाल कांड, ३५।११-२२, ३६।१

हिमालय-भस्म एक बार पार्वती ने हास-परिहास में दोनों हाथों से शिव के नेत्र मूंद लिए। संपूर्ण जगत् अंधकारमय हो गया। संसार सूर्यविहीन-सा जान पड़ने लगा। अतः शिव के ललाट पर प्रज्वलित अग्नि के समान तृतीय नेत्र प्रकट हुआ। उमा चकित-सी उसे देखती रह गयी। सामने विद्यमान हिमालय उस नेत्र की ज्वाला से भस्म हो गया। उमा पिता की वैसी दशा देख कातर हो उठी। शिव ने प्रसन्नतापूर्वक पर्वत की ओर देखा और वह पूर्ववत् हरा-भरा पक्षियों सहित कलरवयुक्त हो गया। उमा ने इस लीला का कारण पूछा तो शिव ने कहा—"तुमने भोलेपन से मेरे नेत्र मूंदकर संसार को

प्रकाशविहीन कर दिया। तीसरे नेत्र के तेज से पर्वत भस्म हो गया। तुम्हारा प्रिय करने के लिए मैंने पुनः पर्वत को हरा-भरा कर दिया।"

म० भा०, दानधर्मपर्व, १४१।-

हिरण्यकशिपु (प्रारंभिक कथा श्रीमद् भा० पु० के समान है।) पिता ने हरि में भक्ति देखकर प्रह्लाद को रसोइये से कहकर विष दिलवाया, सर्प से डंसवाया, पहाड़ से गिरवाया किंतु उसे तनिक भी क्षति नहीं पहुंची। प्रह्लाद की भक्ति से प्रसन्न होकर विष्णु ने उसे दर्शन देकर वर मांगने को कहा। प्रह्लाद ने वर मांगे कि उसके पिता हिरण्यकशिपु ने उसे समय-समय पर कष्ट पहुंचाकर जो पाप कमाया, उनसे उसे मुक्त कर दें तथा पिता के हृदय में पुत्र के प्रति प्रेम उत्पन्न हो जाय। विष्णु ने सहर्ष ही ये वर प्रदान कर दिये। घर लौटने पर पिता प्रह्लाद का सिर सूंघकर आशीर्वाद दिया, तदनंतर नृसिंह के रूप में प्रकट होकर विष्णु ने हिरण्यकशिपु का उद्धार कर दिया।

वि० पु०, १।१६-२०

हिरण्याक्ष की मृत्यु से हिरण्यकशिपु बहुत दुखी तथा क्रुद्ध हुआ। भाई के मारनेवाले विष्णु थे, अतः उसका विशेष कोप देवताओं पर था। उसने दैत्यों को आज्ञा दी कि पृथ्वी पर समस्त देवता, गाय, ब्राह्मण तथा वेद आदि को नष्ट कर दें। दैत्यों ने प्रजा का बड़ा उत्पीड़न किया। तदनंतर घोर तपस्या करके हिरण्यकशिपु ने सब दिशाओं, प्राणियों और लौकिक विधाओं से सुरक्षित रहने का वर प्राप्त किया। हिरण्यकशिपु अपनी सुरक्षा के मद से मस्त हो उठा। उसके चार बेटे हुए, जिनमें से प्रह्लाद भगवान का भक्त था। पिता के अनेक बार समझाने पर भी वह भगवान की भक्ति नहीं छोड़ रहा था। इसके मूल में एक कारण था। जिस समय हिरण्यकशिपु तपस्या कर रहा था, इंद्र ने उसकी गर्भवती पत्नी कयाधू को बंदी बना लिया। नारद ने इंद्र को यह समझाकर कि गर्भस्थ शिशु भगवद्भक्त है, उसे छुड़ाकर तब तक अपने पास रखा, जब तक हिरण्यकशिपु तपस्या करता रहा। इतने दिन निरंतर नारद भगवद्भक्ति का उपदेश देते रहे, जिसे कयाधू ने कम और गर्भस्थ शिशु (प्रह्लाद) ने अधिक ग्रहण किया। फलस्वरूप वह संस्कार से ही अनन्य भक्त हुआ। हिरण्यकशिपु ने जल, अग्नि, पर्वत आदि सभी प्राकृतिक तत्त्वों से कष्ट देकर उसे मारने का प्रयास किया, किंतु उसपर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसके संसर्ग से शुक्राचार्य के दो बेटों शंड तथा अमर्क के अतिरिक्त उसके समस्त सहपाठी भक्ति में लग गये। एक दिन राजा ने रुष्ट होकर उससे पूछा, "तुम्हें सब जगह भगवान दिखायी देता है तो इस खंभे में भी भगवान दीख रहा है क्या?" प्रह्लाद के स्वीकार करने पर हिरण्यकशिपु ने राज्य-सिंहासन से कूद कर खंबे पर घूंसा मारा। तत्काल वहां से नृसिंह प्रकट हुआ। उनका शरीर सिंह और मनुष्य के शरीर से मिलती-जुलती आकृति वाला था। वह राजा को पकड़कर दरबार के दरवाजे पर ले गया। अपनी जंघा पर उसे डालकर नृसिंह ने अपने नाखूनों से उसका सारा बदन फाड़ डाला। इस प्रकार नृसिंहावतार के हाथों मरकर उसने उस जन्म से मुक्ति पायी। प्रह्लाद ने भगवान की स्तुति की। नृसिंहरूपी विष्णु ने प्रह्लाद को राज्य प्रदान किया तथा ब्रह्मा से प्रार्थना की कि भविष्य में किसी दैत्य को ऐसा वर प्रदान न करें कि वह देवताओं के लिए असह्य हो उठे।

श्रीमद् भा०, सप्तम स्कंध, अध्याय १-१०
ब्र० पु०, १४६।-

हिरण्यगर्भ भगवान नारायण सृष्टि की इच्छा से मन-ही-मन विचार करने लगे। उसी समय उनके मुंह से एक प्रभावशाली पुरुष, भगवान हिरण्यगर्भ प्रकट हुए। उन्होंने नारायण से पूछा—"मैं आपके लिए क्या कर सकता हूं?" भगवान ने कहा—"तुम अपने स्वरूप का विभाग करो।" भगवान के कथन पर विचार करते हुए उनके मुंह से सर्वप्रथम 'ओ३म' निकला। वह सर्वत्र व्याप्त हो गया। इसी प्रकार उत्तरोत्तर गायत्री मंत्र, वेद आदि प्रकट हुए। इसी कारण से हिरण्यगर्भ को यज्ञ का सर्वप्रथम भाग दिया जाता है।

हरि० वं० पु०, भविष्यपर्व।
३६।१-१४।

हिरण्यपुर हिरण्यपुर एक दिव्य विशाल नगर था। दैत्यकुल की कन्या पुलोमा तथा असुर वंश की कन्या कालका ने एक हजार दिव्य वर्षों तक तपस्या की थी। फलस्वरूप उन्होंने ब्रह्मा से आकाशचारी हिरण्यपुर नगर की प्राप्ति की थी। नाग, सुर और राक्षस कोई भी उस नगर का विध्वंस नहीं कर सकता था। अतः अर्जुन ने युद्ध में उन दैत्यों तथा असुरों का विध्वंस कर डाला।

म० भा०, वनपर्व, अध्याय १७३

हिरण्याक्ष हिरण्याक्ष अपनी शक्ति पर बहुत गर्व करता था। वह पहले तो स्वर्ग में घूमता रहा। उसके विशाल शरीर और गदा को देखकर कोई भी उससे युद्ध करने सामने नहीं आया। युद्ध की पिपासा से आतुर वह समुद्र में विचरण करने लगा। वरुण ने उसे विष्णु से युद्ध करने के लिए उन्मुख किया। उसने विष्णु को वराह के रूप में दाढ़ों की नोक पर टिकाकर पृथ्वी को समुद्र के ऊपर ले जाते देखा तो वह परिहास के स्वर में वराह के लिए 'जंगली' इत्यादि विशेषणों का प्रयोग करके उनसे बार-बार पृथ्वी को छोड़ देने के लिए कहने लगा। पृथ्वी के लिए वैर बांधकर यज्ञमूर्ति वराह तथा हिरण्याक्ष में गदा-युद्ध होने लगा। ब्रह्मा ने विष्णु से कहा कि हिरण्याक्ष ब्रह्मा से वर प्राप्त होने के कारण विशेष शक्तिशाली है। हिरण्याक्ष ने आसुरी मायाजाल का प्रसार किया। वराह ने उस माया को नष्ट कर अपने पैर से प्रहार किया। हिरण्याक्ष ने वराह के मुख का दर्शन करते-करते शरीर त्याग दिया।

श्रीमद् भा०, तृतीय स्कंध, अध्याय १७-१९
हरि० वं०, पु०, भविष्यपर्व, ३८, ३९।-

रावण युद्ध की इच्छा से महिष्मती नाम की नगरी के राजा के पास पहुंचा। उस हैहयवंशी राजा का नाम अर्जुन था। वह सहस्रबाहु था। मंत्रियों से मालूम पड़ा कि राजा नर्मदा में स्नान करने गया है। रावण ने भी विंध्याचल के निकट बहती नर्मदा में स्नान किया और एक स्वर्ण शिवलिंग की स्थापना करके उसकी पूजा करने लगा। तभी अचानक नर्मदा का पानी बढ़ा और पूजा के सब फूल उसमें बह गये। रावण ने क्रुद्ध हो मंत्रियों को कारण जानने के लिए भेजा। मंत्रियों ने बताया कि सहस्रबाहु राजा अर्जुन अपनी रानियों के साथ जलक्रीड़ा करता हुआ नदी के सामने हाथ फैलाकर खड़ा हो गया है जिससे पानी विपरीत दिशा में बहने लगा है तथा बाढ़-सी आ गयी है। रावण ने क्रुद्ध होकर स्नान करते हुए अर्जुन को ललकारा। दोनों की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। अर्जुन की गदा का प्रहार रावण की छाती पर हुआ। गदा तो टूट गयी, किंतु रावण बैठकर रोने लगा। अर्जुन ने उसे अपनी बांहों में बांध लिया और अपनी नगरी लौट गया। शेष राक्षस-सेना भय से भाग गयी। पुलस्त्य और ब्रह्मा ने सहस्रबाहु के पास जाकर रावण को छोड़ने का अनुरोध किया। अर्जुन ने रावण को छोड़ दिया।

बा० रा०, उत्तर कांड, सर्ग ३१, ३२, ३३

●●

परिशिष्ट

पौराणिक साहित्य में प्रयुक्त भौगोलिक नामों की तालिका

बौद्ध धर्म के पारिभाषिक शब्द और अर्थ

जैन धर्म के पारिभाषिक शब्द और अर्थ

४. अन्योन्य कथा संदर्भ सूची

५. विविध वंश-वृक्ष

परिशिष्ट-१

पौराणिक साहित्य में प्रयुक्त भौगोलिक नामों की तालिका

प्राचीन युग में प्रचलित नाम	*वर्तमान युग में प्रचलित नाम*
अगस्त्य आश्रम	इगतपुरी—नासिक के पास एक स्टेशन है।
अंग	भागलपुर।
अधिराज	दतिया,सहदेव ने देतवक्र को मारा था।
अपरांता	कोंकण और मालाबार प्रदेश।
अवंती	उज्जैन ।
अश्वतीर्थ	कान्यकुब्ज निकटवर्ती तीर्थ जहां ऋचीक ऋषि को वरुण से श्याम कर्ण वाले घोड़े प्राप्त हुए थे।
असिकी नदी	चिनाब नदी।
अहिच्छत्र	द्रुपद से आधे राज्य के रूप में द्रोण ने छीना था। इसकी राजधानी रूहेलखंड थी। वह बरेली के पास स्थित है।
इक्षुमती	संयुक्त प्रांत के उत्तर में प्रवाहित कालिंदी (जमुना)।
उज्जयंत	जूनागढ़ के पास गिरिनार पर्वत।
उज्जानक	सिंधु नदी के तट पर काश्मीर के पश्चिम में स्थित प्रदेश।
उत्कल	उड़ीसा।
उरगापुर	तंजौर जिले में स्थित बंदरगाह जो विजिगापट्टम कहलाती है। वह स्थान पांड्यप्रदेश की राजधानी था।
ऋक्षवान्	विंध्याचल का पूर्वीभाग।
ऋष्यमूक	तुंगभद्रा नदी के तट पर स्थित पर्वत।
ऋषभ	दक्षिण भारत के मदुरा नगर में अलगिरी नाम से प्रसिद्ध स्थान।
ऋषिका	रूस।
ऋषिकुल्या	कलिंग देश की एक नदी।
औदुंबरा	कच्छ प्रदेश।
कच्छा	गुजरात में अहमदाबाद और खंभात के मध्य स्थित।
कटदेश	वर्दमान जिले में स्थित कटवा।
कण्वाश्रम	बिजनौर में स्थित।
कन्यातीर्थ	कन्याकुमारी।
करीषक	बिहार स्थित शाहबाद जिले का पूर्वी भाग। यह कारुष भी कहलाता है।
किंपुरुष	हिमालय का उत्तरी भाग।
किष्किंधा	तुंगभद्रा नदी के उत्तर तट पर।
कुंडिन	बरार प्रांत में स्थित।
कुलिंदा	सहारनपुर।
कुशस्थली	काठियावाड़ स्थित द्वारका।
कृष्णवेणा	कृष्णा नदी
कृष्णवेणी	कृष्णा नदी
कृष्णा	कृष्णा नदी
कोटितीर्थ	नाम से बांदा, कालिंजर, मथुरा तथा गौकर्ण स्थानों पर तीर्थ हैं।

प्राचीन युग में प्रचलित नाम	वर्तमान युग में प्रचलित नाम
कोलाहल	चंदेरी के पास एक पर्वत माला।
क्रथकैशिक	आधुनिक बरार में स्थित है।
गंधमादन	बदरिकाश्रम के उत्तर-पूर्व में स्थित पर्वतीय भाग।
गांधार	पेशावर।
गिरिव्रज	बिहार में स्थित राजगृह का नाम।
गोकर्ण	गोवा से तीस मील दूर उत्तरी कनारा में स्थित।
गोप्रतार	अयोध्या में 'गुप्तघाट' नाम से विख्यात।
चित्रकूट	एक प्रसिद्ध पर्वत जो प्रयाग से २७ कोस दक्षिण की ओर है।
चेदि	बुंदेलखंड का दक्षिणी भाग और जबलपुर का उत्तरी भाग सम्मिलित था।
जनस्थान	औरंगाबाद।
तक्षशिला	झेलम के तट पर अटक और रावलपिंडी के मध्य बसा हुआ नगर।
तमसा	इस नदी को आज टोंस कहते हैं।
ताम्रपर्णी	मद्रास की एक नदी।
त्रिगर्त	जालंधर जिला (पंजाब)।
दंडकारण्य	विंध्याचल से गोदावरी तक फैला स्थान।
दरद	काश्मीर स्थित।
दृषद्वती	एक नदी जो आज कग्गर, घग्गर तथा राखी नामों से प्रसिद्ध है।
देवगिरि	दौलताबाद।
देवपत्तन	पुराणों में इसे प्रभास क्षेत्र भी कहते थे। काठियावाड़ में स्थित सोमनाथ का मंदिर।
द्रविड़	द्रविड़ प्रदेश, जिसकी राजधानी कांजीपुर है।
द्वारावती	द्वारका।
धर्मारण्य	गया का निकटवर्ती स्थान।
नंदगांव	वृंदावन के निकट एक गांव का नाम।
नंदग्राम	इसे नंदिग्राम भी कहते हैं। यह अयोध्या से चार कोस की दूरी पर स्थित है।
नाथद्वारा	उदयपुर का एक तीर्थ।
नैमिषारण्य	अवध के सीतापुर नामक जिले का एक स्थान।
पंचवटी	नासिक के पास गोदावरी नदी के तट पर स्थित प्रदेश।
पांचाल	रूहेलखंड।
पंपा	तुंगभद्रा नदी की एक धारा का नाम।
पयोष्णी	पूर्णा।
पर्णाशा	राजपूताने की बनास नामक नदी।
पारियात्र	विंध्याचल का पश्चिमी भाग।
पावनी	बर्मा की नदी जो इरावदी कहलाती है।
पुरुषपुर	पेशावर।
पुलिंद	बुंदेलखंड का पश्चिमी भाग।
पृथूदक	पीहोवा (कुरुक्षेत्र के पास) वहां प्रसिद्ध ब्रह्मयोनि तीर्थ है।
प्रभास	काठियाबाड़ का पट्टन स्थान—गुजरात में सोमनाथ का मंदिर इसी स्थान पर है।
प्राग्ज्योतिष	आसाम-स्थित कामरूप प्रदेश।
बाहुदा	धवला नदी, बूढ़ी राप्ती नामों से विख्यात है।
बिंदुसर	गंगोत्री से दो मील दूर एक कुंड।
मतरौड़	मथुरा और वृंदावन के मध्य स्थित एक प्रदेश।
भृगुकच्छ	भचौड़ नगर।
भोजकट	बरार में स्थित इलिचपुर।
मगध	बिहार।
मत्स्य	जयपुर तथा अलवर का मिला-जुला भाग।
मलद	बकसर का निकटवर्ती स्थान।
मद्र	रावी और चिनाब नदियों के मध्य का पंजाब स्थित प्रदेश।
मलजा	मलदा।
मल्ला	मगध का निकटवर्ती स्थान जहां मल्ल जाति का आवास है।
मार्कंडेयाश्रम	गोमती तथा सरयू नदी के संगम पर स्थित आश्रम।

प्राचीन युग में प्रचलित नाम	वर्तमान युग में प्रचलित नाम	प्राचीन युग में प्रचलित नाम	वर्तमान युग में प्रचलित नाम
मालिनी	इस नदी का संगम अयोध्या से ५० मील दूर सरयू से होता है। संगम-स्थल पर कण्व ऋषि का आश्रम था।	**शतद्रु**	सतलज नदी (पंजाब)।
मेकला	अमरकंटक, मध्य प्रदेश में स्थित है।	**शरावती**	साबरमती नदी (गुजरात)।
मैनाक	शिवालिक।	**शालग्राम क्षेत्र**	मैसूर में तथा नेपाल में इस नाम के क्षेत्र हैं।
मोदागिरि	भागलपुर जिले में स्थित मुद्गलगिरि।	**शिवकांची**	दक्षिणी भारत में कृष्णा तथा पोलर नामक नदियों का मध्यवर्ती शैव तीर्थ स्थान।
रैवतक	जूनागढ़ में स्थित गिरनार पर्वत।	**शुद्धमती**	उड़ीसा की स्वर्ण रेखा का नाम। बुंदेलखंड की बेतवा नदी भी इस नाम से प्रसिद्ध है।
रोहितक	रोहतक।	**शुद्धिमान्**	उज्जैन की निकटवर्ती विंध्य पर्वत माला का पश्चिमी भाग।
रोही	अफगानिस्तान की रोहा नदी। इसके निकटवर्ती लोग रूहेला नाम से विख्यात हैं।	**शूकर क्षेत्र**	सोरों (एक तीर्थ स्थान जोकि नैमिषारण्य का निकटवर्ती है)।
लंबका	काबुल नदी के तट पर स्थित लामकन प्रदेश।	**शूरसेन**	'मथुरा' राजधानी वाला प्रांत।
वंशगुल्म तीर्थ	अमरकंटक की उपत्यका में स्थित एक कुंड।	**शूर्पारक**	बाजीपुर जिले में स्थित जमखंडी के निकट स्थित स्थान जो शूरपल्य कहलाता है।
वंगा	बंगाल।	**शृंगवेरपुर**	प्रतापढ़ जिले में स्थित सिगनौर नामक गांव।
वककच्छ	भारत के दक्षिण में नर्मदा के तट पर स्थित प्रदेश।	**शोण**	सोन नद।
वसोर्धारा	बद्रीनारायण से चार मील उत्तर की ओर एक धारा।	**सदानीरा**	करतोया नदी—यह अवध में है।
वारणावत	मेरठ जिले में स्थित वारणव।	**सांबपुर**	सुलतान पुर।
वितस्ता	झेलम नदी।	**सारंगनाथ**	सारनाथ।
विदर्भ	बरार।	**सिंधु**	यह सिंधु नदी तथा झेलम नदी के बीच का स्थान है।
विदेह	तिरहुत प्रांत।	**सुब्रह्मण्य क्षेत्र**	कनारा जिले का मुख्य तीर्थ।
विदेहपुर	जनकपुर।	**सेक**	चंबल और उज्जैन के मध्य स्थित प्रदेश।
विनशन तीर्थ	सरस्वती नदी के विलीन होने का रेतीला स्थल।	**सौवीर**	सिंधु प्रदेश का निकटवर्ती स्थान।
विपाशा	व्यास नदी।	**हरिहर क्षेत्र**	बिहार स्थित तीर्थ-स्थान।
विरजा क्षेत्र	उड़ीसा में स्थित तीर्थ।	**हस्तिनापुर**	दिल्ली के पूर्वोत्तर में स्थित क्षेत्र।
वेत्रवती	बुंदेलखंड की वेतवा नदी।	**हिमवान**	हिमालय पर्वत।
वैतरणी	उड़ीसा स्थित कटक नामक नगर के पास बहने वाली बेतवा नदी।		

परिशिष्ट-२

बौद्ध धर्म के पारिभाषिक शब्द और अर्थ

पारिभाषिक शब्द	अर्थ
अकुशल धर्म	मनुष्य की पापात्मक वृत्ति।
अक्कोधेन जिने कोधं	शांत रहकर क्रोध पर विजय पाना।
अपआसिनवे	नास्तिकता।
अपचिति	आदर।
अव्याकृत धर्म	पाप तथा पुण्यमय कर्म।
अहिंसा	मन, वचन कर्म से प्राणिमात्र को दुःख न देना।
आश्रव	सांसारिक बंधन। यह चार प्रकार का होता है— (१) कामाश्रव (२) भवाश्रव, (३) दृष्टाश्रव, और (४) अविद्याश्रव।
इस्सा	ईर्ष्या।
काय	बौद्ध संघ।
कुंभ	महात्मा बुद्धि के २४ जन्मों में से एक का नाम।
कुक्कुटपाद	गया के पास एक बौद्धतीर्थ।
कुलिशासन	महात्मा बुद्ध।
कुशीनर	गोरखपुर जिले में स्थित एक स्थान जहां शाल वृक्ष के नीचे गौतमबुद्ध ने शरीर त्याग किया। कसया।
कृष्ण	महात्मा बुद्ध का एक शत्रु।
केयुरबल	एक बौद्ध देवता।
कोधे	क्रोध।
	भद्रकल्प के पांच बुद्धों में से एक।
खदूरवासिनी	महात्मा बुद्ध की एक शक्ति।
खसर्पं	महात्मा बुद्ध।
चक्रसंवर	महात्मा बुद्ध।
चक्रांतर	महात्मा बुद्ध।
चरणाद्रि	चुनार पर्वत की एक चट्टान। उस पर महात्मा बुद्ध के चरणचिह्न अंकित हैं।
चतुर्महाराजिक	महात्मा बुद्ध।
जलगर्भ	महात्मा बुद्ध के एक शिष्य का नाम।
तथागत	महात्मा बुद्ध।
तनुभूमि	बौद्धों के जीवन की अवस्था विशेष।
त्रिपिटक	बौद्ध धर्म का प्रमुख ग्रंथ।
त्रियान	बौद्ध तीन भेदों में विभाजित हो गये—महायान, हीनयान तथा मध्ययान। तीनों को त्रियान कहा जाता है।
त्रिरत्न	बुद्ध+धर्म+संघ।
थेरगाथा	बौद्ध भिक्षुओं की वार्ता जिस ग्रंथ में अंकित है, उसका नाम।
थेरीगाथा	बुद्ध की विमाता आदि की वार्ता इस ग्रंथ में आकलित है।
दंतपुर	कलिंग के एक नगर का नाम। वहां राजा ब्रह्मदत्त ने महात्मा बुद्ध के एक दांत को स्थापित किया था तथा एक स्तूप की रचना की थी; वह तीर्थ स्थान है।

पारिभाषिक शब्द	अर्थ
दशबल	महात्मा बुद्ध।
धमख	सारनाथ में स्थित तीर्थस्थान।
धम्मविजय	धर्म-विजय।
पृथु भैरव	एक देवता।
पच्छवेक्खन	पक्ष दर्शन।
माने	मान।
मज्झिमनिकाय	मध्यम मार्ग।
लुंबिनी	कपिलवस्तु का निकटवर्ती वनक्षेत्र, जहां महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ।
वज्रकालिका	महात्मा बुद्ध की माता।
वज्रगर्भ	महायान में एक बोधिसत्त्व का नाम।
वज्रभैरव	(१) महायान के देवता (२) भूटान में वे 'यमान्तक शिव' नाम से विख्यात हैं।
वज्रवाराही	एक देवी।
विनयपिटक	बौद्ध धर्मग्रंथों में से एक।
विमलकीर्ति	बौद्ध आचार्य।
समंतदर्शी	महात्मा बुद्ध।
समवाय	सयोग।

परिशिष्ट-३

जैन धर्म के पारिभाषिक शब्द और अर्थ

पारिभाषिक शब्द	अर्थ
अंतराय	जैन धर्म का संक्षिप्त इतिहास।
अचक्षुदर्शनावरणीय	मानव कर्म के नियंता दर्शनावरणीय कर्म के नौ भेदों में से एक।
अच्छुप्ता	जैन धर्म की देवियों में से एक।
अच्युत	जैन देवताओं की विभिन्न श्रेणियों में से एक।
अजितनाथ	दूसरे तीर्थंकर।
अणुव्रत	गृहस्थ धर्म का अंग।
अतिथि संविभाग	शिक्षाव्रत जो अतिथि-सत्कार पर बल देता है।
अतिपांडुकंबला	सिद्धशिला के दक्षिण में स्थित सिंहासन।
अतिरिक्तकंबला	सिद्धशिला के उत्तर में स्थित सिंहासन।
अद्धामिश्रितवचन	काल संबंधी अधोवचन।
अरुणोद	पृथ्वी को सब ओर से व्याप्त करने वाला समुद्र।
अवधिदर्शन	पांचों तत्त्वों को यथावत् देखना।
अवसर्पिणी	निरंतर क्षय की स्थिति।
अविरति	मर्यादाहीन कर्म।
असुरकुमार	तीनों लोकों का स्वामी—देवता।
अस्तेय	दान का त्याग करना, चोरी न करने का व्रत।
आदेय कर्म	वाक्य सिद्ध करने वाला कर्म।
कंदीत	देवताओं का एक वर्ग।
कायोत्सर्ग	वैराग्य-प्राप्त मुद्रा में महावीर।
काश्यप	महावीर स्वामी का गोत्र-प्राप्त व्यक्ति।
कुंभ	वर्तमान क्षय-प्राप्त समय के उन्नीसवें अर्हत्।
कृष्ण	कृष्ण वर्ग के नौ वसुदेवों में से कोई एक।
खरतरगच्छ	जैन धर्म की एक शाखा।
गिरनार	गुजरात में जूनागढ़ स्थित एक तीर्थ।
गुणव्रत	जैनियों में मान्य मूल तीन व्रत।
गोपालदारक	एक आचार्य।
चंडकौशिक	वह सर्प, जिसने महावीर स्वामी के दर्शनोपरांत दंशन छोड़ दिया था।
चंद्रप्रभ	आठवें तीर्थंकर।
चक्रेश्वरी	एक महाविद्या।
ढुंढ़िया	श्वेतांबर जैनियों का एक वर्ग।
तड़ितकुमार	देवता विशेष।
तीर्थंकर	ये उपास्यदेवों का पर्याय हैं। इनकी संख्या २४ मानी गयी है—

देवता	जन्मस्थान
१. ऋषभदेव	अयोध्या
२. अजितनाथ	अयोध्या
३. संभवनाथ	श्रावस्ती
४. अभिनंदननाथ	अयोध्या
५. सुमतिनाथ	अयोध्या

पारिभाषिक शब्द | *अर्थ*

६. पद्मप्रभ	कौसांबी
७. सुपार्श्वनाथ	काशी
८. चंद्रप्रभ	चंद्रपुरी
९. पुष्पदंत	कोकंडी
१०. शीतलनाथ	बद्रिकापुरी
११. श्रेयांसनाथ	सिंहपुरी
१२. वासुपूज्य	चंपापुरी
१३. विमलनाथ	कांपिल्य
१४. अनंतनाथ	अयोध्या
१५. धर्मनाथ	रत्नपुरी
१६. शांतिनाथ	हस्तिनापुर
१७. कुंथुनाथ	हस्तिनापुर
१८. अर्हनाथ	हस्तिनापुर
१९. मल्लिनाथ	मिथिलापुरी
२०. मुनिसुव्रत	कुशाग्र नगर
२१. नमिनाथ	मिथिलापुरी
२२. नेमिनाथ	द्वारिका [सौरिपुर]
२३. पार्श्वनाथ	काशी
२४. महावीर	कुंदपुर

पारिभाषिक शब्द | *अर्थ*

त्रिरत्न मोक्षप्राप्ति के लिए आवश्यक तीन मार्ग—सम्यक् दर्शन + सम्यक् ज्ञान। सम्यक् चरित्र।

दिगंबर जैन धर्म की एक शाखा, जिसके अनुयायी निर्वस्त्र रहते हैं।

देवर्द्धि जैन धर्म के सिद्धांतों को लिपिबद्ध करने वाले स्थविर।

धर्मसेन एक अंगाविद। इनकी संख्या बारह मानी गयी है।

पार्श्वनाथ तेईसवें तीर्थंकर।

पावापुरी पटना के निकट जैनियों का तीर्थ।

प्रज्ञप्ति विद्या देवियों में से एक।

वज्रशाखा वज्रस्वामी का मत।

वज्रश्रृंखला एक महाविद्या का नाम।

श्वेतांबर जैन धर्म की एक शाखा। इसके अनुयायी श्वेत वस्त्र धारण करते हैं।

सर्वास्त्रा जैनियों की सोलह विद्यादेवियों में से एक का नाम।